

GOVERNMENT OF INDIA
ARCHAEOLOGICAL SURVEY OF INDIA
CENTRAL
ARCHAEOLOGICAL
LIBRARY

ACCESSION NO.

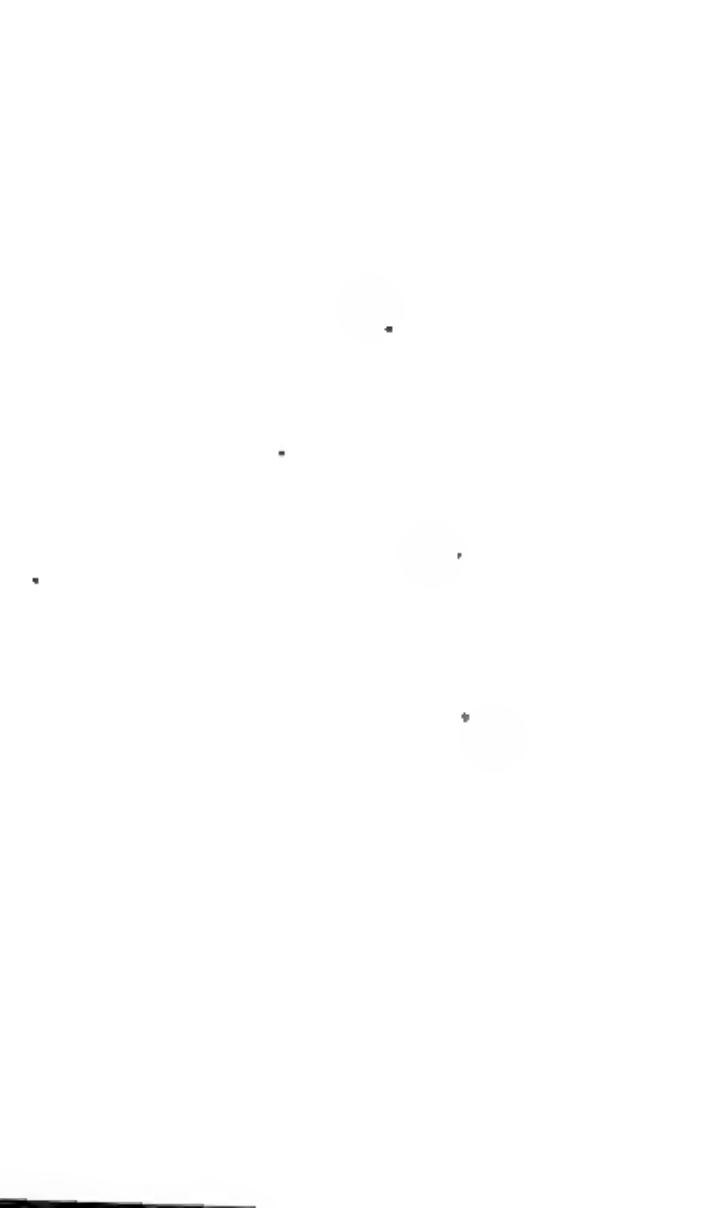
1174/50

CALL No.

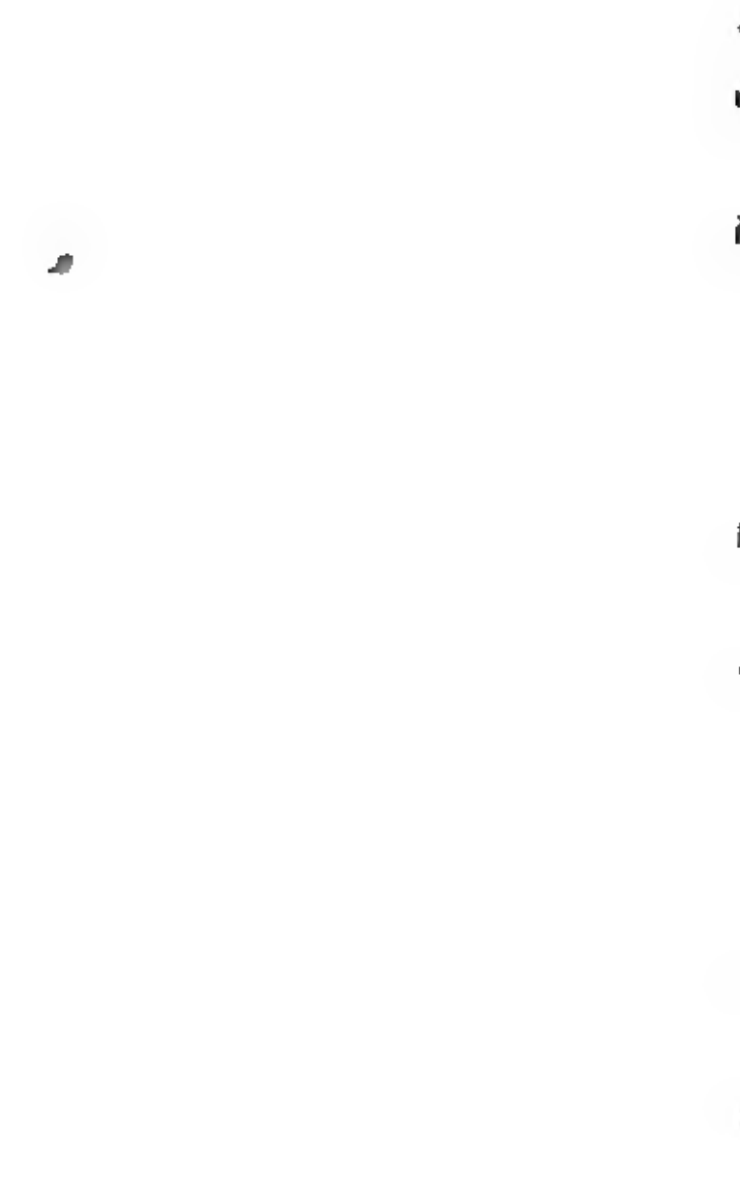
292.5486/11a1

G.O.A. 78





हिन्दू विवाह का संक्षिप्त इतिहास



हिन्दी अभिलेखि ग्रन्थमाला-संख्या १२६

हिन्दू विवाह का संक्षिप्त इतिहास

[वैदिक युग से वर्तमान युग तक की हिन्दू विवाह विषयक सभी
संस्कारों का ऐतिहासिक तथा सामाजिक-नैतिक अध्ययन]

५०१८६

लेखक :

प्रो. हरिवंश वेदार्थकार एम. ए.

भू. पू. भवन इतिहास विभाग, मुमुक्षु काशी विश्वविद्यालय, छिछार;
लिपिक, प्रकाशन विभाग, ड. ए. कवि-विश्वविद्यालय, पल्लनगर, नैनीताल ।

392.50954

Has

हिन्दी समिति

सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश

लखनऊ

संस्कृत संस्करण

१२७०

[मूल्य : ११ रु०

(सोलह रुपये)

U. V. ARTHUR
LIBRARY, NEW DELHI.
No. 392.50954
Har

मेहराज लाफसेट प्रेस, बाराक

प्रकाशकीय

मानवनिर्मित संस्थाओं में कदाचित् सबसे व्यापक और विश्वव्यापी संस्था परिवार या कुटुम्ब है जो बारम्ब मे नर-नारी के युग्म से और प्रदुपरन्त उनकी संतानों से निर्मित होता है। मता यदि यह कहा जाय कि वैवाहिक सम्बन्ध हमारे समष्टिगत जीवन की मूलभूत और आदिमिक इकाई रहे है तो अस्युक्ति न होगी। यद्यपि समाज-शास्त्रियों ने ऐसी समाजशास्त्रियों का विवरण अपने अध्ययन के आधार पर प्रस्तुत किया है जो इस संस्था को भाति आदिमिक अवस्था की जांग सकेत करता है और मानवयै चही कि सामाजिक विकास की अपनी प्रक्रिया में मानव ने अलग-अलग अन्तों में समान रूप से इस विद्या में प्रवृत्ति भी की है। परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि मूलभूत एकता के रहते हुए भी मानव-सम्यता के अन्य अवस्थाओं की भाति विवाह-संस्था के स्वभाव में समानता नहीं रहे पायी। अत्येक सम्मता के साथ उसकी विवाह-संस्था की अपनी विशेषता प्राप्त करती गयी जिसका प्रतिफल हम अलग-अलग जातियों में देखते है।

आधुनिक युग जनस् के लकोष का युग है। भौगोलिक व्यवधान समाप्तप्राय हो चले हैं। फलता विभिन्न देशों और जातियों के वैवाहिक से निर्मित संस्थाएँ एक दूसरे को प्रभावित कर रही हैं और इस प्रकार एक नयी विषय-समाज-व्यवस्था का प्रवर्धन हो चुका है। परन्तु किसी भी वर्तमान का निर्माण अभी सम्भव है जब उसकी भी सुदृढ मूलों पर खड़ी गयी हो। इस दृष्टि से वैवाहिक एकता के इस युग में इस दृष्टि की भी आवश्यकता है कि विभिन्न जातीय और देशीय विशेषताओं को उद्भासित किया जाय ताकि सभी स्वयं का निर्धारण करने के लिए समाज के सामने एक सुपरीक्षित आधारभूत सामग्री उपलब्ध रहे। इस दृष्टि से हिन्दू विवाह विषयक प्रस्तुत ग्रन्थ का अपना विशेष महत्त्व है। इस पु-भाग में जो सामाजिक पद्धति विकसित हुई उसने भाग्य-सम्यता की हर क्षेत्र में अवैध विचार-सामग्री प्रदान की है। ऐसी स्थिति में इस सम्भावना से इनकार नहीं किया जा सकता कि पश्चिम की भौतिकवादवादी विषयवादी से प्रताड़ित मानव आध्यात्मिक क्षेत्र की भाति वैवाहिक क्षेत्र में भी साधन की उपलब्धियों की ओर आकृष्ट हो।

विद्वान् लोक ने अपने विषय का प्रतिपादन साधिकार किया है और यज्ञ-राज ऐसे पात्रों की ओर भी संकेत किया है जो विचारोत्तेजक हैं और जिनमें महान् अथवा लक्ष्मण होने के लिए पाठकों को यथेष्ट मानस-संचल करना पड़ेगा। ज्ञाता हैं, समाज-शास्त्र के अध्येताओं के साम-ग्राम अन्य पाठक भी इन कृति को उपयोगी पावेंगे।

लीजन्स सर श्री 'पर्सोन्स'

गार्डन, हिन्दी समिति

RESULTS

विवाह हमारे समाज की एक बड़ी महत्वपूर्ण संस्था है। समाज की शान, संरक्षण, प्रगति और सुख इसी पर अवलम्बित है। हमें हमारी सामाजिक संस्थाओं का मेहनतकश ऋद्धाचार्यों की ओर अत्यधिक न होना। इस प्रकार में हिन्दू समाज की इस महत्वपूर्ण संस्था की वैदिक धर्म ने वर्ण-व्यवस्था तक की ऐतिहासिक और समाजशास्त्रीय नीतिशास्त्र का एक विशाल प्रणाली बनाया है। इसमें हिन्दू विवाह के अतीत का प्रतिपादन, वर्तमान का चिन्तन तथा भविष्य में प्रथम होने वाली प्रवृत्तियों का विश्लेषण और विवेचन है।

प्राचीन अध्याय में हिन्दू विवाह के उद्गम और उद्देश्यों पर प्रकाश डाला गया है। दूसरे में प्राचीन अध्याय तक हिन्दू विवाह के तत्त्व प्रविवरण और मर्यादों का ऐतिहासिक विवेचन किया गया है जिसका सामल करना प्रत्येक हिन्दू विवाह में आवश्यक समझा जाता है। राज, प्रज, गतिपन्ना तथा भस्मविवाह के प्रतिबन्ध इनमें प्रमुख स्थान रखते हैं। प्राचीन अध्याय में वर-वधू की अन्य मर्यादाओं तथा चुनाय सम्बन्धी विभिन्न विषयों का वर्णन है। कठे अध्याय में विवाह के प्राचीन साठ-उपों के साथ साधुनिक काल में प्रचलित सम्बन्ध, कान, वादप्रत्यवादी आदि का वर्णन है। सातवें अध्याय में विवाह संस्कार की विधियों का तथा इसके महत्त्व का विवेचन है। आठवें अध्याय में दाम्पत्य अधिकारों पर तथा नवें अध्याय में त्याग के प्रश्न पर प्रकाश डाला गया है। दसवें अध्याय से बीसहवें अध्याय तक हिन्दू विवाह से संबन्ध विभिन्न समस्याओं की समीक्षा है और अगला आठ विवाह, पिछका विवाह, सतीप्रथा, भिषा, बहुभार्या (Polygamy) और बहुभर्तृता (Polyandry) का विवेचन है। पन्द्रहवें अध्याय में महीन परिस्थितियों के कारण हिन्दू विवाह पर पड़ने वाले प्रभावों का तथा अन्तिम में प्रत्यक्ष श्रेष्ठ महीन प्रसूतियों का विवेचन किया गया है।

हिन्दू विवाह के प्राचीन काल और मध्ययुग की ऐतिहासिक धीमाभा का प्रमाण बाधारहितिक संहिताएँ, ब्राह्मण स्मृत्य, मुद्गसूत्र, धर्मसूत्र, स्मृतियाँ, इनकी टीकाएँ, निगम ग्रन्थ, संस्कृत-प्राकृत के नाटक, काव्य, पालि विभिन्न, आहत साहित्य तथा प्राचीन अभिलेख हैं। अनेक धर्मसूत्रों, स्मृतियों तथा विदग्ध ग्रन्थों का रचनाकाल विवादस्पद है। इस पुस्तक में प्रधान रूप से श्री पाण्डुरंग रामन काणे के "हिस्ट्री ऑफ़ धर्मशास्त्र" के प्रथम खण्ड में प्रतिपादित कालक्रम को स्वीकार किया गया है। हिन्दू विवाह के वाद्यतिक काल के विवेक का मुख्य साधन पिपी दीक्षित, सुप्रीम कोर्ट तथा विभिन्न

हवाईकोटी के नौसलों की रिपोर्टें, सारल प्रन्कार की ओर में बैठानी लगी जनेक समितियों के विचारण, विमलद विषयक बर्तन कानून तथा हिन्दू कानून पर विमल रये प्रामाणिक प्रन्ध तथा जनसज्जन की रिपोर्टें हैं। इनके अतिरिक्त हिन्दू विवाह और परिवार पर सर्व-ज्ञान समय के कवरेजो एवं विदेशी विद्वानों द्वारा किये गये भव्य-प्रामाणिक भण्डारण और कवरेजो की इसमें लहायक है। इन सब पर कवरेज लहायक प्रमोदनी में किया गया है।

हिन्दू विवाह में सम्बन्ध प्राप्त करने की प्रवृत्ति का विशेषण निम्नलिखित वैज्ञानिक दृष्टि से किया गया है। प्रत्येक वैवाहिक कक्षा के सम्बन्ध में पहले उसके वैदिक काल से लेकर अब तक कबने जाने कबने व्यवस्था की व्यवस्था किया गया है, इसके साथ ही यह भी कहा जा रहा है कि उस प्रथा में कम, जैसे और क्या परिष्कार होना पड़ा। अधिविशुद्धता, असमाजिता, अलगाविवाद के नियम, बाप विवाह, माँ विवाह, विधवा विवाह, त्रियोग आदि की प्रकारों निकल बचस, किन कारणों से आरम्भ हुई, इनका अधिक विकास किन प्रकार हुआ, इनका विशेषतः सामाज्य में ऐतिहासिक व्युत्पत्ति के आधार पर किया गया है। ऐतिहासिक दृष्टि से विवाह सम्बन्धी विभिन्न प्रवृत्तियों की नीचाता करने हुए तुलनात्मक पद्धति का अत्यधिक उपयोग किया गया है और हिन्दू समाज की प्रवृत्तियों एवं संस्थाओं की तुलना अन्य समाजों की इस प्रकार की पद्धतियों के करीबी है। प्रविष्ट साधारणकारी विधि से लेकर और कवि किपकिप कहा शरीर भाषा से ईश्वरीय के बारे में कहा जानने हैं जो केवल ईश्वरीय को आपते हैं। उसकी इस उक्ति का यह भावक था कि दूसरे देशों का ज्ञान होने पर तथा उनके साथ ईश्वरीय की तुलना करने पर ही इस क्षेत्र का काफी ज्ञान संभव है। यही बात हिन्दू विवाह के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है। जो केवल हिन्दू विवाह को जानते हैं, वे दूसरे देशों के साथ नहीं रखते हैं। वह सभी संभव है जब हम हिन्दू विवाह सम्बन्धी विभिन्न अध्ययनों की तुलना भूमि, रोम, फ्रांस, जर्मनी, इंग्लैण्ड, अमेरिका आदि दूसरे देशों की तथा अन्य जातियों की सलाहक व्यवस्थायों और प्रवृत्तियों के करें। अतः इस पुस्तक में प्रायः सबसे पाठ्यप्रणालियों में दूसरे देशों तथा जातियों के विवाह की हिन्दू विवाह के साथ साक्ष्य रखने वाली प्रवृत्तियों तथा ऐतिहासिकता का दोषक एवं अनुसंधान प्रतिपादन किया गया है। इस प्रकार के तुलनात्मक अध्ययन में लेखकों को बीस्टरमारके, मेयर, हाइहाउस, बीडी, कपली, ह्यूमर आदि के ग्रन्थों से बड़ी सहायता मिली है। महामक चन्द्र सूरी में ऐसी पुस्तकों का उत्तेजक प्रभाव कम से कम बना है :

इस पुस्तक में बनेक नये पारिवाहिक मन्द रहे बने हैं। ये मन्द बाने के एतरे यह मन्द किना गया है कि प्राचीन साहित्य में उन मन्दों को बोवा माय। यदि पुराने संस्कृत धर्म्मों में ऐसे मन्द मिले हैं, तो उनकी बन्द म्म में नये मन्द नहीं बनाने भये। सदाहरणार्थ, मंग्रेयी के Promiscuity, Polygamy तथा Polyandry के लिए महाभारत में कमल कामपाद, बहुपत्न्यता और बहुपत्नीता के मन्दों को बाने है, मता इत

पुस्तक में उनकी बर्तों का व्यवहार किया गया है।

जर्मिने का ने सिखा है कि विवाह के विषय में जितनी ऊटपटांग बातें लिखी गयी हैं, साराही शायद किसी और विषय पर तभी लिखी गयी। यहाँ जर्मिने के माह प्रकाश कितने मोटि में जाया है।

विवाह का विषय इतना गंभीर, अटल और विस्तृत है कि जर्मिने के सम्मानानुसार हम इस अवसर पर स्पष्टतः ही अन्तिम जर्मिने की बोलचालें हुए यही कह सकते हैं कि इस विषय में हम अभी तक विवाह सागर के किनारे कुछ नौकड़ ही बटोर पाये हैं। हिन्दू विवाह का इतिहास अभी तक अन्धकार के आवरण में पड़ा हुआ है, उसके स्वरूप की स्पष्ट करने का यह एक अवसर बिलकुल प्रयास है। काश्मिर ने अपने ही मन्त्रावली यह कहा था—'यस्य सूर्यप्रभा की बंधा, यस्य चालचिपयः बलिः'। किन्तु मेरे एक इस विषय में बस्तुतः अपनी अल्पविषया प्रति का अनुभव करता है, फिर भी उसने यह प्रयास इसलिए किया है कि अधिकांश विद्वानों का ध्यान इस महत्वपूर्ण किन्तु उपेक्षित विषय की ओर आकृष्ट हो सके।

लेखक को इस विषय का शेष है कि हिन्दी साहित्य द्वारा निर्धारित पुष्क-संख्या के कारण इसे अनेक विषयों की छोड़ना पड़ा है, संस्कृत बर्तों के कुछ अवसरों को लेने से पुस्तक का कोषर बड़ा जाता, जहाँ इनके प्रतीकों का प्रत्येकमान किया गया है।

हिन्दू विवाह के सर्वांगीण वैज्ञानिक विवेचन का हिन्दी में यह प्रथम प्रयास है। जर्मिने, जर्मिने शक्ति यूरोपियन भाषाओं में हिन्दू विवाह की विविध समस्याओं के अनेक सामाजिक अध्ययन हुए हैं, किन्तु लेखक की जानकारी में इस प्रकार ऐतिहासिक दृष्टि से हिन्दू विवाह के सब पहलुओं का विवेचन करनेवाला कोई ग्रन्थ नहीं है। इस विषय की गुंता, गंभीरता और अटलता के साथ लेखक अपने अपने अध्ययन और सीमित सामर्थ्य से भी अपरिचित नहीं है, फिर भी उसने यह प्रयास इसलिए किया है कि ऐसे महत्वपूर्ण विषय पर हिन्दी में अभी तक कोई अध्ययन प्रकाशित नहीं हुआ है। लेखक को उस समय तक समर्थ नहीं होगा जब तक उसका यह विचार प्रमाण विद्वानों द्वारा कसौटी पर नखा जाने पर जरूर न उतरे। काश्मिर के बर्तों में लेखक की भी यह चारण है—

का मरित्रीनाडिमुनी न साधू मन्त्रे प्रयोगविशामम् ॥

हमने पहले हिन्दू परिवार पर लेखक की एक कृति 'हिन्दू परिवार भीमंशा' के दो संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं और यह पुस्तक बंगाल हिन्दू सभ्यता, उत्पत्ति तथा हिन्दुस्तानी ऐतिहासिक, साहित्यिक द्वारा उन्नततम पुस्तकों से सम्मानित हो चुकी है। यहाँ है, इस पुस्तक का भी हिन्दी अंगद्वारा स्वागत किया जायगा।

लेखक इस पुस्तक के प्रकाशन के लिए हिन्दी समिति का उपाध्यक्ष सचिव श्री

‘एवीसीए’ जी का अत्यन्त कारागीर है। हिन्दी सर्जिन के जहाज के बिना ऐसे शस्त्रीर विषय के ग्रन्थ का प्रकाशन होना बहुत कठिन था। इसके प्रथम एवं मूल्य में गणकृत ज्ञानपीठ विभवविद्यालय के पुस्तकालय के अधिकारियों—अध्यक्ष रामचन्द्राशरण जी, श्री बाजीराम जी विद्यालंकार जी व श्री व. चन्द्रदेव जी सहायकारिता से बहुत-सा सहायता मिली है। प्रेष के लिए इनकी बाबूजीजी वैधान्तिक सेवा का हार्दिक धन्यवाद है। श्री रामचन्द्र जी, श्री प्रतापसिंह जी, श्री गणेशकुमार जी आदि के बहुमूल्य सहयोग दिया है। मेरा इस सब का धन्यवादी हूँ।

इस पुस्तक के प्राचीन ग्रन्थों के लेखक हैं। उन्हें नवीन विचारों का सङ्ग्रह करने का प्रयास किया गया है। प्रकाश कृत अक्षरों का यह ग्रन्थ प्रकाश है। इसे तथा अन्य ग्रन्थों का प्रकाश करनेवाले तथा इस ग्रन्थ के सम्पादन में आयोगी सहाय देने वाले महा-मुद्राओं का लेखक बहुत कृतज्ञ हूँ।

हरिदत्त

विषय-सूची

विस्मयकला

संक्षिप्त संकेत सूची

(क) मस्कल और गति शब्द पृ० ५, (ख) आधुनिक शब्द पृ० ८,
(ग) गान्धी संकेत, पृ० ८ ।

सर्वत्र सम्पाद्य-हिन्दू विवाह का स्वरूप, प्रयोग और प्रचलन

विवाह का अर्थ और मूल्य पृ० १, विवाह के विभिन्न मूल पृ० १, विवाह
विषयक नियम पृ० १, (१) घर-घर के चुनाव के नियम पृ० ५,
(२) पत्नी प्राप्ति के नियम पृ० ७, (३) विवाह के
विभिन्न रूप पृ० ७, विवाह के प्रतीक पृ० ८, (१) अर्थ का प्रमाण :
(क) पत्नी का सहयोग पृ० ८, (ख) गृहस्थाश्रम का प्रारम्भ पृ० ११,
(ग) दत्त-कर्म का विचार पृ० १८, (२) सम्पत्ति प्राप्ति पृ० १५,
(३) उत्ति पृ० १६, विवाह की धर्मिकार्थता : (क) धार्मिक उपाकरण
पृ० १७, (ख) आधुनिक उपाकरण पृ० १८, हिन्दू विवाह का आदिन
काल पृ० २१ ।

सर्वत्र सम्पाद्य-बहिर्विवाह : गौत्र और प्रवर

दो प्रकार के बहिर्विवाह नियम पृ० २२, गौत्र का सामान्य स्वरूप
पृ० २६, गौत्र विषयक मूल्य पृ० २२, गौत्र मूल्य के विभिन्न अर्थ पृ० २४,
वैवाहिक द्वारा गौत्र मूल्य की व्याख्या पृ० २६, गौत्र-प्रवर के ऐति-
हासिक विकास की अवधारणा पृ० ३७, वैदिक युग में गौत्र पृ० ३७, मीमांसा-
युग में गौत्रविषयक कल्पना पृ० ३८, वैदिक युग में गौत्र-
पद्धति के संकेत पृ० ३९, प्रवर पृ० ४०, प्रवर पद्धति
वैदिक विवेक पृ० ४३, प्रवर युग में स्मृत्युक्तता पृ० ४५, प्रवर में
वैदिकों की संख्या पृ० ४८, विद्वान् कुल पृ० ४९, अतिथि के गौत्र पृ०
५१, वैदिकों के गौत्र और प्रवर पृ० ५२, धर्मसूत्र और संवत्स विवाह
पृ० ५२, गौत्र प्रथा की उद्भवत सम्प्रदायीय कल्पना पृ० ५४,
आधुनिक कल्पना की दो प्रमुख अवस्थायाँ पृ० ५५, गौत्र के वंशपरम्परा
सूचक न होने के अन्य प्रमाण पृ० ५६, असंगत विवाह के नियम के प्रादु-

अब यह परिभाषा विज्ञानों की कल्पनाएँ : (क) मेकैनीक्स की कल्पना पृ० ५८, (ख) स्पेन्सर की कल्पना पृ० ५९, (ग) एबरी की कल्पना पृ० ५९, हिन्दू समाज में मनीष विद्या-विशेष के उपासक त्रेपु पृ० ६०, ब्राह्मणों में स्थानीय अधिविद्या का अवयव पृ० ६०, मूर्तियों और अमूर्तविद्या का विवरण पृ० ६३, धातुबाल्य, मातृ तथा अमा मूर्ति-कार पृ० ६४, दीवाकार और लोक : भेदातिथि पृ० ६४, मातृगण का परिहार पृ० ६५, अणुकां पृ० ६६, विद्यादेवता पृ० ६६, वैश्वना भद्र पृ० ६७, कमवाक्य पृ० ६७, निम्न मित्र पृ० ६८, आधुनिक युग पृ० ६९, वर्तमान लोकों के निमित्त कल्प पृ० ७०, लोकों का भविककल्प पृ० ७०, (१) आद्य-नात्मक लोक पृ० ७२, (२) भूमिपुत्रा आधी लोक पृ० ७३, (३) आधुनिक लोक पृ० ७३, (४) उपाधि वाचक लोक पृ० ७४, (५) स्थानीय अतिथि या पारिवारिक लोक पृ० ७४, वर्तमान लोक की लोकप्रति की प्रधान विशेषताएँ पृ० ७५, लोक के निरुपण की अन्तर्भावना पृ० ७५, वर्तमान साम्राज्य और वर्तमान विद्या पृ० ७७ ।

सीकरा अभ्यास-मार्गदर्शक-सामग्री

2014年1月1日

संविधान का मानान्य अर्थ पृ० २०, वैदिक युग में संविधान का विचार पृ० २०, वैदिक साहित्य में आतुष्य विवाह का गणित पृ० २१, मन्त्र-शास्त्र में गणित आतुष्य विवाह पृ० २२, बर्तमान-युगीन में संविधान का विचार पृ० २८, इतिहास और संविधान पृ० २९, टीकाकार और संविधान का विचार पृ० ३०, विचारविमर्श द्वारा संविधान की व्याख्या पृ० ३६, आतुष्य का विचार पृ० ३२, वेदांग भद्र द्वारा समर्थन पृ० ३३, विचारविमर्श द्वारा विचार पृ० ३४, समर्थन में संविधान के विचार अकार पृ० ३५, वर्तमान कागज में आतुष्य विवाह पृ० ३६, विचार तथा उत्तर भारत की विचार पद्धति के संघ पृ० १०१, आतुष्य विवाहों के प्रेरक कारण पृ० १०५, तथा आतुष्य और संविधान पृ० १०९, विचार धीमे पृ० १०७ ।

श्रीमद्वाङ्मयः-महर्षिबालः

905-945

अन्तर्विवाह का महत्त्व पृ० १०८, अन्तर्विवाह के विकास की अवस्थाएँ पृ० १०९, वैदिक युग में अन्तर्जातीय विवाह पृ० १०९, अनुजोम विवाहों के प्राचीन उदाहरण पृ० ११२, भतिजोम विवाहों के उदाहरण पृ० ११४, गृहा स्त्रियों के साथ विवाह का निषेध पृ० ११४, तवर्ग विवाह की प्रवृत्ति पृ० ११९, तवर्ग विवाहों का मूल कारण पृ० १२०, स्मृतियों द्वारा अनुजोम विवाह बन्ध करने के दो कथ पृ० १२४, असवर्ग स्त्रियों

[illegible]

प्रांतीय अख्यार - वर-भद्र क। अन्त्या सभा योग्यताई

984-985

४. ग. वैशाखि प्रतिपदा १० १४४, बर की भांगमाला : (१) सप्तम
 १० १४४, (२) कुल १० १४५, (३) सुखि और गुण १० १४६, अम
 मांसाभा १० १४७, बर की द्वाविमाला १० १४८, वरिचेलन १० १४९,
 वरिचेलन का मांसा १० १५०, वरु का कुलन १० १५१, वरु के गुर्मी
 का मांसा १० १५२, वरु का हाथ परीसा १० १५३, कपडा की
 गुण परीसा का गुणन १० १५४, बहिन के लिए वरिचेलन का
 मिश्रण १० १५५, भस्मन का मेलन १० १५६, वैशाखि प्रतिपदा
 कुलनाम १० १५७, बर-वरु के कुलन की आहुति का प्रवृत्ति १०
 १५८, बर-वरु के अजीव गुण १० १५९ ।

कृ० अण्वात्—विषय के प्राचीन तथा वर्तमान रूप

934-935

विष्णु विवाह के कर्षी की विधिवत्ता पृ० १६४, विवाह के आठ खेद पृ० १६५, विवाहों की श्रेष्ठता का सामान्य पृ० १६६, विवाहों का नाम-करण पृ० १६७, आठ प्रकार के विवाहों का अधिक विकास पृ० १६८, विवाहों का वर्गीकरण पृ० १६९, राजस व वैशाख विवाह पृ० १७०, राजस विवाह के अतीत उदाहरण पृ० १७१, राजस विवाह की कानूनी विशेषता पृ० १७५, अथ जातिधर्म में राजस विवाह के उदाहरण पृ० १७६, गान्धर्व विवाह के प्रचलन के कारण पृ० १७७, स्वयंवर विवाह पृ० १७८, स्वयंवर के तीन खेद पृ० १८१, आसुर विवाह का स्वरूप पृ० १८७, वैदिक युग में आसुर विवाह पृ० १८८, महाभारत में आसुर विवाहों के उदाहरण पृ० १८९, कन्या मुक्त तथा आसुर विवाह की निन्दा पृ० १९१, आसुर विवाहों की निन्दा का कारण पृ० १९१, गान्धर्व विवाह पृ० १९२, वैदिक युग में गान्धर्व विवाह पृ० १९३, महाभारत का गान्धर्व विवाह (दुष्यन्त-सकुन्तला) पृ० २००, गीता आदिस्थ में गान्धर्व विवाह पृ० २०३, साहचर्यमय सब गान्धर्व विवाह पृ० २०४, संस्कृत काव्यों में गान्धर्व विवाह पृ० २०५, गान्धर्व विवाहों

में संस्कार की आवश्यकता पु० २०६, धर्मशास्त्र व शास्त्रों
विवाह पु० २१०, शास्त्रों विवाह के दो भेद पु० २११,
वर्तमान काल में शास्त्रों विवाह पु० २१२, शास्त्र, वैदिक, भार्य
और प्राजापत्य विवाह पु० २१३, दहेज प्रथा पु० २१४, महाभारत व
दहेज पु० २१६, बीड़ प्रथा व दहेज पु० २१६, दहेज प्रथागत होने के
कारण पु० २१७, दहेज तथा त्रासणीत पु० २१८, वर्तमान युग में दहेज
प्रथा के बढ़ने का कारण : अंग्रेजी शिक्षा का प्रभाव पु० २१९, दहेज
प्रथा के दुष्परिणाम पु० २२०, दहेज की कुप्रथा बन्द करने के उपाय
पु० २२३, दहेज विवाह पु० २२४, प्राजापत्य विवाह पु० २२५, हिन्दू
विवाहों में आधुनिक रूप पु० २२६, दक्षिण भारत के विवाह पु० २२७,
कानिकेट्ट तथा सम्मन्धम् पु० २२७, सम्मन्धम् की प्रथा के प्रवृत्ति
होने के मुख्य कारण पु० २२८, अन्धारा विवाह पालन पु० २३०,
अम्बुदरी विवाह पु० २३१, करार पु० २३१, लाम्प विवाह पु०
२३२, गार्नि नुईले पु० २३२, आनन्द विवाह पु० २३२, कम्पी-
बदल विवाह पु० २३३, कालिमानम् विवाह पु० २३३, पातक विवाह
पु० २३३, चादर जंदाजी विवाह पु० २३३, प्रवेत्तवन्नम् विवाह
पु० २३४, सत परिहर्तन पु० २३४ ।

सातवाँ अध्याय—विवाह-संस्कार

२३५-२७२

संस्कार का उद्देश्य पु० २३५, वैदिक युग की विधिर्था पु० २३६, बृहत्
सूत्रों की विधिर्था पु० २३६, महर्षक पु० २३७, वस्त्रदान पु० २३८,
कन्यादान पु० २३८, परस्पर समीक्षण पु० २४०, अग्नि स्वायत्त और
होम पु० २४०, भाग्यहोम पु० २४१, अग्निपरिणयन पु० २४२ अन्ना-
रोहण पु० २४२, सावाश्रीम तथा केसयोषन पु० २४२, अन्तर्परी पु०
२४४, मूर्धाभिषेक पु० २४४, मूर्धस्नान व हृदय स्पर्श पु०
२४५, भुज स्पर्श पु० २४५, धूत की विदाई और दशारोहण पु०
२४६, गंध का वस्त्रोत्थान प्रवेश पु० २४६, सिरारत कृत
या विवाहोत्तर संयम पु० २४७, अन्न विधिर्था : अन्नोदय
पु० २४८, शास्त्र या कालनिश्चय पु० २४९, विवाह का मुहूर्त
पु० २४९, अन्य विधिर्था पु० २४९, ग्रामायण व महाभारत की वैवा-
हिक विधिर्था पु० २५१, वैवाहिक आजीवीय, उपवेश पु० २५१,
कालिदास द्वारा वर्णित विवाह विधि पु० २५२, मध्यकालिक विधिर्था
पु० २५३, आश्विनारोपण पु० २५४, ऐरणी वान पु० २५४, नवत
सूत्र अन्नन पु० २५४, प्रारम्भिक प्रजापति पु० २५५, कुम्भ विवाह पु०

२५५, अनाथ व अतिथि विवाह पृ० २५५, अर्क विवाह पृ० २५६, वायान का विचार पृ० २५८, वायान का लौकिक कर्म पृ० २५६, विवाह की आवश्यक विधियाँ पृ० २६०, अनाथ कन्याओं के विवाह की विधि पृ० २६१, विवाह संस्कार में स्त्रियों के संलग्न की अविवेकता पृ० २६२, अविच्छेद हिन्दु विवाहों की अविच्छेद ईसाई विवाहों से आत्मक तुलना पृ० २६२, धर्म परिवर्तन और विवाह की अविच्छेदता पृ० २६४, प्राचीन भारत में सामयिक या सवर्त विवाह पृ० २६७, दीवानी विवाह पृ० २६६, दीवानी विवाह के कानून का इतिहास पृ० २७०, दीवानी विवाह का स्वयं पृ० २७१, भर्तृ कानूनों का निर्माण पृ० २७२।

भारती अध्याय-दाम्पत्य कर्तव्य व अधिकार

२७३-२८३

वैदिक युग में दाम्पत्य अधिकार पृ० २७४, बौद्ध साहित्य में स्त्रुत-वृत्त भवर्ष पृ० २७५, महाभारत में दाम्पत्य कर्तव्य पृ० २७७, पति का मुख्य कर्तव्य—पत्नी का पालन पृ० २७७, स्त्री की पराधीनता पृ० २७७, मनु का आशय पृ० २७६, स्त्री के अग्न्य कर्तव्य पृ० २७६, नातिवरण का आवश्यक तथा माहुरतम पृ० २८०, पतिव्रता के कर्तव्य पृ० २८०, स्त्री के विध्व विविध कर्म, पृ० २८१, पतिव्रता अग्न्य पत्नीव्रत पृ० २८१, स्वयं का अधिकार पृ० २८१, दाम्पत्य अधिकारों की पुनः प्राप्ति पृ० २८२।

भर्ता अध्याय-विवाह-विच्छेद या तलाक

२८४-३०५

वैदिक काल में स्त्री का पुनर्विवाह पृ० २८५, धर्मशूत्र और पुनर्विवाह पृ० २८७, महाभारत व बौद्ध साहित्य में तलाक पृ० २८८, कीटिख तथा पुनर्विवाह पृ० २८६, कीटिख तथा मनु की तुलना पृ० २८७, पुनः पुनः में स्त्रियों का पुनर्विवाह : पुनर्भू का स्वयं पृ० २८९, वर्तमान समय में तलाक पृ० २९४, पाट विवाह के कारण पृ० २९५, विवाह विच्छेद की न्यायनी व्यवस्था की भाँति पृ० २९८, हिन्दु विवाह कानून की तलाक सम्बन्धी व्यवस्था पृ० २९६, विवाह विच्छेद के कारण (१) अविचार पृ० ३००, (२) धर्म परिवर्तन पृ० ३००, (३) गौतमपन पृ० ३०१ (४) कोड़ की बीमारी पृ० ३०१, (५) संक्रामक बीज रोग पृ० ३०१, (६) तलाकसी होना पृ० ३०१, (७) अपत्या होना पृ० ३०२, (८) दुष्क होने के बाद सहवास न करना पृ० ३०२, (९) दाम्पत्य अधिकारों की पुनः प्राप्ति की आज्ञा का पालन न करना, पृ० ३०३, पत्नी द्वारा सहाक प्राप्त करने के बी अन्य कारण पृ० ३०३, तलाक की

सायेंदन-नक्षत्र होने की अवधि पृ० १०६, पुनर्विवाह करने की प्रक्रिया पृ० ३०४ ।

दत्तकी सम्प्राप-आल-विवाह

३०६-३१३

वीरकि युग में आलविवाह की गणना का अभाव पृ० ३०६, धर्मसूत्र व आलविवाह पृ० ३११, आलविवाह का मुख्य कारण—एही विवाह का अग्रवसन पृ० ३१६, आलविवाह के अन्य कारणों की संख्याएँ पृ०, ३१६, वैष्णवीय की गणना पृ० ३१६, आलविवाह तथा गण-यन पृ० ३१८, आलविवाह तथा सप्तमागत पृ० ३१८, आलविवाह तथा वीर्य साक्षिण्य पृ० ३२०, वीर्ययुग में आलविवाह पृ० ३२१, गुरुद्वारा द्वारा आलविवाह को प्रोत्साहन पृ० ३२२, आलविवाह की प्रोत्साहन देने वाले कुछ कारण : (१) वीर्य क्षीय का भय पृ० ३२३, (२) वैवाहिक नियमों की कठोरता पृ० ३२४, (३) छत्ती प्रथा पृ० ३२४, गुरु-मध्ययुग के कारण विवाह पृ० ३२४, सामयिक तथा आलविवाह पृ० ३२६, मध्य-युग में अन्य क्षेत्रों में आलविवाह पृ० ३२९, मध्य युग में आलविवाह प्रचलित होने के कारण पृ० ३२७, आधुनिक युग में आलविवाह की हानियाँ पृ० ३२८, आलविवाह की प्रथा दूर करने के कानूनी प्रयास पृ० ३३०, गोरखा कानून पृ० ३३०, वर्तमान समय में आलविवाह का ख़ाते के कारण पृ० ३३२, कानून द्वारा विवाह की आयु बढ़ाने का प्रस्ताव पृ० ३३४ ।

विधवा सम्प्राप-विधवा विवाह

३१६-३४३

विधवा विवाह के विषय की कमिठा अग्रहोर्ष पृ० ३१६, वीरकि युग में विधवा विवाह पृ० ३३६, धर्मसूत्रों में विधवा विवाह पृ० ३३६, राजाधन तथा महाकाय में विधवा विवाह पृ० ३३६, विधवा विवाह के विषय का कारण ३४०, विधवा विवाह के विषय के कारण : (१) धर्मकार्यों की पवित्रता का विचार पृ० ३४१, (२) अन्नसंयोगि कन्या की शाकांता पृ० ३४२, (३) सम्पत्ति की रक्षा पृ० ३४३, (४) सार्वभौम विवाह के नियमों की कठोरता पृ० ३४४, (५) शास्त्रीय शाखाएँ पृ० ३४४, सप्तयोगि विधवाओं के विवाह का विषय पृ० ३४४, मध्ययुग में विधवा विवाह प्रचलित करने के प्रयत्न पृ० ३४३, दनुतन्त्र तथा राजवत्सल के धारा पृ० ३४५, जयसिंह व पञ्चगुप्त कादिक के ध्यान पृ० ३४६, विधवा के कर्तव्य पृ० ३४७, साधुनिक युग में विधवा विवाह पृ० ३४८, विधवाओं की संख्या पृ० ३४८, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर के ध्यान पृ० ३४८, विधवा पुनर्विवाह

कामूय पृ० ३५०, कामूय का स्वरूप पृ० ३५०, कामूय की कतिपय पृ० ३५१, संगम्य में विधवा विवाह आन्दोलन पृ० ३५१ ।

भारतवासी अध्यात्म-संन्यासी प्रथा तथा नियोग

३५३-३७५

ऐतिहासिक विवरण की तीन अवस्थाएँ पृ० ३५३, वैदिक युग में सती प्रथा का प्रभाव पृ० ३५४, सती प्रथा की पहली घटना पृ० ३५५, सती प्रथा का विरोध पृ० ३५८, कश्मीर में सती प्रथा के उदाहरण पृ० ३६०, निजामेन्दों की शास्त्री पृ० ३६०, भूमिज जातकों द्वारा विरोध पृ० ३६१, अहमदनगर की विधि पृ० ३६२, विदेशी मानियों के विवरण पृ० ३६३, सती प्रथा में जान प्रयोग पृ० ३६४, स्वेच्छापूर्वक सती होने के उदाहरण पृ० ३६५, सती प्रथा के विवक्षित होने के कारण पृ० ३६६, सती प्रथा का विरोध पृ० ३६८, नियोग का स्वरूप पृ० ३६८, नियोग के उदाहरण पृ० ३६९, नियोग के निवन्ध पृ० ३६९, क्षेत्रज पुत्र की अपेक्षा पृ० ३७१, नियोग की प्रथा के प्रचलित होने के कारण पृ० ३७२, नियोग का विरोध तथा इस प्रथा का भूत होना पृ० ३७३ ।

भारतवासी अध्यात्म-संन्यासी

३७६-४०२

वैदिक युग में एक-विवाह की प्रथा पृ० ३७६, बहुविवाह के प्रयोग पृ० ३७७, वाङ्मय पद्यों में बहुभार्यता पृ० ३७७, बहुभार्यता तथा धर्मसूत्र पृ० ३८०, बहुभार्यता तथा कौटिल्य पृ० ३८१, बहुभार्यता तथा स्मृतिशास्त्र पृ० ३८२, बहुभार्यता तथा समाज पृ० ३८३, पुरु और मृग के उदाहरण पृ० ३८४, बहुभार्यता तथा महाभारत पृ० ३८६, शास्त्रों को विचारों का धारण पृ० ३८७, अंगुष्ठ कर्मों में बहुभार्यता पृ० ३८९, शीर्षयुग में बहुभार्यता पृ० ३९५, अष्टमयुग में बहुभार्यता पृ० ३९५, बालों के कुलीन विवाह पृ० ३९७, कुलीन विवाह की इतिहास पृ० ४०० ।

भारतवासी अध्यात्म-संन्यासी

४०३-४९०

वैदिक युग में बहुभार्यता पृ० ४०३, महाभारत में भीमसेन का उदाहरण पृ० ४०४, भीमसेन की बहुभार्यता के कारण पृ० ४०६, बौद्ध साहित्य में बहुभार्यता पृ० ४०८, धर्मशास्त्र पृ० ४०९, कुमारिल और भीमसेन की व्याख्या पृ० ४०९, धर्मशास्त्र की बहुभार्यता पृ० ४१०, अंतर्गत प्रयोग में बहुभार्यता पृ० ४११, अंगुष्ठ में बहुभार्यता पृ० ४१२, उत्तर अंगुष्ठ में बहुभार्यता पृ० ४१३, बहुभार्यता की प्रथा के प्रचलित होने के कारण पृ० ४१४ ।

भारतवासी अध्यात्म-संन्यासी विवाह विवरण की तीन अवस्थाएँ

४९१-४९४

(१) विवाह का स्वरूप—इसके वैयक्तिक पक्ष की अवस्था पृ० ४९१,

(१६) धार्मिक पक्ष पृ० ४२२, (१७) सामाजिक पक्ष पृ० ४२२, (१८) वैयक्तिक पक्ष पृ० ४२२, (१९) वैयक्तिक पक्ष पृ० ४२३, (२०) विवाह का भविष्य कायदा आला पृ० ४२४, (२१) स्वतन्त्रता पर आघात पृ० ४२४, (२२) कलुषार्थ का महत्त्व पृ० ४२४, (२३) धार्मिक स्वातन्त्र्य पृ० ४२४, (२४) जनसंख्या की वृद्धि की रोकना पृ० ४२४, (२५) वर्ण स्वतन्त्रता पृ० ४२७, विवाह में वर्ण स्वतन्त्रता की सीमा पृ० ४२७, (२६) विवाह की वय का ठीका ठीका पृ० ४३१, (२७) प्रथम विवाह और दीर्घावक प्रेम पृ० ४३२, (२८) अन्तर्जातीय विवाह पृ० ४३४, (२९) विवाह सम्भार में परिचरम पृ० ४३९, (३०) विवाह संस्कार के समय में कमी पृ० ४३७, (३१) पारिवारिक सम्बन्धों के रूप में विवाहों का महत्त्व कम होता पृ० ४३७, (३२) विवाहों के समय में कमी पृ० ४३७, (३३) विवाह विच्छेद की प्रवृत्ति पृ० ४३८, (३४) पत्नी के अधिकारों और विधियों में परिचरम—अनुचरी से सहचरी बनना पृ० ४४०, (३५) वायपक्ष अधिकारों में विधायता की समाप्ति पृ० ४४५, उपराष्ट्र-हिन्दू विवाह का भविष्य पृ० ४४५ ।

अथ परितोष-प्रस्ताव के प्रसिद्ध ग्रन्थों तथा लेखकों का नामकाल
जोनाथान तालिका

४४५-४४७

सहस्रकाल ग्रन्थ सूची

४४५-४४९

१. आकर ग्रन्थ पृ० ६, २. पूज ग्रन्थ : (क) वैयक्तिक आकरग्रन्थ पृ० ६, (ख) गुप्त तथा धर्मग्रन्थ पृ० ९०, (ग) बीज आकरग्रन्थ पृ० ९१, (घ) राजाधन महाभारत पृ० ९१, (ङ) कर्तव्य पृ० ९२, (च) स्मृतियों की टीकाएँ तथा विवरण ग्रन्थ पृ० ९२, (छ) विद्वत् के जन्म ग्रन्थ और काव्य पृ० ९३, ३. विवाह विधायक ग्रन्थ : (क) हिन्दू विवाह विधायक ग्रन्थ—(अ) सामान्य एवं कलुषी ग्रन्थ पृ० ९४, (आ) हिन्दू विवाह की आधुनिक प्रवृत्तियों का विशेषण करने वाले ग्रन्थ पृ० ९७, (इ) विवाह विधायक सामान्य ग्रन्थ पृ० ९८, विवाह सम्बन्धी हिन्दी पुस्तकें पृ० ९०, अन्तीय भाषाओं के ग्रन्थ (क) गुजराती पृ० २०, (ख) मराठी पृ० २१ ।

४४३

अनुक्रमिका

४४९

संक्षिप्त लेख-सूची

(क) संस्कृत और पालि ग्रंथ

- [illegible]

पौ० पु०—जैमिनीय सुख

सूत्रं वाच—साधकस्य साधनम्

नै. मा. ०—लैसिटीयाएण्डर

६० बा०—सैलरीय माह्यज

सं० सं०---ऐतिहासिक संस्कृत

४० अ०. २२०—ब्रह्म-संस्थिति

६०. सी०, बपी०—दुलह-भीगाभा

का०—वामनाथ, श्रीमत्पादसङ्गत

भा० प्र०—काश० कायस्थेभ्यः, एषमवगच्छत

■ टी० वद० --- श्रीपद्मनिषा

४३० मि०—वी०भट्टिनाथ

॥ ५६ ॥

मा. सं. — नाटकीय संविधान

मासक. मा. १५०—मासक-स्थिति

नि०—निकल वास्तुकादं

नि० सि०—निर्णयसिग्ध

प० पु०—अथ नृपति

नमः ॥ — परमहंस-संज्ञितः

ब.पु. मा. - गणराज्यमणि की नाभधाधार्यद्वारा दीक्षा

पारि० श० श्रु०—पारस्कर ब्रह्मसूत्र

मा० पु०-गर्गिभिसुख

पृ०—५५५

काल ०-वापसग्री

बहुं च—बहुस्य चि

શ્રી. દ. સુ.—શીલાચરણ ઇર્ષમુલ

का०—बाह्यज

भाग १ पु०—भागवत पुराण

म० पू०—सत्यं पुराणं

महाभा०—महाभारत

म० नि०—महेश्वर निवास

स०, मनु०—मनुस्मृति

मा० गृ० मू०—मानव गृह्यसूत्र

मार्कः पु०—मार्कः पुराण

भा.प्र.०, पी.०—भा.प्र.० भा.प्र.०

मिन्ना *—मिताक्षरा

वेपथुः—संपादितः

पै० ग०—मैत्रयणी साहित्य

मा०. पाठः—*नानावर्ण्यं* कर्मणि

[illegible]

सौम्य गुरुः सुखं वापि न विहाति भक्तान्

શ્રી ૧૦ મું—શ્રીગાંધી ધર્મસુત્ર

■ १५५ ■

बाल विज्ञान - बाल मनोविज्ञान - सामाजिक

सि० नि०—विद्याद-विद्यामणि

वि. १७—विजयपिठम्

वि. सं. १५—विष्णु गुह्य

विद्यार्थी :- प्रमाणित छात्र ।

विद्यया ०—+ विद्यया मयमि

श्री ८ वि०—श्री गणेशोदय

पिडा ५—विशेष विवरण

我们——中国前进的先锋

本報社址：廣州西關第十甫路

图 2 模型——数据模型 模型数据

भा.० भा.०—श्रीमान् बाबूसाहेब

ପାଠ୍ୟ ପାଠ୍ୟ—ଆଦ୍ୟାୟ ଆଦ୍ୟାୟ

भा० प्री०—सावर भाण्ड

सभी — अङ्गलैसिमर

॥६॥ श्री गुरुभ्यो नमः—सकलं कुरुष्व

मं० कौ०—संस्कार कौस्तुभ

सं० वि०—समस्तनिकाय

पृ० २० प्रा०—भंडारद रत्नमाला

४० वि०—महत्त्वही विज्ञान

म-सवि

सम्यक् •—सम्यक् चरितिका

॥ ४० ॥—हयं नरिणः

हि० से० न०—हरिप्रसादजीव महाराज

(ख) साधुनिक धर्म

बार्बा० प० ६०—सावित्रीसंस्कारन भर्त्तु अथ इतिहास की रिपोर्ट

इ० ए०—इतिहास ऐतिहासिक

इमा० वि०—इमा०संस्कारसंस्कार इतिहास

इमा० गी० सा०—इमा०संस्कारसंस्कार भाग संस्कार सा०संस्कार

मुनि० इ०—मुनि०संस्कार इतिहास

मी० ई० सा०—मी०संस्कार सन्त संस्कारसंस्कार भाग सा०संस्कार, संस्कारसंस्कार, संस्कार

मी० हि० प०—हि०संस्कार भाग संस्कारसंस्कार

मी० हि० सं०—मी०, हि०संस्कार हि०संस्कार संस्कार संस्कार

मी० हि० सं०—मी०, हि०संस्कार हि०संस्कार संस्कार संस्कार

मी० हि० सं०—मी०, हि०संस्कार हि०संस्कार संस्कार संस्कार

मी० हि० सं०—मी०, हि०संस्कार हि०संस्कार संस्कार संस्कार

मी० हि० सं०—मी०, हि०संस्कार हि०संस्कार संस्कार संस्कार

मी० हि० सं०—मी०, हि०संस्कार हि०संस्कार संस्कार संस्कार

मी० हि० सं०—मी०, हि०संस्कार हि०संस्कार संस्कार संस्कार

मी० हि० सं०—मी०, हि०संस्कार हि०संस्कार संस्कार संस्कार

मी० हि० सं०—मी०, हि०संस्कार हि०संस्कार संस्कार संस्कार

(ग) कानुनी सभ्य

अभा०—अभा०संस्कार की इतिहास का रिपोर्ट

अभा० सा० प०—अभा०संस्कार का संस्कार

अभा० प० वि०—अभा०संस्कार का रिपोर्ट

अभा० सा० वि०—अभा०संस्कार का रिपोर्ट

अभा०, कान०—अभा०संस्कार का रिपोर्ट

अभा० सा०—अभा०संस्कार का रिपोर्ट

अभा० सा०—अभा०संस्कार का रिपोर्ट

अभा० सा०—अभा०संस्कार का रिपोर्ट

अभा०—अभा०संस्कार का रिपोर्ट

अभा०—अभा०संस्कार का रिपोर्ट

अभा०—अभा०संस्कार का रिपोर्ट

अभा०—अभा०संस्कार का रिपोर्ट

अभा०—अभा०संस्कार का रिपोर्ट

हिन्दू विवाह का स्वरूप, प्रयोजन और उद्गम

विवाह और परिवार मानव जाति में आत्मसंरक्षण, वंशवृद्धि और आतीत जीवन के शासक की बनाने के प्रधान साधन हैं। मरणादूर्ध्व मनुष्य ने इससे सम्पत्ति प्राप्त की है। मनुष्य सर्वत्र जीवित रहने की आकांक्षा रखता है, उसने मृत्यु पर विजय पाने के लिए अर्वाच्य काल में अनेक संसाधन बनाये, कर्मों की खोज की, वैज्ञानिक आज की ऐसे प्रयत्नों में संलग्न हैं, किन्तु अब तक इसका विवाह और परिवार से अधिक सुरत, सुन्दर और उत्तम उपाय नहीं खोजा जा सका। ब्राह्मपुराण में यह ठीक ही कहा गया है—
देवता जन्तु द्वारा समर हुए और ब्राह्मणानि मनुष्य पुत्र द्वारा।^१

विवाह द्वारा मनुष्य सन्तान के माध्यम से अपने को फैलावा और समर बनाता है। इसलिए संस्कृत में बच्चों के लिए संतति, सम्पत्ति, तनय यादि शब्दों का प्रयोग होता है। ये सब शब्द विस्तारवाची वस्तु धातु से बनते हैं। पुत्र के रूप में पिता का ही पुनर्जन्म होता है क्योंकि पिता के अन्त-अंग और हृदय से प्राप्त अर्णों से पुत्र का उत्पत्ति होती है।^२ मनुष्य को यदि अनिवार्य मृत्यु का दुःख है तो इस बात का अवश्य अन्तोष है कि विवाह और परिवार द्वारा उसने एक ऐसा हल ढूँढ़ लिया है, जिससे वह अपने अंगों के रूप में अनन्त काल तक जीवित रहेगा। मानव समाज की सत्ता और उत्तम विवाह और परिवार पर अवलम्बित है; अतः विवाह को हमारे समाज की केन्द्रीय संस्था माना जाता है।^३

विवाह का अर्थ और अलक्षण

विवाह शब्द का शाब्दिक अर्थ है—निश्चित रूप से बहुमं अर्थात् बहु को विधोक्ता के साथ (पितृगृह से पतिगृह) के आना। मिसमिश के मतानुसार यह विशिष्टता की

^१ ब्राह्मपुराण १०४।६ अमृतमेवमया देवाः धृतेन ब्राह्मणमयः। आत्मेनैव (३।४।१०) पुत्रों द्वारा अमृतत्व प्राप्ति का उल्लेख है—अजामिराणे मनुताममस्याम्। मि० सं० सं० १।४।४६।१

^२ निबन्ध ३।४

^३ एमसाहसोपोदिधा मातु रिजीवन एवम् ईधिमत् ४३५३।

^४ राजकल्पद्रुम, अनुबं काण्ड, सू० ४२७—'विवाहः निश्चितं बहुमम्।' मि० सं० सं०

को तथा उनकी सम्पत्ति को कुछ अधिकार और कसौथ प्रदान करता है।^{१०} ये अधिकार मुख्यतः धर्म और आर्थिक होते हैं तथा सम्पत्ति से सम्बन्ध रखते हैं। समाज विवाह द्वारा पति-पत्नी को न केवल पति का अधिकार देता है, किन्तु उसके साथ ही पति को पत्नी तथा सम्पत्ति के संरक्षक पंथन के लिए बाध्य करता है।^{११} पति के पत्नी तथा सम्पत्ति पर कुछ अधिकार होने जाते हैं।^{१२} प्रायः विवाह समाज में नवजात प्राणिमों के ज्ञान का निर्धारण करता है। पिता की सम्पत्ति का उत्तराधिकार अधिकतर समाजों में वैध बिराहों में उत्पन्न सम्पत्ति को ही दिया जाता है। विवाह द्वारा पति का अधिकार प्रायः सम्पत्ति तक सीमित कर दिये जाते हैं। इससे समाज में धर्म सम्बन्धों का बहुत कुछ नियन्त्रण हो जाता है। इस प्रकार विवाह परिवार की स्थापना के लिए स्त्री-पुरुष का भौतिक, कानूनी और नैतिक सम्बन्ध है। यह संस्था मानव समाज में प्रधान रूप से दो प्रयोजन पूर्ण करती है—नर-नारी सम्बन्ध का विधायन और समाज में सम्पत्ति की स्थिति का निर्धारण।

विवाह ■ विभिन्न पक्ष

विवाह का जीवशास्त्रीय (Biological) प्रयोजन संतति-विकास और जाति-संरक्षण है और उसका उद्भव उच्च प्राणिमों में सम्पत्ति के दीर्घ काम तक जाणा-पिता द्वारा संरक्षण की आवश्यकता से हुआ है।^{१३} किन्तु इसके साथ ही विवाह में जनक-पुत्रों और विभिन्न पक्षों का सम्मिलन हुआ है, इससे वह एक दुन्दुभ बहुवर्णीय संस्था बन गया है। विवाह के इन विभिन्न पक्षों में वैयक्तिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, कानूनी और सांस्कृतिक अनेक अन्तर्बन्धीय एवं बहुलक्षणीय हैं और विवाह का स्वयम् अन्तर्बन्ध के लिए आवश्यक है।

वैयक्तिक (Individual) दृष्टि से विवाह पति-पत्नी की पूर्णता, विकास और सुख के लिए महत्वपूर्ण माना जाता है। मनुष्य सामाजिक प्राणी है, एकलकी जीवन एककी प्रवृत्ति के अधीन है, उसे जीवन यात्रा चलाने के लिए एक साथी की आवश्यकता अनुभव होती है, इसके बिना वह अपना जीवन नीरस समझता है। युष्ता-पण्यक उपनिषद् (१/४)१-३) के कथन पर है कि आरम्भ में केवल पुरुषाकार मात्रता

८ वेस्टमार्क-ए कार्ट हिस्टरी ऑफ मैरिज (चंडर १९२६) . पृ. १

१० हरिवंश-हिन्दू परिवार नीमांश, पृ. १२१-२

११ हिन्दू समाज में पति के पत्नी और सम्पत्ति पर अधिकारों के लिए २० हिन्दू परिवार नीमांश, पृ. १००-१३०, पृ. १८२ अनु०

१२ वेस्टमार्क-ए कार्ट हिस्टरी ऑफ मैरिज पृ. २-३, हरिवंश-हिन्दू परिवार नीमांश, पृ. १०-१२

था, उसने सभी-शक्ति अमरमोक्षन का आत्मा से त्रिषु दुर्भेद पदार्थ नहीं देता । उसने स्वयं नहीं किया, अतः कोई व्यक्ति एकाकी स्वयं नहीं करता । उनमें दूसरे (साथी) की चाह थी, उसने उसी आत्मा का दो भागों में विभक्त किया, वे पति-पत्नी बने^{१३} । बसुतः स्त्री-पुरुष पृथक् स्वरूप से संसार का ओवी-नानी क्षेत्रों में आगम को अन्तर्ग्रहण करते हैं, किन्तु मिलकर सांसारिक कष्टों को अग्निवा प्रसन्नता के साथ सह सकते हैं और जीवनमार्ग में सुखपूर्वक घूरी कर सकते हैं । समाज में पति-पत्नी को एक ही रूप के दो पहलुने कहा गया है, जिस प्रकार बिना तार के बीजा नहीं होते, वह वे रहित रूप नहीं होता, उसी प्रकार पतिहीन स्त्री का जीवन सुखमय नहीं हो सकता ।^{१४} समाज की अनेक आकांक्षाएँ और अभिलाषाएँ विवाह द्वारा समाप्त हो जाती हैं । उन्हें यह समीचीन होता है कि उनके न रहने पर भी समाज उनका नाम और कुछ ही सम्पत्ति की सम्पत्ति रखेगी, वे जिन मामलों को नहीं कर सकते, उन्हें मण्डप छोड़ें, उनकी सम्पत्ति की अक्षयधिकारिणी बनेगी, मुद्रावस्था में अमरमय देखें । हिन्दू समाज में वैदिक युग में यह विश्वास प्रचलित है कि पत्नी अनुमन का भावा अक्ष है, अनुमन वह एक अध्यात्म राजा है जब तक वह पत्नी प्राप्त करके सम्पन्न नहीं होकर रहता है ।^{१५} पुरुष प्रकृति के बिना और भिन्न शक्ति के बिना अपूर्ण है ।

विवाह एक धार्मिक सम्बन्ध भी है । हिन्दू समाज में वैदिक युग में ऐसा समझा जाता है । अतः प्रकार के साक्षात् हिन्दू विवाहों में वे पहले बार प्रभार के धर्म विवाहों को ही समझते हैं जो वे उत्तम माना गया है । आगे यह बताया जागा कि हिन्दू समाज में जिन कारणों से विवाह एक धार्मिक सम्बन्ध है । विवाह का धार्मिक रूप हिन्दू समाज में ही नहीं किन्तु अनेक समाजों और जगों में पाया जाता है । उदाहरणार्थ, मानीस धर्म और रोम में भी स्थिति थी । म्यूरीय के जगों में हिन्दुओं और यूनानियों के समाज आरम्भिक दौर में भी विवाह एक धार्मिक कर्तव्य था, अपने पूर्वजों के तथा अपने प्रति यह एक कर्तव्य था । इसका यह विश्वास था कि परलोक में सुखपूर्वक का सुखी रहना इस बात पर अवलम्बित है कि उनका मृतक-संस्कार धर्माधिकारी ही तथा उनकी आत्मा की शक्ति के लिए उन्हें अपने जगों की प्रार्थनाएँ, भोज तथा यैत बार-बार ध्यानमय

१३ सायबन में (मिनीसत ५।१५, ५०, २२-३) में यह वर्णन है कि आशामु ने कहा कि वह अच्छा नहीं है कि अनुमन मकेला रहे, मैं उसके लिए एक साथी स्वयंसेवा । उसने आशम को गहरी भीष में सुलाकर उसकी पत्नी की हड्डी से हड्डी की बनाया ।

१४ अ. २३. २।३६।२६

नातमीं बाकते और नातमी बिधते स्वः ।

नापतिः मुक्तसेत या स्वादिपि रातराज्या ।।

१५ शास्त्र शास्त्र ३।२।१।१०

विधायी रहे। अतः उसका सर्वोपरि कर्तव्य यह था कि वे अपनी पारिवारिक पूजा के साधन को बनाये रखें।^{११}

भूमिधर्मों की एक धर्मभेदिता ब्रह्म जन आश्रम के अनुसार विवाह से बनने वाला इष्टाये जैसा अपनायी सम्पत्ति प्राप्त था, क्योंकि वह "बड़ी और पत्नी-भूतों" के ईश्वरीय भवेन का संग करता था। २० वर्ष के अधिक आयु के अधिपति व्यक्ति को शादी के लिए बाध्य किया जा सकता था।^{१२} इस्लाम में विवाह एक सौदागी संधि (Civil contracts) होते हुए भी अनिवार्य धार्मिक कर्तव्य है। एक स्त्री के अनुसार व्यक्ति आधी घर के पैसे अपना भाग्य धर्म धूरा कर लेता है। हजरेत मुहम्मद ने एक बार एक पुरुष से उसकी शादी के बारे में पूछा। पक्षपातपूर्ण उत्तर मिलने पर उन्होंने दूसरा प्रश्न यह किया कि क्या तुम स्वयं हो। उसका स्वीकारात्मक उत्तर मिलने पर पैगम्बर ने कहा कि तब तुम स्वयंसेवक पैतान के भाई हो, क्योंकि तुम में जो अधिपति है वे सबसे अधिक दुष्ट हैं। ईतान के पास सम्पत्ति स्त्री-पुरुषों को दूधित करने के लिए अधिपति रहने से अधिक प्रभावशाली कोई दूसरा अस्त्र नहीं।^{१३} विवाह का धार्मिक रूप इसके कानूनी रूप से अधिक बल और सदाय सम्पन्न होता है, क्योंकि पिछले प्रकार में विवाह धार्मिक सम्बन्ध होता है, किन्तु पहले प्रकार का सम्बन्ध देवताओं की भाँती से अधिक सम्मीर और पवित्र विधि से होने वाला स्थायी आध्यात्मिक सम्बन्ध होता है। हिन्दू समाज में विवाह प्रचार कर्म से इसी प्रकार का एक धार्मिक सम्बन्ध माना जाता है।

विवाह का एक सामाजिक पक्ष भी है। किसी भी समाज में विवाह में अपना स्थायी बंधन करने की क्षुभी प्युट गयी होती। अक्षरभरा से सम्बन्ध तथा विशिष्ट व्यक्तियों के व्यक्तियों की परस्पर विवाह नहीं करने दिया जाता। अग्रज-गमन (Local), अहिंसा (Exogamy), अन्तर्विवाह (Endogamy) के नियमों का पालन अगम्य प्रत्येक समाज में आवश्यक है। इन बन्धनों के अतिरिक्त प्रत्येक समाज विवाह द्वारा समुदाय की उन्नति और भावना पर भी संकुश करता है। विवाह एक धार्मिक बन्धन भी है। प्रकृति से तथा उससे कुछ समय बाद तक अत्यन्त निर्बल तथा कार्य करने में असमर्थ होने के कारण पत्नी को पति के अधस्तन की आवश्यकता होती है, इस कारण दोनों में अग्र-विकास होता है। पति को पत्नी के तथा समाज के भरण-पोषण का दायित्व लेना पड़ता है। महाभारत के अर्थों में पत्नी का पालन करने के कारण वह

१२ स्मृतिक—हिन्दुस्तानी इंदुप्रवास हू की प्राप्ति ली आर शीम, पृ० २३-४

१३ अक्षरभरा-भा० हि० ३०, पृ० ४०

१४ लेन-अरेबियन सोसायटी इन दी निजल एजेन्स (तर्क १५५१), पृ० २२१

पति और धरण करने के कारण मर्त्य कहलाता है।^{१९} विवाहाय उपाधिपत सन वन उत्तक वीर पुत्रों का ही अधिकार माना जाता है।

विवाह का एक कानूनी पक्ष भी है। परिणय ग्रहणन मात्र नहीं है। किसी भी समाज में किसी नर-नारी को उस समय तक संयुक्त रूप में रहने तथा सम्मान उत्पन्न करने का अधिकार नहीं दिया जाता, जब तक कि इसके लिए समाज की स्वीकृति न हो। और यह स्वीकृति कानूनी तथा कर्तव्यव्यवस्था विधियों के द्वारा करने से तथा विवाह से उत्पन्न सम्मान तथा इसके वापिसों को स्वीकार करने से प्राप्त होती है।^{२०} कानून का अभिप्राय यहाँ व्यवस्थापिता परिषद् द्वारा पाके भित्ति कानून नहीं, किन्तु कानून की ही भावना रखने वाली सामाजिक बंधनों और परम्पराएँ हैं, जिनके अनुसार पति-पत्नी के दाम्पत्य, आर्थिक, धार्मिक तथा अन्य सभी प्रकार के सम्बन्धों का, नियन्त्रण होता है। अनेक आधुनिक समाजों में विवाह नर-नधु की सहमति से होने वाला विधु कानूनी सम्बन्ध (Legal contract) माना जाता है। किन्तु यह इस दृष्टि से अन्य एक प्रकार के सम्बन्धों या संधियों (Contracts) से भिन्न है कि अन्य संधियों की बातें छेद करने वाले अपनी इच्छा से तय करते हैं, किन्तु विवाह के सम्बन्ध और वास्तव नर-नधु की सहमति पर अवलम्बित नहीं होते, वे सामाजिक परम्परा अथवा कानून द्वारा निर्धारित होते हैं।

सांस्कृतिक दृष्टि से विवाह किसी समाज की परम्पराओं के संरक्षण और स्थितिक के निर्माण का महत्त्वपूर्ण कार्य करता है। विवाह द्वारा दत्ते वाले परिवार में बच्चा अपने समाज में आचार-व्यवहार, नीति-नीति, आर्थिक एवं नैतिक विषयों और आदर्शों से परिचित होता है, उन्हें सीखता है और अपने को उन आदर्शों की अनुकूल भावे में ढालता है। इस प्रकार नयी पीढ़ी पुरानी पीढ़ी से अपने सांस्कृतिक धर्म को ग्रहण करती है और उसके उत्तरदायी को बनाये रखती है।

उपवृत्त प्रदान पक्षों के अतिरिक्त विवाह के नैतिक, मनोवैज्ञानिक, धार्मिक, धार्मिक अर्थका वहन है। इस पुस्तक में विवाह के सामाजिक पक्ष का ही संक्षिप्त निर-धन किया जायगा। अन्य समाजों की भाँति, हिन्दू समाज में विवाह के सम्बन्ध में अनेक नियम बनाये हैं। यहाँ मुख्य रूप से इन्हीं का वर्णन किया जायगा।

विवाह विधक नियम—हिन्दू समाज में प्रचलित विवाह सम्बन्धी विधियों की संख्या बहुत अधिक है। समाजशास्त्र की वर्तमान पद्धति के अनुसार इन्हें निम्नलिखित मुख्य वर्गों में बाँटा जा सकता है—

(१) नर-नधु के चुनाव के नियम—विवाह करने से पहले नर के लिए

१९ अश्वमेध १।१०४।३१ आर्याया नरणाद् वरतां पातनाम्ब पतिः स्मृतः।

२० ब्रह्म. विद्या, खं. १२, पृ० ३३०

कहू के निर्वाचन में बहिर्विवाह (Exogamy) और अन्तर्विवाह (Endogamy) के नियमों का ध्यान रखा जाता है। हिन्दू विवाह में वास्तविक व्यवस्था के अनुसार बन्धु का गोत्र घर के भीतर से मिल होना चाहिए और घर-बन्धु वर्जित पीढ़ियों के भीतर नहीं होने चाहिए। घर के गोत्र से बाहर घर वर्जित पीढ़ियों से बाहर विवाह करने के ये नियम बहिर्विवाह व्यवस्था बहिर्विवाही नियम (Exogamous rules) कहलाते हैं। इसी प्रकार घर-बन्धु के वर्णभेद में इस बात का भी ध्यान रखा जाता है कि वह घर के वर्ण या जाति की ही होनी चाहिए, विवाह करने वर्ण या जाति के विभिन्न सामाजिक वर्गों के भीतर ही होना चाहिए, यह अन्तर्विवाह व्यवस्था अन्तर्विवाही नियम (Endogamous rules) कहलाते हैं। ऊपर से देखने में इन दोनों नियमों में विरोधाभास प्रतीत होता है, किन्तु अगले अध्याय में यह बताया जायगा कि ऐसा नहीं है। एक भ्रष्ट विभिन्न सामाजिक वर्ग अनेक छोटे बहिर्विवाही वर्गों में बँटा होता है, इन वर्गों का प्रत्येक व्यक्ति अपने वर्ण से बाहर विवाह करता हुआ भी अपने सामाजिक वर्ग के भीतर ही विवाह करता है। उदाहरणार्थ, ब्राह्मण वर्ग के व्यक्ति ब्रह्मचर्य, विधवाधिक, प्रव्रत, भ्रष्टाचार आदि अनेक गोत्रों में विभक्त हैं (वे० प्रसन्न आश्रम)। बहिष्कृत गोत्र वालों का विवाह यद्यपि इस गोत्र से बाहर के व्यक्तियों के साथ होना, किन्तु वे बहिष्कृत ब्राह्मण वर्ग के ही होते हैं।

(२) स्त्री प्राप्ति के विधायन—दूसरे प्रकार के वैवाहिक नियम विवाह सम्पन्न करने अथवा दूसरे शब्दों में बन्धु प्राप्त करने (घर-परिचर) की पद्धतियों से सम्बन्ध रखते हैं। वर्तमान समाजशास्त्री इनके तीन भेद मानते हैं—(१) कर्षपूर्वक हरण (Capturo), जब बन्धु को कर्षपूर्वक हार गार भाग्य प्राप्त। (२) क्रय (Purchase), कन्या के पिता को दूल्हा देकर बन्धु को खरीदा जाय। यह बरीदना मुख्य प्रकार की हो सकती है और घर बन्धु के घर घर सेवा करने की बन्धु को उपाजित कर सकता है। (३) तीसरे प्रकार बन्धु की सहमति (Consent) से विवाह का सम्पन्न होना है। प्राचीन हिन्दू धर्मशास्त्रों में उल्लिखित तीनों भेदों को क्रमशः 'उग्रार', 'आहूत' और 'गान्धर्व' के नाम से संज्ञित किया गया है। इनके अतिरिक्त पत्नी प्राप्त करने की पवित्र धर्म्य विधियाँ ब्राह्म, वेद, बार्ह, वाक्यगण, तथा वैशाख इस प्रकार कुछ जाठ विधियाँ बतायी गयी हैं।

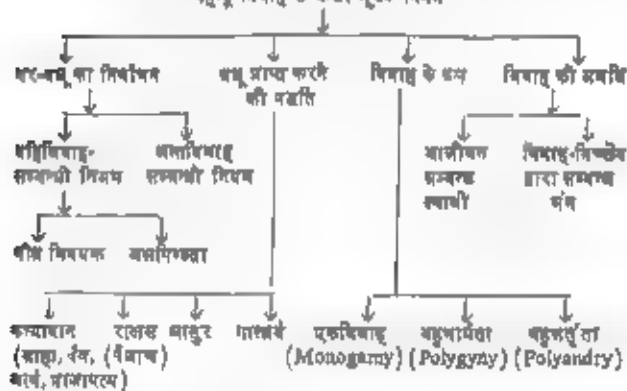
(३) विवाह के विभिन्न रूप—तीसरे प्रकार के नियम विवाह के विभिन्न रूपों से सम्बन्ध रखते हैं। ये रूप मुख्यतः तीन प्रकार के हैं—(क) एक-विवाह (Monogamy)—इसमें एक पुरुष का सम्बन्ध एक स्त्री के साथ होता है। (ख) बहु-साध्वी (Polygamy)—यह एक पुरुष के साथ अनेक स्त्रियों का सम्बन्ध या विवाह होता है। (ग) बहुवर्तुल्य—इसमें एक ही स्त्री के अनेक पति होते हैं। ये सब रूप पति या पत्नी की संख्या पर आधारित हैं। एक-विवाह (Monogamy) के अतिरिक्त दोष दोनों रूपों में पत्नी या पति संख्या में अनेक होते हैं, इनका सामान्य नाम बहु-विवाह

(Polygamy) है। हिन्दू समाज में प्राचीन और कर्वाचीन काल में बहुपत्नीता की प्रथा के बहुत बड़े उदाहरण मिलते हैं, अतः हिन्दू में बहुविवाह (Polygamy) शब्द का अर्थोप-मायः बहुपत्नीता (Polygamy) के लिये होता है, पर वैज्ञानिक दृष्टि से बहुपत्नीता या बहुपत्नीयता का ही प्रयोग वांछनीय है।

(४) चौथे प्रकार के नियम वैवाहिक सम्बन्ध की अवधि के सम्बन्ध रखते हैं। यह अवधि कुछ समाजों में दोनों पक्षों के लिये अनुपधर्मता बनी रहती है, अतः विवाह सम्बन्ध अविवच्छेद्य समझा जाता है। सर्व १९५५ तक भारतीय हिन्दू विवाह इसी प्रकार का था। सम्प्रदायी निम्नछान अवस्था में पहले काफी अनेक जातिपों में यह सार्वभौम प्रथा है, रोमन कैथोलिक चर्च विवाह की अविवच्छेद्य मानता है। इसके विपरीत कुछ समाजों में विवाह अल्पकालिक सम्बन्ध होता है, स्वयं प्रथम तलाक द्वारा गति-पत्नी या सम्बन्ध कुछ बला में बूझ जाता है, जैसे जलदी अमरीका के दृष्ट संस्कारों में। जिन समाजों में विवाह-विवच्छेद्य की व्यवस्था है, वहाँ इसे पर्याप्त करने के लिए अनेक नियम अपनाये जाते हैं। कुछ विशेष कारण उपस्थित होने पर पति पत्नी को, पत्नी पति को तलाक दे सकती है, दोनों की पारस्परिक सहमति से भी विवाह-विवच्छेद्य हो सकता है, यूरोप के अनेक देशों में तथा भारत के १९५५ के विधेय विवाह कानून में ऐसी व्यवस्था है। इसके अतिरिक्त समाज पति-पत्नी के पारस्परिक सम्बन्धों तथा भाला-पिता और सन्तान के सम्बन्धों के दिव्य में भी अनेक नियम निर्धारित करता है।

उपर्युक्त चार प्रकार के वैवाहिक नियम निम्न तालिका में प्रदर्शित किये गये हैं, इसमें विवाह सम्बन्ध की विधि में स्पष्टता की दृष्टि से केवल चार पक्षों का ही उल्लेख

हिन्दू विवाह सम्बन्धी मुख्य विषय



किया गया है, क्योंकि साहू, ईश, भार्गव और राजापरम के प्रकारों का प्रयोग उत्पन्न सम्पादन है, वैशाख और राक्षस का ही विशिष्ट क्रम है : इन सब की जाने विशेषता की मांगी : अतः यद्यपि पश्चिम के समाज-शास्त्रियों ने विवाह सम्पादन सबका समुद्र प्राप्ति की तीन मुख्य विधियाँ ही बतायी हैं, किन्तु हिन्दू समाज की दृष्टि से उत्तरी चार विधियाँ वाली वाली चाहिए ।

पूतरे सरनाम से इनका सम्पादन वर्णन किया आसगा, यहाँ पहले हिन्दू विवाह का पधार्थ का समर्थन के लिए उनके उद्देश्य और उद्देश्य पर विचार किया आसगा :

विवाह के प्रयोजन

हिन्दू धर्मशास्त्रों के अनुसार विवाह के तीन मुख्य प्रयोजन—धर्म का पालन, क्षमा का प्राप्ति और रति हैं । आपस्तम्ब धर्मसूत्र (२।१।१२) ने केवल पहले दो प्रयोजनों का उल्लेख किया है और कहा है कि इनके पूरे हो जाने पर दूसरा विवाह नहीं करता चाहिए । केवल आपस्तम्ब की प्राप्ति के लिए विवाह अवश्य समझा जाता था । आपस्तम्ब (१।१।१२।१२) उपर्युक्त दो प्रयोजनों की पूर्ति हो जाने के बाद विवाह करने वाले व्यक्ति के लिए छह मास तक गधे की आस भोज कर भिक्षा मांगने के छोड़ देव की व्यवस्था करता है । समु (२।२२) के कथनानुसार ये सब बातें स्त्री पर निर्भर होती हैं—पुरुष की प्राप्ति, धर्मधर्म, सेवा, प्रसूता, उत्तम रति तथा पुत्रों द्वारा अपनी सदा पितरों की स्वर्ग प्राप्ति है । याज्ञवल्क्य (१।४८) के मतानुसार विवाह के निम्न-लिखित प्रयोजन हैं : (१) पुत्रपौत्रादि द्वारा रत्न का निस्तार, (२) अभिहोत्रादि ब्रह्मों द्वारा स्वर्ग की प्राप्ति । विष्णुसंस्कार ने धर्म की तथा पुत्रों की प्राप्ति के दो प्रयोजनों पर बल देता हुए रतिफल का लौकिक लाभ के रूप में वर्णन किया है ।

(१) धर्म का पालन

(क) पत्नी का समुद्र—हिन्दू विवाह का पहला उद्देश्य आपस्तम्ब धर्मसूत्र के अनुसार धर्म का पालन है । यह तीन प्रकार से होता है, सब धर्म कामों में पत्नी के सह-योग द्वारा, प्रमुख धर्म के पालन से तथा मितु-मृत्यु को उतारने से । भारतीय विचारधार के अनुसार वैदिक युग में धर्म कार्य के लिए पत्नी को हिन्दू धर्माध्य में आवश्यक सबका जाना था, उस समय यज्ञ करना प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य था और ये सब धर्मों के बिना नहीं हो सकते थे । तीर्थाटन साहस (२।२।२।१।१।३।३।१) के अंत में अपलीन व्यक्ति को यज्ञ करने का अधिकार नहीं है । वेदविधि ने भीमसाधर्म में यह मत स्थापित किया है कि सब धर्मकार्य पति-पत्नी को संयुक्त रूप से करने चाहिए (२।१।१७) । पाणिनि के (४।१।११) अनुसार पत्नी का धर्म ही पति धर्म में समुद्र देने वाली स्त्री है । (परशुराम-वसन्धीये) । कीर्ति का अन्वय यज्ञ तीर्थाटन के अन्वय में सम्पन्न नहीं हो सकता था,

कोई शुभ नहीं है तथा संसार सागर पार करने के लिए और कल्याण सागर के लिए पत्नी के समान कोई पुण्य नहीं है।.....अपनी पत्नी को धात लिये बिना क्षमते तीर्थों में भी आहुति और वास किया है उसी दोष से शुभ्रादे पूर्वज भीष्टे गये हैं। पत्नी ही गार्हस्थ्य धर्म की स्थापिनी है, उसको बिना क्षमते शुभ वासों का अनुष्ठान किया, यह स्पष्ट हो चुम्हारी पत्नी है। जब पत्नी धर्ममे ह्रास से अल तैयार करते देखती है, तो वह अनुभूति के समान मरुत होता है। उसी क्षण को पितर प्रसन्न होकर भोग करते हैं तथा उनकी से उनकी विशेष संतोष और सुखि होती है। अतः पत्नी के बिना किया गया धर्म निष्फल होता है।^{२२} इसके बाद धर्मराज प्रकाश भी अपने घर लौटकर भूकर के साथ धर्म-कर्म करने का उपदेश देते हैं और वीर्य करने पर उसकी तीर्थयात्रा सफल होती है।

मार्कण्डेय पुराण (२१।६८-७३) में त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ, काम) की प्राप्ति के लिए पत्नी पति की सहायक बताती गयी है—“आर्ग्य में त्रिवर्ग प्रतिष्ठित है, उसको बिना पुण्यों द्वारा देखता नहीं, पितरों तथा अतिथियों की पूजा नहीं की जा सकती। स्त्री भी पति के बिना धर्म, काम, अर्थ और सन्तान नहीं प्राप्त कर सकती। अतः त्रिवर्ग की प्राप्ति पति-पत्नी दोनों पर अवलम्बित है।” इसका स्पष्टीकरण भी कथा (अ० ६२) में भी इसी भाव पर धर्म बिना गया है। इसमें एक ब्राह्मण ने राजा से अपनी अधूरी पत्नी का कर्त्तव्य पता लगाने की प्रार्थना करते हुए कहा है कि उसको न होने से निश्चयकों के न होने के कारण धर्म की प्राप्ति हो नहीं है और इससे मेरा पतन हो रहा है। अतः मेरी पत्नी का त्याग करने वाले राजा उसका भी सर्वस्व करते हुए कहा है—समुप्य १५, पितृ धर्म कर्म न करने से अत्युक्त है। साक्षात् है, फिर आपने उसे एक धर्म से छोड़ दिया है, आपने विषय में क्या कहा नाम ? ब्रह्मपुराण (अध्याय १६१) में कहा गया है कि ब्रह्मा ने अपने अक्षर को पति की सिद्धि के लिए दो अर्ग्यों से बाँटा, पूर्वार्द्ध को पत्नी बनाया, पश्चार्द्ध को धर्म के अनुसार गले पत्नी के बिना नहीं हो सकता।

(ब) गृहस्थाश्रम का पालन—हिन्दू समाज में धार्मिक दृष्टि से गृहस्थ धर्म के पालन के लिए विवाह आवश्यक माना जाता है। अत्रवेद और अथर्ववेद में गृहस्थाश्रम का विधान है। मनु (३-२) और याज्ञवल्क्य (१।५२) स्पष्ट रूप से इसका विधान करते हैं। यद्यपि आर्यों की संख्या के सम्बन्ध में धर्मशास्त्रों में पर्याप्त मतभेद है।^{२३} किन्तु

२२ मनुपुराण २ नृसिंहाष्टक, अध्याय ५६, श्लोक ८-१३

२३ इस सम्बन्ध में समुच्चय, विकल्प और वास नामक तीन मत हैं। समुच्चयवादी पक्ष के अनुसार प्रत्येक मनुष्य को यथाशक्त ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और श्रमणा के चारों आश्रमों का पालन करना चाहिए। मनु इस बात का प्रकट घोषक है (४-१.६-१.११-३७, ८०-८८) नि० साखारोपनिषद्—“ब्रह्मचर्य समाप्य गृही भवेत् गृही ब्रह्मा ब्रवी भवेत्, ब्रवी भूमा भवेत्”। ब्रह्मरा पक्ष

गृहस्वास्थ्य की प्रशंसा में सब एकमत हैं। चौतम में इस स्वास्थ्य को अग्य मन्त्र आधमों का मूल और आधार कहा है। बसिष्ठ (८।१६) के मत में गृहस्वास्थ्य मानव के अमान है। मनु (३।७७-८०) ने इसकी महत्ता की विस्तार से स्पष्ट करके हुए कामु से इनकी उपमा दी है, जिस प्रकार पशु को सहारे सब प्राणी पीछे हैं, वैसे ही सब आधम गृहस्वास्थ्य से जीवन धारण करते हैं। जैसे सब नदी-जल समुद्र में जाकर स्थित होते हैं, वैसे ही तीनों आधमों वाले गृहस्थ की सहायता से भिक्षाव करते हैं (बसिष्ठ ८।१३, महाभारत १२।२६६।२६)। तीनों आधमों का बदल करने के कारण गृहस्थ ही देखे आधम है (मनु १।८०)। अतएव मनु ने अक्षय स्वर्ग और मुक्त की इच्छा रखने वालों के लिए इसका पान्न आवश्यक बताया है।

महाभारत में गृहस्वास्थ्य की महिमा का बहुत वर्णन किया गया है। मनु ने बुधिसिद्धि से कहा है कि यदि गृहस्वास्थ्य को एक पकड़ में तथा अग्य तीनों आधमों को दूसरे पकड़े में रखकर सीसा जैसा हो यह उन तीनों के बराबर होगा है (१२।१२।१२)। गृहस्वास्थ्य अन्य आधमों के लिए रास्ता के मुख्य है (१२।२६६।१६), अग्य सब आधम उसमें अवस्थित हैं (१२।२६३।३६)। गृहस्थ धर्म का पान्न करने वाला व्यक्ति ब्रह्मर्षि के समान मनु ही होता (उद्योग पर्व ४०।२३, पितृ बसिष्ठ ७।१३, १०।१९, बौधायन धर्मसूत्र २।२।१)।

महाभारत में केवल गृहस्वास्थ्य की ही वार्त्ता नहीं है, किन्तु उसकी वीक्षा कर

विकल्प का है। इसके अनुसार सब आधमों का पालन आवश्यक नहीं है। यह ऐच्छिक है; ब्रह्मर्षि, गृहस्थ, वानप्रस्थ तीनों से संघात लिया जा सकता है। वीरार्य होने पर ब्रह्मर्षि केनी चाहिए। (मातसोपनिषद् ४—“यहहरेव विर-
मोत्सहरेव मयलेत्”)। यह मत बसिष्ठ (७-३), मनुस्मिन् (३।१), मात० (३।४६), भाष. म. सू. (२।६।२१।७-८, २।६।२२।७-८) को भी मान्य है। तीसरा पक्ष यह भी है, इसमें केवल गृहस्थ आधम ही स्वीकार किया जाता है, वानप्रस्थ और संन्यास को नहीं माना जाता। बौधायन ने (२।६।२६।४२-४३) लिखा है कि कुछ आधम केवल एक ही (गृहस्थ) आधम मानते हैं क्योंकि अन्य आधमों में सन्तानोत्पादन का कार्य नहीं हो सकता। भुति ने अत्रा द्वारा अनुसृत्य प्राप्त करने का (अ० ४।४।१०, तै० सं० १।४।४६।९) तथा तीन ऋषी (तै. सं. ६।३।२०।६) का वर्णन किया है (ऐकान्त्यं त्वाधमं मयमन्त्रावितरेभाम् । प्रसाभिदने अनुसृत्यमयम्, आधमो ये ब्राह्मन्निभिर्भिर्धर्मैर्वापते ब्रह्मर्षेण ऋषिभ्यो योन्येवेभ्यः प्रजया पितृभ्य इति)। गीता में भी (३।१, ३५) इसी प्रकार का विचार रखा है—(ऐकान्त्यं त्वाधमं मयमन्त्रावितरेभाम् गार्हस्थ्यम्)। यहाँ प्रत्यक्ष विद्वान का तात्पर्य भुति के ऐसे जनों से है जिनमें आनन्द यह

शायः यह धारणा जाता है कि गृहस्थाश्रम जीवनप्रधान होने से युक्ति में बाधक है, किन्तु ब्रह्मपुराण (२८।१२-१३) में इस प्रश्न पर विस्तृत विचार करने हुए ब्रह्म ने ब्रह्मवन्ध को यह बताया था कि युक्ति कर्म द्वारा ही हो सकती है, चार आश्रम कर्मों के द्वार हैं, इनमें गृहस्थाश्रम बहुत मुख्य देण माना है, उससे युक्ति और मूर्त दोनों होती हैं।

पौरुषिक विचारधारा के अनुसार विवाह इन्हीं और अपवर्ण का कारण है, अग्निहोत्रादि में तथा विविध यज्ञ आगादि में समलीक गृहस्थ का ही अधिकार है। ये कर्म लिप्ताश्रम भाव से ही तो मांस (अपवर्ण) देने माने होते हैं और मकाश भाव में किये जायें तो स्वर्गादि फलों के साधक होते हैं।

(ग) विदु-आश्रम का विचार—यामिक दृष्टि से विवाह का तीसरा कारण विदु-आश्रम से युक्ति है। सर्वप्रथम कर्मवर्ध (१६।११) में इसका उल्लेख है। ब्राह्मण श्रुतियों में इसका विस्तार से प्रतिपादन है। अथर्व वेदाङ्ग (१।३।२।१०) का मत है कि गन्तव्य पर चार प्रकार का धर्म होता है। उत्पन्न होते ही यह देवताओं, ऋतियों, गितों और मनुष्यों का ऋणी होता है। ऐतिरेय संहिता (६।३।१०।५) में ब्राह्मण के लिए केवल तीन ही ऋणों का उल्लेख है, यथा—उद्धारण, यज्ञ और प्रजा द्वारा गुरु, कमलः ऋषि, देव और विदु ऋणों से युक्त होता है, जो पुत्रवान् तथा यज्ञ करने वाला और ब्रह्मचर्य का पालक है, यह ऋणनिर्मुक्त होता है। ऐतरेय ब्रा० (३।३।१) यह बताया है कि पुत्र द्वारा व्यक्ति अपने ऋण को उतारता है। गण्ड (१६१) में पुत्र द्वारा ऋण मूर्त का निर्बन्ध किया है। महाभारत (५।१२०।१५ अनु०) में अतएव ब्रा० की श्रुति चार ऋणों का उल्लेख करते हुए इन ऋणों से मुक्त होने का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। अनु (२।१०६) के मध्य में उल्लेख पुत्र के पैदा होने से ही पिता अनुर्णी हो जाता है।

शैमिनि ने इन ऋणों पर विचार करते हुए यह स्पष्टता की है कि इनका उत्तरणा वैयक्तिक नहीं, अपितु अनिवार्य कर्तव्य है (६।२।११)। अनु के मतानुसार तीन ऋणों का उत्तरण कर ही मनुष्य अपना मन मोक्ष (सम्पन्न आश्रम) में लगावे, यदि वह ऋणों को उत्तरे बिना मोक्ष की आराधना करता है तो मरण गामी होता है (६।३५)। इसकी व्याख्या करते हुए यह अगले श्लोक से कहता है कि विविधपूर्वक वेद मग अध्ययन कर, धर्मपूर्वक पुत्रों को उत्पन्न कर और यथा सामर्थ्य (ज्वातिष्ठोपाधि) यज्ञ करके यह सम्पन्न आश्रम में अपना मन लगावे (६।३६)। विदु-आश्रम तथा अन्य ऋणों को उत्तरणा अधिक महत्त्व देने के मूल में संभवतः यह भावना थी कि अपने माता-पिता, गुरु तथा समाज से प्राप्त उठाने वाले व्यक्ति का सामाजिक हित की दृष्टि से यह कर्तव्य है कि वह

से गृहस्थ धर्म के पालन की प्रवृत्ति को ही, पुराने बौद्धिकताओं को फली और अन्तों माना बताया है और गृहस्थ जीवन में मोक्ष होते हुए भी लोकहितसाध के लिए अपना विवाह करना उत्तम समझा है।

उसका प्रतिफल सदाय की अवधि है। ऐसा न करने वाला भगवान की हानि पहुँचाने वाला था, अतः उसे आसनों ने नरक में जाने वाला कहा है।

(२) संतान प्राप्ति

विवाह का प्रथम प्रयोजन पुत्र प्राप्ति करना है। विवाह संस्कार के यंत्रों में वर-पक्ष में कहा जाता है कि मैं उत्तम सत्सदन के लिए तेरा पालनपोषण कर रहा हूँ (श्रु० १०।८५।३६)। पुराहित ■■■ द्वारा वर-पक्ष को आशीर्वाद देते हुए बहुत पुत्र पैदा करने का आदेश देता है (श्रु० १०।८५।४५)। हिन्दू समाज में वैदिक युग में पुत्र प्राप्ति की दीक्षा आकांक्षा रही है। श्रुतों में अग्नि में प्रार्थना की गयी है ■■■ हम तुम्हीं द्वारा अमरता प्राप्त करें (श्रु० १०, नं. सं. १।८।४६।१)। वैदिक साहित्य में वीरपुत्र पालन की आकांक्षा का बहुत उल्लेख है।^{२५} ऐश्वर्य ब्राह्मण (३।३।१) में पुत्र की महिमा का वर्णन करते हुए कहा गया है कि पिता पुत्र से अणु मुक्त होता है, अमर बनता है, अक्षकार ब्रह्म करता है, पुत्र पिता की संसार सागर से पार कराने की नौका (अतिवारिणी) तथा परम भोक्ति है, अमुक्त व्यक्ति के लिए दूसरा उत्तम रास्ता नहीं है। तैत्ति० ब्रा० (३।७।७।१०) पुत्र की वृद्धि को अन्न बनाने वाला कहता है। गोपथ ब्रा० (१।१।२) के अनुसार पुत्र का पुत्रत्व इसी राश में है कि वह पिता की पुत्र नामका नरक में न जा सके। अतिष्ठ धर्मसूत्र (१७।१) ऐत० ब्रा० (३।३।१ अनु०) के कथन की पुनरावृत्ति के अतिरिक्त यह कहता है कि ऐसा सुना गया है कि पुत्र बालों की अवस्था (उत्पत्ति) को प्राप्त होते हैं और पुत्रहीन का कोई भोग नहीं होता। वेद में एक अभिप्राय है कि हमारे सन्तान पुत्रहीन हो (मि० श्रु० १।२१।५)। तिता पुत्र द्वारा (उत्पत्ति) दीक्षा की जाती है, पौत्र द्वारा अमरता प्राप्त करता है, अपने पुत्र के पीछे से वह सूर्यसोक प्राप्त करता है (मि० अनु० १।१३७, श्रिणु १।४।६)। विष्णुस्मृति में (१।४।४३-४५) अतिष्ठ की व्यवस्था दोहरायी गयी है। याज्ञ (वेद ४८५) ने यहाँ तक कहा है कि अग्निहोत्र, तीनों वेद, सैकड़ों वज्रिणियों वाले यज्ञ बड़े भिक्षु द्वारा पैदा किये गये अग्निपुत्र या १६ वर्षीय भी नहीं है, जिसके पुत्र, पौत्र सुप्रतिष्ठित हैं, अनेक पुत्र हैं, अविनाश वेद और यज्ञ अक्षुण्ण हैं, यहाँ उसकी हथेली पर है।

महाभारत में पुत्र की महिमा का प्रचुर वर्णन है। पाण्डु ने आदिपर्व में कहा है—
निःसन्तान पुत्र के लिए स्वर्ग का द्वार बन्द है (१।१२०।१६), तीनों भोगों में धर्ममुक्त प्रतिष्ठा का कारण सन्तान ही है (१।१२०।२२), यज्ञ-दान, तपस्या, सभी प्रकार किये गये अनुष्ठान—ये सब उनको पवित्र नहीं करते जिनकी सन्तान नहीं है (१।१२०।३०)।

२५ ■■■ अनु० ४।२३, लं. सं. १।२।३।२, का. सं. १।३, रा. वा. ३।३।१।१।१९ लं. वा. ४।३।६। १ अन्य प्रमाणी के लिए देखिए ह्यिजस, हिन्दू परिवार नीमरोस, पृ० २०६ अनु० १

अनपत्य व्यक्ति कुछ लोग नहीं माना करते। सामान्य ने मि. लन्डन 'उमा उमीनर से कहा है—पुल कभी नौका से तुम अपना तथा पिछरी का उधार करो (५१११८३)। २१७२१६ ने पुल लौक की तीन व्यक्तियों ने एक पत्नी पुत्र को कहा गया है। अन्यत्र अनुप व्यक्ति का अर्थ बुढ़ा कहा गया है (३१२००१४) और पुत्रप्राप्त को समार से मचने कहा नाम मना गया है।

बहुव्रतियों ने अन्धमानुसार पिछकाल, वर्षों तथा नाम बदलने से किए मि. लन्डन पुत्र को जिस किसी घर में अपना करके पुत्र प्राप्त करना चाहते। नरकागामी होने आशा के घर में पिछर पुत्रों की प्राप्तावस्था रहती है। इसमें से कोई पिछरात के लिए गलत भीषे जाने माना होगा, वह होगा उधार करेगा, वह बुढ़ावर्ग (साँझ लुम्बाना) तथा यम और लम्बाना बावली बनवाने का पुण्य कार्य करेगा, बुढ़ावे से फलन कमेगा तथा अग्नि बिन आकाश देगा।

वीरराजिका साहित्य से इस विषय से एक ही उदाहरण देना गया है। काष्ठ-पुराण (१०४१७-१४) ने पुत्र का गह्वर बनाने हुए कहा है, "पुत्रहीन के लिए स्वर्ग नहीं है, पुत्रोत्पत्ति से विद्या को बर अन्नमेष्टों के स्नान का फल मिलता है, पुत्र से आत्मी प्रतिष्ठा होती है, मनुष्य से देवता और पुत्र से ब्राह्मणों का निर्माण अनन्त होता है। यह विद्या तथा शास्त्र को तीनों आत्मी से प्राप्त करता है। स्वर्ग और मुक्ति पुत्र से मिलती है। पुत्र ॥ गरम-प्रोक्त, धर्म, काम, अर्थ, मुक्ति, परम कर्माणि और सब प्राणियों को मारने वाला है, इन्द्र के बिना स्वर्ग और मोक्ष दुर्लभ है, इसके बिना दान, धर्म और जन्म निर्वर्णक है, उपायुक्त कारणी से पुत्र प्राप्ति आवश्यक है। अतः इस प्रयोजन की पूर्ति के लिए विवाह आवश्यक है।

(४) रति

प्राचीन लोगों ने रतिबुद्ध को बहुत आकाङ्क्षा के समान माना था (बृ० ३० ४१३११) और प्रत्येक व्यक्ति द्वारा धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष प्राप्त करने के लिए रतिबुद्ध को पुत्रप्राप्ति से इसकी समझा दी थी। वात्स्यायन ने कामसूत्र (११३११४) में अन्धधर्म से विद्याबुद्ध, मोक्ष से काम लेखन तथा बुद्धादि ॥ धर्म और मोक्ष की प्राप्ति पर रति विद्या है। मनु ने इसे विवाह का एक प्रयोजन बताया है।^{२१} प्राचीन आर्य न तो विद्वत्

२१ मनु ३३२०। इस सम्बन्ध में यह स्मरण रखना चाहिए कि हिन्दू समाज में कामबुद्ध की ईश्वरप्राप्ति की प्रतिष्ठा न तो सर्वथा सर्वप्रथम माना गया और न उसके लिए बुद्धी बुद्ध की गयी। बहली अवस्था में समाज में जो अन्धधर्म व्यवहार होता, पत्नी का एक सुन्दर उदाहरण अन्धधर्मों की पुरोय का कार्य था (वे. हरिदत्त—हिन्दू परिवार नीमाता, पृ० १२-२०), दूसरी दशा में मनुष्य और मनु में मिलने अन्ध नहीं रहता। अतः धर्मशास्त्रों में सर्वप्रथम कामबुद्ध के स्थान की व्यवस्था की गयी है। मीमांसा में अन्धधर्म से अन्धधर्म के धर्मविज्ञान काम कहा है (७:११)। कौटिल्य के मत में

मीनवारी के और न कोई आदर्शवादी । 'मुन्धरी का दही का' का एकमात्र कारण उन्हें भान्य नहीं था । भारतीय आदर्शों का प्रतिपादन करने वाले आदिदास ने यजुर्वेदी राजाओं को भीषण में विधवा का सेवन करने वाला बताया है ।

विवाह की अनिवार्यता

(क) प्राचीन उदाहरण—सर्मापानन, पुत्रप्राप्ति, परलोक में अद्वैति, पिण्ड-दान तथा पितृ-भक्षण के विचार तथा ऊपर बताये अन्य कारणों से हिन्दू समाज में विवाह अनिवार्य सामिक कर्तव्य बन गया है । महाभारत और पुराणों के अनेक उपाख्यानो में इन तथ्यों को बली-जाति बताया गया है । बल्लभ (महाभा० १।१६ तथा १।२५) उक्त तपस्वी ब्रह्मचारी था । किन्तु जब उसके अपने पितरों को और पुराणस्या में देखा तो उसे अपना आजीवन ब्रह्मचारी रहने का विचार छोड़ना पड़ा (१।१६।६७) । उसके पितरों के उच्चार के सिद्ध भाषण्य वायुकि की बहिन से विवाह कर लिया ।

पौराणिक साहित्य में विवाह की अनिवार्यता सवि के उदाहरण से प्रदर्शित की गयी है (साकं० पु० अ० ६५) । यौतराग सवि ने न तो अग्नि की स्थापना की और न अपने लिए घर बनाया । पितरों ने उसकी यह भूमिभूति देखकर विवाह करने की प्रेरणा की, क्योंकि यह स्वर्ग और अथर्व का हेतु होने के कारण एक पुण्यमय कार्य है । किन्तु सवि परिवार को दुःख तथा पाप का कारण समझता था, गृहस्थाश्रम की अनिवार्य कष्टी कर्ममार्ग तथा मोक्ष में बाधक समझता था । इस पर उसे पितरों ने समझाया कि विहित कर्म (भुवि द्वाप निदिष्ट मयादि) का पालन न करके जो अन्नम अनुप्य संयम करते हैं, वह संयम अन्न मोक्ष की प्राप्ति नहीं कराता, अधिपु लोभोगति में डेगाने वाला होता है । 'यस्य, युम तौ समसतेहो किमै (संयमद्वारा) अन्ना का प्रसालनकरता है, किन्तु वास्तवमें युम वास्तव-विहित कर्मों के न करने के कारण पापों से दूषित हो रहेहो ।' अन्न में सवि ने बूढ़े होने पर भी पितरों के उच्चार के लिए आभिर्नि के साथ विवाह किया (साकं० पु० अ० ६०, मि० ब्रह्म पुराण ८८-६०३) । ब्रह्मपुराण के अनुसार कभीपान के पुत्र पृथुश्वा वैराग्यशील स्वभाव के कारण परित्यक्त नहीं करना चाहते थे, पर पितरों ने तीन ऋण उतारने के लिए उन्हें विवाह करना आवश्यक बताया (६८।१-५) ।

विवाह पुरुषों के लिए अनिवार्य हो, तो बात नहीं, स्त्रियों का भी विवाह के बिना

धर्म और स्वर्ग से विरोध न रहने करने काल का सेवन करना चाहिए (अर्धसाहस १।७—सर्माभिदिरीयेन कालं सेवेत् । न निशुक्लं स्वयम् । मि० सन् २।१२५—हरिस्तोत्रोपनिषद् भी स्त्रातः प्रत्यभिधी । विष्णु ब्रह्म० ५१।८४, महाभा० १३।११।१७—२, किष्कुराण ३।२।३) ।

दोनों की शादी के बाद पिछड़ी बाँटी जाती है; ताम्बूल, चार आने आठ गाई की दक्षिणा दया घर के चार घर बोधा जाने वाला घट नामक पुनर्हृद्य संस्कार बधू के परिवार को भेंट दिये जाते हैं। ऐसी शादी में पाय मेने वाये वैन और यो को भोग अपने पास बहुत महत्त्व कर रखते हैं और उसे अपनी इच्छा से किसी को नहीं देते।^{११} मैथिल की कुछ आसियाँ से अविवाहित स्त्री की मृत्यु हो जाने पर उसे अपनी घर नहीं ले जाते, किन्तु छोटे मित्रियों की भीति निम्नाभिमुख करके उसे भूमि में गाड़ देते हैं। उसी कोई औपनिवेशिक विद्या नहीं करते। इस प्रकार के व्यवहार में अपने के लिए दंडेया और कुछ मामलों में ऐसी अविवाहित कन्या की शादी कुछ विशेष पैरों—कॉर्र (Purgatorio Gildera), माक, सीम या अन्य एक पदावली—उपचार आदि से करने की परम्परा है।^{१२} कुछ आसियों में बन्धुओं का विवाह न होना इतना बुरा समझा जाता है कि अविवाहित बन्धुओं को वैवाहिक मिथियों में सम्मिलित नहीं किया जाता। अविवाहित गोप्ता (प्रायः पुरुष तोलू पाके) धुवती, बर या बधू का साथ नहीं कर सकती, विवाह के अनुष्ठान में भागविश्व कक्षक नहीं उठा सकती। मेवार (टोकरी बनाने वाली कन्नड़) आदि की कन्न्या वैवाहिक मिथियों में कोई भाग नहीं ले सकती, यही अवस्था मलयाली परिवार (Pārvār) नामक जाति की स्त्रियों की है।^{१३} अविवाहियों के इस अन्याय का कारण विवाह का शीघ्र बढ़ाना है और यह संभवतः इसलिए किया गया है कि अविवाहित व्यक्ति समाज की नैतिकता को संकट में डाल सकते हैं।

हिन्दू समाज में न केवल सम्पन्न वर्ग में विवाह अनिवार्य है, अपितु इसकी दिवली सीमा पर रहने वाली अनेक जातियों की विवाह का ऐसा समझनी है। मार्भस के कम्पना-मुत्तार टोका आदि में कोई अविवाहित नहीं रहता। प्रत्येक नर-नारी, प्रत्येक पुरुष-महिली किसी का पति या पत्नी है। एक लम्बी लकड़ी तथा बूझी विषका के अन्तर्गत के अतिरिक्त इसे टोका आदि में कबोरी शीशा स्त्री का एक भी उदाहरण नहीं मिला।^{१४} बन्धुओं में स्त्री-पुरुष अविवाहित व्यक्ति से बुरा करते हैं, उसे चार और जादुगरनी (Witch) से भया जाता समझते हैं।^{१५}


^{११} एम० एन० श्रीनिवास्सन—मैरिज एण्ड फेमिली इन माइसोर, पृ० १६३-४

^{१२} यही, पृ० १२९

^{१३} " "

^{१४} मार्शल-ए फ्लो लोविल एमंस बी टोकाव, पृ० २२०, २२९

^{१५} मैग—साम्बासिपा, एण्ड साम्बास्त, पृ० १०१

अनिर्वाह्य आरम्भक और सम्पन्न समाजों में विवाह अनिवार्य समझा जाता है। उत्तरी अमेरिका के इन्डियनों में अविवाहित व्यक्ति अत्यन्त दुर्लभ होते हैं। प्रोफेसर डे डेकोला जाति के सम्बन्ध में लिखा है कि  उनमें एक भी पकड़े पुरुष का ज्ञान नहीं है।

हिन्दू समाज में विवाह की अनिवार्यता ॥ विवाह के दायमूल होने का यह परिणाम हुआ है कि विवाह हिन्दू समाज में गार्वशिय और व्यापक कर्तव्य बन गया है। भारत में अनिवारिहों की संख्या बहुत कम है। यद्यपि आजकल बाह्यो के मिश्रित समाज में बचारे रहने की प्रवृत्ति बढ़ रही है, किन्तु पिछले ४० वर्षों में अत्यन्त भारत की जनगणना में इस दृष्टि में कोई विशेष अन्तर नहीं आया। १९११ की जनगणना रिपोर्ट के अनुसार प्रति औषीय अनिवारिह भूमियों में केवल एक की आयु २० वर्ष से अधिक थी और प्रति

एंडेयर में यह सुचित किया है कि एक इंडियन रिवाय कीवार्म और बोधन की मुरमुमुन्य जयमती है। योगराय को अभिषा मकीनर की जातियों में २० वर्ष से अधिक आयु की कोई लड़की बचारी नहीं मिली। बोर्मान (Borman) का यह कहना है कि गोरकनोस्ट के हकिमों में बहुत ही कम पुष्प अनिवारिह दया में मरते हैं और ऐसे व्यक्तियों की आयु बहुत कम होती है। बनिर्मा में तथा बोनिर्मा के गहाड़ी शुभाक लोगों में स्वरिचन के वृद्धता कुर्मन है। दुनाडा बासिर्मा के सम्बन्ध में मार्सेड के सिद्धा है कि मेरे अधीन सिने में आठ हजार व्यति रहते थे, इनमें १० वर्ष से अधिक आयु वाले आठ से अधिक बचारे पुर्मा के बराबरन भी सिमला संभव न था। आधा में कापीड में २० वर्ष की अवस्था की कोई लड़की बचारी नहीं देखी। कई में आलुसिया के अनिवारिहों में १५ वर्ष की अवस्था वाली कोई ऐसी भव्या नहीं सुनी, जिसका विवाह न हुआ हो। बासुर्मा में बचारे पुष्प अवली संभावत के बासर्मा में कोई भाग नहीं ले सकता, बाजीन की दुधी जाति में ऐसा व्यक्ति वलारोकिर्मा में सम्मिलित नहीं हो सकता। किनीबासिर्मा के सिमला-मुत्तार अफलीक व्यति अरने पर स्मार् के बागे परदेवता द्वारा रोक सिद्ध जाता है और समुदा। बकभाधुर कर दिया जाता है। बीन में अनिवारिह कपार्य मूलर्मा के ज्ञाक तावी कर लेती हैं अथवा आलभतुत्या कर लेती हैं। रास में सिद्धा है कि कोरिया में बचारे आदमी की आयु भले ही मिलनी हो जाय, उसे पुष्प नहीं कहा जाता, उसे मरी (Yarrow) के नाम से पुकारा जाता है; तेरह या १४ वर्ष का (विवाहित) पुष्प ६० वर्ष के 'पली' को पीठने, मानी लगा जाता केने का पूरा अधिकार रखता है, 'पालो' इस सम्बन्ध में शिकामत के लिए अपना मुंह नहीं खोल सकता। यहूदियों में यह कहावत है कि जिसकी पत्नी नहीं है, वह पुष्प नहीं है (योमेश-मेरिथ, पास्ड प्रेजेन्स पुष्प प्रमुबर, पृ० ११६-११)। अन्त उवाहरणों के लिए देखिए—बीस्टर मार्क—हि० ह्यूमन रीरिज, पृ० ५३६, जमु०, एलास बावेस, कं. १ वृ० २३५ जमु०। उचर्मुक्त उवाहरणों से बीस्टरमार्क ने यह बरिचय सिद्धा है कि अलभ्य जातियों में विवाह इतना अनिवार्य है कि बच्ची न करने वाला अवल-वार्मिक प्राणी समझा जाता है और उससे पुना की जाती है (बी. हि. झू. वी. पृ०

बीसवीं सदी के अन्त में से केवल एक ही १५ वर्ष से ज्यादा उम्र की थी।^{११} १९२१ में १५ वर्ष से अधिक आयु की प्रति छी स्त्रियों में से एक मविवाहित थी। सामान्यतः^{१२} बड़ी आयु के व्यक्तियों में से कोई बच्चा नहीं रहता, केवल वे ही व्यक्ति मविवाहित रहते हैं, जो किसी बीमारी या बंगड़ीयता से पीड़ित हों, संन्यासी, भिक्षु, वैष्णव या वनैज हों, या जिनके लिए जातीय दम्पनों के कारण उपयुक्त घर या दम्पन मिल नहीं हो।^{१३} आजकल एक स्थिति में जिन कारणों से अन्तर भरा रहा है, सन्तान अभ्यास में उमर का विस्तार उल्लेख होगा। किन्तु इसमें कोई संशय नहीं कि एक तथा हिन्दू समाज में विवाहित जीवन एक सार्वभौम, अनिवार्य और आवश्यक संस्था रही है।

हिन्दू विवाह का आदिम रूप

चीन, मिस्र और यूनान की प्रतिमान के प्राचीन ग्राह्य में मूल दर्शन मिलता है कि यूनाने जमाने में विवाह की प्रथा नहीं थी, स्त्री-पुरुषों का धीरे-सम्बन्ध करने की पूरी स्वतन्त्रता या कामभार की वशा थी। पूर्व काल में स्त्रियों (अनायातः) जगती दृष्टानुसार बड़ी-बड़े बड़े जाने जाती और स्वतन्त्र (किसी दम्पन या पति से न जोड़ी हुई) थीं। वे कुम्हारों द्वारा से अनेक पुरुषों के पास जाया करती थीं। ऐसा करना अश्लील नहीं था क्योंकि यही उस समय की परिघाटी थी (महा मा० १।१२२।३-२१)। कहा जाता है कि एनेक्लेतु ने सर्वप्रथम विवाह की पर्याय स्थापित की, अन्वय यह श्रेय दीवनेया को दिया गया है।

पिछली सदी के अन्त में कामभार का निवारण अधिकतर समाजशास्त्रियों

१३६)। इसका कारण यह है कि इन व्यक्तियों में बली और बच्चे मुख्य के लिए बोल नहीं, किन्तु बच्ची आर्थिक समृद्धि में सहायक होते हैं। इन समाजों में विवाह के अनिवार्य जीवनवास्तव की प्रति के अन्तर और सामान्य कम होते हैं तथा संश्लेषप्रधान आरम्भिक समाज में व्यक्ति की सुरक्षा परिवार के सदस्यों की संख्या पर तथा सम्बन्ध परिवारों की सामि पर अवलम्बित होती है (बीसाहि मै. पृ० ३२-३३)

१३७ १९११ की जनगणना रिपोर्ट, ख. १, भाग १, पृ० ५६३

१३८ १९२१ की जनगणना रिपोर्ट ख. १, भाग १, पृ० ७३

१३९ १९११ की भारत की जनगणना रिपोर्ट ख. १, भाग १, पृ० २६२

१४० बीबी इतिहास में यह उल्लेख है कि "भारत में पशुओं और मनुष्यों के जीवन में बहुत कम भेद था, मनुष्य कर्तों में धूमने थे, स्त्रियाँ सबके लिए सामान्य उपभोग की वस्तु समझी जाती थी, बच्चे पिताओं को कमी नहीं आते थे, वे केवल अपनी माताओं को पहचानते थे (गोमेट—बी. कोरिजिय आर. तारा, आर्ट्स एण्ड साइन्सिक, खण्ड ३, पृ० ३११ अनु.)। कहा जाता है कि समाज की-ही ने इस वशा

द्वारा माना जाता था,^{४०} अतः हिन्दू विवाह का आदिम रूप भी पहले यही स्वीकार किया जाता था। मन्वन्तर् लघ्वर्ग्यम इति वाली ने १८२६ में हिन्दू कानून पर अपने मुद्रसिद्ध ग्रन्थ 'हिन्दू लॉ एण्ड कस्टम्' में इस कल्पना को मानते हुए इसे निम्न प्रमाणों द्वारा पुष्ट किया। (१) मत्ता भारत के कुछ प्रमाण; (२) आपस्तम्ब का एक बचन, (३) द्रौपदी का विवाह, (४) प्राचीन काल में शिथिल वैवाहिक आचार के कुछ प्रमाण।^{४१}

इनमें से अधिक महत्व महाभारत के प्रमाणों को दिया जाता है, इनकी विलुप्त विवेचना जेम्स ब्राग अप्पल विल्लान्गुबीक हो चुकी है और वह सिद्ध किया था युक्त है कि इनके आधार पर हिन्दू विवाह का उद्गम कामचार से नहीं माना जा सकता।^{४२} आपस्तम्ब के एक बचन में मन्वन्तर् गथा है कि मन्वा कृत् के लिए सी कर्त्ता है।^{४३} इसका अर्थ लगाया गया है कि मन्वा का विवाह किसी स्त्री के साथ न होकर धर्म के पुत्र के साथ होता है, जैसे द्रौपदी का विवाह अर्जुन के साथ नहीं, किन्तु पांच पाण्डवों के साथ हुआ। किन्तु यह अर्थ ठीक नहीं प्रतीत होता है। आप० धनु के टीकाकार हरदत्त की व्याख्या से स्पष्ट है कि मन्वन्तर् नियोग से सम्बन्ध में कहा गया है,^{४४} नियोग की वृष्टि

का अन्त कर विवाह को प्रमा प्रारम्भ की। जिस से इसका अर्थ अनेक को और ध्यान में लाने को दिया जाता है (गोवेद—ब्रह्म १, पृ० २२ तथा ब० १, पृ० १६)। इस प्रकार की कथाओं को धार्मिक वैज्ञानिक ऐतिहासिक दृष्टि से धार्य नहीं समझते। यह अन्तर्धारण को इस अन्तर्धृति का परिणाम है, जो चित्त के सुकम नियमों में विचारों न करती हुई प्रत्येक भवना के सरल और स्पष्ट कारण मानना चाहती है और इसका अर्थ किसी देवता या राजा या मन्त्रान् को देना चाहती है। (वेस्टरमार्क—बी हिस्टरी ऑफ़ इन्डियन सैरिज, पृ० ६)। इसका एक सुन्दर उदाहरण ब्राह्मण के पहले दूसरे अध्याय में मन्वान् द्वारा कृत्मुत्पत्ति का वर्णन है, जो वर्तमान वैज्ञानिक गवेषणा के सर्वथा प्रतिकूल है।

४१ वेस्टरमार्क—बी हिस्टरी ऑफ़ इन्डियन सैरिज, अध्याय १, अध्याय २-६ में इस विषय का विस्तृत वर्णन है, इसके संक्षिप्त विवेचन के लिए देखें बी. शा. हि. वे. पृ० ७-१७, वेबर—सैरिज एण्ड कॅमिन्सी, पृ० ५२, ५५, हरिवत्—हिन्दू परिवार भीमसिंह, पृ० १०-११।

४२ वाली—हिन्दू लॉ एण्ड कस्टम्, पृ० १०२-३

४३ हरिवत्—हिन्दू परिवार भीमसिंह, पृ० ६-८

४४ आपस्तम्ब, २।१०।२७।३ कुलाम हि स्त्री प्रदीपत इत्युपधिभाति।

४५ वाली, २।१०।२७।४ की टीका—तमिस्र नियोगों युवति। आपस्तम्ब की उपर्युक्त कृति से सादृश्य रखने वाला एक श्लोक स्मृतिचक्रिका (मै. सं.) ब० १ पृ० २६ में मिलता है—'मन्वन्तर्कामादुत्पत्तिर्वाधृत्य चातिवृत्तिम्। पुत्रे मन्वाश्रयम् च

किन्तु यह कल्पना प्रामाणिक नहीं प्रतीत होती, क्योंकि वास्तव में देशों के दो-चार हीतों के होते हुए भी वैदिक काल से भारत में नाटियों की भी वैदिकता का मान्यता तथा आदर्श बहुत ठीका रहा है।^{४४} वेदधर्मों की हस्त प्रामः सभी समाजों में होती है, एलिनाएँ विभिन्न नस्लों की मानने वाली किन्ना होती थी, जो न केवल प्रायः में किन्तु प्राचीन यूना में भी विभिन्न नस्लों की और मुसलमानों के सामाजिक हितों के पास आकर करते थे।^{४५} अतः यह किन्ना या बुका है कि मुख्य मुख्य नस्लों में और न ही प्राचीन काल की आचार्यता की कल्पित करते हैं।^{४६} वृक्षसिद्धि की उत्पत्ति का आधार संभवतः तिब्बत और पूर्वी भारत में रहनेवाली जातियों के विभिन्न आचार से सम्बन्ध है।^{४७} वर्तमान समय में भी भारत में अनेक जातियों के सम्बन्ध से इस प्रकार की अनुश्रुतियाँ और कि-

(महामा० ५।११५-२०) । परात्तर में अन्तर्गम्यता से सम्बन्धित किमा (१।१६) । चित्तव्यभिक्त और येनका से वाकुलता उत्पन्न हुई (१।७२), गीतम में वाचमयी के रूप और कृषी को वाचा (१।१३०) । व्यास और पूताभी अन्तरा से शुक्लेश उत्पन्न हुए (१२।१२४) । हिडिम्बा का योग के साथ (१।५५५ अ.), अर्जुन का उत्पत्ती (१।२१५ अ.) तथा चिदांगदा (१।२१५) के साथ अन्तर्गम्यता विवक्षित हुआ । किन्तु इसके साथ ही महावादत के उन स्थलों को भी ध्यान में रखना चाहिये, जिनमें वैवाहिक मारुत को अत्यन्त उत्कृष्ट रूप में विवक्षित गया है । ऐसा एक एक अन्तर्गम्यता की कथा (११।११५ अ.) है । ये सब वदाम्य शक्ति को कथा मुचुन के वाणिप्रहम के लिए उत्कृष्ट रूप से इन्हें परीक्षा के लिए उत्तर विधा में लेजा गया, वे वहाँ अनेक सुन्दरियों के प्रथम प्रतीकनों में पूर्ण कहे ।

क. वैदिक इतिहास १।७७६, मौक्तिक विस्तार भाग इतिहास, ५।१५६-६०, चिन्तन २५-१७
मास= १।७५, अविचार के अन्दर बर्षों के लिए वैदिक इतिहास-हिन्दू विचार
मीमांसा, ५०-४६५ ।

भारतमाध्यमाध्यम (अध्याय २४) में गणिका की अनेक विधियाँ का गम्भीर ज्ञान रखते वाली बतायी है, अथवा उन्हीं २४ कलाओं में प्रवीण बताती है। अभिरक्षितर (१२१५३६) में कहा गया है कि शुद्धोद्यम अथवा शुद्धता की गणिका बीता अथवा आहारा था। वागीश सुभाष में एस्पेरिजा अथवा इसी प्रकार की गणिकाएँ थीं। सुज्जात एस्पेरिजा के पास बताया करता था और उन्हीं किरी हीना नामक गणिका से प्रत्यक्ष शिक्षाओं के प्रति आचार प्रवर्धन किया है (अर्थात्-हितचरी अथवा होरोपिकन सारस, अ. २, पृ. २६६)।

५५ हरिदत्त—हिन्दू परिवार की संस्था, पृ० ४६२-७०

— आजी—हिम्मत नाँ एक्क बरकन, पु = १०७

वधिव्याप्त होने की मिलती है, ५५ पर उनके सम्बन्ध में यह कभी नहीं कहा जाता कि उनमें सामकार है, फिर प्राचीन काल के सम्बन्ध में ऐसी कल्पना क्यों की जाय ? इन इनेगिने प्रमाणों के आधार पर कामभार की सत्ता सिद्ध करना वैसा ही है, जैसे वर्तमान हिन्दू समाज में से अनाचार के कुछ उदाहरण संवृत्त कर उनके आधार पर वह मन व्यभिचारना कि आजकल हमारे समाज में विवाह का कोई अन्धम नहीं है । जनः उपर्युक्त प्रमाणों द्वारा हिन्दू समाज में आदिम कामभार की सत्ता सिद्ध करना सर्वोत्पन्न नहीं प्रतीत होता ।

इसमें विपरीत वैदिकयुग में विवाह को एक स्थायी सम्बन्ध माने जाने के अनेक प्रमाण हैं । अथर्व वेद अथर्ववेद के विवाह विमर्श अध्याय में दृढ़ सम्बन्ध का आजीवन बनाये रखने का आदेश मिलता है । एक मन्त्र में यह वधु के कहना है कि मैं मुद्रा के विना तेरा प्राणिग्रहण करवा हूँ, जिससे तू मुझे पति के साथ वृद्धावस्था प्राप्त करने वाली हो । ५६ दूसरे मन्त्र में वधु ने कहा गया है कि मुझे सक इस पति के साथ रह । ५७ श्रु० १०।४० में वर-वधु दोनों भी यह आजीवन दिवा गया है कि मैं वृद्धावस्था में रहने दृढ़ करती अवश्य हूँ, पूरी माय का भाग करे । ५८ अथर्व० १४।१।२२ में पति पत्नी में रहना है कि मुझे पति के साथ तू ही वर्ष तक जीने वाली हो । ५९ पत्नी भी पति के साथ रहने की कामना करती है । ६० विवाह के समय पुरोहित वधु को पितृगृह में मुक्त कर पतिगृह के साथ अपनी तरह सम्भक्त करवा का ताकि वह पुत्रवती और सौभाग्यवती हो । ६१ अन्तिम में यह प्रार्थना की गयी है कि वह पत्नी को पति के लिए बुराये तक पहुँचाने सक्षम हो । ६२ बुराये तथा ही वर्ष तक पति-पत्नी के साथ रहने की प्रार्थनाएँ वैवाहिक सम्बन्ध के आजीवन होने रहने का प्रबल प्रमाण और कामभार का प्रत्याख्यान हैं । बाह्यालो, सूत्र-ग्रन्थों तथा स्मृतिग्रंथों

५५ वेद में १६११ की भारत जनगणना रिपोर्ट (खं. १ भाग १ पृ० २४३-४४) में वर्तमान भारत की अनेक जातियों के ऐसे उदाहरण दिये हैं, जिनमें स्त्रियों के लिये वही विवाह से पहले और न ही विवाह के बाद करार के नियम का पालन आवश्यक समझा जाता है ।

५६ श्रु० १०।४०।३६ गुण्यमिते श्रीमत्परम्य हस्तं नयः पराधरवद्विर्जयातः, नि० अथर्व० १४।१।२०

५७ श्रु० १०।४१।५७ एता पत्या तन्धे संतुचरवाग्वा निरीविदयना नयः ।

५८ श्रु० १०।४२।४२ इहैव स्तं मा विधीर्षं विरचमापुर्वंमृतम् ।

५९ अथर्व० १४।१।२२ नया परया प्रजावति तं नोव शरदः शतम् ।

६० वही १४।२।६२ शीर्षाभस्तु मे पतिर्जीवतु शरदः शतम् ।

६१ वही १४।१।१८ प्रेतो भुजानि नामतः सुवदामुतसकम् । पविशतिन्न सौम्यः सुपुत्रा सुभगावति ।

६२ वही १४।१।४६ सतिः सुभगा जतवेधः पत्ये पत्नी नरवद्वि कृतोपु ।

में कामचार का चर्चन कहीं नहीं मिलता। इस अवस्था में सर्वत्र विद्वान् मेहर का यह कार्य सर्वत्र सत्य प्रतीत होता है कि हम अतीत के घुमरतम अवकाश में इतनी जल्दी सजावट मानने के लिए ऐसे किल्लों पर अभी विस्वास नहीं कर सकते।^{१२}

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि हिन्दू विवाह वैदिक युग से पति-पत्नी का प्राबल्यहीन सम्बन्ध माना जाता है। इसके पश्चात् अयोधन धर्म का धारण, उत्थान की प्राप्ति तथा उचित मात्रा में कामधुक् का खेचन है। प्रायः विवाह अत्येक व्यक्ति के लिए एक धार्मिक सम्बन्ध और अभिधर्म कर्तव्य समझा जाता है। यह पति-पत्नी में अनेक इच्छागत करने वाला है। मनु के मसिद्ध शब्दों में यों गति है, मनु पत्नी है, गत्नी पति से किसी प्रकार मृत्यु नहीं हो सकती। (२।४५-४६)। दूसरे शब्दों में कहा जाय तो हिन्दू विवाह अविच्छेद है। यह १६५५ के हिन्दू कानून से तथा वर्तमान परिस्थितियों से इसमें जो महत्वपूर्ण परिवर्तन किये हैं, उनका अन्तिम अध्याय में उल्लेख होगा।

हिन्दू विवाह में अनेक प्रकार के नियमों तथा विधि-विधियों का पालन किया जाता है। इसे प्रथम बार-बार के चुनाव में गौतम, पितृ और अग्नि भा विचार किया जाता है। शास्त्राचार के शब्दों में इसमें पहले गौतम पर ध्यान देना चाहिये, इसके बाद पिता की छातरी और ससुर की दाहिनी धोड़ी के भीतर भाते धर्म सम्बन्धियों का तथा राशिगुरु का विचार करना चाहिये^{१३}। यहाँ अपने अध्यायों में इन विषयों का प्रतिपादन इसी क्रम में किया जायगा।

१२. **मेहर**—मेसपुरतल साहाज इ.ई.स. १९५५ तथा पु० १९५५ की यात्रा दिवसनी।

१३. **श्री०** ५०, पु० ५६० पर उद्धृत शास्त्राचार का अर्थ—माता गौतमिपुत्रिः स्यात्तल-सहस्रभयकामम्। राशिगुरुं तलसर्वैक सेवा सम्बन्धकामम्।

बहिर्विवाह—गोत्र और प्रवर

दो प्रकार के वैवाहिक नियम

हिन्दू समाज में विवाह के समय बंधु-धर्म के लिए धर्म का भी दो प्रकार के नियमों का पालन किया जाता है। घर-बधू एक विशिष्ट सामाजिक वर्ग के भवना (निश्चयन) की हुई पीढ़ियों के भीतर आने वाले व्यक्ति न होने चाहिए। प्रत्येक विवाह इस विशिष्ट सामाजिक वर्ग से और इन पीढ़ियों ने बाहर ही होता है। इसे बहिर्विवाह (Exogamy) का नियम कहते हैं। गोत्र और प्रवर (हिन्दू समाज में इस प्रकार के बहिर्विवाहों वर्ग (Exogamous groups) हैं, क्योंकि एक गोत्र वालों में परस्पर विवाह धर्मधाम्यों द्वारा वर्जित ठहराया गया है। अथर्वसंहिता (२।१।१५), ऋग्वेद (२।४।६-१०), मनु (३।१५), याज्ञिकवेदों ने समान गोत्र और समान प्रवर रखने वाली कक्षा में विवाह का निषेध किया है। गोत्र तथा प्रवर के अतिरिक्त बहिर्विवाह को दूसरे विधवाभुक्तान् (विधवा) की जात तथा जाति की भी पीढ़ियों से बाहर विवाह करना आवश्यक है। इन पीढ़ियों के भीतर आने वाले एक व्यक्ति संपन्न कहलाते हैं। घर-बधू को अतिरिक्त होना चाहिए। इस प्रकार ऋग्वेद समाज में अयोध्या और अयोध्या नामक दो बहिर्विवाही नियम (Exogamous rules) प्रचलित हैं।

दूसरे प्रकार का वैवाहिक नियम अन्तर्विवाह (Endogamy) में सम्बन्ध रखता है। इसके अनुसार घर-बधू के लिए एक विशिष्ट सामाजिक वर्ग के भीतर विवाह करना आवश्यक है। हिन्दू समाज में १६४६ ई० तक कानूनी तौर से घर-बधू के लिए ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, और शूद्र के समानता आवश्यक थी।^१ बहिर्विवाह और अन्तर्विवाह के दोनों नियम उत्तर के क्षेत्र में परस्पर विरोधी प्रतीत होते हैं, वस्तुतः दोनों बात नहीं

^१ १६४६ के हिन्दू विवाह अधोपपत्ति विवरण कानून, १६४६ ई० के हिन्दू विवाह अधोपपत्ति कानून तथा १६४६ के हिन्दू विवाह अधोपपत्ति कानून द्वारा अब हिन्दू विवाह की वैधता के लिए कोई भी प्रवर को विरुद्ध तथा वर्ग की समानता आवश्यक नहीं रही। किन्तु इन नियमों का ऐतिहासिक महत्व है और विवाहक कर्म में अब भी इनका पालन हिन्दू समाज में किया जाता है।

अतिन बराता है। वहाँ पहुँचे मंजरे में गौत्र के सामान्य स्वरूप का वर्णन होता।

बीरामन के मत में विश्वामित्र, जमदग्नि, भारद्वाज, गौतम, अत्रि, बलिष्ठ, कश्यप तथा जगत्पुत्र मुनि भी ओ स्रोत हैं, वे गौत्र हैं। इन प्रकार कुल आठ गौत्र हैं। समान गौत्र वालों में परस्पर विवाह नहीं हो सकता।^४

विष्णु शास्त्री के विचार में केवल गौत्र की ही चर, प्रवर की आवश्यकता नहीं होती चाहिए। प्रवर का विचार स्त्रोत माने स्पष्ट किया जायगा, वहाँ इनका कर्त्तव्य वर्णित है। वे प्रवर में एक, दो, तीन या पाँच प्राचीन ऋषियों के नाम होते हैं, वे प्रागः मन्वन्त्र्या ऋषि हैं। गौत्र और प्रवर के ऋषियों में यह भिन्न है कि प्रवर में अग्रज प्राचीन वंश के वंशधारी तथा विश्वामित्रादि आठ गौत्रधार ऋषियों के पूर्वजों का सम्मेलन होता है, पाचका ऋषि प्रवरों में वर्तमान ऋषियों के वंशज है। उदाहरणार्थ, जमदग्नि गौत्र के प्रवर भार्गव, जमन और भाग्यवान् जमदग्नि के पूर्वज हैं। अतः स्पष्ट है कि प्रवर प्राचीन ऋषि हैं और गौत्र उनके वंशज समूहों के नाम हैं।^५

३. प्रवरवर्ज्यरी, पृ० ६

४. गौत्रप्रवर निरुपपत्त्यम् पृ० ११ तथा ६७ 'विश्वामित्रो जमदग्निर्भारद्वाजोऽत्रि गौतमः। अत्रिर्बलिष्ठः कश्यप इत्येते सप्त ऋषयः। सप्तमातृपौत्रात्मनस्यारम्भमात्रं व्यवस्थां तद् गौत्रमित्युच्यते।' इत लक्षण के अनुसार गौत्र सप्त का प्रयोग उपर्युक्त आठ ऋषियों की उत्पत्ति के लिए होता चाहिए। किन्तु वहाँ यह बताया जा चुका है कि बीरामन द्वारा, ताबों और एक करोड़ गौत्र मानता है। आठ गौत्रों तथा एक करोड़ गौत्रों में एकत्र विरोध है। बुधजीवन ने इसके समाधान का एक विचार प्रस्तुत किया है (गौत्र-प्रवरनिरुपपत्त्यम् पृ० १०४, १०५) की एक के गौत्रों में पञ्चकुलाना मान है (पृ० पु० पु० २०६)। यदि यह विश्वामित्र आदि ऋषियों के लिए गौत्रधार सप्त का प्रयोग करता तो वह संभव्यता दूर हो सकती थी। बुधजीवन ने एक स्थान पर यह भी लिखा है कि गौत्र कितने करोड़ हैं यह हम नहीं जानते (नियमः कीर्तितव्या गोत्राचारानि न विद्यः—प्रवरवर्ज्यरी [वे वे] पृ० ६६)। स्मृत्यनुसार (पृ० १५) ने इनकी संख्या अनन्त करी है।

५. गौत्रों के होते हुए प्रवरों की व्यवस्था इसलिए की गयी है कि गौत्र सप्त का प्रयोग अहिंसावादी वर्ग (Exogamous group) तक सीमित न रह कर इनके अन्तर्गत उपजेवों तथा पृथक् परिवारों के लिए भी होता था। काश्यप अपने की कश्यप गौत्र का ही नहीं, किन्तु इसके एक भग्न भागुरि गौत्र का भी कहते लगे थे, अस्तुतः भागुरि कश्यप गौत्र के एक गण का उपविभाग है। गौत्र का प्रयोग बंधु के वर्ग में भी होता था, अतः गौत्र का ऐतिहासिक अर्थ न रहने से उसके साथ प्रवरों की भी व्यवस्था की गयी (अन-पृ० पु०, पृ० ४-५)।

इन ऋषियों के आचार पर प्रवरों का वर्गीकरण किया गया है—भृगु, अंगिरा, अत्रि, विश्वामित्र, कश्यप, बभ्रुवर्ध और अगस्त्य । ये ऋषि उपर्युक्त आठ गौतमर ऋषियों से कुछ भिन्न हैं क्योंकि प्रवरों के ऋषियों में भृगु और अंगिरा बड़े नाम हैं और गौतमों में वे कमजोर, गौतम और भारद्वाज का उल्लेख नहीं है । किन्तु यह येर इस प्रकार दूर किया जाता है कि भृगु में अमरवर्णि का तथा अंगिरा में गौतम और भारद्वाज को सम्मिलित किया जाता है । विभिन्न ग्रन्थों में दी गयी गाँवों की तालिका में उन्हें यह स्पष्ट होता है । कि कमजोर वर्ण के विभिन्न उपवेष्टों (वर्णों) के प्रवरों के ५ नामों में गौतम अर्वात्, अर्वात्, अमरवर्णि और अमरवर्ण, सब में समाप्त हैं । गौतम गाँव के विभिन्न वर्णों के प्रवरों में अंगिरस और गौतम के नामों की तथा भारद्वाज गाँव के विभिन्न वर्णों के प्रवरों में अंगिरस, भारद्वाज और भारद्वाज के नामों की समाप्ताता ॥ प्रवर के सम्बन्ध में बौधायन का यह प्रतिज्ञ नियम है कि प्रवरों में यदि एक ऋषि का ही नाम पुकारा जाय तो भृगु तथा अंगिरा वर्णों के अंगिरस तर्जय, कश्यप-गौतमा समस्तर्जय बाधिए ।^{१६} इस नियम के अनुसार अमरवर्णि, गौतम, भारद्वाज अर्थात् प्रवरों की रचना भृगु तथा अंगिरा वर्णों में की गयी है । ये स्वतन्त्र बहिर्विवाही वर्ग किंसे जाते हैं । इनके सिवाय भृगु तथा अंगिरा वर्णों में कुछ अंगिरस वर्ग की गिने जाते हैं । इनके सम्बन्धाधीन ग्रन्थों में केवल भृगु तथा अंगिरा वर्णों का उल्लेख किया गया है । इनके प्रवरों के ऋषिनामों में अमरवर्णि वर्ण की भाँति गौतम नामों की समाप्ताता नहीं है, किन्तु केवल एक नाम अर्वात् या अंगिरस की ही समाप्ताता है, अतः इनमें ॥ प्रत्येक स्वतन्त्र बहिर्विवाही वर्ग है । केवल वर्णों में इन प्रकार के चार वर्ग—मरुत, कश्यप, भृगु और अंगिरा हैं और केवलगिरसों में संहति, ह्रित, कण्व, रवीश्वर, भृगुगण और विष्णुवृक्ष नामक छः वर्ग । इन दस वर्णों में यदि पहले आठ अर्वात्, भृगु (अमरवर्णि), गौतम, भारद्वाज, अत्रि, विश्वामित्र, कश्यप, बभ्रुवर्ध और अगस्त्य ॥ वर्ग जोड़ दें तो बहिर्विवाही इकाइयों की कुल संख्या १५ होगी ।^{१७}

गौतम, प्रवर और प्रवर का सम्बन्ध निम्न उदाहरणों से स्पष्ट हो जायगा । बौधायन के अनुसार पहले बड़े गाँव भृगु अथवा अमरवर्णि गाँव में अत्रि, विश्वामित्र और कश्यप नामक चार वर्ग हैं । इन वर्णों में से प्रत्येक के अनेक वर्ग, पक्ष या रस हैं, उदाहरणार्थ, अत्रि

^{१६} प्रवरर्जवरी, पृ० ११—एक एव ऋषिर्वायवप्रवरैश्चानुवर्तते । तावत्समाप्त-गीतम्-अथवा अनुवर्तमाना गम्यात् ॥ भृगु तथा अंगिरा वर्णों में उस असमीप्ताता के नियम का पालन न करने का क्या कारण था; पुण्योक्त्य से इसकी बड़ी मनोरंजक व्याख्या की है, उसने भक्तानुसार बौधायन ने भूमि गौतम गाँव का प्रयोग अपने निर्विष्ट आठ ऋषियों के लिये किया है और उनमें भृगु-अंगिरा का नाम नहीं है, अतः उस पर सौम्यता के निमित्त का नियम नहीं लागू होता (प्रवरर्जवरी, पृ० १२) ।

^{१७} इनके स्वतन्त्र तथा विस्तृत वर्णों के लिए देखिए अत्र, पृ० ११-१७ ।

मण में वास्तव्य, मार्कण्डेय, मार्कण्डेय, मार्कण्डेय, कांसव, आलेखन, मार्कण्डेय, मार्कण्डेय, मार्कण्डेय आदि ७२ वर्ग हैं (कुल ५० ७६-८५)। इन सब वर्गों का प्रवर पाँच ऋषियों नामा—भार्गव, व्यास, आनन्द, और और नामवाच्य होता है।

दृष्टव्य गण विद है—इसमें विष्वक्, अक्षरवर्ण, मार्कण्डेय, अक्षरवर्ण, अक्षरवर्ण आदि १६ वर्ग हैं, इस गण का प्रवर श्री पाँच ऋषियों के नाम नामा है। इनमें पहले चार नाम वस्तुगण जैसे हैं, पाँचवाँ नाम अक्षरवर्ण के स्वर में है। तीसरे गण में आदिपदेन वैश्व, मार्कण्डेय आदि १० वर्ग हैं। इनका प्रवरवर्ण प्रवर इस प्रकार है—भार्गव, व्यास, आनन्द, आदिपदेन, कालुष्य। इस गणों में अक्षर में विचार नहीं होता। चौथे गण में अक्षर, वीर, गुण, वाचस्पति २२ वर्ग हैं। इनका प्रवरवर्ण अक्षर भार्गव, वैश्व, मार्कण्डेय है (कुल ५० ८२)। निम्न गण में रोप्यवाच्य, मार्कण्डेय आदि १२ वर्ग हैं और इनका स्वरवर्ण प्रवर इस प्रकार है—भार्गव, व्यास और देवोदास। शीघ्रगण में वैश्व, मार्कण्डेय और पाँच नामक वर्ग हैं और उनका स्वरवर्ण प्रवर है भार्गव, वैश्व, मार्कण्डेय। इनका गण में अक्षर वर्ग हैं। इनका प्रवरवर्ण प्रवर वीरवर्ण का नाम है। इन गणों में से अक्षर म चार केवल मूल के गण हैं, अतः इनमें परस्पर विचार हो सकता है। जो गण और प्रवर का पारस्परिक सम्बन्ध बोधायन के आधार पर बनायी गयी जनसंख्या गण की निम्न तालिका में स्पष्ट होता है।

जनसंख्या गण

संख्या	गण	प्रवर
१	वैश्व	आदिपदेन, वैश्व, मार्कण्डेय, वैश्व
२	मार्कण्डेय	आदिपदेन, वैश्व, मार्कण्डेय, वैश्व
३	वैश्व	आदिपदेन, वैश्व, मार्कण्डेय, वैश्व
४	वैश्व	आदिपदेन, वैश्व, मार्कण्डेय, वैश्व
५	अक्षर	आदिपदेन, अक्षर, मार्कण्डेय

इस सूची से यह स्पष्ट है कि सब गणों के प्रवरों में अक्षर नाम आता है, अतः सब में परस्पर विचार नहीं हो सकता। अतः प्रमाण गणों के अनेक गण हैं, प्रत्येक गण में अनेक वर्गों या वर्गों के नाम पाये गये हैं। जो सब सम्बन्धी विभिन्न ऋषियों में दिये गये इन नामों की संख्या पाँच हजार के समान है।

गण विषयक ग्रन्थ

गणों की गणना सब प्रथम मूल साहित्य में की गयी है और इन्हें प्रवरवर्ण, प्रवरवर्ण या प्रवर वर्ण का नाम दिया गया है। होता तथा वाचस्पति के प्रवरवर्ण के लिए

संभवतः इनका जन्मन हुआ, जति वे साक्षिक कर्मकाण्ड में अन्तर्गत के परिवार का प्रवर हुआ पीति से एक सत् (दे० नी० पृ० ४२)। इसीलिए इन प्रवरों के प्रथम उपलब्ध भोक्तृत्वों में है। अन्तर्गत के वाच्यसायन भोक्तृत्व के प्रवर काण्ड में इत प्रवृत्ति की संज्ञिका उपरोक्त मात्र है, इसमें मोक्ष के उपरोक्तों (गर्भों) का ही केवल उपलब्ध है, किन्तु इन गर्भों के विभिन्न उपलब्धों का वर्णन नहीं है। उदाहरणार्थ, बुधु मोक्ष के लक्ष्यस्थितियों तथा किंदों के उपलब्धों का बोधायन की तति निर्दिष्ट नहीं है, केवल उनके प्रवरों का वर्णन है और प्रवरों में ही होता है ही प्रवार दिखे अथे हैं, अन्तर्गत के प्रवरों का निर्दिष्ट नहीं है। अन्तर्गत के भोक्तृत्वों—आवस्तम् और ध्रुवस्थेयो (सुताभाङ्ग) भोक्तृत्वों में प्रवराभ्याय है, आवस्तम् की सुपी वाच्यसायन की सुपी के प्राय निर्दिष्ट है।

बौद्धायन ने सर्वप्रथम श्रविक मोक्ष में समान प्रवेश रखने आते नवों के परिवारों की विस्तृत सूची दी। इससे सादृश्य रखने वाचो सुविधा कायदायन वीर लीलासि की हैं, ये पुष्पोत्सव की प्रवेशवादी में पर्वी जाती हैं। एक ऐसी अन्य सूची वैश्वानर धर्मसूत्र में भी है, जो बौद्धायन से प्रसिद्धि की सभी प्रतीत होती है। बौद्धायन की सूची में तथा कायदायन आदि लोक इन्हीं की सूचियों में मुख्य मोक्षों के रूपों में विलित नवों में बड़ा अन्तर है। ऐसा प्रतीत होता है कि कायदायन की सूची सबसे पहले तैयार की गयी। इसमें मुख्य मोक्षों, नवों तथा इनके प्रयत्नों की सूची मिलती है। काम और स्थान के से इन परिवारों में अन्तर आया गया। बौद्धायन संभवतः कायदायन के स्थान और काम की परीक्षा मिलता रहता है। इसके अतिरिक्त, यह इसका विस्तृत प्रतिपादन करने वाला पहला व्यक्ति था, यद्यपि उसकी सभी वाक्यसाधन की सूची से बिना और बिना है।

उपरोक्त सूत्रग्रन्थों के अतिरिक्त योंगों का सम्यक प्रमाण एवं से निम्न ग्रन्थों में है—महाभाष्य (१३४४-१६, १२१६६१७-१८), मत्स्यपुराण (अध्याय १२५-२०२), वायुपुराण (अध्याय ८७-८९), स्कन्दपुराण (छात्राचार्य काण्ड ३१२), स्मृत्यसंग्रह (५०१५-१७), संस्कारप्रकाश (१० १२१-६८०), निर्णयसिन्धु, संस्कार-छन्दसाभा (४०३-४५३)। पञ्चकाश में श्रौतों १२ स्कन्ध रूप से बनेवा प्रत्येक विधि गये, इसमें पुरुषोत्तम श्रद्धा की विशेषप्रशंसाहीन सर्वश्रेष्ठ है, इसमें बीषाकन,

इसका नाम 'सोले-प्रवरनिष्पन्नम्' है, इसी का एक मुख १८०३ में सेंट-
मर ग्रेस कन्वेंट ने दिया है, यही प्रत्यः एक अक्षर इसी संस्करण के मातार पर
लिखे गये हैं। इसमें निम्न शब्द हैं—सुखोत्पन्न धर्मित की प्रवरसंघरी, कमलाकर
चंद्र का प्रवरसंघ, कदाचित्तम जलजी का कने-प्रवरसंघ, विष्णुविष्णु,
मातृमातृ और मातृमातृ के प्रवरसंघ (ये कथाकथ्य प्रवरसंघ धर्मित तथा
अधर्मितधर्म के नाम कथित हैं) तथा सोलेप्रवरनिष्पन्न। इस शब्द का निर्वृत
शब्द नीति (ये, ये) के लिये प्रयुक्त है।

सापेक्षता, आस्था, सौभाग्य, सम्पत्तायन और भस्मपुराण के विवरण अधिकतम रूप में दिये गये हैं। एक के मत में बहु संभवतः १२वीं शती से पहले लिखी गयी थी। यह १६०० में मैसूर गवर्नमेंट औरिफ़्टल लाइब्रेरी सीरीज में चेन्नसन्नराय द्वारा सम्पादित होकर गोल-अक्षर छम्बन्धी अन्य अध्यक्षासीत वर्णों के साथ प्रकाशित हुई है। इस विषय का दूसरा ग्रन्थ कामलाकर शर्मा का प्रवरदर्पण है, यह प्रवरमंजरी की अपेक्षा अधिक संक्षिप्त, संयुक्त और व्यवस्थित है। यहाँ इन सबके आधार पर इसका संक्षिप्त वर्णन किया जायगा,^१ किन्तु इससे पहले बोले का अर्थ जान लेना आवश्यक है।

गोल शब्द के विभिन्न अर्थ

संस्कृत के साहित्यिक कोशों में गोल उधे कहा गया है, जो पूर्वी गुरुओं की घोषित करता है।^{१०} किन्तु इस शब्द की यह व्युत्पत्ति संभवतः इसकी प्रयोग की देवकर, उसके आधार पर संक्षिप्त की गई है। वैदिक साहित्य में इसका यह प्रधान अर्थ नहीं था। श्रुत्येव के अनेक स्थलों में इस शब्द का अर्थ गोशों का बाहर या समूह है।^{११} इसके अतिरिक्त इस शब्द ■ निम्न अर्थों में भी प्रयोग है—बाधन, बाधन में पहुँच वाला वेश, बाधनों को छिपाने वाली पर्वतमाला या पर्वतशिखर।^{१२} जैसे बीएँ बाँधें में कहाँ जाती हैं, वेमे अल वेह

^{१०} वर्तमान समय में प्राचीन गोल पद्धति का सर्वोत्तम वर्णन श्री कृष्ण के 'वी अर्थों साहित्यिक संक्षिप्त आध गोल एवं प्रवर' (सं. १९५५) में मिलता है। इस विषय में अन्य अर्थों और लेखों में भिन्न सम्बन्धीय हैं—

अरन्वीकर—हिन्दू एथनीकोमी, वैदिक साहित्य में गोल प्रवर के लिए बैलिष्ट पाँच-रंग नामन काने का लेख—बाम्बे शोध और प्रगत ऐतिहासिक सोसायटी, न्यू सीरीज १९३५ का दूसरा खण्ड तथा हि० अ० चं. २, भाग १, पृ० ४७६-४८०; बाभेदेर धर्मसिद्ध कोलम्बी—आन बी. ओरिफ़िकल ऑफ़ बाह्यन गोलार्क, वर्तमान अल बी बाम्बे शोध और प्रगत ऐतिहासिक सोसायटी १९५०, पृ० २१-८०। भिन्नानि विमलक बंध ने हिन्दूरी आन मिहोवत इतिहास के खण्ड २ के एक परिशिष्ट में गोशों और प्रवरों को विवेचना की है। ईसा. रिसे. ई. के खण्ड ६, पृ० २५१-५८ में फिर से इस विषय का संक्षिप्त विवेचन किया है। कर्नल कट ने 'वैदिक साहित्य में गोशों का विवेचन' अर्पण आन प्रगत ऐतिहासिक सोसायटी के १९४६-४७ के अर्थों में किया है।

^{११} गणकल्याणम्, द्वितीय भाग, पृ० ३५५ 'मन्त्रे सम्पत्तौ, पुनश्चकाम् पसम् गोलम्'।

^{१२} अ० १।५।१३, २।१।१।१, ३।३।१५, ३।४।१५, ६।५।१२१, १०।५।२१, १०।१।२०८।

^{१३} अ० २।२।३६, १०।१०।३।७, अथर्व० ६।२।५, मनु० १।७।१६, अ० ६।१।३।२, १०।१०।३।६।

में व्यवस्था रहता है, संभवतः इस व्यवस्था के आधार पर गोत्र का अर्थ स्पष्ट हुआ। कुछ स्थानों में गोत्र का प्रयोग समूह के अर्थ में भी हुआ है (च० २।२३।१८, ५।१५।१)। इससे इस शब्द का प्रयोग व्यक्तियों के समूह में भी होने लगा और धीरे-धीरे गोत्र को वर्तमान अर्थ प्राप्त हुआ। यद्यपि आरम्भ में एक सामान्य पूर्वज के बंधों के लिए गोत्र शब्द के प्रयोग का पुष्ट प्रमाण नहीं है, किन्तु इसमें कोई संदेह नहीं कि वैदिक युग में यह विचार प्रारम्भ हो गया था, अथर्ववेद में "विश्वगोत्र्यः" (एक परिवार वाले) शब्द में गोत्र का स्पष्टांतर का सम्बन्ध से संबंध व्यक्तियों के समूह के लिए हुआ है।^{१३} कौत्तिक सूत्र (४।९) में गोत्र का इसी अर्थ में प्रयोग है।

पाणिनि ने गोत्रों के सम्बन्ध में बहुत विस्तार से विचार किया है। अन्त्याध्यायी के सबसे विस्तृत प्रकरण 'तादित' का एक बड़ा भाग—अपत्याधिकार इसी विषय पर है। इससे यह स्पष्ट है कि उस समय गोत्रवाची लोगों का बहुत प्रचलन था। पाणिनि के मत में गोत्र से आगे की सन्तान गोत्र कहलाती है (५।१।६३)। अपत्याधिकारी लोगों के तीन बड़े भेद हैं—अनन्तराध्याय, गोत्रोपस्था और युवाध्याय। पहले भेद का अन्वर्थ है, जिसके गोत्र में किसी दूसरे मनुष्य का अन्तर या व्यवधान न हो, जैसे मर्ग का मनुष्य यागि कहलायेगा। इस गोत्रि का मनुष्य या मर्ग का गोत्र उसके अनुसार शायद कहा जायगा। गोत्र के बाद की सन्तान गोत्रोपस्था कहलाती है। गोत्रोपस्था का एक भेद युवाध्याय है। युवाध्याय पात्र्य नहीं किन्तु गोत्रोपस्था कहा जायगा। पाणिनि ने विशेष प्रसंगों द्वारा ऐसे बनेक कुत्रों के गोत्र-वाचक नामों की निरूपणा की है और गणपाठों में इस प्रकार के अनेक उदाहरण दिये हैं। यहाँ पाणिनि का गोत्र पारिवारिक शब्द है और उसमें स्वयं अपत्याधिकार प्रकरण से अन्वय गोत्र शब्द का प्रयोग एक सामान्य पूर्वज के बंधनों के लिए किया है।^{१४}

पाणिनि के कुछ सूत्रों से यह स्पष्ट है कि उसे प्रवरसूत्रियों वाले गोत्रों का महत्त्व जान था, क्योंकि एक सूत्र (५।१।१२०) द्वारा उसने प्रवर और वस्त गोत्रों के अर्थ में आचक्षत्ययन और गोत्रोपस्था शब्द बताये हैं तथा अन्य अर्थों में आचक्षत्ययन और गोत्रोपस्था। एक सूत्र (५।१।१०८) में उसने आचक्षत्ययन गोत्र के लिए आचक्षत्ययन शब्द का निर्देश किया है। कुछ गणपाठों का प्रवर-सूत्रियों के साथ पर्याप्त सादृश्य है। अन्त्याध्याय में आचक्षत्ययन आचक्षत्ययन गोत्र के साथ आचक्षत्ययन आचक्षत्ययन गोत्र के अर्थ में दृष्टा गया है। गणपाठ प्रवर-सूत्रियों की अपेक्षा अधिक शुद्ध रूप में सुसंज्ञित रहे हैं, अतः गोत्रों के इतिहास के दान में अधिक सहायक सिद्ध हो सकते हैं।^{१५}

^{१३} अथर्व. ५।२१।१ 'आमस्तथाः संभृत उदित्यानिदिवागोत्र्यः'।

^{१४} २।४३६३ अन्त्याध्यायी गोत्रे, ५।३।८० गोत्रोपस्थासूत्र सूत्रों की कालिकावृत्ति देखिए।

^{१५} इस विषय का विस्तृत विश्लेषण डॉ. व. क. के. १६५६ के जर्नल अथर्व रामन एशियाटिक सोसायटी के एक लेख (पृ० ४१ अनु०) में है।

मेधातिथि द्वारा गोल गन्ध की व्याख्या

गोल के सामान्य प्रचलित अर्थ की मन्दरतम व्याख्या मेधातिथि में की है। वह अनु ३५ तथा १६४ की टीका में बरपात की व्याख्या करता हुआ लिखता है—“सर्व भूतों के मुख्य रूप से सुख होने पर जैसे उनमें बाह्यार्थों का भेद है, उसी तरह इन्द्रियों के रूप में उनके सुख होने पर भी उनमें समिष्टादि भेद का भेद है और जिन गोल में प्रसर का भेद है। पूर्वकार गोलभेद सम्बन्ध से प्रसर को इस प्रकार मान रखने है कि जिसमें वह गोल है उसके में प्रसर है। गोल भेद उस भेद में उत्पन्न क्योंकि इस प्रसर, मान रखने है—इन परास्तर गोल के हैं, रूप उपपन्न गोल के हैं। यह बतलाना है ? गोल ‘उम आदिपुष्प’ का नाम है, जिनमें कुस की मह संज्ञा (नाम) दी है; जो विद्या, धन, भोग्य, वीर्य आदि सुखों से बहुत अधिक प्रसिद्ध होता है और जिसके नाम पर कुस का नाम रखा जाना है। यही, पालक ग्राहि ऐसे पुरुषों के नाम पर बाह्यार्थों के गोल हैं। गोल की इतनी व्याख्या करने के बाद, मेधातिथि जागे जो लिखता है उसमें स्पष्ट है कि उसे इन गोलों के रक्त सम्बन्ध प्रत्यक्ष होने में कुछ संदेह है। वह कहता है—गोल गन्ध वसिष्ठ आदि मुख्य गोलों के साथ कवि के कारण समाया जाता है। वह नहीं जाना जो संख्या कि एक समय में परास्तर गोल का व्यक्ति पैदा हुआ और उसके बाद उसके बीच परास्तर पड़ने लगे। यदि यह मान लिया जाय तो वेद बनादि नहीं होता, क्योंकि उनमें परास्तरों और वसिष्ठों का वर्णन है। इसलिए गोल, बाह्य आदि और वेद की तरह बनादि है। मन्त्रिय बाह्यों की तरह गोल को निम्न स्तर नहीं करते। अतः उत्तर गोल मौक्तिक ही है जबान् प्रसिद्धतम आदिपुष्प की ही गोल समझना चाहिए।”^{११}

इस व्याख्या से स्पष्ट है कि गोल दो प्रकार का है—वास्तवीय और मौक्तिक। वास्तवीय गोल वह है जो स्मरण-परम्परा से अवधि प्राप्त से बना जाता है और मौक्तिक वह है जो वाचिक के मन्त्रमुक्तार बल का कृपित करता है। शक्तिजों से यह गोल ऐसे व्यक्तियों के नाम से भी बनता का जो नये राजवंशों की स्थापना करते हैं। ये राजा वंशवत् कहलाते हैं। गोल के वास्तवीय एवं मौक्तिक अर्थों के भेद को अच्छी तरह समझ लेना चाहिए। निशाङ्गराकार विजलेस्वर (११२३) जो गोल की चक्रमूलक मानते हुए लिखता है कि गोल ब्रह्मपरम्परा से प्रसिद्ध होता है। मध्यकाल के निबन्धकारों में भी गोल का चक्रमूलक माना है (सं० पृ०, पृ० १६३)। गोल के अर्थ की विस्तृत चक्रमूलक व्याख्या होने से यह धारणा प्रचलित होना स्वाभाविक था कि गोल चक्र-सम्बन्ध का साधक है। किन्तु गोल विषयक यह धारणा समीक्ष में लय नहीं। वाचिक की परिभाषा का गोल स्पष्ट रूप से वास्तविक चक्र-सम्बन्ध को बताता है, किन्तु वास्तवीय एक प्रचलित गोल कतिपय तथा

कल्पित संज्ञा-नाम्यन्त्र को ही स्तुति करता है। यह वास्तविक ऐतन्मन्त्र का घोटक नहीं है।

गोम-प्रवर के ऐतिहासिक विकास की अवस्थाएं

हिन्दू समाज में प्रचलित गौत्र और प्रवर का विचार कई अवस्थाओं में से होकर गुजरता है : (१) वैदिक युग में गोत्र का विचार बीच काल में था। (२) ब्राह्मण ग्रन्थों के निर्माण तथा ऋषिकाल की बुद्धि के समय पालिक प्रक्रियाओं में गोत्र और प्रवर की आवश्यकता अनुभव हुई और इनकी यह पद्धति प्रचलित हुई। उस समय ससगोत्र एवं असमाप्त प्रवर में विवाह करने का विचार प्रचलित हुआ। (३) गोत्र के निकास की तीसरी अवस्था भूतग्रन्थों के निर्माण के समय में थी। इन ग्रन्थों में सर्वप्रथम कुलसम्बन्धिता संगोत्र विवाह की निर्णय की और उसने कुछ हल्के प्राथमिकता रखी। (४) २०० ई० के पश्चात् गोत्र का अग्रगण्य बहुत बढ़ा दिया जाने लगा। संगोत्र विवाह को सगोत्रोद्भव के समान पाए जायता था। १२०० ई० तक यही रहा। (५) १२०० ई० के पश्चात् संभवतः संगोत्र विवाह अन्त हो गये। निम्नग्रन्थों में इसके प्राथमिकता में कुछ भिन्नता को और विधान परिजात प्राय में ही संगोत्र नर के पदाती कन्या के पुनर्विवाह की व्यवस्था की। (६) १०वीं शताब्दी से सामुहिक युग शुरू होता है। इस समय गोत्रों के इतिहास, अनात्मिक एवं परैसाद कर आने प्रतिक्रिया की हिन्दू धर्मार्थ से हटाने का आर्थीयन शुरू हुआ। परिणामस्वरूप १६४९ ई० के ३०वें सामुहिक के अनुसार सभा गोत्र-प्रवर में विवाह को रोक दिया गया और हिन्दू काल से संगोत्रता के कानूनी प्रतिक्रिया का अन्त हो गया।

बैदिक युग में गोश्र

इस समय गोक की जमीन बहुत कम मिलती है। ज़रबे में गोक राज्य बहुत थोड़े स्थानों पर आया है।^{१२} इसमें से थार स्थानों में तो बहुत दूर तक बसेय का बांधक है। यहां गोक राज्य प्रायः इन की स्तुतियों में आया है और उसे बहुतों का दासों का साजने वाला कहा गया है। क्षीर स्थानों में इसका क्या अर्थ है, इस विषय में टीकाकारों में पर्याप्त मतभेद है।^{१३} आधुनिक टीकाकारों में राज में सेप्टीपीटस वार् कोश में इसका अर्थ गौरी का बाढ़ (गोष्ठ) या गोष्ठावा किया है और मैकडनर इस अर्थ से असहृष्टि प्रकट करता हुआ इसका समुह करता है। समुह आशंक गोक राज्य का बाढ़ में स्थानों के समुह का

१० अ० ५५५५२, ६५५५३, ७०५५४, ७०५५५, ७५५५६ को पौनर्मास्य
सप्तम्यं ही हरिः । स इत्यं चित्तां मन्त्रिण्यिष्यत् ।

१८ ॐ० ६१६५५, १०११०३१३, २१२२११५८

72. **श्रीविष्णु दर्शनसूत्र, भा. १, पृ. २३३, पद अष्टम**

अर्ध-वेला सर्वथा स्वाभाविक था। किन्तु एक पूर्वज द्वारा प्रवर्तित बंध परम्परा के अर्ध से षोडश घण्टा का अन्त्येष्ट में प्रयोजन नहीं है। अर्धवेद के एक भन्त (१।२१।३) में यह बंध अवश्य उपलब्ध होता है।

मैत्रसमूखर की गोत्र विषयक कल्पना

शीघ्रवाची गोत्र शब्द के आधार पर मैत्रसमूखर द्वारा कल्पनाओं के बड़े भूतल बड़े किये गये हैं। कहा जाता है कि प्राचीन काल में बड़ी-बड़ी कर्मियाँ या वगैरह कम थे, जंगल बहुत थे। लोग वधू अधिक पासते थे। किसी रमान पर पानी और बाग की सुविधा अधिक देखकर वे वहीं बस जाते थे। बड़ी अपने पशुओं के साथे बना देते थे। इन पशुओं के बाड़ों को गोत्र कहा जाता था। बाड़े को गोत्र कहने का कारण यह है कि बाड़े में गीलों की रक्षा की जाती थी (गावः छाकले यत्), उनके चारों ओर दीवार बाड़ की बाधा बड़ी करके उन्हें हिल पशुओं के आक्रमण से सर्वथा सुरक्षित कर दिया जाता था। गीलों की रक्षा न केवल जिस पशुओं से करनी होती थी, किन्तु गीलों का बुराने वाले लोगों और साकामकों से भी इसकी रक्षा आवश्यक थी। अतः इनके चारों ओर किन्हीं वस्तुओं की जाती थी। श्री मैत्रसमूखर ने इस बात का प्रतिपादन इस प्रकार किया है—“प्राचीन काल में बहुत सी वक्रार्था वस्तुएँ नहीं लड़ी जाती थीं कि एहिन्द्रा और यूगोप के किंग्डी राजाओं में अति बड़ा संतुलन रहा था। किन्तु वे वक्रार्था अन्को वक्रावाहों को गोत्र के लिए और पशुओं के बड़े-बड़े समूहों को हथियाने के लिए लड़ी जाती थी। स्वसाधनः चारों ओर किने की दीवारों से मजबूत किये गये पशुओं की इन बाड़ों में दुर्गों का रूप धारण किया। एणोसैसन नाम में बाड़े के लिए (Tud) जर्मन में (Zaun) बना था, यह शब्द बाद में (Towd) बन गया। जो लोग एक बाड़े की दीवारों के अन्दर रहते थे वे एक गोत्र, परिवार, कबीले या जाति वाले कहलाते थे।”^{२०} जिसके पास अधिक संग्रह में पशु होते थे वह स्थान उसी के नाम से प्रसिद्ध हो जाता था। कहा जाता है कि वसिष्ठ परिवर्तित जाति गोत्र प्रवर्तक ऐसे ही व्यक्ति थे। बाद में किसी स्थान में अधिक सुविधा देखकर अन्य लोग भी वहाँ आ जाते थे, किन्तु जब वसिष्ठ पूछा जाता था तो वे कहते थे कि इस वसिष्ठ गोत्र अर्थात् वसिष्ठ की गोलासा के हैं, या धारदात्र गोत्र या नरदात्र के गौत्रों के बाड़े से सम्बन्ध रखते हैं। इसका अर्थ इतना ही था कि मैं लोग उन वसिष्ठदि पशुओं के बाड़ों में रहते थे। इसका यह अर्थ नहीं था कि ये उनके संबंध थे, किन्तु वास्तविक रहने से हमें पारिवारिक स्नेह का भाव उत्पन्न हो गया था। वे लोग एक-दूसरे को आपस के अनुसार भाई-बहिन, आभा-मतीअर, पिता-पुत्र सम्बन्धित मने। जब एक को भाई कह दिया तो उसकी बहिन से विवाह करने का भविस्य अपनी बहिन से वादी करना

वा। यह बर्धन माना जाता था अतः एक गोत्र वालों में छात्री न करने की मनाही लग पड़ी।”

निःसन्देह यह कल्पना बहुत मनोदंजक है। ‘मज्झिम’ जिस कहानी को कथानक कहा है। किन्तु यह बेबस हवाई किला है, सारी कल्पना का आधार गोत्र का अर्थ बाड़ा मानना है। किसी प्राचीन लोग या टीकाकार ने गोत्र का यह अर्थ नहीं दिया, आधुनिक टीकाकारों में भी इसके अर्थ के सम्बन्ध में सन्देह है। यह विचारप्रवृत्ति अर्थ गोत्र के उद्भव पर प्रामाणिक प्रकाश नहीं डाल सकती।

वैदिक युग में गोत्र पद्धति के संकेत

वैदिक साहित्य में गोत्र पद्धति का स्पष्ट उल्लेख नहीं है, किन्तु इसके दो मुख्य प्रत्यक्ष महान् आविर्भावों के वर्णनों का अपने पूर्वजों के नाम से मिला हुआ होता तथा अदर (आर्य) गोत्र रूप में पाये जाते हैं। यही इनका मूलक वर्णन किया जायगा।

पञ्चमी पूर्वजों ■ तान वर वंशजों के नामकरण की पद्धति के पहले संकेत वैदिक साहित्य में है। ली. म. (१।८।१८।१) में होजा को मार्गव वर्णात् पुत्रु की संज्ञान कहा गया है। अथर्व वे. व. (८।१।१६।१) में नामकरण वर्णात् चमवर्णि की संज्ञान का स्पष्ट रूप से उल्लेख है। बाह्य पत्रों से यह बात होता है कि उस समय विभिन्न परिवारों में आधिक अनुष्ठान की विधियाँ एक जैसी नहीं थी। ली. वा. (१।१।४) के अनुसार पुत्रुओं या आश्विनियों के लिए भीत अग्नि का आधान ‘अश्विनो’ (आश्विनो) तथा वेदानां वतमते वतम वधावि’ के पत्र से होना था और अथर्व ब्राह्मणों के लिए यह कार्य ‘आश्विनो’ तथा वेदानां वतम’ के पत्र से। ली. वा. (२।२।६) में आश्विनो वतम (अश्विनो की संज्ञान) का उल्लेख है। तात्पर्य बाह्य में तान वर ब्राह्मण को अनुष्ठान का वतम वतम व्याख्या वधिका में वेने का विज्ञान है।^{११} कौषीतकि ब्राह्मण में यह कहा गया है कि विस्मयित् यज्ञ करने वाला अपने संपूर्ण ब्राह्मण के साथ एक वर्ष तक रहें।^{१२} ऐतरेय ब्राह्मण में भी यही कहा (३।३।३) के अनुसार शुभोप आश्विन (अश्विनो के वतम)^{१३} की आश में विश्वामित्र ने वैश्वदेव नाम से अपना वतम वतम। आश्विनो में गुरु विष्णो की प्रायः उनका गौत्रनामों से ही संबंधित करते हैं, अश्विनो के साथ गौत्रनामों नामों का प्रयोग होता है, जैसे वात्स्य, वतम, आश्विनो, अश्विनो और काश्विन (अश्विनोपनिषद् १।१), वैश्वदेव और वीतम (छान्दोग्य ५।१।५.५।१५।१), विष्णोपनिषद्, अश्विनो, अश्विनो (बृह० उप २।२।४)।

इन सब उदाहरणों से यह स्पष्ट है कि उपनिषदों में अथर्व एक गोत्रों की पद्धति

^{११} ली. वा. १।१।११२

^{१२} ली. वा. २।५।५

^{१३} ली. वा. २।३।४

कुप्रसिद्धि उत्त हो चुकी थी। पर उपर्युक्त उदाहरणों से लोगों का प्रसीत धार्मिक कर्मकाण्ड और निष्ठा के सम्बन्ध में स्पष्ट है, विवाह से इनका कोई सम्बन्ध नहीं बताया गया। इस विषय में संभवतः सबसे पहले जिनका ज्ञातमयान श्रीमद्भक्त में मिलता है।^{२४} प्रायः सभी गुप्त और धर्मसूत्र स्रोतों विवाह का निषेध करते हैं, इससे यह ज्ञान होता है कि यह विचार हम लोगों से काफी पहले अन्य से चला था। प्रथम और आर्य के वैदिक विद्वानों ने इसकी गृष्टि लीनी है।

प्रथम

इसका प्रथम ज्ञान वैदिक युग में दक्ष और पौनर्मय नामक ऋषियों में मिलता है। ये ऋषिद्वय अन्य सभी यज्ञों का आधार है, अतः इन सब में प्रथम का प्रादुर्भाव है। यह बात उस तथ्य से भी सिद्ध है, जब महा की अग्नि उड़ीय नाम की बानी (मामिषेयी) ब्रह्मा की एकदास बाव मध्यम युग अग्नि पर भी उड़ता है। यह संभव होता प्रथम का प्रादुर्भाव है। यह कहता है—हे अग्नि, तु ब्रह्मा है, मुझमें ब्रह्मस्थित है, तु जगत्, भूत, व्यसन, अन्नदान, अन्न और जलवर्षा से सम्बद्ध है।^{२५} इससे बाद विविध धार्मिक मन्त्र पढ़े जाते हैं, जिनमें यह कहा जाता है कि अग्नि वेवताओं और मनुष्यों द्वारा चलायी गयी है, वह अग्नि को जगत् प्रसंगिक तथा किरीटोत्तम प्रसंग की गयी है। (वेवेयो मन्त्रिः अग्निमनुमी विजामुसविः)। यह यज्ञों में इसी कर्मकाण्ड का अनुशासन किया जाता है और साक्षात् प्रतीति से यह ज्ञान होता है कि यहाँ होता का कार्य करने के लिए अग्नि का आह्वान किया जाता है। जब कि यज्ञाभ्युत्थार संभवतः इसी कारण प्रथम मन्त्र का प्रयोग किया गया, ^{२६} किन्तु बाद में इसका व्यवहार अधिपतियों की उस धूरी के लिए भी होने लगा, जो यज्ञों में गयी जाती थी।

तत्पश्चात् साक्षात् (१:५:१:१३) के इस विषय को स्पष्ट करने हुए नया ब्रह्म प्रचार का प्रथम प्रतीति है—'होता का काम करने वाला पुत्र जन्म तक होता नहीं है, मन्त्रार्थ उसे होता का काम करने के लिए निमन्त्रित करता है।' यही की प्रथमरी साक्षात् ज्ञान के बाद होता कहता है—कीर्ति, धन और ब्रह्मस्थित के प्रेम के लिए इस यज्ञ की घोषणा वेवताओं में तथा मेरी घोषणा मनुष्यों में करो। इसके बाद मध्यम युग अग्नि है—अग्नि वेव ही दिव्य होता है, किन्तु और जानने वाला वह वेवताओं के प्रति जैसे ही यज्ञ करे जैसे मनु ने, जलवर्षा ने, ऊर्ध्व ने, अपादान ने, व्यसन ने तथा ब्रह्मा ने किया था, वह न वेवताओं को यहाँ लावे—अमुक पुत्र मानवीय होता है। यह स्पष्ट है कि यहाँ प्रथम

^{२४} साध्या. श्री. धृ. ३:२:११

^{२५} तै. सं. २:५:१

^{२६} मन्त्र— प्र० ५०, प्र० ६

का सम्बन्ध शक्ति से है २७ किन्तु इसमें मन्देष्ट याह कि वह मानवीय हूँगा का वर्णन है, क्योंकि; उसे प्रभु की शक्ति यहाँ काज का कहा गया है ।

कर्मों पर प्रकाश होता है कि प्रत्येक कर्म में अग्नि को दुग्धाने के लिए ही गवीं प्रार्थना है १८ और वह दो प्रकार की होती है : (१) होता द्वारा की जाने वाली, (२) अथर्ववेदाङ्ग की जाने वाली । अथर्वी प्रार्थना में वरुण नाम के ब्राह्मणीय अग्नि को भार्गव, उषोमन, आश्विनान्, और्य तथा अमरवन्ध नामक पाँच मन्त्रद्वारा ऋषियों के नाम के द्वारा वे संबोधित करने हैं । इस प्रकार संबोधित अग्नि उनके हृष्य ॥ देवताओं तक पहुँचाया है, अंगारा नदी, ऐसा मानकर होता अग्नि से प्रार्थना करता है । दूसरी प्रार्थना में अथर्वी द्वारा मन्त्रद्वारा ऋषियों का नाम उनके ऊपर से लेकर प्रार्थना करता है जैसे अमरवन्धन्, उषोमन, आश्विनान्, आश्विनान्, मृगवन्, । अथर्वी द्वारा पड़े गये प्रत्येक ऋषियों के नाम वस्तुतः वे प्रकार की ओर अर्वाचीन तथा ऋषियों से प्राचीन वंशजों की ओर चलने हैं और होता मूलभूत प्राचीन ऋषि से प्रारम्भ कर कहा से उनके बाद के अर्वाचीन ऋषियों के नामों का पाठ करता है । १९ इस प्रकार सर्वेष्ट दो प्रकार के प्रवर्तों का पाठ होता है, पहले में ऋषि नामों का क्रम प्राचीन से अर्वाचीन की ओर होता है तथा भार्गव संहिता सूत्रों का प्रयोग होता है, दूसरे में ऋषिनाम अर्वाचीन से प्राचीन की ओर पड़े जाते आदि हैं और इन नामों से माघ वन का प्रयोग होता है ।

प्रवर की शक्ति में आर्योय भी कहा जाता था। ऋग्वेद में वेत्यम एक बार आर्योय राज्य का प्रयोग है और वहाँ इसका अर्थ है ऋषि से सम्बन्ध रखने वाला। ऋ० ११६७।११ में माह पार्वता की गयी है माह पवित्र करने वाले हैं, माह इमें धुसोक और धुसोक को उत्तम बनाने में निष्ठ, विशेष कम से ऐसी वस्तु जिससे हुए जयवर्गिन की भाँति ऋषि सम्बन्धी सम्पत्ति प्राप्त कर सकें। वैदिक युग में पौत्र और प्रवर की पद्धति अधिक विकसित नहीं हुई थी, प्रवरों का विशेष सम्बन्ध राजिक कर्मकाण्ड से था। पौत्र और प्रवर प्रधान रूप से ब्राह्मणों में अधिक प्रचलित थे क्योंकि ये राजिक कर्मकाण्ड किया करते थे।

२७ संस्काररत्नमाला (पृ० ४५६) में प्रवर की अग्नि का विशेषण पावले हुए प्रवर की यह व्युत्पत्ति की है—“प्रधियसे जागेहियेवनासेलेकीअर्थसे इति प्रवरम्”, अग्निपुं० के नाम अग्नि का विशेषण होने से प्रवर कहासाते हैं ।

सप्तमं च (गोवि० पु० ३) मातृशरीरस्य विषयकम् । अत्र च
अपि प्राचीनानि सवराः ।

२१ श्रीवाचन-अबराहम-अथवा अर्वागम्यर्षि-पतेऽमुतोदरीषी होतेव एवोम्यीः
 सर्वोद्देशः । इह पर प्रवर्तनरो नी दीका (५० १०) अतो मजपरापुष्पान्
 मन्त्रधिरम्यवहितान्—आह्वनीये धर्म्यते । अमुतो मूलभूतान्तरासम्भवि-
 तास्यस्यस्यः अथर्वः अथर्वमन्त्रिधर्म्यस्येव तद्वत्सर्वस्येव मर्म्यते तथेवास्मिन् ।

बहु कल्पना होता और अश्वर्षु के ऊपर बताये गये प्रवरों के योगों प्रकारों से भी पुष्ट होती है। होता के प्रवरों में अध्वर्यु के पास व्याकरण की बुद्धि के साथ मार्गिक जाति के कर्षों में गये जाते थे और अश्वर्षु के प्रवरों में बहु शब्द के साथ। पहले में होता की अपना कार्य करने के लिए निमन्त्रित किया जा रहा है, अग्नि प्राचीन काल से देवताओं का होता रहा है, अनुष्य को होता बनाने से शपथ के समयमानुसार अग्नि को ईर्ष्या और तारा-कामी होना स्वाभाविक है। अतः शतपथ ब्राह्मण कहता है।^{१०} कि पहले अग्नि का नाम लेकर उसे प्रसन्न किया जाता है। अश्वर्षु के द्वितीय प्रकार के प्रवर में बहु शब्द का प्रयोग बहु सूचित करता है कि यह साक्षिक भूमि टीका बीजे ही किया गया है जैसे अनु ने किया था, अतः यह अनु के प्रसन्न के अनुगत ही प्रभावशाली और लगन होगा।^{११}

प्रवर के प्रयोग की यह व्याख्या मैत्रायण और विश्वामित्र द्वारा की गयी इसके प्रयोग की व्याख्या से तात्पर्य मिले है। पहले विद्वान् के शब्दों में "अब ब्राह्मण व्याख्यादान करता है तो यह यह घोषणा करना चाहता है कि यह महा कर्म के लिए अपने पूर्वजों के अनुक्त योग्यता रखता है।^{१२} विश्वामित्र का कथन है कि प्रत्येक ब्राह्मण सब [] धार्मिक कार्य, अपनी साम्योपासना या देवताओं का आहुति करना है जो अग्नि अपने परिवार के संस्थापक महर्षिपूर्व पूर्वजों के नामों का उच्चारण करना पड़ता है ताकि यह यह प्रदर्शित कर सके कि योग्य पूर्वजों का वरदायिकारी होने के साथ यह उन कार्य को करने का उपयुक्त और अधिकारी व्यक्ति है।"^{१३} अतः इस बात के अनु-सार धार्मिक कार्य के लिए अपनी योग्यता सिद्ध करना ही ब्राह्मणों का प्रधान प्रयोजन है। किन्तु यह बात द्वारा बताये पहले उद्देश्य की तुलना में प्रथम नहीं प्रतीत होता। एक से अपने उपयुक्त प्रयोग के समर्थन में विभिन्न प्रमाण दिये हैं।^{१४}

वैदिक साहित्य में बहुधा विभिन्न नामों के साथ बहु शब्द के प्रयोग द्वारा अपने कार्य को प्राचीन समस्त व्यक्तियों के कार्यों के समान प्रभावशाली और महर्षिपूर्ण बनाने का वर्णन है। अश्वर्षु के एक मंत्र में कहा गया है कि मैं अग्नि, कण्व और जमदग्नि की जाति कुमियों को मारता [] अगस्त्य की बहुशक्ति से कीड़ों को चुर्च करता

१० शतपथ ब्राह्मण १।४।२।३ महर्षि वास्तव में विद्वान् शब्द का प्रयोग है, इसके अर्थ के लिए वे० बक—पृ० ५०, पृ० १७।

११ अथ, वही, पृ० १८ अनु

१२ मैत्रायण—हिन्दवी मात संस्कृत सिद्धिरेकर, पृ० ३५६

१३ विश्वामित्र—गीत एण्ड इकर पृ०, मि० बीमिर वित्तिमन्त्र ब्राह्मणिक एण्ड हिन्दुधर्म (१८५७), पृ० ४०६०

१४ अथ—पृ० ५०, पृ० १८ अनु०

है।^{३४} अन्ततः अग्नि से सप्तर्षी की मूर्ति समुत्पन्न को यज्ञे के लिए कहा गया है (ऋ० १७।१७।२, अथर्व० २।३।२१)। अथर्व० १।१।४।४, २।३।३।३, ४।३।१।१, ५।४।०।१, ६।५।२।१ में इन प्रकार के उदाहरण हैं। इन सबमें मुख्य प्रतिष्ठित नामों का प्रयोग इसप्रकार है कि इनके नाम के प्रभाव से अतीवष्ट परिणाम उत्पन्न हों।

आग्नेयी ॥ निर्माण (अग्निप्रधान) में इन ऋतु का बारम्बार वर्णन है कि वह कार्य अग्नि की मूर्ति (अग्निप्रधान) किया आ रहा है (तै० सं० ४।४।१।१, अनुर्वर ब्रह्माण ११)। आग्नेय के इसका बहुत उल्लेख है (१।६।२।१, १।७।३।३, २।१।७।१, ३।४।१।१)। इसी प्रकार मनुस्मृत्य का उल्लेख आग्नेय में निम्न स्थलों में है—१।४।१।१, ४।१।३।३, ५।५।१।१, ७।२।३।३, ८।४।३।३, ९।७।३।३। अग्निवत् के उदाहरण ३।४।३, ३।७।३, ३।९।३।३, ५।५।३।३-१० में पाये जाते हैं और अमर्षावत् के ३।३।३।३ में। अनेक स्थलों में कई नामों का एकत्र प्रयोग है, जैसे ऋ० १।३।१।३ में मनुस्मृत्य, अग्नि-स्मृत्य, और अमर्षावत्, ऋ० १।४।३।३ में प्रियमेधवत्, अग्निवत्, विष्णुवत् और अग्निस्मृत्य, ऋ० ७।२।३।३ में अमर्षावत्, ८।४।३।३ में माध्यावत्, अग्निस्मृत्य, पितृवत्, ८।४।३।३ में भृगुवत्, अनुस्मृत्य, अग्निस्मृत्य। इन सबमें अपने वर्तमान कार्य की प्राचीन स्मृतियों के सम्बन्ध काव्यों में सुलभता करने हुए उसे प्रभावशाली और औरवर्णन करने का प्रयत्न है।

उपसृत उदाहरणों से दो बातें स्पष्ट होती हैं, पहली तो यह कि अग्नि, प्रियमेध, मन और अमर्षी (अथर्व० १।१।४।४) के लक्षणों को छोड़ कर सर्वत्र प्रायः उन्हीं ऋषियों का नामोल्लेख है, जो प्रवरों में पाये जाते हैं। दूसरी यह कि इन उदाहरणों में ऐसे ऋषियों को भी एक साथ गिना दिया गया है, जो प्रवरों में मुख्य रूप ॥ पठित है; केवल आग्नेय के ऋषियों मन्त्र के अन्तिमत् के उदाहरण प्रवरों प्रत्यक्षरूप से भीका साधुमन्त्र रखते हैं। इससे यह बात होता है कि उस समय प्रवरपद्धति तीन रूप में विद्यमान थी।

प्रवर पद्धति के वैदिक निवेदन

आग्नेय के दो स्वयं वैदिक युग में प्रवर पद्धति के स्पष्ट प्रमाण हैं। आठवें मण्डल के एक मन्त्र (१०।२।४) में और, मनु और वाजसनेय की मूर्ति अग्नि के आश्रय का पहले वर्णन ही चुका है। यह बात ध्यान देने योग्य है कि इसी सूक्त में प्रवर विधि का सामान्य रचने वाले अनेक अंश हैं अथर्व वे आग्नेय के अग्नि-विषयक अन्तः सूक्तों में भी पाये जाते हैं, किन्तु इसका यहाँ पाया जाना केवल आकस्मिक नहीं है। इस सूक्त (८।१०।२) का दूसरा मन्त्रोक्ति० अहिता के देवायवत् (तै० सं० २।३।१।१) से मिलता है। १४ में, १५ में अन्तः से सुव्याहृ अग्नि का वर्णन प्रवरों वाह्यवर्णन अग्नि (तै० सं० २।३।१।१-४)

३५ अथर्व ३।३।३।३, ५।९।३।३ अग्निवत् या अग्नीर्वा हविः कल्पयन्मन्त्राग्निवत् ० अथर्ववेद अग्नेय अहिता अहितावत् अग्नीर्वा ॥

पुष्पमीड, अमलस्य, स्वाधाम्, भोमरि, अर्धना, विश्वामित्र, जलदग्नि, अग्नि, अथर्व, वासदेव, वसिष्ठ, वासिष्ठान् और गोत्रम का उल्लेख है। ये सब पूर्वजों के रूप में स्मरण किये गये हैं। इनमें धोमरी तथा पुष्पमीड के अतिरिक्त सभी मुख्य गोत्रों या उल्लेख गोलों में उल्लिखित हैं। इससे बड़ी सूची अथर्व. ४।२६।३-६ में पायी जाती है। यह वन प्रकार है—मंगिरा, भारिज, अमरगिरि, अग्नि, अथर्व, वसिष्ठ, त्र्याम्बक, वसुधैव (पुष्पमीड), नाबि (विमल, सप्तर्षि), भारद्वाज, गविष्टार, विश्वामित्र, क्रूरस, क्लीकथा, कश्यप, (मैत्रागिरि, मिनाह), उग्रना (क्राव्य), वीरम, वसुधैव। इनमें कोष्ठों में दिये नामों के अतिरिक्त गोत्र सभी परबली प्रवराध्याओं में पाये जाते हैं। यह कथ्य वन सप्त प्रवर पञ्चग के विधान को सुनिश्चित करता है।

प्रवर चुनने की स्वतन्त्रता

कट्योकर ने यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि वैदिकयुग में व्यक्ति को अपना प्रवर या अथर्व चुनने की पूरी स्वतन्त्रता थी, क्योंकि ब्राह्मण ग्रन्थों में सर्वत्र "आयेंम प्रवृत्ते" (आयेंम को चुनता है), का वाक्य मिलता है। प्रवर शब्द का मूल अकारणिक वृद्धात् है। प्राचीन प्रवर ब्रह्म-वदम्परा सम्बन्ध का चोटक नहीं, किन्तु कर्मकाण्ड के विभिन्न सम्प्रदायों का संक्षेप का।^{३६} कट्योकर की यह कल्पना निम्न कारणों से ठीक नहीं प्रतीत होती।

प्रवर का मूल अर्थ विशेष प्रार्थना है, प्राचीन ग्रन्थों में इस शब्द का प्रयोग प्रवर के अधियों के लिए नहीं, किन्तु अग्नि के लिए हुआ है। अथर्ववेदी में इस पर विचार विचार करने हुए कहा गया है कि 'वृत्ते' का अर्थ अग्नि है, न कि अधियों के नाम।^{३७} लै. सै. के एक प्रतिष्ठित संस्करण में इसी प्रकार का प्रयोग है। इसमें कहा गया है कि तीन अधियों हैं—देवों तक हवि के आने वाली, पितरों को उनका भाग पहुँचाने वाली तथा अमुरों के साथ रहने वाली। ये तीनों यह कहती हैं कि यह मुझे चुनेगा।^{३८} कहा है—हव्य का वहन वाग्य हावी अग्नि को चुने, यह देवों की अग्नि को चुनता है; यह अधियों के साथ सम्बन्ध बन नहीं छाड़ता और यह उनके वैश्वामित्र या विश्वरता को बताती है।^{३९} यह प्रवर पञ्चग का एक प्रधान अंग है, इससे स्पष्ट है कि चुनाव अग्नि का है, अधियों के नामों का नहीं है।

इसमें कोई संदेह नहीं कि प्रवर शब्द चुनने का अर्थ देने वाली वृद्धात् से बना है। किन्तु इसके अर्थों के सम्बन्ध में होने वैदिक भाषा की प्रवृत्ति का भी स्पष्ट रचना

३६ हिन्दू पुराणोपनिषद्, पृ० २६-२८

३७ अथर्ववेदी, पृ० ६-८

३८ लै. सै. २।५।५

आहुति। वेदों में अनेक जगह यह कहा है—हे अग्नि, हम तेरा बरध करते हैं। वहाँ बरध का यह अर्थ नहीं है कि हम जेक देवताओं में से अग्नि को चुनते हैं, इसका तात्पर्य केवल इतना ही है कि हम अग्नि की बरध में जाते हैं या उसकी उपासना करते हैं। अग्नि के बरध का यह तात्पर्य नहीं है कि वस्तु किसी अन्य देवता को भी चुन सकना था। 'बृवीते' का प्रयोग उपासना के अर्थ में होना चाहिए, चुनाव के अर्थ में नहीं।^{४२}

सतपथ ब्राह्मण (१।४।२।३) में बृवीते के स्थान पर प्रबृवीते का प्रयोग^{४३} उपर्युक्त धारणा को पुष्ट करता है। प्रबृवीते शब्द का चुनने के अर्थ में कोई सम्बन्ध नहीं है। ब्राह्मण ग्रन्थों में प्रायः यह प्रवृत्ति देखी जाती है कि वे शांताओं की क्रियाओं (धामुर्गों) के रूप में प्रयुक्त करते हैं।^{४४} प्रबृवीते का अर्थ अत्यन्त उदाहरण है। यह शब्द शब्द से बनायी गयी धातु (क्रिया) है और इसका अर्थ है कि यह शब्द का पाठ करता है। इस अर्थ की पुष्टि उपर्युक्त बरध में अर्थात् शब्द से भी होती है। क्योंकि इस अर्थ में यह क्रिया अकार्यक होगी। इतीतिष्ट त. ग. (२।१।४) के अर्थवाची 'अर्थात्' के स्थान पर सतपथ ब्राह्मण में इस संदर्भ में 'अर्थात्' अण्वय का प्रयोग हुआ है।

सतपथ ब्राह्मण का यह स्वयं शब्द के अर्थमूलक होने का भी निर्देश करता है। इसके उत्तरार्ध का अनुवाच इस प्रकार है—"यत् शब्द को करने और से इस और तक बढ़ता है, क्योंकि वह का विस्तार दूर के सिरे से इस और तक होता है, इस प्रकार वह अपने को बड़े लोगों के स्वामी के (कोष से) लुपता है। यहाँ गिरा तबसे पहने, पुन उसने काव और पीत उसके बाव आता है, अतः यह शब्द का पाठ करने और से इस और तक करता है।" इसमें गिरा-पुन की उपमा से यह स्पष्ट है कि शब्द वाशिक अर्थकाव के सम्प्रदाय मान नहीं के किन्तु कुछ क्षेत्रों में अर्थमूलक भी अवयव में।

उपर्युक्त तर्कों को दृष्टि में रखते हुए करवीकर की यह कल्पना युक्तिमूलक नहीं प्रतीत होती है कि शब्द शब्द का अर्थ यह सूचित करता है कि यवमाग को अपना शब्द चुनने में पूरी स्वच्छन्दता थी और शब्द वाशिक सम्प्रदाय मान है, वंश परम्परा में इसका कोई सम्बन्ध नहीं है।^{४५}

वैदिक युग के आरम्भ में बीच रूप में पायी जाने वाली पद्धति इस युग के अन्त तक काफी विकसित हो गयी थी। ऊपर बताये गये आचारायन, आगस्त्य और भीष्म-

४२ ऋक्—मू० पु० पृ० १५

४३ सतपथ ब्राह्मण १।४।२।३

४४ उदाहरणार्थ किसी वस्तु की भी के साथ मिलकर तैयार की गयी हविष की साम्राध्य कहते हैं, इस प्रकार की हविष देने के लिए सम्मयति का प्रयोग होता है, अम्शायन के लिए आचर्याति क्रिया रूप का प्रयोग होता है—सप्त—पु० पृ०, पृ० १५

४५ इस विषय में विस्तृत विवेचन के लिए दे० सप्त—पु० पृ०, पृ० १०-१६

मन्त्र के प्रत्येकपादमात्र और पदों की सूचियों इस तन्त्र की सभी भाँति पुष्ट करती है। पहले भाग बड़े पदों का उत्प्रेषण किया वह सूचा है। यहाँ इन सूचियों की कुछ विशेष बातों का संक्षेप किया जायगा :

आठ गणों में से विस्तार की दृष्टि से चार तथा संक्षिप्तान्तर उत्प्रेषणोप है। चारों प्रकार के हैं—आमदम्भ और अनामदम्भ । आमदम्भ चारों के मुखों से प्रकार हैं:— (क) मन्त्र तथा मन्त्र आमदम्भ कहलाते हैं, (ख) आम्तिमेव, यस्क, मित्तमु, वीर्य और भूमक केमन्त्रगुं कहलाते हैं। औद्यापन के अनुसार मन्त्र, मन्त्र और आम्तिमेवों के प्रहर में भी चार सूचियों का नाम होता है, वे परस्पर बिबाह नहीं कर सकते। अम्तिमेवों के तीन विभाग हैं—नीलम, यक्ष्माक्ष और देवताविमल। नीलम के सम्बन्ध में औद्यापन और औद्यापन की तथा आम्तिमेव, कात्यायन आम्ति की सूची में बहुत अन्तर है। यक्ष्माक्ष सूची के अनुसार नीलम दोष के आठ विभाग या वक्त्र हैं और दूरी सूची के अनुसार वक्त्र १५ औद्यापन के मन्त्र में आम्तिमेवों के चार ही वेद हैं—यक्ष्माक्ष, देवतामन्त्र, वक्त्र और मन्त्र। आमदम्भ, आमदम्भ और कात्यायन दम्भ अक्ष, नीलम का भी उत्प्रेषण करते हैं। १७ केमन्त्रविमल के उपविभाग हरीत, यक्ष, रवीन्द्र, विष्णु भूत, पूरुषाक्ष और संज्ञाति हैं। अक्ष बहुत छोटा मन्त्र है, उसके उपविभाग केवल चार (अक्ष, यक्षभूतक, विमलित, तथा पूरुषाक्ष हैं। विष्णुविमल मन्त्र विमल सूत्रापी के अनुसार उसी उपविभागों में बंटा हुआ है। अम्तिमेवों के भी उपविभाग विष्णु कश्यप, देव, अक्षिप्त, नीलम और आम्तिमेव हैं। विमलित मन्त्र मन्त्र आठ उपवेदों में बंटा हुआ है—विमलित, कुम्भित, उपमन्त्र, यक्षमन्त्र, कायुक्मन्त्र, अक्षित दृष्टिमात्र, मोहिम्न। अम्तिमेव दोष के सात उपवेद ये हैं—दम्भमात्र, मोहिम्नाक्ष, लोममात्र, यक्षमात्र, यक्षित, नीलमात्र और क्षिप्तेव। १८ आठ गणों के इन सब उपविभागों या यक्षों में प्रायः प्रत्येक से अनेक मन्त्र हैं और इनके नामों और संख्या के सम्बन्ध में विभिन्न प्रहरसूचियों में बड़ा मतभेद है। १९

संगोष्ठा और समानप्रवर्णा दोनों पृथक् और स्वतन्त्र रूप से बिबाह में बाधक होती हैं। यक्ष के लिए अक्षोष्ठा होने के साथ-साथ असमानप्रवर्णा होना भी आवश्यक है। मन्त्र की समानता न होने पर भी यदि यक्ष-यक्ष का प्रहर एक है तो बिबाह नहीं हो सकता। इसी प्रकार प्रहर की समानता न होने पर भी यदि दोनों का मन्त्र एक है तो परिमल संभव नहीं है। उदाहरणार्थ, यक्ष, यक्षभूत, नील और नील मन्त्रों के नामों से विमल होते हुए भी बिबाह नहीं हो सकता, क्योंकि इन सबका प्रहर एक ही अक्षित

१७ वक्त्र—पृ० १७, पृ० ३२-३३

१८ मन्त्र, पृ० ३३

१९ वक्त्र, पृ० ३७

२० इसका विस्तृत विवेचन मन्त्र की उपर्युक्त प्रवृत्ति में पृ० ७६-१६४ पर है।

धार्मिक वैतद्वय्य साधेतस है।^{१०} प्रवर में एक, दो, तीन या पाँच ऋषियों के नाम होते हैं। अब यह कहा जाता है कि प्रवर की समानता नहीं होनी चाहिए, तो उसका यह अर्थ होता है कि दो प्रवरों में एक ही ऋषि की समानता पर्याप्त होती है, इसमें केवल भूयः संशिरावण ही अपवाद है। वीद्यायन के ग्रन्थों में तीन ऋषियों के नाम वाले प्रवरों के दो ऋषियों के नामों का सादृश्य होते हैं, पाँच ऋषियों के नाम वाले प्रवरों में दो ऋषि-नामों की समानता होगे तो विवाह नहीं हो सकता।

एक ऋषिनाम की समानता के भी समानता होती है किन्तु भूयः और अगिरा गणों में यह नियम नहीं लागू होता। इन दोनों वर्गों में पाँच ऋषियों के नाम वाले प्रवर में तीन ऋषियों की तथा तीन ऋषियों वाले प्रवर में दो ऋषियों की समानता तो विवाह नहीं हो सकता। पहले बताया गये वरत, विश्व और आदिपेय वरतों के पाँच ऋषियों के प्रवर में तीन ऋषि नाम—धार्मिक, व्यास, व्यास, व्यास एक जैसे हैं, अतः इनका विवाह नहीं हो सकता।

प्रवर में ऋषियों की संख्या

अभिजात वर्गों के प्रवर, ब्राह्मण वर्गात् तीन ऋषियों के नाम वाले हैं। कुछ लोग द्वार्षिक, द्वार्षिक और वंशार्षिक भी हैं। एक ऋषि वाले कुछ प्रवर विश्व और आपस्तम्ब, आश्वलायन और वैश्वामित्र के अनुसार मिश्र भोज का प्रवर वाजपयस्य है।^{११} अश्विष्ट ऋषि के अन्तर्गत अनेक एकल वरिष्ठ का प्रवर भी एकार्षिक अश्विष्ट है। वीद्यायन तथा वैश्वामित्र भूयः का तीनक तथा आपस्तम्ब और काश्यापन भूयः का भूयः प्रवर कहते हैं। इक्ष्वाकु का प्रवर आपस्तम्ब के अनुसार आश्विष्ट है।^{१२} विश्वामित्र गण के अनेक वर्गों के प्रवर द्वार्षिक या दो ऋषियों के नाम वाले हैं, जैसे—दुर्योधन वारिषाययन (वैश्वामित्र और वीर्य, वीद्यायन के अनुसार) द्विरप्यरेतसु (वैश्वामित्र, द्विरप्यरेतसु), मानवर्मसु के अनुसार, सुवर्मरेतसु, वायोवेध, भूतक्रीडिक के वैश्वामित्र के अतिरिक्त द्विरप्यरेतसु, वीर्यरेतसु, कपोतरेतसु वार्तिकीतिक प्रवर, अष्टकभोक्षित के वैश्वामित्र और अष्टकभोक्षित (आश्वलायन के अनुसार)। तीन ऋषियों वाले प्रवरों की संख्या बहुत अधिक है। अग्नि, अपस्तम्ब, क्रयय, वरिष्ठ, विश्वामित्र, केवलागिरस, धरुवाज और वीर्यभोजन गणों के अतिरिक्त वर्गों के प्रवर ब्राह्मण हैं, वरतः

^{१०} भागवतायन, प्रवरसंख्यी (वे. प्र. पु. २८)

^{११} वरत—पु. पु. पु. २५ आश्वलायन के अनुसार इसके तीन ऋषि (वैश्वामित्र, मातृकुन्धल, व्यास) हैं।

^{१२} आश्वलायन और काश्यापन के अनुसार समाश्वाम्य वरतों का प्रवर द्वार्षिक (धार्मिक, वीर्य, व्यास) है (वरत—पु. पु. पु. २१)

वैशाख्य और कौण्डिन्य; विस्वामित्र गोत्र के वैशाख्य, वैश्वरत, अश्विन, केवर्क-
भिरत के हारीश गोत्र के अंगिरस, आम्बरीश, दीवताय; अरुह्य के अंगिरस,
बाहृस्पत्य, भारद्वाज; गौतम गोत्री आमात्य के अंगिरस, आपात्य, गौतम; केवर्क
भृगु गोत्री धर्मों में नर्त्तव्य, वैतह्व्य, सत्यतप्त ।

भार ऋषि नामों वाले प्रवर नहीं होते । पाँच ऋषि नामों वाले पंचसम्य प्रवरों
के प्रसिद्ध उदाहरण भृगु (अमर्यन्ति) गोत्र के निम्न पथ हैं—वत्स (वीद्यायन के अनु-
सार), धार्तर, अश्विन, आप्तवान्, अर्ब, आम्बरीश; विश (नर्त्तव्य, अश्विन, आप्तवान्,
अर्ब, वैश्व); भारद्वाज (भार्गव, अश्विन, आप्तवान्, भारद्वाज, आनूय); वैश्व-
दिमायस वत्स-गुराक्ष और वेद । विषमन्मोति के नार्त्तव्य, अश्विन, आप्तवान् के अति-
रिक्त कमका; वैद और वैश्वित, वत्स और पौरोष्ठ्य तथा वैद और विश्वम्प्योति प्रवर
हैं ।^{१३} वीद्यायन और वैश्वानर धर्मसूत्र के अनुसार गौतम गोत्र के कौमन्ध और दीवत्त
मा गर्भों के प्रवर आभिरत, अश्विन, काशीवत और गौतम नामक चार सामान्य ऋषियों
के साम-साय कौमन्ध और वैश्वतमस नामक पाँचवें ऋषि नाम वाली भी है । अरुह्य गोत्र
के वैशाख्य और नर्त्त गोत्र के प्रवर भी पंचसम्य हैं, इनके दोनों के तीन ऋषि आभिरत,
बाहृस्पत्य और भारद्वाज से एक जैसे हैं, येव दोनों कमका; वान्दन और मातकथत तथा
सैय और गार्म्य हैं । आपस्तम्ब सूत्र के अनुसार एक प्रवर में तीन से अधिक मन्त्रग्रन्था
ऋषि नहीं होने चाहिए,^{१४} अतः प्रवर में ऋषियों की संख्या मर्यादित है । किन्तु गोत्रों
में ऐसी कोई पाबन्दी न होने से इनकी संख्या भिन्न-भिन्न भिन्न भी
थी ।

प्राचीन सूत्रकार अपर्युक्त गोत्रों के प्रवरों के ऋषियों की संख्या तथा नामों
में बहुत भ्रमभाव रखते थे । सबसे अधिक मतभेद संभवतः काश्यप गोत्र के नायिकस
पथ के सम्बन्ध में है, वीद्यायन और वैश्वानर धर्मसूत्र के अनुसार इसके प्रवर में काश्यप,
कात्स्तार और नायिकस ऋषि हैं; आश्वलायन के अनुसार नायिकस बासित और
वैश्व; मानव, कात्यायन और सीताक्षि के अनुसार काश्यप, बासित और वैश्व ।
किन्तु आपस्तम्ब सौतपुत्र इसके प्रवर में दो ऋषि नाम ही आगता हैं—वैश्व और
बासित ।^{१५}

द्विगोत्र कुल—कुल परिवार द्विगोत्र अर्थात् दो गोत्रों से सम्बन्ध रखने वाले
जाने पड़े हैं । आश्वलायन और सूत्र ने इनसे द्विगोत्र कहा है ।^{१६} कात्यायन और

^{१३} ये सब उदाहरण तप की पूर्वोक्त पुस्तक पृ० ३१-३७ से लिये गये हैं ।

^{१४} अथ. श्री. सु. २४।३-५

^{१५} अथ—पृ० पु०, पृ० ३६

^{१६} प्रवरभेदरी (के. प्रे.) पृ० ४५

वीणादि इन्हें दायमुष्माण्ड कुल कहते हैं।^{१०} ऐसे कुलों में हीन अन्वेषणीय है—
 शीम वीणादि, वीणादि और सक्त। भरद्वाज गोत्र का एक उपविभाग भुग ।^{११} इस
 गोत्र के एक पुरुष ने विधीय द्वारा विष्णुमित्र गोत्र के एक उपविभाग वीणादि गोत्र
 की स्त्री से एक पुत्र उत्पन्न किया, जो गोत्रों में सम्बन्ध रखने के कारण भूग पुत्र वीणा
 वीणादि कहलाया। भरद्वाज और विष्णुमित्र गोत्रों में साथ सम्बन्ध होने के कारण
 इस कुल के अस्तित्व इन दोनों गोत्रों में विवाह नहीं कर सकते। आप० और जाब० ।
 अनुसार इसका प्रसर आधिरा—बाह्स्पत्य भाष्यान्न, भाष्य-आधिरा है। कान्वासन
 और वीणादि तथा मानव सूक्त के अनुसार भूग आधिरा—बाह्स्पत्य भाष्यान्-
 वीणा वीणादि है। इन प्रयोगों में पहले हीन तो भरद्वाज गोत्र के अधिपति और कश्यप या
 भारद्वाज विष्णुमित्र गोत्र से मिले गये हैं। वीणादि बड़ा गणराज्य द्विगोल है, भूग
 बलिष्ठ और कश्यप गोत्रों से सम्बन्ध है। वीणादि, कान्वासन, वीणादि और मानव
 तथा मत्स्यपुराण के अनुसार इनके प्रसर में हीन अधिपति । इनमें से वीणादि और
 आधिरा कश्यप गोत्र के हैं और वीणादि अधिपति बलिष्ठ गोत्र का है। (अप०-पू०
 पू०, पू० ३६) । वीणादि के कमजानुसार ये दिन में बलिष्ठ और रात में कश्यप गोत्र
 के होते हैं।^{१२} इस विधि व्यवस्था की दो व्याख्याएँ की गयी हैं, अश्विनयज्ञवाक्यार्थ ने
 'गोत्र प्रसर निर्णय' में लिखा है कि वीणादि कश्यप की सन्तान हैं, किन्तु उनका
 उपनयन बलिष्ठ ने किया है। इसका जन्म रात्रि में हुआ, अतः रात को उनका गोत्र कश्यप
 होता है। उपनयन दिन में हुआ, अतः दिन में उनका गोत्र बलिष्ठ होता है।^{१३} दूसरी
 व्याख्या अश्विनयज्ञवाक्य की है, इसके अनुसार इसका कारण यह है कि दिन में वे बलिष्ठ
 सम्प्रदाय की पद्धति का अनुसरण करते हुए प्रयागों की विधि करते हैं और रात को
 कश्यपों की पद्धति के अनुसार।^{१४} वीणादियों का वीणा गोत्रों में विवाह वाजपेय ।^{१५}
 सक्त और वीणा मानव नामक दो गोत्र अधिरा एवं और कश्यप गोत्रों के उपगोत्रों से
 मिले गये हैं। आपस्तम्ब धर्म में इन्हें बलिष्ठगण से कहा है अतः सक्त अधिरा, कश्यप
 और बलिष्ठ गोत्रों से विवाह नहीं कर सकते।^{१६}

तभी तक जाह्नवों के गोत्रों का ही वर्णन किया गया है, अब अन्य वर्णों के गोत्रों
 का उल्लेख होता है।

१० प्रकरणसारी—अही

११ प्रकरणसारी, पू०

१२ गोत्रप्रसरविश्वामित्र (वे. वे.) पू० २६६

१३ अश्विनयज्ञवाक्य, पू० १५

१४ अही पू० ५

१५ गोत्रप्रसरविश्वामित्र, पू० २६६

सन्तियों के बीच

संभवतः इनके बीच और प्रभर का सर्वप्रथम सम्बन्ध ऐतरेय ब्राह्मण (३४।७) में आया है। वहाँ यह प्रश्न किया गया है कि यज्ञ में दीक्षित होते हुए क्षत्रिय का प्रभर क्या कहा जाय। इसका उत्तर यह दिया गया है कि क्षत्रिय का प्रभर उसने ब्राह्मण पुरोहित का ही प्रभर होता है। मातृजापन और कातृजापन श्रौतसूक्तों में इस विषय के दो व्यवहाराई की गयी हैं—(१) वे अपने पुरोहितों के प्रभर से सम्बन्धित हैं, (२) जब सन्तियों का प्रभर मानव ऐन पौष्पक होना है।^{१०} मेधातिथि ने आश्व० शौक सूत्र (१।३) के आधार पर गोत्र और प्रभर का संबंध केवल जातिवर्गों में ही माना है; मिलाभारा ने कहा गया है कि क्षत्रियो, वैश्यो के अपने विशेष गोत्र नहीं होते, अतः इनके विवाहों में इनके पुरोहितों के गोत्रों को ही इनका गोत्र समझना चाहिए।^{११} अग्न निष्कन्धकारों ने इसका समर्थन किया है। किन्तु प्राचीन साहित्य और अभिलेखों में क्षत्रियों के विभिन्न गोत्रों का बहुत वर्णन मिलता है।

महाभारत में विराट् के दरबार में कद्रुमेधी मुनिविरट् ने अपना गोत्र वैया-प्रपाद बताया है (विराट् पर्व ७।४३।३)। वात्स्येयों के दस गोत्र की मुष्टि याग याग की गुरी भट्टनी का जिनमें जले वाले गोत्र के सर्वप्रथमगोत्री मन्त्र से होती है, क्योंकि उनमें उगका गोत्र वैयाप्रपाद और प्रभर संकृति दिया गया है।^{१२} अभिलेखों में कांची के पत्थरों का गोत्र प्रायः सरस्वती और चातुर्वर्ग का नामधेय प्रस्तावित गया है।^{१३} ११७६ ई० के मदनमन्दिर के एक शिलालेख में एक क्षत्रियकी अष्ट गोत्र का तथा प्राचीन आश्वलायनान् श्रौत आश्रमप्रभर का उल्लेख किया गया है।^{१४} चम्बोध राया वैजोक्त्य शर्मा के एक शिलालेख में तीन नामधेय नामधेय क्षत्रिय के सरस्वती गोत्र के होने का वर्णन है।

^{१०} प्रभरवर्णनी, पृ० ३०

^{११} आश्व० १।३२, अष्टाश्रम (पृ० १११) में यही बात स्वीकार किया है। सरस्वती श्रौतसूत्र ने दस आश्रमों के अनेक कारण दिये हैं (पृ० १८६-१८७)।

^{१२} सन्ततिथिका, भाग १, पृ० १६८

^{१३} एमि. ई. सं ११० ५, यही सं. १, पृ० ३३७

^{१४} ई. ए. सं १८८, पृ० १३१-३८। कानों में हि. ग. सं० २, भाग १, पृ० ४६४ पर इस प्रकार के अनेक अभिलेखों का निर्देश किया है।

४० दिन चलता है और कुल्लू केवल १२ दिन। किन्तु यह स्मरण रखना चाहिए कि बौधायन ने पुराने मूलग्रन्थ इस विषय में सीन है। आश्वलायन भीतमूल के अन्तिम खण्डाधो में प्रवरो का वर्णन है, पर यह सप्तों या १२ दिन के अधिक चलते जाने यज्ञों के सम्बन्ध में है, विवाह के विषय में नहीं। इसके परिशिष्ट भाग में अथवा इसका वर्णन है, किन्तु यह परिशिष्ट भाग का भिन्न हुआ है। आश्वलायन गृह्य सूत्र १।५।५ में वधू के चुनाव के बहुत से नियम दिये हुए हैं किन्तु इनमें असंगोषता के नियम का उल्लेख नहीं है। एक सेगे नियम का, जिसका भंग किये जाने पर वधू में कुल्लू और चाण्डाल्यन जैसे कठोर प्रायश्चित्तों की आवश्यकता की गयी, आश्वलायन में संकेषा न पाया जाता बड़े आश्चर्य का विषय है। कालक गृह्यसूत्र (१।५।४) और पारस्कर गृह्यसूत्र संगोषता के विषय में भीत है।^{५०} वधू के चुनाव में इस विषय की खर्चा न करता, क्या यह बात सूचित नहीं करना कि उस समय तक स्त्रियों में इस प्रथा का पूरी तरह प्रचलन नहीं हुआ था।

धर्मसूत्रपाठों में अग्निक, आश्वलायन, बौधायन और गौतम ने इस विषय में विभिन्न विधान किये हैं। अग्निक केवल यही कहता है कन्या का भिन्न गौत्र (८।१) हो।^{५१} प्रायश्चित्तों का वर्णन करते [] उभने सगन्धा स्त्रियों की जो सूची दी है (२०।१) उसमें संगोषा का उल्लेख नहीं है। आपस्तम्ब गृह्यसूत्र में, वधू के चुनाव के प्रकार में गोत्र की कोई बात नहीं दी गयी। किन्तु धर्मसूत्र में केवल इतना ही कहा है कि समोष को अपनी मङ्गी न दे (२।५।१।१५)। इस नियम का भंग करने पर कोई दण्ड नहीं बताया गया है। बौधायन के विधान का उल्लेख ऊपर हो चुका है। किन्तु गौतम ने धर्मसूत्रों में गोत्र के नियम को सबसे अधिक उग्रता से प्रतिपादित किया है। समान प्रवर में और एक योत्र में विवाह करने वह गृह्यस्वारोहण के समान पाप समझता है (गी., धर्म सूत्र ५।२, २१।१२)। गृह्यस्वारोहण महापातकों में से है। बौधायन ने संगोष विवाह की बात का महापातक नहीं समझा था किन्तु इन पाप के लिए कुल्लू प्रायश्चित्त की व्यवस्था की। किन्तु गौतम इससे संतुष्ट नहीं है, वह इसे महापातक से कम मानने को तैयार नहीं है।

गृह्यसूत्रों और धर्मसूत्रों के गोत्र विषयक विचारों की तुलना करने से स्पष्ट है कि गृह्यसूत्रों के समय गोत्र के नियम को सहज नहीं मिली थी, धर्मसूत्रों के समय उसे महत्त्वपूर्ण समझा जाने लगा और उसके भंग के लिए कन्या कठोर विधान बनने लगे। अग्निक उसे प्रायश्चित्त योग्य अपराध नहीं समझता, बौधायन कुल्लू प्रायश्चित्त से इस

^{५०} हिरण्यकेरी. गृह्यसूत्र (१।१।५२), भागव, गृह्यसूत्र (१।५।५) और भीमिन गृह्य सूत्र (३।५।४) में संगोषता के नियम का उल्लेख है।

^{५१} अग्निक. अ. सु. ८।१, भाव. अ. सु. २।१।१।१५, यौ. व. सु. ५।२, मि. श्रौ. ३।२।१।१, नारद स्मृति १।५।१०४ तथा बृहस्पति (यौ. व. सु. २।१।१९ की टीका में) दण्ड दण्ड उद्धृत)।

पाप की क्षुद्रि मानता है और गौरव इसे महापाप मानता है। जिस पाप की गृह्यसूत्रों के समय चामूली सम्झा जाता था, वह गौरव को समझ महापाप क्यों बन गयी? इसी प्रश्न के उत्तर में गोत्र के उद्गम का इतिहास दिया गया है। गृह्यसूत्रों एवं अरण्यसूत्रों के समय के बीच में ८ बी बर्ती ई० पू० में इस प्रथा का आरम्भ होना प्रतीत होता है। अब यही गोत्र की उत्पत्ति के विषय में कुछ दलित कारणीय यहाँ एवं योरोपियन विद्वानों की कल्पनाओं की समीक्षा की जायगी।

गोत्रप्रथा की उद्गम सम्बन्धी भारतीय कल्पना

वैष्णव पुराण में कहा गया है कि एक बार ब्रह्मा पक्ष कर रहे थे, तब तब से भृगु, भगिरा, भदीधि, भक्ति, पुनह, पुनस्य, कमु और वसिष्ठ उदात्त हुए (१६५।८)। किन्तु व्यावकाय बोलों की जो सूचियाँ पायी जाती हैं उनमें कावु, गौतम और गौतमराज आत्म्य गोत्र के उद्गम या गण में उल्लेख होते हैं, स्वतन्त्र गौत्र के रूप में नहीं। फिर पुनह गौत्रों के और पुनस्य पितापिता के मूल मुक्त है। तत्पश्चात् ब्राह्मण में (१.१।५।२।९) गौतम, भार-हाय, विश्वामित्र, जम्बवति, वसिष्ठ, काश्यप और अग्नि नामक नाम ऋषि विभागे गये हैं।^{१६९} मत्स्यपुराण की गणा गौतम ब्राह्मण की सात भागों की धूनी में वसिष्ठ और अग्नि की उल्लेखमिष्ट नाम हैं, गोत्र पाँच नाम दोनों सूचियों में मिले हैं। आत्मपावन-परिमिष्ट में इन ऋषियों के साथ जम्बवति का नाम और बार, इन आठ ऋषियों को गौतमराज कहा गया है। गोवायस ने भी इन्हीं सात ऋषियों के गोत्र पाये हैं। किन्तु महाभारत का मत है कि भगिरा, कश्यप, वसिष्ठ और भृगु ४ बार ही मूल गोत्र हैं।^{१७०} तब प्रकाश ऋषियों की संख्या और ऋषियों के नामों में कोई एक सम्बन्धमय सिद्धान्त नहीं पाया जाना है। यह प्रश्न किया जा सकता है कि प्राचीन काल में कैकड़ों ऋषियों में आठ ही इस नाम के मिले क्यों नूने गये। इसका सम्भाव्य उत्तर तो यह होगा कि ये अन्य ऋषियों की अपेक्षा अधिक महान्, वैदिकी एवं पूजनीय होते। किन्तु पर्याप्त कहते हैं कि (प्राग्जन्म में) ५० हजार

^{१६९} की भाषा में विद्वत्कार (१२।१०) द्वारा "मर्वाण्यवस्यमभक्त" के मंत्र की ध्वनिता में सात ऋषियों की धूर्त की सात किरणों से की गयी तुलना की इस संख्या का मूल बताया है। बृहदारण्यक उपनिषद् (२।२।१०-४) में सात ऋषियों या भागों (गो नाम, गो भावे, गो वासिका रण्य और विद्वत्) के साथ विश्वामित्र आदि अनेक ऋषियों की तुलना की गई है।

^{१७०} साहित्यिक २६५।१५-१८

आरम्भ करने वाले कर्मोंका अधिपति । यह बातें बताते हैं कि हममें से आठ अधियों में सम्मान उत्पन्न की, उनके जो गुण हैं वही मोक्ष हैं ।^{५४}

भारतीय कल्पना की दो बड़ी असंगतियाँ

श्री वैद्य ने मोक्षों के इस गौरवार्थों को कुछ धुलसाया जाता है ।^{५५} किन्तु इसके सुलझाने में वे स्वयं बहुत-सी उलझनों में भँस गये हैं । मोक्ष सम्बन्धी असंगतियों में दो मुख्य—महाभारत तथा अन्य ग्रन्थों की मोक्षकार अधियों की संख्या में अन्तर तथा उनके मार्गों में अन्तर—है । श्री वैद्य की कल्पना है कि जब आर्य भारत में आये तो महाभारत के अनुसार उनके बाद ही गुल मोक्ष थे—मृगु, अंगिरा, कश्यप और वासिष्ठ । वे प्रजापति के आगत पुत्र होने से आर्यों की विभिन्न जातियों के भूलपुद्गल कहलाये । किन्तु अध्यायों में मृगु के स्थान पर उनके पुत्र जमदग्नि का नाम आता है और अंगिरा का स्थान भी उसके दो गीर्वाण और गीतम ने ले लिया है । बाद में हमें अग्नि, विश्वामित्र और कश्यप की धृष्टि होकर आठ मोक्ष प्रवर्तक अधिपति हो गये । इन तीनों में अग्नि आर्य आत्मानकों के उस दूधरे शम्भुनाम को धुलित करता है जो अपने को कायदेवी मानता था । चन्द्र अग्नि का पुत्र माना जाता है (१४० पु० ४।१।१४), अतः चन्द्रमंती राजाओं का मोक्ष अग्नि है । अगस्त्य ने वैदिक अधिपति होने के कारण प्रतिष्ठा पायी । विश्वामित्र अधिपति थे, वे अपनी तपस्या के बल से ब्राह्मण रूप और उन्होंने मोक्ष प्रवर्तक होने का सम्मान पाया । इस प्रकार की वैद्य के मत में आठ गोलगुल अधियों के मार्गों में कोई असंगति नहीं है ।

किन्तु इस धृष्टि परम्परा में अनेक दोष हैं, इतने वासिष्ठ को आर्य आति का गुल गुरुप एवं अगस्त्य की बाद का अधि माना गया है । किन्तु पौराणिक परम्परा दोनों को निजावरण के बीचों में, दूनाही समय में उत्पन्न मानती है (मृदुले० ५।१।१४) । अग्नि को श्री वैद्य ने अर्वाचीन अधि माना है किन्तु धनु (१।१४) उसे कश्यप की भावना सम्मान और वासिष्ठ का समकालीन मानता है । यदि अग्नि अंश नामे चन्द्रमंतिमें ने पूर्ववर्तियों पर आक्रमण किया और उन्हें जीता तो अग्नि गीतम धारो की संख्या पदोप्राप्त होगी नार्हिय, किन्तु सूत्रकारों ने मोक्षों की जाँ सूचिका दी है उनमें अग्नि का गीतम और गीतम निजाकुल गगन्य है । फिर यदि मृगु और अंगिरा आर्य आति के मूल गुरुप थे तो उनके नाम हुताकर उनके स्थान पर उनके पुत्र जमदग्नि और पीतों—भारद्वाज और गीतम के नाम क्यों रखे गये ? यदि ब्राह्मण जाति में उनका विशेष महत्त्व था तो परशुराम का क्या कम महत्त्व था ? उसने २१ बार क्षत्रियों का संहार कर पृथ्वी को क्षत्रिमहीन बनाया था । इसका अधिक गौरवपूर्ण कार्य करने वाले के नाम से मोक्ष क्यों नहीं बना ? मृगु का स्थान यदि जमदग्नि ने

^{५४} पारिधि ४।१।४८ पर महाभारत

^{५५} हिन्दवी सप्त विभीषण इंकियर, अ. १, पु० १६ अनु०

ब्रह्मचर्य विवाह तो अवर्धन का स्वाम लेने का परम्परागत को पूरा अधिकार था । इन सब प्रथाओं का कोई सत्संस्कारक उत्तर नहीं दिया जा सका है । जब तक इन प्रथाओं का उत्तर नहीं मिलता, तब तक श्री ईश की यह कल्पना सही मानी जा सकती कि पहले धर्मिष्ठ, धृष्ट, काव्य, अधिष्ठ के भार मोक्ष में, बाद में ये पाठ हुए और ये रत्न संस्कारों का रत्नसम्बन्ध को निर्मित करते हैं ।

गोत्रों से उत्पन्न कुलों की संख्या के विषय में भी साक्ष्य है । आश्वमेधायन श्रीगणेश (१२।१।६) इनकी संख्या ४२ मानता है । अश्वमेधायन में शुक्लगीर्णिका में अवतरण के अनुसार १२ गोत्रधारों के नाम विनये गये हैं और अश्वमेधायन में १२ गोत्रधारों की संख्या ४० है । इसी अश्व के एक दूधारे अवतरण में १४ गोत्रधारों की संख्या बतायी गयी है । विराजरा की वासुदेवी टीका (पाठ १।५.३) में यह संख्या १० है । श्रीधारा में ५०० गोत्रावतरणों में ५००० गोत्रों का उल्लेख किया है । संख्याभेद के साथ-साथ इनमें नामभेद भी बहुत अधिक है । अवतरणों के कर्तों में बड़े कुछ गोत्र विनया के साथ इस बात की स्वीकार किया है कि सूत्रधारों के पाठ में बहुत अधिक भ्रम है । दश दशा में गोत्रों का अन्वय निर्धार करना बहुत कठिन है ।

यह कहा जाता है कि गोत्रों के नाम एवं संख्या में कोई निश्चित अन्वयविधि और विरोध हो, किन्तु उन सबमें इस बात में अक्षय समानता है कि किसी गोत्र की एक शक्ति द्वारा अन्वय सुनाया जाता है और एक गोत्र वाली में रत्नसम्बन्ध स्वीकार किया जाता है । किन्तु एक निश्चित को अपने पूर्ण शक्ति का नाम भी विनया में यात्रा नहीं ही रत्नसम्बन्ध की विनाशप्रकार विनियत माना जा सकता है । एक ही शक्ति ही नाम हुई कि शमय पुनः और मेरे वाच का नाम विनियत था, दशविंशत् रूप रीतों सम्बन्धी हुए । गोत्रों की ऐसी अभिव्यक्ति दशा में, अन्वय वादरायण (गणपति) के अतिरिक्त कोई अन्य सम्बन्ध नहीं माना जा सकता ।

गोत्रों ■ वादरायणसूत्रक न होने को अश्वमेधायन

गोत्र रत्नसम्बन्ध अथवा संस्कारों के सूत्रक नहीं हैं, इसके अनेक प्रमाण विनये जा सकते हैं । सम्प्रति में अनेक सम्बन्धों का पहले अधिकार होता है । धनु कर्तृता है कि सम्प्रति पहले अधिष्ठ वर्णित तीसरी पीढ़ी तक के दायाँ को, बाद में सप्तम अर्थात् सातवीं पीढ़ी तक के दायाँ को, इसके बाद गुरु को और अन्त्य को विनये (धनु. २।१.८-८५) । श्रीधारा में भी इसी प्रकार की व्यवस्था की है । अधिष्ठ तो अधिष्ठों के बाद गुरु को सम्प्रति देने का पञ्चासी है (१।५।२) । वादरायण सात पीढ़ी तक के दायाँ के बाद गुरु की ही सम्प्रति का उत्तराधिकारी समझता है । यदि गोत्र या अन्वय रत्नसम्बन्ध की सूचित करते तो गुरु से पहले सन्तोषों की सम्प्रति का अधिकार मिलना चाहिए था । सम्पूर्ण धर्मसूत्रों और स्मृतियों में केवल धर्म में ही ऐसी व्यवस्था की है (गी० अर्ध-

सूक्त २७।२९)। यह कहता है कि सपिण्डों के बाद समोतों व समान-प्रकारों को सम्पत्ति लेने का अधिकार है। पहले हम देख चुके हैं कि गौतम ने समोत विवाह को महापातक दृष्ट किया और गोत्र सम्बन्धी नियमों को बूझ करवा चाहा। उत्तराधिकार का यह नियम भी इसी व्यक्ति को सूचित करता है। हिन्दू गोत्र में कोई रक्तसम्बन्ध न होने के कारण यह कहना कठिन था कि कौम समोत सम्पत्ति के पहले तुल्यता हो और कौन बाध में। इन प्रिवालक काटिमाएँ का अनुभव करते हुए तथा गोत्र के सम्बन्ध को बनाते हुए संभवतः सूत्रिचारों ने गौतम का अनुसरण किया।

पत्नी बाद मरनेवाले अश्वी के सम्बन्ध में बहू या सखी है। किन्तु ज्यों (बहोली) में रक्तसम्बन्ध होता है, बहू किसी व्यक्ति की मृत्यु पर सारा जन (tribe) अश्वीय मानता है। नीलमिहिर के टीकों में यह प्रचलित है कि जब एक कल में कोई मृत्यु होती है तो उस जन का प्रत्येक टोका निश्चित अवधि तक करने सिर के माने के बातों में एक गाँठ बाँधे रहता है।^{८४} यह व्यवस्था धर्मशास्त्रात्मक है कि उसको सम्बन्धी अश्वीय या गतक को मनाये। शास्त्रालो में सपिण्डों (सोत पौड़ी तक के सम्बन्धियों) द्वारा यह सूतक मनाये का विधान है (मनु० १।५६, गौतम १।५१)। आपस्तम्ब कहता है कि जहाँ तक सम्बन्ध जान हो, वहाँ तक वे सब सम्बन्धी अश्वीय मनाये। आपस्तम्ब यह हम विषय में धनवी पूरक गया है कि बिनासे रिखा हुआ जो धर्म के सब सूतक मनाये, यदि यह वास्तव में गोत्र को ऐसा रक्तसम्बन्ध समझता तो उसका व्यवसाय उत्सेह करता। आश्वीय की प्रचलित धारणा के अनुसार गोत्र रक्तसम्बन्ध को सूचित करता है, फिर ऐसे सम्बन्ध वाले को सम्पत्ति एवं प्रेरितति जैसे आश्वीय स्वयं को द्वारा किये जाने वाले कार्यों से वंचित क्यों रखा गया है? इसके यह स्पष्ट है कि स्मृतिकार गोत्र को रक्तसम्बन्ध नहीं मानते थे। शास्त्रों और वैश्यों में समोत का रक्तसम्बन्ध सूचक न होने को इसी बात से पुष्ट होता है कि उनको अपने बाह्य पुरोहितों का प्रचार लेने के लिए कहा गया है। यदि किसी पुरोहित का वास्तव में परब्रह्म शक्ति से सम्बन्ध था और वही उसकी वागपरायण में हुआ, तो शक्ति का उस पुरोहित द्वारा कोई भय करने से ही परब्रह्म गोत्र जाता हो गया? रक्तसम्बन्ध भी क्या बिन्दु के प्रवाह की तरह से है, जो सुपातक पदार्थ के सम्पर्क से, पुरोहित से सम्बन्ध में संकलित हो जाता है? क्या यह रक्तजो पुरोहित भी समितियों में यह रहा है, यज्ञ के अनुष्ठान मात्र से उज्जमान शक्ति के शरीर में प्रवाहित होने जाता है? फिर एक पुरोहित प्रायः कई गाँवों के वैवाहिक तथा धर्म शक्ति अनुष्ठान करता है। एक पुरोहित से शक्ति के अनुष्ठान करने के कारण कई गाँव एक गोत्र के हो गये और उनसे परस्पर शादी-प्याह नहीं हो सकता। वैश्यों का तो आपस्तम्ब ने एक ही गोत्र माना है। इसका अर्थ यह हुआ कि सर्वों विवाह ही ही

नहीं सकता। इन सब बातों से यह स्पष्ट है कि मंत्र यास्तविक रस्ससम्बन्ध की नहीं बताया। स्मृतिकारों की ये व्यवस्थाएँ प्रारम्भ में केवल यथीय नामों तक ही सीमित थीं, बाद में इन प्रतिबन्धों का विचार में भी उपबोध किया जाने लगा। उन्होंने विवाह में असंगतता का नियम क्यों रखा? इस प्रश्न पर धर्मशास्त्रों से कोई प्रकाश नहीं पड़ता।

असंगत विवाह के नियम के प्राबुद्धिक पर पश्चिमी विद्वानों की कल्पनाएँ

(क) अंग्रेजीमान की कल्पना—पश्चिमी विद्वानों ने भी इस विषय में धर्मज्ञ उद्धरणों किया है और अहिर्विवाह सम्बन्धी मंत्र आदि की गाम्भीर्य के भूल कारण चुनने का प्रयत्न किया है।^{१७} श्री मैकलीनन को यह ध्येय प्राप्त है, उन्होंने अंग्रेजी भाषा में अहिर्विवाह (Exogamy) शब्द की सर्वप्रथम प्रकाश और प्रचलित किया। उन्होंने

१७ अहिर्विवाह का क्रिया भारत से बाहर अनेक समाजों और जातियों में पाया जाता है। माट्टेलिया के आदिवासीयों में इसका ब्रह्म मन्त्र है, वहाँ अहिर्वास कहोते थे, बाद, आठ अहिर्विवाही उपवर्गों में बँटे होते हैं। इनमें प्रत्येक उपवर्ग वाले स्त्री-पुरुष का विवाह अपने उपवर्ग से बाहर ही होता है, अपने उपवर्ग के भीतर नहीं करने वाले को प्रागवध विधा जाता है (सं. शा. हि. वे. पु. ७१-७२)। यौव में पहले एक अज्ञात पारिवारिक उपनाम रखने वालों में परस्पर विवाह नहीं हो सकता था। पुराने चीनी सभ्यविद्वान के अनुसार ऐसी स्त्री करने वाले को ६० प्रहारों का दण्ड दिया जाता था और यह विवाह रद्द माना जाता था (वे.—चूरी पु. ७२)। बेस्टरमार्क के मतानुसार अपने गोत्र या वर्ग से बाहर विवाह का नियम प्रचलित होने का एक बड़ा कारण नामों की समानता था। दंड-परम्परा नामों के सम्बन्ध से स्पष्ट की जाये थी, अतः नाम को प्रायः रक्त सम्बन्ध का सूचक समझ लिया जाता था। भ्राता-भ्राता दोनों पक्षों की ओर से परस्परम्परा का पूरा विवरण रहता कश्चित होता है। अतः यह नाम का सम्बन्ध प्रायः एक ओर से रखा जाता है। आदिम विचारों और बिल्कुलों के अनुसार एक सामान्य नाम, उसे धारण करने वाले सभी व्यक्तिताओं को परस्पर अलग करने वाली रूढ्यमयी कड़ी समझा जाता था। डॉ० लामेन ने लिखा है कि योनिलेख में यह माना जाता है कि एक ही नाम वाले दो व्यक्तियों में साध्यात्मिक सम्बन्ध होता है। बेस्टरमार्क ने इसका एक यह भी कारण दिया है कि निम्न सम्बन्ध रखने वाले व्यक्तियों में यौन सम्बन्ध के प्रति एक स्वाभाविक घृणा होती है, इससे निम्न सम्बन्धियों में विवाह वर्जित होता है। इसी निषेध की वजह से विस्तृत करके अपनी जाति में विवाह का वर्जन किया जाने लगा और और अहिर्विवाह के नियम का प्रचलन हो गया। (सं. शा. हि. वे., पु. ६६-७३)

बहिर्विवाह का कारण यह बताया कि जगती ह्रास्व में आरम्भ में मनुष्य शिवाय से ही अपना गुजारा करता था। उस समय जो कन्याएँ शिवाय में सहायता नहीं दे सकती थीं विला जगती जैसा करना था या उन्हें मार देता था। उभाज में इस तरह स्त्रियों बहुत कम मिलती थीं, अतः उन्हें दूसरे कबीलों से स्त्रियाँ अवश्यही अपहरण करने पानी पड़ती थीं। इस तरह अपनी जाति के बाहर से स्त्रियों को लेने का रिवाज पड़ा और बहिर्विवाह भी प्रथा प्रचलित हो गयी।^{१५}

वेस्टरगार्ड ने अपने प्रसिद्ध इन्ध हिस्टरी आफ ह्यूमन मैरिज (अ. २, पृ० १६४) में अनेक प्रमुख प्रमाणों से सिद्ध किया है कि उपर्युक्त सिद्धान्त में कन्यावध और अपहरण प्राग विवाह के सम्बन्ध में बहुत अनिवार्यता के काम लिया गया है। भारत में गोत्रों के सम्बन्ध में यह सिद्धान्त लागू नहीं किया जा सकता। यह ठीक है कि विवाह के आठ श्रेणियों में एक रामाय विवाह भी है, किन्तु भारत में उसके अभावसे बहुत कम भिन्नते हैं। वैदिक काल में कन्यावध की प्रथा भी प्रचलित नहीं थी।

(ख) स्पेन्सर की कल्पना—दूसरी कल्पना मुप्रसिद्ध समाजशास्त्री हर्बर्ट स्पेन्सर की है। वे कहते हैं कि बर्बरों में वस्त्र, संघर्ष होता था। उन संघर्षों में शत्रु की सम्पत्ति को शूरा लूटता आता था। इन लूट में स्त्रियाँ भी लानी जाती थीं और यह कार्य बड़ा अच्छा समझा जाता था। अन्त्योत्पत्ति यही प्रचुर बहिर्विवाह की रूप में समाज में चल पड़ी^{१६} किन्तु अन्त्योत्पत्ति विवाह सम्बन्ध में यह बात नहीं कही जा सकती। यद्यपि यहाँ रामायण और महाभारत के कुछ हुए और पुराणों में कई स्थानों पर शत्रु की स्त्रियाँ को लाने का वर्णन है, किन्तु इन मुठों में ब्राह्मणों ने कभी भाग नहीं लिया। ग्रेज और प्रवर के वर्गन सबसे अधिक ब्राह्मणों में प्रचलित है। अतः स्पेन्सर का सिद्धान्त भी भारतीय महाकाव्य ने उद्गम पर नहीं-सही प्रकाश नहीं डाल सकता।

(ग) एबबरी की कल्पना—बहिर्विवाह विषयक तीसरी कल्पना साहेब एबबरी की है। उनका मतभ्रम है कि समाज में पहले विवाह का कोई इन्धन न था।^{१७} प्रत्येक कबीले में स्त्रियाँ उस कबीले की सामूहिक सम्पत्ति समझी जाती थी। व्यक्तिगत या कितनी स्त्रियों पर विवेक एवं पूर्ण अधिकार नहीं होता था। यदि कोई व्यक्ति दूसरे कबीले की कितनी स्त्री को चकड़कर लाता था तो वह उसकी वैयक्तिक सम्पत्ति समझी जाती थी और उस पर उसका पूर्ण अधिकार होता था। स्त्रियों पर वैयक्तिक एवं पूर्ण अधिकार रखने

१५ मैकलीन—स्टडीज इन एंथ्रोप हिस्टरी, पृ० ४०, ७५

१६ स्पेन्सर—प्रिंसिपल आफ सोसोलोजी ख० १, पृ० ११६-११७

१७ एबबरी—ओरिजिन ऑफ सिविलिजेशन एण्ड की प्रिमिटिव कबीलान ऑफ मेन, पृ० ६४।

के लिए यह आवश्यक था कि कबीले से आशुत की स्त्री आसुरी आशुत । इसलिये समाज में बहिर्विवाह की प्रथा प्रचलित हो गयी ।

इस सिद्धान्त में यह मान लिया गया है कि समाज में पहले कामचार (Pragati-sutty) प्रचलित था । अन्य देशों के किसी समाज में भन्ने ही यह प्रथा प्रचलित नहीं हो किन्तु भारत में यह प्रथा किसकुल नहीं थी, यह बात पहले अध्याय में बताया जा चुकी है । इस प्रकार भारत के लिए इस कल्पना का कोई आधार नहीं है । समग्रीय विवाह की व्याख्या इस कल्पना से भी नहीं हो सकती । इस व्यवस्था को हिन्दू समाज में संभवतः निम्नलिखित परिस्थितियों और कारणों से उत्पन्न किया ।

हिन्दू समाज में सगोत्रविवाह विषय के उत्पादक हेतु

असंख्य विवाह का नियम प्रचलित होने का प्रस्तावः कोई एक कारण नहीं था । यह संभवतः अनेक परिस्थितियों का परिणाम था । इनमें पूरी तरह जाने के हमारे पास बहुत कम साक्ष्य हैं, फिर भी मोटे और से यह कहा जा सकता है कि भारत में हमने कुछ सामान्य और कुछ विशेष उत्पादक हेतु थे । सामान्य हेतुओं का आशय उस कारणों से है जो अन्य समाजों में भी बहिर्विवाह की प्रवृत्ति को उत्पन्न करते हैं । पहले बताया जा चुका है कि वैदिकयुग के मतानुसार बहिर्विवाह, निष्ठ सम्बन्धियों में विवाह निषिद्ध होने के नियम का किस्तुत रूप है, इस नियम को गोत्रों के सामन्तव्य से पुष्टि और बल मिलता है । बंधुपरम्परा का मुख्य आधार नाम है, नामों की समानता होने पर वस्तुतः रक्तसम्बन्ध न होने पर भी उसकी कल्पना कर ली जाती है और सदृश नाम धारकों में विवाह वर्जित समझा जाता है । गोत्र और प्रभु भन्ने ही वास्तविक रक्तसम्बन्ध को न सूचित करें, पर उसका ऐसा समझ अज्ञा सर्वथा स्वाभाविक था । ऐसा भवने जाने पर उनमें परस्पर विवाह के विषय का नियम बना ।

गोत्र-प्रभु-व्यक्ति प्रचलित होने के विशेष कारणों का विचार करते हुए हमें यह स्मरण रखना चाहिए कि इसका अधिक प्रचलन ब्राह्मण वर्ग में ही था, क्षत्रियों और वैश्यों के गोत्र-प्रभु या जो उनके पुरोहितों के आश्रय पर थे या केवल भित्तु-भूते गोत्र थे । इस धर्म की दृष्टि में रहते हुए श्रीमती इपसदी कर्ष के मतानुसार ब्राह्मणों में इस व्यवस्था के अक्षय के निम्न कारण प्रतीत होते हैं ।^१

(१) ब्राह्मणों में स्थायी बहिर्विवाह ■ अभाव—स्थायी बहिर्विवाह का अर्थ यह है कि एक गाँव या वस्ती में बसे हुए व्यक्तियों में विवाह का न होना । एक गाँव एकट्ठे रहने वाले व्यक्तियों से मात्र परिवार की बौद्धि धर्मिक सम्बन्ध अलग होता है, उस गाँव के समाज का वह होते स्त्री मुख्य भार-बहिन, बड़ी आत्मा के व्यक्ति उनके माता-

पिता तथा बहना, छोटी भाव्य के बच्चे लड़के-लड़कियाँ सम्झी जाती हैं। गजदीकी रिश्ते-द्वारा की भाँति एक पाँच भावों में विवाह बँधित होता है, अपने पाँच से बाहर जारी करने के इस विषय को स्वाधीन बहिर्विवाह (Local exogamy) कहते हैं। यद्यपि आधीन साहित्य में इसका स्पष्ट उल्लेख नहीं है किन्तु अनेक संशोधों से इसकी प्रतीति सुचित होने में शक्ति भी प्राप्त हुई है। विवाह और यशु शब्द ने जाने का अर्थ देने वाली यशु (प्राण) याशु से बने है। विवाह का अर्थार्थ है विविध प्रकार से पाणिग्रहण उत्सवार पूर्वका यशु का गिराना से अमरगुह से जाना। यशु (अशु) का यह नाम देने का यह कारण है कि यह युव प्रचारणिक ने अनुदान जारी जाती है।^{६२} वैदिकयुग से यशु को विवाह के बाद अपने अमरगुह से निकाल पर्वतने, मार्ग में कोई कष्ट न होने की अनेक प्रार्थनाएँ हैं।^{६३} अतः यह स्पष्ट है कि उस समय में बहना का अपने पाँच या स्थान से बाहर विवाह होता था। वास्तव में अन्धधार्मिक बुद्धिवा बहने की एक व्युत्पत्ति यह की है कि यह बुराती (कुल में) दी जाती है।

प्राचीन काल में स्वाधीन बहिर्विवाह की प्रथा वा प्रचलन छत्रियों में अधिक था, वे प्रायः राजाओं और राजपुत्रों से संबंध होने के कारण निम्न स्थानों में बसे हुए थे। किन्तु ब्राह्मणों के कोई निश्चित विचार स्थान नहीं थे, ब्राह्मण पुत्रीहिंस और मन्त्रवेत्ता थे, वे अपने माध्यमताओं की ओर में एक बरतार से दूसरे देशों में जाया करते थे। जिन स्थानों पर महासभों में प्रभु वशिष्ठा की संभावना हो, वहाँ उनका जाना स्वाभाविक था। अतः उनका निवास स्थान निश्चित न होने से उनमें कश्चित् की भाँति स्वाधीन बहिर्विवाह का विकास नहीं हो सका था, इसविषय सम्बन्धित साम्प्रदायिक स्थिति के लिए गोत्र और प्रवर की पद्धति प्रचल की।

६१ ल. प्र., पृ० १८३

६२ अश्वमेध १०८५१२३ में कहा गया है कि अमरगुह (अश्व) के पास घर द्वारा छोड़े गये क्षत्रियों का मार्ग निश्चित और सरल हो (अमरगुह अश्वमेध: सत्य मन्त्रा येन: सक्तो यन्ति नो वरेयम्) वि. अश्वमे०, १४११३५, भाष. बृहस्पति २४१२, लाका. गु० ११६१, कौ. सू० ७५११२। अ० १० (८५१२६ तथा अश्वमे० १४११२० में घर के घर में जाने के लिए यशु को पुका द्वारा रथ में बिठाते तथा बहिर्विवाह द्वारा इसे यहाँ तक पहुँचाने का वर्णन है (आश्व. गु. सू. १८५१ भाष. गु. सू. २४५६)। अ० १०८५१२३, अश्वमे० १२११३५, १४११११-लाका. का० ११५१ में यह प्रार्थना है कि वलि क्षत्री की रस्ते में अश्वमेध न पड़े (या विवाहदिपन्थितो न आश्वमेधित इत्यसी, वि. भाष. गु. सू. ११८५, ला. गु. गु ११५११५ की. गु. २४५२, भाष. गु. २४५२५, की. गु. ७७५३)।

सूत्रों का एक मह प्रतीक होता है कि ब्राह्मण ग्राम: पारिवारिक विधियों का अनुष्ठापन करने वाले और सम्प्रदायवादी थे। इस मूलभूत शोध पर ब्रिटिश विद्वानों का एकाग्रित ध्यान था, उसे गुरुत्व रखने के लिए यह आवश्यक था कि पारिवारिक सम्प्रदाय ब्रिटिश लोगों तक सीमित रहे बाद, वे नए गोल और प्रचार के रूप में विचारित हुए।

सौम्यता का एक अन्तर्गत प्रतीक होता है। महाभारत में हमें अनाथ भगवानों के साथ ब्राह्मणों के विवाह के अनेक उदाहरण मिलते हैं। ब्राह्मण सम्प्रदाय में गांधार का बाहुक भी बहिन के साथी की थी (महाभारत भाग ११९, ४४ अ०)। भाग १२५ ब्राह्मण के विवाही प्रार्थना के साथ रहने का वर्णन है (महाभारत भाग ११२, १३-२)। भावि धर्म में अल्पवयसी सम्प्रदाय के सम्प्रदाय, गरी के दंडन में सावि-साधन साखी एक अनाथ स्त्री करिहा के साथ विवाह का वर्णन है (महाभारत ११२, ११)। ब्रिटिश-धर्मग्रन्थ में कल्याण स्त्रियों के साथ विवाह का संकेत है (१०१९८)। ब्राह्मणों का अनाथों के साथ संबंध होने पर संभवतः उनकी इस पद्धति का गोलों और प्रचारों पर कुछ प्रभाव पड़ा हो।^{१५}

१५. सामोवर धर्मग्रन्थ कोसाम्बी का यह मत है कि गोलों में अनेक नाम प्राणि जाका हैं, जिन: वे वर्तमान दक्षिण भारत की अनेक अनाथ जातियों के जातीय चिह्नों (Totems) के समान हैं, गोत्र-प्रकरणपद्धति का उद्गम ये अनाथजातीय चिह्न हैं (कर्मल आर्य की आधुनिक आर्य आर्य दक्षिण एशियाटिक सोसायटी १९२० पृ० २८); इसमें कोई संदेह नहीं कि प्राचीन गोलों की पृथी में अनेक नाम पशुपक्षीवाचक हैं। उदाहरणार्थ कवि (अक. पृ. १२४) मेघजागिरत गोत्र का एक नाम है, तोतरभरती सिधिरि का एकलोक मरुजागोत्र में है (अक. — २. पृ. १२-१२८) और कविजल का बसिष्ठ गोत्र में (अक. पृ. १३८, १८१)। इसी प्रकार अन्य प्राणिजों के सम्प्रदाय रखने वाले अनेक नाम पाये जाते हैं, जैसे तुली, गंधर्व, गार्धभ, आर्य, महाकवि, कर्कश, मरीच, आर्य, मयूर, जाग, मेघ, वज्र, गोत्रों में प्राणिजों के अनिष्टित विभिन्न नामों के थे उदाहरण हैं—स्तनकर्म, कविभुज, भीमभुज, मेघमयति, कासकृत असाय, अयमयम। ये सब उदाहरण प्रवरधर्मदी (वे. प्र.) के अन्त में गोत्र और क्षत्रियों की सूची में दिए हुए हैं। भीमभुज ने प्राचीन भारत के ऐसे प्राणिवादी भाषों के विभिन्न उदाहरण 'रिलीजम ईस वे' (पृ. ८३६) में दिये हैं—बल (बल), तुल (तुल), भीम (तुल), मयूर (तुल), मयूर (तुल)। मे. प्र. काग वेगों से इनका वर्णन किया है (मेघ आर्य फॉरस इन अती संस्कृत लिटरेचर पृष्ठ १९१-२ पृ. ८५ स्तु.)। सम्प्रदाय की भारत में ऐसे पारिवारिक नामों की कमी नहीं है, जैसे गुजरात में मयूर, भाग्य (मयूर), भाग्य (मयूर) और पंजाब में तुलक।

स्मृतियों और असंगोत्रता का निवृत्त

धर्मग्रन्थों के बाद स्मृतिकारों ने असंगोत्र विवाह के निवृत्त पर अधिक ध्यान दिया। जो स्मृति जितनी अर्थाधीन है, उस नियम के सम्बन्ध में उल्लेख उतनी ही अधिक कठोरता दिखाया है। सबसे पहले स्मृतिकार मनु ने असंगोत्र विवाह का निषेध करते हुए कहा कि जिसके दो विवाह करने में वह तत्प्राप्त प्रजन्य होती है जो माता की मरिचक या पिता के मांस वापस न रहे। यह ध्यान देने योग्य बात है कि मनु ने प्रवर का उल्लेख नहीं किया। पौण्ड (४१९), बर्गिष्ठ (८१९) तथा आगस्त्य (२११११५) ने कत्वा का असमान बन्द होना आवश्यक समझा था। विष्णु मनु गोत्र के प्रतिपक्ष की ही परीक्षा समझता है। मेघातिथि ने प्रव्रत की आवश्यकता करने हुए लिखा है कि गोत्र प्रवर्ग की

किन्तु प्राचीन लोगों में जो प्रवृत्तों की नाम आते हैं, वे अलग बड़े गोत्रों के अन्तर्गत छोटे-छोटे परिवारों के नाम हैं और यह सम्भव प्रतीत होता है कि वे नाम ऐसे छोटे वर्गों के आतीय प्राप्त रहे होंगे। एक से ठीक ही लिखा है कि इन नामों से प्राचीन भारत में जाति-विभक्तियाँ (Totemism) की वृत्ति सिद्ध करना ठीक ईजा ही है जैसे फाल (Falk), हेरम (Heram) आदि जो बार नामों में ईश्वरपूज में इस प्रथा की स्थापना करना (कफ—पू. पू.)। कोसाम्बी ने गोत्र के बड़े वर्गों के जो प्राणिजाती नाम दिये हैं, वे विरचनशील और निर्विवाद नहीं हैं। उदाहरणार्थ, गोत्रय उत्तम गोत्रों या उत्तम प्रजातों वाला हो सकता है, किन्तु इससे यह सिद्ध नहीं हो सकता कि यह श्रेष्ठ के दृष्टि में सुनिश्चित करता है। भरद्वाज का मुकदायं ब्रह्म (सम्पत्ति) को खाने वाला है, अपने घोंसले में जल लाने वाली पत्नी के लिए इसका प्रयोग गौण रूप से होता है, इस गोत्र शब्द के आधार पर इसे दृष्टि में मानना उचित नहीं प्रतीत होता। कौशिक का अर्थ उक्त अवस्था है, किन्तु भ्रुति का यह अर्थ नहीं है, अतः यह कहना ही जा सकता है कि पत्नी का नाम जाति के नाम के आधार पर रखा गया, न कि जाति का नाम पत्नी के आधार पर। कश्यप गोत्र की कछुवा (कछुआ) से निकलना निरी धीनता है। श्रीरामजी द्वारा प्रस्तुत कछुए के आकार जैसी प्रजाती बनने के शतपत्ताष्टक के प्रमाण (३५१९) द्वारा प्राचीन वैदिक जातियों में दृष्टि करने का प्रमाण एक के रूप में देखा ही है जैसा मध्यकालीन बाह्यरहितों के मुक्तों में प्रमुख वैदिकों के उत्तम धर्म में इसकी वृत्ति करना। वैदिक जातियों में इस प्रथा के कोई निर्विवाद प्रमाण नहीं मिलते (कफ—पू. पू. भूमिका ५. XVI)। अतः श्रेष्ठ प्रवृत्ति को अनार्यभूतक मानना उचित नहीं प्रतीत होता। किन्तु यह समझ है कि समाजों की बहिर्विवाही जातियों (Exogamous classes) की प्रवृत्ति ने समाजों की शीत-प्रवरप्रवृत्ति को प्रवृत्त एवं कठोर बनाने में सहायता दी है।

समानता के आधार पर है। किन्तु मनु से एक हजार वर्ष बाद टीका मिलने वाले मेधा-
तिथि को इस विषय में मनु की मूल भावना को ठीक समझने के सम्बन्ध में प्रामाणिक-
ताहीँ माना जा सकता है। इतना ही नहीं कि मनु ने प्रवर के प्रतिबंध का उल्लंघन न किया
हो, किन्तु मनु संगीत विवाह को कोई समझकर अपराध नहीं समझता। बाद की स्मृति-
में तर्वांग विवाह से उत्पन्न सम्मान को बर्णित नहीं किया है, किन्तु मनु से पूर्वतन्त्र के विष्णु-
में ही की चर्चा करते हुए इस प्रकार की सम्मान का कोई उल्लेख नहीं किया है। प्रागैतिह्य-
के प्रकरण में अथर्ववेद विवेक की गणना (२।१७०) में तर्वांग भा उल्लेख नहीं है। इसके
बाद मित्र और पुत्र की पत्नी तथा सहोदर भगिनी के अभिगमन का अनुष्ठान-विधान में
सहोदर सम्मान है। गौतम ने (२३।१२) तर्वांग के साथ जला दही प्रदान भा वस्त्रदान
शामिल था, किन्तु मनु इस प्रसंग में तर्वांग का उल्लेख नहीं करता। मनु के उपनिषद्
(१।१६०-६७) में भी तर्वांग विवाह की विवेक नहीं है। ऐसा जान पड़ता है
कि मनु के समय तक, लगभग गौतम में विवाह न करने की प्रवृत्ति थप गयी थी, किन्तु
कृष्ण इसका उल्लंघन भी होता था और इस उल्लंघन का ध्यान नहीं करता
जाता था।^{६८}

याज्ञवल्क्य, नारद तथा अन्य स्मृतिकार

याज्ञवल्क्य पहला स्मृतिकार है जिसने समान प्रवर में विवाह का नियम किया।
यह जलदान प्रवर और मोक्ष में विवाह को न केवल आध्यात्मिक समझता है, अपितु इस
विषय का उल्लंघन होने पर वह उसे गुरुशाली के पास अभिषेचन मुख्य अनुष्ठान समझता
है।^{६९} यह स्पष्ट है कि मनु के ४००, ५०० वर्ष बाद समाज के विचारों में इतना अन्तर
आ चुका था कि मनु विश्व व्यवस्था के उल्लंघन को गम्भीर नहीं समझता था, याज्ञवल्क्य
के चरको काय समझा। वास्तव में मनु के समय यह व्यवस्था हिन्दू समाज में ग्रीक-सीने
प्रचलित हो रही थी, पर यह समय गौतम के नियम के प्रति इतनी अधिक आस्था एवं
वृत्ता उत्पन्न नहीं हुई थी, यही सहस्राब्दी में यह व्यवस्था हिन्दू समाज में दृढ़भूत हो
गयी। याज्ञवल्क्य के साथ आने वाले नारद ने ही इसके लिए पाठोपपन्न व्यवस्था कर
शाली। यह कहता है कि कन्या अधिमान प्रवर और मोक्ष की होनी चाहिए।^{७०} यदि कोई

^{६८} मनु ३।६, अथर्ववेद ४ या मातृशालीना ४ वा पितुः। ताम्रसूता त्रिजलानी
दारुभर्त्वि मेधुमे ॥ शुक्लू मे इस श्लोक में एक “च” शब्द से भद्रता के अतिरिक्त
विता की सविधाता और दूसरे “च” शब्द से कन्या के लिये विता के अतिरिक्त
भद्रता की गौरव का न होना भी आवश्यक बताया है।

^{६९} याज्ञवल्क्य १।५३

^{७०} नारद स्मृति १।२।७

मुक्त इस विषय का उत्सर्जन करे तो उसने फिर निम्न-उत्तरार्थ के अनिश्चित और कोई बात नहीं है।^{११} चिन्तु (१४।६) और परमेश्वर (१०।१३-१४) में इस विषय के उत्सर्जन के लिए वाक्यांशों की दो गौण वेने तथा तीन प्रालम्ब्य प्रत्यक्षितों के रूप पाए की शक्ति गायी है। इस लक्ष्य रूप का कारण यह नहीं है कि परमेश्वर इसे कम अग्राह्य समझता है। सगोत्रा के पास जाने का अवसर तो शुभानुपगमन अवसर में ही है, चिन्तु दोनों में परमेश्वर ने गायत्रय का तो अन्य स्मृतिपाठों की अपेक्षा नहीं दिखायी है। इस कारण उक्त रूप में अन्य जैसी उग्रता नहीं है।

टीकापर और गौण

मेधातिथि—यही लगी है टीकाकारों का यह अनुमान है। निम्न-उत्तरार्थ की बातें स्मृति पर निम्नी यही कालबीजा आशय नहीं टीका से हम फिर पर कोई निम्न प्रकाश नहीं पाता। मनु के प्रतिष्ठ टीकाकार मेधातिथि ने सगोत्रा का मन्त्र पर निम्न विषय है, उग्रता यह उत्पन्न हो चुका है। चिन्तु ऐसा करने हुए मेधातिथि के सामने यह समस्या उत्पन्न हुई कि मनु विद्याविद्याल अर्थात् वाङ्मय, क्षत्रिय और वैश्य के लिए अर्थात् गायत्री आशय समझता है, यदि अगोत्रता आशय है तो प्रकाश की अभिमान होने चाहिए। चिन्तु उक्त ही प्रतिष्ठ—टीका के प्रतिष्ठ ही नहीं और गौण पर आधारित है, अतः क्षत्रिय और वैश्यों पर मनु की पाठ्यवी विद्या लक्ष्य पाया होगी। इसलिए मनु कुछ गोत्री द्वारा गाना जाने बाध यह पता चलता है कि अन्य स्मृति में ही गोत्र काहे है, इसमें अतिरिक्त ही कोई आशय नहीं है। अतः एक ही अगोत्रता का ज्ञान हुआ है यही एक ही अगोत्रता का होने से निष्कर्ष नहीं होता।^{१२} प्रायश्चित्त प्रकरण में मेधातिथि की उक्त बात पर आशय है कि मनु ने सगोत्रा के अनिश्चित के लिए प्रायश्चित्त नहीं बताया। यह गह्रा है कि अन्य अगोत्रताकारों ने इस पर के लिए प्रायश्चित्त बताया है अतः टीका अगोत्रा में अथवा प्रायश्चित्त आशय चाहिए।

मनु गौण का परिहार—मेधातिथि ने गोत्र के सम्बन्ध में एक लगी पाठ्यवी का उत्प्रेष किया है। अब तक विद्या में नहीं देखा जाता था कि कन्या का गोत्र पर के पिता के गोत्र से निम्न होता चाहिए। मेधातिथि ने प्रतिष्ठ का एक अर्थ उद्घृत किया है कि कन्या पर की मरता के गोत्र की भी नहीं जानी चाहिए। प्रतिष्ठ धर्मसूत्र ने पिता के गोत्र वाली कन्या का भी प्रतिष्ठ है, सगोत्रा, अगोत्रता से भावी करके, द्विज उक्त कन्या की छोड़ दे और आश्रयण करे। पिता के गोत्र वाली कन्या के साथ भी विवाह करने

११ मन्त्र स्मृति १५।१०१-१०५

१२ मेधातिथि मनु ३।४ पर

पर ऐसा ही करे।^{१००} भोजसिद्धि मनु की व्यवस्था को मानते हुए इस मत में असहमति रखता है। पर इससे इतना स्पष्ट है कि नवीं शताब्दी तक भारत में सोल का परिष्कार करने वाला एक सम्प्रदाय पैदा हो चुका था।

अपराध—१२ वीं शती में अपराध ने धार्मिकमय स्मृति की व्यवस्था करने हुए अश्वमेध विवाह के अपराध के लिए अधिक भयंकर दण्ड की व्यवस्था की। बिना दूबाने के ऐसा विवाह हो जाने पर बहु बीसायन के अनुसार देश पुरुष के लिए दण्ड पाप-विनाश पर्याप्त समझता है, किन्तु पापदूहकर विवाह करने पर उसमें मम में पाप को पवित्र समझना चाहिए और पवित्र पति की गन्तार की परीक्षा होती है।^{१०१} अब तक अपराधों में पूर्ववर्ती किसी धर्मशास्त्रकार ने देश विवाह करने पति की पवित्र और गन्तार को आश्वासन नहीं करा था। अपराधों के समय तक अश्वमेध विवाह के विरुद्ध इतना प्रभाव प्राप्त हुआ कि उसने समस्त सभ्य विवाह करने वालों के लिए दण्ड की व्यवस्था की। उसने माता के बोल को भी छोड़ने वालों का मत दिया है किन्तु उसने मह-यति नहीं प्रकट की। अपराध (पृ० १५, ६३) में ब्रह्मपुराण के एक खण्ड का उद्धृत किया है, जिसमें कहा गया है कि धर्मोद्देश और सभ्यता से विवाह, गौ का बलि, पुण्यमेव, अश्वमेध, कलिकाव में द्विजातियों को नहीं करने चाहिए। पुराने धर्मों में जो व्यवस्थाएँ प्रचलित थी और महजकाल के टीकाकार एवं निबन्धकार जिन व्यवस्थाओं को अपने समय के लिए अनुपयुक्त समझते थे, उन व्यवस्थाओं से छुड़ी जाने के लिए उन्होंने यह आशय इस दृष्टि से कहा कि उनको कल्पित बना दिया गया। ब्रह्मपुराण में वह श्लोक स्मृतिचन्द्रिका (भाग १ पृष्ठ १३) में तथा मातृव की पराधरस्मृति की टीका (भाग १ पृ० १३१) में उद्धृत किया गया है। इस श्लोक से स्पष्ट है कि पहले किसी समय अश्वमेध विवाह प्रचलित था।

विशालेश्वर—विशालेश्वर का मत भी अपराधों से भिन्नता-मुक्तता है। वह सर्वप्रथम विवाह को सभी दशा में सत्परोहण के मुख्य परम समझता है, जब समाज ही चुका हो। यदि व्यक्ति सगोत्र विवाह से उक्त दशा के पूर्व ही निवृत्त हो जाय तो उसका अपराध स्मृति-रक्षक से कम होता है।^{१०२} विशालेश्वर ने किसी अमात स्मृति का एक खण्ड उद्धृत किया है कि सगोत्रा चाकसी या चुपनी होती है। उसके साथ एक बार के अश्वमेध से पवित्र होने वाला तीन वर्ष के श्राद्धयज्ञ से मुक्त हो जाता है।^{१०३} बृहस्पति तथा अरिष्ट

^{१००} भोजसिद्धि मनु ३।५

^{१०१} अपराध, पृ. ८०

^{१०२} भाष० ३।२३१ पर

^{१०३} भाष० ३।२५० पर

को उत्तिथियों को भी मिलाकरा ने उद्भूत किया है। इन उत्तिथियों का यह आशय है कि इस पाप की वाङ्मयण प्रायश्चित्त में निवृत्ति हो जाती है, किन्तु मिताश्रयकार इसके अत्यन्त हीना हुआ करता है कि यह व्यवस्था समाज में पढ़ने ही इस पाप में निवृत्त हो जाने वाले के लिए है।^{१०५} बौद्धागम ने ऐसी पत्नी पर कोई दोष नहीं डाला था, केवल उसके स्थान देने तथा चात्रागमन यह करने का आदेश दिया था, पर वेद हजार वर्ष बाद गेहल का नियम प्रस्तुत हुआ हो परा कि समाज का कोई भी समझ जाने लगा उसके पुत्र की सामाजिक स्थिति के सम्बन्ध में मिताश्रय तथा अन्य रीतिकारों ने कोई स्पष्ट व्यवस्था नहीं की।

देवव्यवस्था—निबन्धकारों ने उत्तम वाली गो धूरा किया। देवव्यवस्था ने कहा कि चात्रागमन श्रम का शक्ती में निवास कर केने का प्रायश्चित्त है, किन्तु यदि विवाह के बाद समाज उत्पन्न होती है तो इस विषय में आवश्यकता की यह व्यवस्था माननी चाहिए कि वह समाज वास्तव होती है।^{१०६} वर्तमान समय में उपलब्ध मायस्त्वान् मुख्य तथा अल्पमूल में देवव्यवस्था द्वारा उद्भूत यह व्यवस्था नहीं मिलती। प्रचरणजरी के वर्तमान पुनर्गोत्र में इस व्यवस्था का यह के नाम में उद्भूत किया है, बाद के सभी स्मृतिकारों ने इसे या इसके मिलते जुलते वर्णों को धीमागन या वय के नाम में कहा है। यह किस स्मृति का वचन है, यह आहो निश्चित न हो, किन्तु यह निश्चित है कि सब निबन्धकारों ने सर्वप्रथम से इस व्यवस्था को आचार्य पर सगोत्र ने उत्पन्न समाज को चात्रान् कहा है। देवव्यवस्था सादा का गौत्र छात्र के विषय में भी अपनी अग्रहमणि की दर्शाता है। सुमति सगोत्र विवाह को निश्चित उद्गारा हुआ गौत्र करने वालों को कठोर दण्ड नहीं देता। इस विवाह में उत्पन्न समाज चात्रान् तो है किन्तु गोत्र ने उत्पन्न उत्तरी श्रुति की जा सकती है। यह व्यवस्था को मानने का अविश्राव आश में उसने पुनर्गोत्र की असावे में है। निबन्धकार की तरह यह पुनर्गोत्र की १२ वर्ष का कठोर प्रायश्चित्त नहीं बताता, किन्तु कुछ अग्र प्रायश्चित्तों से उत्तरी श्रुति की वर्तमान समझना है (पुनर्गोत्र विन्यास ४।३६३—६६)। मायव ने परम्पर स्मृति (१।१५—६) की टीका में कहा था यह वाक्य उद्भूत किया है कि तीन प्रकार के चात्रान् के एक सगोत्र विवाह में उत्पन्न समाज भी है, किन्तु मायव की यह अपनी सम्मति नहीं है क्योंकि १।१५ पर सगोत्र विवाह के सम्बन्ध में विश्वास करते हुए उसने बौद्धागम आदि पुनर्गोत्र आदेशकारों के इस प्रकार के वचन उद्भूत किये हैं ॥ चात्रागमन और कष्ट प्रायश्चित्तों से इस पाप का परिमार्जन हो जाता है।

समस्याकार—वाङ्मयकार वट्ट ने निर्णयस्थित में मायव का ही अनुसरण किया है। स्मृत्यर्थकार की सम्मति को उद्भूत करते हुए उसने कहा कि सगोत्र विवाह समाज-गमन के समान अपराध है। इस विवाह द्वारा उत्पन्न समाज चात्रान् होती है, किन्तु यदि

१०५ श्री

१०६ स्व. च. माता १, पृ. १५५।

अधिका संकाय इसी ओर है कि माइस्ट्रॉटन जाला के बहुरूप ही माता के संस का परि-
हार करें, सुगर्भों के निम्न गह निषेध नहीं है ।

उन प्रचार संघर्षों में देखा कि वैदिक युग में सोत-प्रवर की वृद्धि बीच रूप
में थी, काव्य कर्षों के अतिथि समय मरुतों को ई० पू० में समोत विचार का यह
प्रतिकार जल हुआ । धर्मग्रंथों ने सर्वप्रथम इन प्रतिबन्धों को विवर एवं दृष्ट बनाना चाहा,
उनके समय में संभवतः यह व्यवस्था संभवान्त नहीं हुई, उन्होंने इसके प्राथमिकता और
एक संस्कृति ही रहे । दूसरी ओर ई० ॥ बाद एक संस का विचार समाज में अच्छी
तरह प्रतीत हो सका था, यह कभी-कभी इनका संग हो जाता था । इन असंभवों को
संस्कृति के विद् संस्कृतियों ने संसों की व्यवस्था की, मरुत ने कहा कि हम गान के लिए
सिद्धोत्पन्न के प्रतिबंधों को ई० पू० नहीं हो सकता । किन्तु इन संस्कृतियों ने समोत
विचार में उत्पन्न मतान भी निर्या नहीं की । समकाल के टीकाकारों ने समोत विचार
में उत्पन्न मतानों को संशय बड़ा और प्रामाणिकों की कठोरता यथापूर्व रखी । संस-
निधि ही एक ऐसा टीकाकार है किनें लैसी मतान का संशय नहीं करा । १२ की शाही
के बाद के निरन्तरताओं ने उत्पन्न व्यवस्थाओं यथापूर्व रखी, माध्यमिक माता यत्ने
काव्यों ने माता के संस के परिहार पर एक दिना मरुत और विचारपरिभाषा में समोत
विचार में दृष्टि करना के पुनर्विचार की व्यवस्था की । अब सर्वप्रथम काम में हिन्दू समाज
में प्रचलित संस मान्यता नियमों का प्रतिपादन होता ।

सांस्कृतिक युग

वर्तमान समय में हिन्दू समाज के संस के प्रतिबंध का पूरा पालन होता है ।
विचार के समय संस (गान, मूल या इति) की विचार का अल्प विचार लिया जाता
है । कई स्थलों पर तो सांस्कृतिक जीवन प्रतिबन्ध मासोप मासोपों की अपेक्षा
बहुत बड़े हैं । धर्मग्रंथों ने मातापुत्रः पिता का संस छोड़ने की व्यवस्था की है तथा
कुल निरन्तर माध्यमिक साधकों के लिए माता के संस को भी छोड़ने के लिए कहते
हैं । किन्तु विचार में बाद, माता और नई अल्प संस भी छोड़े जाते हैं । उदाहरणार्थ
भारत में ये भी संस छोड़े जाते हैं—१. प्रथम संस, २. माता का संस, ३. माता
का संस, ४. परमात्मा का संस, ५. स्त्री का संस, ६. परमात्मा का संस, ७. पर परमात्मा
का संस, ८. दादी की माता का संस, ९. परमात्मा की माता का संस । १० यह स्मरण
रखना चाहिए कि सतिव, संस तथा अन्य जातियों में संस विषयक प्रतिबंध कई बार
साधकों की अपेक्षा अधिक बड़े होते हैं । विचार के माता का उत्पन्न उदाहरण इसी
जात की दृष्टि करना है । अनेक जातिका साधकों की व्यवस्था को उनसे भी अधिक

अवस्था से आगे करके, अपनी सामाजिक स्थिति को ऊँचा करने का आग्रह कर रही है। एका शीघ्र ही मत्स्य भाषी सुरजन्यकी जाति ने १८७१ में बाह्यगण गोशों को ग्रहण किया है।^{१११} राजपूतों और जाटों के सम्बन्ध में प्रायः यह स्पष्ट प्रकट किया जाता है कि वे जातों में बाह्य से आयी हुई जातियाँ हैं। किन्तु इस समय प्रायः सभी राजपूत सूर्य और चन्द्रमण्डली तथा बाह्यगण गोशों वाले हैं। जाटों में अभी तक ऋषियों के गोशों को ग्रहण नहीं किया, किन्तु उनमें गौत्र नियमक नियमों का गायन बड़ी रुवाई में होता है।^{११२}

वर्तमान गोशों के विभिन्न रूप

इस समय भारत की विभिन्न जातियों में कई प्रकार के गोशों का प्रचलन है। बाह्यगण तथा हिन्दुओं की अन्य उच्च जातियों में तो प्राचीन ऋषियों के नाम वाले शक्ति, विद्यामिश्र, मधुगण, श्वयम् आदि गोशों का प्रचलन है, किन्तु कुछ जातियों में शीघ्र पशुओं और पेड़ों के पवित्र साक्ष्यों (Totem) के नाम पर हैं। दक्षिण की हिन्दू जातियों में इस प्रकार के अनेक उदाहरण मिलते हैं। उनके बीच विषयक प्राविण्य जो धर्मशास्त्रीय व्यवस्थायों के अनुष्ठान हैं, किन्तु गोशों के नाम पशु, पक्षी, पेड़ आदि पर हैं। इन्हें वे इसका पवित्र समझते हैं कि उसे मारने, खाने या किसी प्रकार के उपयोग करने से बचना पड़ेगा करते हैं और एक गोश या साक्ष्य जातों में जादी नहीं होती। उदाहरणार्थ, भीमों में एक आधा जाति है;^{११३} आधा का अर्थ है शितली। इस जाति वाले

^{१११} लुई—अध्या २, पृ० १८३

^{११२} लेबर—टोरेमिन्स एन्ड यूरोपेसी, पृ० १८३। वर्तमान समय में भारत की विभिन्न जातियों में प्रचलित गोत्र सम्बन्धी नियमों को जानने के लिए विभिन्न जातों की जातियों के सम्बन्ध में प्रकाशित में सरकारी प्रकाशन विशेष रूप से उपयोगी है : शीघ्र—४ व्यासरी आदि जो पञ्जाब एन्ड नार्थ वेस्टर्न इण्डिया प्राविण्य ३ अंक; कुर्ग—४ ड्राइस एन्ड कास्टस् आदि नार्थ वेस्टर्न प्राविण्य ४ अंक १८८१; रिजनी—ड्राइस एन्ड कास्टस् आदि बंगाल ४ अंक १८८१; अर्सेन—कास्टस् एन्ड ड्राइस आदि उत्तर इण्डिया १ अंक १८९१; एन्डोल—ड्राइस एन्ड कास्टस् आदि आन्ध्र ३ अंक; शीघ्र—ड्राइस एन्ड कास्टस् आदि तेलुगु प्राविण्य आदि इण्डिया ४ अंक १८९१।

^{११३} मध्य प्रदेश की १८०१ की जनगणना रिपोर्टें पृ० १८८, इनके अन्य टोरेम शीघ्र, माय, बांस, पीपल आदि पेड़, गामोला नामक एक विशेष लता है, जिस पर देर पड़ जाने पर वे उसे अपना करते उससे क्षमा मांगते। भारतवर्ष की विभिन्न जातियों

तिलनी को नहीं मारेंगे, उसे पुनः समझेंगे और वाचा जाति वालों में परम्वर जाती नहीं होती। तिलनी दम जाति का मोक्ष (Totora) कहलाता है। तिलनी लोगों में मोक्ष जाति की एक बड़ी गड़बड़ जाति ॥ ११४ इनमें राक्षसों नाम के गोत्र वाली एक उपजाति है। यह पीपल (Ficus Religiosa) का नाम है। इस उपजाति का संग्रह करने के लिए या किसी अन्य कार्य के लिए इस पेड़ के पत्तों का उपयोग बिल्कुल नहीं करते। इसी प्रबंध में किसानों, कुलाहों और पड़ोसियों की एक बड़ी जाति कुम्हा है। इस जाति के लोग मोक्षों का गोत्र अग्रिम अर्थात् केसर का। उक्त इस जाति के लोग केसर का उपयोग का उपयोग करते हैं। उन्हें जब दम में अग्रिम दुई को उम्मीद अपना नाम बड़ी गड़बड़ हूँ अग्रिम का अर्थ केसर के बने का नाम एक अग्रिम का नाम किता, भाई बं केसर का उपयोग कर सके ॥ ११५ गोत्र जातियों में मोक्ष का नियम इस नाम पर अग्रिम है कि कोन किता देवी-देवता पूजा है। यदि कोई व्यक्ति बार या पांच-पांच देवताओं की पूजा करते हैं तो उनमें प्रमुख नहीं हो सकता। इस प्रकार किता नाम में अग्रिम में इतरों का प्रभाव है।

के टोटों का मुख्य परिचय रिचम की पीपल नाम किता (पृ० २३-१०२) में है।

११४ इनके कुछ अन्य गोत्र हैं—अग्रिम (पेल), चित्तल (इमली), गुरम (बीड़), मोरला (मेड़), मोरला (मेड़), कटारी (छुरी), मकल (स्वा), उत्तिरीयन (दाम), मकल (बोप), वे० अग्रिम कुल सम्प्रदाय—भाईभोर दास एवम् कास्तल, खं० १, पृ० २४२-२४३। यहाँ मोरली बीड़ों में निम्न टोटों का गोत्र है: भावला, नीड़, कट, बभा, जाल, मोल और चेत कमल, कटला, उग्र, केसर, पीपल, मेड़, भाव, कटार, मोड़, बंगूर, कटूर, ईच, भुली, भावला, छरली, कटल, इमली, कटूर, कटूर (यही पृ० २४१)। मकल के जातियों के ६६ गोत्रों में से कुछ में हैं—मकल, बेल, मोड़, जाल, मोरला, सच, धीम, मोड़, केसर, बूच, पीपल, केसर, हरी, (यही पृ० २४३)। मकल के ऐसे गोत्रों के कुछ मुख्य नामों के लिए वे० कितामोहनसेन—मकल में जातिमेद, पृ० ११२-११५। कटार मकल में ऐसी प्रथा कम है, मकल में अग्रिम, कटल ऐसी गोत्र बताने जाते हैं (१६०१)। रंगला की अग्रिम रिपोर्ट, खं० १)। मकल की अग्रिम जाति के गोत्र, कटल, कटल गोत्रों का नाम उल्लेख होगा।

११५ केसर—पृ० १, पृ० २८। संभवतः श्रीरामचन्द्र की सेवा के कारण अग्रिम जाति का अग्रिम अग्रिम और रीच नाम के जाति अग्रिम थे। प्रचीन और अग्रिम मकल की ऐसी जातियों के संक्षिप्त परिचय के लिए देखिए—मिनिमोहन सेन मकल में जाति मेद, पृ० १०५-११५।

गोत्रों का वर्गीकरण

श्री टिल्ली ने इन गोत्रों को पांच वर्गों में विभक्त किया है :^{१११} १. सांख्यिक (Totemistic) गोत्र—ये पशुओं, वृक्ष-पक्षियों और वनस्पतियों के नाम पर हैं। २. मूल-पुरुष वाचक (Eponymous) गोत्र—ये ऐसे व्यक्तिों के नाम हैं जो विशेष जातियों के मूल पुरुष माने जाते हैं। ३. प्रादेशिक (Territorial) गोत्र—ये जातियों के मूल निवास स्थान या जमीन के मूल पुरुष के नामों को सूचित करते हैं। ४. उपाधिवाची वाचक उपाधिवाची (Tribal) गोत्र—इसमें गोत्र प्रत्येक भी वैयक्तिक विशेषता या महान् कार्य की सूचना विभक्त है। ५. स्त्रीवादी या पारिवारिक (Lineal or Family) गोत्र। इन वर्गों में गोत्रों के बीच कुछ उपाधियाँ मिलती हैं, ताकि वर्णमाला बनाने में गोत्रों के स्वभाव का अच्छी तरह पता लग सके।

१. सांख्यिक (Totemistic) गोत्र—अभिन्न में इस प्रकार के गोत्रों का अधिक प्रचलन है। देवताओं जैसे भी आरक्षक वंश जाति में गरम (घोड़ा), अग्नि (कोले का वृक्ष), देवता (मकरी) के गोत्र पाये जाते हैं।^{११२} आन्ध्र देश की प्रमुख व्यापारिक जाति अहिना में कुली (बाघ), बल्ली (छिन्नकली) मेमिरी, (गोर) पारिवारिक (पारिवारिक) के गोत्र हैं।^{११३} तेलुगु गोत्रवालों के कुछ गोत्रों की ऊपर (पुं० ७१) वर्ण हो चुकी है। तेलुगु साधारण गोत्रवालों में बाग, दमली, बाग, पत्तल, चांडा, गोदव के गोत्र हैं।^{११४} बस्तर के मुरिया जातियों में आम (भरकाव), रागीन (देकाव), कुली (देकाव) के गोत्र हैं।^{११५} आन्ध्र के कुम्हारों में देही या बागु नामक गोत्र बहुत बड़ी जाति है। इसमें भी, गादी, घैस, जेड़, मीना, हाथी के नाम पर गोत्र हैं।^{११६} इसी प्रदेश के जवारों की प्रथिगा जाति में आदी, मंडक, पद्मा, दिङ्गि, ली, विष्णु, बमिनी के गोत्र पाये जाते हैं।^{११७} बेंगाली, कुम्हार, मयूर जिलों में बने वाली कुम्हार जाति के कुछ गोत्रों के नाम ये हैं— अग्नि (आग), आगे (हाथी), अरिना वस्त्र, बाग (बूढ़ी) बल्ली (छिन्नकली), मल्ली (बमिनी), बाग (ली)^{११८}। मूल जाति के गोत्रवाचक गोत्र

^{१११} टिल्ली—वी पीन आर इंडिया (सं० १९१५), पृ० १९१

^{११२} बस्तर—आरक्षक एवम् हाथल आर सबले इंडिया, भाग २ पृ० ३६

^{११३} बल्ली—आग १ पृ० १४१

^{११४} बल्ली—आग २ पृ० २४१

^{११५} पत्तल—आरक्षक एवम् हाथल आर सबले इंडिया, भाग २, पृ० ३६-३७

^{११६} बस्तर बल्ली, पृ० २४१

^{११७} बल्ली बाग ४, पृ० ३१६

^{११८} " " पृ० १४२

इस प्रकार है—अम्बा (आम), भीरिया (बुहा), घुघ (बुधवार), छाछा, अक्षर (आध), गिद्ध, काल, वाकास (कीका) और तमक^{१२४}। मिर्जापुर (पृ० बी०) में अक्षरिया नाम की एक इकाई जाती मिलती है। इसमें गिद्ध, कछुआ और मकास के गोत्र पाये जाते हैं।^{१२५} इसी प्रकार के गोत्रों के उदाहरण अन्य बीसियों जातियों में पाये जाते हैं, किन्तु लालम की प्रवृत्ति को सूचित करने वाले इतने गोत्रों का नाम पर्याप्त है।

२. मूलपुरुष आशी (Lipanythous) गोत्र—बाहुनों की तथा आशियों की अधिकांश जातियाँ धर्मशास्त्रों में वर्णित अधियों की अपना मूल पुरुष मानने वालों में अग्रगण्य एक प्रमुख जाति है। इनके मूलपुरुष राजा अश्वमेध थे। इनकी १८ राजियाँ थीं। उन्होंने अश्वमेध गानों के साथ एक-एक धर्म किया। इनमें से १८ पुरोहितों से अग्रवासों के गोत्र चले। १८ वाँ मूल पुरुष नहीं हों तथा था, अतः अग्रवासों में १७ गोत्र हैं।^{१२६} आशिया भिन्न और गुजरात की प्रसिद्ध आशारिक जाति है। इनमें अधियों के नाम बने गोत्र हैं, किन्तु वे कुछ में विभक्त हैं। वे मुख्य विभिन्न व्यक्तियों व स्वामी के नाम से प्रसिद्ध हैं, जैसे राम भूरिया अर्थात् राजा भूरि सिंह की मूल, राम पदरिया अर्थात् पदरिया नाम वाले राजा की मूल। एक व्यक्ति अपने गोत्र में जाती कर सकता है किन्तु अपने मूल में नहीं।^{१२७} कामनाम तमिल कारीगरों की जाति है। यह देश के सिद्धार से मुन्ना, ठठिरा, बड़ई, राज और मुन्नार नामक पाँच हिस्सों में बंटी है। इन पाँच हिस्सों को पञ्चाक्ष भी कहते हैं। इनके दोष विष्णु, जलच, बहिर, अगर्वाह, चण्ड आदि आदि हैं।^{१२८} शिवा-बलिय महाशय, ईश्वरशय, वैश्वर तम आश्रम के उत्तर पश्चिमी भागों में बसे हुए हैं। इनके बाहुनों की जाति आगे उपास्यदेव से सम्बद्ध विभिन्न वस्तुओं के नाम पर अपने पाँच गोत्र विभक्त किये हैं। इन गोत्रों के नाम ये हैं—नम्बी, नूनी, भीर, कुप, स्कन्ध।^{१२९} अश्वमेध के मागी अश्व विष्णु समझे जाते हैं किन्तु इनमें कश्यप, मुच्युत और शार्ङ्गल आदि गोत्र प्रचलित हैं।

३. प्रादेशिक (Territorial) गोत्र—समुक्त प्रांत के बसियों में जनसङ्घर्ष एक उपजाति है। इनमें गोत्र स्थानों के नाम पर हैं। जैसे जमुध्यावासी (जमुध्यावासी), पुरंधिया (पुरध के निवासी), पांडिवाहा, (पश्चिम के निवासी), माहुली (माहुल परगना

^{१२४} रिक्ती—पृ. पु. पृ. १०९

^{१२५} मूल—पृ. पु., अं. १ पु., २-३

^{१२६} मही, अक्ष १, पृ० १५-१६

^{१२७} मही, अं. २, पृ० ४०-४१

^{१२८} पर्यटन—पृ. पु., अं. ३, पृ० १००

^{१२९} एश्वमेध—पृ. पु., अं. २, पृ० १५६.

जिला आचमना के विवाही)।^{१३०} अथुल गान्त के धरेलू लीकरों की एक भाति जाती है। इसमें ५०३ गोक हैं और ये गोक अधिकतर स्थानों के नाम से हैं, जैसे कर्माजिया, मधुपिया, विलखारिया, इनमें आपरा में विस्तृत विवाह नहीं हो सकता। गुजर गंजाव और पन्थिमी उत्तर प्रवेश की महत्वपूर्ण कृपा भाति है। जमगागना की सूची^{१३१} में उनके ११७५ गोकगिनामे लगे हैं। इनमें से अधिकांश गोक स्थानों के नाम पर हैं।^{१३२} बिहार में गोक की मत कहते हैं। अहीरी और पार्थी के गोक स्थानवाक्य हैं। अथुल गान्त के भागम्ब १२ पेटों में विभक्त हैं और इनमें मायूर (मयुरा के मिथानी) जदि अनेक पेट नाम आती हैं।^{१३३} काली गंजाव की अधिकता भाति है। इनके बारी, कुआही और अगीम गीव मुख्य पेट हैं।^{१३४} महुले में १२ तथा बूसरे में ४२ गोक हैं। इनमें से अधिकांश प्रवेशिम हैं। इनमें शीम नाम कापुर, कला और मेहरा बीमण गोक के गौने हुए गी परम्पर गौरी कल्पे हैं। मणिमा उत्तर पूर्व सम्प्रवेश की एक भाति है, मिर्जापुर में यह आति गौनों में बटी है। मीही के नाम गोक के नाम से हैं। दलमिरि की सुधार (बवाई) जदि के विवाह सब गौनों के नाम पर हैं। एक गोक के सुधार परस्पर विवाह नहीं कल्पे।^{१३५}

४. उपाधिवाही (Titular or Nickname) गोक—मध्यप्रान्त की सुधार नामक कृपा भाति १०० से ऊपर कुलों में बंटी हुई है। इनमें परस्पर विवाह नहीं होता। ये कुल उपाधिवाक्य हैं, जैसे हजारी (१ हजार सिपाहियों के नेता), देवपुत्र (पौरुष या बुद्धिवा) विवाही (रुई धुने वाला)^{१३६} छोडानागपुर की सुधार आति में ठाकुर, प्रधान, छतरिया, (राजा का छत उठाये वाला), जमाद (जमाव) गोक हैं।^{१३७} कंजर भारत की फिरकर भातियों में से है। इनके गोक पेटों के आधार पर हैं, जैसे पहलवान, कुसमण (कुछा बाह बकट्टा कल्पे वाला), फासवार (गला बोटने वाला), छोरा (शीव पधने वाला) और जलवार। इनमें आपस में विवाह नहीं होता।^{१३८}

५. स्थायी भातिया या पारिवारिक गोक—ये गोक उपर्युक्त श्रेणियों के भिन्न एवं कुछ पेटों के स्थानों तक सीमित हैं। पारा के गौनों में उपास्य देवताओं की

^{१३०} कुल—०५५० अं० १, पृ० ३४

^{१३१} कुल—पृ० ५०, पृ० २०९

^{१३२} कुल—बही, अं० २ पृ० ४४३-४

^{१३३} कुल—बही, अं० ३ पृ० १६४

^{१३४} रोल—पृ० ५०, अं० २, पृ० ६१२

^{१३५} रोल—पृ० ५०, अं० ४ पृ० २६

^{१३६} एम्बीजन पृ० ५० अं० ३, पृ० १६७

^{१३७} रोल—बही, अं० २, पृ० ३०१-२

^{१३८} बही, अं० २, पृ० ३१६

संख्या में गोश विभाग होता है। उन गोशों में ४, ५, ६ और ७ देवताओं की पूजा करते जाते ४ मुख्य वर्ग हैं। उनमें से प्रत्येक वर्ग में १० से १५ तक गोश हैं। विभागों में निम्न-गोशभा ती अग्रम है, किन्तु साम ही अग्रम देवताओं की संख्या की दृष्टि से निम्न वर्गों का भी अग्रम गणना आकरमान होता है। हिन्दवापुर में ६ और ७ देवताओं की पूजा करते जाते दो वर्ग हैं। इन वर्गों में से अग्रम वर्ग के लोग परस्पर सौ-सत्य मानते जाते हैं और उनमें परापर विवाह नहीं हो सकता।^{१३३} उच्चोपा की एक जाति कुपुत्री है। इस जाति में यह प्रथा है कि निम्नका एक देवता एक है वे एक ही जाति या गोश के समान जाते हैं। उनमें परापर विवाह नहीं होता है।^{१३४} मरुता भी मरुताई कोड़ी नामक जाति ब्रह्मपुत्र का कर्म करती है, यह ३ गोशों या वर्गों में विभक्त है। इन गोशों का नाम इन कर्मियों (कर्मियों) के आधार पर है अर्थात् पूजा करते हैं।^{१३५}

सर्वप्रथम समय में एक और जहाँ विहार के सुन्दर भाग और जाते विवाह में ही गोशों का गिरजा आग्रमक भवते है, जहाँ दूसरी ओर कुछ छोटी भी जातियाँ हैं निम्नमें गोश का निम्न विस्तृत नहीं पाया जाता। वे जातियाँ विवाह को सम्बन्धता या साध-गिरा की सीढ़ियों में अग्रिम मानती हैं। संयुक्त भाग के अहिंसियों,^{१३६} अहिंसियों^{१३७} से गोश का संबंध विगत नहीं है। पवित्री बंगाल की वासकी उड़ाने वाली बंदी जाति के पञ्चाथ ब्राह्मण गोशों की स्वीकार किया है किन्तु उनके विवाह में सांख्यता सम्बन्ध नहीं है।^{१३८} बगरी, बंसी, बंजियों, बंसी में बंगाल की वासकी गौरी है।^{१३९} और बाजरीकार ने ऐसी ५५ जातियों की एक सूची दी है निम्नमें विवाह में समानता बाधक नहीं है।^{१४०}

कर्मका नाम की गोश भवति की प्रधान विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—

(१) आत्म में अहित तथा प्रतिपादित गोशान्तरि हिन्दु समाज के उच्च वर्ग, विशेषतः ब्राह्मण जाति तक ही सीमित है।

(२) उच्चवर्ग के अतिरिक्त अन्य हिन्दु समाज में गोश सम्बन्धी व्यवस्था का आधार और स्वतन्त्र एक रीति नहीं है। इन जातियों के गोश व्यवस्थित, पुरुषों, अश्व-पुत्त्री, प्रवेशी, उपाधियों, विभागों आदि विविध आधारों पर कथित किये गये हैं।

१३३ कुल—पृ० ३०, खं० ३, पृ० ११७-८

१३४ रजेल—पृ० १, पृ० ६६

१३५ अर्द्धम—पृ० खं० ४, पृ० १-८

१३६ अर्द्धम—पृ० खं० ५, पृ० २६१

१३७ कुल—पृ० ३०, खं० १, पृ० १-६

१३८ बहो-पृ० ४१

१३९ रिजली—खं० १ पृ० ७२

१४० कदलीकर—हिन्दु समाज, पृ० २४७-२४८

(३) हिन्दू समाज में हीन समाजी आने वाली जातियाँ अपनी सामाजिक स्थिति उन्नत करने के लिए ब्राह्मणों के गोत्रों को ग्रहण कर रही हैं, इनमें से कई जातियों ने अपने गोत्रों को आखीम गोत्रों का रूप दे दिया है, कुछ ने मनमाने गोत्रों को ग्रहण कर उन्हें ग्रहण कर लिया है। इसका प्रधान प्रेरक श्रेष्ठ उच्चतम की परम्परा का अनुगमन अपने वर्ग को ऊँचा उठाना है। अनेक मेखकों ने इसे हिन्दू जातियों में प्राप्रचोरात्मक की प्रवृत्ति कहा है। इन जातियों द्वारा ब्राह्मण गोत्रों के ग्रहण पर जिन पर भी विवाह में इसका उपयोग कम होता है। बंगाल में बौद्ध, मुइबानी, राजबारी, राजीबाई, धीवर, बनरद और शैली जातियों में केवल एक गोत्र होता है, इसका विवाह पर कोई प्रभाव नहीं है। मूल में कुम्हारों तथा कुछ अन्य अनिष्ट जातियों में ऐसी स्थिति है। मद्रास में कर्मक्षेत्र पट्टायाल और तांतियों में एक ही गोत्र होता है, किन्तु इसके साथ अनेक बहिर्विवाही वर्ग होते हैं। बेंगल जाति काश्यप और शोभिष्ठय नामका दो वर्गों में बंटी है किन्तु विवाह में इनका कोई महत्व नहीं है। गौरी जातियों में काश्यप और माकोपेय गोत्र बहुत लोकप्रिय हैं।^{१५०}

(४) दक्षिण भारत की लोकप्रवृत्ति उत्तर भारत की प्रवृत्ति से अधिक गर्वों से अधिक भेद रखती है। इसमें भोज अधिवासी नहीं, किन्तु तांजनालक (Tamil) है। बहिर्विवाही वर्गों में विवाह करने के कुछ ऐसे नियम हैं, जिनसे मजदीकी रिस्तेदारों में अधिक विवाह होते हैं। उत्तर भारत का चार गोत्रों के परिहार का नियम दक्षिण भारत में नहीं पाया जाता। स्थानीय बहिर्विवाह (Local exogamy) का उत्तर भारत में अधिक प्रचलन है।

(५) गोत्र का नियम हिन्दू समाज में सर्वोच्च नहीं है। अनेक जातियों में एक गोत्र वालों में परस्पर विवाह हो सकता है, इनमें से सर्वप्रथम का ही नियम प्रचलित है और इसके आधार पर निकट सम्बन्धियों में विवाह का वर्जन किया जाता है।

गोत्र के नियम की अनावश्यकता

वर्तमान काल में इस नियम का विवाह में विशेष उपयोग नहीं है। गोत्र को अनार्य रखने के पक्ष में दो प्रमाण युक्तियाँ दी जा सकती हैं—(१) गोत्र एक सम्बन्ध को सूचित

^{१५०} १९११ की भारत की जनगणना की रिपोर्ट सं० १, भाग १, पृ० २५०

पक्ष से भारत की १९११ की जनगणना रिपोर्ट में ऐसी अनेक जातियों के उदाहरण दिये हैं। उड़ीसा में एक गोत्र वालों में परस्पर विवाह केवल ब्राह्मण जातियों में ही वर्जित है। बम्बई में अनावत ब्राह्मण एक गोत्र में विवाह कर सकते हैं बतते हैं कि पर-बपू शाह पीढ़ियों से बाहर के हों, औद्योगिक ब्राह्मणों में उपपन्न या अटक (alliances) की विविधता होने पर सभी

करता है और सुप्रजनन वास्तु की दृष्टि से यह आवश्यक है कि नजदीकी रिश्तेदारों में शादी न हो। (२) धर्मशास्त्रों में सगोत्र विवाहों का निषेध है। यदि लोक प्रचलित धारणा के अनुसार यह मान लिया जाय कि गोत्र रक्तसम्बन्ध का कोटित करने है, जन्म-दिवस, वसिष्ठ, मरुहोत्र, श्रौतशास्त्र आदि आदिमें श्रीमहापरम्परा अनर्बन्धक रूप से पड़ी जा रही है, तो तब यह भी मानना चाहिए कि भारतीय परम्परा के अनुसार कृष्टि प्रारम्भ हुए १ अथवा २५ करोड़ वर्ष हुए चुके हैं। इस की भरव नवों में अधियों के बाद लाखों पीढ़ियाँ गुजर चुकी हैं। अनेक शार्वांग्यों के विवाहों में क्षानि सम्भव है। हमने कहीं रोकने के लिए हिन्दू समाज में गोत्र-विवाह की शक्ति और सार पीढ़ी लोगों का विधान है। इस नियम के अन्तर्गत सुप्रजननकारण की दृष्टि से गोत्र का प्रतिबन्ध अन्धव्याधि और गिरवक है। गोत्र-विवाह के अनुसार विन्दु-परम्परा से प्राप्त सुधों की विशेषताएँ प्रत्येक पीढ़ी में भारी रह जाती हैं। पर गोत्र के नियम से हम लाखों पीढ़ियों के आन्दर को भी समर्थ नहीं समझते। आश्विन मास में विवाह के गोत्र वालों के लिए निकट सम्बन्धी होने के कारण प्रतिबन्ध लगाया गये ही आवश्यक समझा गया है, किन्तु आज उन्हीं उन्हीं दुष्टता के साथ जो भी रूप में स्वीकार करता बुद्धिमत्तापूर्ण नहीं था या तकता। यदि गोत्र की यही पाबन्दी माननी है तो यह क्यों नहीं भाग जाता। बहू के सगणपुत्र मरुहोत्र बहिर्बिवाह आदि परम्परा भारी है। उनका सम्मान भी नजदीकी रिश्तेदार है। हमारे परम्परा विवाह क्यों बिना जाता है। गोत्र की व्यवस्था का यदि उपर्युक्त नाम से सर्वप्रथम सोचना शुरू करें तो हिन्दू जाति में विवाह ही नहीं होगा चाहिए।

गोत्र की पाबन्दी वास्तवीय है, अतः यह मान्य है: यह कोई प्रचलित मुक्ति नहीं है। इस मुक्ति का मत लोभ माना जा सकता है जब हम आज बातों में भी धर्मग्रन्थों का धूरा धूरा अनुसरण कर रहे हैं। ब्राह्मण धर्म में प्रत्येक गृहस्थ के लिए अग्न्याधान एक वैवाहिक एवं अनिवार्य कर्तव्य है, किन्तु आज सूजारी या माछों हिन्दुओं में से कोई एक अग्निहोत्री पित्रेण। वैदिक युग के आर्यधर्म तथा आज के हिन्दू समाज धर्म में अग्न्याधान वादान का अन्तर है। हमने लक्षण विवाह तथा विधवा विवाह के वैदिक ऋषियों के धर्मशास्त्र विपरीत छोटी धार्मिकताओं के विवाह को तथा आज विधवाओं को माचणीनन विधवा बनाये रखना धर्म समझा। इस विधम में समाज नियमों का ध्यान नहीं रखा, तो सगोत्रता के नियम में ही हमारा स्वता आग्रह क्यों है?

एक गोत्र वालों की संख्या विज्ञान होने पर गोत्र का नियम विधिबद्ध करना

विवाह संभव है। जोड़ ब्राह्मणों में व्यवस्था होने पर एक गोत्र वाले शादी कर सकते हैं। बिहार के शास्त्रीय ब्राह्मण सगोत्रता को विवाह में बाधक नहीं मानते। मालास, मरुहोत्र और मरुहोत्र के ब्राह्मण गोत्र के नियम का पुरी तत्त्व मानन नहीं करते हैं।

ही पड़ता है। प्राचीन काल में भृगु और अग्नि ऋषि के मोक्षों के लिए यह नियम दीया गया था।^{१४८} अतः, जिसमें और कुछ भृगु और अग्नि के होते हुए भी परस्पर शादी कर सकते थे। इसी तरह दुधवस्त्र, मुद्गल, विष्णुचूड़, कण्ठ, अभयहारी, कपि, यज्ञ और संकृति गौत्र वालों में परस्पर विवाह की अनुमति थी। आर्यजित् की हिन्दुओं में उनके आदिश्यों में एक गोत्र में विवाह हो सकता है। बिहार के छपरा जिले में मनासूत्र ब्राह्मणों के घर बहुत कम हैं, वे अपनी जाति से बाहर शादी नहीं कर सकते और अपनी जाति वालों से शादी करने में गोत्र का नियम लागू है। जाति का नियम संज्ञा कठिन है, अतः उन्होंने जोर का नियम छोड़ दिया है।^{१४९} दक्षिणी बिहार के सकल शाक्यीय ब्राह्मण अपने गोत्र में शादी करते हैं। पञ्जाब के सागुनवासी में अपने गोत्र में विवाह हो सकता है।^{१५०} अरुणाचल में गोत्र बहुत अधिक धरम जाता है। इसकी व्याख्या से विवाहों में बहुत कष्ट अनुभव होता था, अतः अरुणाचल में यह नियम रद्द किया गया कि गोत्र वालों में शादी में बाधा नहीं हो सकती है।

१६४६ ई० तक संगोत्र विवाहों की कानूनी दृष्टि से वैध नहीं माना जाता था। १८७२ के विशेष विवाह कानून तथा १८८३ के संगोत्रित विवाह कानून ने अनुसार गोत्र की सिद्धता विवाह के लिए आवश्यक नहीं थी, किन्तु इन कानूनों के अनुसार पौजारी (Civil) विवाह ही हो सकते थे। धार्मिक विधि से किये गये विवाह में असंगोत्रता के नियम के सम्बन्ध में किम्वदन्त उच्च न्यायालयों के निर्णय एक जैसे नहीं थे।

सर्वोच्च न्यायालय और संगोत्र विवाह

१८४६ ई० से पहले तक अदालतें यह मानती थी कि सामान्य रूप से ब्राह्मण सक्रिय और वैध जातियों में गोत्र का नियम एक सम्मानित प्रथा है।^{१५१} किन्तु १८३३ में साहौर हाईकोर्ट ने सन्नबाज वैश्यों में संगोत्र विवाह की प्रथा की वैधता इस आधार पर स्वीकार की कि सक्रियों और वैश्यों के गोत्र-प्रकार उनके पुरोहितों के आधार पर होने के कारण एक सम्बन्ध के सूचक नहीं है।^{१५२} १८४६ में अल्बर्ट हाईकोर्ट ने भी संगोत्र विवाह की अनुमति देने वाले एक फैसले की स्वीकार किया।^{१५३} बसहाबाद हाईकोर्ट ने यह निर्णय दिया कि एक हिन्दू विधवा अपने पिता का गोत्र रखने वाले पुत्र

१४८ मतवादाशाल—मुम्बई

१४९ लोकोनरय मद्रास—हिन्दू कल्लल एक सेक्टर, ५० ४८-३९

१५० रामचन्द्र बनाम मोशाल (१८०४) ३२, बं. ६१६, ६२७ मीनाजी ब. रामबाब (१८८८) ११ म० ४८, ६९ शुभदीप

१५१ लीडल बनाम रसाभुधर सा० ३० रि० १८३३ सा० ६०४

१५२ साहवराम बनाम राधेदेवदास ३० सा० रि० (१८४६) अगस्त ३७३

से वीर्य विवाह कर सकती है, क्योंकि पहले विवाह के बाद पतिकुल में जाने पर वह पिता का मोक्ष छोड़ कर पति का मोक्ष ग्रहण कर लेती है, यह मोक्ष पिता के मोक्ष से भिन्न होता है, अतः पिता के मोक्ष में उसका विवाह विधिवत्मान है।^{१४३} यह तर्क इसलिए नहीं ठीक प्रतीत होता कि धर्म-स्मृति में यह कहा गया है कि कन्या अविवात मोक्ष और प्रभर से उत्पन्न होती चाहिए (असमानार्थगोत्रजान् १।५६)। पति का मोक्ष वह उसी समय तक रखती है, जब तक वह पत्नी की भक्ति में रूढ़ी है, विधवा होने पर पुनर्विवाह के लिए वह पति का मोक्ष नहीं रख सकती क्योंकि उस समय तो वह मोक्ष देखा जायगा, जिसमें वह उत्पन्न हुई है और वह मोक्ष उसने पिता का ही है, अतः इसमें उसका विवाह वीर्य नहीं होता चाहिए।^{१४४} इसे मानून में हम सब विवाहों का अन्त कर दिया है।

हिन्दू विवाह सम्प्रेषण विचारक मानून—(१९४६ का अद्वैतवादी कानून) ने धर्मोप विवाहों को वीर्य बनाते हुए इस विषय में एक भाविकारी परिवर्तन किया है। इस कानून की दूसरी धारा के अनुसार भी विवाह आम भूटियों से वीर्य है, वह केवल इस राज्य के कारण नहीं है। हमें यह होगा कि वह-अधुना मोक्ष या प्रभर प्रभर के है। १९४६ के हिन्दू विवाह कानून की धारा २६ में यह व्यवस्था जोड़ायी गयी है और इस प्रकार वर्तमान काल में हिन्दू विवाह में अन्यायता के विषय का कानूनी खतरा खत्म हो गया है। किन्तु इसमें कोई प्रश्न नहीं प्राचीन काल से चली आ रही इस व्यवस्था का हिन्दू समाज से सहसा मोक्ष होना सम्भव नहीं है। परम्परावादी हिन्दू इस प्राचीन कवि का पालन करते रहेंगे। इसे मानून ने केवल इतना कार्य किया है कि अधिक में धर्मोप विवाह नहीं माना जा सकेगा।

वीर्य प्रायः पितृवंशमूलक होता है, अतः मोक्ष के प्रतिपक्ष के कारण पितृपक्ष के सम्प्रेषणों के साथ विवाह भविष्य होता है। किन्तु केवल मोक्ष का विषय होने पर मातृपक्ष के सम्प्रेषणों, माना की लड़की आदि अधिक निकट सम्प्रेषणों के साथ विवाह सम्भव है। ऐसे विवाहों को रोकने के लिए अग्रिमिकता का विषय बनाया गया है। अगले अध्याय में इसका प्रतिपादन किया जायगा।

१४३ राजासाय मुकजी बनाम सकिन्दर मुकजी (१९३९) १४ इला-१०५३

१४४ नैज—हिन्दू का (मन्त्र १९४६), पृ० १६०

बहिविवाह-सपिण्डता

सपिण्डता का सामान्य अर्थ

हिन्दू समाज में बहिविवाह का प्रतिकार्य को प्रसार का है, एक तो यह कि विवाह अपने गोत्र और घर से बाहर होना चाहिए, दूसरा यह कि सपिण्डों में विवाह नहीं होना चाहिए। सपिण्ड का अर्थ है—एक पिण्ड काया। पिण्ड शब्द की विभक्तियों के अनुसार सपिण्डता की जायेगी, किन्तु यहाँ इस विषय में इतना जान लेना आवश्यक है कि पिण्ड शरीर या देह का कहते हैं। अतः सपिण्ड का अर्थ है एक ही पिण्ड या देह काया। पुत्र और पोस में पिता के शरीर को अणु आते हैं, दाहिना में पिता के शरीर सपिण्ड कहते हैं। दूसरे शब्दों में, रक्तसम्बन्ध से सम्बन्ध सम्बन्धियों के लिए सपिण्ड शब्द का व्यवहार होता है। पिता से ऊपर के शरीर तथा माता के ऊपर के शरीर सपिण्ड कहलाते हैं। बर और भवू इन शरीर और शरीर पीढ़ियों के सम्बन्ध नहीं होने चाहिए। ये पीढ़ियाँ निषिद्ध पीढ़ियाँ (Prohibited degrees) कहलाती हैं और प्रत्येक विवाह इन पीढ़ियों से बाहर असपिण्ड सम्बन्धियों में ही होना चाहिए। इस विषय का प्रधान उद्देश्य रक्तसम्बन्ध के सम्बन्ध निषिद्ध सम्बन्धियों—पिता-माता से, माता-पुत्र से, शरीर माता-बाहियों में तथा बहने, ननदे, पुत्रों माता-बाहियों में विवाह सम्बन्धों को रोकना है।

वैदिक युग में सपिण्डता का विचार

वैदिक साहित्य के अध्ययन से प्रतीत होता है कि उस समय असपिण्डता के वर्तमान नियम का पूरी तरह विकास नहीं हुआ था। वेदों में पिण्ड शब्द का प्रयोग शरीर के अर्थ में न होकर प्रायः अग्नि में डाली जाने वाली हवि के अर्थ में हुआ है (ऋ० १।११२।१६, तै० सं० ४।१।६।३)। प्रसूतियों के समय से सपिण्ड शब्द का वर्तमान उपयोग होने लगा तथा स्पष्ट शब्दों में सपिण्ड विवाहों की निन्दा की जाने लगी।

वैदिक साहित्य में सपिण्ड शब्द का प्रयोग न मिलने पर भी कुछ ऐसे प्रमाण मिलते हैं, जिनसे स्पष्ट होता है कि उस समय विवाह निषिद्ध वर्तों सपिण्ड सम्बन्धियों में नहीं, अपितु दूरवर्तों स्त्रियों में असपिण्ड सम्बन्धियों में हुआ करते थे।

आरोह के विवाह विषयक सूक्त सूक्त के मन्त्रों से यह प्रतीत होता है कि कन्या

का विवाह दूरस्थों स्वाम में होता था, यदि-भावी के घरों में पर्वण्त लग्न होना था । विवाह संस्कार की प्रारम्भ के बाद शत्रु रज पर चढ़ कर अपने पति के घर जाती थी । एक मन्त्र में कहा गया है—पूजा सुम्हारा हाथ पकड़ कर तुम्हें यहाँ से ले जाय, बहिष्मनी देवता तुम्हें रज में ले जावे (ऋ० १०।८१।२५) । इस मन्त्र से ज्ञात होता है कि बधू के घर से घर का घर दलना दूर ही हिं धार्म में चोर-डाकुओं का भी घर है, जो इस प्रकार बधू के साथ बर-बधू को बालस नीटने वाली ऐसी बहूतों को लूटा करते थे । सम्भवतः इसी-लिए बर-बधू का एक आशीर्वादपरक मन्त्र में कहा गया है—जो बटभार पति-पत्नी पर हमला करते हैं, वे मुझे न ज्ञाय हों । गुरु कठिनता से बहिष्म या अपने योग्य स्वाम पर सुषम भावों से पहुँचो, मुम्हारे कल्लु साम आये (ऋ० १०।८५।३२) । निष्कट संवेदियों के विवाह में इस प्रकार के आशीर्वादों की आवश्यकता ही नहीं है ।

कन्याओं का विवाह सामान्यतः दूरस्थों कुल में होने का एक अन्य प्रमाण कदा के लिए 'कुहिता' शब्द का प्रयोग है । कुहिता का अर्थ दूर रही हुई कन्या है (कुहिता दूरे हिता भवति—निष्कट) । कुहिता यह है जिसकी माँ की दूरस्थों कुल में हो ।

यह दूरी किसरी होती चाहिए, इस विषय में कोई स्पष्ट संकेत वैदिक साहित्य में नहीं है । साथ में अनेक्यों तथा स्मृतियों में इस दूरी की स्पष्ट व्याख्या कर दी गयी है । कुहिता पिता की छात तथा माता की दाँव पीढ़ी से अधिक दूर होती चाहिए, किन्तु वैदिक साहित्य में शतगुण बाहुल्य (१८।३।९) के ही इस विषय पर कुछ प्रकाश डाला है । उसके एक मन्त्र में कहा गया है चोरा और चोप में इस प्रकार एक स्त्री में वृणक्तता हो जाती है । अतः एक ही पुरुष से भोछा (पति) और चोप (पत्नी) पैदा होते हैं । अब सम्भवतः ओजसे और प्रसन्न होते हुए कहते हैं कि जोषी या तीसरी पीढ़ी में हम दोनों मिलेंगे, ^१ सामान्यतः इस संदर्भ की व्याख्या करते हुए यह कहा है कि काप्य तीसरी पीढ़ी (Dehagab) में और ओपायु चौथी पीढ़ी में विवाह करते हैं । शत्रुघ्न बाहुल्य के इस श्लोक से भी वैदिकमत और कीच में यह परिचय निकलता है कि वैदिक युग में विवाह के लिए पिता और माता की तीन या चार पीढ़ियाँ उस समय जीवी जाती थी । ^२

वैदिक साहित्य में आतृभ्य-विवाह का संकेत

धनेरे, दोसेरे, यनेरे, पुनेरे माई-बहिर्नी (Cousins) के वैदिक युग में विवाह होता था या नहीं, इस विषय में निश्चयपूर्ण कुछ नहीं कहा जा सकता । हम

^१ ऋ० ३२० १।८।३।६—अज्ञान एवं कर्मजु आदिमते सत्त्वसत्त्वमग्रादेव पुत्रावता आश्रयन आनेते इमे हि अतुर्बे पुत्रो तृतीये संन्यासगते इति हि देवे वीर्यमाया वासना वासते ।

^२ वैदिक इच्छेत्त, अन्व १, सू० २३६

देख चुके हैं कि शादी सामान्यतः दूर के कुल में होती थी। मुस्लिम का ज़मे ही यह था कि कच्चा दूर कुल में ब्याही आय। सुर्मा सूक्त के अन्तों में भी स्पष्ट है कि नर और यशू दूरकुली स्वार्यों के छिटे थे। कबरे धार्-बहिनी भी सादी (Parallel cousin marriage) का वैदिक बाहिरम में कोई संकेत नहीं मिलता। पितृकुल के अन्तर्गत स्त्री-गर्भ में विवाह नहीं होता था। पितृ संक्षिप्त में सादी की गरमा के साथ सादी का विवाह सम्मिलित है। भावा जाता है कि एक वेद मन्त्र ऐसे विवाहों की पुष्टि करता है।^१ परन्तु और अग्राह्य है इस मन्त्र की उद्भूत किया है। यह मन्त्रों के चित्त सूक्तों में गारा जाता है। इन मन्त्र का अर्थ पराजय के भलाभुसार वग इतर है—“हे इन्द्र, तूने इस राज में सम्मिलित भावों के भावों, भावों हिन्दों को ग्रहण करो। इन (पुत्रोहितों) में मुझारे भिन्न भी के ग्राह मिली हुई चर्च (वध) के भाग को उगी प्रकार ग्यार है जैसे विवाह में किसी पुत्र को भाग हुआ था गारा की लक्ष्मी होती है।” मध्यमन्त्र में, उपासार्थों और निष्पक्षकों में इस मन्त्र को माया, सुधा की मन्त्रों के विवाह के परम एवं विपक्ष भावों में गाराया है। इन विवाहों का सम्मेलन करते वाले एक का अर्थ जो उग्र दिया गया है, किन्तु अग्रार्थ (५० ८३) माचि दीक्षाकार जों ऐसे विवाहों के विपक्ष में थे, वे ‘अह’ मन्त्र गम दन्व देने हैं और यह कहते हैं कि “हे इन्द्र, उन्हें मुझारे भाग को उगी तरह ज्विन में छोड़ा है जैसे सुधा की लक्ष्मी और भासा की लक्ष्मी का विवाह में छोड़ा जाता है।” यह मन्त्र चित्त सूक्तों में पड़ा गया है। चित्त सूक्ष्म जाया के वे मन्त्र हैं जों अपनी जाया में किसी आश्रयकता के कारण पड़े जाते हैं।^२ कार्यायन में अपनी लक्ष्मीकता में उन्हें स्वाभ नहीं दिया। शीतक ने इनकी गमता मन्त्र की है। सायन ने इन पर दीक्षा भी नहीं की। इनमें वैदिक काल के बहुत बाद की ब्रह्मार्ज, गोपी, कृष्ण और कामिब्रह्मण का वर्णन है। अतः चित्त मन्त्र वैदिक काल के विपक्ष में प्राचिनिक नहीं माने जा सकते और इनमें जाया पर वैदिक काल के सम्बन्ध में कोई परिणाम नहीं मिलनलता बाह्य।

महाभारत में वर्णित शातुव्यविवाह

महाभारत में सामा तथा कुकी की कथाओं में विवाह के कुछ उदाहरण मिलते हैं। पहला उदाहरण अर्जुन और सुभद्रा के विवाह का है। द्रुपद और कुली भाई बहिन थे, दोनों शूर नाथक राजा की शताब्द में (भारत वर्ष ११११-१२)। द्रुपद की लक्ष्मी सुभद्रा थी। इस तरह कुली सुभद्रा की ब्याही हुई। कुली के पुत्र अर्जुन और सुभद्रा की सादी

^१ ऋग्वेद ७।५५ के परिशिष्ट का ११ वाँ मन्त्र—आवाहीन पवित्रोऽतिशोभिर्ब्रह्मिन् नो मापयेध मुचरव। तृप्ताऽनुमसितस्योऽधो भगवतो वैतुम्वेतो वयामिह। प्राक्का के मिलत परिशिष्ट (१४।११) में भी यह मन्त्र दिया गया है।

^२ महाभारत शांतिपर्व ३२३।१० पर भीतकथी दीक्षा

का यह अर्थ हुआ कि सुभद्रा ने अपनी दुःख के लड़के से विवाह किया। अर्जुन ने अपने माता वसुदेव की लड़की से शादी की। अश्वत्थामा के टीकाकारों के लिए कृष्ण के भाव सम्बन्ध होने से यह विवाह आध्यात्मिक आध्यात्मिक था। कुमारविम मठ में अपने व्याख्या भीक्षु एवं बाधिर्य से वह सिद्ध कारण बताया कि अर्जुन ने अपने माता की भद्रकी के साथ शादी की थी। उसका कहना है कि सुभद्रा महाभारत में कृष्ण की बहिन नहीं बनी है किन्तु वह उगली आत्मविषय बहिन नहीं थी। वह वसुदेव की माता की बहिन की लड़की थी। माता की लड़की को लड़की का नाम रखा है और कहते हैं।^४ जिस कृष्ण ने नीला का उल्का उपदेश दिया, वे ऐसी पलायनी प्रथा को नहीं प्रोत्साहित कर सकते हैं ?

हरिश्चन्द्र पुराण में माता की लड़की के साथ विवाह के दो अन्य उदाहरण मिले पाते हैं। कृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न का उलकी की कन्या से साथ विवाह हुआ था। कभी कृष्ण की पत्नी रुक्मिणी का भाई का और इसलिए वह कृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न का साथ लगा। कृष्ण का पलायन प्रद्युम्न की पुत्र अमित्र का था। अमित्र ने लड़की की पत्नी रोचना से शादी की। इन उदाहरणों के सम्बन्ध में यह बात स्मरण रखनी चाहिए कि वे सब वसुदेव के हैं। अन्य वर्णों में इन प्रकार के विवाहों की चर्चा बिल्कुल नहीं मिलती। इसलिए यदि इन प्रकार के विवाह इस समय प्रचलित थे तो विशेष जाति में या वर्णों में प्रचलित थे, सामान्य और पर उलका प्रचलन बिल्कुल नहीं था।

वैदिक साहित्य में भी इन प्रकार के विवाहों का उल्लेख है। अनातमज्जु राज-कुमारी बहिन की दुःख का लड़का था। अहिरा और अनातमज्जु की शादी हुई। महाभारत एक गृहस्थ ने अपने माता की भद्रकी सुभद्रा से शादी की (सम्भव की टीका पृ० २६५) आत्मन् अगनी दुःख की भद्रकी अश्वत्थामा के रूप से मुग्न होकर उसे स्वागत करता था। महाभारत (अ० ६) में लंका के राजा धानु वसुदेव की कन्या चित्रा की कथा है। चित्रा इतनी बधनी थी कि उसे रक्षक के अति गण्य हो जाता था। अतः उसे अस्माद्विषय कहते थे। चित्रा के बारे में यह प्रसिद्धावली की गयी कि उसका पुत्र चित्रा के साधनों की गद्दी पर बैठे कि, उन्हें धार देगा। इसलिए उन्होंने चित्रा पर अकारणतः पहल मिला दिया। एक दिन उसने अपने माता के लड़के दीव्यवामनी (वीर्य वामनी) को लंका, वह उस पर मुग्न हो गयी, कड़े गहरे और प्रतिबन्धों के बाधभूत वह चित्रा के पास प्रति गति जाने लगा। चित्रा गर्भवती हुई। रानी तक यह समाचार पहुँचा और अन्त में चित्रा की दीव्यवामनी के साथ शादी कर दी गयी। मृदुलपत्नी के साथ उसके पुत्रों के भद्रके कुण्डलायन ने विवाह किया तथा उसे अपनी रानी बनाया। एक आत्मन् (अ० २६२) में उसी शरद्व के अश्वत्थामा की मनीरजक कथा है।

वैदिक साहित्य में ऐसे विवाहों का वर्णन है। वैन रामायण (पर्व ७ अ० २) में कहा

गया है कि अयोधन राजा की बहिन अश्वमेधाका पुत्रविन्दु के साथ व्याही गयी तथा मुल-विन्दु की बहिन किति का अयोधन के साथ परिणय हुआ। अश्वमेध की मुलकी जाय की पुत्री हुई और पुत्रविन्दु का मधुपिग नाम का लड़का। मुलका के विवाह के विषय स्वयंवर रखा गया। किति बाहूती की कि मुलका का विवाह मधुपिग से हो, उसने मुलका को मग-भादा और उसने लखन भी से किया कि वह मधुपिग से आती करेगी। विन्दु मुलका का विवाह मग से सगर के साथ हो गया।

आर्यवर्ष में अर्धशुद्धों के समय ॥ पहले विवाह आचारणतया दूज से नुपों में होता था, किन्तु सात और पाँच पीढ़ी के विषय का नियम प्रथमिन नहीं हुआ था। आर्य-कुल की स्त्रियों में कहीं बायी सम्बन्ध हो जाते थे। प्राक्षिणात्थी ने साँ गाया की कथा को विवाह योग्य समझा। अतः सपिण्यता का विषय उस समय सर्वमान्य था कि प्रथमिन नहीं था। अमराजी धारि होकाकारों द्वारा ब्रह्मपुत्राज का पुत्र बचन उद्धृत किया गया है। इस बचन में कहा गया है कि सगोत्र एवं अपिण्य विवाह कलिकात्मक है अर्थात् १। ३। ३। पुत्राजी बाते अर्धराजकारों को अपने समय के अत्युत्कृष्ट मन्त्री प्रतीत होती थी, उनमें बचने के लिए उन्होंने कलिकात्मक का अर्थ उपाय ब्रह्म विवाह का। वैदिक युग में विप्रोक्त प्र-क्षिप्त था। बाद में समाज में उसे दुराचारा मान लिया। शास्त्रकारों ने कहा विप्रोक्त वर्ण-बन्ध है। गौरी हास व्यवस्था और गोप्य नामक बन्धों का था। बीज धर्म में इनमें सम्बन्ध बना जाने कि सगोत्र समाज के लिए अभिज्ञान बन गया। अतः शास्त्र-को कलिकात्म्य में मिला गया। सपिण्य एवं सगोत्र विवाहों को कलिकात्म्य में मिलने से यह सम्बन्ध होता है कि किसी समय में ५ और ७ पीढ़ी के नियम का इनकी बाधातना से गायन नहीं होता होगा।

अर्धशुद्धों में सपिण्यता का नियम

अर्धशुद्धों के समय में माता और पिता की कुछ पीढ़ियों को छोड़ने का स्पष्ट रूप से उल्लेख मिलता है। गौतम (१।४।३) माता की पाँच पीढ़ी और पिता की भाव पीढ़ी के बाद ही बर-बधू को विवाह की अनुमति देता है। इसका अर्थ यह हुआ कि कम से कम पिता की ८ वीं और माता की ९ वीं पीढ़ी में बर और बधू के होने पर उनकी कान्ही हीनी चाहिए। गौतम का नियम इस विषय में अन्य सब शास्त्रकारों की अपेक्षा अधिक कठोर है। अन्य अर्धशुद्ध और स्मृतिदा ७ वीं और ५ वीं पीढ़ी में विवाह की अनुमति देती है। गौतम ने नियमों का अन्य अर्धशुद्धों के साथ अनुकूल सिद्ध करने के लिए ही संभवतः कुछ-करने से इस सूत्र का अर्थ यह किया है कि उन युग्मों में विवाह हो सकता है जो पिता की ओर से छः पीढ़ी तथा माता की ओर से चार पीढ़ी के अन्तर सम्बन्ध में हों। किन्तु गौतम के सूत्र के अर्थ इससे स्पष्ट है कि इनसे अवर्धुक्त अर्ध कदापि नहीं किया जा सकता।

बीजायन ने गौतमियक नियमों का अष्टभाष्यार्य में विस्तार से प्रतिपादन किया

है, किन्तु मरिचकाला के जिलमों के विषय में यह सीध है ; यह अश्वत्थ की चाल है कि यह अपने मूल एवं धर्मभूमि में भी जगती कोई स्थापना नहीं करता । अपने धर्मभूमि के प्रारम्भ में उसने गर्मचा नदी के दक्षिण में अपने बाएँ दक्षिणात्यों के समे ही आचार्यों का वर्णन किया है, जिससे यह असम्भन है । वे पाँच निम्न आचार हैं—पञ्चोपवीत संस्कार के मूल स्मृति और स्त्री के साथ प्रोक्षण करना, बासी भोजन नाना, माता और बुधा की मङ्गली में पानी काना । प्रोधान गन्धे पूर्व यह उक्त है कि दक्षिण में इन भावों के प्रवर्तित करने के कारण दुर्गम करने में कोई बाधा नहीं, किन्तु यदि कोई उत्तमपत्र (उत्तरी धारण) पाना दक्षिणात्य के निवासियों के इन आचार्यों की कथा है तो यह अश्वत्थ सीध है, क्योंकि : उनमें केन वन आचार ही प्रमाण है । सीध इससे सहमत नहीं है । प्रोधान अन्तर यह यह होता है कि ऐसी व्यवस्थाओं की प्रोधा एवं सहाय करता जाति, पर्वतों में बाएँ जिलों के आचार तथा स्मृति के विषय है (प्रीध, अ. सू. १।१।१-२२) । प्रोधान ईसा में २वीं शताब्दी पूर्व यह मेवक है, इससे स्पष्ट है कि उस समय उत्तर भारत में सीली पीली के विद्या विमूल यह ही बुझे थे । किन्तु दक्षिण में माता और बुधा की मङ्गली के विद्या करने का विद्या प्रवर्तित था ।

आयल्लम्ब धर्मगुरु ने गतिचर सम्प्रदायों का इस्तेमाल बहुत प्रतिष्ठित और स्पष्ट रूप से किया है। वह (२५११११११) कहता है कि अपनी मछली का माता और पिता के संवि-गम्यध में सम्बन्ध अभिप्रेत की गये। किन्तु यह वह नहीं बताता है कि माता की किनारी पीढ़ी छोड़नी चाहिये। हुरदा ने आय० धर्मगुरु की उपस्थिति दीक्षा में दूसरी मनुषियों के आधार पर संवि-गम्यध वाले व्यक्तियों की माता और पिता की पति और माता पीढ़ी में आधार बताया है। किन्तु हुरदा १२ वीं कालावर्ष का होने में इतना अजीबान बनता है कि इन आयल्लम्ब के बारे में साक्षात्कार नहीं माना जा सकता। हुरदा के समय में गतिचर का प्रतिबन्ध हिन्दू समाज में बढभूल ही चुका था। इससे कभी समय में अचरित प्रतिबन्ध के अनुसरण ही एक गुरु की व्याख्या की है। संभवतः आयल्लम्ब के समय में इस विषय का कोई एक नियम माने भारत में प्रचलित नहीं था। बीघासन ने स्पष्ट रूप से उत्तर और अरिण के विश्व प्रसार के नियमों का संकेत किया है। नियमों की विविधता का देखाते हुए, आयल्लम्ब ने एक विषय में कोई स्पष्ट एवं निश्चित नियम बताया उचित नहीं समझते।

ब्रिटिश ने इस विषय में आपत्तजन्य और बाधाजन्य भी तरह असेप्टता से काम नहीं लिया। उसने लाष्ट मन्त्री में कहा है (२१२) कि गृहस्थ साता के धर से सम्बद्ध (मातृकाय) स्थितियों में से एकियों तथा धिनुक्त (पिता द्वारा सम्बद्ध) स्थितियों

१. बीजायन कर्तव्य ३।१।१२—यस्यैतन्नुपेतैः सह बीजम् लिङ्गा गृह्णीतम् धर्म-
द्विगमोक्तम्, मातुस्तत्पुण्यसुखितुषां वधमिति ॥

में से सत्रहवाँ पीढ़ी की स्त्री को प्राप्त करे। इस प्रकार उसने गौतम की ८ और ६ पीढ़ी के नियमों की एक पीढ़ी कम कर दिया है। यह बात भी उससेअन्य है कि गौतम के प्रतिनिधित्व कर्त्ता धर्मसूत्रकार ने सविष्णु विवाह को पाप नहीं कहा था। गौतम (३।२।९) कहता है कि सविष्णुता के नियमों का अन्वेषण करने वाला अशुद्ध जाति-धर्म तथा मतिन को जाना है। गौतम की यह उद्यता हम अनेक विवाहों के सम्बन्ध को भी देख चुके हैं। यह स्पष्ट है कि गौतम इस विषय में अपने आदर्शों का प्रतिपादन कर रहा है। ब्रह्मसूत्रकार यह जान पड़ता है कि गौतम के समान ही निम्न पीढ़ियों के नियम एक-दूसरे से भिन्न भिन्न प्रचलित होने लगा था। उसरी भारत में वह काफी कम प्रचलित था। किन्तु यक्षिण में उग्रतर प्रचलन बहुत कम था। गौतम जैसे कुछ मुख्याङ्क इस विषय को दृढ़ बनाने का तथा दूसरे उत्पन्न को दण्डनीय बनाने का प्रयत्न कर रहे थे। किन्तु अभी तक इस विषय में काफी सम्पत्ति प्राप्त नहीं है।

स्मृतिकार और सविष्णुता

स्मृतिकारों में मनु ने इस विषय की विमिश्रता को बताया है। मनु (३।१५) कहता है कि असविष्णु एवं असर्वोत्तम कन्या से विवाह होना चाहिए। मनु ने विवाह के प्रकरण में असविष्णु शब्द का पहली बार प्रयोग किया है। मनु के पूर्ववर्ती धर्मसूत्रकारों ने या तो पीढ़ियों गिनायी या धर्म सम्बन्ध पर बात किया, किन्तु पिण्ड शब्द का प्रयोग नहीं किया। मनु ने पिण्ड शब्द की कोई व्याख्या नहीं की, उसने विवाह के प्रकरण में भी यह नहीं बताया है कि सविष्णुता कितनी पीढ़ियों तक होती है, किन्तु अन्य दो प्रकरणों में उसने सविष्णुता की व्याख्या की है। अतर्विधि (५।१५०) में वह कहता है—सविष्णुता सातवें पुत्र पर समाप्त हो जाती है और समानोत्तरक भाव उक्त समय समाप्त हो जाता है जब अन्य और नाम नहीं बाद रहते। अतर्विधि पुत्रों के धर्माधिकार प्रकरण में वह कहता है कि तीन पूर्वजों की उत्त और पिण्ड देना चाहिए, चौथा पुत्र्य उत्तर देना बाधा होता है, पाँचवें का इतने कोई सम्बन्ध नहीं होता (१।१८६)। पहली व्याख्या के अनुसार सविष्णुता सात पीढ़ी तक है और दूसरी के अनुसार चार पीढ़ी तक। विवाह के समय कोण ही सविष्णुता अभीष्ट है, अथवा इन दोनों के विषय कोई सविष्णुता औचित्य है। मनु इस पर कोई प्रकट नहीं करता। टीकाकारों ने विवाह और धर्म की बात और पाँच पीढ़ी छोड़ने का जो विधान किया है, उसे अन्य धर्मशास्त्रों के ग्रन्थों में पुष्ट किया है। यह अन्य धर्मशास्त्रों का मत नहीं ही हो, किन्तु मनु का मत नहीं कहा जा सकता।

मनु ने अग्न्या स्त्रियों के धर्मशिक्षण का नवें अध्याय (१।१७१-७२) में उल्लेख किया है। इनमें वह भ्राता, भ्रातृ और भ्राता की कन्या के मृत के लिए बान्धव्यजन तथा प्रायश्चित्त बताता है। बुद्धिमान् पुत्र्य को यह हिदायत भी गयी है कि वह इन तीन को स्त्री न धर्याये, ये रिजोदार होने के कारण विवाह करने योग्य नहीं है, इन्हें

अज्ञान करने वाला जाति से अश्व-पतिता होता है। ये कल्पार्थ टीकरी पीढ़ी में आयी है। क्या मनु इस पीढ़ी के बाद के विवाह को वैध सम्झता था ? हमें तब तक चुके हैं कि गोत्रम ने जात और पाँच पीढ़ी के अन्तर, विवाह करने वाले को पतिता कहा था और इस विवाह की गणना बड़ाहत्या आदि अश्वकर अपराधों में की है। मनु ने यह अर्थार्थ टीकरी पीढ़ी तथा ही रक्की है। यदि मनु सात और पाँच पीढ़ी की सहिष्णुता के नियम को वाप सम्झता तो वह सपिण्ड सम्बन्धियों में विवाह के प्रामाणिकता में इसका अवश्य उल्लेख करता। मेधातिथि को प्रामाणिकता के प्रकरण में मनु द्वारा सपिण्ड विवाह का उल्लेख न करना बहुत अचानक। अतः मेधातिथि यह कहता है कि मनुजी की पीढ़ी में विवाह आरम्भ सम्झता है, ऐसा परिणाम नहीं निकालना चाहिए। किन्तु मनुस्मृति के १००० वर्ष बाद लिखी गयी मेधातिथि की टीका को मनु के बारे में अस्तित्र प्रमाण नहीं माना जा सकता। मनु द्वारा सपिण्ड सम्बन्ध की निश्चित व्याख्या न करने से और सपिण्ड विवाहों को प्रामाणिकता अश्वकर न बनाने से यही परिणाम निकाला जा सकता है कि मनु के समय में (दूसरी शती ई० पू०) विवाह में असहिष्णुता को आवश्यक समझा जाने लगा था, टीकरी पीढ़ी तक विवाह किसी भी दशा में नहीं हो सकता था। इसके बाद शतकों और पाँचवीं पीढ़ी तक के विवाह में यदि अश्वकरता का अन्त था, किन्तु यदि ऐसा विवाह हो जाय तो उसे केवल बुरा ही समझा जाता था, उसके कारण आतिथ्या आदि अश्वकर शब्द या आन्ध्राश्व शत आदि कठोर प्रामाणिकता करने की आवश्यकता नहीं थी।

शास्त्रवत्त्व ने विवाह में छोड़ी जाने वाली पीढ़ियों का स्पष्ट प्रतिपादन किया है (१:२३)। वह मनु को तब, इस विषय में यौन नहीं देता। उसके अनुसार माता की पाँचवीं पीढ़ी और पिता की सातवीं पीढ़ी के बाद की सन्तानों में ही विवाह होना चाहिए।^{१०} यह स्पष्ट रचना चाहिए कि यही शास्त्रवत्त्व ने सपिण्ड सम्बन्ध का प्रयोग नहीं किया, केवल पीढ़ियाँ ही गिनायी और ये पीढ़ियाँ अस्तित्र धर्मसूत्र के अनुक्रम हैं। प्राचीनशास्त्रवत्त्व (३:२३१-२३) में शास्त्रवत्त्व ने अगम्या स्त्रियों का परिचयन किया है। मनु की जाति यह सपिण्ड स्त्री के पास जाने के लिए कोई प्रामाणिकता नहीं बताता। इसके समान विवाह का सां गुणरूप-गमन जैसा अश्वकर माना गया है, किन्तु सपिण्ड विवाह की अश्व ही नहीं की गयी। विष्णुस्मृतिके इन श्लोकों के 'स्वयं' शब्द से यहाँ सपिण्ड का प्रमाण करना चाहिए है, किन्तु शास्त्रवत्त्व स्मृति के एक अन्य टीकाकार अपराक ने इस शब्द का अर्थ अगिनी या सगी बहिन किया (अपराक, ५० १०४२) है। मनु (६:५८, १९६) में तथा गोत्रम (१:३१९) में यही शब्द सहायक अगिनी के लिए आया है। अतः शास्त्रवत्त्व स्मृति में स्वयं शब्द से सगी बहिन का ही अर्थ माना चाहिए। इस प्रकार शास्त्र-

^{१०} शास्त्रवत्त्वस्मृति १:५६

पञ्चमस्तान्मातृभर्तुः भ्रातृभर्तुः प्रियतमता ॥

अन्त्य भी मनु की तरह सविन्द विवाह को अच्छा न समझता हुआ भी उसके उल्लंघन को दण्डनीय अपराध नहीं मानता था।

भारत (१२४७-७५) का भी इस विषय में यही मत है। उसने उन्नीस बरान्त की श्रियों के सम्मेलन को इतना चयकर अपराध माना है कि उनका दण्ड जिसोऽपराध के भौतिक कृष्ण नहीं है, इनमें सर्वोच्च स्त्री का उत्तेज है किन्तु सविन्दा की नाम नहीं है। इनमें मातृकुल की सेवा, सुखी, दुखी पीड़ितों की निर्व्या का निषेध है। विष्णुस्मृत (३६१५-७) में सविन्दा स्त्री को अपमाना नहीं माना गया। परन्तु भी दण्डित विष्णु विष्णु प्राथमिकता का निर्देश नहीं करता।

इस प्रकार जीवन के भौतिक आठवीं शती तक के किसी प्रसंगान्तर में सविन्द विवाह को प्राथमिकता दी गयी अपराध नहीं माना। ये स्मृतिधारण शक्ति विवाह को तो सुखव्ययन के मुख्य अपराध मानते हैं किन्तु सविन्द विवाह का दण्डनीय अपराध को उत्तेज नहीं करते। इसमें कोई संदेह नहीं कि विवाह के समय अपविन्दा क्रमा हो गई जाती है। किन्तु सविन्दा से विवाह हो जाने पर उसे अपराध नहीं माना जाता था। इसके पक्षी परिष्कार निष्कर्षा जा सकता है कि आठवीं शती तक सविन्द विवाह के नियम के पक्षी निषिद्धता की।

टीकाकार और सविन्दता का नियम

आठवीं शती के बाद, टीकाकारों एवं भिन्नकारों के इस विषय की शोध करने का प्रयत्न किया। उत्तर भारत के टीकाकार तथा भिन्नकार पिता और माता की शान और पति पीड़ितों को देने के इरादे से करते थे। उन्होंने सविन्द विवाहों को दण्डनीय अपराध सिद्ध करने की पूरी कोशिश की, किन्तु पक्ष में मातृकुलान्तर के विवाह भी गिनाई प्रचलित थी। अतः देखकर मनु, परावर-माधव आदि शास्त्रात्मक टीकाकारों ने इस विवाह को मान्य-सम्मत सिद्ध किया। जब तक हमने यह देखा है कि मनु के सिवाय अन्य सभी स्मृतिकारों ने प्रायः पीड़ितों का उत्तेज किया है। मनु ही पिन्ध शब्द का प्रयोग करता है, किन्तु विवाह के प्रकरण में उसका अर्थ स्पष्ट नहीं करता। मध्य युग में पिन्ध शब्द की व्याख्या पर ठीक मतभेद का। विज्ञानेश्वर आदि विद्वानों ने पिन्ध का अर्थ 'विद्' किया तथा सविन्द उन सम्पत्तियों को समझा जो शरीर द्वारा वर्धाह संक-परम्परा में पिन्ध या शारीरिक बंध द्वारा सम्बद्ध होते हैं। रघुनन्दन आदि ने पिन्ध का अर्थ मूल्य को दिया जाने वाला 'पिन्ध' समझा और जो सम्पत्ति उस पिन्ध को देने योग्य है, उन्हें सविन्द माना। जब बड़ी कालक्रम से इन टीकाकारों का मत बताया गया था।

नवी शती में भिन्नकर ने प्राथमिक स्मृति के ११५३ की व्याख्या करते हुए पीड़ितों की गिनती के विषय में चार वक्ता दिये। पहला वक्ता जीवन का है, जो पिता और माता की आठवीं और छठी पीढ़ी में लड़ी उचित समझता है। दूसरा वक्ता शान का है, जो दोनों

के लिए भाग पीढ़ी का मुख्य चरित्र समझा है। तीसरा पक्ष राजवंश का है जो पिता और माता की सातवीं और चौथी पीढ़ी के वंशज को पर्याप्त मानता है। चौथा पक्ष संप्रत्यक्ष शास्त्र का है, जिसके अनुसार चौथी पीढ़ी में भी विवाह हो सकता है। विपक्ष का भी सम्मति में पहुँचा गया सबसे अच्छा है, दूसरा उत्तम कम, तीसरा उसके निकट और चौथा सबसे अग्रिम।^{१०} अतः यह स्पष्ट है कि उस समय तक चौथी पीढ़ी तक के विवाह हो सकते थे, परन्तु उन्हें अच्छा नहीं मन्ना जाता था।

वैधान्तिक के मत का गहने उत्प्रेक्ष किया जा चुका है। मनु ने विवाह सम्बन्धी व्याख्या नहीं की, वैधान्तिक उसे माता और पिता की सातवीं और चौथी पीढ़ी तक भीमित करके ला है। मनु तीसरी पीढ़ी तक के मातृकुल के सम्बन्धियों से विवाह को पाप समझता है। मातृकुल की चौकी पीढ़ी में विवाह को बहु प्राशंसनीय अर्थपात्र नहीं समझता, किन्तु वैधान्तिक के समय तक ऐसे विवाहों को पाप समझा जाने लगा था। अतः वैधान्तिक ऐसे विवाहों को प्राशंसित होम्ब अस्वीकार करके ला है।

विज्ञानेश्वर द्वारा संविषयता की व्याख्या

विज्ञानेश्वर के दीपिकार विज्ञानेश्वर ने विष्णु स्मृत की किरण व्याख्या की है। आत्म का बहुत बड़े भाग में आश्रय विज्ञानेश्वर शरीर दिव्य शब्द की व्याख्या के आधार पर प्राप्त भाग का विषय प्रचलित है। विज्ञानेश्वर शब्द ० स्मृति के १।५.३ की व्याख्या में कहता है कि “अविषयता का अर्थ उस स्त्री से है जो संविषय नहीं है। संविषय का अर्थ है एक शरीर के अवयवों अथवा अंगों को रखने वाला। वे व्यक्ति हैं जिनमें संविषयता सम्बन्ध उस समय होता है जबकि इनमें एक ही शरीर के अंग पाये जाते हैं। इस प्रकार पुत्र पिता का संविषय है, क्योंकि पिता के शरीर के अवयव पुत्र के शरीर में पाये जाते हैं। इसी तरह दादा और पीछ में संविषयता है, क्योंकि पीछ के शरीर में दादा के शरीर के अवयव पाये जाते हैं। इसी प्रकार पुत्र की माता के साथ भी संविषयता है, क्योंकि पुत्र में माता के शरीर के अंग पाये जाते हैं। इसी तरह यज्ञ के माध्यम से माता के साथ भी संविषयता होती है। एक ही शरीर के अवयवों वाला होने के कारण एक ही व्यक्ति प्रीति और शांति के साथ भी संविषय सम्बन्ध रखता है। माता और पुत्र (पितृपुत्र) हैं भी उसका अर्थ सम्बन्ध होता है। परन्ती पति के साथ संविषय होता है क्योंकि वह (पति के साथ) मिश्रकर एक साथ शरीर उत्पन्न करती है। मातृवों की पतिवों में भी संविषयता होती है, क्योंकि वे अपने पतिवों के साथ संज्ञात उत्पन्न करती हैं। इस तरह बहू कही संविषय शब्द है कही साक्षात् (पिता से पुत्र में) अथवा परम्परा से (दादा से पीछ में) किसी एक शरीर के अवयवों का विद्यमान रहना परमा जाता है।”

शास्त्रपरम्परा स्मृति की विद्वान्महोदयों (१।१६३) ने विद्वान्महोदय कहा है कि अग्निष्मत् कथन की व्याख्या में कहा गया है कि अग्निष्मत् का अर्थ माता का अथवा परम्परा सम्प्रदाय से एक जरीर के अंग का माना जाना है। यह सम्प्रदाय सांख्य और लक्ष्मणियों का किसी न किसी प्रकार इस अन्वयि कथन से छिड़ हो सकता है, क्योंकि जरीर सृष्टि की उत्पत्ति प्रजापति से हुई है। उपनिषद् बताती है कि प्रजापति ने कामना की कि वह बहुत (बनो में) हो, उसी ने वह सब सृष्टि उत्पन्न की (छान्दोग्य उप० १।१।३, तैत्ति० उप० २।१६)। अतः सब व्यक्तियों में प्रजापति के जरीर का अंग होने में वे आपस में समान हैं एक जरीर के अंगों वाले हुए। सम्पत्ति के इस व्यापक अर्थ की सीमा करने के लिए शास्त्रपरम्परा ने "पञ्चमात्मन्यप्युर्ध्वं मानुषः पितृमन्यथा" का मन्त्र कहा है। इसका यह भाव है कि माता की उत्पत्ति से पंचवर्षों तथा पिता की मन्त्रान्ते सातवीं पीढ़ी के बाद अग्निष्मत् समाप्त हो जाती है, इससे अग्निष्मत् अर्थ अत्यन्त सीमित होकर पञ्चवर्षों और पंचवर्षों की तरह निश्चित अर्थ में बंध कर दिया गया है। पंचवर्ष का अर्थ कीचड़ से पैदा होने वाला है, कीचड़ में बीजों का अर्थ पैदा होते हैं, पंचवर्ष उन सबके लिए समुक्त है। किन्तु पंचवर्ष के लिए समय का अर्थ निश्चित कर दिया गया है और वह उसी में बंध हो गया है। मनी जाने वाली धनु की निर्गम कहते हैं। किन्तु वह मन्त्र के उत्पन्न अग्नि के अर्थ में बंध हो गया है। इसी तरह अग्निष्मत् बहुत व्यापक होता हुआ भी सातवीं और पंचवर्षों की सीमा ही निर्धारित कर दिया गया है। अतः पिता और माता अग्निष्मत् पुत्रादि का अन्तर्गत तथा अपने आप को विभाकर से अन्तर्गत अग्निष्मत् होते हैं। यहाँ कहीं भी सम्मान-परम्परा शुरू हो रही उस (पुत्र) के सातवें पुत्र तक निर्धारित करनी चाहिए। इसी तरह माता की ओर से पंचवर्षों की सीमा अन्तर्गत है जो माता से उसके पिता-दादा आदि की गिनती करते हुए पञ्च-परम्परा में पंचवर्षों से और पिता की ओर से दादाजी से कहते हैं जो पिता से दादा-परम्परा आदि की गिनती करते हुए पञ्च-परम्परा में सातवीं संख्या पर हो।^१

विद्वान्महोदय की उपर्युक्त विवेचना से हम निम्न परिणामों पर पहुँचते हैं—

(१) विवाह में माता की पंच तथा पिता की सात पीढ़ियों छोड़नी चाहिए।

(२) सम्मान परम्परा या पीढ़ियों की गिनती में मूल पुत्र को सम्मिलित करना चाहिए।

(३) मर-वधु दोनों की अग्निष्मत् का विचार करना चाहिए।

पहली बात के सम्बन्ध में यह व्यास रखना चाहिए कि मूल पुत्र के पीढ़ियों पर तरह से गिनती या संख्या है—

१—मर और वधु दोनों के पिताओं की पीढ़ियों गिनती करें।

२—दोनों की माताओं की पीढ़ियाँ मिली जायें ।

३—बन की माता गर्व बधू की माता की पीढ़ियाँ मिली जायें ।

४—बन के पिता और बधू की माता की पीढ़ियाँ मिली जायें ।

ये पीढ़ियाँ गिनना बड़ा पेचीदा काम है । नीलि और सार पीढ़ी की पर्याय शब्दों का सजातीय विचारों से है । विज्ञानीय विवाह में तत्सम पीढ़ियाँ छाँटना हो पर्याय समता जाना है ।^{१२}

मिताभरा द्वारा प्रतिपादित सप्तम-मपरा में तथा अंद्रेजी डेड ड्राफ्ट पीढ़ियों गिनने में बड़ा अन्तर है । मिताभरा भावि या प्रारम्भ अवस्था को ही गणना में सम्मिलित करने की । किन्तु अंद्रेजी गणना में इस मूल प्रत्यय (Propositus) को नहीं गिना जाता । अतः जब मिताभरा पाँचवीं सात पीढ़ी की पर्याय बोलती है तो उसका अर्थ है मूल प्रत्यय सहित पाँचवीं या सातवीं पीढ़ी । अंद्रेजी गणना के अनुसार मूल प्रत्यय को छोड़कर छह, यह पर्याय चौथी और छठी तक जाती जायगी ।

विज्ञानेश्वर ने पाँच और सात पीढ़ियों की पर्याय मिलित की है । किन्तु पुराने व्युत्पत्तिकारों में कुछ प्रायः संविष्णुता के नियम को इतना व्यापक बनाने का विचार नहीं था । वे इन पीढ़ियों को बहुत अधिक समझते थे । मिताभरा ने वसिष्ठ-धर्मसूत्र और वैदिकता के वां श्रम उद्धृत किए हैं । वसिष्ठ के मतानुसार मातृकुल से पाँचवीं तथा पितृकुल से सातवीं पीढ़ी वाले का विवाह ही शक्य है । मिताभराकार इन पीढ़ियों के बीच छठी और सातवीं पीढ़ी में विवाह को बीच आभता है । वैदिकता काया को मातृकुल से चौथी तथा पितृकुल से छठी पीढ़ी में विवाह की आज्ञा देता है । इस तरह उसने मिताभरा के दो पीढ़ी कम में भी विवाह को रोक रखा है । विज्ञानेश्वर ने इन विरोधी धारणों से अपनी व्यवस्था की यह संगति बिठा दी है कि वसिष्ठ और वैदिकता का यह आशय है कि इन निकट पीढ़ियों के मध्य विवाह नहीं होगा चाहिए । उसका यह आशय कदापि नहीं है । मातृकुल द्वारा प्रतिपादित सात और पाँच पीढ़ियों के मध्य जायी हो सकती है और इस तरह सब व्युत्पत्तियों में परस्पर कोई विरोध नहीं है ।

किन्तु यह व्याख्या मिताभरा असम्भवजनक है । मिताभरा की वाक्यबद्धी टीका में विज्ञानेश्वर की यह मूल गरीब बात ही स्वीकार की गयी है । व्युत्पत्ति में विज्ञानेश्वर की यह मूल नहीं थी । पुराने समय में संविष्णुता के नियम इतने दूरगामी नहीं थे । मिताभरा के समय तक वे नियम दूरगामी हो चुके थे । अतः विज्ञानेश्वर ने मातृकुल का अर्थ अपने समय की प्रचलित धारणाओं के अनुसार किया और पुराने कालों की संघटि बैठाने का प्रयत्न किया, किन्तु इसमें वह धफल नहीं हुआ । विज्ञानेश्वर के समय संविष्णुता

के नियम की निधिलता का बात से भी सम्बन्धित है कि उनमें समान विकास की प्राप्ति संविध्य विवाह को दृष्टान्तम अपराध नहीं बताता ।

अपराधों ने भी विज्ञानेश्वर की पीढ़ियों का सम्बन्ध किया है । वैदिकीय का उन्मूलक बचन स्पष्टतः अपराधों के मृत के प्रतिकूल माना जा, अतः उन्मूलक बचन का पुनः परिवर्तन के साथ उद्भूत करते हुए कहा कि वैदिकीय में तीन पीढ़ियों का परिवर्तन की बात कही है, वह अस्तित्वमय विवाहों का विग्रह है (पृ० ६२) । अगला कर्त्तव्य और अन्तर्गत के, माया और बुद्ध की लक्ष्मी के साथ और ३ वी, ४ वी पीढ़ी में विवाह की अन्तर्गत होने वाले बचनों की व्याख्या इस क्रम में करता है कि उनमें ऐसे विवाहों की प्रतिष्ठा नहीं की । कर्त्तव्य (४।१० के परिशिष्ट का व्याख्या मंत्र) माया का अर्थ और अपराधोत्तम मृत की व्याख्या नहीं की जा चुकी है । शायद ग्रन्थ के बचन के सम्बन्ध में इसकी सम्प्रति है कि यह प्राचीन परम्परा के सम्बन्ध में है (पृ० ६३) । विवाह के विषय में इन बचन का कोई सम्बन्ध नहीं है । अपराधों में अन्त में भीमकी पीढ़ी के माया की लक्ष्मी के विवाह को शास्त्रविरुद्ध खुराने के लिए आचार्य के एक बचन का प्रमाण दिया है कि ऐसा करने वाले का आश्रय दत्त करना चाहिए (अपराध, पृ० ६४) ।

मातृसम्प्रापण

दक्षिण के धर्मशास्त्रियों तथा टीकाकारों ने मातृसम्प्रापण (माया की लक्ष्मी) के विवाह को कभी मान्य विधाय नहीं समझा । मध्य काल में उत्तरी तथा पश्चिमी पण्डितों ने इस प्रश्न पर तीव्र मतभेद था । वेदण्ड भट्ट ने स्मृतिविरुद्ध में मातृसम्प्रापण के विवाह के सम्बन्ध में एक पूरा अध्याय लिखा है । उत्तर भारतीय शास्त्रकारों ने मातृसम्प्रापण के विवाह का विरोध करते हुए पश्चिम भागों का बड़ा प्रभाव डाला । कुमारिल भट्ट ने संश्लेषात्मक में कहा है कि दूसरे लोग यह कथन (माया की लक्ष्मी के साथ विवाह) नहीं करते हैं, किन्तु राक्षसाद्य माया की लक्ष्मी को वाकर प्रत्यक्ष होते हैं । विश्वम्भर ने संक्षेप का यह मत उद्घुस्त किया है कि माया की लक्ष्मी से विवाह करने वाला पराध श्रमविधाय से मुक्त होता है^{११} । मेधाविधि ने (मनु २।१६) मातृसम्प्रापण के विवाह के सम्बन्ध में कई हेतु दिये हैं—(१) माया की सुन्दर कन्या की सम्पत्ति का ह्रास, लोगों ने उससे दत्तविध विवाह कर दिया कि उन्हें राजा नहीं सम्प्रापण के अपराध का दण्ड न दे । (२) कुछ मूर्ख लोगों ने “येनास्य पितरो यज्ञाः” (मत्स्य पुराण ४।१७५) के बचन का अनुसरण करते हुए प्राचीन काल की सुनी हुई बातों को

^{११} विश्वम्भर अष्टक, २।१२४ पर, संक्षेप—

मातृसम्प्रापणं तत्पराधं पुनः च मातृसम्प्रापणं च ।

एता गन्ता दित्तो मोक्षोत्पराधोपेतो च शुच्यति ॥

धर्मोत्तमनन्दपात्रन करते हुए इस विवाहों का पतन किया (यन् २।१८)। मालुन कन्या के विवाह की प्रथा का कारण जाहें जो कुछ हो, वह दक्षिण भारत में प्रचलित था और देवण्य भट्ट तथा पदमन (१।२. १० ६३३-६८, स्मृतिचन्द्रिका खं० १, १० ७०-७४) ने अनु, मातृसत्ता, गुमन्तु आदि के विरोध करने हुए इसका प्रबल समर्थन किया।

देवण्य भट्ट द्वारा मालुन कन्यापरिधाय का समर्थन—देवण्य भट्ट ने मालुन कन्या के विवाह का समर्थन बड़े विस्तार से किया है (स्मृतिचन्द्रिका खं० १, १० ७०-७४)। उसका यत्न है कि बाह्य विवाह होने पर स्त्री पिता का गौरव कांक्षती है और पति का श्रेष्ठ भी हो जाती है। दूसरी तरह स्त्री पिता के श्रेष्ठ की न रहकर पति के श्रेष्ठ की हो जाती है। अर्थात् गुण के मत से बाह्यविधि से परिधीत कन्या का पति के श्रेष्ठ में पिता एवं जन्म दिया जाता है। आसुर आदि विवाहों में यह कार्य पितृश्रेष्ठ से ही होता है। बाह्यविधि में बाह्य विवाह प्रचलित है। यदि इनमें गौरव का परिधीत भाग प्राप्त हो विधवा का परिवर्तन क्यों न माना जाय ? जब माता की लड़की बलपिण्ड है तो उसके विवाह करने में कोई संशय नहीं है। कोई यह कह सकता है कि माता की बहिन भी तो अचरित्र हो गई, बात सही है विवाह करने में भी कोई संशय नहीं हुआ। देवण्य भट्ट इसमें भी कोई संशय नहीं समझता। यदि ऐसा बात है तो अनु, (२।१०२-७३), गौतम (२।१।१), धातृसत्ता (३।२।१-३३), मारु (१।२।७३-७४), विष्णु (३।६।४-७), सातत्य, संवत् और गुमन्तु के मालुन कन्या-गमन के निषेधपरक धर्मों का क्या अर्थ होगा ? देवण्य भट्ट कहता है कि ये सब धर्म आसुर तथा शन्याय विवाहों के सम्बन्ध में कहे गये हैं। पिता अपने अनुचितसिद्ध का यह धर्म उद्धृत किया है कि तीवरी-श्रीश्री पीड़ी में जायी होती चाहिए। नतम बाह्य (१।८।१) और भूध्वज के धर्म सूक्तों का भी मन्त्र हो देवण्य भट्ट के वैदिक प्रमाणी का मुख्य आधार है। वेद के अतिरिक्त अपने बृहस्पति स्मृति का भी यह धर्म उद्धृत किया है कि पहले से धर्म होने वाले वेद, जाति और कुल के धर्मों का धामन उनी प्रकार करना चाहिए नहीं तो धर्म में शोक उत्पन्न होता है।^{१२} दक्षिणादय बाह्य मालुन कन्या के साथ विवाह करते हैं अतः उनमें यह विवाह वैध माना जाना चाहिए। स्मृतिमूलक भी इसकी पुष्टि करता हुआ कहता है—दक्षिणादय लोगों में तीनों धर्मों के आनने वाले, वेदार्थ का अनुष्ठान करने वाले बाह्य भी मालुन कन्या के साथ विवाह करते हैं।^{१३}

^{१२} स्मृतिचन्द्रिका खं० १, १० १०

देवतातिष्ठुत्तां च ये धर्मो प्राप्त् प्रवर्तितः ।

तर्पय ते पालनीयाः प्रजा प्रसुप्तोऽप्यथा ॥

^{१३} स्मृतिमूलक—

वसिष्ठधर्मादयः सन्धे मालुने ऋषिकथुका वेदार्थानुष्ठानात् विद्वद् भवि मालुनकि-

विध्वंश के कारण की वृष्टि से देवज्य सृष्टि का मन्त्रमय चिह्नक ही है। किन्तु उसने मनु ब्राह्मण के मातृगण कन्या विधेयपरक वचनों का भी निनिर्वाण धाम्प्य तथा गाम्भीर्य विवाहों में किया है, यह चिह्नक पक्का है। मनु ब्राह्मण सभी शास्त्रकारों के धाम्प्य विवाहों की मित्रता की है। इन निम्नलिखित विवाहों के लिए उपर्युक्त निर्देशमन्त्रन सजे गये हैं, यह बात तर्कसंगत नहीं जान पड़ती। अतः देवज्य सृष्टि में अमपिण्डता के बन्धन में लड़ी जाने के लिए एक नया ही प्रयास हुआ। वह कहता है कि मनु अमपिण्डता मानने के विवाह को उत्तम (प्रबल) समझता है। इसका अर्थ केवल इतना ही है कि अमपिण्ड (मनाह) अच्छा है, किन्तु इससे यह परिणाम नहीं निकालना चाहिए कि गरिष्ठ विवाह निर्दिष्ट है। यह केवल प्रस्ताव या अच्छा नहीं, किन्तु यदि ऐसा हो तो मनु को जगने कोई बाधा नहीं है। देवज्य सृष्टि के इस मत का हैमाद्रि और गाम्भीर्य ने तथा अन्तर्गत भीमरूप तथा धर्मगिण्ड के तत्परिणों ने अनुमानित किया है। प्रस्ताव प्रस्ताव की तरफ यह प्रस्ताव जब तक सम्बन्धित है। कई स्मार्तों पर केवल इसका विश्वास ही नहीं है अस्तु ऐसे विवाह की अच्छा समझा जाता है। नाने बताया जा रहा कि बर्मोटक के देवज्य ब्राह्मणों तथा कर्णाटक ब्राह्मणों में आजकाल भी भाषा की लड़की के नाम शादी होती है।

मध्यमम में उत्तरभारत में भाषा की लड़की के नाम विवाह की प्रथा सम्बन्धित न होने के कारण इस प्रथा के सास्त्रकारों ने मातृगण कन्या के नाम विवाह का निर्वाह किया। इन विधय में महा विधिमित्र के मत का ही उल्लेख किया जा रहा।

विधिमित्र द्वारा मातृगणकन्यापरिणय का विरोध—विधिमित्र ने मातृगणकन्या परिणय के पक्ष में दिये गये धुनि-वचनों तथा मात्र हेतुओं का कई विस्तार में स्पष्ट किया है। (सं० प्र०, पृ० ७१८-७२५)। "माताहीन" वाली वैदिक धुनि के सम्बन्ध में यह मधुराक्ष द्वारा स्वीकृत दातवेद हीन समझा है।^{१४} इनके अनुसार यह मात्र तब विवाह का सम्बन्ध नहीं, किन्तु विरोध करता है और इसका अर्थ इस प्रकार है—हूँ, हन्, अग्न प्रलसित (ईशित) मोक्षपतिवों के साथ इस वज्र में आदित्य, सोमरूप अथवा देवता कीविए। (मापक साथ जाने जाने सोम ग्रहण करने जाने देवता सोमगान में) लूट होकर सोम का बीसे ही स्वागत करते हैं बीसे चामा के लड़के बुला की लड़की का (पत्नी रूप के अस्मिता अवांछनीय होने के कारण) छोड़ देते हैं।^{१५} इन सम्बन्ध में "तुनीचे सम्बन्धमते" वाली प्रत्यक्ष की वृष्टि में उत्तम पुत्र का बन्धन होने में इसे विधि नहीं

दुहितृपरिणयमाचरन्ति। इतिवेष्टु तथाविधा। विधिराच्युप्यादि विवाहमाचरन्ति ॥

^{१४} सं. प्र., पृ० ७१८—अप्याहीन पवित्ररीतिविधेयविधिं ली मातृगणकन्या कृत्स्न।
तृप्तां बहुमतिरुत्सवेध बोध तागः वेत्तुप्यसेयी मयाविहीनः ॥

^{१५} सं. प्र., पृ० ७१८—मातृगणकन्या लूटः वेत्तुप्यसेयीभिः भार्यावेष्टाव्यन्तामचित्तवर्तीनां
त्यजन्ति क्वकीयमातृगणक अकामावीध्यात् ॥

माता गधा (पृ० ७२०) । उसके अतिरिक्त मित्रमित्र ने यह भी कहा है कि निवृत्त की पद्धति का आशय लेते हुए यहाँ मातुल्य का अर्थ यरतर के साथ साधुपय रखने वाला तथा वीरुधर्मधी का अर्थ पिता से सम्मानता रखने वाली कन्या है । उस वैदिक काल में मातुल्य है कि है दन्त, दन्त म्निग्रह पदार्थ (बपा) का शुभ रंग ही लेवन करने, तैय मातुल्य अर्थात् अपनी माता के समूह अर्थात् रखने वाले मुख्य द्वारा पिता की वचन में मेल जाने वाली कन्या में सत्य की गयी कन्या जिन प्रकार सेवनीय होती है वैसे ही इस धर्म में यह बपा सेवनीय है । नवीक सप्तमिकार नामक ग्रन्थ में बहुत मता है कि पिता से साधुपय रखने वाली कन्या जो माता से सम्मानता रखने वाला पुत्र नाममात्र होता है ।^{१०} और इससे सत्य प्रमाण वाली कन्या बड़े भाग में मिलती है । इस अर्थ को मित्रमित्र ने सत्यमित्र पुत्रों में बोधे हुए गुलाभा और लकी के उदाहरणों से स्पष्ट किया है (पृ० ७२३-२४) । अन्त में उगने प्रष्टुम, अर्जुन, अमिष्ट आदि द्वारा जमा की मरुकी के साथ बाघों के विषय में धर्मशास्त्रों की इस व्यवस्था का उल्लेख किया है कि प्राचीन महापुरुषों में धर्म का उल्लेख बोधा जाता है, किन्तु उन्होंने ऐसा नाम किया, इसके आधार पर हमें बीसा नाम नहीं करना चाहिए क्योंकि हम लोग दुर्वच है । किन्तु तेज होने से जन (महा-पुरुषों द्वारा वेध पाये गये हैं) रूप नहीं है, किन्तु उन्हें देखकर वर्तमान अवास्तव्यक्ति यदि हम साथ-साथ करे तो कुछ गलत है । देवताओं और महापुरुषों ने जो कार्य किया हैं, मनुष्यों द्वारा वह कार्य नहीं किया जाता चाहिए, उनके द्वारा कहे कर्म पर आचरण करना चाहिए ।^{११} अन्त में प्रष्टुमति, महापुरुष और व्यास के कुछ वचनों के आधार पर मित्रमित्र ने माता की मरुकी से विवाह का निवेदन किया है ।^{१२}

मध्ययुग में सपिण्डता के विविध प्रकार

मध्यकालीन कालों से यह स्पष्ट है कि सपिण्डता का विचार बार प्रकार से

१० बहो, पृ० ७२२-३

तथा मातुल्यस्य अर्थः पर्येति निवृत्तमा मातुल्यस्येव मातुल्यो गृह्यते । पितृव्यस्य सत्येव वचनस्य तु यसा स्येदु धीवतीति नेति च निवृत्तमा पितुः स्वे कर्म कीर्तनीति पितृव्यस्येति पितृसप्तसप्तम्यर्थपर्येति निवृत्तः । तथा च मातुल्यस्येव पुत्रस्य पितृमुक्त्या कन्यासामुक्त्या कन्या प्रजा मलनीया भवति तथैव तथा तत्र मलनीयत्वार्थः । अन्तर्मातुल्यस्यारो—यस्या पितृमुक्त्या कन्या धन्यो महापुरुषः सुतः । तयोर्धन्यतरो-त्यस्या कन्या प्रायेण भव्यते ।

१० अ. प्र., पृ० ७२४

११ अ. प्र., पृ० ७२३

हो सकता है—^{११} (१) पिता द्वारा, (२) माता द्वारा, (३) अश्वत्थामूर्ति, (४) एकलिंग विग्रहान्वली विवृत। पहले अर्थात् पिता द्वारा सापिण्ड्य का स्वरूप निम्न चित्र से स्पष्ट होगा—

मूल पुरुष (शूटस्थ)

१. पिण्ड

२. शान्ति ०	२. तारी (न.) ०
३. सुखी Δ	३. हर Δ
४. ब्रह्म Δ	४. रीत Δ
५. रीत Δ	५. शिव Δ
६. गण Δ	६. सुय Δ
७. सुय Δ	७. अश्वत्थ Δ
८. रति Δ	८. काय Δ

इसमें रति और काय का विवाह सम्भव हो सकता है, क्योंकि उनके पिता सुय और अश्वत्थ अपने मूल पुरुष पिण्ड से सातवीं पीढ़ी पर हैं। पिण्डगुणक परिण्यता सात पीढ़ी तक होती है, अतः उसकी सन्तति रति और काय तथा सब सापिण्ड्यसम्बन्ध की विवृति हो जाती है, असापिण्ड होने से रति और काय का विवाह संभव है।

मातृगुणक सापिण्ड्य निम्न चित्र में प्रदर्शित किया गया है।

१. पिण्ड

२. ब्रह्म Δ	२. रीत Δ
३. रीत Δ	३. रीत Δ
४. सुखी Δ	४. सुय Δ
५. ब्रह्मा Δ	५. रति Δ
६. शिव Δ	६. तारी Δ

इसमें निम्न और गोरी मर्रापि मूल मुख्य विष्णु से छठी पीढ़ी में है किन्तु उस से उसका सम्बन्ध अपनी साताओ—ज्यामा और रति द्वारा है, साता द्वारा होने वाली संरचना की मर्रापि चौथ पीढ़ी तक जाती है, निम्न और गोरी छठी पीढ़ी में है, जब-जबका विवाह हो सकता है।

अधिकांश विष्णु निम्न उदाहरण में प्रदर्शित है—



इस उदाहरण में रमाणा और रमाणा मुख्य मुख्य से गोरी पीढ़ी में है, छठी पीढ़ी में इसके पुत्र निम्न-काय मर्रापि है, क्योंकि अधिकांश संरचना गोरी पीढ़ी में सम्भारत हो जाती है। किन्तु इसकी सम्भाव रमा और निध संरचना है क्योंकि इनका सम्बन्ध विष्णु से है और इसमें संरचना सातवीं पीढ़ी तक जाती है, रमा और निध विष्णु से सातवीं पीढ़ी में है जब-जबका विवाह नहीं हो सकता। इस उदाहरण में छठी पीढ़ी में संरचना हट गयी की किन्तु सातवीं पीढ़ी में फिर आ गयी है। यह मंडक की संरचना की प्रति गोरी पीढ़ी में कूट कर सातवीं पीढ़ी में जाती है, अतः इसे मर्रापि-मर्रापि कहते हैं।^{१०}

गोरी प्रकार एक और से संरचना की विवृति होने और दूसरी और से विवृति न होने का है। यह निम्न उदाहरण में प्रदर्शित है—

^{१०} अर्थात् १. मुन्नी, पृ० २२७। अर्थात् समय में मर्रापि-मर्रापि द्वारा संरचना का विवृति (मि. डि. मा. इन हैरिटीज-द्वितीय संस्करण, पृ० ५६५, ५६७-५७०) रमा सेन (११ वीं संस्करण पृ० १५५-५) में कभी-कभी नहीं मिलता।



इस तदारूप में ब्रह्मा ब्रूम पुस्तक से पर्यायी सीरी में है, अतः उसकी कल्पा परमार्थ की तपिष्ठता निवृत्त हो जाती है, किन्तु विश्व ब्रह्म उसकी सन्तान ब्रह्म का सारिष्क्य सम्बन्ध पितृभूमक होने से छठी सीरी में विवृत्त नहीं होता, अतः ब्रह्म और कान्ति का विवाह नहीं हो सकता। इसमें एक और ही सारिष्क्य की स्थापित तथा दूसरी ओर असमाप्ति है। अतः यह निवृत्तान्वयनिवृत्त है। वर्तमान युग में तपिष्ठता के विषय में हिन्दू समाज में विद्वान्-स्वरङ्गादा प्रतिपादित अर्थस्वाका अनुरूप विवाह जाता है, किन्तु इसके साथ ही आनुष्य-विवाहों की ब्याप्त माने की तथा ब्रह्मा की मन्त्री के साथ विवाह की प्रथा प्रचलित है। यहाँ पहले आनुष्य विवाहों की चर्चा कर जायगी।

वर्तमान काल के आनुष्य विवाह

प्राचीन काल के आनुष्य विवाहों का पहले (पृ० ५९) वर्णन हो चुका है। यहाँ आनुष्यिक युग के ऐसे विवाहों का उल्लेख होगा। उत्तर भारत में पितृवंशपरम्परा में शास और मातृवंश में पौष वीरुकों के क्षेत्र जाने जाने सपिण्ड सम्बन्धियों के साथ विवाह के वर्जन का विजय प्रायः प्रचलित है, अतः आनुष्यों^{२१} के विवाह (cousin marriage) का बहुत कम रिवाज है।

अन्तिम-युग दक्षिण भारत की ओर जाने हैं इस तथा का प्रथम अनुदा जना

^{२१} श्री आनुष्य नाम का प्रयोग अंग्रेजी के Cousin के पर्याय रूप में किया गया है। अंग्रेजी में इस शब्द से निम्न सम्बन्धी सूचित होते हैं—(१) बचेरा भाई (पितृभूमक पुत्र), (२) बचेरी बहिन, (३) जीतेरी भाई (मातृभूमक), (४) जीतेरी बहिन, (५) कुन्देरी भाई (पितृभूमक), (६) कुन्देरी बहिन, (७) भजेरा भाई (मातृभूमक), (८) भजेरी बहिन। हिन्दी में इन सब के लिए कोई एक शब्द

है। उत्तर भारत में इन्हीं-गिनी जातियों में ही ऐसे विवाहों की प्रथा है। कर्नून और सुनद्रा के विवाह का अनुसरण छोटा नरमुर और बंगाल की कुछ अतिथि करती हैं, वे राजिव

महर्षि हैं, अतः यहाँ ऐसे सभी जाई बहिनों के लिए आनुषंगिक राज्य का व्यवहार किया गया है। मार्चिन के पुत्र 'अनुपुत्री अनुपुत्रिभ्याम्' (१।२।६७) के अनुसार आता राज्य में जाई बहिन दोनों सम्मिलित हैं अतः आनुषंगिक में जाई बहिन दोनों की सम्मान समानता होगी। ऊपर बताये आनुषंगिक में से १-२ पिता से जाई बाबा की और ३-४ भगवत की बहिन (मौली) की सम्मान हैं, संनवरण्यर में पिता और बाबा, माता और मौली का स्थान समानांतर होने से वे समानांतर वा अनुपुत्राण्य (Parallel cousins) कहलाते हैं। चाहेदी या मौली की बहिन के साथ विवाह अनुपुत्राण्य विवाह (Parallel cousin marriage or orthogamery) कहलाता है। जाई-बहिन की सम्मान संगपरण्यर में मिलित होने से प्रतिभ्रातृत्व (Cross cousins) कहलाती है और इनका पारस्परिक विवाह प्रतिभ्रातृत्व-विवाह (Cross cousin marriage) होता है। जैसे माता के भाई (माता) की लड़की के साथ, पिता की बहिन (पुत्री) की लड़की के साथ या बड़ी बहिन की लड़की के साथ। इनमें पहले प्रकार के विवाह का रिवाज बहुत कम है। चाहेदी जाई बहिन में विवाह के निषेध का मूल कारण यह होती है कि प्राचीन काल के संयुक्त परिवार में सब भाइयों के इकाइये रहने के कारण चाहेदी जाई-बहिनों की सभी भाई-बहिनों जैसा सम्मान गया और सभी बहिनों की तरह चाहेदी बहिनों की अपेक्षा पात्रा गया। मौली की लड़की के साथ विवाह के निषेध का कारण समानता भ्रमण महर्षि हैं, अर्थात् इससे तथा उसकी लड़की के साथ परि-भार में रहने के कारण इससे साथ विवाह के निषेध का अनुपुत्राण्य कारण नहीं हो सकता। इस विषय में तीन अर्थकार्यों की कल्पना की गयी है—(१) बाबा (पिता के भाई) की लड़की के साथ विवाह के प्रतिषेध के नियम को मौली (माता की बहिन) की लड़की के लिए भी सादृश्य के आधार पर लागू किया गया। (२) संभवतः यह अत्यन्त प्राचीन काल के मनुष्यवर्गी समाज का अवशेष है, ऐसे समाज में माता अपनी बहिनों के साथ परिवार में एक साथ रहती थी, जिनमें माता और उसकी बहिनों की सम्मानों को सारा सम्मान कर उनमें विवाह का निषेध करना स्वाभाविक था। (३) रिवाज इसे द्वंद्व सामाजिक संयोजन (Dual organization) का परिणाम मानता है। इस कारण की जाने व्यवस्था की जायगी (ओमिवास—मैरिज एन्ड पैमिली इन मासोस, पृ० ३८-३९)। भारत में अनुपुत्राण्य विवाह अर्थात् चाहेदी बहिन आदि से शादी मुस्लिम वर्ग में ही पायी जाती है।

और राजपूत होने का दावा करती हैं।^{२२} उसरी कपार के कपारी आश्रम के पारी भोगी भी भोगी बहिन भी सक्की (भाभी) के साथ विवाह करते हैं। ब्राह्मणों के लिये भी दावा कर्तित में बुआ और मामा की कन्या से शादी का रिवाज है। कुल्चू तथा लड़वा की कोतमाश्रमा जाति में ऐसे विवाह प्रचलित हैं। उत्तर प्रदेश की अवधिया, घासिया और कंजर जातियों में भाइयों की सम्पत्तियों को छोड़ कर बीच सब प्रकार के भ्रातृव्यविवाहों की अनुमति है। किन्तु उत्तर प्रदेश की बहेलिया, डोंगर पार, धरक, दोनाघ और चाम जातियों में केवल पीछी की सक्की के साथ ही विवाह संभव है, विधिया नामा की लड़की के साथ शादी करते हैं। उड़ीसा के करणों में यही प्रथा है। बम्बई में दक्षिण महाराष्ट्र की दहावीस जातियों में मामा तथा बुआ की सक्की के साथ विवाह की अनुमति है, गीज जातियों में ग्रीसी की सक्की के साथ विवाह होता है, पन्डू जातियों केवल मामा की कन्या के साथ विवाह की अनुमति होती है।^{२३} मध्यप्रदेश की कनेक जातियों में दहावा रिवाज प्रचलित है। बहुरिया राजपूत वर्ग के कर्गों जाति हैं, उनमें पिछों की शादी के कारण भ्रातृव्य विवाह अनुमत है। लघीसमूह के मीरान में तथा चरली, कुलधियो, महराँ में बहिन के साथ भाई की सक्की का विवाह बहुत लोकप्रिय है। इसके दूसरे का अर्थान् भाई के सक्की और बहिन भी सक्की का विवाह बैलूण, मरमा, चावा, बम्बर के गौरी में प्रचलित है। बीरा तथा अनरिया गौरी में इसे भूष मीठवा कहते हैं। इसका मत आशय है कि किसी परिचय से एक स्त्री के बाहर जाने से जो अति होती है, उसकी पूर्ति उस स्त्री की कन्या से पुनः उस परिचय में लौटने से पूरी हो जाती है। आदिवा गौरी में पुनः की सक्की पर ऐसा अधिकार माना जाता है और यदि कोई उसे नहीं देना चाहता तो पंचायत द्वारा उसे प्राप्त किया जा सकता है। यदि किसी कारण से सक्की नहीं दी जाती तो उसका हर्जाना दिया जाता है। एक गुराण गौड़ महाराष्ट्र लियो में तार मल्लिने लियो के कहती हैं—“तुम हमारे एक भाई के पुत हो, एक बहिन की सुक्तियाँ हैं, हम में चरम सम्बन्ध है, तुम हमें बँधे छोड़ सकते हो, तुम्हारे साथ जायेंगे।” गुरदास में लाली, लहीर, गडक, चारण और मरसिमा जैसी कुछ जातियों में भ्रातृव्यविवाह प्रचलित है, इनमें पत्नी और पति के मिला टका सत्ता के लिए कबलः मामा जी, मामी जी शब्दों का प्रयोग होता है, माता की सक्की के साथ भाभी का रिवाज है और यह कहावत प्रचलित है कि “काई पाछड़ लगीपी जावे” अर्थात् बुआ के पीछे भतीजी (एक ही घर में) बहू के रूप में जाती हैं। गुरदास की कोसी, डेड़ और भीम जातियों में से कुछ में बुआ की तथा

^{२२} गौड़नाथ जगन्नाथ सरकार—हिन्दू भा, आधुनिक संस्करण, पृ० ७६-११०

^{२३} १९११ की भारत की जनगणना रिपोर्ट, खंड १, भाग १ पृ० २४६, बम्बई की १९११ की रिपोर्ट के सार में अध्याय के परिशिष्ट में इस भाग में अनुव्य विवाह करने वाली जातियों का विस्तृत वर्णन है।

माना की लक्ष्मी से तथा कुछ में केवल मनेरी सहित से विवाह की परिपाटी है।^{१४} लक्ष्मीता में ऊँचे स्तरों में रहने वाली विन्मल, कोलम आदि जातियों में तथा पाचियाई वर्गों में प्रतिभावान् विवाह प्रचलित है, किन्तु चिरका गीन के उत्तर में समूह तट पर बसी हुई जातियों में इनका विवाह नहीं है।^{१५}

उपर्युक्त वर्णन से यह स्पष्ट है कि उत्तर भारत में अन्य समझी जाने वाली जातियों में आनुषंगिक विवाहों का प्रचलन बहुत कम है, यह प्रथा प्रायः हिन्दू समाज में निम्न श्रेणी जाति वाली जातियों में अथवा आरम्भिक जातियों में है। किन्तु हम जैसे-जैसे दक्षिण की ओर बढ़ते हैं, इस प्रथा का प्रचलन बढ़ते जाता है। महाराष्ट्र उत्तर और दक्षिण के मध्य में गण्य है। इसके उत्तरी भाग में बहुत कम जातियों में प्रति-आनुषंगिक विवाह होते हैं, केन्द्रीय महाराष्ट्र में अधिकांश जातियों में माया की लक्ष्मी से विवाह की परिपाटी है और दक्षिणी महाराष्ट्र में माया की लक्ष्मी के प्रतिरिक्त बुवा की लक्ष्मी से विवाह का विवाह ऊँची जातियों में भी है। निम्न श्रेणी जातियों से यह बात स्पष्ट हो आती है।

आगे यह बताया जायगा कि महाराष्ट्र में 'पवर का भेष'^{१६} के विधान का अनु-ष्ठान विवाह प्रायः उन्ही कुल में किया जाता है, जिसमें पहले भी वैवाहिक सम्बन्ध हुआ हो। दूसरा नियम उपरिविवाह का है, इसके अनुसार प्रत्येक व्यक्ति अपनी कन्या को ऊँचे कुल में स्थापना चाहता है, वह यद्यपि हीन सामाजिक स्थिति वाले कुल से कन्या ग्रहण करता है, किन्तु उसमें अपनी कन्या अभी सही देता। इन दोनों नियमों के प्रभाव से महाराष्ट्र में माना की लक्ष्मी के साथ विवाह करना सर्वथा स्वाभाविक है। कबे द्वारा दिये गये निम्न विधे से यह बात स्पष्ट हो आती है।^{१७} इसमें पोंसले और धोरपवे की परिचार है, दूसरे परिवार के गोपाल ने पहले परिवार की लीला नामक कन्या से

१४ कबे—पृ. ५०, पृ. १४४-४

१५ कबे— " " १४२

१६ पवर का सम्बन्ध है—ब्रह्म का सिर। इसका यह भाव है कि स्त्री की लाठी का छोर वहाँ तक जाता हो, वहाँ तक सम्बन्ध करना उचित है। कन्या की विधे कि क कुल वाले अपनी कन्या को कुल के लड़के की देना चाहते हैं, अब जो कुल वाले यह देखेंगे कि इससे पहले क्या क कुल के साथ उनका कोई वैवाहिक सम्बन्ध हुआ है। ऐसा सम्बन्ध न मिलने पर वे यह पता चलावे कि क, छ, म अलग अलग कुलों से उनके वैवाहिक सम्बन्ध हैं, क्या उनमें से किसी कुल का "क" कुल के साथ सम्बन्ध हुआ है। यदि ऐसा कोई सम्बन्ध मिलेगा, तभी क कुल की वधू स्वीकार की जायगी (कबे—पृ. १४२)।

१७ कबे—पृ. ५०, पृ. १४४

विवाह किया, जब दोनों परिवार एक वैवाहिक सम्बन्ध को स्थायी बनाने की आवश्यकता अनुभव करते हैं और सीता का परिवार अपनी बीड़ी में चोरपट्टे परिवार को एक कन्या आवश्यक बना चाहता है, महाराज सीता के भाई की सड़की होती है। इनलिम में यह स्थापना गया है कि सीता और गोपाल के पुत्र राम का विवाह अपने माता के भाई (गांधी) सारामण की सड़की जानकी के होता है—



यह स्पष्ट है कि इसमें सीता और जानकी बोंसले के चोरपट्टे कुल में नहीं हैं। जब कुछ कुलों को जैसा समझा जाता है तो उनमें कम्पार्ट केने की स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है। इसका दूसरा कारण यह है कि स्त्री माया: सड़की भतीजी (भाई की सड़की) को अपनी पुत्रवधू बनाया चाहती है।^{११} इस उपकरण में सीता जानकी के लिए चिता (गाराबन) की बहिन या पुत्रा तथा सार (पति की माता) दोनों हैं। यही कारण है कि भारवा और मावलन अर्थों का प्रमाण इन दोनों सम्बन्धियों के लिए होता है।^{१२} इस प्रकार मुख्य भाग बनने माया की सड़की से अपना (स्त्री द्वारा अपनी पुत्रा के सड़के से) विवाह की परिणती आवश्यक, कश्चाद और वैवाहिक सम्बन्धों में प्रचलित है।^{१३}

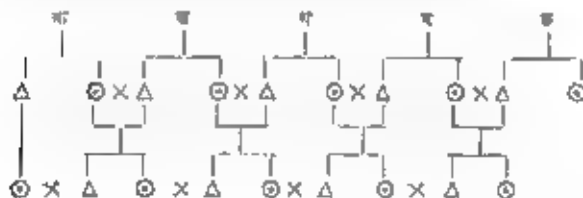
जातुन कन्या परिवार की प्रवा हुंते हुए की वैवाहिक सम्बन्ध में और सड़की मायाजानी जगता में सामान्य रूप से यह धारणा है कि पुत्रा की सड़की के माता विवाह बुध्दिय को माने जाता होता है। इसका कारण एक सड़की कश्चात से यह बताया गया है कि सदा जीत कर नहीं जाती (एल मेंस मेडा नामे)। क्यू के रूप में किसी परिवार में ही

११ इसका एक अन्य कारण यह भी है कि इसमें विवाह का व्यव कम होता है। महाराष्ट्र के कुचरियों में पिता अपनी कन्या देने का एक लेता है, किन्तु जब कोई पुत्र माया की सड़की से माया करता है तो कन्या के पिता की ही जाने वाली दक्षिण दक्षिण से कम होती है जो उसे किसी सड़क वाले कन्या के पिता को देने सड़की है (अर्थ पु. पु., पु. १२०)।

१२ अर्थ—पु. पु., पु. ११०

१३ अर्थ—पु. पु., पु. १२१

माने वाली कन्या सदा यह वेत की जाती है, यदि उसकी बकरी लौटकर पुनः उसके पिता के परिवार में बधू के रूप में जाती है तो यह वेत का कार्यवाही माना जाता, यह प्रकृति-विरोध है। वेत सर्वत्र अपनी शक्त आकाशों के साथ एक विशेष विद्या में आगे बढ़ती जाती है, पीछे नहीं लौटती। यह बात हिन्दू धर्मग्रन्थ से स्पष्ट ही जायगी।



इसमें कब न बच्चा पैदा हुआ है, इस चीजों कुलों की समान स्थिति होने पर कन्याओं की यदि यह कभी ओर ही होगी। इसका यह परिणाम होता है कि उच्च कुलों की कन्याओं की समान स्थिति का बचन मिलने की दशा में अधिवाहित रहना पड़ता है बावदा अपने से जिन्म कुल में विवाह करके हीन सामाजिक वर्ग को उन्नत बनना पड़ता है। इसमें शायद कन्या का पितृकुल से सम्बन्ध विच्छिन्न हो जाता है।^{११}

वर्तमान तथा उत्तर भारत की परिवार प्रकृति के भेद

आधुनिक विवाहों के वर्तमान भारत में प्रचलन के कारण वर्तमान भारत की परिवार-प्रकृति उत्तर भारत की कुटुम्बप्रकृति से कुछ मौलिक भेद रखती है। वर्तमान में पति-पत्नी उत्तर भारत के दम्पती की भाँति एक दूसरे के विषय में अत्यधिक और नवीन नहीं होते, बल्कि पूर्ण परिचित सम्बन्धी होते हैं। उत्तर में विवाह द्वारा दूर के सम्बन्ध बन्दू बनते हैं, किन्तु वर्तमान में पहले सम्बन्धी अधिकांश पति-पत्नी बनते हैं। इस अत्यन्त-पूर्व-जन्तार के कारण उत्तर और वर्तमान में पति-पत्नी के सम्बन्ध का विकास विभिन्न प्रकार से होता है। उत्तर में पत्नी पितृकुल से विच्छिन्न होकर अब अपने स्वयंराज्य में जाती है तो पहले विशेष व्यवहार की आशा रखी जाती है। यह ताल-समुद्र के सामने आगे जाती है, उसका अधिक समय घर के अन्दर बीतता है, उसे सर्वथा नवीन माता-पिता और परिस्थितियों के अनुसार अपने को ढालना तथा उनको प्रति अनुकूल बनाना पड़ता है। वर्तमान में यह समस्या कभी उत्पन्न नहीं होती, भासा, माँ की अथवा बच्चा की लक्ष्मी

^{११} कर्मे—इ. जे. , ० १९०

^{१२} कर्मे—विश्वविद्यालय, ५० १९४, ५१६ अनु.

के साथ शादी होने पर पत्नी किसी नये स्वामी के पास भेजे घर में नहीं जाती, बचपन से उसके साथ खेलने वाला मामा उत्तक पति होता है। वह पति उससे और न उसके घर के अपरिचित होती है, उसे अपने को पति के अनुकूल बनाने का विशेष प्रयत्न नहीं करना पड़ता। वह उत्तर भारत की स्त्री की अपेक्षा अधिक सम्भृत शासकण का अनुभव करती है।

किन्तु दक्षिण के इन विवाहों में जहाँ पत्नी की अपनी उत्तर-भारतीय मन्त्री की अपेक्षा कुछ नाम है, वहाँ कुछ बातें भी हैं। वहाँ प्रायः बचपन की सैबी विवाह में परिचित होती है, अतः प्रलय में सभी रीति-रिवाज नहीं जानी, जहाँ सभी प्रथम दृष्टि में प्रेम नहीं होता। विवाह में अपना जीवनसंगी चुनने की वहाँ स्वतन्त्रता नहीं है। ऐसे उदाहरणों की सभी नहीं हैं जहाँ अनिच्छापूर्वक दृष्टि से माध्य होकर विवाह करता पड़ता है। कर्नेल एक ऐसे व्यक्ति का उदाहरण दिया है, जिसे अपनी ही बड़ी बहिन की सड़कियों से शादी करनी पड़ी, क्योंकि वह दोनों बहिनों का पाराय नहीं करता था। अनेक बार एक सुन्दर युवक का विवाह एक कुख्यात युवती से केवल हममिण होना है कि वह उसकी माँ की है।^{२३}

उत्तर भारत में पितृकुल और स्वयंकुल में स्पष्ट अन्तर होता है, दोनों सर्वथा भिन्न होते हैं। पितृकुल का कोई व्यक्ति (माता, पिता, भाई, बहिन) स्वयंकुल का व्यक्ति (सास, शशुर, मामा, सासो, बामाह) नहीं बन सकता। किन्तु दक्षिण में ऐसा नहीं है। बड़ी बहिन सबसे पितृकुल से सम्बन्ध रखती है, किन्तु उसकी कन्या से विवाह होने पर वह सास भी बन जाती है। दक्षिण भारत के सम्बन्धवाचक नामों पर इसका बहुत बड़ा प्रभाव पड़ा है। उदाहरणार्थ, वहाँ माता और बड़ी बहिन दोनों के लिए माई शब्द का प्रयोग होता है, क्योंकि बड़ी बहिन की लड़की से शादी होने के बाद वह माता के समकक्ष होती है।^{२४} भुआ तथा माया की लड़की के साथ शादी होने के कारण कूसा, मामा तथा स्वयंकुल (पत्नी का पिता, पति का पिता) के लिए तमिल, तेलुगु, कन्नड़ में प्रथम श्रेणी का शब्द, मामा, मामावर, ओट्टुप्पर का प्रयोग होता है।^{२५}

उत्तर भारत का विवाह नवतमसुकी को पत्नी रूप में अपने परिवारों में मिलना है और उत्तक विस्तार करता है। इसका परिणाम यह होता है कि स्त्रियों को नदीन परिवार के लिए अपने को अनुकूल बनाने में काफी कष्ट उठाना पड़ता है, जबकि कार्य-संग सीमित होता है, पर सम्बन्धियों का बर्तन विस्तीर्ण हो जाता है। दक्षिण भारत के प्राच्य विवाह एक संकुचित वर्ग में ही सम्बन्धियों को सम्पृक्त करते हैं, इनमें रक्त

२३ बड़ी, पृ० २२०, दक्षिण में इस प्रकार के कारण द्वारा शादी विवाह भी संभव है।

२४ कर्नेल—पृ० २०, पृ० २२४

२५ बड़ी—पृ० २१४

हारा और विवाह द्वारा बने सम्बन्धियों में बहुत अधिक अन्तर नहीं होता है, स्त्रियों को दैनिक जीवन में अधिक स्वतन्त्रता प्राप्त होती है।^{१६}

मातृव्यविवाहों के प्रेरक कारण

ऊपर और अधिक से इस पद्धति के अन्तर का मूल कारण बताया बहुत कठिन है। अधिकांश में प्रचलित बहिर्बिवाह के विविध विवरण तथा अनेक हेतुओं में निकट सम्बन्धियों के विवाह का अधिक प्राथमिक महत्त्व इसके दो प्रधान कारण हैं। इनमें पहला कारण जो गिद्धे अध्याय (पृ० ७६) में स्पष्ट किया जा चुका है। दूसरा कारण यह है कि अनेक हेतुओं में मजदूरी की रिक्तियों में विवाह कारण प्राथमिक समझा जाता है।^{१७} वेद के मतानुसार पहला हेतु मरणा का है, मायिक समानों में जो कर्ण विवाह द्वारा सम्बन्ध नहीं होते थे, के प्रायः सब माने जाते थे और उनके साथ वैवाहिक सम्बन्ध करना बहुत कठिन होता था। इनके साथ ही, इस विधान में प्रत्येक छोटा बच्चा अपनी संख्या बढ़ाने का यत्न करता था, ताकि उसकी रक्षा अपनी-प्राप्ति हो सके। अपनी स्त्री का विवाह किसी दूसरे वर्ग में करने का अर्थ उन वर्ग की संख्या बढ़ाना तथा अपने वर्ग की संख्या कम करना था। विनाशिलान के कबीलों में जब तक बाड़ी बंजित पीढ़ियों से बाहर स्थायीतः निकटता सम्बन्धियों में होती है (१६०१ की विनाशिलान की रिपोर्ट, पृ० १२६)। एकात्म्य प्रेरक हेतु यह भी होता है कि मजदूरी की रिक्तियों करने वर्षों का युवा ब्रम्हदे से विवाह करके अपने सम्बन्ध की अधिक प्रगति करता है। यह भी सोचा जाता है कि सम्बन्ध परिवार में विवाह करने से कम्पा के साथ उत्तम वर्तमान होता।^{१८} सर्वथा अपरिचित काल में विवाह करने से उन युग वाले बच्चे के साथ वैवाहिक सम्बन्ध-

१६ यही—पृ० २१६

१७ भारत की १६१५ की जनगणना रिपोर्ट खण्ड १, भाग १, पृ० २६६-७

१८ अरबों में लघु मुस्लिम कानून में बाबा की लकड़ी के द्वारा अनुप्राप्तविवाह (Orthocousin marriage) किन कारणों से अवैधक माना जाता है, उनमें एक सम्पत्ति अधिक का सुचय होता है। क्योंकि इसमें पत्नी का सम्बन्ध पत्नी से जाता होता है। कम्पा यदि पति के घर में न रहे तो उसे अपने पिता तथा उसके माइनों से लहापता से काम में रखा जा सकता है। इससे बंधा बच्चा रहता है, सम्पत्ति परिवार से बाहर नहीं जाती और विवाह में कम खर्च होता है। (इंसा, रिडल, खंड ६, पृ० ११६) आनुवंशिक विवाह आस्ट्रेलिया, प्रजासत्तमसाम्राज्य, अमेरिका तथा एशिया के विविध भागों में प्रचलित है। इसके विस्तृत वर्णन के लिए डॉ. विल्टर मार्क—'वि हिस्टरी आफ़ इन्डियन मैरिज' खंड २, पृ० ६८-६९, प्रेयर-क्रॉफोर्ड इन बी ओल्ड ईस्टाब्लिश, खण्ड २, पृ० ६८ अनु.

होकर करने की बाध्य नहीं होते जीजा वहाँ निश्चय सम्बन्धी प्रायः दण्ड के साथ करते हैं। कई बार यह विचार भी होता है कि जिस व्यक्ति ने एक कुल के कर्माधी है, उसे उस कुल में अपनी श्रद्धाकाया अध्वय देनी चाहिए। इस दशा में यह श्रद्धा प्रायः माता के मरने को ही आयोग। जहाँ मातृवंशी परिवार पद्धति का प्रचलन होता है, वहाँ माता का श्रावण बड़ा महत्वपूर्ण होता है।^{१४} ऐसे परिवारों में सम्पत्ति का उत्तराधिकारी मरुतम न प्रोचर होता है, इसके साथ अपनी कन्या की मारी करने में यह लाभ है कि माता उन्नीस सम्पत्ति का उत्तराधिकारी बनेगा, माता को यह सम्मान होता कि सम्पत्ति उन्नीस गुण गुण बनकर आने वाले उत्तराधी को ही मिलेगी। यदि मरुतमों की संख्या कम हो गई थी तो अपने लड़के को लिए अपनी मरुतमों की मरुती प्रायः करण बहुत मुम्य होता। दक्षिण में मातृवंशी परिवार प्रचाली प्रचलित होने के कारण संभवतः आर्युक्त हेतुओं से आनुष्यविवाह की प्रथा का उद्भव।

पूर्वगत समय में विहित मरुतमों में आनुष्यविवाह कम हो रहे हैं, निम्न श्रद्धाधीनों में विवाह के आर्युक्त नियम को तोड़ कर मरुतमों की दक्षिण नाम के लिए श्रद्धाधीन-वर्ग से बाहर भी श्रद्धाधीन करते लगे हैं। कई बार ऐसे विवाहों में परिवारों में बड़ी दुःख और निराशा भी उत्पन्न होती है। उत्तर भारत के तथा अंग्रेजी शिक्षा के संलग्न में आने वाले दक्षिण भारतीय यह आनुष्यविवाहों, विशेषतः श्रद्धाधीनों के सम्बन्ध की दृष्टि समझते लगे हैं।^{१५} अन्तर्गत हिन्दू धर्म में लगे भारत के लिए एक व्यवस्था करने हुए ऐसे सम्बन्धों को समाप्त करने का सुझाव था, हिन्दू दक्षिण भारत के लोक विरोध के कारण यह स्वीकार नहीं हो सका।

१८ मई १९५५ के लागू हुए हिन्दू विवाह कानून की १९ वीं धारा में विवाह के रूप में प्रचलित सभी विवाहों को वैध स्वीकार कर लिया गया है। दक्षिण भारत में निम्न श्रद्धाधीनों में विवाह करने की परिपाटी इसकी बहस है कि इसका निम्न अधिष्ठ में लगे होगा असंभव प्रतीत होता है। इस विषय में संभवतः दक्षिण भारत उत्तर भारत के नियम स्वीकार नहीं करेगा और अपना विदालापन बनाये रखेगा।

नया कानून और संपिण्डता

१९५५ के हिन्दू विवाह कानून की तीसरी धारा में संपिण्डता की बड़ी मुद्राष्ट व्याख्या की गयी है, वी मरुतमों के सम्बन्धों की व्यवस्था की प्रवेष्टा अधिक संकुचित है। इस (धारा ३) के अनुसार संपिण्ड संबंध मातृपक्ष में माता के उत्तर की और तीन पीढ़ी

१४ मैरर में माता के मरुतम के लिए संबंध—वीविवाह—“मैरर एव संपिण्डता इन साइलोर” १० ५०-५१

१५ कर्ण—पृ. ५० १९५

तक होता है और विधवा से विवाह में ३५५४ की पांच बीड़ी तक। इसमें पीड़ितों की गणना सम्बन्ध व्यक्ति में ३५५४ की भीषण की मायगी और इसे पत्नी पीड़ी तक आगता। और पीड़ी और पांच बीड़ी तक का आशय यह है कि इन पीड़ितों को सम्मिलित करने हुए इस सम्बन्ध की गणना की जायगी।

उस कानून में साफ़ होवे में पढ़ने तक विवाहों की व्यवस्था के अनुसार विधवा स्मरण के सम्बन्ध सम्बन्धी विमल होवे में—

- (क) पूर्वार्थ में उक्त व्यक्ति के पिता, बाल, पत्नी आदि उक्त की और छः बीड़ी तक के व्यक्ति।
- (ख) उक्त व्यक्ति के पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र आदि छः बीड़ी तक के सम्बन्धी।
- (ग) माता, उसके पिता, दादा आदि पांच बीड़ी तक के सम्बन्धी।

यही हर्षिक वीरु में विचार है कि हिन्दू शास्त्रों के अनुसार यदि विधवा व्यक्तियों की गणना की जाय तो यह २००० के लगभग होगी, इन सब में परस्पर विवाह नहीं हो गणना। मूल में ऐसे विधवा बीड़ी वाले सम्बन्धियों की संख्या ३० के लगभग है। प्राचीन काल में ऐश्वर्य आदि कुछ शास्त्रकार विवाह में शर्मियों की संख्या बढ़ा कर छह पांचवी और तीसरी पीड़ी तक सम्बन्धित करने के पक्षपाती थे। नये हिन्दू कानून में सम्बन्ध: सभी का अनुसरण किया गया है।

निषिद्ध पीड़िया

नये कानून में निषिद्ध विवाह के विषय के अतिरिक्त निम्न प्रकार के सम्बन्धी शर्मियों बीड़ी के बताये गये हैं और इनमें विवाह निषिद्ध है—

- १. जबकि वंश में है एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति का वंशपरम्परा की दृष्टि में पूर्वज हो।
- २. जब उनमें से एक व्यक्ति दूसरे का ऊपर की या नीचे की पीड़ी में प्रति या पत्नी हो।
- ३. एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के भाई की स्त्री हो या भाजा-साक का माता की स्त्री हो।
- ४. जब दो व्यक्ति माया में भाई, बहिन, भाजा, भतीजी, बहीन या भतीजा हो, या भाई-बहिन की लकड़ा हो भाइयों या बहिनों की संतान हो। (धारा ३)

यह स्मरण रखना चाहिए कि इस कानून का उद्देश्य भारत के विधान के आधार पर होने वाले आतृष्य विवाहों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा, क्योंकि पाँचवीं धारा में हिन्दू विवाहों की पाँचवीं शर्त में कहा गया है कि पर-सब सम्बन्ध नहीं होने चाहिए, कहीं उभरे साथ यह भी विधान किया गया है कि दोनों पक्षों के बीच-विधान के अनुसार यदि सम्बन्ध सम्बन्धियों के बीच विवाह होना संभव हो तो ऐसा विवाह लौट नहीं होगा।

और प्रतिभोज विवाह होते थे। कायपुराण (५।३३, ४६ तथा ५७ अध्याय) से तो यही साफ कहा गया है कि कृत्यभूष में अर्वाधम की व्यवस्था ही नहीं थी। अब वर्ष व्यवस्था ही नहीं थी तो अपने ही वर्ष में विवाह का निश्चय उस समय कैसे प्रचलित हो सकता था? वैदिक एवं पौराणिक साहित्य में असंख्य विवाहों के अनेक उदाहरण मिलते हैं। कायपत्र शा० (४।१।५) में बताया गया है कि मृगुवर्गीय शास्त्रण व्यवहृत में तत्पुत्र के अन्तर्ग

विवाह है—(१) अथ आतिथी के समान आर्य जो अपनी अर्वाधमों बूझरी जातिघों में होता अथवा भूरी लभइते थे। (२) विजोता और वीर वर्ण भावों में यह जाइला स्वाभाविक थी कि वे विजित तथा काली जातिघों को हीन समझते हुए उनसे वैवाहिक और साम्रदाय के सम्बन्ध रखें। आति के लिए संस्कृत में पुराणा तथा वर्ण हैं, जो रंग का भी आशय है। जात्यन्तर की श्रेष्ठता जातिघों में इस प्रकार की व्यवस्था पायी जाती है। दक्षिण भारतीय के जोरर वही के मूलमाली कुल द्विज के जलोकी लोगों से युवा करते हैं। संयुक्त राज्य समरीका के २२ राज्यों में श्रीरो लोगों के साथ, चार राज्यों में देश द्विजधम जाति के साथ तथा चार राज्यों में भर्गोमिधमों के साथ श्रेष्ठता जातिघों के विवाह वर्जित हैं (हावहावस—मारकन इन इन्वीयूशन, पृ० १४२)। इसमें कोई तर्कही नहीं कि भारत में गौरवर्ण आर्यों के कृत्यवर्ण रिजघों के साथ विवाह होते थे (समिन्धम में सूत्र १।२५), किन्तु इसमें कोई संदेह नहीं कि इन रिजघों को तथा इनसे उत्पन्न पुर्कों को हीन वर्ण विवाह जाता था। (३) गेट के कथनानुसार हीन वर्ण और हीन रिपति की रिजघों के पालन सम्पत्तियों में जब समान वर्ण की रिजघों को सम्पत्तियों के साथ समानाधिकार के लिए होड़ की तो जातिभेद की प्रथा को बड़ा प्रोत्साहन मिला। (४) धार्मिक पवित्रता और कामपान में कुमाकुल के विचार से जातिभेद की पुष्टि मिली। भारत की अनेक अशिक्षित जातिघों में ऐसे विचार माने जाते हैं। उदाहरणार्थ, बंधाव की खरिया मानव पहोड़ी जाति के लोग अपने मरिदवार के सदस्यों के अतिरिक्त किसी व्यक्ति के साथ भ्रात नहीं होते। मुम्बई लोगों में यह प्रथा है कि कोई भूस्वामी बोधकाल के पश्चात् विदेश से लौटने पर उस समय तक अपने घर में प्रविष्ट नहीं हो सकता जब तक कि उसकी पत्नी बाहर भाकर उसके घरवा में छो के, क्योंकि ऐसा माना जाता है कि विदेश में किसी ऐसे सम्पर्क से उसका दूषित होता सम्भव है, जो उसे मुम्बई समाज की सभ्यता के लिए असौख्य बना है (गेट—इंसा. रिजो० ई०, खंड १, पृ० २३५)। अन्तर्ग जातिघों में प्रचलित ऐसी प्रथाओं के आधार पर कुछ विद्वानों ने यह कल्पना की है कि हिन्दू समाज में जातिभेद के प्रधान तत्त्वों—कुमाकुल और ऊँच-नीच के विचार को अन्तर्ग से प्रवृत्त किया (भारत की जनगणना की उपर्युक्त रिपोर्ट, पृ० ४६७)। इन विचारों के प्रसार

संविधान प्रस्ताव की लक्ष्मी भुक्त्या से घायी की। मुद्रदेवता (५।५०) ने ५०५।९।१७-१९ की धनु म्यामया की है कि इसके अनुसार राजा रघुवीरि दाम्य ने अपनी कन्या अर्चनतनय आशेय के पुत्र यदाशक्य का प्रदान की। ऐतरेय ब्राह्मण का लेखक अधिपति इतरा या गूरा का पुत्र था।^१ इतरा का पुत्र होने से यह ऐतरेय ब्राह्मण और इनके इनी नाम से उक्तका अनायास अन्य ऐतरेय ब्राह्मण प्रतिष्ठ हुआ। संविधान ब्राह्मण (१४।९।९) में एक सम्बन्धीय की भी बर्णित है कहा गया है। इसी ब्राह्मण में दीर्घतमा की पत्नी का नाम उमिज आया है। (१४।१।१७)। मुद्रदेवता के अनुसार (४।९।२५) दक्षिण गूरा की, इनके के गर्भ से अक्षीवान् आदि अदि उत्पन्न हुए।

वैदिक युग में विभिन्न वर्गों के उत्पन्न जन्तुओं को बुरा समझा जाता हो, हो जाना नहीं। यह ठीक है कि ऐ० ग० (१।०) में कवच देवता के बानी (गूरा) पुत्र होने

के प्राचीन वर्ग के लोगों में अपने को दूसरे वर्ग के व्यक्तियों से भुक्त रखने, अपना कल्याण एक भुक्त भुक्त से जानने की भावना उत्पन्न हुई, अपने सामाजिक संबंधों और विकास की अपने वर्ग तक सीमित रखकर उन्होंने उसे एक विशिष्ट जाति बना दिया है। (५) जाति भेद की उपर्युक्त प्रवृत्ति ने शरीर-शरीर विभिन्न व्यवस्था तथा कार्य करने वाले गृह, जलाशय, भवार आदि के वर्गों की विशिष्ट जाति का रूप प्रदान किया। जातिभेद के उपर्युक्त और विकास पर बहुत अधिक साहित्य प्रकाशित हुआ है। इसका सुधार तथा संश्लेष विवेचन निम्न पृष्ठों में है—इंसा. विद्या. ४:६७९-६८९, इंसा. रिप्ली ० ई० ६३; २३०-३६, इम्पेरियल गवर्नमेन्ट आफ इंडिया, ५० ९, ५० २५३; मा० बा० कान्—हिन्दूरी आफ लॉसफोल्ड, ५० ९, मा० १, ५० १६-१०४, पुराने—कास्ट प्रेस रेल इन इंडिया (१९३२); एम० के० रेल—ओरिएन्टल एन्ड प्रीम आफ कास्ट सिस्टम इन इंडिया (१९३१); फिन्—लोथम आर्गोनिसेसन इन गवर्न इंडिया इन मुद्रास दास (१९२०); जर्नल—कास्ट सिस्टम आफ लॉस इन इंडिया (१९१९); एम० बी० केलकर—हिन्दूरी आफ कास्ट इन इंडिया, २ जम्ब (१९०६-१०)। एम० एल केनार्थ की केंच पुस्तक का राक्षस लक्ष्मी अनुवाद (१९१६); लुक्क-कास्ट इन इंडिया; जातिभेद सम्बन्धी महत्वपूर्ण ग्रन्थों की मिलित सूची कर एसेसलेन मैनेस की एमोपाफी (१९१५) में ५० १७३-२११ में मिलेगी। हिन्दी में इसका विवेचन भित्तिमोहन सेन द्वारा 'भारत में जातिभेद' में है। हिन्दू समाज के आधुनिक जातिभेद का प्रतिपक्षण करने वाले ग्रन्थों का निर्देश आगे किया जायगा।

१ सायकल सभासती—ऐतरेयब्राह्मणम्, पृ० ११३

से उसे धन से बाहर धकेले जाने का वर्णन है।^४ किन्तु यह बात उसके भिन्न ऋ० १०।१०-४ का श्रुति होने में बाधक नहीं हुई। लादपायन तथा द्राह्मण श्रोतसूत्रों से यह ज्ञान होता है कि अग्राह्य भी की संज्ञाति ब्राह्मण होती थी। कथन की तरह उन्हें स्त्री से अवेष्टा नहीं आता था, अर्थात् उन्हें वस्त्र कपड़ों का पूरा अधिकार था।

सादपायन श्रुति सूत्र (१।२।५-७) में सोमपायन से पूर्व ब्रह्म पुरोहितों द्वारा जपनी विधुपरम्परा की इस और मातृपरम्परा की रक्ष पीढ़ियों के नाम देने का वर्णन है। यदि मातृपरम्परा में निरति अग्राह्य भी का नाम का नाम तो उसे क्रांतिकर ब्राह्मण-कन्याओं के नाम से इस की संख्या पूरी करनी बाह्य और अति नाम यज्ञ न ही तो नहीं से माय हो उठेगा या पल्ल करे। आपस्तम्ब श्रुति सूत्र (१।१।६), आपस्तम्ब मन्त्र-पाठ (२।१।६।१), श्रिष्ट्य केनियुक्तसूत्र (२।१०।३), शांखायन गृह्यसूत्र (३।१२) तथा मनु (६।२०) में यज्ञ के समय माता में अपवित्रता का दोष होने पर उसे तुरन्त करने के लिए मन्त्रपाठ का विधान है। इससे यह स्पष्ट है कि माता का दोष ब्राह्मण के लिए घुरा नहीं समझा जाता था। काठक संहिता से यहाँ तक कहती है कि ब्राह्मण के माता-पिता की बात पूछना ठीक नहीं है। महाभारत (१३।२२।५) ने इसका अनुमोदन करते हुए वैवस्वत में ब्राह्मण की पण्डिता निबिड टट्टायी है।

अनुलोम विवाहों के प्राचीन उदाहरण

ब्राह्मण-परीक्षा ■ निवेष्ट से होने स्तमावतः पुत्राणां में वर्णित इन प्रसिद्ध श्रुतियों

- ४ ऐ० ऋ० २।२, इसुष नामक शूद्रा बाली का पुत्र जब यैलुष सरस्वती के तीरे पर सोमयाग में वीक्षित हुआ। अन्य श्रुतियों ने उसे देखकर कहा कि यह अग्राह्य बालीपुत्र हमारे बीच सोमयाग में कैसे वीक्षित हुआ? यह कहकर उन्होंने यैलुष को सरस्वती से दूर कमलोन घाटी में धकेल दिया। यैलुष ने वहाँ 'अवेष्टा ब्राह्मण' (ऋ० १०।१०) के सूत्र का साफल्यकार किया और सरस्वती के तट के वास्तु भावी, ऋ० श्रुतियों ने उसे ब्राह्मण माना। शांखायन ब्राह्मण १२।३ में भी ऐसी कथा है। यहाँ वाक्यः पुत्र' गामो भी हो सकते हैं या यह सूचित करता है कि ब्राह्मण का बच्चा होने पर भी उसकी माता अमार्ग थी। उक्त धर्म वाले भावी तथा शूद्रों के बीच सम्बन्ध की लक्ष्य कामसनीय संहिता २३।३० तथा मै० सं० ७।७।१६।३ से भी सूचित होती है। इसमें कहा गया है कि जब शूद्र स्त्री का प्रेमी धर्म होता है तो वह अपने संबंधियों को समृद्धि के निरुद्ध नहीं चाहती। शत० ब्रा० (१३।२।६।५) ने इस वचन को उद्धृत करते हुए कहा कि इसलिए वह वैश्य स्त्री के पुत्र का दासा की तरह अभिषेक नहीं करता। इससे यह सूचित होता है कि दासा वैश्य की कन्या से विवाह कर सकता था, किन्तु उसका पुत्र दासपट्टी का अधिकारी नहीं होता था।

बनपर्व में भीमसेन को पकड़ने वाले सर्प से संसार भरते हुए युधिष्ठिर गृणकमनुसार की बर्णमयवस्त्रा के उभयोन में युक्ति देने हुए कहते हैं—हे महात्मा ! धनुषों में जाति की शरीला हांवा महा कठिन है, क्योंकि उनमें बर्ण संकर है। मय (बर्णों को) प्लास्ति कृत (बर्णों की) स्थिरता से पुन उत्पन्न करते हैं (३।१।४४।३१, ३२)। युधिष्ठिर को इस स्पष्ट उक्ति की प्रुष्टि अनुशासन पर्व के ४८ में अभ्यास में विनामे भीष्टियों वर्णसंकरों से होती है^४।

शूद्रा स्त्रियों के साथ विवाह का निषेध

प्राचीन हिन्दू समाज में सबसे पहले शूद्रा के साथ विवाह का निषेध किया गया। उस समय राम धर्मसेर जातिवादी ब्रूम कहलाती थी। इनके राजा धर्मों के सम्बन्ध होते थे। कहा जाता है कि भूक में अर्य अपने साथ स्त्रियाँ कम लाये थे, वे शूद्रा स्त्रियों को ग्रहण कर लेते थे किन्तु, बाद में जब वे यहाँ बस गये तो उनमें वर्ण (रंग) प्रेम प्रचलित हुआ, और वे विभिन्न की इच्छावर्णा स्त्रियाँ लेना नापसंद करने लगे। यथिष्ठादि ऋषियों ने शूद्राओं के साथ विवाह किये, और शूद्राओं ने यह विस्वास जैसे ऋषिपुत्रों को जन्म दिया। ऐसा जान पड़ता है कि आर्यों के लिए कृष्णवर्णा शूद्रा स्त्रियों का आकर्षक बहुत प्रबल था। बाद में जातीय शूद्रता को विचार से धर्मशास्त्रकारों को वे विवाह संभवतः मनुष्य के अंतर्गत हुए भ्रंश, अतः उन्हें इनका विरोध किया। विरोध की वे मजबूतारी थी। पहली तब यह कि शूद्रा स्त्रियों को प्रायश्चित्त अधिवारों से वञ्चित कर दिया जाय और दूसरी यह कि शूद्रा के अभिगमन को धर्मकर दण्डनीय अपराध बना दिया जाय।

वसिष्ठ धर्मसूत्र कहता है कि अनित्यसंस्कारपूर्वक कृष्णवर्णा स्त्री को न ग्रहण करे, क्योंकि वह हमण के लिए ही होती है, धर्म के लिए नहीं।^५ वसिष्ठ का यह बात

^४ वर्णसंकरता के प्राचीन और मर्यादीय उदाहरणों के लिए बेजिंद धिति मोहन सेन—भारतवर्ष में जातिमेध, पृ० १७०-१७३। मध्यवीन भारत (१७।४०) में कहा गया है “अन्यत दोषों के कारण कोई जाति निर्दोष नहीं है”, इस पर नेबय के श्रीकाकार ने कुछ मनोरंजक प्राचीन उद्धृत किये हैं; अपने विरोधकारों के साथ ही एक पंक्ति में बोलन नहीं करता चाहिये, क्योंकि जीव जानता है कि कितने जीवन का पाव किया है (अप्येकपस्रया लातौमिपत् संगतो स्वजनैरपि। को हि आजाति कि प्रकल्पं धातकं भवेत्)। एक दूसरे उद्धरण के अनुसार कामतुल्या पुनरि होने के कारण तथा कुल स्त्री के आधीन होने से जातिमेध सर्वथा निरपेक्ष है (अवावाविह संभरे दुवारे मकरभवे। कुले च कामिनीभूते का जातिपरि-कल्पना)।

^५ वसिष्ठ पृ० १८।१७-१८, ‘वर्तानं विवा रमभाभुयैवम्। इत्यवर्णा वा रमा रमभायैव न व्रतमिति’। विश्व १२।२।१३ से इस विषय पर बहुत मनोरंजक

इसविषय कहने की ज़रूरत पड़ी कि पुरातन समय में अक्षयर्षा स्त्रियाँ पति के घरों में काम करती थीं। सामान्यतः प्रश्न में अग्निमन्यन का कार्य सचयर्षा स्त्री द्वारा होता था। किन्तु उसके अभाव में काश्यपायन स्मृति (८।६) अक्षयर्षा स्त्री को भी यह कार्य करने का अधिकार देती है। यद्यपि काश्यपायन ने इस कार्य को शूद्रा पत्नी द्वारा करने का निषेध दिया है, किन्तु बसिष्ठ के कहने के र्वम अंगन 'अर्वाय' नाम की पुत्रप्राप्ति में अक्षयर्षा स्त्रियों को भी काम करने की छूट अवश्य प्राप्त था। पा० १।१०।१० (१।१४), जी० १।१०।१० (१।१४), किन्तु धर्मशूत्र (१।१।१४), धर्मशूत्र (१।१।१४) से ज्ञात होता है कि कुछ लोगों की साम्यता में शूद्रा स्त्री का अक्षयर्षा का अधिकार था, किन्तु उसमें भिन्न धार्मिक सम्प्रदाय की कोई आवश्यकता नहीं थी। धर्मशास्त्रों के ये अर्थ इस बात का अर्थ है कि अक्षयर्षा स्त्री को भी काम करने की छूट अवश्य प्राप्त थी। अक्षयर्षा स्त्री के साथ विवाह का रिवाज था, किन्तु ये धर्मशूत्रों के अर्थ में नहीं, बल्कि धर्मशूत्रों के अर्थ में नहीं।

धर्मशूत्रों की विधान होकर इस प्रथा का उल्लेख करना पड़ा था। धर्मशूत्र में उनकी साम्यता इसके विरुद्ध थी। बसिष्ठ धर्मशूत्र (१।१४) स्पष्ट शब्दों में कहता है कि ऐसा विवाह निषिद्ध है। कुल की अक्षयर्षा की ओर से जाना जाता है और अक्षयर्षा ऐसे विवाह से नरक विधेय। अतः ने शूद्रा के साथ विवाह की ओर दिया नहीं है।^१

प्रकाश पड़ता है। संस्कृत में राम काके को कहते हैं, ऐसा प्रतीत होता है कि इस शब्द का अर्थ अर्थ राम कहना था। अर्थ शूद्रा स्त्रियों के साथ राम ही करते थे, धर्मशूत्रों में, अतः इन स्त्रियों को रामा कहा जाता था। ये शूद्रा स्त्रियाँ कामी होती थीं, अतः रामा का अर्थ काम्यवर्णा स्त्री द्वारा और राम में राम काके को कहने लगे।

१. मनु ३।१४-१६। पराशर स्मृति (१।१।१३) के अनुसार धर्म में शूद्रा स्त्री रखने वाला वीर्य नरकस्थायी होता है। संक्षिप्त (१।१४, १६) धर्मशास्त्र में भी शूद्रा स्त्री के साथ विवाह का निषेध करती है, क्योंकि उससे उत्पन्न पुत्र पिच्छवान नहीं कर सकता। ब्रह्मसंहिता १।१।१४-१६ में मनु (३।१४) की भाँति शूद्रा से विवाह की ओर निषेध की गयी है। किन्तु (अ० २६) में शूद्रा के साथ विवाह को निषेध करते हुए मनु के ३।१४ तथा ३।१६ की ओर दिया है, उससे धर्मशूत्र का निषेध करते हुए उसे काम्यवर्णा के पुत्र का ही हेतु बताया है। ब्रह्मसंहिता में अक्षयर्षा का उल्लेख करते हुए मनु के ३।१४ तथा ३।१६ की ओर दिया है, उससे धर्मशूत्र का निषेध करते हुए उसे काम्यवर्णा के पुत्र का ही हेतु बताया है। ब्रह्मसंहिता में अक्षयर्षा का उल्लेख करते हुए मनु के ३।१४ तथा ३।१६ की ओर दिया है, उससे धर्मशूत्र का निषेध करते हुए उसे काम्यवर्णा के पुत्र का ही हेतु बताया है। ब्रह्मसंहिता में अक्षयर्षा का उल्लेख करते हुए मनु के ३।१४ तथा ३।१६ की ओर दिया है, उससे धर्मशूत्र का निषेध करते हुए उसे काम्यवर्णा के पुत्र का ही हेतु बताया है।

बाह्य के लुह से उत्पन्न पुत्र की यह परचय कहता है (१।६५-६२) और दात बान में इसका भी हित रक्खा है। (२।१२।५१)।

धर्मसूत्रों और स्मृतिर्यों में पुरी द्वारा अनुष्ठात तथा अन्य वर्णों की स्त्रियों के साथ अभिगमन के विषय बताने से बहुत कुछ यह सूचित करते हैं कि वास्तविकों को से सम्बन्ध विधान अकारणिक थे। आश्वलायन धर्मसूत्र (२।२७।-६) ब्रह्म का अभिगमन करने वाले आर्य को दण्ड से निर्धारित करने वाला सम्बन्ध है और यदि ब्रह्म आर्य का अभिगमन करेगा तो उसे दण्डित्य प्राप्त होगा। अतिष्ठ ४० सू० (२।१।१) ब्रह्म के दाहणी का साथ रखने से ब्रह्म पर ब्रह्म का जन्म होता है और दाहणी की उपासना से पुत्रप्राप्ति प्राप्त होगी। भीष्म पर उसे यह पर ब्रह्म का जन्म होगा। धर्मसूत्रों में धर्म के (१।२।२) ब्रह्म द्वारा दाहणी का अभिगमन करने पर ब्रह्म की निर्वाण का तथा शर्मन की जन्म का ब्रह्म का जन्म है, मनु ब्रह्म द्वारा उपासना से उचित दाहणी के जन्म में निर्वाण की तथा धर्मसूत्र से ब्रह्म के प्राण तथा धर्म के से ब्रह्म की उत्पत्ति करना है (२।३।३४)। धर्मसूत्र (२।२।६४) किसी दिन के ब्रह्म की उपासना से ब्रह्म का जन्म होगा। धर्म सूर्य के निकलने का भी धर्म ब्रह्म धर्मसूत्रों में भी उपासना का विधान करता है।

सर्व विवाह की प्रशंसा

इन सर्व विवाहों का उद्देश्य ब्रह्म के जन्मों के साथ ब्रह्मों के विवाहों की प्रशंसा की रचना करीक होता है। धर्म में आदिम के विचार ब्रह्म के साथ-साथ अपने वर्णों में विवाहों के अन्तर्गत ब्रह्म के साथ और धर्मों में भी धर्मों में विवाह करने पर धर्म दिया जाने लगा। यद्यपि आश्वलायन और आश्वलायन गृह्यसूत्रों में इस विधान का उल्लेख नहीं है, किन्तु धर्म गृह्यसूत्र (१।७५) तथा गीता (४।१) इस विधान का वर्णन करते हैं।^{११} गीता सर्व विवाहों का वर्णन करता हुआ अधर्मा विवाह को ही नहीं बताता, किन्तु धर्मसूत्र (२।१।१-२) धर्मसूत्र विवाहों में भी धर्मसूत्र है। मनु (२।१२) और मनु (स्त्रीसूत्र ४) अपने वर्णों की स्त्री के साथ विवाह

^{११} अतिष्ठ ४० सू० २।१।१। धर्मसूत्र (२।२।१०) का यह विधान कुछ सीमा है, वह ऐसी स्त्री को जो धर्म उपासना करने का विधान करता है (धर्म धर्म करतव्य)।

^{१२} गीता ४।१, 'गृह्यः भूमी भवति विवेकानन्दसूत्र' यही सत्य है। धर्म—धर्म का जन्म व सत्यम्। किन्तु गीता के ४।१४-१७ में अनुष्ठात प्रतिष्ठान विधानों से उचित अन्तर्गत विवाहों के वर्णन है, इससे स्पष्ट है कि धर्म धर्म सर्व विवाहों के विधान का धर्म पुरी तरह नहीं होता था।

को सौष्ठव समझते हैं। इसे विवाह का पूर्वकाम्य कहा जाता है, इसके साथ ही एक दूसरा हीन कोटि का विकास (अनुकम्प) यह है कि बाह्यम अग्नि, वैष्णव तथा सूर्य सभी को, अग्नि अग्नि, वैष्णव, सूर्य सभी को, वैष्णव वैष्णव और सूर्य सभी को और सूर्य सौष्ठव सूर्य सभी को स्वीकृति विवाह कर सकता है (पृष्ठ १००-१०० ११४, बीजा ११५१, अग्नि ११५१-२६ अनु ३।११, विष्णु १५।१-४ भाग ११५६)। दूसरा विकास सामाजिक को अग्निष्ठ भली भा, इसमें भूमा के साथ विवाह की उत्पत्ति और निम्न को है। तिसरा हमें कोई सम्बन्ध नहीं कि सभी इसमें समाजिक तत्त्वों के विवाह समर्थ समाज में समाजिक न रहे। अधिष्ठित में तथा सामाजिक साहित्य में इनके अनेक उदाहरण मिलते हैं। इनके बीच से पूर्व यहाँ सबसे विवाह के उत्पत्तिक कारणों पर विचार किया जायगा।

सर्वीय विवाहों का मूल कारण

सर्वीय विवाह के नियम का मूल कारण जातिवृद्धि की निम्न थी।^{११} जब कोई जाति अपने को विशिष्ट समझती है, उस समय वह दूसरी जातियों के अपने वैवाहिक

- ११) ऐतिहासिक के दृष्टि इतिहासों में यह नियम था कि यदि इस जाति की कोई स्त्री किसी अन्य जाति के साथ से विवाह या व्याभिचार करती थी तो वह मार दी जाती थी। अन्य अमेरिका के स्पेनशासियों को, डोमिंगो के डेन लोगों को, मारोता में और एथियस (Aethiops) नामक द्वीप में लोगों को यहाँ के मूल निवासियों से वैवाहिक सम्बन्ध करने के लिए कानून द्वारा रोका गया, ताकि जातीय शुद्धता बनी रहे। रोमन सम्राट लोगों से जारी जारी कर सकते थे (बै. शा. हि. १० पृ. ५१-५४)। जर्मनी में हितलर ने जर्मन जातियों के रंग की पवित्रता बनाये रखने के लिए इन महिलाओं से जातियों के विवाह-सम्बन्ध राजाशा द्वारा बन्द करा दिया है। जर्मनी में इस विषय का कानून प्राचीन काल से ही बहुत कठोर रहा है। जर्मनी के नियम के अनुसार कोई स्वतन्त्र कन्या किसी तीस या चार लोगों के व्यक्ति के साथ जारी नहीं कर सकती थी, ऐसा विचार होने पर लोगों को कत्त कर दिया जाता था। राज्य लोगों में स्वतन्त्र कन्या के गुलाम नीकर से जारी करने पर लोगों की सामाजिक-कानून से भीड़े मार मारकर आज में किया जाता बिना जाता था (यूनाइटेड स्टेट्स ऑफ अमेरिका का कानून अग्रे की एंथ्रो-पैथोलॉजी, पृ. ५५-५६)। ताहिटी में यदि उच्च कुल की स्त्री किसी हीन जाति के व्यक्ति को अपना पति बन करती थी तो उस व्यक्ति से उच्च जाति मार दिये जाते थे।

सर हेनरी मेड ने लिखा है कि फ्रांस में पहले नोबेलस (Noblesse) वर्ग के तथा गरीबों को व्यापारी बुद्धिमान वर्ग के व्यक्तियों के बीच में विवाह होता

अन्धकार तोड़ लेती है, क्योंकि उनके साथ सम्बन्ध रहने से उनके अपनी समझ में गड़बड़ होने का सम्भव होगा है। भारत में वह भावना जिस जाति में पहले पैदा हुई, बाहुओं में गा लक्ष्मियों में, यह सब विचार का विषय है। संस्कृत शक्ति में यह भावने में बहुत बरी। उन्होंने पास राजनीति का जाल, प्रभुता और सांसारिक सम्पत्ति थी, उन्हें उन्मत्त जल का अभियोग था। आकाशों को उन्मत्तता प्रत्यक्षता में थी, उन्हें उस शक्ति का अधिकार था। निम्न जनता आदि शक्ति प्रत्यक्षता आने में बने भी थे। बौद्ध साहित्य एक महान् साधन है जो हमें बताता है कि अपनी शक्ति को उन्मत्त मनमाने का साथ करने शक्तियों में आया था और आकाशों ने उनमें एक भाव प्रकट किया।

अन्धकार गुप्त (दीर्घनिवास १११) में कुछ ने पहले तो साधनी की भेद्यता बनाते हुए यह कहा है कि शक्ति विचारों के रूप में उन्होंने अपनी शक्ति के साथ संवाद किया और बाद में अन्धकार द्वारा शक्तियों की उन्मत्तता निम्न रंग से स्वीकार करायी—
 "अन्धकार, यदि एक शक्ति कुम्हार ब्राह्मण कल्याण के साथ संवाद करे, उनके लक्ष्य में कुछ उन्मत्त होंगे। क्या वह कुछ ब्राह्मणों में आगम और शक्ति पायेगा।" "पायेगा है शीतल।"
 "क्या ब्राह्मण बहुत ही है उन्मत्त शक्तियों में? "शक्तियों में ही शीतल।" "क्योंकि स्त्री पात्र में बकावट होगी।" "क्योंकि नहीं होगी है शीतल।" "क्या शक्ति उन्मत्त शक्तियों में करीब है?" "नहीं है शीतल, क्योंकि यह पात्र की भीड़ बहुत है।"

"न। अन्धकार। यदि ब्राह्मण कुम्हार शक्ति कल्याण के साथ संवाद करे, उनके लक्ष्य में कुछ उन्मत्त होंगे। क्या वह ब्राह्मणों में आगम पायी पायेगा?" "पायेगा है शीतल।"
 "क्या ब्राह्मण शक्ति... " "य उन्मत्त शक्तियों में।" "शक्तियों में ही शीतल", "क्या उन्मत्त ब्राह्मण स्त्री पात्र में बकावट होगी।" "क्योंकि नहीं होगी है शीतल।" "क्या शक्ति

विचारों का यह से अन्धकार का प्रकट की (१० सा० हि० १०, पृ० ६१-६२)। उपर्युक्त उदाहरणों में अपनी शक्ति में या दर्शकों के विचार करने के निम्न कारण प्रकट होते हैं—(१) बौद्ध बुद्धि की शक्ति, (२) जातीय अभिमान, (३) पारंपरिक तथा उन्मत्तता की भावना, (४) आकाश शक्तियों अपने स्वयं दूसरों को देखकर अपनी शक्ति की संख्या पर संतुष्टि के कमी नहीं करता चाहती। दूसरे से शैली-विचारों की कम्पार्सों को अपने पिता की शक्ति में इतनी विचार करने की आता थी थी कि उत्तराधिकार में प्राप्त होने वाली सम्पत्ति उसके पिता के ही परिवार में रहे। मोरखी में दीक के बंधों में अपने गांव के सम्पत्ति से बाहर भागो करने बसती शक्तियों को बाद में अधिकार नहीं दिया जाता, दूसरे शक्तियों में अलग रहने, उनके गुना करने, उनके शैली-विचारों तथा भावा के लिए से प्राप्त अन्धकारों के विचारों को साधक के किया जाता है और उनका निषेध किया जाता है (१० सा० हि० १०, पृ० ६०)।

उसका अभियोग करने। "भरी है बीतन।" "तो फिर हेतु से।" "गोमय, वह पिता मे सम्पन्न है।"

"इस प्रकार वे सम्बन्ध, स्त्री की ओर से थी, गुप्त की ओर से भी सक्रिय होकर है।" गोमय के इस कथन पर आकर यह है कि अक्षिप्त ब्राह्मणों को नहीं बहुत प्यारे, जो अक्षिप्त ब्राह्मणों की वृत्ति करने हैं, उनके लिए अक्षिप्त जानि में कोई स्थान नहीं रहता। ब्राह्मण ऐसे अक्षिप्त लोगों को जाने में वे सिल हैं, जब से हीन है। अक्षिप्तों में स्त्री और गुप्त दोनों ही कुछ होने में सक्रिय होकर है। कुछ से अनेक स्थलों पर ब्राह्मणों की दायिग, निम्ना की है कि वे अक्षिप्त विवाह के नियम का मानन न करने हुए अक्षिप्त बर्णों की विद्या ग्रहण करने हैं। मुनक गुप्त (अ० वि० ५:४:४१) में ब्राह्मणों के ज्ञान का वर्णन करने हुए, कुछ से इनमें मुनकों जैसे पाँच गुण धर्म बताये हैं। उनमें पहला गुण धर्म यह है—“मिथुनी, गहने ब्राह्मण ब्राह्मणों के पास जाने से, अक्षिप्तों के पास नहीं। मिथुनी, इस समय ब्राह्मण ब्राह्मणों के पास जाते हैं और अक्षिप्तों के पास भी।” डोम गुप्त (अ० वि० ५:४:४२) में ब्राह्मणों के अक्षिप्त होने के प्रकार का वर्णन करते हुए वे कहते हैं—“वह ब्राह्मणों के पास भी जाते हैं अक्षिप्तों तथा अक्षिप्तों के पास भी, गुप्त के पास भी, अक्षिप्तों, अक्षिप्तों और अक्षिप्तों के पास भी।” ये ब्राह्मण इस समय ब्राह्मणों द्वारा निम्न बर्णों की विद्या ग्रहण करने के विचार पर प्रभावित होते हैं। सम्बन्ध गुप्त के साथ यदि हमें विचार करके देखा जाय तो यह स्पष्ट है कि अक्षिप्तों में अक्षिप्त विवाह का नियम नहीं जाता और वे अपने ही हस्तिगत अक्षिप्त होकर सम्बन्ध से। जीन प्रश्नों में कहा गया है कि जब अक्षिप्त ब्राह्मणों में अक्षिप्तों के विचार किया तो वे यह सोचने लगे कि किन्तु जानि में अक्षिप्त न। अक्षिप्त जानि की ओर सम्बन्ध करने लगे जानि में जानि ग्रहण किया।

यह कहा जा सकता है कि बीतों और जीनों के ब्राह्मण विद्याहीन होने से इन प्रजातियों की कोई महत्ता नहीं है, किन्तु ब्राह्मणों के अक्षिप्त का मान करने वाले महाभारत में भी हमें अक्षिप्तों की अक्षिप्त अक्षिप्त व अक्षिप्तपूर्ण शुद्धि की प्रत्यक्ष दृष्टिगत होती है। यह स्मरण रखना चाहिए कि महाभारत में ब्राह्मणों को कायस्थान करने के बहुत कम गिनते गये हैं। इस दृष्टि अक्षिप्त विस्तार से देखेंगे। इन फलों और माहा-स्त्रों के होते हुए भी बहुत बार अक्षिप्त राजा ब्राह्मणों को अपनी कन्या देने से इनकार करते हैं या उसको भिन्न कोई कड़ी शर्त लगाते हैं। यह बात अक्षिप्तों की है कि राजाओं को ब्राह्मणों की दृष्टि पूरी न करने पर, उनके साथ का पूरा सम्बन्ध होता था, परन्तु फिर भी कुछ राजा अक्षिप्तों के कारण अक्षिप्त करने का साहस करते थे। अ० भा० (१६:२) में एक प्राचीन अक्षिप्त राजा दुर्वाधन का वर्णन है। उसकी सुवर्धन नाम की एक कन्या समुद्रपुत्र सुन्दरी थी। अक्षिप्त ब्राह्मण का वेक धारण कर दुर्वाधन के पास आया और उस कन्या की धारणा करने लगा। राजा ने सोचा कि यह ब्राह्मण सखि

अंग प्रसन्न है, इसलिए हमने इसे स्वीकार किया (१३/२/२२)। म० मा० १३/४ में राजा गांधी की कथा है। व्यवस्था का पुत्र शहीद कायें राजा राज की कथा मध्यमों के साथ पालनपालन करना चाहता था। राजा राज ने उन्हें दखि समझकर पहले उनके साथ अपनी कथा का निहाल करने से इनकार किया। इस प्रकार के बाद भी वह शहीद ने १८ दिन भी राजा ने एक जो के व्यवस्था कायें राजा ने १००० बाँटें देने पर ही राजा की कथा के स्वीकार किया। राजा का विचार था कि शहीद नष्ट करने की न कर सकते। शहीद को व्यवस्था की कथा से १००० में बाँटें प्राप्त हुए। वह अपने से बाँटें गांधी के साथ व्यवस्था की कथा से राजा यह देखकर राजा यह राजा और राज के साथ अपने अपनी कथा कायें करने शहीद को ही (म० मा० १३/४/३६)।

जानि मुद्रि के विचार की प्रवृत्ति के साथ अपने विचार का नियम पुष्ट होने मना। हम देख चुके हैं कि मनु (३/१२), म० म० (१/४), गोवाधन म० म० (१/२/२), वि० म० म० (२/४/१/६), म० म० म० (१/२/६) गांधी की कार, गांधी की तीन, वरु की दो और मुद्रि की एक स्त्री मान्य है। इससे यह स्पष्ट है कि प्रतिमोम विचार उन्हें स्पष्ट नहीं था और वह उन समय प्रवृत्ति न था। इसका अर्थ यह हुआ कि मनुष्यों के काम (६०० ई० से ३०० ई० पू०) वह प्रतिमोम विचार चले ही चुके थे, किन्तु अनुमान विचारों के चले न होने का कारण स्पष्ट है, प्रत्येक व्यक्ति अपनी अपनी को व्यवस्था या समाज के नियमों से बना चाहता है, नियम कुल में नहीं। मनुष्य अपनी इच्छा से भी व्यवस्था में जाता चाहती। भारत में ही नहीं, पाश्चात्य देशों में भी इसे बुरा माना जाता है।^{१४} प्रतिमोम विचार चले जाने के बाद विद्वत्प्राची (Puritan) धर्मशास्त्रों ने अनुमान विचारों का भी विरोध किया।

मनु ने गांधी में समाज की प्रतिमोम की मुद्रि में रखे हुए अनुमान विचारों की अनुमान की है (३/१२), पर इच्छापूर्वक नहीं। वह कहता है— "हिमों के प्रति विचार में मनुष्यों की व्यवस्था होती है। किन्तु काम-नाशका से प्रभु होकर यदि कोई दूसरा विचार करना चाहें तो निम्न वर्गों की व्यवस्था भी व्यवस्था होती है।" मनु के अतिरिक्त दूसरे शास्त्रों में भी इस बात पर बल दिया गया है कि मनुष्य की व्यवस्था होती चाहिये। मार्क० पुष्प (१/१३)^{१५} में कहा गया है कि मनुष्य की व्यवस्था ही

^{१४} भक्तानन्द—भुवनेश्वर, पृ० २२३।

^{१५} मार्क० पुष्प के म० १/१३ में विद्वत्प्राची की कथा है, वह एक दुष्ट के साथ कथा की देखकर उस पर मुग्न हो गया, उसने उसके पिता से यह कथा देने की प्रार्थना की। कथा के पिता ने गांधी को इस कार्य के लिए अपने पिता से अनुमान गांधी को कहा। वह राजा ने गांधी से इस विचार में प्रभु ही उत्तर दिया कि राज-

म. वा. ग. वे. । कात्यायनस्मृति (वा६), व्यास स्मृ० {२।११-२२}, बिष्णु स्मृति (२६। १-३) ने सबर्णों का प्रवास एवं प्रतिष्ठित पर विद्या है।

स्मृतियों में मन्वन्तरी और अश्वत्थी पत्नियों में एक अन्य सेव की प्रकाशित किया गया। ब्राह्मण गुरुजी क्षत्रियाँ मन्वी से गुरु के समान पूज्य थी, किन्तु अश्वत्थीयों का सम्मान प्रत्यक्ष और अभिवादन से किया जाता था (मनु २।२१०)। विष्णु स्मृति में उन्हें अर्द्धव्य भ्रातृ वर्गित हुए कहा है कि हीन वर्गीयों या गुरु पत्नियों को दूर से अभिवादन करना चाहिए, अश्वत्थीयों आदि से नहीं (६२।५)। ब्रह्मा स्मृति का भी मन्वी भद्र है (३।२०)।

सम्राज्य की स्त्रियों के पुरुषों के साथ साथ में अस्थाय

मन्त्रार्थ स्त्री प्रशस्ति है। यह कहकर ही वास्तविकार सम्पुष्ट नहीं हुए। मनुष्योने
मन्त्रार्थ सिद्धि में उत्पन्न सत्ताओं के नाम समग्रणी अधिकांश नाम करने भूल भेजता
है। मूर्तार्थ प्रधान किया।^{१३} अज्ञानार्थ सिद्धि में जो मिलने मिलने हर्ष करी भी, उसे
सम्पूर्ण से धनना का हिप्ता दिया गया। गौतम (२६३३) बाहुग्न के गुहा से उत्पन्न
यूज का दक्षणीय नोट होने पर ही कृतिमान देते की व्यक्तिया करता है।^{१४} बसिष्ठ
(१७८५-९०) अमल उल्लेख ही नहीं करता। यमु कुल उवाच होकर उसे मिता
द्राग विदे धन का अधिकारी मानता है (६१५५ मि० पृ० ५११४५५६-२०) ।
महामन्त्र रचना काहित्य विः मुष्णनि (२५३२) गुहा के पुत्र को हिप्ता नहीं देता,
ब किन्तु गुहा के माता ही उपेक्षा का महामन्त्र है, अविष्ट अन्य मन्त्रार्थ सिद्धि के

देती सम्पत्ति नहीं थी। मनु ने २१२-२४ में यह कहा है कि स्त्री की पुत्र प्राप्ति पुरुष के साथ मिलती है, बंश पुत्रप्राप्ति ही होती है, मित्रव्ययौगि ने उरध्व होने वाली सम्प्रदाय और शारङ्ग ने वक्षिष्क और मन्दपाक के साथ परिनिर्मित होने पर पुत्र एवं सम्मान प्राप्त किया।

विच ५० ता० ११४७२९-४५, युनिफिड को यह संका है कि जिस कम से लुप्त होने पर भी जाहूजी क्यों खेड है तथा अधिका मोर बंधा क्यों होत है। उनके गुणों में बिनाम बिनाम क्यों करते हैं? प्रोत्त कहते हैं कि जाहूजी खेड (गरीवली) भाषा है, मत: उसे ये विशेष अधिकार प्राप्त हैं।

गी० ३६।३७, मनु ६।१५५। किन्तु इसके साम ही भगु मे यह भी कहा है—
सम्य वर्ण की महिलाओं की सहायता हो या न हो शूद्रा के पुत्र को वस्त्रों हिस्से से
अधिक नहीं मिलना चाहिए। मि० पद्म ६।१५३—

अहोरात्रं जगत्कालं सद्यो नानुसूयते ।

वैष्णवादिनां हरेषु हर्षसम्पन्नं शम्भुश्रीं हरेत् ॥

पुत्रों के साथ भी यही दत्तत्व किया गया है। पिता की सम्पत्ति में उत्तम गौ, बैल, शायरी या ओ कुछ उत्तम वस्तु होगी वह दत्तत्व के पुत्र को ही मिलेगी। म० भा० (११।४।७।११), मनु (६।१५०) के अनुसार जेठ सम्पत्ति को दस भागों में बांट दिया जाता था। इसमें से ४ हिस्से ब्राह्मणों के पुत्र को, १ हिस्से क्षत्रिय की संभार को, २ भाग वैश्य को तथा एक भाग शूद्र के लड़के को मिलता था (मनु ६।१५३, विष्णु १८।१-३३ श्रौ० ध० सू० २।२।३।१०।, मातृ० २।१५३ म० भा० १३।४।७।१२-१४)। मनु और शौचा० क्षत्रिय और वैश्य की अनुसूचित वर्गों के सम्पत्ति के दत्तत्वों की कथा नहीं पाते, किन्तु दास० (२।१२५) उपर्युक्त क्रम से क्षत्रिय की भद्रणी स्त्री में उत्पन्न पुत्र को ६, वैश्य तथा शूद्र के पुत्रों को क्रमशः ३, ३ हिस्सा देता है (मि० बृहस्पति० ५५।१७, विष्णु १८।१ मनु)।^{१४} अनुसूचित वर्गों के साथ यह अत्यन्त अन्धमूर्खतापूर्ण दत्तत्व है। पृथिवीन्दर

१४ म० भा० १३।४।७।५७-५८ में क्षत्रिय की सम्पत्ति के साथ हिस्सों में ४ क्षत्रिया पुत्र को, ३ वैश्य पुत्र को तथा एक हिस्सा शूद्र के पुत्र को दिया गया है। वैश्य का वैश्य से उत्पन्न पुत्र ४ भाग तथा शूद्र से उत्पन्न एक भाग का अधिकारी है। निम्न वर्ग वाली कथा के उत्पन्न पुत्र को भी दत्त वर्तने के उदाहरण अन्धमूर्खतापूर्ण के लक्षणों तथा वर्तमान समय में इंग्लैण्ड आदि देशों के राज परिवारों में पाये जाते हैं। बुराये वर्गों सिविल लायू के अनुसार उच्च कुलीन वर्ग से सम्बन्ध रखने वाले पुरुष का निम्न वर्ग की स्त्री के साथ विवाह बहुत दुष्ट समझा जाता था, ऐसी स्त्री को पाने का कर्मा नहीं मिलता था, पति की मृत्यु का ऐसी स्त्री या उसकी सन्तान सम्पत्ति की उत्तराधिकारी नहीं बन सकती थी (म० भा० ६।० म०, पु० ११)। ऐसे विवाहों की मार्गरेटिक (Margaretic) कहा जाता है, इसका शाब्दिक अर्थ है माता का मोन पैर। क्योंकि इस विवाह में पति की सम्पत्ति पर निम्न वर्ग की स्त्री का कोई स्वत्व नहीं होता था, अतः इसकी सति-पूति के लिए पति पुत्रागारज के बाद माता का ल पानी को बहुमूल्य सौं देता था। इसका दूसरा नाम लॉ हण्डेड (Loft handed) भी है क्योंकि इसमें बाधा हाथ ही दिया जाता है (नवम्बर विचरनरी, पु० १५३४)। वर्तमान काल में इसका एक मसिहा उदाहरण इंग्लैण्ड के सन्नाह् एडवर्ड अन्धम का सिम्पसन के शरण विवाह था। सिम्पसन राजकुल की स्त्री नहीं थी, इंग्लैण्ड के १७७२ के राजत मरिज एडवर्ड के अनुसार एडवर्ड उसके साथ केवल नाममात्र विवाह ही कर सकता था, अतः यहाँ में उसकी सन्तान इंग्लैण्ड के राज सिंहासन पर नहीं बैठ सकती थी। एडवर्ड ने अपनी पत्नी तथा सन्तान को हीन स्थिति प्रदान करने वाला ऐसा विवाह करने की अपेक्षा राजगद्दी छोड़ना अधिक सज्जा समझा।

विवाह श्रीधरि बंस के अखिर राजा प्रह्वर्मा से हुआ। वसन्ती के अखिर राजा धूमधट ने भीष्मजारीय हर्ष की लक्ष्मी के साथ विवाह किया। ६१० ई० के विराट के एक राजपुत्र में श्रीकलास नामक सामन्त को आर्याभवेसी ब्राह्मण तथा उसके परनामा केमव को पाण्डव विवाह है।^{१२} दशमी जाती के प्रारम्भ में संस्कृत के कवि सायनाचर ब्राह्मण गज-मेधर ने भीहान कुस की मूलवती कन्या अवन्तिमुन्दरी से परिणय किया और उसकी प्रेरणा से कर्पूरमंजरी की रचना की (क० बी० १।११९)। ६०० ई० का आठवरा या देव प्रहमाता है कि मुहिर बंस के संस्वानक मुहदरा ब्राह्मण के बंसज भर्गुष्ट ने राजकुन्द बंस की राजकन्या से शादी की। दशमी जाती के इतिहा टीकाकार मेधातिथि ने लक्ष्मी स्त्री न मिलने की वजह से अश्वर्मा से विवाह का उल्लेख किया है (मनु० १।१४)। काशुल और तिष्ठ में ब्राह्मणों के राज्य के भीष बंस के अखिर राजगुर्षा को ब्राह्मण कन्याओं से विवाह का अधिकार था।^{१३} कर्मादिपिनाय (३४।१७१) में कहा गया है कि जब ब्राह्मण अशोकमत ने राजकुमारी से शादी की तो उस बंसों की भीषा, विद्या और विनय की तरह हुई। कई बार पिता अपनी कन्या में पूज्या का छिद्र बारी वहाँ से ने दिन वर्ष के स्थिति को अपने धर्म के रूप में चाहती है।

१३ वीं जाती तक अनुजोम विवाहों का जिलालेखों में उल्लेख मिलता है। विषय अगर के प्रसिद्ध राजा मुषक प्रथम (१२६८-१२८८) की कन्या विमवादेवी का परिणय औरत प्रान्त के ब्राह्मण बड़ नामक ब्राह्मण से हुआ।^{१४} भद्रपद के बाद बाबियों ने भी अनुजोम प्रथा के कर्त्तव्य बन्ध होने का संकेत किया है। ६०० ई० के लगभग क्षुरपाव नामक अरब यात्री लिखता है कि स्पाटिह (अखिर) ब्राह्मणों को अपनी अकली देते थे, पर उनकी लड़कियाँ नहीं ले सकते थे। इससे सात होता है कि ब्राह्मणों में अनुजोम विवाह व्यवस्थित था, किन्तु इसके दो समी बाद कमबोली पड़ता है—“हिन्दुओं को पहले अपने से नीच वर्ग की स्त्रियों से शादी करने का अधिकार था। परन्तु हमारे समय में ब्राह्मण कभी अपने से नीच वर्ग की स्त्री से शादी नहीं करते थे।” इससे स्पष्ट है कि क्षुरपाव के बाद २०० वर्षों में ब्राह्मणों में अनुजोम विवाह की परिभाषी उठ रही थी, फिर भी इस समय में ही ऐसे विवाहों के कुछ उदाहरण मिलते हैं। जलमेदी के समय में ही एक कजमीरी राजा संभासिंह (१००३-१०२८) ने अपनी कन्या का विवाह एक ब्राह्मण मुषक से किया। किन्तु १२ वीं जाती के प्रसिद्ध कजमीरी ऐतिहासिक कालह को यह विवाह पर्वव मही था, संकेत यह लिखा है कि इस विषय सम्बन्ध से उस राजा ने अपने यक्ष की शक्ति की (राजतरंगिणी ७।१०)।

१२ ६० ई०, क० १२, पृ० ३०७।

१३ ईश—हिन्दू भारत का उत्कर्ष, पृ० ३०६।

१४ एपि० ६० क० १३, पृ० १९।

जाति में होता है। इसका मुख्य कारण बर्णों के अन्तर्गत भेदों का विकास है, इससे उपरिविवाह (Hypergamy) की दृष्टि प्रबल प्रचलित हुई है।

बर्णों में अन्तर्गत भेदों का विकास

मध्ययुग में तथा वर्तमान युग में हिन्दू समाज के चार वर्णों की उपजातियों की संख्या में आत्मसंबन्धन वृद्धि हुई है और इनका वर्तमान विवाह भ्रष्टाचार बड़ा प्रभाव पड़ा है, अतः यहाँ इनके विकास का संक्षिप्त परिचय उपयोजी होगा।

प्राचीन धर्मग्रन्थों के अतिरिक्त बहुत सी मंदिर जातियों का उल्लेख करते हैं। अथर्ववेद धर्मग्रन्थ में केवल चण्डाल (२।२।६), वीक्षक (२।२।६), और शूरा (२।२।६) नामक उपजातियों का उल्लेख है। गौतम ने चौथे अध्याय तथा छः प्रतिशोम जातियों का वर्णन किया है। वसिष्ठ ने गौतम की अपेक्षा कम जातियाँ गिनायी हैं। मनुस्मृति (अध्याय १०) और विष्णु धर्मसूत्र (अध्याय १६) में मंदिर वर्णों और जातियों का पहला विचार वर्णन मिलता है। मनु के मतानुसार, छः अनुजाम, छः प्रतिशोम, २० दुहरे कर्ण से तथा, जातियाँ और २३ विभिन्न व्यवसाय करने वाली वर्णों, चार वर्णों के अतिरिक्त १५ जातियाँ हैं। याज्ञ० स्मृति केवल १३ जातियों का वर्णन करती है। उपनयन के नामीय जातियों के ऐसे गिनाये हैं। सब स्मृतियों में कुछ मिलाकर भी वे अधिक जातियों का उल्लेख नहीं है।^{३०} मध्ययुग में निम्ने गये जातिविभेद, बहुकतयाकर आदि धर्मों के इन जातियों की संख्या में वृद्धि की। विस्मय के मध्य कालीन संस्कृत धर्मों में वर्णित १६४ जातियों का परिचय दिया है।^{३१} वर्तमान समय में भारतीय जनगणना की रिपोर्ट के आधार पर इनकी संख्या चार हजार के लगभग बतायी जाती है।^{३२}

३०. कावे—हिन्दूरी नाम धर्मशास्त्र, खं० २, भाग १, पृ० ५७।

३१. विस्मय—इण्डियन कास्ट्स, खं० २, पृ० ६२-७०।

३२. १९०१ की जनगणना रिपोर्ट में प्रमुख जातियों की संख्या २३०० दी गयी है (रिजल्टो-सीपल आफ इण्डिया)। यों में (इसा० रिपोर्ट, खं० ४, पृ० ६७६) इनकी संख्या छोटे तौर इसे २ से ४ हजार तक बतायी है। हिन्दू समाज की आधुनिक जातियों का नाम प्राप्त करने के लिए निम्न अन्य विवेक रूप से उपयोगी हैं—१९०१, १९११, १९२१ तथा १९३१ की भारत की तथा विभिन्न प्रांतों की जनगणना रिपोर्टें। रिजल्टो-सीपल आफ इण्डिया (१९१५), जे० एन० सक्ल-थार्प—हिन्दू कास्ट्स एण्ड सेक्ट्स (१८९१) फिल—कर्मचिन्तन आफ कास्ट्स फ्रॉम इण्डिया (१८८५), कैम्पबीच—ए बीक रिज्यू आफ वी कास्ट सिस्टम आफ वी थार्प संश्लेषे प्रायविलेज एण्ड प्रबन्ध (१८८५), ओवेसी—इण्डियन कास्ट कास्ट्स (१९३), इण्डियाज सोशल हैबिट्स (१९३४), सर एवर्सलेज बेनेक—

चारवर्षी के चार हजार भातियों के विकास का प्रधान कारण वैदिक युग से ही उच्चता और सुदृढ़ता का विचार^{२३} तथा इस कारण अपने को जन्म भातियों से दूर रखने की भावना है। धर्म, दूति और धर्म के बंद से, नयी तकियों के आगमन के इनकी संस्था बगुनी बनी गयी।^{२४} हिन्दू समाज इस समय चार हजार विभिन्न जातियों में विभक्त प्रचार होता हुआ है, यह निम्न उदाहरणों से स्पष्ट हो जायगा।

दशमीपात्री (१२१२), इसके अन्त में भारत के भाति बंध पर किये गये कर्मों की बड़ी विलसत सूची है। ए० ए० कीटिंग—हिन्दू द्वादश एक कास्वत्, १ अ० (१८७२-१८८१), जाम विलसत—इंडियन कास्वत् २ अ० (१८७७), एडीन्ग-हा एक कास्वत् आठ हिन्दू कास्वत् (१८८८)। विभिन्न जातियों की भातियों के विलसत विवरण के लिए देखिए—इन्डियन-रैजाज कास्वत् (१८१६), डब्ल्यू० क्लार्क—द्वादश एक कास्वत् आठ भाये ईस्वीन प्राविन्सिज एक कास्वत्, ४ अ० (१८६६), सार०—ई० ए० एन्वीजन—द्वादश ई० कास्वत् आठ बोम्बे, ३ अ० (१८६०), रिजली—द्वादश एक कास्वत् आठ बंगाल (१८६१), आर० बी० रसेल—द्वादश एक कास्वत् आठ तेन्गुल प्राविन्सेज, ४ अ० (१८१६) कर्लटन एक रंगाचारो—कास्वत् एक द्वादश आठ साउथ इंडिया, ७ अ० (१८०६) ए० बी० मैन्डव्या और राय बहादुर ए० बी० समन्त कुम्भ अम्बर—साईसीर द्वादश एक कास्वत्, अ० १-४ (१८२८-३५), ए० ए० कुम्भ अम्बर—बी द्वादश द्वादश एक कास्वत्, अ० १-२ (१८३७-४१), कुम्भ अम्बर—बी कुम्भ द्वादश कास्वत् (१८४८)। हिन्दी में विभिन्न भातियों के परिचय के लिए अन्धकारप्रसाद विजय का भातिभास्कर (बैकटेडर प्रेस) उपयोगी है।

- २३ उदाहरणार्थ, शत० डा० (३।२।३।४) में कुम्भ-अम्बर के बाहुओं की जाती लघोत्तम बतायी गयी है। लीबोर्निक डा० (७।१) में क्लार्क गले कि उत्तर में उत्तम जाती बोली जाती है, मोठ जाती लोहने की इन्धन रखने वाले उत्तर की विद्या में जाते हैं और उत्तर में जाने वालों की बोली सुने की इच्छा होती है। अन्य दूरार (१६।१६) में स्पेक देशवासियों, सिंधु, बर्बर, लोड (उड़ीसा), आग्ने, इन्ध, इन्ध और लोहने के बाहुओं की अन्ध मैन्डव्या दीक्षा गयी समझा गया। आजकल बोम्बे के विधायक बाहुन सरकार का बाहुओं की जीवन की दृष्टि से अप्रतिम सचमती है, भारत के अन्य भागों के बाहुओं से वे अपने भाप की बर्तानु जंभा समझते हैं कि अन्य बाहुन संस्कृत का गुण प्रचारण नहीं कर सकते (ईसा० क्रि० ४।१८०)।

- २४ प्रवेशके से प्रजातियों के विकास का एक सुन्दर उदाहरण बाहुओं के निम्न स्तर बने हैं—सरस्वती नदी के निकटवर्ती प्रदेश में रहने वाले बाहुन सरकार, कमीन वाली

वर्तमान जातिधर्मों के भेद

ब्राह्मण आज्ञासूत्र केवल वेदा भेद से पंच गौड और पंच श्रमिक नाम दाने दान

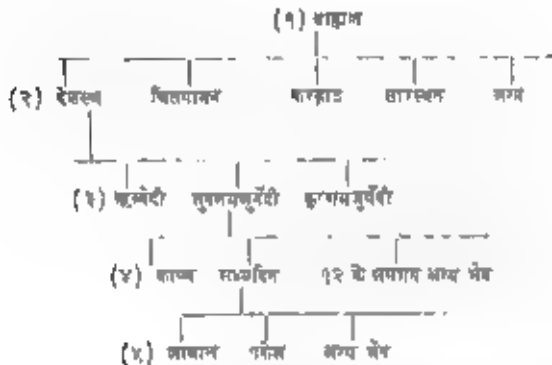
कार्यकुशल, विधितान्त्रिकी संविधान ब्राह्मण कहलाते हैं। इसी प्रकार अग्रज, कर्मावध, मत्ताराज्य, गुणराज, और अधिक वेदा के अलग ब्राह्मण हैं। एक वृत्ति, क्यकराज पर वेदा करने वालों का वृत्त जाति के रूप में परिणत होना मत्ताराज्य प्राचीन कार्य से बना आ रहा है। वैदिक युग में विभिन्न वेदों वाली जातियों के लिए वे० कार्य—वि० ४०, ४० २, भाग १, पृ० ५२-५०। बौद्ध साहित्य में भी इसका बहुत वर्णन है। वर्तमान काल में इसके प्रतिष्ठित क्यकराज व्यापार का कार्य करने वाले मत्ताराज, अग्रज, मीतनार, प्रज्ञी, जरोडा, भुवर्णवर्णक, कोमली, मोड़ी आदि अनेक वर्ग हैं। इन प्रकार कृषकों, श्रमिकों (भरारी, काछी, लोही), वाप्यालकों (महीर, ल्हाला, ज्यारी, मोड़ी), कारीगरों (मुहार, कम्पलन, राव, लुहार, कसेरा, ठकेरा), मृगकरी (मुल्लाहा, कोरी, लाली), लेखिकों, माहलों, मोखियों, पक्षी चकले वालों, बंजियों, लहों, बाजीगरों, चोरो और शिकारियों की जातियां हैं। इनकी विस्तृत सूची सर एचलस्टेन सेनेल की एथनोग्राफी पृ० १४१-१४१ पर मिलेगी। जम्भवाय भेद की वृद्धि से जातियों के बनने का क्यकराज गीसर्दी, डेरानी, मोपी, कर्मावध के बीरवीच भाग हैं। मत्तों के भेद से वृत्त जाति के क्यकराज हुआ है वेदा के पर्वतों और जंगलों में बनी ■ कोम, लोल, लो, मुखा, बीला, लीरवी, लोड, भारी, काली, लीरी, ककला आदि जातियां हैं। इनकी वृद्धि उपर्युक्त प्राय में पृ० १४१-२ है। इसकी अतिरिक्त नई जातियां निम्न कारणों से भी बनती रही हैं (इंसा० रिस्ली० ई०, ४० ३, पृ० ९३२)—(१) संसारजन्य—विभिन्न जातियों के मिश्रण से नई जातियां बन जाती हैं। (२) वेदा या स्थान के परिष्कार से नई जाति बन जाती है। कुछ ब्राह्मणों ने जब मत्ताराज्य प्रजाति कराने विधिना सेने का कार्य छोड़कर वृद्धि को मत्ताराज्य होने बिहार में आसन तथा उत्तर प्रदेश तथा (त्यगी) कहलाये। (३) विदेशी जातियां हिन्दू समाज में सम्मिलित होकर नये वर्ग बनती रही हैं। वर्तमान युग में इसका एक अच्छा क्यकराज एक व्यापारियों जाति कोच है। महीर जाति का प्रागुर्वाच आसीर नामक विदेशों से आने वाली एक शक जाति से बना जाता है। (४) कुछ जातियां मत्तों के भेद या विभिन्नता से बनी हैं, जैसे पंजाब के मत्त, मुजर, मेव, बंगाल ■ रावबारी, लोचरी, मत्ताराज, मत्तारी, उत्तर प्रदेश के मुसाय, पाली, मत्ताराज के मत्तार, मत्त, परेयन, मेलास (इंसा० रि० ई० ४० ३, पृ० ९३१)।

भाषाओं में बंटे हुए हैं।^{१२} अतः हमें प्रत्येक भाषा की कीमती बचाने के लिये या यथ-
आवश्यकता। पंच गीतों में पहला जेब सारस्वत है, जिसमें सारस्वतों की ४१३ उपजातियाँ
गिनायी हैं।^{१३} गीतों में आद्य, सुपद, अरस, सिंह, गीतार्थ ४२ आचार्य हैं।^{१४} काव्यकुञ्ज
शुक्ल कर्ष में पाँच भाषाओं में विभक्त हैं—कन्नौजिया, सज्जिया, सुलोमिया, मगधुव,
मगधो, कन्नौजिया। इनमें प्रत्येक भाषा अनेक कुलों में विभक्त है।^{१५} वैदिक साहित्य
संग्रह गोत्रो. १७७ डीन मगधो पूर्वो और पाँच कुलों (आय, योग, पंजीय, मानर
और जेब) में बंटे हुए हैं। विद्याकी दृष्टि से ये कुल वर्णानुसार भाषा के सारस्वतों कुलों के अन्त
में आते हैं।^{१६} इन्हीं में ही गुरुत्वर साहित्यों में ४४ अंशिया हैं।^{१७} कर्णाट साहित्यों
की आठ भाषाएँ और १५ गीत हैं।^{१८} गङ्गासागर साहित्य पहले देवस्थ, चित्तपावन,
कन्नडा और सारस्वतों में विभक्त हैं, फिर इनमें प्रत्येक भाषा के सन्तति मनुष्यों की आदि
अनेक अन्तर्गत भेद हैं और फिर इनके अनेक उपभेद हैं। श्रीमती वर्धे के पृ. १३४ पर विवे
चित्र से महासागर के साहित्यों की बचाने के लिये का कुछ परिचय मिल सकता है।^{१९}

साहित्यों के समान अन्य जातियों की इसी प्रकार अन्तर्गत उपजातियों में विभक्त
हैं। उदाहरणार्थ, पंचाक्ष के अन्तर्गत मुख्य वर्गों में विभक्त हैं बारी, सुभाही और लरील।
पहले वर्ग में आर्य, दूसरे में वाच और तीसरे में १२३ उपजातियाँ हैं।^{२०}

पञ्चपाव के अन्तर्गतों में न केवल ११ अन्तर्गत हैं, किन्तु इनमें के प्रत्येक के

- १२ एक कुलविद् वर्गों के अनुसार विव्याचन से उत्तर में बने जाने वाले गीत
विद्युत हैं—आर्यभाषा: कान्हाकुञ्ज गीत। वैदिकीयभाषा:। पंचगीत। नवम्येते विव्या-
कुलरवाचिना। विव्याचन से उत्तर में रहने वाले पंच अन्तर्गत इस प्रकार हैं—
आदिवाच्यभाषाकन्नौजियागङ्गासागर गुर्जर। पंचगीत। आदिवाच्य भाषा विव्या-
हमिन्वाचिना:। ये वर्गों के अन्तर्गत पञ्च के उत्तरार्ध (१०।
२-३) में कुछ भाषाओं के साथ आते हैं। विव्याचन के इतिहास आरम्भ के लक्ष
२, पृ. १७ में विमान कुल पाठ्यके के साथ विवेक है।
- १३ विव्याचन—इतिहास आरम्भ, खं. २, पृ. १२९, कान्हा वैदिकीय गणेश्वर के
कण्ड २, पृ. १५ में पञ्चाक्ष के सारस्वतों के ४७० जेब बताये गये हैं।
- १४ हिन्दी विव्याचन, खं. १, पृ. ४३७।
- १५ बारी, कण्ड ३, पृ. ७३०।
- १६ हिन्दी विव्याचन, खं. १, पृ. ४३२, विव्याचन से गुरुत्वर साहित्यों की १६० उप-
जातियाँ गिनी हैं (इतिहास आरम्भ खं. २, पृ. ३२)।
- १७ हिन्दी विव्याचन, खं. ४, पृ. १३३।
- १८ कर्ण—कन्नौजिया आदिवाच्य इव इतिहास, पृ. ८
- १९ पञ्चाक्ष की १२०१ की अन्तर्गत रिपोर्ट, पृ. ३०३-४।



अनेक समये हैं। कर्त्तव्य शास्त्र के वर्णानुसार चिन्तन के पूर्वमकी गृहियों की २४ शास्त्रों हैं, चौहानों की चौबीस, बालुवियों की ११, प्रतिहारों की १२। इनके नाम ही शास्त्र में राजपूताने के आधारियों की ८४ सम्प्रदायिका मिलती हैं।^{१४} वैश्य वर्ग के अधिकांशों में १७३ या अठारह गोंध अथवा कुल माने जाते हैं।^{१५} पञ्जाब के अतिरिक्तों में १६ सम्प्रदायिका हैं।^{१६} यही बात अन्य जातियों की है। उत्तर प्रदेश के क्षत्रियों के १० भेद सुप्रसिद्ध हैं।^{१७} इत्यादिभेद की प्रवृत्ति से हिन्दुओं के विभक्तन भी अनेक गरी बने। अतियों में विवाह की दृष्टि से कीटिमी उपायिका की जाती है।

आर्य वर्गों के हजारों जातियों में अठारह या पच्चीस विभाग मनु द्वारा कि कर्त्तव्यशास्त्रों द्वारा प्रतिपादित। सर्व विवाह के नियम का लोकाचार ने सम्पूर्ण और सम्प्रदायियों के बहुत छोटे-छोटे वर्गों तक सीमित कर दिया है। उदाहरणार्थ पहले बरादे गये महाराष्ट्र शास्त्रों के वैश्य शास्त्र का शास्त्र वैद्य शास्त्रों के योग में शूद्रवेदी, साम्यवेदी, क्षत्र्य और भ्रष्टावर्णी वर्गों में बटे हुए हैं। इनमें परस्पर विवाह नहीं होता।

१४ एतद् एव दृष्टीविषयीय आर्य राजपूताना, संत १८५०, अध्याय ७, पृ० ६८-१००।

१५ मनु—शास्त्र एव कास्त्र आर्य ही जार्थ वैदिक प्रवृत्तिवत् एव अध्याय, पृ० ११, प्रत्यक्षेण विचार्यकार-अपराध काति का प्राचीन इतिहास पृ० १२५।

१६ पञ्जाब की १८०१ की जनगणना रिपोर्ट, पृ० ३२७।

१७ सिद्धेश्वर शास्त्री विद्या-विवाह संस्कार, पृ० ११, अब इनके विवाहों में दोन गरी समता जाता।

है। मैसूर के शासन १९ उपजातियों में विभक्त है। ४०० इक्की एक उपजाति स्थानी (क्षेत्र के अनुसार) १०० ठामेदों में विभक्त है। इसका भी वैय्य (प्रमाण के अनुसार) और माय्य (माध्यमाकार्य के विषय) आधारों के साथ बिबाह नहीं होता। ४५० नुजरात के शहर जीर्नीय और बर्ग अन्तर्जातीय बिबाह नहीं करते। यदि कान्यकुब्ज का इस बात पर अविश्वास है कि "नी कर्मीज्जे तैरु नुल्लु" का गुर्जर आधार कहेता है "तैरु नुजराती तैलीक (३३) धुल्लु।" प्रायः सभी उपजातियों इस बात का भ्रमल करती है कि उनके जातीय आधार उनकी उपजाति के भीतर ही हैं।

सपरिचिन्नाह

चार वर्षों में उपर्युक्त आसियों और उपजातियों के विकास का दूसरा महत्वपूर्ण परिणाम है हिन्दू समाज में अतिविवाह (Hypergamy) की प्रवृत्ति का प्रथम साक्ष्य। आजकाल वर्षों की सामान्यता रही नहीं, किन्तु उपजाति की सामान्यता भी विवाह के लिए आवश्यक समझी जाती है, और उपजातियों में भी कुछ ऊँची और कुछ नीची समझी जाती है।^{१५} प्रायः अपनी कन्या को उच्च जाति में देते वा प्रत्यक्ष किमा

- ४७ १३२१ श्री मैसूर को जयपन्ना दिपावं, साग १, पृ० १०० ।

- ४५ मैसूर गजेंद्रियर, खंड १, पृष्ठ २२५ ।

- ४३ श्रीमिनाल-मॅरिज एन्ड केमिस्ट्री इन मैगरे, पृ. २७।

- यह अवस्था अनेक वर्षों पर अवलम्बित होती है। ब्राह्मणों में विधिक अवधारणियों की स्थिति उनके ब्रह्मर्षियों की सामाजिक स्थिति से भिन्नतर होती है। महाहरणार्थ, ऋषियों और भ्रष्टार्थों के धार्मिक कार्य करने वाले ब्राह्मण ब्रह्मर्षी तथा ऋषियों का गौरोहित्य करने वाले ब्राह्मणों से ऊँचे हैं। दूसरा तत्त्व बुद्धि या व्यवसाय के स्तर पर है। अत्यधिक संस्कार के समय युवकों का ह्रास होने वाले ब्राह्मण होने बुद्धि से देखे जाते हैं। अन्य जातियों में अवस्था की एक कमी भी यह है कि ब्राह्मण जिन जातियों से पानी, जन्मा या पत्नी भोजन लेते हैं वे ऊँची स्थिति वाली हैं। तीसरा तत्त्व कुछ सामाजिक रीति-रिवाजों का प्रभाव है। विधवा विवाह करने वाली जातियाँ इसे न करने वाली जातियों से होने लगती जाती हैं। दक्षिण भारत में बम्बिर के तेलकों का एक वर्ग था, उन अपनी जाति में दक्षिण ऊँचा लगता जाता है कि वह विधवा को विवाह नहीं करने देता (ईसा= शिवा० ४।६५३)। यमुना के ऊपरी भाग में रहने वाले तागू ब्राह्मणों के उद्धारपान का यह कारण था कि उनके एक पूर्वज ने अपनी सफलता विधवा से राखी कर ली थी (ईसा० शिवा. ४।६५०)। चौथा तत्त्व ज्ञान-दान के विषय का है। एक ही वर्ग में वह, पत्नियों के भोजन का तथा विधवा का सेवन करने वाले उसे न करने

जाता है। इसे उपरिविवाह (Hypergamy) का विषय कहा जाता है। रिजनी की परिधायी के अनुसार उपरिविवाह बहु विवाह है जो किसी वर्ग विशेष की स्त्री को उससे निम्न सामाजिक स्थिति रखने वाले वर्ग के पुरुष से विवाह करने का विशेष कर्म है और उसे अपने समान अथवा ऊँचे वर्ग में विवाह के लिए बाधित करना है। इन विषय का समुत्तरण करते वार्ता सामाजिक वर्ग उपरिविवाही वर्ग (Hypergamous group) कहलाता है। इसके पुरुष तब इसमें अवकाश दमते निम्न वर्ग की स्त्री को शास्ते हैं, किन्तु रिजनी इस वर्ग में गया इसमें उपरि वर्ग में ही विवाह कर सकती है। उपरिविवाह की प्रवृत्ति हिन्दू समाज की सभी जातियों में तथा सभी प्रांतों में पायी जाती है (गोवाल की १९०१ की जनगणना रिपोर्ट, पृ० १००)। धर्मन की विभिन्न अंग-गणना रिपोर्टों में इसका विस्तृत अक्षिपथ है। श्रीमती इरावती कर् के निर्माण अर्गेजिजेशन इन इंडिया में भी इसका गौणक विवरण है।

राजातीय विवाहों के दुष्परिणाम

राजातीय विवाह का प्रतिबंध होने का मुख्य परिणाम यह हुआ कि वर्ग-वधू के चुनाव का दायरा बहुत संकुचित हो गया है। अल्पके जिलों में संवर्गोद्धारार्थ सन्धू-पारीष, सिन्धु की और सिपाही पक्षिपत्तन बाह्यनी में विवाह के मध्य के मध्य स्थिति बाह्य भीड़े रह गये हैं और कच्चा के विवाह में स्त्री कठिनाई होने लगी है।^{५१} छतर के समस्त बाह्यनी की भी यही बात है। कई भाषिनी अपनी छाटी हैं कि अपने केवल = स्थिति है।^{५२} विवाह योग्य भाषिनी की कठिनाई होने के कारण दूधरि-पाम उत्पन्न हो गये हैं। अल्प के विवाह को हिन्दू समाज में रोका नहीं जा सकता, यह भी अवश्य कदात हीना है; किन्तु उनके लिए घर को अपनी जाति से बाहर नहीं भेजा जा सकता, अपने वर्ग तथा सीमित लक्ष्यों के साथ ही शादी करनी पड़ती है। इन लक्ष्यों के माता-पिता कच्चा के माता-पिता से सीधे-बाजी करते हैं और दहेज के लिए, बड़ी-बड़ी परिश्रम करते हैं।^{५३} इस समय या तो माता-पिता को माटी करी मेकर स्वाह कठना पड़ता है या फिर किसी ऐसे लक्ष्य के साथ अपनी लक्ष्य को स्वाहना पड़ता है, जो बहू न योग्यता ही।

राज विवाह की कुराई को भी इसमें बहुत प्रोत्साहन प्राप्त होता है। कच्चा के

बालों से उत्पन्न समसे जाते हैं। उड़ीसा में निम्न जातिवाही अवसाम कथती है (इंसा० रिती० ई० २१२६६)।

५१ मगधानदाय-पुस्तार्थ, पृ० ४२०-४१३।

५२ ई० विदुष बाई पंडे का भाषण, १९१८ में अन्तर्महिम विम वेदा करते हुए।

५३ दहेज के लिए ३० मीके पृ० २१५-२२४।

माता-पिता यह चाहते हैं कि वे किसी घर के साथ बच्ची से बच्ची अपनी भद्रुकी को भ्रातृ
 हैं। वे बच्चों के माता-पिता के पास रहते रहने का मतलब करते हैं और उनकी कोशिश
 रहती है कि शादी जितनी जल्दी हो सतना अच्छा है। यदि शादी केर तक टाली गयी तो
 संभव है कि बच्चे को कोई दुखरा धर्मिक रहेज देते बासा भिन्न भाव या बहिका मौल्य
 कल्या मिल पाय, जसः भाषा के पिता की मही केन्द्र रहती है कि विवाह भीष हो।

अतियां कोटी हॉल में कई बार युवकों को बचपन की अधिवाहित रहना पसना
 है। इस दसा में ये युवका दूसरी निवाओं में अनुचित संबन्ध रखते हैं, इन युवकों के लिए
 निवाया समाकन मायी जाती है और इस तरह धर्मज में अमानिदार की माया बढ़ती है।
 निवाओं के बेचन, बचन करने और किराये पर अन्धधारी पदार्थों के और पर रखने से
 भुगतन विवाज बन पड़ते हैं।

जब साम्प्रदायों के विवाह करने में सतनी कठिनाता हो ती उनका हल और उनकी
 उपेक्षा होना स्वाभाविक है। इस अरम पर अत्यन्त विरोध रूप से विचार किया गया है।^{१४}
 किन्तु यहाँ यह कहना भावश्यक है कि हिन्दू समाज में कल्याओं की वो सुवेला है, उसका
 प्रधान कारण यह बूढ़े और उसे समुष्ट करने की कठिनायता है। कल्या होते ही घर में
 जो बीका की लड़क और जाती है, इसका कारण कल्या की विवाहविषयक भिन्ना होती है
 और इस भिन्ना का प्रधान हेतु समाजाध्य विवाह का अतिन बन्धन है। भारतीय धर्म से
 हिन्दुओं का इस प्रथा से बहुत झगड़ ही रही है। जातिभेद की प्रथा जातीय एकता, संस्मर
 सामूहिक रीतना और मेस के निमें सबसे बड़ी बाधा है। इस अंगवतनास के कल्यानुसार
 हम आत्मसंतोष के लिए शके ही यह दावा करें कि भारत में हिन्दुओं की बहुसंख्या है,
 किन्तु यह दावा बिलकुल बोगस और गलत है। वास्तव में हिन्दू-समाज भाषण में अकरी
 अल्पसंख्यक समुदायों का, कोई तीन हजार जातिओं और उपजातियों का, जो हम
 जीवन और विवाह के विषय में एक दूसरे की असुख्य समझती हैं, एक अतिमान विरो-
 धीभाव है।^{१५} हमारा समाज तीन हजार टुकड़ों में बटा है। इन टुकड़ों की संख्या दिन
 प्रति दिन बढ़ती जा रही है। ये टुकड़े कट कर हमसे अलग हो रहे हैं। किन्तु निरन्तर बीम
 होती हुए भी हम आपस के जाति-धर्मों को वहीं भूलते हैं, संगठित होकर अक्षति के लिए
 यत्न प्रही करते हैं। जतः हिन्दू जाति के विभिन्न धर्मों में सीहताई असाध करने और उन्हें
 एकदूज में प्रथित करने के लिए अन्तर्जातीय विवाहों का होना अवगत आवश्यक है।

अन्तर्जातीय विवाह और न्यायालय

१९४६ के हिन्दू विवाह प्रैरसा कानून के पास होने से पहले तक आधुनिक न्याया-

१४ हरिदत्त केरालंकार—हिन्दू परिवारजीमज्ञा, पृ० १३३-२०१।

१५ अलबालास—मुक्काम पृ० ४५०-५१।

सम अन्तर्जातीय विवाहों के सम्बन्ध में एकमत नहीं है। इस सम्बन्ध में इनके निर्णयों की दो भागों में बाँटा जा सकता है—(१) एक मुख्य जाति की अन्तर्जातीय शाखाओं के व्यक्तियों के मध्य में हुआ विवाह वैध माना जाता है।^{१५} (२) पक्षों कुछ समय तक व्यापारिक अनुमोम तथा प्रतिमोम विवाहों का संकेत करते हुए सभी अन्तर्जातीय विवाहों का अवैध मानते रहे।^{१६} किन्तु बाद में इन दोनों में अन्तर करते हुए धर्मार्थ हाईकोर्ट ने प्रतिमोम विवाहों को अवैध माना और^{१७} अनुमोम विवाहों का वैध स्वीकार किया।^{१८}

प्रतिमोम अर्थात् द्विजवर्ग से मुख्य ■ मुख्य उच्चवर्ग की स्त्री से विवाह को अवैध घोषित करने के जो परिणाम अन्तर्जातीय सम्बन्ध में आये, उन्हीं इन विवाहों को अनुमोम द्वारा वैध बनाने का आंगोष्ठन हुआ। इस सम्बन्ध का पहले बड़ा सुप्रभाव गिर्यों पर पड़ा था। बम्बई के दो उदाहरणों में यह स्पष्ट हो सकता है; पहले में १९ वर्ष की एक ब्राह्मणी ने अपने से द्विज वर्ग से मुख्य जमनादास के साथ शादी की, २५ वर्ष की बालिका जौनन विवाह हुए हाईकोर्ट द्वारा मनाया गया। इसके बाद मति से पत्नी की शादी बिना। पत्नी की बर्तन तक अज्ञात में मही गयी, पर अन्त में सुनारों ने भूख से लगे आकर उन्हीं मति से अनुमोम पाने के लिए व्यावसायिक भा द्वारा बटकाया, किन्तु व्यावसायिक द्वारा इस विवाह को अवैध माना गया और उसे कोई सहायता नहीं मिल सकी। २५ वर्ष तक इकट्ठा रहने पर भी व्यावसायिक ने उन्हें शास्त्रीय साधक पर प्रति-पत्नी स्वीकार करने के इन्कार

५८ गोपीकृष्ण बल्लभ मुत्तलाल बानी (१९३६) ६१ ई० २० २६५ ५८ अन्तः ६६७।
इन्फैन्सिह बल्लभ साहूकिह ई० सा० रि० (१९४४) १ कल० २६३; आनन्दा बल्लभ
मुत्तलाल ई० सा० रि० (१९४६) अन्तः १०३।

५९ मन्मथी बल्लभ कल्याणलाल (१९००) २ अ. ला. रि. १२७ (अश्विनी और बालक);
मुत्तलाल व. श्यामा (१९२६) ४८ इन्फैन्सिह ६५० (सुख तथा वैश्व स्त्री);
सितपुरी व. इरका अन्तः (१९१२) १० इन्फैन्सिह ला कल० १५६ (अश्विनी
और बालक); पद्मकुमारी व. सुखकुमारी (१९०६) १७ अन्तः ४५७
(अश्विनी और अश्विनी स्त्री)।

५९ काशी लाल कमलादास (१९१२) १४ ई० ला० रि० ५४७, ५५२।

■ आई गुलाब व. जीवन्मल (१९२२) ४१ ई० ७७१, ला० अन्तः मेहता स्त्री-
अन्तः। पंजाब में एक राजपूत और बानी स्त्री (सुरियात बल्लभ कल्याण [१९०७]
ई० रि० ७२) तथा एक अश्विनी और वैश्व स्त्री में विवाह (ब० कमीरल्ल
१९०७ ई० रि० ५७) वैध माने गये। कलकत्ता हाईकोर्ट ने टिपरा के एक रिवाज
के आधार पर वैध प्रति और कलकत्ता पत्नी का विवाह बापल समस्त (रामलाल
व० भोजोचरण ७ कल० की० ६१२) तथा कलकत्ता और बोन का विवाह वैश्व
माना (भोजोचरण व० अन्तः ५३ कल० ४४७)।

किया।^{१०} शास्त्रीय दृष्टि से यह निर्वास ठीक होते हुए भी स्त्री के प्रति भोर धम्याचपूनी था। मुख्यतः उदाहरण में कल्याणमिश्र नामधून ने मदनी नामक बाइली से विवाह किया।^{११} कभी कभी धर्म के नाम से भी आया गया और इसमें माय न रहने दिया गया। कल्याणमिश्र ने पत्नी प्राप्त करने के लिए, अवासल में मानिष की, अवामल ने यह निर्वास दिया कि यहाँ गन्धमूच विवाह हो चुका है, परन्तु प्रतिभोध विवाह होने से नामधून की बुद्धि से यह कोई विवाह नहीं। इन्हीं कल्याणमिश्र पत्नी रूप ने उसे अपने पाप करने का अभिप्राय नहीं है।

हिन्दू कानून के एक ही धर्म की मुद्राओं से निरंतर सर्वप्रथम भारतीय विद्वत्सम सार्व वठेन ने अन्तर्विवाह विवाहों को बीच बनाने का विवेचन (विल) १९१८ में कावस्थानिका दर्शक में प्रस्तुत किया। इस विषय के प्रस्तुत होते ही कश्चित्, कट्टरधर्मी हिन्दुओं ने इसका भोर विरोध किया, क्योंकि हमने अदि प्रणीत व्यवस्थाओं पर आश्रय नहीं। एक कट्टर धर्मी के शब्दों में यह विषय अतिव्यथन की दुकाने-दुकाने कर देने वाला और उन कुकर्मियों के मुनीने के लिए है जो हिन्दू परिचार की प्रत्येक पक्षि और धर्म धर्म को पंथ तक विचार चाहते हैं, जो धर्मशास्त्री और आचार्यगणों का जीवन बिताता चाहते हैं।^{१२} इन शब्दों में विरोध की उल्लास पर अनुमान किया जा सकता है। उन दिनों माधेय चैतन कोई मुधार न्याय होने बाद में, अतः वह विषय नवीन अतिव्यथन के लिए छोड़ दिया गया। इनमें १९ वर्षों बाद २९ जनवरी १९३७ को राजा भगवान्‌दास ने वैवाहिक व्यवस्थापिका परिषद् में पठित बाला विम उपविधान किया। उन्होंने उसके तत्पश्चात् में प्रथम भारतीय प्रभाव रखे, विष्णु भूषण अन्ध रोषन ही निकल चुका। सरकारी विरोध के कारण विम गिर गया। अन्त में १९४६ में भी लक्ष्मणदास सार्व के भारतीय दफन में एक प्रकार के अन्तर्विवाह विवाहों की बीच बनाने का कानून भारतीय लोकसभा द्वारा पास हुआ।

इन कानून के पास होने से पहले हिन्दू विवाह की प्रकार में ही लक्ष्मण के—
१९७२ के विरोध विवाह कानून के अनुसार तथा १९३७ के भारतीय विवाह विधान कानून के अनुसार। पहला कानून अन्तर्विवाह वालों में अपने अन्तर्विवाह विवाहों को बीच करने के लिए बनाया था, इसकी सीमरी धारा के अनुसार वर-वधू को यह घोषणा करनी

१०. भारतीय जनसंख्या आयोग (१९१२) १४ बं० ला० रि० ६४७, ५५५। न्यायाधीश कल्याणमिश्र ने इस विषय के एक शास्त्रीय प्रमाणों की सीमाज्ञा करते हुए यह निष्ठा था कि इस प्रान्त में स्वीकार किए जाने वाले हिन्दू कानून के अन्तर्गत धर्मों के अनुसार बाइली पुस्तक अतिव्य, वरप और सूर्य वही नहीं स्वीकार कर सकते।

११. लक्ष्मी उ० संस्थापक २ बं० ला० रि० १२८।

१२. समाजिक धर्म शास्त्र शास्त्री द्वारा प्रकाशित वैष्णव, सत्यदास उ० अन्तर्विवाह विवाह ५० २३ पर उद्धृत।

बहाली थी कि वे हिन्दू, बौद्ध, लिप्प या जैन नहीं हैं। यद्यपि ब्रह्मन्मार्गियों को इनमें कोई आपत्ति न थी, किन्तु अधिकांश हिन्दू ऐसी घोषणा करने के लिए तैयार नहीं थे। अन्तर्जातीय विवाहों को रोक बनाने की दिशा में कुछ ही महत्वपूर्ण कानून १८२७ का १९ वीं कानून था। यह भी ब्रह्मन्मार्गियों के प्रचलन का फल था। आर्य समाज हिन्दुओं का मुख्य गुरुदास है, यह सम ने आतिथेय का विरोधी है, अन्तर्जातीयों में अनेक अन्तर्जातीय विवाह होते थे, इनकी रोकता स्वीकार करने तथा इस विषय में लोगों की दृष्टि करने के लिये आर्य विवाह वेदों का कानून बनाया गया, यह १८ वीं, १८७० में लागू हुआ। यह कानून केवल उन हिन्दुओं पर लागू होता था, जो आर्य समाज में, अथवा हिन्दुओं में प्रतिभाषित अन्तर्जातीय विवाह अवैध थे और अनुजातीय विवाह अवैध विधियों के अन्तर्गत आने वाले थे। इस समय हिन्दू समाज में अन्तर्जातीय विवाहों का विचार बहुत कम था, उदात्त आर्य में 'जात-जात' गण्डक गण्डक' में एक दिशा में प्रचलन नहीं था। हिन्दुओं के कानून एवं विधिगत कर्मों में ऐसी विवाहों में कुछ ही दिशा में एक प्रत्यक्षता का अन्तर्गत आने की पुष्टि केवल गांधी की राजनीतिक विचारों की दृष्टि के साथ प्रतिभाषित विवाह था। इन विवाहों की रोक रोकने के साथ-साथ उन्हें रोक बनाने का आवश्यकता समझा गया। इसी कारण हिन्दू विवाह वेदों का कानून था। यह १९ वीं, १८४६ में लागू आने में लागू हुआ। १८४६ के हिन्दू विवाह कानून में इसे अन्तिम कर दिया गया है।

हिन्दू विवाह वेदों का कानून (१८४६)

यह कानून हिन्दुओं, सिक्खों, जैन, इनकी विभिन्न जातियों, उपजातियों और सम्प्रदायों में होने वाले विवाहों को रोक करने के लिए बनाया गया है। 'इस कानून की सीमा द्वारा का स्वयं इस प्रकार है "इस समय लागू होने वाले हिन्दू कानून के अन्तर्गत, नियम या व्यवस्था के अन्तर्गत किसी भी और विवाह के होने हुए भी हिन्दुओं में कोई विवाह केवल इस कारण अवैध नहीं समझा जाएगा कि उनमें वर-वधू विभिन्न जातियों, जातियों, उपजातियों या सम्प्रदायों के सम्बन्ध रखते हैं।" यह कानून अनुजातीय अन्तर्जातीय दोनों प्रकार के विवाहों को रोक बनाया है, अब मार्ग समाज में होने तथा विभिन्न विवाह कानून के अन्तर्गत आने न करने पर भी ऐसे विवाह रोक होंगे। इस कानून ने अन्तर्जातीय विवाह विवेक के आधारीय नियम को पूर्णतया नष्ट किया है। यह अन्तिम के होने वाले विवाहों को ही रोक नहीं बनाता, अपितु इस कानून के पास होने से पहले किये गये विवाहों को भी रोक स्वीकार करता है। निम्नलिखित वर्तमान कानून में, हिन्दू विवाह के क्षेत्र में यह एक बड़ा कारिकाकारी और महत्वपूर्ण कानून है।

वर्तमान कानून में हिन्दू समाज में आतिथेय की प्रथा का विच्छेद करने वाली अनेक प्रवृत्तियाँ अन्तर्जातीय विवाहों के अन्तर्गत में महत्वपूर्ण विच्छेद हो गयी हैं। जातीय-विकार, मनीषी द्वारा कारखानों में कुछ परिवार ने कानूनों के अन्तर्गत,

था कि इससे जातिप्रथा को बुराई का अनुमान होगा । हमारा मक़दद विवाह में युग्मों को अपने साथी का चुनाव करने की स्वतन्त्रता देना था । उनके सहानुसार जातिभेद के बन्धनों द्वारा युग्मों के प्रचलन-विवाहों से बाधा नहीं डाली जानी चाहिए । हम युग्मों में इस छान पर बल दिया कि अन्तर्जातीय विवाह हमारे लिए 'उत्तम समाज' (good society) का निर्माण करने वाले हैं, केवल इन्हों से अस्पृश्यता के कलंक को तथा जातीय भेदभाव का अनुमान किया जा सकता है । अन्तर्जातीय अथवा विभिन्न नस्लों वाले विवाहों का सम्बन्ध केवल पचास प्रतिशत युग्मों ने ही किया । अन्तर्जातीय विवाहों का सम्बन्ध करने हुए भी वधुपक्षों ने इस बात पर बल दिया कि अन्तर्जातीय विवाह करने वाले वर-वधु का आर्थिक दृष्टि से स्वावलम्बी होना चाहिए, क्योंकि जातीय सम्बन्ध को तोड़ने के कारण माता-पिता तथा अन्य संबंधी इनसे कष्ट हो जाते हैं तथा उनसे इन्हें कोई सहायता पाने की बाधा नहीं रहनी चाहिए । इसके अतिरिक्त ऐसे विवाह सम्पत्ती एवं इनके मान-सिद्धांत में मनोवांछित और नैमित्तिक पैदा करने वाले तथा बच्चों के लिए कई विभिन्न सम्-स्कार उत्पन्न करने वाले होते हैं ।

(२) इस सर्वोदय में भारतीयों द्वारा किये गये उत्तरी से यह प्रकट होता है कि वे युग्मों की भाँति समाज को उत्कृष्ट बनाने के लिए अन्तर्जातीय विवाह का समर्थन करने के लिए उत्सुक एवं आतुर नहीं हैं । वे अन्तर्जातीय विवाह की प्रतापी शक्ति हुए भी विभिन्न उपवासियों से विवाहों की अनुमति देने के पक्ष में थीं । अन्तर्जातीय विवाहों के पक्ष में २६ वे तथा विरोध में ३५ वे भाग में अतिरिक्त किये । उनके विरोध का मुख्य कारण यह था कि ऐसे विवाहों में वर-वधु का अपनी जाति के अन्य रीति-रिवाजों तथा सामाजिक प्रथाओं के साथ सामंजस्य स्थापित करने में बड़ा कठिनाई होती है, वे अपने कुल, जाति और विरासती में सम्पूजित स्थापन न मानें वे उनसे प्राप्त होने वाले सम्पत्ति और गुण्यता से संकोच हो जाते हैं, अतः उन्हें बड़ी कठिनाई और परेशानियाँ उठानी पड़ती हैं और ऐसे विवाह सफल नहीं होते हैं । एक युवती ने इस विषय में लिखा था—'मुझे यह विश्वास नहीं है कि अन्तर्जातीय विवाह सफल होंगे, क्योंकि अग्रे और जाति विषयक नियम हममें इतने अधिक मुद्दक और बहस्य हैं कि हम विभिन्न आदतों और रीति-रिवाजों का पालन करने वाले व्यक्तिओं के साथ सामंजस्य और अनुकूल्य स्थापित नहीं कर सकती हैं । वह विवाह सफल न होने की दशा में, अतः ॥ परमा-पिता अपनी भड़कीली परिचार में शामिल होने में बड़ा संकोच करेंगे ।' अन्य युवतियों ने भी ऐसे विवाहों का विरोध करते हुए यह कहा कि दूसरी जाति के पुत्र के साथ विवाह करने पर नईनी अपनी जाति और अपने परिवार के व्यक्तियों से प्राप्त होने वाली सुरक्षा से संकोच हो जाती है तथा ऐसे विवाह के परिणाम माता-पिता की अपेक्षा बच्चों का अधिक भ्रातृत्व पड़ते हैं । युवती ने यथार्थ अन्तर्जातीय विवाह के प्रति अधिक उत्तर दृष्टिकोण प्रकट किया था, किन्तु उन्होंने अपने विचारों को क्रियात्मक रूप देने हुए स्वयमेव या अपने परिवार के सदस्यों के विवाह

जात-जात का सम्बन्ध तोड़ कर नहीं भिये मे। जनका यह कहता था कि मे वधवि दूत विवाहों का दुरा नहीं समझते, फिर भी विवाह करने तथा समाज का दृष्ट करके मे अपनी सम-स्यारों को नहीं कहना चाहते।

इस सर्वोच्च से रास ने यह परिणाम निकाला है कि आधुनिक विचारों से प्रभावित युवक-युवतीय अन्तर्विवाह का समर्थन करते हैं, किन्तु ने यह भी जानते हैं कि इनसे अनेक प्रकार की विषम व्यवस्थाएँ उत्पन्न होती हैं, यदि उन्हें अपनी कति मे, अपना जीवनगोपी मिल जाता है तो वे अन्तर्विवाह नहीं करते हैं। ऐसा विवाह बनने नहीं कहा में किया जाता है जब युवक-युवती में प्रेम की भावना इतनी प्रबल है कि वे सामाजिक प्रथाओं के विरुद्ध विरोध करने को तैयार हों, यथा उन्हें ऐसा विवाह करने से सम्पत्ति यथा सामाजिक प्रतिष्ठा प्राप्त करने में बहुत बड़ा लाभ मिलता है, ताकि वे अन्तर्विवाह से उत्पन्न होने वाली कठिनाइयों का समाधान कर सकें १४।

बर-बसू का चुनाव तथा योग्यताएँ

सम्यक वैवाहिक प्रतिबन्ध

हिन्दू विवाह की पुस्तक एक बाधाद्वीप (Hurdle Race) है। इसका अर्थ है कि जो व्यक्ति इस बाधाद्वीप का विजेता जिस प्रकार दौड़ने की जगह बाधाओं, विषम स्थलों, गहरे गड्ढों और ऊँचे टीलों को पारकर अपने लक्ष्य स्थान पर पहुँचना है, उसी प्रकार हिन्दू विवाह के माना-गिता विध, गौक, जाति के बाँटार प्रतिबन्धों का सामना करते हुए तथा अन्य अनेक बाधाओं का सामना करते हुए बड़ी कठिनाई से बर-बसू चुनना पड़ता है। विध, गौक और जाति के प्रतिबन्धों की वजह से मिलने सम्भव से विस्तार से ही चुनी है। इस अध्याय में बर-बसू के चुनाव के विषय में सम्यक प्रतिबन्धों और नियमों का उल्लेख किया जायगा।

विवाह से पहले बर और बसू की अनेक श्रुतियों से जाँच की जाती है। उनमें वय, भूत, बुद्धि, कुल जाति अनेक योग्यताओं का विचार किया जाता है। कुछ विशेष रीति व्यवस्था विहितियाँ होने पर उन्हें विवाह के योग्य नहीं समझा जाता। बसू के लक्ष्यों की परीक्षा पर प्राचीन ग्रन्थों में बहुत बल दिया गया है। मध्यकाल से विवाह से पर्याप्त सम्बन्धी विचार बलक होते गये। बर-बसू का गौक और कुल देखने के साथ उनके ग्रहों और सप्तमों की शुभ, माही, कूट जाति का बुरा विचार होने लगा। ऐतिहासिक भाव से यहाँ बर-बसू की योग्यताओं व अयोग्यताओं की वजह की जायगी। इस बातों का प्रतिबन्धों के विषय में यह बात स्मरण रखनी चाहिए कि इनका पालन करना सम्भव सम्भव होता है, बर-बसू इनका भंग करते हुए यदि कोई विवाह कर दे तो वह अवैध नहीं माना जाता है।

बर की योग्यताएँ (बर-सम्पत्^१)

(१) बहुरूप्य—बर की सबसे बड़ी योग्यता यह होनी चाहिए कि वह लक्ष्मण बहुरूपी हो। श्रीधरदास (४:१:१५) ब्रह्म के पिता की स्थिति में यह कहा जाता है

१ इनका प्राचीन धर्मग्रन्थों, स्मृतियों तथा निबन्धग्रन्थों में विस्तार वर्णन है, देखिये मनु २:८८, भाष्य १:५५, और मिलिन्दसुत संस्कार प्रकाश, पृ० ७५४।

कि वह उस स्थिति को अपनी कन्या का दान करे, जिसका बहुचर्यवाँ भोग न हुआ हो। मनु (१।२) तथा याज्ञवल्क्य (१।५६) ने यह भी अलग-अलग चर्य के विधम का वर्णन किया है। बहुचर्याश्रम विधायक्यम के लिए है, गृहस्थ के प्रसिद्ध विद्याध्ययन में बाधक होते हैं, अतः विद्याध्ययन के बाद ही विवाह हो, इस विधम की रक्षा के लिए यह व्यवस्था की गयी थी कि वह का गृहस्थ अन्वेषित होना चाहिए। किन्तु बाद में कालविवाह का प्रचलन होने पर यह बात विपुल चर्य हो गयी। मध्यकाल में बहुचर्याश्रम एवं वेदाध्ययन की परंपराएँ विलुप्त हो गईं, उग्रधर्म सम्प्रदाय का विकास अवश्य होता था, गृहस्थों की शांति और शांति का संकलन करता था, किन्तु इसकी पहिल का मध्य सम्प्रदाय की उग्र धर्म न जाने की घोरता करने में और वह अपनी शांति जाने का निश्चय त्याग देता था। अतः इसी दिन समारम्भ संस्कार हो जाता था। सब उपनयन और बहुचर्य इस प्रकार एक प्रमाण या लक्षणा हो गया। यदि घर में विधु यह भी आवश्यकता समझी जाती तो इसका एक बड़ा लाभ यह होता कि हिन्दू समाज में केवल विवाहों का प्रसार अधिक न होता, ४० या ५० वर्ष की आयु वाले पुरुषों के विवाहित ब्रह्म अक्षतयौगि स्थितियों का प्राणिमरण न कर सकते। आजकल यह धर्म का कोई महत्त्व नहीं है।

(२) कुल—यह का कुल उत्पन्न होगा चाहिए। यह समझा जाता है कि उत्पन्न कुल में वंश होने को कारण यह स्थिति बना-गया हुआ कुछ विशेषताओं का प्राप्त करता है और कुछ गुणों की वह अपने कुल के अनुसार एक समान आत्मिकता द्वारा प्रभावित करता है। अतः विवाह में कुलीनता के गुण की बहुत महत्त्व दिया जाता है। आप-बृहस्पति (१।५।१) एक विशेष पूर्वनिश्चित विधि के अनुसार भर-बधू के कुल की परीक्षा करने का

इसका तात्पर्य संवत्सुरि के निम्न स्वीकृत है, जिसमें घर के लिए प्राप्त गुण आवश्यक बताये गये हैं—

कुलं च वीर्यं च अशुभं च विद्यां च विलं च सप्तकर्म च ।

एताम् गुणान्मन्त्र परीक्ष्य देवा कन्या युष्मे मेवमन्त्रितमोषम् ॥

स्वर्गलोक में विभिन्न स्मृतियों के आधार पर घर के निम्नलिखित गुण बताये हैं—(१) मयता ही वर्ष रखने वाले (सर्व, सपुत्र) कुल का होना, (२) धनी होना, (३) सा-बाव तथा अन्य संरक्षक सम्पत्तियों का होना (समाधत्ता), (४) उत्तमचरित्र (शील) तथा दूर, उत्कृष्ट शिवरक्षि, बुद्धिमान होना, (५) विद्वान् तथा धर्मा सिद्ध (श्रीतिव, पीतिव) होना, (६) सुन्दर (अधिक्य मनु ८।८८) होना, (७) बड़े परिवार वाला होना (भूरि कुटुम्बवान्, भामाकुटुम्बवान्), (८) उदार (वत्ता) तथा दयालु (वधवागार) होना। (९) मानवोपयोग का प्रेमी होना, जगन्निव, निष्ठ होना (स्फुरितिकल्प स्वकीय इव एतेष्व इतिहा, अ० २, पृ० १२-३)।

विधान करता है। इस पूर्वनिर्दिष्ट विधि का संकेत बाप० श्रीतदुक्त (१।३) की ओर है और यह राजधर्म यज्ञ में यज्ञत प्रवृत्त करने के योग्य ब्राह्मणों का धर्मन करती है। इसके अनुसार वर के माता और पिता दोनों का रस-रस कुर्मी तक ऐसे होने चाहिए जिनमें शिवा, सप्त और उत्तम कर्म पाये जाते हों, अथवा उस पीढ़ी तक जो शुद्ध ब्राह्मणवंश के हों, अथवा कुछ लोगों की सम्मति में पिता की ओर से ही केवल ऐसी दस पीढ़ियों वाले हों। मनु ने उत्तम कुल में शादी करने के लक्ष्य और हीन कुल में विवाह करने की शानियों का स्पष्ट रूप से बयान किया है। उसने ४।२४४ में कहा है कि जो अपने कुल का सम्पूर्ण ब्राह्मण है उन्हें उत्तमोत्तम व्यक्तियों के साथ सम्बन्ध करने चाहिए और अथवा लोगों के साथ सम्बन्धों का स्थापन करना चाहिए। मनु यह सम्बन्ध था कि जिन कुलों में कुछ बीमारियाँ या शरीरगत रोगों का सम्बन्ध नहीं करना चाहिए। अतः ३।६-७ में वह स्पष्ट रूप से सब संज्ञों को चेतावनी देते हुए कहा है कि रोग वाले वंश प्रकार के कुलों में गौ, भेड़, भकरी, हन-काण्ड से परिपूर्ण होने पर भी विवाह सम्बन्ध न करे। वे दस कुल इस प्रकार हैं—जिनमें संस्कारों का पाठन नहीं होता, जिनमें स्त्री सन्तानें ही उत्पन्न होती हैं, वेदाध्ययन नहीं होता [॥] जिनमें व्यक्तियों के बहुत-कटे-कटे बातें होती हैं, जिनमें बलात्कार, क्षय, भ्रान्ति, भिराव, विषम और कोढ़ के रोग होते हैं। मातृसम्बन्ध से भी महाकुल (१।४४) पर श्रेष्ठ कुल पर रक्त दिया है। शरीर (वीर्यमोक्ष, ५० ५६६) कुल पर रक्त देने के कारण को स्पष्ट करता हुआ कहता है कि सन्तान प्राप्ति-विधा के गुणों वाली होती है। हर्षचरित में प्रभाकरराय ने यशोवती से कहा है कि घर में अग्रागुण रहते हुए, बुद्धिमान् व्यक्ति कुल को ही देखते हैं (वि० सा० सं० ५० ५४५)। कुल का विचार करके ही उसने 'सफलभुवनमस्तु' मोक्षद्वेष के शत्रुओं को अपनी कन्या देने का विचार किया था। कुल के विचार से, अथवास्त में भारत में कुलीन ब्राह्मण-वर्ण का जन्म हुआ और लोग अपने कौलीन्य की रक्षा के लिए एक ही कुलीन ब्राह्मण के साथ अनेक कन्याओं की शादी करने लगे।

कुलीनता का इतना महत्त्व होत हुआ कि मनु (२।२६५) ने मुख्य की यह धृष्ट दी है कि स्त्री यदि रक्त हो (अर्थात् रक्त की तरह श्रेष्ठ हो) तो उसे नीच कुल से भी ग्रहण कर लेना चाहिए (स्त्रीयत्न दुष्कुलादि)।

(३) बुद्धि और गुण—वर बुद्धिमान् और गुणवान् होना चाहिए। आप० गृह्य सूत्र (१।१।२) कहता है कि कन्या बुद्धिमान् घर को देनी चाहिए। बौद्ध धर्म सूत्र (४।१।२०) के अनुसार कन्या गुणवान् को देनी चाहिए। काशिका में अग्निमान् शकुन्तल में (चतुर्थ अंक) गुणवान् वर को कन्या देने का समर्थन किया है। मनु कन्या गुणवान् वर को देने पर बहुत रक्त देता है। यह कहता है (१।६६)—“यदि कन्या को शत्रु-पक्षी होने पर आभरण पिता के घर पर रहता रहे, किन्तु उसे कभी बुद्धिमान् व्यक्ति को न दे।”

अन्य योग्यताएँ

इसके अतिरिक्त बर के स्वभाव, स्वास्थ्य, ज्ञान, यत्न आदि अनेक गुणों को पुरस्के कसमें में देखा जाता था और आज भी देखा जाता है। मर (स्मृति चरित्रका १।७८) में कुल, मीम, मदीर, यत्न, विद्या, ज्ञान, माता-पिता तथा अन्य सम्बन्धियों का होना— ये सात मुख्य गुण बताये हैं। बृहत्संहार (मीमांसक ४० १० ११५) में बर के आठ गुण बताये हैं किन्तु वे यहाँ से छिन्न हैं। वे गुण इस प्रकार हैं—आति, साध, नीजन, राति, स्वास्थ्य, (नितरात्रिणी) महाभला, उच्च आकाशाएँ और ज्ञान।

(४) स्वास्थ्य—बर के तन्त्र, स्वस्थ और दीर्घायु होने पर बहुत बल दिया गया है और यह स्वास्थ्यवर्धक भी है। काल ० १० सू० (१।३।२०) बर की योग्यताओं में स्वास्थ्य को परिगणन करता है। मनु ने विवाह में किए दस कुलों का निषेध किया है (३।१५-७), जिनमें अधिकांश विभिन्न रोगों से पीड़ित हैं। राजादत्तन भी संभवतः कंवारी रोग वाले मनुजों में विवाह की अनुमति नहीं देता। कात्यायन उष्यस, कुण्डो, मनुषक, स्वर्णोत्तम, काने, जग्ने, मिर्षी काने बर को कत्वा न देने का परामर्श देता है।

(५) पुंस्त्व—मातृदत्तन (१।५.५) में बर की पुंस्त्व परीक्षा पर बहुत बल दिया है। बर के पुंस्त्व की परामर्शक जाँच की जाती चाहिए (यत्नात् परीक्षितः पुंस्त्वः)। मात्रादत्तन ने इस परीक्षा की विस्तृत विधि नहीं बतायी। किन्तु मर ने (२।११-१३) इस विषय पर कुछ बताया है। उसके मत में पिता पुंस्त्व का बीघं बल में होता है और जिसका मुख धन्यकार और भाग्यकार है, वह व्यक्ति शुभ है और इससे विपरीत मतर्षा काया पुंस्त्व मधुसूक्त होता है। विवाह से पूर्व बर की इस पुंस्त्व परीक्षा का उद्देश्य यह था कि पति-पत्नी का सम्बन्ध बीजन शुद्ध रहे। परिव्रज में बाधकन इस तथ्य को मली-भाति अनुभव किया जा रहा है। बाध्यतय मुख के विषय धीन अनुभावता (Sexual harmony) बलवन्त भावकता मानी जाती है। धीन वैरन्ध सभी-कभी इस मुख का लक्ष्य बना कर देता है। अतः यहाँ बाध्यतय मुख व रोगों की निवृत्ति के लिए आन्तरों द्वारा बर-बद्ध की प्राविशाल परीक्षा (Promotional examination) पर बल दिया जाता है।

(६) शारीरिक मज्जना—बर में उभयपक्ष योग्यताएँ देखने के अलावा कुछ शारीरिक विशेषताएँ पर लक्षण भी देखे जाते हैं। वीरमिन्धोव (पु० ७५२-७५४) में इन लक्षणों का बहुत विस्तार से वर्णन किया है। ये लक्षण शारीरिक स्वास्थ्य, योग्यता एवं आयु के सूचक होते हैं। उदाहरणार्थ जिसके दाँत, मज्जा, वेणु, स्त्रवा और अंगुष्ठियों के पीर सूचक होते हैं, वह बीघंभीषी माना गया है। माषा, कम्हा, मज्जा, छाती उन्नत या ऊँची उठी होनी चाहिए। कभिष्ठ अंगुष्ठ के नीचे से यदि अतिरिक्त रोखा हवेसी के मध्य में जाती है तो ०० वर्ष की आयु होती है और कभिष्ठ के धोर अनामिका के पीर से बढ़ जाये तो पुंस्त्व १०० वर्ष तक जीने वाला होता है (वी. वि., पु० ७५३)। यदि कभिष्ठ के तवा

में बाधा का दान दिया जाता है। वास्तव व्यक्ति का अर्थमजान पूर्ण व्यक्ति (Idiot) में कम बुद्धि का सर्वथा अभाव है। उसका वास्तविक प्रमाण करना या न करना कोई अलग सही प्रमाण, एक अवस्था में एक विवाह का विवाह नहीं माना जा सकता।^१ श्री बीनजी की यह शक्ति का विष्कृत टोक है किन्तु इसमें आगे आगे मन के मरने में उल्टे में मन का एक प्रमाण है उस दान की पूर्ण के लिए दिया है कि किन्तु सामान्यतः पनि के कारण होते पाए गली की उल्टी उल्टा पाते हैं।^२ इस मरनेवाले का यह निवेदन करता कहते हैं कि इस प्रमाण का अभाव श्री बीनजी प्रमाण के अभाव में सर्वथा प्रति-कृत है। मन में उल्टे की वे वास्तव टोक का भी उल्टे में उल्टे का अधिकार दिया है।

किन्तु मरने में पूर्ण, बरिरी, तथा असाध्य रोगों में निहित व्यक्ति की भी विवाह का अधिकार है।^३ उल्टा विवाह अभी नहीं सम्भव होता।

मनुष्यता के मरने और वास्तविक दोनों में बर का बर माना है, किन्तु मनु और वास्तविक की मरने की भी नहीं होती। मनुष्य व्यक्ति के यदि अपने गुण नहीं होते वे तो वे विवाह में गुण उल्टा करता मरने के और वे गुण अन्य सभी प्रकार के गुणों की भी विवाह का अधिकार है। मनु (२।२०५) का वास्तविक (२।१८१-८२) के वास्तविक में ऐसा विधान है। मनु यद्यपि मनुष्य की भी विवाह सम्भव नहीं करता मरने का विवाह, उल्टे विवाह की दृष्टि से, उल्टे दान में मनु उल्टे विवाह की अनुमति देता है। किन्तु मनु में विवाह अधिक है तो क्या मनुष्य का विवाह भी मरने है? अतः मनु में मरने के मनुष्यता के आधार पर मनुष्य दिया जा सकता है।^४ किन्तु उल्टे मरने में वास्तविक के आधार पर असाध्य विवाह की मरने का भी माननी।^५

परिचय

प्राचीन काल में बड़े भाई के विवाह में पहले छोटे भाई के विवाह का परिचय को मनुष्य माना जाता था। अतः ने गोपनी के साथ विवाह करने । इन्कार किया था, क्योंकि उनके दाँत बड़े भाइयों, बुद्धिपति और बीन के विवाह नहीं हुए थे। गोपनी के साथ दोनों पाण्डवों का आयु के कम से विवाह हुआ। विवाह होने पर इती नियम के कारण

^१ बीनजी—हि. ला. म. स्त्री, पृ० ३४।

^२ मनु २।७६—उल्टा पति मरनेवाले का वास्तविक मनु।

न त्यागीति विमत्यावक न च वायावर्तमानम् ।

^३ श्रीबीनजी का नाम मनुष्यता ३८ कल. ७०० मि० की० ।

^४ स्त्री—मं। माता कलक, पृ० १६७

^५ मनुष्यता का नाम बाई गोपनी, ६० ला० रि० २५ पं० ६५०

पौत्र पाश्र्वय आदि के रूप से पौत्र दिली में शीवजी के पौत्र गये (५० सा० ११५६१।८, १।१६८।१३)। इसे शास्त्रीय परिभाषा में परिवेदन कहते थे। गौ० धर्मसूत्र (१२।१८) तथा माय० धर्मसूत्र (२।२।१२-२२) बड़े भाई के विवाह से पहले अपना विवाह (परिवेदन) करने वाले छोटे भाई (परिवेत्ता) को माह में बुलाने योग्य नहीं मानते। विष्णुधर्मसूत्र (३।७।१२-१७) परिवेदन की एकाग्रता कायदाओं में बताया है। शास्त्र में परिवेदन में पान का विचार बहुत प्राचीन है और लै० ६।० (३।१।६) में भी यही एकाग्रता के अनुसार अनुष्ठानों में परिचित है। एक क्रमबद्ध गृह्य है। इस प्राचीन में प्राचीनता (अविवाहित बड़ा भाई) और परिवेत्ता (विवाहित छोटा भाई) का एकाग्रता की भाँति है। ब्रह्मसंहिता (१।१५) में परिचित की गयी है। परिवेत्ता और परिवेदिता दोनों विधानों में है। लै० सा० (३।४।४) के पुनर्प्रेष प्रकरण में परिचित, परिनिविद्यमान और विधिपूर्वक पति का सम्बन्ध निर्दिष्ट, अति और अराजक (असामान्यता) के साथ सम्बन्धित गया है। दासा० २।१७।३६ में राजाचार्य, ब्रह्माचार्य, ब्राह्मण, ब्राह्मण, ब्राह्मण, ब्राह्मण, ब्राह्मण के साथ परिवेत्ता की निर्धारित करते हुए, उसे नरकगामी कहा गया है। महाभा० (१२।१६५।१८-२२, १२।१६५।२७-२८) में परिवेत्ता के लिए सम्बन्धित और शुद्ध नामक प्रायश्चित्तों का विधान किया गया है। मनु (३।१७।१-७२) में कहा गया है कि जो अपना बड़ा भाई पहले पर की विवाह करता है और ब्राह्मणप्रायश्चित्त भविष्य की प्रत्यक्ष करता है उसे परिवेत्ता (माय० धर्मसूत्र ३।५।१२।२२ इसे परिनिविद्यमान और माय० १।२२६ परिविद्यमान कहता है) कहते हैं और बड़े भाई को परिवेत्ता। परिनिविद्य, परिवेत्ता, ब्याही आगे वाली कथा, कथा का वातावरण विवाह-सम्बन्धित करके माना—ये पौत्र व्यक्ति नरकगामी होते हैं। इस महाप्राय में कुछ लोगों के लिए कष्ट, हारीत, बंध, पान में कष्ट, अतिक्रमण न सम्मान्य प्रायश्चित्तों की व्यवस्था की है। विधानमेवर में माय० ३।२२५ पर इन बातों का विधान से उद्धृत किया है।

कुछ अवस्थाओं में पुनर्प्रेष परिवेदन को वाप नहीं मानते और छोटे भाई को बड़े भाई से पहले विवाह की अनुमति प्रदान करते हैं। गौ० धर्मसूत्र (१२।१८।१६) कहता है कि यदि बड़ा भाई विवेक बलात्कृत हो छोटा भाई १२ वर्ष प्रतीक्षा करने सम्मान्य करे तथा कथा के साथ विवाह करे। कुछ लोगों का मत है कि यह उक्त बड़े की प्रतीक्षा करे। हस्त में इस सूत्र पर ब्रह्मसंहिता का मत उद्धृत किया है कि य. १० सा १२ वर्ष प्रतीक्षा न करने वाला पौत्र होता है, १२ वर्ष तक उसकी प्रतीक्षा करना सम्मान्य है। सम्मान्य के स्मृतिकारों एवं निबन्धकारों ने इस सिद्धांत के कई अन्य व्यवस्था की बताये हैं। अश्विनी (१०५-६) बड़े भाई के मृत्यु, विदेशस्थ, पति, सम्मान्य और योग्य-भारत का सम्मान्य होने पर परिवेदन में कोई दोष नहीं सम्भव है। इतना ही नहीं,

सम्पन्नमान्य है, यानी गृहस्थ का मुख्य आधार है। उसके लक्ष्य में वह धन की प्राप्ति करता है और बुरा होने पर नरक, जन्म, उसके गुणों का विस्तार से प्रतिपादन आवश्यक है।

वधू के गुणों का सारसम्भ

हर में जो योग्यताएँ आसूना के लिए मान्य हैं, वधू में भी इन गुणों का पूर्णता आवश्यक है। वधू का मुख्य अन्वेष्य होना चाहिए, भक्त तथा सम रूप होना चाहिए, वधू का अविवाहीक होना भी आवश्यक है। यदि वधू में ये सब गुण पाये जायें तो परम सौभाग्य की प्राप्ति है। ईश्वर यदि हमें किसी कृपा की प्रशंसा ही तो करना किया जाय ? हमें में कीमत के गुण आवश्यक हैं और कीमत में अभावनायक ? भारद्वाज गृह्यसूत्र (१।११) में यह पर बहुत अच्छा प्रकाश बताया है। वधू कहता है—“यदि तब गुण न पाये जायें तो धन की उपेक्षा करें। धन के साथ कम की उपेक्षा करें, किन्तु धन और बुद्धि में किसी महत्ता है, इस विषय में विद्वानों में मतभेद है। कुछ कहते हैं कुछ को महत्त्व देना चाहिए, दूसरे बुद्धि को अधिक महत्त्वपूर्ण समझते हैं। भारद्वाज गृह्यसूत्र (१।५१९) में वधू के बुद्धि, रूप, जीव लक्षण गुण होने तथा औरों होने पर बल दिया है : वधू० (१।५४), मात० (१।५२), जीवा० सू० (१।५१९) में कन्या के उदात्त लक्षणों वाली होने पर बल दिया है। ये लक्षण वर के लक्षणों की तरह आदीर्यक विशेषताओं को सूचित करते हैं, कन्या के आर्य और शत्रु को बताते हैं। मुख्यतः के समय में ही इन लक्षणों की बहुत महत्ता पायी गयी है। मा० सू० सू० (१।५३) कहता है—“कन्या के लक्षणों को जानने वाले पुरुष व्यक्ति द्वारा कन्या की परीक्षा कराये। उदात्त लक्षणों पर चिन्हों वाली स्त्री की परीक्षा कराये।” वधू० (१।५४), वि० सू० सू० (२।१२२-१२३), मा० सू० सू० (१।५५), आत्मार्थन कायसूत्र (३।१।२), बृहत्संहिता (७।१।१) में इन लक्षणों की विस्तार से चर्चा है। मा० सू० सू० का वर्णन अधिक संक्षिप्त एवं स्पष्ट होने के कारण पहले यहाँ उसी के आधार पर वधू के गुणों पर विशेष प्रकाश देना आवश्यक है। कामसूत्र इनका वर्णन करते हुए कहता है—

“कन्या उत्तम कुल वाली, माता-पिताभक्त, वर से दीन बर्ष कम आयु वाली होनी चाहिए। उदात्त आचार वाले, अन्तःश्राव्य परिपूर्ण, स्नेह रखने वाले तथा बुरे लक्षणों वाले कुल में उत्पन्न, कर्मवती, मोक्षवती, महासमुक्त भिक्षुक पुरे (न अधिक न कम और न मध्यम रूप) शीघ्र, लज्ज, काम, योग, शान्ति और स्थिर रखने वाली तथा स्वस्थ शरीर की कन्या का बरत करे।”

आत्मार्थन कन्या के (३।१।१२) दोषों को गिनाता हुआ कहता है कि

कन्या० (१।२।३५-३७) में भी छोटे बालों को उपर्युक्त बताते हैं विवाह का अधिकार विधाय गया है।

ऐसी कसबाओं के नाम सम्बन्ध न करे। वे १६ इन प्रकार हैं—(१) घुडे नाम वाली कसा, (२) ऐसी कसबा जिसे लिपट कर रखा गया हो, (३) बागदानी, (४) धूले या कपिया (मि० मन्द० ज०), यह पनि की धारों वाली समझी जाती, (५) सफेद हाथों वाली (गुलाब), ऐसी कसबा कि हाथों में यह बिचार था कि वह धन का सुचक्रान कराने वाली होती है, (६) सफेदी औरम (धुआँ), (७) सफेद कसने वाली (८) अंगूठन ओंकी वाली, (९) बट्टे नाम की धोबो, (१०) धुन पिना की कसबा धारों में धारण बसुद्ध, (११) किरी घुमने गुमन दास बुधिन अमर्यादा नाम का नाम धारणी, (१२) रसमन्ना, (१३) मसंभनी, (१४) मिट्ट, (१५) मीठा की कसबा बरिज हरे, (१६) जिसके हाथ पैरों में ऐसीसा बिचारना हो (मरीवादी)।

मगर यह सबकी सब कसा इन सबकी के कसों का बिचनन इत्येव बरिजना के धारों में गया जाता है। बुद्धमहिना, उर्यातिमन्ना आदि धारों में इनका बहुत बिस्तार कसों में। उदाहरणार्थ, जिस कसबा में हाथ में कसबा में बिचारों के सा मसका जसो तक कसो गयी हो। यह कसबा धारधारी होती है, ऐसी कसो के नाम बिचार करना चाहिये। कसो का मसका कसबा होने में गया मसका है कि उर्या देह का मसका होना, उर्या कसबा होने में धारधारी कसबा बिचनन बरिज होने में मसानी का मसका होता है। ऐसी धुनजसका कसबा कसो मसो धारधारी कसबा चाहिये। धारधारी कसबा में कसिन उर्याना का बिचार। बहुत अरुण था और उर्या के आधार पर इन सबकी की नामों की गयी।^{११}

कसबियों द्वारा अरुण बरिजना—उर्याना कसों की गरीबा कोई अमर्यादा का गयी है। धोबनि० गुरुधनु० १२१२ में इन सबकी की गरीबा कसना कसि से कसने का आयेन दिया गया है। कसना धारि कसि कसना में हो तो उस कस में कस बिचा आन ? गुरुधनु मसकातः इन सबकी के गरीबा कसों में कसने के बिचा उर्या के बुनाब का मसका बिचिष किन्तु मसका कसने बताते हैं। कसने मसुआर बिचिष स्थानों में कसने गये मिट्टी के कसों में कसने के बिचिष की कसकारी की गयी है। आर० गुरु० १२१२-६ में कहा है कि मिट्टी के आठ बिचिष कसने बायं। वे आठ बिचिष बिचिष स्थानों की मिट्टी के कसने गये हैं—मसुआर पिण्ड कसने में दो कसने देन जाने क्षेत्र की मिट्टी से, कसका गीलासा में, तीमरा मसकी में, चौथा कसो न मसने कसने लाभाब से, पाँचवाँ मस के मसने से, छठा कसने में, सातवाँ कसने में और आठवाँ मसकात से मिट्टी के कसने बायं। इन आठ बिचिषों पर 'मसमस' का मस पड़े। इन मस का कस इन प्रकार है—मस मसि में सर्वमस उर्या कसना, मस में कस प्रतिष्ठित है। यह कसारी बिचिष बिचिष कसने हुई है उसे ग्रहण करे, जो मस है वह बिचारों से। इन बिचिषों पर यह मस पड़े का

^{११} सांकेतिक बधु के हिन्दी बिचिष की कस २१, २० ५६२-६६ पर कसबा के ऐसी कसों का बिस्तार बिचार दिया गया है।

वह कुमारी से कहता है कि वह उनमें से एक पिण्ड ग्रहण करे। वह जो पिण्ड चुनती है, उसमें उसकी परीक्षा हो जाती है और उसमें धर्म का पता लग जाता है। यदि उसमें धर्म है तो बापे को भी पिण्ड चुना है तो उसको पुत्र प्रभुर भक्त बापे होंगे। यदि उसमें गोमांस का पिण्ड चुना है तो वह ब्रह्म पशुओं वाली होगी। इसी तरह वेदी के पिण्ड के उपरान्त ब्रह्मोत्पत्ति पुत्र, नमूने वाले साधारण के पिण्ड से प्रत्येक वस्तु से पुत्र होता, सुपुत्र स्थापन बापे केने से कुमारी, नीराहे बापे पिण्ड से स्त्रीरिणी, अन्धर ने गरीब, और मनमान बापे से उह कर्मर ने परिधारी होने का पता लगता है।

पौर्विक गृह्यसूत्र (२।१।१) भी यही विधि बताता है। अन्तर वेदक इतना है कि इससे मत में इन आठ पिण्डों के सतिरिक्त लग पिण्डों से मोड़ा-झोड़ा भोज लेकर नया पिण्ड बनाया जाहि। "भूतमये भ्रम" के पक्ष से वह कुमारी कोई एक पिण्ड उठावे, यदि वह पहले बार पिण्डों में से किसी को उठाती है तो उसके साथ विवाह करने, कुछ लोगों के मत में विधित पिण्ड उठाने पर भी उसके साथ विवाह किया जा सकता था।

भा० गृ० सू० (३।१५-१८) में इस विधि का यह रूप दिया गया है कि पाँच पिण्डों की ऊपर से एक बीजा बनाये और उन के नीचे विभिन्न वस्तुएं छिपा कर रखे। पहले पिण्ड में मांस प्रकार के बीज, दूसरे में वेदी की छूट, तीसरे में सोत का बीज, चौथे में गोबर और पाँचमें में रक्तमान का बीज छिपाये। कर्मर को इन पिण्डों में से किसी को स्वतः करने को कहें। पहले बार पिण्डों को चुना भूदिक को चुनना है। इसी प्रकार की सब परीक्षा की विधियाँ बराह गृ० १०, नारद० गृ० १।११, मातंग गृ० १।७।३-१० में भी मिली हैं। यह एक प्रकार की माटरी ही है।

कन्या की मुलपरीक्षा का सुनल प्रमाण—कन्या को गुप्ती भी वह बहुधा भी बहुत मिलता है। भा० गृ० (३।११) इस विधि से एक बहुत बरज नियम देता है। उसमें के अनुसार कुछ व्यक्तियों का मत है कि जिस कन्या में दिल और जीव लग भाव उसी कन्या से सम्मान प्राप्त होता है, इससे अन्य वस्तुओं की ओर ध्यान नहीं देना चाहिये (यस्यो मन्त्रवसुधोमिवावस्थाभ्यामूर्द्ध्वोत्तरवागितेत्येके)। नारद्वान गृह्य० इसी विधान का और भी अधिक सहसा देता हुआ कहता है कि जिसमें मन और जीव लग गयी है उसमें ज्ञान या पिण्ड के चुन को नहीं चुनना चाहिये। भा० कामसूत्र ३।१।१४ में बहुत कामुकी पारिकर्तन के साथ जल० गृ० ३।२१ का उपर्युक्त वाक्य उद्धृत किया गया है। नास्त्य में कन्या बरज करने का इससे अधिक सरल उपाय कोई दूसरा नहीं हो सकता है।

वीर्य वर्मसूत्र ४।१, ४०-४।१, याज्ञ० १।१२, मनु० ३।४ में सब के अपनी जाति की होने तथा अक्षतयोनि होने पर बल दिया है। समासीय विवाहों के प्रकरण में हम यह देख चुके हैं कि समासीय विवाह का मन्थन बीजे प्रारम्भ हुआ और इसके सतिरिक्त शास्त्रों में कन्या का अक्षतयोनि होने की अच्छा माना गया है। यह स्वाभाविक है कि पुत्र मुक्त-पूर्वा कन्या को पसन्द न करें। नारद (३।३६) प्रसूत्यन्तुना को विवाह के लिए अयोग्य

(कृषि) अन्तर्गत है। किन्तु इस विषय की गूढ़गी बढोरता में हिन्दू समाज को बाध में बहुत हाथ गर्तगर्तों। यदि पुरुष के लिए यह उपयुक्त था कि वह सुखपूर्वी (अपमूर्त) में जारी न करने तो अर्थ के लिए भी यह उचित समझा जाया चाहिए था कि उसे विचारित रूप में न समझा जाय। किन्तु यह नहीं हुआ। ५०-६० वर्ष के सुखे लोग पत्नी-पत्नी या गर्तगर्तों के समेत यह या उनसे जीवन करने हुए भी नयी-नयी अलग-अलग कमरों में जारी करने रहे जो निश्चयों को विचार के अधिकार में स्थित गया था। इस विषय का आगे (पृ० २३८-५२) विवरण में प्रमाणित किया जाएगा।

५६ वर्ष के लोग दागों या अपाधगर्तों की पत्नी की जायगी किन्तु कारण विचार अपभ्रम माना जाता था या अब माना जाता है।

परिचयन—आर्यधन का निम्न भाग भी जो यह कहिनी धरती माना होता है। बड़ी बहिन के अधिकारित करने हुए छोटी बहिन की माँ भी नहीं हो सकती। इस निम्न का प्रथम कारण आर्य धन के दागों छोटी बहिन 'अथे विधि' कृत्यामी है और बड़ी बहिन को 'विधि' करने है (मिशाधन गा० ३१६५ पर)। अथेविधि का विचार अत्यन्त प्राचीन मान्य है माना जाता था। तै० ब्रा० (३१६८) में विधि-अथि का समर्थन अराकि (अपभ्रम) में बताया गया है। तै० ब्रा० (३१७६) व बसिष्ठ अ० सू० (११९८) में अथेविधि अथवा विधि के गति ना पतिना (गर्तगर्त) में बिना गया है। बसि० घ० सू० (२०६८-१०) में कहा गया है कि अथे विधि का गति १२ दिन का कुल प्रायश्चित्त करने और अथेविधि प्रायश्चित्त का वाचन करने। दोनो पुरुष दूसरे के दोष के निवारण के लिए अपनी पतिना से और फिर बड़े भाई की माँ का कर छोटा साईं उससे विवाह करे। यह ध्यान रखना चाहिए कि विधि-पति के लिए अधिक प्रायश्चित्त है, क्योंकि उसके प्राने हुए उसकी छोटी बहिन का विवाह ही, यह उसके लिए अधिक संज्ञा की बात है। बाप० घ० सू० (२०६१५२१२२) भी इसे पाप मानता है। हिन्दू समाज में इस निम्न का भावों के नियम की अपेक्षा अधिक बुद्धि में पालन हुआ है। यह निम्न न केवल हिन्दू समाज में है, किन्तु अनेक प्राचीन व अर्वाचीन समाजों में पाया जाता है। बाइबल के जिलीसस के अ० २६ से कहा होता है कि यहूदियों में इस अथवा का प्रसार था। बाइबल रीस से विवाह करने के लिए ७ वर्ष तक उसके पिता लवण के पाद पीकरी करता है। किन्तु उसके बाद विवाह में रीस के बदले उसका पिता लवण अफस की रीस की बड़ी बहिन भीह देता है। बाइबल में जब लवण से इस धोखे का कारण पूछा तो उसने कहा (निबि० २१:२५) कि हमारे देश में यह विवाह नहीं है कि छोटी बहिन (अनुवा) को बड़ी बहिन (अनुवा) में पहने कहा दिया जाय।^{१२}

१२ आधुनिक ब्रह्मण्ड में पुर्णों के लिए यह बहुत बुरा समझा जाता है कि कमरों के नाम कम से जारी होने से पहले उनको जारी हो। आर्यधन, अर्वाधन, अथे, अथे-

इस समय ने 'उद्दिष्ट' में माता के नाम वाली कन्या के मादी का निषेध किया है। यदि किसी ऐसी कन्या से शादी हो जहाँ माता का नाम बदन कर उसमें मादी कन्या चाहिए। गुरु की कन्या के साथ भी परिनिष्ठान किया है। महा. (१।३७) में देवयानी ने जब कन्ये से विवाह का प्रस्ताव किया तो कन्ये ने उसे इस बोधार्थ पर अस्वीकार किया कि वह गुरुपुत्री होने के कारण धर्म की दृष्टि से उससे भिन्न होगी (१।३७।३)। देवयानी के अधिक आग्रह करने पर कन्ये कहती है—'हे शशबन्धन, तुम सब अर्थात्तः शर्म' हे शिव कह रही हैं। हे मृग, प्रसन्न होओ। तुम मेरे भिन्न शर्म की अधिकारी हो। मुक्तार्थ की जिम शोभ मे तुमसे बात किया तो उसी कोश में मैंने बात किया है। इससे धर्मानुसार तुम मेरी वंशिन हुए, तो फिर ऐसी बात में कहना (१।३७।४-५)। इस निमित्त के ही कारण प्रतीत होते हैं, पहला तो यह कि आचार्य द्वारा पिता शर्म का अर्थ था (मनु २।१७१) और पिता की कन्या से मादी शास्त्राधिकार के मादी कन्ये के समान सम्यक् था। दूसरा कारण यह था कि पुराने समय में विवाहियों की शिक्षा प्रती के कुछ में होती थी, वे उसके घर पर रहने के और गुरु के परिवार में उनका परिचित सम्बन्ध होता था। इस वातावरण में अनुचित सम्बन्धों की रीतों के लिए यह आवश्यक था कि गुरु-कन्याओं के साथ विवाह को निषिद्ध ठहराया जाय।

मनु ३।११ व शास्त्रवत्स्य १।५३ बधू के भ्रातृमनी होने पर बन्धन है। उनके भ्रातृमनार जिस कन्या का कोई भाई न हो उसके साथ विवाह नहीं करना चाहिए। अथर्व (१।१२७।३) एवं अथर्व (१।१३।१) में इसके लक्षण हैं तथा वात्स्य ने निरुक्त में (१३।४-५) इसकी विस्तार से बातें की हैं। मनु ने अश्वत्थमनी कन्या के निषेध का कारण उन पुरुषों की पुत्रिका बनाने की गमायना को माना है। पुराने लोगों में जब किसी का पुत्र नहीं होता था तो वह संतुष्टी को पुत्रिका बनाता था और यौहिष्ठ को अपना महान समझता था। अपने आमाता से वह यह गर्व करता था कि वह उसके घर में रहेगा, उसकी पत्नी का सखा (यौहिष्ठ) अपने पिताका पित्र दान में देकर अपने माता को विष्णु दान करता था। पिता के पित्र दान से धनित रह जाने के कारण अश्वत्थमनी कन्या से विवाह करना बहुत बुरा समझा जाता था। किन्तु आत्मकस स्थिति बिलकुल बदल गयी है। जोप ऐसी कन्या को अधिक पसन्द करते हैं, क्योंकि उससे एकबार की सम्पत्ति मिलने की संभावना होती है।

मनु ने (२।१५) तथा ब्रह्मर्षि शास्त्रकारों ने समिष्ठ, समीक्ष तथा शास्त्रवत्स्य (१।५३) एवं अन्य सूत्रकारों व स्मृतिकारों ने समानशब्द वाली कन्या से मादी का निषेध किया है। पिछले जमानों में इनका विस्तृत विचार हो चुका है। जिस स्त्री का एक बार विवाह

संस्थ में पहले इस कन्या का बहुत अधिक रिवाज था। बाद में ऐसा है कि यदि कन्या छोटी बहिन को अपने साथी हो जाती थी तो बड़ी बहिन उसको साथी पर कूटे उतार कर भाँसती थी ताकि उनका दुर्भाग्य दूर हो सके वे० सा० हि० बी०, पु० ३६-३७।

हो चुका हो उस स्त्री का दुबारा विवाह नहीं हो सकता, क्योंकि गांगिप्रहृष्ट संस्कार के अन्त में शरीर क्षयवादी के लिए ही पड़े जाते हैं^{१३}। एक बार हिन्दू समाज किसी पुरुष की स्त्री होने पर उसमें किसी प्रकार अक्षय नहीं हो सकती^{१४} और समाज का एक ही धारा होना है^{१५}। यह केवल प्राचीन भारतीयों का विश्वास ही ऐसी बात नहीं। तात्त्विक दृष्टिकोण की धारा ४६४ के अनुसार जीवित पति वाली स्त्री का दूसरे पति से विवाह एक वर्धनीय अपराध है।

यह ही विश्वासों की विधा है संयोग्य अङ्गना है। प्रमुखधर्म के प्रथम अध्याय के अन्त में (११७-११८) यह उपदेश दिया गया है कि पति के मरण पर वह ब्रह्मचर्यापूर्वक रहे, पुनः प्राप्ति के लालच में यह पुनः पति का अतिक्रमण न करे, साधवी स्थिति का नाश न करना चाहिए। बरगण तथा साध्वी ने यद्यपि विधवाओं को पुनर्विवाह की अनुमति दी थी, तथापि सामान्यतः इसे निषिद्ध ही समझा जाता रहा।^{१६} १८२६ के विधवा-पुनर्विवाह बिल ने विधवाओं को विवाह करने की आज्ञा मिली।

अलायक या बेसम—यह पुरुष में बंद-बधू की जन्मकुम्हरी विभाकर विवाह करने की परिभाषा प्रचलित हुई^{१७} और आज तक प्रचलित है। इसका मूल उद्देश्य बहुत सुन्दर था। हर अंग बधू ने जितनी अधिक आर्थिक अनुकूलता होनी उसका जीवन उतना अधिक सुखमय होना। उनके स्वास्थ्य, गतिशीलता, प्रवृत्तिमा एक बीसी होनी चाहिए। पुरुष के कुछ आधुनिक विचारक इस बात पर बल देते हैं कि विवाह में पहले बंद-बधू हवाइटे रक्त का पारम्परिक अनुकूलता का देख लें, किन्तु भारतीयों ने इसका हल ज्योतिष से ढूंढ निकाला था। इसी अनुसार प्रत्येक व्यक्ति का स्वभाव अपने स्वयं के समय के

^{१३} मनु ८:२२३—प्राणिप्रसूतिका भवति कस्यास्येव प्रतिष्ठिताः।

^{१४} मनु ६:४६—न विप्रकमचित्तर्गाम्ना पतुर्वापि प्रमुच्यते।

^{१५} बहो ६:४७ सङ्गच्छते निवसति सङ्गच्छन्त्या प्रदीयते।

^{१६} वे० जागे—विधवा विवाह का प्रकरण, 'पृ० ३३६-३६

^{१७} बैकनाम (Baknann) ने On the Soul of Indian Woman (पृ० १४६) में यह मत प्रकट किया है कि सम्भवतः विधवाओं का विवाह ४०० ई० से हिन्दू समाज में प्रचलित हुआ है, इसी समय से बाक विवाह होने लगे थे। भाता-पिता एक ऐसी व्यवस्था चाहते थे जिसके अनुसार उनके द्वारा किया गया सित्तियों का वैवाहिक सम्बन्ध ईश्वरीय व्यवस्था की स्वीकृति प्राप्त कर सके तथा इसी इस बात का विश्वास हो उनके कि उनके बच्चों को दाम्पत्यजीवन सुखमय होगा। आमतौर पर विवाह की प्रथा कम हो जाने पर भी भाता-पिता सम्भवतः विधवाओं के विवाह पर बहुत बल देते हैं, क्योंकि वे इससे बंद-बधू के चुनाव के जारी अक्षयवाधियों से बहुत कुछ मुक्त हो जाते हैं। वैवाहिक जीवन सुखमय

मछली के निश्चित होता है। मत्त. के व्यक्तियों में अनुकूलता देखने के लिए अन्तर्मुखियों का विस्तार आवश्यक हो जाता है। विवाह के समय घर और बंधु की कुम्हणियों देख कर शुभानुभूति स्वर करते की मोटक भाव लेना कहते हैं। यह चेष्टा कई भागों में बांटा जाता है—ग्रहमौलिकूट, राशिमुट, वर्षमुट, अक्षमुट, ताराकुट, योगिमुट, पत्र सौम्यमुट, विनायी कुट। तारीख के वर्षमास युग में कलित पञ्चांग तथा उसके आधार पर की गयी गणनाओं का आगम्य होना सर्वथा स्वाभाविक है। यदि बाँड़ी देर के लिए पत्र मान भी बिना जाय कि ग्रहों और नक्षत्रों का हमाये नष्ट और स्वभाव पर असर पड़ना है, जो भी विवाह में कई कारणों से इनके फलदात और शुभानुभूति की मुहूर्त में गणित करने के प्रचलन कारण है। गणना कारण तो यह है कि प्रतिवर्ष जन्म-मरणियों में जन्म के समय के ग्रहों और राशियों की गणना कल्पित होती है। पञ्चांगकार्य कहते हैं कि जन्म के समय के ज्ञान में एक ही पत्र का अन्तर होने से आकाश-माला या अन्तर ही जाता है।

अन्तर्मुख बनने वाले पञ्चांगजी की शायद ही कभी किसी जन्म के जन्म का ठीक समय बताता पाता है। वेदांग में स्पष्ट नहीं वर्णित, अधिकारी नहीं होती और बच्चा पैदा होने के कई दिन बाद पञ्चांगजी की बताया जाता है कि अग्रे कि समय का समय पत्रानु के जड़का हुआ है। यदि पञ्चांगजी में समय के समय का कुछ अक्षिप्त करीबी में जानना चाहता तो यह उलट मिलता है कि गाने घर कर आ गयी थी। पञ्चांगजी की के लिए इतना संकेत पर्याप्त है। समय के इसी निर्माण और अनुकूलन के आधार पर पञ्चांगजी की समयों की ठीकी हमारत उठाते हैं और इसी गणनाओं के द्वारा देखी गयी अन्न और प्रभुति की स्थिति का निर्णय करते हैं। फिर इसी पर अधिकतर विश्वास करके विवाह काल उपरिष्ठ होने पर मङ्गल-सङ्कीर्णों के आजीवन भाग्य विधान का अनुष्ठान होता है। इससे अग्रकर क्या विद्वन्मता होगी? उपरिष्ठ कारणों से जन्मकुम्हणियों के आधार पर वैवाहिक विचार को सामाजिक एवं भाग्यवश नहीं समझा जाता चाहिए। किन्तु हिन्दू विवाहों में इसका बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। ऊपर हमने साठ कुट विनाये है। इनके आधार पर १६ गुण नियत किये गये हैं। जिस प्रकार विस्मयानियों की परीक्षा में नियत अंक लेना आवश्यक होता है और उन्हीं अंक योंकी भासा परीक्षार्थी अनुस्तीर्ण समझा जाता है, वैसे ही नियत १६ और बंधु के लिए भी है। उन्हें १० प्रतिवर्ष अर्थात् १५ गुण

होने पर वे इसे समय का परिचाय समझते हैं। वैदिकान में लिखा है कि जन्मपत्री में विरक्त रखना एक ओर तो यह सुचित करता है कि भाग्य की रेखा मजबूत है और दूसरी ओर इसे पहले से ही चलने तथा अनुकूल बनाने का प्रयत्न किया जाता है। अतः वैदिक युग में भी जन्मपत्री मिलाना आवश्यक समझा जाता है तथा कई बार वैवाहिक विचारों में इसका स्पष्ट रूप से उल्लेख किया जाता है।

अवध प्राप्त करने चाहिए और उपयुक्त २८ बूटों में अलग-अलग २० प्रतिशत शुभ करने चाहिए। इस विषय में निम्ने अधिक कुतूहल ही थे सुल्लिखितप्रति, दीपिका, राजमार्गद आदि ग्रन्थ देख सकते हैं।^{१०}

धैर्यात्मिक प्रशिक्षणों के सुपरिणाम

हिन्दू विवाहों में उपयुक्त प्रशिक्षणों के कारण घर और बधू के चुनाव में बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। लड़के तो थिर भी कुछ देर तक खिचाहित रह सकते हैं, किन्तु बन्धुओं का विवाह दो साधारण होकर कठिन हो पड़ता है। बन्धु के पिता का बर बूढ़े और उसे समुप्ट रखने में बितनी कठिनाइयाँ उठानी पड़ती हैं उन्हीं भूतबोली ही जानते हैं। एक सामान्यतः यह विस्तृत टीका कहा गया है कि जिस के घर में ब्याही कमा हो गया उसे जैसे नीच या लकी है। इन कारणों से हिन्दू घरों में बन्धु के आग घर बहुत कुछ बचता जाता है।^{११}

बद-बधू की चुनाव की साधुनिक प्रवृत्तियाँ

वर्तमान युग में बद-बधू के चुनाव में तथा इनके सिद् धारकता युगों के स्वल्प में कोई महत्वपूर्ण परिवर्तन ही रहें हैं। पहला परिवर्तन बद-बधू द्वारा अपना जीवन साथी चुनने में स्वतन्त्रता की सीमा कमजोर है। पहले बद-बधू का चुनाव पिता-पिता किया करते थे। आज विवाह के प्रचलन के साथ यह सर्वथा स्वीकार्यता का, माता-पिता द्वारा निर्धारित विवाह (Arranged marriage) हिन्दू समाज का सर्वप्रमुख नियम का। किन्तु वर्तमान युग में पिता के अतिरिक्त विवाह की आयु उन्नीस तक बढ़कर सामान्यता और स्वतन्त्रता की भावना से जोतप्रोत हिन्दू युवक-युवतियाँ इस बात की मांग करने लगे हैं कि विवाह जैसे महत्वपूर्ण विषयों के निर्धारण में उनकी सम्मति और सहभागिता की जानी चाहिए। इस विषय में हिन्दू समाज में होने वाला परिवर्तन एक हिन्दू नारी के निम्नलिखित कथन से स्पष्ट होगा—
“जब हमारा विवाह हुआ का तो मेरी आयु १० वर्ष की तथा पति की आयु १६ वर्ष की थी, मेरे माता-पिता ने विवाह के पूर्व मेरे पति की तथापन के भाता-पिता ने मुझे देखा था, किन्तु हम दोनों ने विवाह संस्कार से पहले एक दूसरे को नहीं देखा था। किन्तु पिछले कुछ वर्षों में एक गरीब मय का श्रीगणेश हुआ है, इसे लड़की देखा कहा जाता है। जब मेरी लड़की की सादी हुई तो उस समय यह प्रथा प्रचलित हो चुकी थी। जैसे तथा उसके साथी पति ने

१० इस विषय के संक्षिप्त वर्णन देखिए हिन्दी विश्वकोश (कलकत्ता) खण्ड १६, मोक्ष तन्त्र, पृ० ४४६-४७।

११ इससे विषय वर्णन के सिद् देखिए हरिवर वेदार्थकार—हिन्दू परिवार नीमांत पृ० १६७-२०७।

एक दूसरे को देखा, किन्तु उन्हें एक दूसरे से बात करने की अनुमति नहीं दी गयी थी। किन्तु जब मेरी पोती का विवाह हुआ तो उनके-अइयाँ ने आपस में बातचीत की और विवाह में पहले उन्हें घर से बाहर धूमने जाने की अनुमति भी दी गयी थी। यद्यपि उनका यह विवाह साता-पिता ने तम भिदा कर^{२०}।^१ साता-पिता द्वारा विवाह नय करने में न केवल तत्काल को उनके परिपक्व अनुभव का पूरा लाभ मिश्रता है, अपितु वे अपने माथी का चुनाब करने में होने वाली परेशानियों और कंसादों में बच जाते हैं। यह तथ्य बम्बई में स्वयं नय में भारतीयिका कमाने वाले तथा अनुभवजन्य कार्य करने वाले एक नवयवक ने निम्नलिखित विवरण से स्पष्ट हो जायगा—“यद्यपि मैं ११० एवं ७० आयु करने के बाद जोरन विवाह करना चाहता हूँ, किन्तु मैंने इस प्रश्न पर विचार नहीं किया है कि मैं ऐसा प्रस्ताव की लड़की से किया करूँगा। इस विषय में मैं अपने पिताजी पर श्रद्धा रख रहा हूँ की वे मुझे एक लड़की के लिए और मुझे इस विषय में कोई परामर्श नहीं उठावेंगे। मैंने मेरे साता-पिता से मुझे कुछ इस विषय में चुनाब करने का अनिवार्य प्रतिपाद दिया है, शायद के इस बात का अन्ती तरह जानते हैं कि मैं उनकी दृष्टिकोण से प्रतिकूल नहीं रहूँगा।”^{२१}

राज द्वारा किये गये एक सर्वेक्षण में नर-यव के चुनाब के विषय में अविवाहित (unmarried), हाल में विवाहित (young married) तथा विरक्तान में विवाहित (older married) स्त्री-पुरुषों से पूछा गया था कि वे अपने जीवन-साथी के चुनाब के बारे में पूरी स्वतंत्रता (complete choice) चाहते हैं, कुछ स्वतंत्रता चाहते हैं या कोई स्वतंत्रता नहीं (no choice) चाहते। इस विषय में नर-नारियों के उत्तर निम्न-लिखित तालिका में प्रकाश किये गये हैं।^{२२}

नारियाँ	चुनाब में पूरी स्वतंत्रता	कुछ स्वतंत्रता	स्वतंत्रता का न होना	सर्वप्रयोग
अविवाहित	४	५	५	१४
कुछ समय पहले विवाहित	१	५	५	११
विरक्तान से विवाहित	२	१०	१०	२२
निम्नो की कुल संख्या	१२	२०	२०	५२

^{२०} एजीव दास—वी. ई. कैमिली इन इट्स सर्वेस रीविंग, पृ० २५२

^{२१} एजीव दास—पृ० ५०, ५० २५२

^{२२} एजीव दास—पृ० ५०, ५० २५५

पुरुष	चुनाव में पुरी स्वतंत्रता	कुछ स्वतंत्रता	स्वतंत्रता का न होना	सर्वयोग
अविवाहित	१८	२१	३	४२
कुछ समय से विवाहित	६	८	१०	२०
विवाहान्तर से विवाहित	—	७	४	११
पुरुषों की कुल संख्या	२०	३६	१७	७३
सर्वयोग	२४	६६	३७	१२७

इस तालिका से यह स्पष्ट है कि विवाहान्तर से विवाहित स्त्री-पुरुषों की अपेक्षा अविवाहित नर-नारियों में यह इच्छा विभिन्न रूप में अधिक मात्रा में है कि उन्हें वैवाहिक साथी चुनने में स्वतंत्रता होनी चाहिए। ४२ पुरुषों में केवल तीन ही पत्नी का चुनाव माता-पिता पर छोड़ना चाहते थे। अविवाहित स्त्रियों में १७ पुरी या आंशिक स्वतंत्रता चाहती थी और पाँच सब की अपने पति के चुनाव का भार माता-पिता के कंधों पर ही डालना चाहती थीं। इस तालिका की व्याख्या करते हुए इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि यद्यपि अविवाहित स्त्री-पुरुष वैवाहिक साथी के चुनाव में पुरी स्वतंत्रता चाहते हैं, तथापि यह संभव है कि उन्हें यह स्वतंत्रता न मिले। अब भी नर-नारियों की ऐसी संख्या पर्याप्त है जो चुनाव का भार माता-पिता पर डालना चाहती हैं। कुछ पुरुषों ने माता-पिता द्वारा निर्धारित विवाहों का समर्थन इस आधार पर किया है कि वे विवाह कई पलायनों में करते आ रहे हैं, वे सुखमय होते हैं, विवाह का निर्णय इतना महत्वपूर्ण है कि इसमें माता-पिता का परामर्श और व्यवधान अत्यावश्यक है।

आधुनिक हिन्दू युवक और युविका अपने वैवाहिक साथी में जिन गुणों की आवश्यक समझते हैं, उन पर गंभीर सर्वेक्षणों ने बहुत प्रामाणिक प्रकाश पड़ा है। पहले बद-बधू के पुत्र माता-पिता द्वारा दत्त होते थे, अब वही भाग्य में विवाह होने के कारण युवक-युवती इन पर विचार करने लगे हैं। रास द्वारा किये गये सर्वेक्षण के आधार पर अविवाहित तथा विवाहित नर-नारियों ने अपने साथी में जिन गुणों की आवश्यक समझा है, उनकी प्राथमिकता एवं महत्ता के क्रम से निम्नलिखित शायिका में स्पष्ट किया गया है।

भारत-भार के भौतिक युग

गुण	भार		भारत	
	अविवाहित	कुल समग्र पूर्व-विवाहित	अविवाहित	कुल समग्र पूर्व-विवाहित
परिज	४१	३	१७	११
समानता	३४	७	१२	३
जलम जिला	२८	१	॥	२
भार का कार्य	२१	७	—	—
रूप	१६	२	१	—
सायाविकता	१३	—	४	—
सैमनिक संबंध	१०	—	१२	५
सर्वगत	१६३	२०	४४	२१

अभ्युक्त तानिका में दिखे गये युगों का स्वरूप इस प्रकार था—स्त्रियों के लिए परिज का अभिप्राय सती, साध्वी, ब्रूह, पवित्र और नैतिक होंग तथा पतिव्रतों के लिए ब्रतका कार्य उदारता, सम्मर्प, ईश्वरपरायी तथा विभक्तनीयता के युग थे। मन-तारियों में समानकष से परिज-सम्बन्धी इन युगों को अपने वैवाहिक सौकी के युगाध में पहला स्थान दिया जा, इससे यह स्पष्ट है कि दोनों एक दूसरे में विस्मान, भरोसे और सम्मर्प को रूप, धन-लाभ अन्य-पुणों की भेक्षा अधिक कह्यवपुं समझते हैं। दूसरा गुण समानता का है। यह हिन्दु-विवाह में पति-पत्नी के सम्बन्ध में एक नूतन प्रवृत्ति को सूचित करता है।^{२१} अब एक भारतीय नारी की सीता जैसे भावनों का अनुसरण करते हुए पति की सेवा करने के लिए कहा जाता रहा है। पति-पत्नी में स्वामी-सेवक का सम्बन्ध जाता जात रहा है, किन्तु अब उत्तम समानता की भावना को अभीष्ट समझा जाने लगा है। अविवाहित स्त्री-पुरुषों ने अभ्युक्त सर्वज्ञ के यह भावना बड़ी प्रबलता से प्रकट की है, सात अविवाहित पुरुषों ने स्पष्ट रूप में यह निष्ठा है कि वे अपनी पत्नियों पर शासन नहीं करना चाहते, बर सिद्धों ने कहा कि वे पति को अपना स्वामी (Boss) बनाना पसन्द नहीं करती हैं। कुछ पुरुषों तथा बर सिद्धों ने पति-पत्नी में सहा भाव (Companionship) का तथा सात पुरुषों ने मित्रता (Friendship) का सम्बन्ध बनाने का समर्थन किया; इसके बाद सिद्धों को यह कह दिया गया। २८ पुरुषों ने सुविहित सिद्धों की भाँव की, अधिक दृष्टि से स्वास्त्वमी होने के कारण

परिमर्शों के लिए भी शिला को बहुत महत्व दिया जाता है। इसके बाद पुष्पों में स्त्रियों के लिए दूरैयू काथों में धनता को तथा सुहृदिनी होने को अधिक महत्व दिया।

एक दूसरे संस्कृत श्लोक^{२४} के अनुसार कन्या विवाह में मय का विशेष महत्व होती है। बिम्बु इस संबंध में स्त्रियों में पुष्पों में रूप के गुण को कोई महत्व नहीं दिया। १८ पुष्पों में सामान्य रूप से सुन्दर पत्नी को माँग ली, किन्तु इसके साथ ही हम ने यह भी कहा कि पत्नी अत्यधिक सुन्दर नहीं होनी चाहिए, क्योंकि अति सुन्दरता बड़ी नजरबन्धक होती है। यह हमें 'भार्या व्यवहारी शत्रुः' की पुष्पों काहावत का स्मरण यादगरी है। भारत में यद्यपि पति उससे रंग को अधिक पसन्द करते हैं, किन्तु पुष्पों में अधिक रूप व्यक्ति में पत्नी को श्वेत रंग पर बल दिया। स्त्रियों में सामान्य रूप से पुष्पों के रूप के गुण को विशेष महत्व नहीं दिया। वैवाहिक सम्बन्ध का आशय एक दूसरे के प्रति प्रेमपूर्ण, छायापूरित रखने वाला तथा एक दूसरे का सहयोग तथा सह-यत्ना आदि भाव्य व्यवहार है। इसे पुष्पों की अपेक्षा स्त्रियों में अधिक महत्व दिया। धन-सम्पत्ति को मान्य एक विवाहित स्त्री में तथा एक अविवाहित पुरुष में महत्व दिया। साथ पुष्पों का यह कहना था कि पत्नी के चुनाव में धन उसके लिए कोई सहता नहीं रखना। कुछ पुष्पों में यह भी आशय प्रकट की कि धनी घर की स्त्री में धनी सम्पत्ति का अधिमान होगा, वह अपने को पति में उका समझेगी, मने परिवार में उसका विचार बलित होगा, अतः धनी घर की पत्नी में विवाह करना ठीक नहीं है।^{२५}

२४ कन्या हरयते क्वं नता विलं पिता सुतम् ।

वर्णधवाः कुलमिवरन्ति निष्ठासमिदरे ववाः ॥

वि० एमस्मृति, मूलं च सीतं च समाचारां च विद्यां च विलं च चतुर्विंशतम् ।

एतात्पुत्रान्तर्या विविधम् देवा कन्या मुनेः शोचन्निन्तरीक्षम् ॥

२५ एतौल दाल—पृ० १०, पृ० १५६

१७-२०, २१, १२, १-२) तथा अधिकतम धर्मग्रन्थ में वह संख्या छः ही है। आपस्तम्ब वैशाख और प्राजापत्य की भी छोट्ट देता है और अगस्त्य ३० पु० अग्निमं यो की मानस नाम से तथा ब्राह्मण्य की क्षात्र के नाम से कहता है। महाभारत का अनुशासन पर्व (४४ अ०) ब्राह्म, क्षात्र, गान्धर्व, आसुर और दक्षिण-में नाम भेद ही मानता है। मानव-मूल्यानुष के मत में विवाह के केवल दो भेद हैं—ब्राह्म और गौण। किन्तु अधिकतर विद्वानों ने विवाह के उत्पत्तिक आठ भेद माने हैं और धनु ने निम्नलिखित रूप में इनके वर्णन किये हैं।

विवाह के आठ भेद

(१) ब्राह्म—जब कन्या का पिता पैदा की विद्याएं एवं आचार्य्यन्तर को स्वयं सुभाकर अपनी कन्या को बन्धों तथा भूषणों में अलंकृत करके उसे दान करता है तो उसे ब्राह्म विवाह कहते हैं (३।२७)।

(२) वैश—मृगशिरसीमादि वर्गों के विष्णुत या दीर्घकाल आसी होने पर प्रजापति याव का कार्य करने वाले ऋषिद्वि के लिए आभूषणों से मृगशिरा कन्या के दान की वैश विवाह कहते हैं (३।२८)।

(३) आश्व—जसादि दो धर्म-कार्य की निधि के लिए घर में गी-वैश की एक लोही या धाँजी लेकर विधिपूर्वक सम्प्रादान करना याही विवाह कहलाता है (३।२९)।

(४) ब्राह्मण्य—कुल दीर्घा एक साथ मिलकर धर्म का आचरण करना इस प्रकार जब आदेश से करके तथा घर की पूजा करने कन्या का दान किया जाता है, उसे ब्राह्मण्य कहते हैं (३।३०)।

(५) आसुर—कन्या के पिता यापि को तथा सम्बन्धियों की कन्या के बधने में प्रजापति धन देने पर जो कोई इच्छापूर्वक कन्या का ग्रहण करता है, उसे आसुर विवाह कहते हैं (३।३१)।

(६) गान्धर्व—कन्या और घर का अपनी इच्छा से एक दूसरे के प्राण की संयोग होता है वह गान्धर्व विवाह कहलाता है (३।३२)।

(७) दक्षिण—जब कन्यापक्ष के लोगों का हस्त करके, कन्या के घर की रक्षा करने नामी दीवार आदि का भेदन करके, रांती हुई और मिलायी हुई कन्या की अवस्थाती घर से भगा दिया जाय तो उसे दक्षिण विवाह कहते हैं (३।३३)।

(८) वैशाख—रांती हुई, नखों में बँधी या ऊनरु कन्या को एकान्त में जब घर से दूरतक ग्रहण करता है तो सब विचारों में अंधम इस विवाह की वैशाख विवाह कहते हैं (३।३४)।

है। मनु के मंत्र में (३।३७-३८) बाह्य विवाहों द्वारा उत्पन्न पुत्र पूर्वजों की १० और वंशजों की १० तथा अपनी एक—द्वय प्रकार कुल २१ पीढ़ियों का गणना करता है। श्रौत विवाह में उत्पन्न सम्मान १५ पीढ़ियों का, ब्राह्मणपर विवाह की मन्त्रि ११ पीढ़ियों का और आर्य विवाह से पैदा हुई सम्मान मंदर अपनी तथा पिछली पीढ़ियों का पात्र मुक्त करती है।^{१५} धर्मशास्त्रकार यहाँ बार प्रकार के विवाहों का अन्तः समझने के और उनकी प्रशंसा करने के लिए ही उन्हीं ऐसे मंत्र लिखे हैं। विष्णुसाम यज्ञवेदमय स्मृति पर टीका करता हुआ विष्णु है कि ये मंत्र क्यों ब्राह्मण विवाहों की प्रशंसा के लिए हैं (स्तुतिमात्रमेव)।

विवाहों का नामकरण

य गोचर उत्तम सामान का पात्र तथा कई पीढ़ियों का पात्र मुक्त करने के लिये पहले बार विवाहों की प्रशंसा की शर्तों द्वारा की गयी है, अतः उनके नाम भी बहुत अच्छे रहे होंगे। ब्राह्मणों, देवों और ऋषियों के स्मृत्यानुसृत विवाहों को ब्राह्म, देव और आर्य कहा गया है। विष्णु सबसे ज्ञान वाले विवाहों को ब्रह्म, आमु, वैवाच नाम दिये गये हैं। कुम्भूक मठ के मनु ३।२१ की टीका में लिखा है—बाह्य, राक्षस आदि नाम सामान के व्यवहार तथा स्मृति और निर्या प्रयोजन करने के लिए हैं। अनेक विद्वानों ने यह कल्पना की है कि आमु, राक्षस आदि जातियों में प्रचलित होने से इन विवाहों का राक्षस, आमु आदि नाम दिये गये हैं। बम्बई हाउसहोल्ड के जम भी बीर ने विजयनगराभू समाधि लक्ष्मण के मन्दिर में यह लिखा था—“हिन्दू शास्त्रों द्वारा स्वीकृत विवाह के विभिन्न रूप ऐतिहासिक दृष्टि से उन विभिन्न धर्मवादों और जातियों के आधार पर हैं, जो समुदाय बाद में एक हिन्दू जाति के रूप में परिणत हो गये। आमु नाम यह सूचित करता है कि यह दस देश के मूल निवासियों या आर्यों के आक्रमण से पहले यहाँ बसने वाले वंशजों में प्रचलित था।^{१६} श्री विष्णुसामि विनायक वैद्य असीरिपा के रहने वालों को अमुर बताते हैं और यह कहते हैं कि उनमें यह गिजाज या कि बर कन्या के पिता को कुछ शुल्क देकर कन्या को छाप भादी करता था, मरु: ऐसे विवाह को आमु विवाह कहते थे। आगे के विवाह के प्रकरण में, उसके नाम पर विशेष रूप से विचार किया आया, यहाँ इतना ही कहना पर्याप्त है।^{१७} वायुनिक विद्वानों की कल्पना की प्रेरणा कुम्भूक भी यह व्याख्या अधिक सही प्रतीत होती है कि ये नाम विवाहों की निर्या या प्रशंसा को सूचित करने के लिए रखे गये हैं।

^{१५} मनु (३।३७।३८), मि० पात्रमन्त्र १।३८-१०। आर्यशास्त्र मनुस्मृति (१।६)

^{१६} विजयनगराभू समाधि लक्ष्मण ८ अ० २४४।

और प्रकार के विवाहों का क्रमिक विकास

इन विवाहों में एक सामाजिक क्रमिक विकास दिखायी देता है। मानव मू० सू० (१।७।८) की ही प्रकार के विवाह मानता है—बाह्य और गौण। बाह्य विवाहों में कन्या को अलङ्कृत करके दान किया जाता था और गौण में कन्या के पिता को कन्या का मुल्क या दाम देना पड़ता था। लसिष्ठ (१।३५) गौण विवाह की भावना का उल्लेख करता है। इस नाम से यह बात होती है कि यह विवाह उस समय साधारण अनन्य में बहुत प्रचलित था, किन्तु क्रमिक मनों वाङ्मयों की भाँति कन्या को दान में देना पगल करती थे और न ही के उसे लौट देना चाहते थे। ये उसका सम्भरण करना अधिक पगल करते थे। युद्ध में प्रायः उन्हें इस प्रकार के अवसर मिलते थे, जहाँ उनमें दामन या शत्रु विवाह की परिपाटी प्रचलित थी। इस प्रकार बाह्य, अग्रिम, वैय्य तीनों प्रविधियों में बाह्य, दामन (बाह्य) और भागुर (भागुर) विवाह बहुत पहले से प्रचलित थे। इनकी अतिरिक्त प्रथम विवाहों की (Law of marriage) मान्य विवाह कहा गया है। यह विवाह संभवतः शम्भु नामक प्रविधि में प्रचलित होने से ऐसा कहा गया। और अत्यन्त प्राचीन विद्वानों को कल्पना है कि गान्धर्व विवाह के नाम के आधार पर यह भी अन्य विवाहों की अतिरिक्त नाम दिये गये।^{१०} बाह्य विवाह के बाद बाह्य, वैय्य और प्राजापत्य नामक अवन्तर में चलते हुए और इस प्रकार हिन्दू जातियों में आठ विवाहों का विकास हुआ।^{११}

विवाहों का वर्गीकरण

आठ प्रकार के विवाहों के लक्षणों को ध्यानपूर्वक देखने से यह विदित होता कि इनकी चार वर्गों या श्रेणियों में बाँटा जा सकता है—(१) वे विवाह जिनमें कन्या

१० भागुराचार्य—मनु स्मृति अध्याय १०

११ स्टेनबैक (Stenback) ने लिखा है कि मनु प्रमाणों के अनुसार वे भारतीय विवाह प्रथा के विकास के सम्बन्ध में कुछ कहा कर सकते हैं, कि वे समानतापूर्ण साक्ष्य के अनुसार विवाह की संस्था के विकास को देखते हुए आठ प्रकार के विवाहों के विकास के सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि इनमें सबसे प्राचीनतम रूप दामन और वैय्य विवाह का है, इनसे भागुर विवाह (Marriage by purchase) तथा शम्भु विवाह (Marriage by Sham purchase) का विकास हुआ, इसके बाद पिता द्वारा कन्या से बिना पूछे उसके विवाह करने की व्यवस्था (बाह्य विवाह, वैय्यविवाह, प्राजापत्य विवाह) विकसित हुई, मनु में यह-यह की अपनी स्वतन्त्र संहति से होने वाले विवाह (गान्धर्व विवाह) तथा शम्भु का विकास हुआ (अतिरिक्त स्टेनबैक, पृ० ४२२-२३)।

का नाम मुख्यतः है। इस वर्ग में प्रायः, दैव, आर्ष और आमात्यरस नामक चार प्रकार आते हैं। (२) कुछ विवाहों में बधू को निम्न कुछ धन या मुक्तक देना पड़ता था (आभूषण विवाह)। (३) अब बार और कछु अगली इच्छा से मेमपूर्वक विवाह करने (माध्यम विवाह)। (४) सब बन्धन का हरण किया जाने, उस समय हरण के प्रकार-भेद में—राक्षस और पितृसव को प्रचार के विवाह होते हैं।

सांख्यिक विवाहों के दम में भी कोई मर्यादा के लिए, इन विवाहों को विधायक कय में देखना अधिक श्रुतिभाजनक है। कुछ समाजशास्त्रियों ने यह कल्पना की है कि पहले कलाओं को अपहरण करने पराने या पशुस विवाह की पद्धति प्रचलित थी, इसमें बहुत बलवत्ता थी होती थी। इसने चलने के लिए कयों का शरीर का लया जाने लगा और अन्त में बलवान प्रथा बलवत् हुई। यह कल्पना समाजिक जलजल है, किन्तु आगे कथनकर हम देखेंगे कि सत्य नहीं है। विषय की मायना और सरलता के लिए, यहाँ सामान्य के नाम में वर्णना विधीयत कय में इन विवाहों में भी कोई या बलवत् विधा मानना अभीष्ट नहीं है। राक्षस और पितृसव का, फिर माध्यम का और अन्त में प्रायः, आर्ष, आमात्यर और दैव का।

राक्षस व पितृसव विवाह ✓

राक्षस एवं पितृसव नामक दोनों प्रकारों में बन्धन का अपहरण किया जाता था। स्मृतिकारों में इन विवाहों की चार विधा की है। यन्त्र में पितृसव का अन्तः विवाह कहा है। इन विवाहों के नाम भी इन बातों श्रुतिगत करते हैं कि मायका-र दम्पे युवा की दृष्टि से देखते हैं। राक्षस और पितृसव दोनों ऐसी जातियों के नाम हैं जो प्राचीनकाल में दुष्टा तथा निम्न की दृष्टि से देखी जाती थी। कहा जाता है कि इन जातियों में इन विवाहों का विधायक प्रचार था, अतएव दम्पे पैसा नाम विधा गया था। ये राक्षस और पितृसव हिन्दुस्तान की मूल जातियों में से हैं। ये जातियाँ लंका तक फैली हुई थीं। राक्षस राक्षसों का राजा था। उसने पत्नी हुई भीता का पंचवती से बलपूर्वक अपहरण किया था।

किन्तु हमें यह कल्पना ठीक नहीं प्रतीत होती। इस कल्पना के टीका न होने का मुख्य कारण यह है कि प्राचीन भारत में इन प्रकार के विवाह दक्षिण में विधायक कय से प्रचलित थे। महाभारत के समय अत्यन्त आन्य तथा यूजनीय समझे जाने वाले महापुरुष भीष्मपितामह तथा भीष्म ने कन्याओं का अपहरण या राक्षस विवाह किया था। भीष्म ने तो स्पष्ट रूप से कहा है—“अथर्व शूद्रवीर जातियों के लिए स्त्रियों की बलात्कार कर के धना उत्तम पाने हैं” (महाभारत= १।१२१।२१-२३)। अथर्व कई स्थानों पर इसे आह्वय अथर्व जातियों के लिए उचित विवाह कहा गया है। श्रुति= ४० सू० (१।१६।१४) और महाभारत (१३।४०।१०) में इसी अर्थ का प्रयोग है। यह नहीं कहा जा सकता कि राक्षसों में प्रचलित होने से इस विवाह का यह नाम पड़ा।

राक्षस नाम का ब्रह्मर्षी कायम यह है कि स्मृतिकार इसे नामस्मर करने से। उन्होंने इसकी बहुत निन्दा की है। वे इस विवाह को समाज में बन्द करना चाहते थे, अतः उन्होंने इसे राक्षस और वीणाच के बुरे नाम प्रदान किये हैं। अंग्रेजी में कहा जाता है कि कुत्ते की बुरा नाम दे दो और गाली पर लटका दो (Give dog a bad name and hang it)। राक्षस और वीणाच विवाहों के सम्बन्ध में संभवतः श्रुतिकारों ने यही किया। पहले इन विधियों में कुत्तक का कथन उद्धृत किया जा चुका है।

उपनिषद् कल्पना के आधार पर, यह मंत्र उद्गामी या उद्गामी है कि यदि वर्णभ्रातृ-कर्त्ताओं की वे विवाह नामान्तर के भी उन्होंने इसका वर्णन क्यों किया? इसका वर्णन करने से तो उन्हें ईश्वरता प्राप्त हो गयी। श्री मैकडोनाल्ड ने इस विषय पर व्याख्यान प्रदान किया है कि इन विवाहों को बीच भालकर हिन्दुसाम्राज्य में विवाह में धर्म को स्थापित करना है। वस्तुतः स्मृतिकार इन्हें नामस्मर करते हैं, इनको खीन निन्दा करते हैं। यदि इन विवाहों का उन्होंने उल्लेख किया है तो यह इनको निन्दित एवं विद्वष्ट इनाम के लिए ही किया है। दूसरा कारण यह है कि बहुराज्य के समय में समाज में अशान्तिपूर्ण एवं अन्यायपूर्ण कर्त्तव्यों का विवाह प्रत्यक्ष समझा जाने लगा। उस समय राजसूय विधान या कन्या-अपहरण की प्रवृत्ति की शक्ति थी। यदि शासक इस विवाहों का उल्लेख न करते तो उन कर्त्तव्यों के साथ हीर प्रत्याग होता। वे कन्याएं एक बार कन्या भिये जाने पर विवाह के अयोग्य बनती जाती। उस अवस्था में इन कन्याओं को खबरदारी बाजीगम विधियां रहती पड़ती। ऐसी बलापी कन्याओं की रक्षा आवश्यक थी। मनु और याज्ञवल्क्य ने ऐसी कन्याओं की रक्षा के लिए विस्तृत विधान बनाये। मनु (५:१३१-१६६) तथा याज्ञवल्क्य (२:१८७-८८) ने यह स्पष्ट है कि कन्या का हारण करने वालों की काया के साथ हीम और सप्तमही द्वारा विवाह कर लेना चाहिए, यदि कोई ऐसा नहीं करता है तो वह दण्डनीय होता है। किन्तु इस अवस्था में कन्या की क्या स्थिति होती—यह बात मनु ने स्पष्ट नहीं की, किन्तु बलिष्ठ (१७:७३) ने स्पष्ट रूप से कहा है कि यदि कन्या का अपहरण बलपूर्वक हुआ हो और बला में उसका संन्यास हुआ हो तो वह कन्या निमित्तपूर्वक दूधने की देनी चाहिए,^{१५} उसे काया अर्थात् अविवाहित ही समझना चाहिए। शी० ध० सू० (४:१:१७) ने भी यही व्यवस्था की है। इन कन्याओं की रक्षा के लिए स्मृतिकारों को सावधानी से वे दोनों विवाह मानने पड़े। इस प्रसंग में यह स्मरण रखना चाहिए कि आपस्तम्ब और बलिष्ठ वर्णसूत्र ने वैशाख विवाहों का उल्लेख नहीं किया। इसका एक कारण तो यह हो सकता है कि वे ऐसे विवाहों को पसन्द नहीं करते थे, किन्तु दूसरा कारण यह हो सकता है कि उनके समय में समाज में इन विवाहों की प्रथा ठठ चुकी थी।

^{१५} बलिष्ठ वर्णसूत्र १७-७३, शीला वर्णसूत्र ४:१:१७

राज्यत और वैशाख विवाहों के मधुपर्ग और वन में धर्मग्रन्थों में कुछ समवेद विवाह होता है। आश्व० ६० पू० (१६१७) वैशाख विवाह को उत्तम से पहले स्थान देता है और उसे राज्यत में अधिक उत्कृष्ट समझता है। इसका कारण यह है कि वह विवाह का मध्यम मनु के शर्था अधिष्ठ करता है। उसके मन में वैशाख का अर्थ सोरी के मधु का अग्रहण है और जब वह सोरी के मधुव नहीं होता तो वह शनि द्वारा कटया का अग्रहण करता है, अतः वैशाख विवाह राक्षस की अपेक्षा अधिका उत्तम है। कामधूज भी भावनात्मक के मत की पूर्ति करता है। काव्यायन कामधूज (३४, २४) वैशाख का वर्णन करता हुआ लिखता है कि 'अष्टमी अन्निका' आदि के दिन गोपिका की शादी या गोपिनी अन्निक नंग पादक लगाव आदि विवाहक साधक के पास अशुभित एकाग्र स्थान में बिगड़ी रहाने से कि आये और उती अन्निका में गोपिका का घर उसे प्रतिष्ठित करने काहाना के घर में आग लगाकर विवाह संस्कार करे। यदि मधु भी संभव न हो तो अन्न में वाष्पायन राजस विवाह की अनुमति देता है। जब कथा हूम्ने वध या अग्रहण की जा रही हो, तो उस समय सायक अपने निक्षों के साथ कथा के मधुपर्ग पर हमला करे, उन्हें डर कर भगा दे या मार दे और कथा का अग्रहण करे। राज्यत और वैशाख में आदि लक्ष्मी में अन्नक हूँ, किन्तु इन दोनों में कथा का हस्त भुग्यस्तु थी। किन्तु राज्यत विवाह में कथा का अग्रहण समपूर्वक बिना राता का और वैशाख में प्रायः यह कार्य उसे धाका देकर होता था।^{१६}

- १.३ वैशाख विवाह के छोटे या कम घर आयोजित होने का स्थल वर्णन यात० १.६९ (मि० संख ४६) में है। विवाहकाराने इसकी व्याख्या करते हुए कहा है कि कथा का लीमी हुई हो, उस समय उसे छोटे से व्यवहार करने के आभा वैशाख विवाह है। आद्य धर्मग्रन्थों तथा स्मृतियों में दिये गये विवरण से यह स्पष्ट है कि कथा के छोटे या कम से व्यवहार में निम्नलिखित परिचयिता होती थी—
(क) कथा की पूरी होती थी। (ख) कथा सप्तपथ या अन्य किसी प्रकार के गयी से बेहोश या अचेत होती थी। इस वशा में कथा की इच्छा के विच्छेद उसके मृत्यु सम्बन्ध करते उसका अग्रहण किया जाता था। वैशाख में छल का तथा राज्यत में वन का व्यवहार सम्पूर्ण होता था।

वैशाख विवाह को राज्यत विवाह के समान निम्निल, समस्त, अधिक से समस्त जाता था। मेम (इन्द्राद्वय नाम हिन्दू ता) ने इसकी तुलना औरंगजहाँ नामक शासनाय में सहता देर होने वाली सामाजिक कामोत्पत्ति के साथ की है। शास्त्र-कारों ने इसे व्यवस्था बनाते हुए वाह्यता के लिए इसे सर्वथा अहित ठहराया है (मनु, ३.२२, स्मृतिप्रदा १३.४२), किन्तु अन्निक, वर्णों और मृतों की दृष्टि विवाह की अनुमति को है (मनु ३.२१, बौधायन धर्मसूत्र ३.११।२-११।३)। मनु

राजसं विवाह के प्राचीन उदाहरण

प्राचीन भारत में राजसं विवाहों के सबसे अधिक उदाहरण महाभारत में मिल सकते हैं। भीष्मपितामह जैसे महापुरुषों ने कन्याओं का अपहरण किया था। महाभारतकार ने कन्या अपहरण के कार्य की भीष्म के वीरगाथापूर्ण कार्यों में विना है (१।१३।६, १२, ४६, १३)। भीष्म की मृत्यु पर क्या अपने पुत्र के इस कार्य का विशेष रूप से उल्लेख करती है। महाभारत में धर्म में दो हज़ार भीष्म द्वारा कर्माग्रह की कन्याओं के अपहरण का विस्तृत वर्णन किया है (१।१०२, २।१३३)। गृहका कर्त्तव्य बड़े राजसं एवं प्रभावशाली है। विचित्रवीर्य के बृद्ध होने पर भीष्म कन्याओं की स्वयंवर भीषण भूमि पर काती गये। स्वयंवर में जब कन्याओं ने इस बृद्ध का चेहरा भी देखा तो वे बड़ा से डरी गयी और राजाओं ने बृद्ध, मर्कट भाँसी से कुछ, निर्मज्ज बनकर वहाँ जाने वाले भीष्म की यह कह कर चिल्ला उठावी कि भीष्म ब्रह्मचारी के नाम से प्रसिद्ध है, किन्तु ब्रह्मचारी होने की बात सर्वथा मिथ्या है। भीष्म ने इस पर कुर्तिग होकर तारे राजाओं को पुनीती देते हुए उन तीनों कन्याओं को हार लिया, वरने यह पर बिछामा और राजाओं के कहना कि “आठ प्रकार के विधवाओं में अग्रिम स्वयंवर की प्रशंसा करी है, किन्तु धर्मवादी यह कहते हैं कि अग्रिमों का सर्वत्र करने वाली हुई कन्या लेच्छनीय है। मैं इनको बलपूर्वक हार करके यहाँ से ले जाता चाहता हूँ। तुम अपनी गरिमा के विनाश या पराजय के लिए प्रयास करो” (महाभा० १।१०१।१५३)। राजाओं के साथ भीष्म का और कुछ हुआ, राजा परास्त हुए। कान्यराज ने भीष्म का कार्य रोकरा बाधा, किन्तु भी अपने उद्देश्य में निष्फल हुआ। भीष्म ने तीनों कन्याओं विचित्रवीर्य को लीन की। इस प्रकार में भीष्म का यह भाव्य व्याप देने योग्य है कि धर्मवादी इस प्रकार काही हुई कन्या को उत्तम समझते हैं। दूसरे वर्णन (४।१३३) में भीष्म यह कहते हैं कि वे कन्याओं कीर्तनमुक्ता (मतिहास प्राप्त होने वाली) की, बतः यह उन्हें हार लाया।

दूसरा उदाहरण अर्जुन का है। अर्जुन ने युद्ध का हार किया और कृष्ण ने इस कार्य में उनकी पूरी सहायता की। अर्जुन की भीमदी के साथ असमर्थ में जाने का प्रायश्चित्त करने के लिए, १२ वर्ष का वनवास भोगना पड़ा था। इसी व्रत में वह दारुण में कृष्ण के पास जाता है। दैवतक व्रत के उत्तर में यह सहेलियों से अमृत मुक्ता की देखकर मुग्ध हो जाता है। कृष्ण ने उसका अनाक उहाड़े हुए कहा—“क्या वनवासी का मन भी कामभाव से मुग्ध होता है”। अर्जुन ने कृष्ण के आगे अपना हार मनोमाम खोलकर कहा और युद्ध की प्राप्ति का उपाय पूछा। कृष्ण ने उसे यह सलाह दी कि

(१।४२) इस विवाह की कन्या की मिला करता है। कन्यकात्मन मुद्रात्मन के अतिरिक्त अन्य सभी मानसकार वैवाह्य विवाहों को आठ प्रकार के विवाहों में मिला स्वयं देते हैं इसे विष्णुव्रत का अग्रिम विवाह मानते हैं।

"सन्धिपत्रों के सम्बन्ध के विवाह का तो विषय है लेकिन यह संभवसाध्य है, क्योंकि (सन्धिपत्रों के) सम्मान का कोई कारण (या ठिकाना) नहीं है कि वे कितने पराजित हों। सन्धिपत्रों के लिए वलपूर्वक हारण ही उत्तम उपाय है, सम्बन्धिता विवाह इसे गुरमीरी के विवाह का त्रेलु मानते हैं"। (गोश्वाम ५।१२।२१-२३)। कृष्ण ने इस परामर्श पर अर्जुन उत्पन्न हुए गए थे और यहाँ की पूजा करने कीटनी हुई मुभक्त को एक पर बैठ कर उसे अपने साथ लेने गया। वृष्णि बहुत है। उन्होंने अपनी भाव सुनाई। इस बात में कृष्ण ने अर्जुन को कांता मान करके हठा कहा—"अर्जुन ने जो कार्य किया है, उसी समान भयमान नहीं हुआ, आत्मन में इसमें भयानक नहीं कि इसमें भयानक परमान हुआ है। अर्जुन जानता है कि आत्मन भय के लोभी नहीं हैं, बात उसने समर्थकर विवाह की लपटा नहीं की, सम्बन्ध में लोभा नहीं है, बात उसने उसका भी प्रयत्न नहीं किया। गुरु की सन्धि सम्पत्ति का वान प्रज्ञा करके किया अक्षिप्त की बचता नहीं लगता और कथा केचन में भी कोई पुनः सहमत नहीं है। भरी यह सम्पत्ति है कि अर्जुन ने इन दोनों को लेना है, अतः अर्जुन ने धर्मपूर्वक सम्पत्तिार कथा का अपहरण किया है" (गोश्वाम ५।१२।३-६)। वृष्णि के इस उद्धरण से स्पष्ट है कि वे सन्धिपत्रों के लिए राक्षस विवाह का ही श्रेष्ठ समझते हैं।

दुर्योधन कर्ण के साथ कर्णसंग्रह की कथा के सम्बन्ध में गया (सन्धिपत्र ४ का अध्याय)। स्वयंभू में राजकन्या जब दुर्योधन को लौटकर आने लगी तो दुर्योधन ने यह आशय नहीं माना गया। अपने कन्या को अपने रथ पर बिठा कर वहाँ से प्रस्थान किया। दुर्योधन पर राजाओं ने आक्रमण किया। किन्तु कर्ण ने वह सब आक्रमणों का मुकाबला किया और राजाओं को युद्ध में हरा दिया। सन्धिपत्रों को धर्मपूर्वक बना कर जाना सन्धिपत्रों की विशेषता समझी जाती थी और इस कारण उनकी प्रशंसा होती थी। शांतिपत्र (१।१।१०।१३) में धर्मपति की प्रशंसा करते हुए कहा गया है कि उसने क्षीरवराज की महानु मेता को सर्वत्र लूटके समान मुन्दरी मोजा को अपक किया था। इसी अध्ययन में धर्मपति की यह प्रशंसा की गयी है। लक्ष्मी सन्धिपत्रों की कथा का अपहरण किया।

अर्जुन अपहरण के सम्बन्ध में कुछ बातें प्रमाण देने योग्य हैं। अपहरण अक्षिप्त-हरे सन्धिपत्रित कथा का ही होता था। सुभक्त, अन्धा, अन्धमानिक, अक्षिप्त भावि कुमारियों ही थी। यदि हमें से, कोई अपने मन में किसी पति का प्रयत्न कर के तो उसे लपटा अपने पति के पास जाने दिया जाता था। अन्धा मन से लपटाव का प्रयत्न कर लुकी थी, अतः प्रीत्य ने उसे लपटाव के पास जाने की समुक्ति दे दी। किन्तु कुछ अवस्थाओं में कोई व्यक्ति अपने पक्षधर्म से प्राप्त कन्या को इस प्रकार दूसरे के पास जाने देना सत्य नहीं करते थे। सन्धिपत्र (५।१६) में कहा गया है कि हरे लूटके लगी हुई कथा से एक वर्ष तक कोई धृष्टता न की जाय, प्रायः वह अवधि बीत जाने पर,

राक्षस विवाह की कानूनी विधेयता

इसके सम्बन्ध में विभिन्न धर्मशास्त्रों में दिये गये वर्णों के हकी मिश्रविहित विवेचनार्थ स्पष्ट होती है—(१) यह वनपूर्वक अपहरण द्वारा किया जाता था। कुछ धर्मशास्त्र इस प्रकार के युद्ध में पृथ्वी के माता-पिता तथा अन्य सम्बन्धियों को भारते (यनु = ३:३३, भारद = १:१६, २ महाभारत १३:४४) वा बर्षित करते हैं। वधू का भूत अपहरण आनुकारिक या प्रतीकवाचक (symbolical) न होकर वास्तविक होता था, क्योंकि इस समय पृथ्वी अपहरण विधे जान पर मूक चिन्तनी थीर होती थी। (२) इस विवाह में कन्या के माता-पिता कोई भाग नहीं लेते थे, इसमें कन्या को किसी प्रकार का दहेज नहीं दिया जाता था, इसी लिए कन्या के माता-पिता किसी प्रकार का कोई शुल्क नहीं लेते थे। इसमें कन्या अपहरण वा खोली द्वारा गाम्भीर्य शक्ति के प्रयोग से घर का प्राप्य होती थी। (३) धर्मशास्त्रकार इस प्रकार के विवाह की विधित (यनु ३:४२), अग्रवत् और अग्रवत् (यनु ३:२३, २४, २६) मानते थे। (४) धर्मशास्त्रों के मध्य में यह एक गुराही प्रथा का अवशेष या स्मृतिजाल रह गया था और वे वनपूर्वक अपहरण द्वारा प्राप्त कन्या के विवाह की रीति बताने के लिए इसका विवाह भण्डार करमा भण्डारण समझते थे। दशिष्ठ (१:७:७३) के शतानुसार यदि किसी कन्या का अपहरण करने कि बात बैधिका मन्त्रों के साथ उसके विधपूर्वक वाणिज्यज्ञ नहीं किया जाता, तो वह अधिवाह्य कन्या ही समझी जाती थी और किसी दूसरे स्थान के साथ उसका विवाह हो सकता था। (५) राक्षस विवाह वाह्यार्थ के लिए बलि या (यनु ३:५५, भारद १:२:४४)। यह राजाओं के लिए (महाभारत आदि-गर्भ ४०:७३) तथा लालियों के लिए ही प्रचलित माना जाता था (भोकायन भवेसूत्र १:११:१०:११९, यनु ३:५४, २६)। (६) इस विवाह से अग्रज तत्पश्चात् विधिवत समझी जाती थी (यनु ३:४२)। (७) अधिकांश स्मृतियों में इसे आठ प्रकारों में सातवाँ स्थान दिया गया है, केवल जायन्तायन गृह्यसूत्र इसे वैवाच विवाह के बाद आठवाँ स्थान देता है।

अन्य जातियों में राक्षस विवाह के उपाहरण

कन्या का अपहरण करके उसके साथ विवाह करने की प्रथा भारत में बाहर छेत्तर के अन्य बहुत से देशों की जातियों में पायी जाती है। दक्षिण अमेरिका के इन्डियन कन्या अपहरण के उद्देश्य से ही मृत करते हैं। प्राचीन केनैक कबीलों में दिसनी घुसने कबीलों से पकड़ कर लायी जाती है। कैलिफोर्निया के लट वासी लुइसीनी (Luiseno) इन्डियनों में विवाह का एक यह रीति प्रचलित है कि घर अपने कुछ मित्रों के साथ जिन स्त्री को अग्रहण चाहता है, उसे वनपूर्वक पकड़ कर ले जाता है। उ० पू० एशिया में उइये वासी पकड़ी आदि के मुक्त युवती को पकड़ कर, उसके हाथ-पैर बाँधकर, वन आदि के

घर से जाते हैं जो उसे स्वीकृत करता है। कामयुक्त लोगों की प्रथा वास्तव्ययम के पैगाम विवाह का स्वरूप कराती है। कई बार जब घर कन्या को बुलाकर जाता है तो कन्या के माता-पिता उसके विवाह के लिए तैयार नहीं होते, किन्तु यदि वह कन्या घर के लोगों के एक बार को लेती है तो उसके माता-पिता को बाध्य होकर उससे शादी करनी पड़ती है। मलामा और आस्ट्रेलिया में ऐसे हजमाकर तैयार किये जाते हैं जो शत्रुओं का संहार कर उनकी स्थितियों को पकाइ कर ले जायें। करबों और धूरियों द्वारा युद्ध में कन्याओं या स्त्रियों पकाइ जाने का पद्धति सर्वत्र ही चला है। प्राचीन मार्ग जातिधर्मों में भी यह प्रथा सर्वत्र प्रचलित थी। शमोलेसिमस यह बताता है कि किसी समय यूनान में यह प्रथा सर्वत्र प्रचलित थी। सकोलेरियोस कहता है कि यह प्रथा यूनान में आज तक जारी जाती है। स्पूनर मार्ग में यद्यपि दंत चपडनीय अपराध बना बिना मर्यादा का था भी यह चलती नहीं। स्कीवेदिमर और स्लाव लोगों में भी इसका प्रचलन था।^{१५}

राक्षस विवाह को प्रचलन के कारण

राक्षस विवाह के प्रचलित होने के कई कारण हैं—(१) स्त्री अब सामान्य उद्योग से वंचित हो गयी थी उसका वक्तव्यक हर्षा किया जाता है। किसी समाज में स्त्री के प्राप्य न होने का कारण यह भी हो सकता है कि स्त्रियों की संख्या कम हो जबकि स्त्री और उसके माता-पिता घर के साथ अपनी कन्या का विवाह करने के लिए उद्यत रहें। प्राचीन की तथा आस्ट्रेलिया की विभिन्न जातियों में राक्षस विवाह ही हीनता से प्रचलित है।

(२) बहुत सी जातियों में कन्याएँ दान लेकर खरीदी जाती हैं। इस आगे चलकर देखें कि भारत में इसी प्रकार की आसुर विवाह की पद्धति प्रचलित थी और घर की कन्या दानों के लिए शूलक देना पड़ता था। जब भी घर पुत्र का शूलक की देने में असमर्थ होता तो वे कन्या का अपहरण किया करते थे। कम की समीपक (Samoyed), वुडियाक (Voyak) और उस्तिमाक (Ostyak) आदि जातियों में जो युवक कन्या का शूलक नहीं दे सकते थे, वे कन्या का अपहरण करते थे।

(३) और पुत्र अपहरण द्वारा प्राप्य की हुई धन्यता को लेख समझते हैं। कहते हैं, खेर बूझरे का सारा हुमा निकार नहीं जाता; शत्रियों को बूझरे की ही हुई कन्या पसन्द नहीं आती। श्रीकृष्ण ने तो स्पष्ट रूप में कन्यादान को वस्तुओं के शिफा केत एक व्यापार कहा है, शत्रिय दान नहीं होता है। उसने मित्र दान के लिए अपना हाथ पसारना बादयप्रतिष्ठ एवं आशमसम्मान की दुष्ठा करना है। अतः शीघ्र और क्षुब्ध

१५ वेस्टरमार्क—राष्ट्र हिस्टरी आफ मैरिज, पृ० ११०-११३; सर्वत्रिक—धूरि-ट्रिकल स्टडीज इन एंथ्रोपॉलॉजी, पृ० ३६३-६४।

में दासस विवाह की शक्तियों के लिए शरीर प्राप्त करने का प्रेषित साधन नहीं है।

कुछ समाजशास्त्रियों ने यह सम्मता की है कि प्राचीन काल में मानव समाज में दासस विवाह की प्रवृत्ति सामंसीय थी।^{१६} इस सम्मता की पुष्टि में, कुछ ऐसी प्रथाओं का उल्लेख किया जाता है जो प्राचीन राजस विवाहों का सबसे बड़े कहें जाते हैं। कुछ स्थायी घर बंधू को घर में रखती तमने किये जाते हैं और हाकिम मुख (Mockingbird) होते हैं। बचपन में बालक को रोकने के लिए, पालन में रम्यी लगा दी जाती है। पुराने में बालक को रामने में लल्लू के नाम जिसे जाते हैं, का भी गायी के जाते गला बांध दिया जाता है और मुक्त कम भंगे पर ही भार्य की गह बांधा हुआ भी जाती है। बेसा में विवाह में अगले दिन जब घर बंधू को भागना है तो उसे बाघ दफ्ता कर दिया जाता है। इसके बाद घर बंधू का अचानकली आन भोड़े पर बिटा कर भागता है, बंधू के घर जाने तकना गिरा जाते हैं और बड़े भंगने के बाद बंधू की में जाते की अनुमति मिलती है।

कुछ शक्तिशाली ने यह प्रथा अचानक घायी या मरती है, किन्तु इन अचानक की बाधार पर इस प्रथा की सामंसीय कहना ठीक नहीं है। अनेक अवस्थाओं में इन अवस्थाओं (Survivals) की कई अन्य प्रकार में भी व्याख्या हो सकती है। विवाह की प्रथम प्रथा के जाने में यह सम्मता नहीं की जा सकती है कि वह किसी वास्तविक प्रथा की सूचित करती है। वैदिकधर्म में अचानक प्रथा का प्रयोग अचानक दिया है। बहुत की जागियों में पनि-गली का प्रयोग भी जाता है। तथा इस प्रथा में यह परिणाम निकाला जा सकता है कि प्राचीनकाल में देवता राजा और राजा का ही विवाह होता था और यह प्रथा इस काल का सबसे है? यह लेखक के मत में हाकिम मुख (Mockingbird) वास्तव में समा के सम्बन्धियों की प्रथाओं की शक्ति की सूचित करते हैं।

- १६ विद्वानों शक्तिशाली के अग्रिमता समाजशास्त्री मैकलीनान (Malinian), सर जॉन लुब्बक (John Lubbock) तथा स्पेन्सर ह्यूी मत के हैं। इनका यह विचार था कि किसी आरम्भ में सभूले परिवार, कुटुम्ब या कबीले की सम्पत्ति होती थी, इन पर किसी व्यक्ति का किसी पर विशेष अधिकार नहीं स्वीकार किया जाता था, जब यह किसी अन्य कबीले या जाति की स्त्री को अलगपूर्वक भीतकर अपने घर में ले जाता था। मैकलीनान का यह मत था कि इस प्रकार दासस विवाह के प्रारम्भिक का कारण सम्पत्ति की वृद्धि प्रथा थी, इससे अपने समाज में स्त्रियों की कमी होने के कारण पुत्रों की अल्प जातियों से स्त्रियों का अलगपूर्वक अलगकरण करना पड़ता था। लुब्बक इस कल्पना को दोषपूर्ण मानते हुए यह कहता है कि दासस विवाह का प्रसन्न इसलिये हुआ कि किसी स्त्री पर अपना वैयक्तिक स्वामित्व स्थापित करने का एकमात्र उपाय स्त्रियों का अलगपूर्वक अलगकरण करना था (सर्वेक्षक—अमेरिकन एंथ्रोप, पृ० १६२)।

उन्हीं इसमें संकोच होता है कि उनकी कन्या किसी दूसरे पुरुष द्वारा उपभुक्त हो। कन्या स्वयंसेवक इस विधाय में बहुत सहायक करती है। स्मृत्य में स्पर्शा की कन्याओं के बारे में लिखा था कि वे अपने को स्वयं पूज्य विभुता का एक एक पौरयाम नही करनी थी, जब तक पुरुष उन्हें अपनी शक्ति से बाधित नहीं कर देता था। कई स्मृतियों में बधू के सम्बन्धी अपनी कन्या का कीर्त्यार्जन करवाया ही नहीं कर सकते। मां के अर्थात् में यह रिवाज है कि जब घर बधू की लेने जाता है तो वे उसे घर हमला करते हैं। वे उसी कायम की अपनी शक्ति का उपयोग समझते हैं (बी० शा० हि० मै० पृ० १२४)। लिखों में कीर्त्यार्जन के समय के वाक्य संकीर्ण या अनिच्छा हो, यह बात मंत्री। कई बार पुरुषों में भी यह संकीर्ण भाव आता है। आशाम की शक्ति में बधू पुरुष के साथ घर के पास एक ठीक से जाती है कि वे उसे विवाह के लिए घर पर ले आवें। घर में मुसवार जंगल में भाग जाता है। वे उसकी प्रजापति करते हैं, उरी गल-गल के प्रजापति देकर स्पर्श के लिए तैयार करते हैं और जब वह वही मानता तो उसे एक वाक्य में प्रयोग देते हैं और वही में उसे सब तक याते बिनासे रहते हैं जब तथा वह विवाह के लिए तैयार नहीं आये। इस तरह के सब रिवाज मास्तर में कन्या पक्ष वाली की अनिच्छा को ही सूचित करते हैं, न कि वास्तव विवाह की व्यापकता को।

एक लेखक (जन्मश्रावण पृ० १०५-६) ने यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि हिन्दुओं में पहले यह प्रथा प्रचलित थी और उसके बाद दूसरे विवाह प्रचलित हुए। अपने घर के सम्बन्ध में उन्होंने जो सुनिश्चिती की है, यही इसका प्रतिपादन करते हुए, उनकी शक्तिशाली की प्राप्ति।

(५) विवाह-वाक्य सभी सन्दर्भों में विवाह की प्राप्ति का सिद्ध करते हैं। वास्तव विवाह में कन्या को अपहरण किया जाता है और विवाह का अर्थ भी बधू को बीकर में जाना है (यह प्राप्ति)। बधू और गर्वाका भाव भी 'बहू' शब्द से बनते हैं और उनके अर्थ से जारी (बोई) जाने वाली स्त्री है। परिणय की 'भीष्म प्राप्ति' में बना है और इसका अर्थ बधू को ले जाना (पहुँचाना) है।

हिन्दू इस युक्ति से अपहरण की व्यापकता को नहीं सिद्ध किया जा सकता। कन्या तो प्रत्येक विवाह के बाद प्रति के घर में जाती है, बाई यह वास्तव विवाह में या देव। प्रति का घर उसका स्वाभाविक निवास स्थान है, वह वही मायरी। परिणय और विवाह शब्द इसी भाव को सूचित करते हैं कि कन्या पिता के घर के प्रति के घर की ओर जाती है। इससे यह नहीं सिद्ध किया जा सकता कि वह अपहरण करके ही मायी जाती रही है।

(६) विवाह प्रथा के कुछ अवशेष इस बात को पुष्ट करते हैं। विवाह में सिद्ध वाक्य की प्रथा है। सिद्ध सात होता है। यह इस बात को सूचित करता है कि प्राचीन काल में कन्या के अपहरण में बहुत खूबखूबी होती थी। यह उसी काल का

भूक आश्रय है। अब लक्षाद्वयों अन्तर्गत यह भी इन प्रथा के स्मृति सिद्धि के तौर पर बहुत ही घाग में सिन्दूर धरा जाने लगा।

साम्प्रत में सिन्दूर-दान की प्रथा अन्तर्गत है—सिन्दूर का न तो कोई वैदिक नाम है और न ही सिन्दूर वर्णन की विधि पाते हैं। सामवेदीय षट्पञ्चगोन में सिन्दूर को धर्म्य वस्त्र जो सत्र पड़ा जाता है वह यह है—“ओ३म् सिन्धोऽम्बुवासे पद्मपद्मम् नक्षि-
तम्”—उत्पादि। गजुर्वेदीय पट्टरथागल में “ओ३म् सिन्धोर्वासे प्राञ्जने” का मन्त्र और विवाह में “सिन्धोर्वासे” कहा जाता है। उन तीनों में प्रथम और दूसरी मंत्र (श्रुत ७।४५। ४३) में थाया जाता है, बाह्य सिद्धि नहीं है। उक्तद्वयों पर प्रमाण है। केवल प्राच्य साम्य भाषा में यह सिन्दूर के अन्तर्गत में रूप में व्यपदेशन हुआ है। द्वितीय प्रमाण अथर्ववेद का ४।५।७ का मंत्र है। इसमें प्राच्य भी सिन्दूर का सम्बन्ध नहीं है।^{१०} ऐसे अवेदिक और अन्तर्गत सिन्दूर-दान की प्रथा के आधार पर प्राचीन आर्यों में साम्य विवाह की प्रथा सिद्ध करना बहुत ही मीच एवं विधान्य प्रमाण प्रतीत करता है।

(१) कहा जाता है कि वर्णन के अन्तर्गत अधिक में अधिक अनुष्ठान से जाने की परिपाटी भी वर्णन विवाह की प्राचीनता का सिद्ध करती है। इस समय कन्या का अपहरण करने हुए यह वर्णनार्थ होता था। इस युद्ध में अनेक अधिक नावी हैं, विजय की आवाज उठती है। अर्धकालोत्तरी भी, अथर्ववेद-वर्णन वर्णन से जाने का विधान प्रमाण।

यह युक्त की उपर्युक्त युक्तियों भी प्रमाण प्रतीत है। प्राचीन काल में अपहरण के जो उदाहरण मिलते हैं उनमें वर्णन का वर्णन नहीं है और वही वरान का वर्णन है बल्कि अपहरण की प्रथा तक नहीं है। सोम्य में एकाकी वागीश्वर की कन्याओं का अपहरण किया था। मृगश्रुत का भी अर्थन में अर्थन ही होता था। वर्णन का विधान भारत में अत्यन्त प्राचीन काल में है। अथर्ववेद में वर्णन का बहुत सुन्दर वर्णन है, किन्तु उसमें साम्य विवाह का कोई अर्थन नहीं।^{११}

अतः यह भी कहा जा सकता कि प्राचीन काल में वर्णन विवाह ही प्रचलित था। अर्थन में उसका अन्तर्गत प्रमाण था, किन्तु वह धीरे-धीरे कम होता गया। वर्णन का अर्थन में कुछ वर्णन आर्यों में इस प्रथा का अर्थन का विधान प्रमाण है। उन्नीस राज्य

१० श्री अतिमोहन शर्मा—भारतवर्ष में अतिमोहन, पृ० ७७

११ ब्राह्मण आर्यों की प्रसिद्ध वर्णन प्रमाण के अर्थन अनुवादकर्ता श्री कृष्णचन्द्र शर्मा ने एक दिवसी (१० १०६) में लिखा है कि वर्णन में विवाह के बाद गले में लाली बोधे जाने का विधान यह वर्णन करता है कि पहले कन्याओं का अपहरण किया जाता था। वर्णन की तरफ उस युग का एक स्मारक वर्णन है। तरफ की यह वर्णन उदाहरणार्थ वर्णन है। यदि यह वर्णन वर्णन तो यह भी आकाश वर्णन कि वर्णन वर्णन की वर्णन वर्णन है और वर्णन वर्णन।

भी बताया जाति में यह प्रथा है कि यदि कोई युवक किसी युवती से प्रेम करता है, किन्तु वह कन्या या उसके माता-पिता विवाह के लिए तैयार नहीं होते, तो वह युवक अपने पाँचियों का एक बन्धा तैयार करता है और बीका मिलने पर उस कन्या का अपहरण करता है। उसके बादी अपहरण में उसकी सहायता करते हैं। इससे कई बार बड़ा रक्तपात और भीषण युद्ध हो जाता है। बंगाल भी कुछ जातियों में यन्त्री में हो रहे पाप में से कुछ व्यक्ति किसी बन्धा को बचक करते हैं और बाद में कन्या का मुक्त कर होता है। पटना में जिनके पास थोड़ी स्थिति होती है वे अस्त्रमस्त्रों से युज्जित होकर बाहर निष्क्रमण हैं और बन्धीर कबीलों से वे कन्याओं को बलपूर्वक छीन कर ले आते हैं।^{११} राजपूतों में यन्त्री कनारों, ओढ़ारों, भीम, तुलबी, गोंड और कोंबों जाति में कुछ ऐसी प्रथाएँ अभिहित हैं जिनमें राजस विवाह के तत्त्व मिलते हैं।^{१२} किन्तु इन प्रथाओं के बारे में बहुत शंका है। ब्रह्मचर्याचार्य, बंगाल में कई जगह यह रिवाज है कि दूल्हा कन्या से अथवा वे एक ही एक साथ बगल बैठते हैं, बगल-बाद की भी फाट गिराता है और बिट्टी के धामने पकड़ता है। इन प्रथाओं के बारे में यह कहा जाता है कि ये राजस विवाह का अभिहित हैं। किन्तु यह शर्त न माना जाय कि ये वर की बीरता को प्रदर्शित करती हैं। वर्तमान काल में राजस विवाह के जो विभिन्न उपाकरण [] से बंगाल और आसाम की दून जातियों में हो पाये जाते हैं।

स्वयंवर विवाह

स्वयंवर विवाह राजस विवाह का विशेष भाग। राजस विवाह में पति की चुनाव करने का अधिकार था, किन्तु स्वयंवर में बन्धा स्वयं अपने पति को चुनती थी। ऐसा प्रतीत होता है कि स्वयंवर पद्धति कई अवस्थाओं में हो होकर गुजरी है। प्राचीनकाल में उसका बहुत रिवाज था। धीरे-धीरे उस रिवाज को मर्यादित एवं सीमित किया जाने लगा। ईगवी और सीता के स्वयंवर शब्दों अर्थों में स्वयंवर नहीं हैं। सीता को वर चुनने की पूरी स्वाधीनता देना संभवतः उचित नहीं समझा जाता था। धर्मशास्त्रों ने स्वयंवर विवाह का उल्लेख ही नहीं किया। वे शास्त्रों में विवाह का उल्लेख करते ही चुप हो गये हैं और उसका उल्लेख भी उन्होंने अपनी नापसन्धानी नाहिर करते हुए किया है। यह स्पष्ट है कि वे ऐसे विवाहों की अपेक्षा नहीं समझते, राजस अथवा विवाहों की अपेक्षा न समझते हुए भी उन्होंने इन विवाहों का उल्लेख किया है, किन्तु स्वयंवर या उन्होंने स्पष्ट रूप

^{११} बी० शा० हि० सी०, पृ० १११-१२

^{१२} शा० हि० सी० क०, पृ० १०२ की सीतादी विष्णुधरे से इन सब जातियों के मान विस्तार से विवेक करेंगे हैं।

में उल्लेख नहीं किया।^{११} प्राग ने काचम्बरी (पृ० ४७८) में पत्रमेका से यह कहावताया है कि यदि ऐसी बात न हो (अर्थात् कन्याएँ पतिव्रता का कदम न कारती हों) तो धर्मशास्त्रों द्वारा उपदिष्ट स्वयंवर की विधि स्वयं है। प्राग का आक्षेप शायद महाभारत आदि में वर्णित स्वयंवर विधि से है। यदि धर्मशास्त्रों का आशय धर्मशूत्रों एवं स्मृतियों से हो तो उनमें यह विधि नहीं मिलती। इन गान्धर्व विवाह को अत्यन्त अधम मान्य तो प्राग का मत कदाचन टीकाई गमना है। १७वीं शती का 'वीरभित्तोदय' इस कल्पना को पुष्ट करता हुआ प्राग का कि स्वयंवर का माध्यम विवाह का अंग ही समझना चाहिए।^{१२} बाल्यक में यह बात ठीक नहीं है। गान्धर्व विवाह में युवक युवती दोनों एक दूसरे को प्रस्ताव बना में भाड़ते हैं और विवाह में दोनों की सहमति आवश्यक हो जाती है। किन्तु स्वयंवर में अग्रिम अधिकार स्वयंवर का है। स्वयंवर की कल्पना अश्वमेध राजाओं में विशेष रूप से प्रचलित थी; क्षत्रियों, मीमांसा, ब्रह्मन्वी पञ्चांगों की कन्याएँ भी। ब्राह्मणों में इस प्रथा का शिवाय बहुत कम था, प्रातः वाह्यणों द्वारा भित्री एवं स्मृतियों में स्वयंवर का उल्लेख भी नहीं है।

स्वयंवर को तीन भेद

स्वयंवर की प्रथा की विकास की दृष्टिसे तीन अवस्थाओं में बाँटा जा सकता है।

- (१) इसमें अद्वयत प्राचीन काल में कन्याओं का पति भुवन की पूरी स्वाधीनता होती थी।
- (२) स्वयंवर में कोई बात रख दी जाती थी। इस बात को पूरा करने वाले पुत्र को ही कन्या वरण करती थी। (३) अन्त पिता स्वयंवर हो जाने पर भी कन्या की निश्चित अवधि तथा शांति नहीं करता था तो स्मृतियों में इस बात में कन्या को अपना घर स्वयं प्रस्ताव करने की या स्वयंवर करने की आज्ञा दी थी।

(१) पहली अवस्था में स्वयंवर का सर्वोत्तम उदाहरण कुम्भी और ब्रह्मन्वी है।

यह प्रथा बहुत प्राचीन थी। वैदिक काल में बहुत पवित्रों का स्वयं वरण करती थी,^{१३}

- ११ स्वर्गदीप्त ने स्मृतिकारों द्वारा स्वयंवर का उल्लेख न करने का यह कारण बताया है कि जब कन्या पिता द्वारा विवाह न करने पर अपना पति स्वयंसेवक चुन लेती थी, तो वह कन्या ने पिता की कोई शक्ति नहीं देता था, क्योंकि समुचित समय में कन्यादान न करने के कारण प्रत्येक पिता अपने कन्या पर स्वाभिमत को देखता था। स्मृतिकारों के लिए अन्तम विवाह नहीं था जिसमें कन्यादान होता था। कन्या द्वारा स्वयंसेवक पति चुने लेने में ऐसा संभव नहीं था, अतः उन्होंने इस प्रकार के विवाह का उल्लेख करना उचित नहीं समझा (अपुरिषिकान् स्त्रीभिः, पृ० ६५७)

१२ बी० मि० भा० १।६१ 'एवं च स्वयंवरोऽपि विवाहः'

१३ ऋ० १०।२०।२२ 'महाब्रह्मर्षिर्वात यमुनेयाः स्वयं सा मिलं ब्रह्मते कते इह'।

किन्तु उसका किन्तुत वर्णन नहीं मिलता। महाभारत में ऐसे कवच विष्णु के उल्लेख होते हैं। कुन्तिमन्त्र में पूजा या कुन्ती के स्वयंवर में राजाओं को बुलाया। कुन्ती में रंगभूमि में राजाओं में शाद्वल, महाकवी एक मूर्त की तरह सब राजाओं की सेवा की शपथ बाँध पाण्डु को बेड़ा और उसने कामवास में विह्वल होकर बजाते हुए अपनी माना पाण्डु के कले में डाल दी (महाका = १।५१२)।

महाभारत में वन-वसवली उपान्यास कथन में कहे विष्णु के (५.३ अ० में ७६ पं.) दिया गया है। वसवली के पिता विद्वधराज भीम के अपनी कन्या का प्राण-सौभाग्य देखकर, राजाओं की स्वयंवर का निश्चय लेता (५.४८-६६)। राजा मन का वन-संदेश वसवली के पास भेज दिया पहुँच ही चुक था। वसवली वन में राज की चाहती थी। वसवली के अग्रज भाभी शंख के कारण राज, अग्नि, वायु और सप्त भोजनार्थ भगवान् के कि प्रथमली उन्हें प्राप्त हो। वे सौभाग्यवत बन का अपना पुत्र बनकर वसवली के पास आये हैं। वर वसवली सब की ही प्रति वर में वर करने का बुद्धिमान बनती है। स्वयंवर के दिन भारी देवता सब का सब प्रसन्न हुए, उस वर के बारे में। वसवली वर लेने की देखकर बड़े असह्यस में पड़ी और उगते देवताओं का जवाब दिला, अभिप्रेत, पत्नी रहित और न बुद्धि का भाग्य के कुछ देखकर भगवान् भिला कि वे देवता हैं, इस प्रकार वसवली ने जलजल सुन्दर भगवा वर के बारे में जान ली। राजाओं ने इस वर सुझाकर दिया और अधिपति ने प्रथमता का वरपोष (५.५१३०)। महा वसवली को अपना प्रति वरने की पूर्ण स्वीकृति मिली थी। वर का वर वर विचारणीय है कि वर वसवली का वर के वर हो चुका था वर स्वयंवर का आश्वासन करने का क्या लाभ था? वसवली का वरने का वरने से निश्चित था, दूसरे राजाओं की बुद्धिमान वरने में चुकी वरों किता भगवा है।

बीठ साहित्य में जिन स्वयंवरों का उल्लेख है, वे सभी काँटि के हैं। वसवली की टीका (अध्या १० २५६-७६) के अनुसार वसवली स्वयंवर में विभीषी की वसवली स्वयंवर को अपनी कन्या देता प्रसन्न नहीं किता। उसके कथा—“मेरी कन्या इच्छा में अपना प्रति बुद्धि है” उसके सब वसवली का वरने और अपनी कन्या को एक वरने देने हुए कथा—“मेरी प्रति बुद्धि अनुकूल शरीर हो उसे बुद्धि को” कन्या ने अपनी इच्छा के अनुसार प्रति का वरन किया और उसके गले में जयमाना डाली। कुलाक वातक (सं० ५३६) में बीटली और पंचों पाण्डवों की कथा एक दूसरे की वर के कही गयी है। इसमें कथा (इच्छा) नामक राजकुमारी के स्वयंवर का वर्णन है। वह स्वयंवर में राजा पाण्डु के पंच पुत्रों मर्जुम, नकुल, भीमसेन, बुद्धिपति और सहदेव को देखती है और उन वर बुद्धि होकर पंचों के गले में वरमाना काज देती है और माता से यह कहती है कि मैं इन पंचों को प्रसन्न करती हूँ, वे पंचों वरने उसके प्रति वरते हैं। उसके स्वयंवर को माता-पिता स्वीकार करते हैं।

काव्यों में ऐसे अनेक स्वयंवरों का वर्णन है, जिनमें कन्याओं का स्वयंवर का पूरा अधिकार था। काविलदास ने रघुवंश में जय और हनुमती के स्वयंवर का यथा भावपूर्ण और भुम्भर कित्त जोखा है। प्रत्येक राजा हनुमती के पास जाते थे, कितना प्रसन्न होकर उसके जाते निकलते जाते गए कितना दुःखी होता था, काविलदास ने इस सम्बन्ध का एक अत्यन्त भावपूर्ण उदाहरण दे दिया है और इस उपमा से काविलदास को अद्वय बना दिया है तथा उसे 'दीर्घाश्रया-काविलदास' का नाम प्रदान किया है।^{१२४} विष्णु के १२वीं अर्ध में जगदा काव्य निम्न हनुमत्कृत्यांशेष चरित्र के दृष्टे सते मे एक स्वयंवर का यथा वर्णन-रचक वर्णन किया है। एक स्वयंवर में काविलदास के शिष्याहारा राजा भी केन्या कन्दमेका कन्दमेका के राजा चालुवन विष्णुका देव का अरण्य करती है। कन्दमेका ने संयोगिता के स्वयंवर का बड़ी ओजसिली साध में वर्णन किया है। मूसीराज भीमान का कन्दमेका के राजा प्रमनन्द की पुत्री संयोगिता के साथ विवाह माया स्वयंवर और माया रासव विवाह है।

महाभारत और काव्यों में स्वयंवर का वर्णन होने पर भी इसके ऐतिहासिक प्रमाण बहुत कम मिलते हैं। तिलानिष्ठा में स्वयंवर, मकर का प्रयोग मिलता है, किन्तु यह सबसे अधिक प्राचीन नहीं है। उदाहरणार्थ, मद्राह बुधगुप्त के ४८४-८२ ई० के राज्य प्रस्ताव जेम्स ने यह उल्लेख है कि महाराज मानुविष्णु को राजनक्षत्री स्वयंवर द्वारा प्राप्त हुई थी (मणवराज्य राजनक्षत्राधिकार)। स्कन्दपुराण के उद्गातृ तिलानिष्ठा में यह कहा गया है कि राजनक्षत्री ने कन्दमुक्त का वरण किया। तिलानिष्ठा सप्तम के ७६६-६७ के अलीगढ़ राजपत्रों पर जलक्षेत्र है कि भूपतिन मूसी का राजनक्षत्री द्वारा स्वयंवर किया गया है। राजा के राज्य प्राप्त करने का यह काव्यमय वर्णन है। इन वर्णनों को ऐतिहासिक महत्त्व नहीं दिया जा सकता।

(२) स्वयंवर का दूसरा रूप यह था कि माया के विवाह के लिए कोई अर्थ या पण निश्चित कर दिया जाता था। उस-सत्तों को जो राजा पूरा करता था, उसके साथ उस कन्या का विवाह कर दिया जाता था। इसमें कन्या के चुनाव का कोई प्रश्न नहीं था। इसमें अविरोध की शक्ति या बीच की परीक्षा होती थी। जो सत्रिय बीरता और शूरता में सबसे अधिक बढ़ा-बढ़ा होता था, वही कन्या के साथ विवाह के लिए योग्य समझा जाता था। अतः वे हीर्यशुक्त स्वयंवर कहलाते थे। वास्तव में इसे स्वयंवर नहीं कहना चाहिए, क्योंकि इसमें कन्या के वरण का कोई महत्त्व नहीं था। ओपरी की अर्जुन के साथ और सीता को रामचन्द्र के साथ विवाह करना पड़ा था। उन्होंने यह विवाह स्वयंवर नहीं किया कि मजुन और सीराम को बाहरी थी, किन्तु इसलिये किया था

^{१२४} रघुवंश ६१३, लंकारिणी दीपतिशेखर रात्री र्थ में अलीगढ़ के विवरण था।

नरेन्द्रचन्द्रादित्य हय अनेके विषयोंमात्रं स ज भुक्तिरासः ॥

कि उन्होंने मरम्भेख और निवर्त्ती का धनुष उठाने की बातें दूरी की थीं।

स्वयंवर की इस पद्धति के प्रचलित होने का यह कारण दिखाई देता है कि यदि काबूलाब कम्पा पर छोड़ देने पर, कम्पा जिस राजा का स्वयमेव बनना चाहती थी। दूसरे राजा उससे शाह और ईर्ष्या करते थे। स्वयंवरों के माध्यम से तो राजा हस्तगत, बागके ही चले हो गये थे किन्तु कई बार घोषणा सुन्ने की मौकत भी आती थी। इन सुन्ने में बचने का मन्त्र छड़ीका था कि कोई ऐसी बात रखनी चाय जिसे पूरा करने पर विवाह किया जाय। उस अवस्था में अतन्मुष्ट राजाओं की शराफा करने के लिए कोई विशेष साधारण या कागज नहीं रहता था। यदि वे स्वयंवर में सफल नहीं हुए तो दूसरा कागज उतकी आती समोरवता थी। अब तथा कम्पा के चुनाव में कोई कमीटी नहीं थी, उगमें मुक्त होना अधिक श्रेष्ठ था, किन्तु एक कमीटी या परीक्षा विधायी हो जाने पर, राजाओं को इस तरह की विधायता का कोई अवसर नहीं रहता था। दूसरा कारण यह था कि माता-पिता की यह स्वाभाविक इच्छा होती है कि वे धर्मप्राप्त और सभ्य अधिका और गुण की अपनी कम्पा का नाम करें, शत्रियों की भी इसमें अपनी शूरता दिखाने का अवसर मिलता है।

साक्षात्पुत्र में भीषित अवसर निकलने के बाद धर्मप्राप्त शाहजान देश में दूध रहे थे। श्रीमन्त्र के परामर्श से वे पंचाल देश में श्रीपदी का स्वयंवर देखने के लिए राजा हुए। वहाँ में उन्हें कुछ बाह्यन मिले। इन बाह्यनों में भी पाण्डवों को स्वयंवर में आने के लिए उत्साहित किया कि तबल श्रीपदी उन वर्तमान ईश्वर्य बाह्यनों में से किसी का वरण कर ले (१।१५६-१७)। दुपद ने अर्जुन को अपनी कम्पा देख के उद्देश्य में एक दुष्ट धनुष बताया था, जिसे कोई दूधय शक्ति नहीं मुका सकता था और आकाश में एक क्षण में एक लक्ष बनना था। उस धनुष में बंदी बद्धाकर उक्त लक्ष्य को निशाने बाने पर की कम्पा देख का निश्चय किया गया था। दुपद ने इस निश्चय की सूचना तथा अपनी कम्पा के स्वयंवर का समाचार सब राजाओं को भिजवाया था। यह समाचार सुनकर राजा वल्लो काले लगे। १९वें दिन श्रीपदी उस क्षण में आई और धृष्टद्युम्न ने स्वयंवर की बातें की श्रुतिबोधनी थी—“यह धनुष है, यह लक्ष्य है, ये तीर बाण हैं। इन तीर बाणों से घन के छिन्न को निशाने करता है। जो राजा इस कार्य को करेगा, मेरी सहित कम्पा उसकी पत्नी होगी।” राजा मोग धनुष पर डेर बद्धने का प्रयत्न करने लगे, किन्तु उसमें सफल नहीं हुए। कर्ण उठा, उसने प्रसन्न बड़ा भी और धनुष पर ध्यान भी लगाते लगा। श्रीपदी यह देखकर उन्मत्त स्वर से कह उठी कि मैं तुझ के साथ विवाह नहीं करूँगी (१।१६०।२३)। कर्ण ने दीवपूर्यक धनुष भीषे निक किया। अन्त में अर्जुन ने देखते ही देखते धनुष उठाया, उस पर बंदी बद्धा भी और तीर शरलेकर लक्ष्य बंध कर बिप्रा। बाह्यन इस पर अत्यधिक प्रसन्न हुए किन्तु शत्रियों ने कहा कि “स्वयंवर शत्रियों में होता है, यह बात प्रसिद्ध है (१।१६७।७)। बाह्यनों का उसमें कोई अधिकार नहीं है। यदि हम सब मरे तो अन्त स्वयंवरों में भी पड़ी बसा होगी।” स्वयंवर की राजा के लिए शत्रियों ने दुपद पर हमला किया।

सीम और अर्जुन ने उनके भासमणों का सम्पत्तापूर्वक निराकरण किया और डीपवी राजाओं के साथ उनकी बुद्धिवा भूद करी गयी ।

डीपवी के स्वयंवर में दो बातें विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं । पहली तो यह कि स्वयंवर में वरदापि भद्र जनों जल्दी ही कि लक्ष्य भेध करने वाले को ही डीपवी प्राप्त हो, किन्तु डीपवी ने वरदा में वर्णान्तर स्वतंत्रता दिखायी । कर्ण भी संभवतः स्वयंवर में गया, किन्तु डीपवी उसे गलत नहीं मानती थी; अतः उसने कर्ण का स्पष्ट रूप से निराकरण किया । दूसरी बात यह है कि स्वयंवर की पद्धति शत्रुियों के लिए ही श्रेष्ठ मयस्वी जाती थी । शत्रुिय राजाओं ने डीपवी के विवाह पर यह आपत्ति उठायी है कि शत्रुियों को इन प्रकार भरण करने का अधिकार नहीं है । भूतद्यून्त ने प्रारंभ में स्वयंवर को वरदा के सम्बन्ध में ही प्रोत्साहना की है, उसमें सक्रिय या बाह्यण होने की कोई भी नहीं भगानी थी । बाव में हुन भी सुशिक्षित के कहता है—“बाह्य सक्रिय, बाह्यण, शैव्य, गृह्य कोई हो, वह प्रतिष्ठा पूरी करने वाले को डीपवी देता ।” किन्तु फिर भी यह मानना पड़ता है इस प्रथा का अधिक प्रचलन शत्रुियों में ही था । इस बीरतापूर्ण कार्य की शक्ति द्वारा स्वयंवर की शीर्षबुद्धि स्वयंवर की पद्धति कहते थे ।

शीर्षबुद्धि स्वयंवर का दूसरा उदाहरण सीता का है (बा० पृ० १:६५:६७) : जनक ने सीता के विवाह के लिए यह जनों तक की थी कि जो शत्रुओं के शत्रु को उठाकर उस पर प्रत्येक अशुभता, वह सीता के परामित्रहृण का अधिकारी होगा । रामनक्षत्र के भिक्षुता वाले घर, डेढ़ सौ व्यक्ति इस सीढ़ी की पैदी को धसीट कर लाने जिसमें वह प्रत्युत्तर था । राम ने उसे बड़ी आसानी से उठाया, उस पर प्रत्येक अशुभता और उसे कीचकार जब जान छोड़ता था तो शत्रु दूट गया । इसके बाद सीता का राम के विवाह हो गया ।

आई बार इस स्वयंवर की बात, समझकर लंबे होते थे । प्र० पृ० ७:१५:४४ में कहा गया है कि देवक भी कन्या के स्वयंवर में शक्ति विजयी हुआ । वह देवकी को अपने एक घर बिठा कर भोज, किन्तु सोमवत् से यह करवाक न हुआ, उसने शक्ति पर हमला किया । आधा दिन दोनों में बूतेबाजी और चर्यकर युद्ध बना । अन्त में लोचनदत्त इस युद्ध में जीती तरह हारा गया ।

(३) तीसरी क्रांति के ये स्वयंवर हैं जो जाचारी में किये जाते थे । जब माता-पिता कन्या के लिए घर नहीं ढूँढ़ सकते थे तो जाचारी में वे कन्या को स्वयं अपना पति ढूँढ़ने की अनुमति देते थे । शत्रुियों के पिता जब बुद्ध हो गये तो उन्होंने शत्रुियों को अपना पति स्वयं ढूँढ़ लाने के लिए कहा । शत्रुियों ने बहुत देशों में भ्रमण कर भेजे के बाद शावकान को अपना पति चुना । गौतम (१५:२०) और विष्णु धर्मसूत्र (५५:४०-४९) यह व्यवस्था करते हैं कि यदि माता-पिता कन्या के स्वयंवा होने के बाद तीन महीने (तीन ऋतुओं) तक विवाह न कर लें तो कन्या स्वयं अपने पति का भरण करे ।

किन्तु वासिष्ठाई = सू० (१७-६७-६८), मनु (२।१०), जोषाधम सू० (१।१।१३) यह सर्वविधौन वर्ष तक बढ़ा देते हैं २५। वासदेवय (१।६४) ने पिता या भ्राता के अन्धम में प्रत्येक कन्या को स्वयंवर का अधिकार दिया है। यह वास्तविक स्वयंवर नहीं था, किन्तु सामग्री की।

राजाधम और महाभारत में इस प्रकार के स्वयंवर की पर्याप्त मिसाल दी गयी है। राजाधम (१।३२) में राजा कुलमास की १०० कन्याओं की कथा है। वे सुवर्ण चमत्कार सम्पन्न होकर उन विवाह के लिए जाती हैं, जहाँ सुननी-बूनी प्राचनी है। बाधु देवता स्वयंके नपुंसक गौरव के पुत्र होकर, उनमें प्रणय की गायना करती हुआ कहता है—“मैं तुमसे प्रेम करता हूँ तुम मेरी निवर्तक बनो। मनुष्य जाति के विनाश और कर्णों की तीव्र ध्वनि के मनुष्य जाति का जीवन संकष्टमय होता है। मैं तुमसे अमर होऊँ।” कन्याओं ने बाधुदेवता की प्रार्थना सुनते ही उनका श्रुत मजक उड़ता और कहा—“मैं मृत। यह समय न आये, जब तुम अपने स्वयंवादी पिता से घृणा करके अपनी इच्छानुसार स्वयंवर करें। हमारा पिता हमें विश्व धर्मों का प्रसार करेगा मही हमारा पनि होगा।” महाभारत (१।४५।४) में भीष्म ने सावित्री के स्वयंवर की निन्दा की है। सावित्री ने पिता की आज्ञानुसार स्वयंवर की स्वयं वरण किया था। उसके दस कार्य की कुछ मोल प्रस्ताव करते हैं, किन्तु धर्म उसकी इस कार्य की प्रस्ताव नहीं करते। सीमा धर्मों के प्रस्ताव न करने का कारण स्पष्ट बताया हुआ कहता है—“धर्मों के दूसरे माधु गुणों ने ऐसा आचरण नहीं किया है, और साधुओं का आचरण [] धर्म का सर्वोत्तम स्थान

- २५ विष्णुस्मृति के टीकाकार मन्व पंडित ने यह लिखा है कि ऋषु का सर्वोत्तम करना चाहिए। यदि इस आधार की सही माना जाय तो विष्णु और मनु के तीन ऋषुओं तथा तीन वर्षों की अवधि में कोई विरोध नहीं रहता है। किन्तु मन्व पंडित की व्याख्या ठीक नहीं प्रतीत होती है। ऋषु का अर्थ यहाँ मारिषिक धर्म ही करना चाहिए। प्राचीन सास्त्रकार राजस्वला होने से पहले ही स्त्री के विवाह की व्यवस्था करते हैं ताकि उनका कोई भी ऋषुकास स्वयं न जाय और अधिक से अधिक कल्याण उत्पन्न हो सके। बौद्धि ने जलसेवा की बुद्धि की बुद्धि से ऋषुधर्म (तीर्थ) की उद्देश्य की धर्म की हस्ता करना बताया है (कौ०, लीख्येनोद्यो हि धर्मवधः।) अतः पिता-पिता का यह कार्य था कि ऋषुकास से पहले ही कन्या का विवाह कर दिया जाय (मि० गौतम धर्मसूत्र १८।३२—अद्वय प्रत्युतोः)। यदि पिता किसी कारणवश अपनी कन्या का विवाह ऋषुकास पर रोकवश से पहले नहीं करता है तो तीन ऋषुकास बीतने पर कन्या को अपना विवाह स्वयं कर लेने का अधिकार था। अतः विष्णु स्मृति में ऋषु के स्वाभाविक अर्थ को छोड़ कर उसे वर्ष का पर्याय मानना उचित नहीं प्रतीत होता है।

है।" श्रीमन् ने जनक के माता सुक्लु का कथन उद्धृत करते हुए अन्त में स्वयंवर के विरोध का ठीक-ठीक कारण यह बताया है—“स्त्रियों का स्वाधीनता देना आधुनिक है। पुराने समय में विवाह माथों में लगने कहे कही नहीं मुना।” महाभारत (३।१८०।१९) में कथाओं द्वारा पतिव्रतों के श्रेष्ठ करने के विचार को प्रत्यक्ष का पूर्वश्लेषण बताया गया है। मार्कण्डेय स्मृति के अनुसार यह कथन करते हुए कहते हैं—“असंयत म कोही कथन करे मांगना है और म कोही कथन ही कथनी है। युग के अन्त में म मोग स्वयंवर क हुनने के माथ पश्यन विवाह करते हैं।” छत्रसमर्थकारों ने स्त्री को पति वरध करने की आज्ञा गजबूरी ही कथन में ही थी। अतिपुत्राण (२०१।४९) स्त्रियों के इस अधिकार को अनिवार्यपूर्ण स्वीकार करता है। कथन पति मा वरध करने वाली स्त्री गजा द्वारा पश्यनीय नहीं होती। किन्तु महाभारत (२।१६) स्त्रियों के लिए स्वयंवर की स्पष्ट शर्तों में युग बताते हुए एक स्त्री के बारे में कहा है कि “पिता ने होते हुए दत्त स्वयंवर द्वारा और धर्म की दृष्टि कर पतिव्रतों का वरध किया है, अतः यह अधोपनि करने वाली ही।” स्वयंवर के विरोध का कारण यह था कि स्वयंवर स्त्री की पति के चुनने में समर्थिष्ठ एवं पूर्ण स्वयंवरता नहीं देना चाहते थे। बाल विवाह के प्रचलन के कारण कथावाचन की अत्यधिक प्रवृत्ति एवं धार्मिक कर्तव्य बल दिया गया था। अतः स्वयंवर की प्रथा का ह्रास होने लगा। महाभारत में लोच गीता में इन रथा के कुछ उदाहरण पाये जाते हैं और आजकल की इस प्रकार के एक ही उदाहरण कभी-कभी देखने-सुनने में आ जाते हैं।

आधुनिक-विवाह

स्वयंवर—आधुनिक विवाह में कथा प्रत्यक्ष करने के लिए वर कथा की माता-पिता की धन होता है। नूतने कथा में, यह विवाह में कथा धन द्वारा करीबी जाती है। महाभारत (१।१८०।१६) में श्रीमन् ने आधुनिक विवाह का प्रमाण यह किया है—“प्रायः धन से (कथा की) शरीर कर और उसके सम्पत्तिव्रतों की धन का बालक देकर जो विवाह होता है, विवाह सोय उद्ये अगुनों का धर्म कहते हैं।” आजकल कथा के लिए पश्येन की चिन्ता करने वाले माता-पिता को संभवतः यह बात अवश्यव्यक्त नाम दूनेगी कि किसी युग में वर कथा के माता-पिता को विवाह के लिए धन दिया गया था। उक्त संतान वर के माता-पिता को बीवी ही चिन्ता लोच परेशानी उठानी पड़ती होती जैसी आजकल कथा के माता-पिता को उठानी पड़ती है। इस समय अधिकतर हिन्दू-समाज में वर का विषय होता है, आधुनिक विवाह में कथा का विषय होता था। आज कथा के माता-पिता वर की सब शक्ति के अनुसार करते हैं और दहेज भादि से उसे संतुष्ट करना चाहते हैं, आधुनिक विवाह में वर को कथा के माता-पिता की अनुमति करनी पड़ती थी। कथा विषय की प्रथा न

केवल भारत में अपितु संसार के अन्य देशों में भी बहुत व्यापक रूप से पायी जाती है।^{१६}

१६ असम्य सम्पत्ति जाने वाली आतिथियों में दो तीन प्रकार का मूल्य या कम्पायुक्त मन्दा के पिता को दिया जाता है: (१) कई स्थानों पर कच्चा विनिमय (Exchange) द्वारा ग्रहण की जाती है। डा० हाबिट ने अमर्दुनिया के मूल विचारधाराओं के सम्बन्ध में लिखा है कि उनमें यह शायद रिवाज है कि भ्राता-पिता अपने लड़कों के लिए दूसरे घरानों में लड़कियाँ लाते हैं और उनके बदले में अपनी लड़कियाँ उन घरानों में विवाह के लिए भेज देते हैं, जहाँ से वे लड़कियाँ लाये थे। कई बार मुमक यह बदला-बदली स्वयं करते थे। वे अपनी भूमि या किसी दूसरी लड़की को दूसरे कुल में देकर, वहाँ से अपने लिये कमी प्राप्त करते थे। आर्सेनिया में अत्यन्त विधेयता के कारण पत्नी पति के लिए मृत्युवाङ्ग सम्पत्ति होती है, अतः वह घर को अपनी कोई बहुमूल्य स्त्री सम्बन्धी देकर ही बदले में प्राप्त हो सकती है। भारत में विनिमय द्वारा होने वाले विवाहों की कमी नहीं। पंजाब का 'बहुर-सह' इसी प्रकार का है।

(२) कच्चा के शुद्ध का एक रूप यह भी है कि घर घर के घर घर कुछ दिन तक भौकरी करता है। इस भौकरी के साथ वह खेतन वा भूमि के रूप में कच्चा को प्राप्त करता है। दूसरी व. बर्जिनी अमेरिका, साबोरेटिया, मलाया प्रायद्वीप और हिन्द चीन में इस प्रकार का प्रचलन है। यहाँ सेवा का काम १ से १५ वर्ष तक होता है। जाइवाल में बताया गया है कि याकूब ने इसका में जाकर लाभान की बेटी रैचल की पाने के लिए लाभान से यह प्रतिज्ञा की कि मैं रैचल की पाने के लिए ७ वर्ष लेरी सेवा करूँगा (तिनीसम २२:१५)। लाभान इससे सहमत हो गया और याकूब ने लाभान की ७ वर्ष ईनामदारी में सेवा की। इसके बाद उन्होंने लाभान से कहा कि मेरी अवधि पूरी हो गयी है, रैचल से मेरी शादी कर दो। इस पर लाभान ने रत्न की रैचल के वस्त्रों अपनी बड़ी बेटी सीह की याकूब के पास भेज दिया। तबसे सब याकूब की इस चीजों का पता लगा तो उसने लाभान से इसका कारण पूछा। लाभान ने कहा कि बड़ी लड़की के अनिवारित रहने पर छोटी लड़की का व्यवह नहीं किया जा सकता, ७ वर्ष और सेवा कर, मैं तुम्हें रैचल भी भे दूँगा। याकूब ने दूसरी बार ७ वर्ष की सेवा के साथ रैचल को प्राप्त किया। सेवा द्वारा यश की प्राप्त करने की प्रथा के मूल में कच्चा की मूल्य देने की अनिवार्यता तो है ही, किन्तु इसके साथ दो कारण और भी हैं। पहला तो यह कि निर्धनता के कारण भी कच्चा का काम या मूल्य न हो सके अथवा जिसने पति विनिमय करने के लिए अपनी कोई बहिन या स्त्री सम्बन्धी न हो वह सेवा द्वारा अपने इन दोनों अमानों की भूमि कर सकता है। दूसरा कारण यह है कि इससे कच्चा पति

वैदिक युग में अमुर विवाह

अमुर ॥ कय में कय्यविषय का संकेत देव में है । अ० १।१०.६।२ में कहा गया है—हे दण्डी अमुर, मैंने यह युवा है कि तुम दोनों कुछ दीप रखने वाले नैवारी

वर की प्रोप्ताओं की मन्त्री-मन्त्रि जाग जाता है, सेवाकाल में इस बात को मजली तरह जोधा जा सकता है कि यह जायादा बनाने लायक है या नहीं । डा० जोधसन के साइबेरिया के कुराक जोनों के बारे में लिखा है कि उनमें वर की सेवाकाल में तरह तरह के कय्य दिये जाते हैं । अलको रही से रही जाना और कपड़ा बेकार कहे से कड़ा परिचय कराया जाता है । वर की मजली तरह पटीला करने के बाद ही मन्त्र का पिला उसे विवाह की अनुमति देता है । मीडोवेबोस (Middowebos) नामक जाति (उत्तरी अमेरिका) में कय्य का पिला इस तरीका से बहुत आम होता है कि वर अपने परिवार के वरक-प्रीत्योग में जो तय्य होना वा नहीं ।

(३) कय्य का शुल्क वा दाम कय्यों, पसुनों तथा सम्पत्ति के रूप में की दिया जाता है । मन्त्रियों में इस प्रकार के कय्य शुल्क (Bride price) को बहुत कहते हैं । मन्त्रियों में विवाह की एक महु को लिखी थी कि दो जातियों की अपरिचित में वर कय्य की एक लिखा देता हुआ महु कहता था कि आज के दू बेरे लिए मैं यह दूँ । इस लिखी को कलक महु जाता था और इसके जिला कोई विवाह लायक नहीं माना जाता था । मध्यकाल में लिखे के स्थान पर मंगूली का प्रयोग होने लगा । अरबों में भी इसे बहुत कहा जाता था, और भारत के मुसलमानों में यह इसी नाम से प्रसिद्ध है । प्राचीन मर्य जातियों में यह प्रथा बहुत प्रचलित थी । मरसू बताता है कि मुसली प्रारम्भिक युग में अपनी जिकमें की करीदा करते थे । जर्मनी के टूतन (Tuton) लोगों में पत्नी करीबने के मुहारे का प्रयोग मध्ययुग तक चलता था । जर्मन में आज तक मरू की वरकीष्ट (Varkocht) मर्याद होती हुई कहते हैं । फ्रें में वर वर पिला मरू के घर वर बाकर पत्नी बात यह कहता है—तुम्हारे पास एक दण्ड है और मुम्हारे पास मरू है, क्या तुम अपना बात बेचोने ? इसके बाद जो बातचीत होती है, वह बीती ही होती है जैसे गी आदि के लिए लीबे की बातचीत की जा रही हो । पिछली सदी में लुकिर में कय्यों का दाम इतना बहुत गया था कि वहाँ के राजा कय्यों को इसे एक दूकैय मर्य पर्यहित करता था ।

कय्य का शुल्क अ दाम लेने का कारण अमर यह बताया गया है कि कय्य के जाता-पिता कय्य की बेने में अनिच्छा प्रकट करते हैं, जा वे उसे मूल्य लेने पर ही लेते हैं । किन्तु इस अनिच्छा के अन्त को अनेक कारण हैं—(१) कय्य आदि

कीर साजे के लिए अधिक धन देने वाले हों।" इस भाव के यह शास्त्र होता है कि जीने औपकल कन्या के कम दन में किसी प्रकार की कमी या बाध होने से उनके शाता-विना

सम्बन्धों में आर्थिक दुर्बि से बहुत बाधकार होती है। इन सवालों में औरतों से पकड़नों की भांति काम लेने का रिवाज बहुत प्रचलित है। कन्याएं घर का तथा छोटी भावि का काम करती हैं, उनके व्याह्र जाने से पिता को आर्थिक हानि उठानी पड़ती है, मतः यह आचार्यक है कि पिता कन्या का दाम ले। इस संशय में यह बात ध्यात होने योग्य है कि समाज के उच्चवर्ग में स्त्री पुत्र पर भारक्य होती है। पुत्र को उस स्त्री की पालन-पोषण की जिम्मेवारी लेनी पड़ती है। कोई भी पुत्र इस जिम्मेवारी को लेते हुए संकीर्ण करता है, मतः कन्या के शाता-पिता घर को बहोत भारि बेकार उठाके इस तार को कुछ हलका करते हैं। यहाँ शाता-पिता को कन्याओं के व्याह्रने की गरज अधिक है और पुत्र उसमें अभिन्का प्रयत्न करवाते हैं, मतः इसे बहुत सा कपचा दिया जाता है। किन्तु जिन समाजों में स्त्री कमाने वाली होती है वहाँ उसे पाने के लिए बलि को कपचा देना पड़ता है। यह अर्थशास्त्र के माँग और पूर्ति (Demand and Supply) के नियम का सुन्दर उदाहरण है।

कन्या को बिना पूज्य देने का यह अर्थ भी लगाया जा सकता है कि वह बिल-कुल निकम्मी थी, क्योंकि निकम्मी वस्तु का कोई दाम नहीं होता। कन्या के सम्बन्ध में इस तरह के प्रचार की अन्धे कुल के लिए कर्मका समझा जाता है। मतः कई मातियों में कोई व्यक्ति अपनी कन्या को किसी हालत में भुगत देने की सीमार नहीं होता है। याकुतों में इसका अर्थ यह समझा जाता है कि वह अधिष्ठात और निम्नगुण की, उसका कोई मूल्य नहीं था। अफ्रीका की कार्फिर निवासी उस स्त्री को जखनत वृमित समझती हैं, की किसी वस्तु से न खरीदी गयी हो। ऐसी स्त्री को वे बिलसी कहते हैं, क्योंकि बिलसी को इसका निकम्मा प्राणी समझते हैं कि उसको कभी कोई नहीं लेचता है। कन्या का मूल्य उस की योग्यता की परीटी है।

समाजशास्त्रियों के मत में वृद्धे राक्षस विवाह प्रचलित था। इसमें भूमिकरात्री और मृग्य बेचकर लोगों ने धन लेकर निम्नवा खरीदनी शुरू की। अपने इस कथन के समर्थन में वे यह तर्क उपस्थात करती हैं कि कई स्थानों में कन्या की पहले हर लिया जाता है और बाद में उसका दाम तय हो जाने पर उसके साथ शादी हो जाती है। इसे सोकन धन (Ransom) कहते हैं, इससे यह सिद्ध होता है कि पहले कन्या को भगा कर ले जाने की पराजि का रिवाज था। किन्तु कन्या का दाम सोकन धन नहीं है; कन्या का दाम लिये जाने के

जैसाई को प्रचुर वस्त्र का आभरण मिले हैं, यन के वस्त्र पर अपनी कन्या के दाँव छीपते हैं और बहुत बड़े दाँव के साथ उसकी आँखों को ढाँके हैं, 'तवी तदह्' वैदिक काल में, वर को वस्त्र रंग या कटीर में कोई दाँव छीपे पर, वह कन्या के पिता भाँ खूब स्तुति देता था। उपमा उन्हीं वस्तुओं की थी जिनसे वे खूब प्रसिद्ध या प्रचलित हों। भाग्य [१] नैमाश्यों की उस समय बहुत संख्या रही होगी, तवी इस तरह की उपमा की लगी है। मात्क (१।६) ने उक्त मंत्र की व्याख्या करते हुए लिखा है—“मेमे मुन्य है, तुम लोगों बिनामाता या सदाप ओसाई के अधिक धन देने वाले हों। दाक्षिणात्य ब्राह्मणों द्वारा वेदों के प्रति को बिनामाता कहते हैं”। इससे स्पष्ट होता है श्रमण में यह प्रथा अधिक प्रचलित थी। मात्क ने ३।४ में इस मंत्र पर विचार किया है कि कन्याओं को तंपरित में दाराश्रमिकार मिलना चाहिए या नहीं। इस प्रकरण में भी उसने स्त्रियों के छोड़के ज्ञान का संबंध किया है। स्त्रियों को तंपरित दिये जाने के विरोधी लोगों का क्या रखते हुए मात्क ने अनेक युक्तियाँ दी हैं। इनमें एक युक्ति यह भी है कि स्त्रियों का दान, दक्षिण और द्याग होता है, अतः के संपत्ति की अधिकारिणी नहीं हैं। इसके उत्तर में कन्या को संपत्ति देने के पक्ष का समर्थन करते भाग्य [२] स्त्रियों के दक्षिण या बेचे जाने के तथ्य से इनकार नहीं किया, अपितु यह कहा है कि यदि वह युक्ति मान ली जाय तो पूज्यों को ही संपत्ति में अधिकार नहीं रहेगा, क्योंकि पुत्रवधूँ बेचे जाते हैं, जैसे तुलसीयों को उसको पिता अजीर्ण ने राजा हरिश्चन्द्र को बेचा था (मिश्रता ३।४)।

स्त्रियों के छोड़के ज्ञान या एक साष्ट प्रमाण मैत्राण्यी संहिता (१।१।१।१) ने है—‘यज्ज वृत्त और तदह्' स्त्री बूढ़ है, पित्रवधूँ के वह स्त्री बूढ़ा (या वर का) कर्म करती है जो पति से ब्राह्मणों के जाने पर भी दूसरे व्यक्तियों के साथ विचरण करती है’।^{१०} भीमासा काश्या में नैमित्तिक तथा इन के नाम में उद्धर में भी इस मंत्र पर विचार किया है। उद्धर नैमित्तिक सूत्र के ६।१।१० वात पूर्व पक्ष इस प्रकार रखता है^{११}—‘स्त्रियाँ कर्म-विश्रम के

कारण कुछ और ही हैं जो उद्धर दिये गये हैं। कन्या का वृद्धता होने की प्रथा ऐसी आतिथ्यों में भी है जिनमें अग्रहण द्वारा विवाह करने की प्रथा अभी नहीं रही और राजसूय विवाह के बारे में यह नहीं कहा जा सकता कि पहले कहीं यह विवाह पंडित द्वारा कर्म से प्रचलित थी (वे० शा० हि०, पै० सू० १२६-७०)।

२० पै० सू० (१।१।१।१) ‘वृत्तं वै तद्वत्सलोऽनृतं स्त्री भुज्जं वा द्याग करेति वा वस्तुः जीता सात्वतान्दीश्वरति।

२१ पै० सू० (६।१।१०) पर उद्धर का भाव्य ‘अग्रहणं संयुक्ता हि स्त्रियाः। पित्रा विधीयन्ते तान् कीदृशे। विधया हि धुयते। अतमतिर्यं दुहिभुज्जं वस्तु’। पै० सू० (६।१।१५) पर उद्धर भाव्य ‘यस्तु कर्मः कृत्यते यद्येवमं नृत्तम्। मोक्षी कर्म दुहि विवर्तं विवर्तं वस्तुः अतमतिर्यं इमेकममकीधया वा कन्या प्रति’।

गुरु होती है, वे पिता द्वारा बेची जाती है और पति द्वारा खरीदी जाती है। भूमि में उनके विषय का अर्थ है—'जड़की के पिता का १०० गोए और एक रथ है।' फिर उसने १०० ६० के उपर्युक्त भाग्य की व्याख्या करते हुए कहा है कि कन्याओं के पिता को दिया जाने वाला उपर्युक्त शुल्क निश्चित धन राशि है; आगे कन्या सुन्दर हो, धन हो वह हर हासल में दिया जाता है। वास्तव में कन्याशुल्क की प्रथा इतनी अधिक बढ़ चुकी थी कि उसे स्वीकार करने बिना काय नहीं चल सकता था। अब उसे भेजा ही था तो धर्म के नाम पर लोग सबसे अच्छा था। श्वर ने ऐसा ही किया।

भारत में आसुर विवाहों के उदाहरण

इसमें कन्याशुल्क के कई ऐतिहासिक उदाहरण उपलब्ध होते हैं। उर्मी नाम होता है कि यह प्रथा दक्षिण में ही नहीं, अपितु उत्तर भारत के भी अनेक प्रदेशों में प्रचलित थी।

कुन्नी के राजा पाण्डु का विवाह करने के बाद, सीध ने उसका दूसरा विवाह करना चाहा। वे अपने सखियों के साथ मद्रदेक (म्यासकोट) गए। सीध ने मद्रदेक गत्य से उसकी बहिन माही पाण्डु के लिए मांगी। मद्रपति बल्य ने कहा 'मेरी गृह सम्पत्ति है कि मेरे लिए आपसे अच्छा कोई घर नहीं होगा, किन्तु हमारे कुल में पूर्वजों द्वारा कन्या के लिए शुल्क देने का नियम बना आ रहा है, वह कन्या हो या पुत्र, मैं उस नियम का उल्लंघन नहीं कर सकता। आप उस नियम का जानते ही हैं, अतः कन्यादान की बात आपके लिए उचित नहीं है। शुल्क देना हमारा कुलधर्म है और पहले सोल इस विधि का अनुसरण किया करते थे, अतः इसमें कोई दोष नहीं है।' सीध ने इसके उत्तर में शपथ से कहा कि वह सुम्हारी माघनम्मल मय्या है (महाभा० ११११३१८-१९)। अतः सीध ने, बल्य की सीमा, विविध प्रकार के रत्न, सुनारी हथौड़ी, बीड़े, रथ, कपड़े, माधूपथ माषि, माधियय, मोती, भूरे आदि माही का दान के लिए दिये। बल्य ने यह सब धन लेकर जाना भर्त्ताकारों से कुन्नी हुई अपनी बहिन सीध को दान कर दी।

आगे चलकर हम देखेंगे कि सीध स्वयं इस प्रथा की ओर निन्दा करता है किन्तु यहाँ यह आसुर विवाह का बहुरा द्वारा बताया हुआ (बाहुरा) धर्म मानता है और इसमें कोई दोष नहीं समझता। बल्य को शुल्क माँगने में अवश्य कुछ शिक्का हुई, किन्तु सीध ने उस शुल्क को देने में कोई संकोच नहीं किया।

मनपर्ब में (३१११५।२०-३०) कन्याकुब्ज के राजा गाधि की इसी प्रकार की कथा है। राजा गाधि की अन्धराओं जैसा रूप रखने वाली एक लकड़ी सयवली। श्वकीक भार्गव ने राजा गाधि से इस कन्या की मागना की। गाधि ने कहा 'हमारे कुल के पूर्वजों ने यह प्रथा बना दी है कि एक हजार काने फाँट करके, खेत बर्ष और नव-वेवभानु बोके कन्या का खरक होते हैं (३१११६।२२३)। हे भार्गव, मैं आपसे यह शुल्क

कीसे याँगू ?" शूचीक ने कहा—'मे आपकी एक हजार रुपय कर्ज, ठीक नहीं, लेकिन चाँदे दूँगा। आपकी कन्या मेरी स्त्री होगी।' शूचीक ने मे चाँदे बहुत से प्राप्त किये और उन्हें बेचकर गांधि से सत्यवादी को प्राप्त किया। डिमरसेंट शूचीक ने अपने पूर्वक भाई को प्राप्ता कर उससे यथाकाम रक्षण किया। यही भी अपने कुल में चिरकाल के चले आने वाले इस विधान की जड़ कहा गया है और इस विवाह को एक मुग़लबी शाहजान के किया है।

भारत-भूतक के अनेक अन्य उदाहरण उपलब्ध किये जा सकते हैं। बम्बिपुर के राजा शिवकाश्वन ने अर्जुन से अपनी कन्या का यह शुल्क माँगा था कि अर्जुन ने विजयनगर का भी गुज उलगा हो वह उसके गुज की बराबरी कराता हो (गङ्गाधर ० १।२६६)। रामायण के आठ सर्गों में निरुद्ध ने सीता की शापविग्रहण भी शुल्क देकर किया था। कन्या विक्रय भी इस प्रकार की भारत में युनानियों ने आचार देखा था। उन्होंने लिखा है कि राजाशिवा मसरी में मुन्नी कन्याएँ बाजार में बेचने के लिए लम्बी जाती हैं और जो सबसे अधिक कीमत देता है उसी के साथ शूदा प्रय होता है।

कन्या शुल्क तथा आसुर विवाह की निम्ना

महाभारत और अमरकालों में कन्या के लिए शुल्क देने की बात लिखा की है। महाभारत में अम्बिका विचार से वर्णन है। इस पहले यही देखेंगे। अनुवाकन पर्व में राजसूय और आसुर दोनों प्रकार के विवाह करने वाला भीष्म युधिष्ठिर की उपदेश देता है कि मैं दोनों विवाह अयम है और इनमें कभी नहीं करना चाहिए।^{१३} युधिष्ठिर ने शुल्क के संबंध में जो प्रश्न किये हैं, उनसे यह ज्ञाप होता है कि कन्या का शुल्क अब दोनों एक प्रकार का समान था। युधिष्ठिर प्रश्न करता है—“एक कन्या के लिए कोई शुल्क दे, कोई यह कहे कि मैं इसे बाँध करता हूँ, कोई उसे दूर के, कोई उसे घन का मोल विचारों और कोई उसका प्राणिग्रहण करने वाला हो तो उस कन्या का वास्तविक प्रतिशोध होगा (१३।४४।१६-२०)।” इसी तरह युधिष्ठिर ने आगे एक कर यह प्रश्न किया है कि यदि कन्या के लिए एक शुल्क ने शुल्क दे दिया है और अर्थात्काल-सम्पद कोई आग बर पहले गुण्य की अनेक अधिक अच्छा मिल जाता है तो क्या किया जाना चाहिए। दोनों पक्षों में दोष है, यदि शुल्क देने वाले से कन्या का विवाह होता है तो कन्या की अच्छा कर नहीं मिलता और यदि वह शुल्क देकर दूसरे से विवाह करता है तो भी उसे पाप लगता है, इस प्रकार में क्या करना चाहिए। (१३।४४।२०-२६) भीष्म ने इन प्रश्नों का उत्तर बड़े विस्तार से दिया है। वह कहता है—“कन्या के लिए शुल्क ग्रहण करने से विवाह की विधि

^{१३} म० भा० १।१।४४, पंचमों से अम्बिका का कन्या: इन्द्रप्रस्ती युधिष्ठिर।

पंचमकासुराधीन न कर्तव्यी कर्त्तव्य ॥

होती है, ऐसी बात नहीं है। गांधी लोग मुस्क धरूप करके बान्वा करवाने काभी नहीं करते।^{१०} इस विषय में यह कहना है कि यदि मुस्क से ही विवाह हो जाता हो तो फिर पामिग्रहण संस्कार की क्या आवश्यकता है। जो लोग कम या मुस्क को मानते हैं, वे धर्मक नहीं हैं। मुस्क के साथ कन्या की काभी नहीं व्याहृत होति।^{११} यादों का कभी कम-बिम्बा नहीं बनना चाहिये।^{१२} माते कम कर भीषण मासुर विवाह की निम्बा पालन हुआ कहता है कि इस विवाह से अनुपायुक्त, अर्धमण्डित और सठ पुल पैदा होते हैं। धर्मशास्त्र के जानने वाले, धर्मशास्त्र में बड़े हुए सम्मान पुण्य मासुर विवाह की निम्बा में धन और लाभ हुए दन स्त्रियों का उल्लेख करते हैं—'जो मनुज पुत्र का संस्कार धन लाभ करते हैं अथवा जो विधवा को विद्व शूद्रक धरूप करके कन्या प्रदान करते हैं।^{१३} वे पुत्र पुण्य महावीर साधने मरण में, स्वर्ग, भूख और विपदा का योग करते हैं (१३:४५:१७-२०)।' मुस्क नेने की इतने अधिक समकाल निम्बा क्या हो सकती है? ^{१४}

धर्मसूक्तों में आसुर विवाह की वधा का विरोध नहीं प्रकार से किया। किन्तु विरोध करते हुए भी उन्होंने कई जगह इसे शर्द्ध में इच्छा अमर्षन भी कर दिया। औधारण धर्मसूक्त (१:११:२०-२१) में मुस्क सेकार करीबी हुई स्त्री को बीच परती नहीं स्वीकार किया और उसे दारी का दर्जा दिया है। उसके लक्ष्यों में इस प्रसंग में आचार्य गुराने वचनों को उद्धृत करते हैं—'धन के जो स्त्री करीबी जाती है, वह परती नहीं बनानी जानी। वह वैवताभी की पूजा तथा मित्रों के दर्शन में, पति के साथ सामंजसित नहीं हो सकती। कारण उसे दारी कहता है। जो लोग लोग के कारण अपनी लक्ष्यों को, मुस्क या दार से होते हैं वे आराम का विषय करने वाले अनुपायी हैं। वे और मरक में भाते हैं (औधारण धर्मसूक्त १:११:२०)।' अथर्व (२:१:७६) यही धर्मसूक्त कहता है कि जो अपनी बान्वा को वैवता है वह अपने पुण्यों को वैवता है, लेकिन औधारण यह स्वीकार करता है कि आसुर विवाह अतिथी के लिए समष्टिकूल है (१:११:१२)। किन्तु अतिथी धर्मसूक्त दत्तका नाम

^{१०} अहमद- १३:४५:११, यहि मुस्कपरा: सन्त: कन्या दयति कर्हिचित्।

^{११} यही ४५-४७ 'ये अमर्षते एवं शूक्तं न ते समर्थो नरा:। न चेत्येव प्रवृत्तव्या न चोद्वेगा न च विद्वेगा ॥६॥ ह्येव भावा कोदव्या न विद्वेद्या कर्षवन्। ये च कीचमि दास्यं च विनीममि तदेव च। नवेतेवा तथा निष्ठा सुख्यानां वापचेतसाम् ॥

^{१२} मुस्क की निम्बा के अन्ध वधवों के लिए वे० महाभा० १:१६:३; १:३५ व १:३६-३७:५१, ७:३३:३७, ७:४२:४२। यही वे स्वर्गों में कन्या मुस्क सेकर कन्यादान करने वालों को अत्यन्त गर्वपूर्ण एवं शुक्ल करने वाले अनुप्यों में गिनाया गया है। १:१:४५:२३ में कहा गया है, सब ऊपर यजुओं को वैवता की उक्ति यही है सब मनुष्य द्वारा संज्ञा का वैवता सभी धर्मसंपत्त नहीं हो सकती (अन्धोऽप्येव न विवेकी मनुष्यतः कि पुनः प्रजा:) सि० अनु० ३:५३।

भानुप भर्षत् भनूयों में प्रचलित बताया है। बसिष्ठ इसकी निन्दा नहीं करता, किन्तु कथ ने उस पुराण कथनों को उद्धृत करता है जिन्हें शबर ने उद्धृत किया है। भानुप गृह्यसूत्र (१।७।८) में इसका नाम ग्रीष्म दिया है, किन्तु निन्दा नहीं की। भनू ने (३।३१-४५) कहा है कि कन्या का पिता छत्र ग्रहण करने के बीच में आसता हुआ भनूमात्र भी गुरुक न ले; जोस में उसे ग्रहण करता हुआ वह शास्त्रान् वेदमें भ्रमा होता है। किन्तु जब कन्या के सम्बन्धी बर कर गुरुक अपने आप नहीं लेते किन्तु कन्या का साथ देते हैं, तब वह कन्याओं का अर्जुन या पूजन है, इसमें कोई दोष नहीं है। भनू शूद्र तथा की कन्या का गुरुक लेने से घना कथता है, क्योंकि वह ब्रम्हस्य कन्या-विषय है (३।४८)। बसुष्टु इन कथनों में भनू के अपने अर्थों को प्रतिष्ठित किया है। वह यह अर्थ प्रकट करता है कि शूद्र न पिता जाय, किन्तु रामाय में कात्यायनक लेने की प्रथा काशीमुद्रमूल थी। अतः अम्यत्र (३।३३ व ३।१६६) में उसने शूद्रक को स्वीकार किया है। मनुस्मृति (३।६३) में कहा गया है कि ऋषियुक्त कन्या का परिणय करने वाला बर पिता को कन्या का गुरुक न दे, क्योंकि पिता उसके ऋषिकुल का विरोध करने से कन्या पर अपना स्वामित्व को रोकता है। इसी तरह ८।१६६ में रामाय जगदीय कन्या का वृद्धि करने वाले मुक्त को सिद्ध शब्द की व्यवस्था करता हुआ यह कहता है कि यदि पिता बिबाह की पराजय करे तो वह कन्या का गुरुक ही ले, उसे और कोई बन्ध नहीं। ८।२०४ में भनू कहता है कि यदि कन्या का पिता गुरुक तब करने के समय लक्ष्मी कन्या बिबाहता है और बाद में बिबाह के समय दूसरी (दोष वाली) कन्या देता है, तो वह ही गुरुक के बर दोनों कन्याओं के दाज साक्षी कर ले। इन दोनों कथनों के स्पष्ट है कि भनू कन्या के पिता को गुरुक लेने का स्वाभाविक अधिकारी मानता था। बालकवन्द ने (३।२३९) संतान वैधवा उपपत्तियों में पिता है (मि० मनु० १।१।६९)।

कन्यागुरुक की श्रैष्ठ्यतम निन्दा महाभारत उदर (११।८४) तथा पद्मपुराण में है। म० वि० कहता है—“राजा भास्विक और परितः व्यवृष्टि की तरह अपनी कन्या का गुरुक लेने वाले व्यवृष्टि को भी अपने राज्य से विचरित कर दे”। पद्मपुराण व० अ० (२४।२९) कहता है—“बुद्धिमान् कन्या वैधवे वाली का मुक्त न वेदो, यदि वैधवा के संनका मुख वेद से तो सूर्य का दर्शन कर उस पाप की मित्रता करे”।^{२३}

स्मृतिकारों की उपर्युक्त व्यवस्थाओं से यह स्पष्ट है कि वे गुरुक की प्रथा की निन्दा करना चाहते थे। संभवतः उन्होंने इसीलिए इसे आसुर बिबाह का नाम दिया। जपुर भी राजाओं की तरह एक वदन्ता और देवताओं की विरोधी भाति थी। उस गुरी जाति में प्रचलित प्रथा का अनुसरण मिष्ट लोगों को नहीं करना चाहिए। श्री वैद ने यह कथना

२३ ब्रह्म वेदों में भी यह बिबाह का निः कथ एक कन्या का गुरुक न बिना नाम दी बिबाह वेद नहीं उपपत्ता जाता था (वे० सर० द्वि० भे०, पृ० १७६-७)।

की है, कि कन्या का बलक लेने की परिपाटी अंगीरिया में प्रचलित थी। अंगीरिया के रक्षकों से यह भारत में आयी और भारत के उत्तर-पश्चिमी प्रदेशों—सप्त, केन्य आदि में उसके बहुत उदाहरण मिलते हैं। प्राचीन कौटिली के विवाह बालक से हुए थे, जिनके कम वयस आसुर कहा गया था। इस सम्बन्ध में पहला दोष तो यह है कि कन्याबालक की प्रथा केवल पश्चिमी भारत तथा ही सीमित नहीं थी। बालक जो दासियोंवालों का रिवाज बनाना है महाभारत में पश्चिम आर्यवंश के कान्वकुल्य जैसे महारथियों द्वारा भी राजा गांधी को अपनी कन्या का बालक लेने का भाव भेजा गया है। सप्तः यत्तु नारी प्रजा जा तन्मता कि यत्तु मध्य पश्चिमी भारत तथा ही सीमित थी और यहाँ बाजों ने इसे अंगीरिया में प्रचलित किया। दूसरा दोष यह है कि आर्यवंश में अंगीरिया में जहाँ प्रथा के प्रचलित होने के कोई पश्चिम प्रमाण नहीं मिले। वेदों अथवा अंगीरिया के सामन्तों से यह नहीं कहा जा सकता कि उनके यह प्रथा प्रचलित थी।

आसुर विवाहों की निन्दा का कारण

धर्मशास्त्रों द्वारा आसुर विवाहों की निन्दा का मुख्य कारण यह प्रतीत होता है कि वे कन्या को दान की वस्तु समझते थे। कन्यादान और विवाह पर्यायवाची शब्द हैं। दान की वस्तु की खरीद नहीं जाता। दान और खरीदना दो विरोधी वस्तुएँ हैं। जब कन्या को एक बार दान की वस्तु समझ लिया गया तो उसके विरुद्ध का निषेध एवं निन्दा सर्वथा स्वाभाविक थी। किन्तु इस पर यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि कन्या का दान की वस्तु क्यों माना गया? इस पर हम देख सकते हैं कि असम्भ्र ज्ञानियों में पिता और सम्बन्धी अपनी कन्या को आसानी से नहीं बेचते हैं। इसमें उधारा स्पष्ट तथा स्वार्थ दोनों कारण हो सकते हैं। प्राचीन भारत में भी पहले कन्या विक्रय होता था और मानवान भी भारत की निम्न तथा मध्यम जातियों में उसका बुरा प्रचलन है। आसुर विवाह में स्त्रियों का बर्णन जैसा हो जाता है। 'दास्य विवाह में हमनी कोई भीमत नहीं और ब्राह्म, वैश्य आदि में उनकी कोई पूछ नहीं है। कम स्त्रियों को पत्नी खरीद कर लानी मङ्गी है न। यह उसके साथ दुर्व्यवहार या अपवाचार नहीं कर सकता, उसे कोई कष्ट नहीं दे सकता, क्रौंिक दुर्व्या उसे यह प्रथ पहुँचा है कि यदि उसने पत्नी को रुद्ध किया और पत्नी ने उसे छोड़ दिया तो नई पत्नी लाने के लिए उसे और स्वयं स्वर्ग कराना पड़ेगा। उसका यह प्रथ समाज में स्त्रियों को प्रतिष्ठा, गर्य और स्वात्मन्या प्रभाव करता है। हम अत्यन्त विस्तार से यह देखेंगे कि ब्राह्मण स्मृतिकारों की 'न स्त्री स्वात्मन्यमर्हति' का सिद्धान्त बहुत ग़लत है और विवाह-सम्बन्धी नियमों में उन्होंने स्त्रियों के साथ अन्याय किया है। कई बार यह अन्धव्यवस्था स्वार्थपूर्ण उद्देश्यों से किया गया है। ब्राह्मण प्रत्येक वस्तु को दान में घातना चाहे, चाहे वह मान्य हो या वक्षिण। कन्याशुल्क के नियम में निषेध ब्राह्मणों को बहुत असुविधा उत्पन्न करती थी। अन्ध ने तो महाराज की माँ की वस्तु

सोमा, सोमी, बहुपुत्रक बन्धु-बान्धव के रूप में बड़ी प्रसन्नता से विवाह, किन्तु अन्धक मार्गों की गांधी की कथा का मुक्त होने के लिए अन्ध से १००० बौद्धों की याचना करनी पड़ी, अतः ब्राह्मणों के लिए यह सामाजिक या धर्म के मुक्त को निन्दा करें।

अन्धकार के स्फुटिकारों और दुष्टों द्वारा इस प्रथा की चार निन्दा का एक कारण भी अंतर्कर ने 'गोदीमन ब्रह्म मुन्येन वनएण्णं इडिअ' (५० ४६) में यह बताया है कि बालविवाह के प्रचलन ने मुक्त की बुराई बहुत बढ़ा दी थी क्योंकि कन्या के मरणा-दिना पर वे मुक्त माने थे। किन्तु यह कारण ठीक नहीं है। बालविवाह में सम्मेलन होने से पहले ही कन्या की व्याहृ देने का नियम था, उसे लोक स्थान पर आना-गिरा की सजा पाया जाता था। इस बात में कन्या के आत्म-विनाशिकी भी प्रकार कथा का विवाह कर देता चाहते थे। कन्या का मुक्त होने के लो कन्या के विवाह में देती होने की संभावना थी। इसके विपरीत, वे घर के आत्म-विनाश की विवाह के लिए पहले के रूप में प्रस्तावित होता जिनके कारण से। अतः बालविवाह श्रेष्ठ की बुराई को बढ़ाने वाला कारण अत्यन्त है, किन्तु कन्या के मुक्त के लो इसका कोई सम्बन्ध नहीं है। धर्मशास्त्रों द्वारा निर्दिष्ट होने पर भी यह प्रथा प्राचीन एवं मध्यकाल में चलती रही। वैदिक काल में तथा पूर्वकाल में कन्या-विधवा के प्रचलन का उल्लेख हुआ जाता है। मृत काल में कन्यामुक्त की सूचित करने वाले बहुत के बिलालेख मिलते हैं। परण (वि० शास्त्र) प्रसार स्तम्भलेख में यह उल्लेख है कि राजा ने सती साध्वी (रत्नादेवी) से पण्डितद्वारा किया, जब कन्या का मुक्त करने अपनी बीरता और कीर्ति के रूप में प्रचार किया।^{२४} अष्टमूल द्वितीय के अवधिरे के विनाशिक में यह वर्णन है कि अपने पुत्री को अपने विधवा के शरीर का (विधवाकन्यामीता)। यह प्रयोग आत्मभारिक है किन्तु कन्याविधवा की बढ़ती को अत्यन्त सूचित करता है।^{२५} अकराचार्य के सम्बन्ध में कैरव में यह प्रतिष्ठ है कि उन्होंने ६४ आचार नियम किये थे। इन आचारों में कन्या-विधवा तथा सती प्रथा का विवेक की है।^{२६} १४२५ ई० के पूर्विल्लु (जि० सर्वाट) के एक विधानिक में कर्माट, ताभिल, तेलगु, अन्धप्रत ब्राह्मणों का यह अवधारिता उल्लेख है

^{२४} कर्माट—इतिहासकाल इंडिकेटर, पृ० ९० 'वीजकराकन्येतकन्या'।

^{२५} उही पृ० ६३, कर्मिकारण ने 'बुद्धिमुक्त' शब्द का दो स्थानों पर संकेत किया है। मन्-बुद्धिमुक्त शब्दों पर लोचन करके करते हुए यह इसके लिए 'हरण' शब्द का प्रयोग करता है। कर्मिकारण के मत में हरण कन्या के मुक्त को कहते हैं। इसी प्रकार ११३० में उल्लेख कन्या की 'बुद्धिमुक्त' शब्द का उल्लेख किया है। वे दोनों उद्धरण इसमें आच्छादित हैं कि हमने उन्हें परिचालन नहीं किया जा सकता है।

^{२६} इतिहासकाल बुद्धिमुक्त, कन्या ४, पृ० २५३-२६

जिसे वे अपनी कन्याओं के लिए सुख नहीं लेते और उनका क्षतवस्त्र का रंगें। जो व्यक्ति चान्दा के विवाह के लिए मुक्त देना वह राजा द्वारा दंडित होगा और राज्य उसे खास के अधिकृत कर देगा। १७१८०० ई० के अन्तर्गत महाराष्ट्र में देवदासों में शाही (जि. मन्तार) के राजपूतों के नाम वह आज विफलवासी की छि राजा के कन्याओं के लिए गुप्त मन्त्र, जो मुक्त लेते, उन्हें दण्ड दिया जायगा। जो यह मुक्त रंग या जो वरक (गर्भ) दण्ड मुक्त को दण्ड करायेंगे वे भी दंडित होंगे।^{१३}

गान्धर्व विवाह

वचन—मुक्त-मुक्तों परम्परा शीत उल्लास होने पर माता-पिता की अनुमति के बिना जो विवाह करते हैं, उसे गान्धर्व विवाह कहा जाता है।^{१४} आजकल पश्चिम में जिस प्रकार के प्रथम विवाह (Love marriages) चल रहे हैं, प्राचीन काल में उही तरह गान्धर्व विवाह प्रचलित था। पिछली कई शतियों में धर्म-विवाह का व्यवस्थित प्रसार होने से गान्धर्व-विवाहों की अपर हिन्दू समाज में उठ गयी है और उनमें ऐसे विवाहों की कल्पना न हो रही है और न ही की जा सकती है। साथ में ७० वर्ष पूर्व हिन्दू विवाह की रीति को देखते हुए श्री रिजनी में लिखा था—“हम विषय पर विचार करने हुए उन्हें अनुरक्षण (Cousinage) के सब विचार करने दिए थे निकान वेन बाह्या।”^{१५} वे सब विचार सुन्दरियन लोगों के विवाह के साथ अधिक सम्बन्ध हैं। रिजनी के मत में ‘प्रणय विवाह’ यूरोप की विशेषता है, किन्तु यह मत ठीक नहीं प्रतीत होता है। जब तक हमारे देश में धर्म-विवाहों का विधान नहीं चला था उस समय तक प्राचीन भारत में प्रणय-विवाह होते थे; आदिमों के साथनों के, परिवारों के कुर्बों पर, वेतन कुर्बों में प्रेमी-प्रेमिका का मिलन होता था। के एक दूसरे के प्रति सम्बन्ध रखने की प्रतिज्ञा किया करते थे।

वैदिक युग में गान्धर्व विवाह

वैदिककालीन साहित्य में प्रथम विवाहों का बड़ा बयान वर्णन है। ऋ० (१०। ६५।२) में बताया यह निपात करता है कि मैं ऊँचा न सोचने का संकल्प करता हूँ, किन्तु अब पालों के पक्षों की बाधा जाती है तो मैं ऊँच के स्थान पर उनी तरह बसा जाता हूँ,

^{१३} कृत—सायब इतिहास इतिहासक ६० २५।

^{१४} बाले-हिन्दू मातृ वर्यसाय, अ० २ भा० १, पृ० २०६-७।

^{१५} श्री० प्र० पृ० ११११३, लक्ष्मण लक्ष्मण वि० सर्वोप गान्धर्वः १ वि० ५० अ० पृ० ११३३, अन्त० अ० पृ० २१३१११५०, श्री० अ० पृ० ११११५ इतिहासक सर्व संघर्षों गान्धर्वः।

जैसे प्रेमिका प्रिय से मिलने के लिए निश्चित संकेत स्नान की ओर जाती है। सोम के प्रकारण में उपवास से कष्ट गया है कि संनितियां सोम को उखी तरह दबाती है जैसे नत्था प्रेमी से स्नान करती है (अ० २।५६।३)। अथर्ववेद २।३२।५ में भी स्नो (प्र प्रेमी) के पास जाने का वर्णन है। केचम स्त्रियाँ ही पुत्रों के पास जाकर, उनमें प्रथम प्राप्त करने का यत्न नहीं करती, अगिन् पुत्र्य भी स्त्रियों से घेन पाने की आकांक्षा रखते और उसके निष्ठ माना धर्मो के यत्न करने से। अथर्ववेद के कामागम (६।८) और कामिनी-अन्तोषिमुष्ठी-कारण (प्रेमिका के मन को अपनी तरफ आकृष्ट करता) नामक (२।३०) सूक्तों के मंत्रों की टोक है—“मेरी प्रेमिका मुझे चाहते आती है। मेरे से दूर हट कर जाने वाली नहीं है।” अथर्व ६।८।१ में घेमी प्रेमिका में उस तरह के आस्थान की भांग करता है, जैसा भार्गव-एन सहा सूक्त के ग्रन्थ कहती है। एन सूक्ते सूक्त में पुत्र्य अपनी कामिनी या प्रेमिका के घेन को प्राप्त करने के लिए, माना प्रकार के उपवास का आश्रय लेता है, वह आश्रयियों से सहामता मांगता है (२।३०।२), अश्विनि का प्रयोग करता है और अन्त में सफल होकर कहता है कि तू मेरे पास पवि की इच्छा से और मैं तेरे पास रहने की इच्छा से आया हूँ। हिनहिनाते घोड़े की तरह संस्पर्श के साथ तेरे पास आया हूँ (अथर्व २।३०।५)। कामागम सूक्त (अथर्व ६।६) में भी पुत्र्य ने इस प्रकार की अभिलाषा व्यक्त की है—हे कामिनी, तू मेरे मरीच, पैर, आंख, सन्नि की वाचना कर, क्योंकि तेरी आँखें और केश स्थाविरता से मुझे मग्न रहे हैं। हे कामिनी, मैं चाहूँ मैं तुम्हीं दुई तुझको अपनी प्रेमलता बधना हूँ ताकि तू मेरी इच्छा (संकल्प) वाली हो और मेरे जिस को प्राप्त करे (अथर्व ६।६)। अश्विनीमनस्य सूक्त (६।१०२) और स्वरसूक्तों (६।१३०।३९) में भी प्रेमी ने कामिनी के प्रति अपने प्रेम की विज्ञापना एवं आशुता का प्रकट किया है—“अश्विनी, जैसा वह घोड़ा सारथी की इच्छा से आता जाता है (अर्थात् पूर्णरूप से उसके अधीन हो जाता है) हे कामिनी, उसी तरह तेरा मन मेरी ओर आये जाये (पूर्ण रूप से मेरे अधीन हो)।” (६।१०२।१)। छठे काण्ड के स्वरसूक्त (१३=१३१) की टोक यह है—हे देवा (मेरी कामिनी या प्रेमिका के पास) काम देवता का नेत्रों ताकि वह मेरी ही चिन्ता करती रहे (देवा प्रहिरत इमरमसो मामनुशोचन्तु)। उसके पास वेवताओं का, गन्धर्वों का, अम्बरराजों का काम देवों (ताकि मेरी प्रेमिका) मुझे प्यार करने लगे, मेरा प्रेमी मुझे माद करने लगे (अथर्व ६।१३०।२)। हे अग्नि, हे इन्द्र, हे अन्तरिक्ष, तुम मेरी प्रेमिका को इस तरह उन्मत्त बनाओ कि वह मेरा ही ध्यान करे (अथर्व ६।१३०।३)। पुरुष के द्वारा प्रथम की इतनी तीव्र और स्पष्ट याचना प्राप्त के प्राचीन साहित्य में बहुत नाम अभिव्यक्त हुई है।

युवक-युवती के प्रेम का उदय होने पर कई बार माता-पिता उसने बाधक होते हैं। मान्यार्थ विवाह की दूसरे विवाहों से यह विशेषता है कि इसमें माता-पिता की परवाह नहीं की जाती। अथर्व ३।२५ में प्रेमी अपनी प्रेमिका के प्रति काम के करने अवरोध

बाप कहेगा है कि उसकी प्रेमिका माता के पास हो या पिता के पास, किन्तु मेरी के पास में हो जाती है; 'मैं कामिनी, अपने (प्रेम के) आहुक से मेरी लाइन पर, मैं ऐसी प्रेरणा करता है कि बाहेर तु माता के पास में या पिता के, तु मेरे संकल्प वाली हो और मेरे विल को प्राप्त करे।' प्रेमी चाहता है कि उसका प्रेमवाण होता प्रपण हो कि प्रेमिका 'उमने बिछ होकर रात को लेजि की हक न करे (सा धृष्टः मयने मे)। वह बाप उसके हृदय का मुखा है और उमने बिछ होकर उमना नाम् बिन्नुन पुन बाप और वह प्रेमी के पास प्रियवर्तिनी होकर बंट पाय (अथर् १।२९।४-५)। निम्न ने रामदेव का विध्वंस ज्ञान के तीवरे नेत्र से किया था, विवेक और नाम का मिश्र है। प्रेमी को मय है कि यदि प्रेमिका कुछ भ्रम वाली हुई तो वह उसे बाप तभी कर मरणा, मत्तः वह भिन्न और वरुण मेरी से प्रार्थना करता है कि तुम इसे बुद्धिमूर्ध (अकनु) बना हो और मेरे वध में कर दो (१।२९।६)।

वेद में इन वर्णनों के इतने विस्तार से उपपन्न होने के कारण यह ज्ञान सर्वथा स्वाभाविक प्रतीत होती है कि उस समय गान्धर्व या प्रणय विवाहों का प्रचलन था। कौष और मीमांसक ने यह कल्पना की है कि उस समय विवाह पुन के विवाह को नियन्त्रित करता था जो इस पद्धति के सर्वथा विपरीत है। किन्तु बिम्बर यहाँ तक कहता है कि पिता सङ्कीर्ण के विवाह में हस्तक्षेप नहीं करता था।^{४०} यदि इन विरोधी सिद्धांतों की धर्मशास्त्र सत्य न माना जाय तो भी इतना अवश्य मानना पड़ेगा कि युवक-युवतियों को उस समय प्रणय विवाह करने में पूर्णतः स्वच्छन्दता थी।

महाभारत में गान्धर्व विवाह (दुष्यन्त-सकुन्तला)

प्राचीन काल के इतिहास में गान्धर्व विवाह का सुप्रसिद्ध उदाहरण दुष्यन्त और सकुन्तला का है। कामिवास के अतिशय माकुन्तल ने उसे प्रेम बना दिया, किन्तु दोनों वर्णों में अन्तर है। महाभारत के अनुसार (१।९६) दुष्यन्त अशक्ति विना और भोजक वाहुनों के साथ पशुओं का शिकार करने के शिष्ट रहे वध में गया, उसने अनेक प्रायियों का शिकार किया, अन्त में वह मासिनी नदी के तट पर पहुँचा। उमने कम्प शक्ति के लोकेन में प्रवेश किया, कम्प शक्ति बाहर गये थे। राजा ने आशय की सुन पाकर यह पूछा कि यहाँ कौन है? आशय इस प्रश्न से गुंज उठा। इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए सखी-सी एक कल्पवृक्षी उपस्थित की कम्पा उस आशय से बाहर निकली। उसने अतिथि की अभ्यर्चना की, उसने स्वास्न्य और कुशल का समाचार पूछ कर पुनरागत हुए कहा—'आपको क्या कार्य है?' राजा ने कहा कि 'मैं महर्षि कम्प से मिलने आया हूँ। उस कम्पा ने उत्तर दिया मैं कक्ष बदोरेने आत्म से बाहर गये हुए हूँ, आप क्षण भर रुकिये,

वे जोड़ी वेर में सीत आयेगे। राजा ने इसके अर्थ कन्या के रूप की प्रशंसा करती हुए कन्या का परिचय पूछा। कन्या ने शिस्तार से अपनी जन्म काथा सुना दी।

मुच्यन्त ने उसकी आम कथा समाप्त होते ही यह कहा—“तुम राजपुत्री हो, मेरी गत्ती बन जाओ।” फिर बाद में बाकुन्तला को बालक देते हुए कहा—“मैं तुम्हारे निम्न सुवर्ण हार, कण्ठ, मुख पर कुम्हल, मणि और रत्न लार्जंग, मेरा मात्रा राज्य तुम्हारे निम्न है। ते मुन्दरी, तुम मेरी गत्ती बन जाओ, ठे बीस, तुम मेरे माथ गाण्धर्व विवाह पारी, वर्षाधि गान्धर्व विवाह सब विवाहों में श्रेष्ठ होता है (१।७३।४)।” बाकुन्तला बोली—“मेरे पिता एक बटोरने के लिए गए हैं, आप क्षण भर रुकें, वह आकर मेरा सम्भ्रान्त करेगा।” दुच्यन्त को दूना दीर्घ कष्टों का कि वह बाण भी प्रतीक्षा करता। वह बोला अपना आगाही अपना बन्ध है (बाहमना मन्धुसल्लव), वही अपनी पति है, अपना दान तुम स्वयं ही कर सकती हो। अर्थात् तुम्हें कण्ठ से पूछने का यह उस द्वारा अपना दान करने का आवश्यकता नहीं। मर प्रकर के विवाहों का धर्म करते वह कहता है कि “गान्धर्व और राजस क्षत्रियों के लिए धर्मविवाह है (१।७२।१३)। इसमें बाका सब करी। इसमें मन्धुसल्लव ने दो प्रकार के विवाह, बाह्म जग स्य से हो सार मिसकर ही, राजाओं के लिए उचित है। मैं तुम्हारी कामना करता हूँ और तुम पुत्र चाहती हो, मतः तुम गान्धर्व विवाह को प्राग मेरी प्रायः बन सकती हो।”

बाकुन्तला राजा की अविमर्श की गीतता का अनुभव कर, बीके से साथ बटाती है और राजा के साथ अपने विवाह की बात तय करती हुई कहती है—“यदि यही धर्म पत्र है, मेरा महत्ता मेरा स्वामी है तो हे बीरस सम्भ्रान्त के दिवस में मेरी गत्ती सुने, मैं एकान्त स्थान में जैसा कहती हूँ, मेरे साथ वैसी प्रतिज्ञा करो। मुझ से भी पुत्र उत्पन्न हों, वह मुखाल हो और जागने राज्य का अधिकारी हों। हे दुच्यन्त मैं सब कहती हूँ यदि ऐसा हों तो आपके साथ मेरा संगम हो सकता है (१।७२।१२-१३)।” राजा ने बाकुन्तला की यह बात मान ली और विधिपूर्वक बाकुन्तला से पार्श्वद्वारा किया। उसके साथ सहवास किया और बाद में उसे यह विश्वास बिना कर राजधानी बसा गया कि मैं सुधुं मिलाने के लिए चतुरंगिणी सेना सेजुंगा।

कुछ समय बाद बाण कृपि नायक में लौट आये। सम्भावना बाकुन्तला उनके पास नहीं गयी। कण्ठ ने विष्णुज्ञान से सारी बात जानकर कहा कि “बाण मेरी सम्मति के बिना एकान्त में पुत्र से मिलने पर तुम्हारे धर्म की शानि नहीं हुई क्योंकि क्षत्रिय के लिए गान्धर्व विवाह ही श्रेष्ठ कहा गया है। निर्जन स्थान में कामसुक पुत्र का कामकुल नारी से जो मिलान होता है, वही गान्धर्व विवाह कहलाता है।” यथासमय बाकुन्तला का एक पुत्र उत्पन्न हुआ। छोटी आयु में वह शेर, हथी आदि सभी भयंकर पशुओं का बदन करने से सर्वदमन कहाया। उसके छः वर्ष का होने पर कण्ठ ने अपने शिष्यों के साथ बाकुन्तला को दुच्यन्त के पास भेजा।

शकुन्तला ने राजसन्धि में राजा को अपनी प्रतिभा की स्मरण कराया। राजा ने उस प्रतिभा को स्मरण करते हुए भी, यह कहा कि "मुझे कुछ स्मरण नहीं है, तुम मुझे स्मरिस्वमी है। मेरे साथ मेरा धर्म, धर्म, काम का कोई सम्बन्ध हुआ है, यह मुझे याद नहीं आता। तुम चाहें तो कर, चाहें नहीं जा, चाहें नहीं रहें (१।७।१।१६-२०)।" शकुन्तला ने इसके उत्तर में एक लावनी बतलाई दी है। स्त्रियों के अधिकारों का उल्लेख ऐसा प्रथम सम-र्पण किया गया है, औरही स्त्री के क्षत्री समाजप्रकारवादी आन्दोलनकारी (feminists) को सचेतन नारी के अधिकारों का वैसा नीम समर्पण नहीं करने है। पहले उसने दुष्मन्त को शर्म ध्यामने सम्प्रेषण की तुलना दी है, जिसके माते कोई पाप नहीं किया रहता, फिर उसने प्रतिज्ञा होने के कारण, राजा से परस्पर प्रेम की प्रशंसा की है। साथ में उसने स्त्रियों में सत्त्वगुण एवं मोक्ष में हीन गम्य हुए, यह कहा है कि "अन्यथा होने में ही प्रति की मन्त्री की पश्य न आने वाला काम नहीं करना चाहिए"।^{४१} शकुन्तला की यावत् यह मानना की कि पुत्र्य कारिणी के अजीवीय को मुक्त प्रसारित नहीं हो सकती, अतः उसने अपनी अपनी पुत्र के नाम पर की है। दुष्मन्त ने औरही की कड़ी तथा अविश्वामित्र बतलाने हुए, येतना कि उत्पन्न होने के कारण शकुन्तला को बेचना की बातें कही जाती कहा है। शकुन्तला ने इस पर दुष्मन्त की चुन करी करी-मुतादी है—"राजन्! अग राक्षसी (के जाने) बीसा दूसरी का प्रथम बीच देखते हैं और देखते बीसा अपना बहुत रोष नहीं देखते"। यह राजा की तुलना बिष्ठा चुनने वाले मूल्य और ऐसे कुछ स्थिति से करती है, जिसे अपनी तुल्यता की अधिकता है, किन्तु उसने भीसे में अपनी तथा अपना गुण नहीं देखा है। शकुन्तला की अक्षिप्त अजीव शत्रु के नाम पर है। "तब ही परबद्ध है और परब ही परम नियम है। है राजन्! अपने मूल से की प्रण किया था, उसे पूर्ण कीजिये, अन्यथा मैं जाती हूँ"। शकुन्तला खरी गयी। उसके बाद एक आश्चर्यांगी हुई—"शकुन्तला ने तो कहा है, वह सब याद है मुझे उसके पुत्र का जन्म करना होगा" (१।७।१।१७-१९)। राजा ने महिलाओं से कहा कि मैं जानता था कि वह तुम से मुझे अन्य दिया है, किन्तु मैंने मैं शकुन्तला के वचनानुसार पुत्र को मे बिना होना तो क्या यह सत्य करती कि वह पुत्र मुझ नहीं है।^{४२}

४१ १।७।१।२२ 'सुतराव्योदधि' राजाजी न कुर्वावधि नरः ।' कासिबास ने शकुन्तला के लिए भर्तृपि कण के मृदु से इससे बिल्कुल बरी बात कहाई है—

भर्तृपिप्रभृतादि रोचतया या स्त प्रतीव तामः ।

४२ कासिबास ने महाभारत की इस कथा को अपनी कल्पना से परिभाषित कर अक्षि-जामनाकुत्सल में श्रवण बना दिया है। कासिबास की शकुन्तला न तो प्रारम्भ हीकर राजा की अपनी जन्मकथा कहती है और न अपने पुत्र के लिए राजा होने की स्तं चिन्तित है। कासिबास का दुष्मन्त की शकुन्तला की जलपुत्र कर नहीं

बीहू साहित्य में शास्त्रयें विवाह

बीहू साहित्य के अध्ययन से पता चलता है कि उस समय शास्त्रीय विवाह का पर्याप्त प्रचलन था। जातक (पृ० ७) की कथा काशिबास के अग्रजानाकु-
ल्य की कथा में बहुत मेल खाती है। एक बार काशीबास अग्रजाना अपने अग्रज के लिए उपवन में गया। वहाँ फल और फूल इकट्ठा हुआ घूम रहा था। सवात्सप्त उसकी दृष्टि फूल में लक्ष्मिमां धीमती और गायी हुई एक लक्ष्मी पर पड़ी। दृष्टि पड़ते ही राजा द्रव्य पर मुग्ध हो गया। कथा में राजा से शर्म शुरू हुई। उसने राजा से यह बात कही। राजा ने उसे अपनी मुद्रा देते हुए कहा कि यदि लक्ष्मी हो तो इस अंगूठी से धन प्राप्त करना तथा उस धन को पालन-पोषण पर व्यय कर देना और यदि लक्ष्मी हो तो यह अंगूठी खीर बन्धा मेरे नाम से आना। बधासमय एक बार यह उत्पन्न हुआ। उसने माता से अपने पिता के बारे में पूछा। माता ने कहा—'काशीबास का राजा से पालन है' और उसे अंगूठी काली बाट मुना दी। पुत्र ने माता से वाचस्पति किन्तु जो राजा के पास में जाय। माता राजघरवार में मरी, उसने मुद्रा उपस्थित की। राजा जानता था कि वह सच कह रही है। किन्तु दरबारियों के आगे यह बात स्वीकार करने में उसे नज्बा का अनुभव हुआ। उसने दुष्प्रवृत्त की तरह स्पष्ट प्रत्यक्षान्तर करते हुए कहा कि वह मेरा लक्ष्मी नहीं है। माता ने मुद्रा का वाचस्पति उपस्थित किया, राजा ने उसमें भी इन्कार कर दिया। अन्त में उस कच्चे के अवैधानिक प्रभुत्व दिखाने पर राजा ने उसे बालक को स्वीकार लिया। उसे एक प्रान्त का शासक बनाया और राजा के भगवान के पक्ष में उसके पिता के राज्य पर शासन किया। ४३

कई बार स्थिर अर्थ में विधियों के साथ भाग जानी की। वास्तव में एक बली धोखी की कथा पाटनबास उम्र १६ वर्ष की हुई तो उसे सातवीं मंजिल पर लड़ी काँवसी में रखा गया। किन्तु उस कथा का राजा से ही प्रेम हो गया। माता-पिता ने उसकी एक दूसरे मुक्त से जारी छत्र कर दी, किन्तु शास्त्रों के दिन वह कथा अपने प्रेमी के साथ भाग गयी (अग्रपद अष्टम कथा, अध्या २, पृ० २९०)। अन्त्य अष्ट कथा (अध्या १, पृ० १६१) में उज्जयिनी के पण्डित-अजोत की पुत्री वासुदेवता की कथा

सुसता, अर्थात् पुनीता के साथ के कारण उसे अकुलता का विश्वरूप हो जाता है।

४४ देवा जान पड़ता है कि वह कथा महाभारत और काशिबास की वास्तवता की धर्मवर्ती है। महाभारत में अंगूठी की कथा मानी है, इस कथा में यह कहने के लिए राजा द्वारा अंगूठी के बाण की कथा है। पृ० ४० और वालक में प्रत्यक्षान्तर का मूल हेतु लोकावस्था है, किन्तु काशिबास अंगूठी गुप्त करने तथा माय प्रवेश राजा को वास्तवता का विश्वरूप करा कर इस कथा को सर्वथा भव्य रूप देता है।

की यही है। उसके पिला ने कन्या को हाथी पकड़ने का मन्त्र सिखा देने के लिए उदयन को नियत किया। उदयन और सासुरदत्ता का प्रेम हो गया और वामनदत्ता अपने पाप मान गयी। यह बौद्ध कथा श्रीगाम्भी के नामवरदा और उदयन की प्रणय कथा का स्मरण कराती है।

भारत में प्रतिज्ञायोक्तप्रत्यय नामक नाटक में उदयन और वामनदत्ता की कथा लिखी है। वामन (प्रयाग के पाण्डव प्रवेश) के राजा उदयन और उज्जयिनी के राजा प्रद्योत में बहुत थी। उदयन की हाथी पकड़ने का बहुत शौक था। वह शीशुओं को बहुत प्यार देने वाली थीं। राजा जानता था। प्रद्योत ने उसके हाथ परान का शोध रखा। एक बार उदयन नामक में हाथी पकड़ने गया। प्रद्योत ने एक नवमी हाथी में पिपाही परना दिये और उदयन उस हाथी में जिने हुए निराश्रितों के शोध पकड़ दिया गया। प्रद्योत ने उसे अपनी कन्या वामनदत्ता को बीना विवाह के लिए शिक्षक नियत किया। बीना सीखने के समय दोनों के बीच में प्रणय हुआ था। एक बार वनप्रसाद उदयन ने सासुरदत्ता को देखा। दोनों में प्रेम उत्पन्न हो गया। इसका उदयन अपने मंत्री की योजना से जड़े भगा लाया।^{५५}

सात्त्विक धर्म तथा गान्धर्व विवाह

सात्त्विक धर्म ने कामभूत में एकविवाहों की बड़े किन्तार से प्रदर्शित की है। कामभूत के तीसरे अधिकरण का विषय है—“कन्या किस प्रकार प्राप्त की जाए।” सात्त्विक धर्म ने एक यह मत लिखा है कि जिस कन्या में युवक का दिल और मोह लपक गयी हों उसी कन्या में उत्तम सिद्धि हो सकती है, दूसरी में नहीं।^{५६} यह कहता है कि जब कन्या विवाह योग्य आयु की हो जाय तो माता-पिता उसे अर्जक कर एवं राजाकर यज्ञों में, विवाहों में प्रथम सजियों के साथ बसन्त आदि उत्सवों में भेजें। वहाँ परान रूप हकटते होते हैं, क्योंकि कन्या सौदेबाजी की वस्तु है।^{५७} कन्या को बरण करने वाले या चाहने वाले जो व्यक्ति घर पर आये माता-पिता उन्हें कन्या की हठने-भूतने बहानों से दिखाने दें।

कई बार इस प्रकार के प्रणय-विवाहों में साता-पिता कायक होते थे। किन्तु

५५ उदयन और वामनदत्ता की कथा प्राचीन भारत में बहुत लोकप्रिय थी। कालिदास ने मेघदूत (१:१२) में इसका संकेत किया है।

५६ ३:१:१४ सात्त्विक धर्म कामभूत।

यस्यां मन्त्रबलुर्वाग्निशक्तस्तथावृद्धिः मे तरमाश्रितः।

५७ भा० भा० सू० ३:१:१६ निरपराधितायाः सखीभिः सह कीडा। अन्विताहविषु जगत्प्राप्तेषु प्रयत्निकं दर्शयम्। तयोक्तयेषु च। पण्यतप्रमत्तवत्।

साम्प्रदायिक विवाह में प्रीति को ही मुख्य मानता है (३।१।२३)। अतः उसका मत है कि भर-बसु में प्रीति उत्पन्न होने पर माता-पिता को उस सम्बन्ध के लिए तैयार रहना चाहिए। यदि माता-पिता पित्रो के बाधक पर तैयार नहीं होते तो कष्टपूर्ण उपायों को करने में कोई दोष नहीं है। वर के मित्र कन्या के माता-पिता को दूसरे घरों की बुरा-इयाँ बताकर उन्हें अन्ध अर्थों के प्रथम व्याजने में डोके (३।१।५)। एक मित्र कन्यापित्री का मन धारण कर कन्या के घर जाये और यह बलाये कि यह नगर और बसुन बताते हैं कि वर को अधिकार में सम्पत्ति या बड़ा पद मिलने वाला है (३।१।७)। उसके दूसरे मित्र कन्या की माता से जाकर कहें कि उस प्रेमी या नायक को दूसरी अच्छी लड़की मिल गयी है (३।१।८)। इस प्रकार कन्या के माता-पिता को जाला उपायों से प्रतापित कर एक-दूसरे को काटने वाले पुत्रक-पुत्रिणी का विवाह कराया जाय।

कई बार धार्मिक के उत्कर्ष का प्रबल हो जाने पर उसका विवाह नहीं हो सकता था। साम्प्रदायिक इस दृष्टि में उसे यह संसाधन देता है कि ऐसा पुत्रक सम्पन्न से किसी कन्या का अनुसन्धान (Courtship) करे (३।३।२)। वह उस कन्या के साथ पून धूने, पाश्चात्त्य, मुद्रिमाओं के खेल खेलने, रत्नों बजाये, तरह-तरह के नृत्य खेलने, बीच बीच अनुसन्धान करने के तथा अन्य खेलों को, जो उस देश में प्रचलित हो तथा कन्या की बाल के अनुसन्धान को, खेलने। अपनी प्रेमिका के शीर्षकों—नौकरी और धार्मिकों के साथ भी खेलने खेलने (३।३।६)। इसके अतिरिक्त लड़की और उसको सहितियों के साथ, भावमिश्री, भारतिरिका, नवमयीरिका, कोसलपुत्रिका जाति खेलों का सम्पादन करे। यह कन्या को शिक्षा के लिए उके ऐसे शिक्षकों और मुद्रिमा से जो दूसरी लड़कियों के पास न हों। रत्नों के इच्छन, खेल, कोसल आदि के विचार, लक्ष्मी, बीधा आदि नाना दाग करता रहे। यह दाग उसे एकाग्र में छिपाकर करे। एकाग्र में उसे धान देता हुआ यह दाग कहें कि मैं तुम्हें वेनसुएँ इसलिए दे रहा हूँ कि तुम्हें और घर देने से माता-पिता तथा पुत्रक नाराज होंगे और दूसरी लड़कियों को ऐसी चीजें चाहेंगी। जब वह कन्या कुछ प्रेम दिखाये लगे तो मनोरंजक कथाएं सुनाकर उसको चित्त को प्रमत्त करे। यदि वह ईशान हो तो उसके खेल दिखाकर उसे और अधिक भाग्यी में लगे। यदि उसे कथाओं से प्रेम है तो उसके अन्तर्गत कोसल प्रकट करे। यदि उसे माता भुजने का शौक है तो उसे माता भुजावे। जब वह अष्टमी, पूर्णिमा आदि के मेले पर साथ ही पुत्रक उसे पुनस्तन, कान के वायुपन, कपड़े, लकड़ी, बेबर आदि भेंट करे। प्रेमी प्रेमिका द्वारा कन्या को वह भी ज्ञात करे कि वह रति कार्य में बहुत कुशल है। इस सारे समय में वह अपने कपड़े बहुत अच्छे रखे (मासोत्क्रमप्रकरण ३।३)।

इस प्रकार पुत्रक द्वारा प्रेम प्रदर्शित किया जाने के बाद कन्या भी उस पुत्रक के प्रति अनुसन्धान होती है। साम्प्रदायिक ने बड़े विस्तार से यह बताया है कि पुत्रक लड़की की किन चेष्टाओं में वह जाने कि वह उसके प्रति अनुरक्त हो गयी है (इतिहासकार पुत्रक

प्रकरण ६:१)। पुरुष को जब यह विश्वास हो जाय कि कन्या उसे चाहती है तो वह उसे प्राप्त करने के लिए उपाय करे। कुशा तथा दूसरी खोशों में समझा करना हुआ उसका ह्रास इस प्रकार पकड़ के बैठे उसने उस कन्या के साथ स्थाह किया हुआ हो। इसी तरह नायिकाओं के साथ नायिकत्व आदि करे, वनजैका में प्रेमिका में कुछ दूरी पर होता जाता, और उसके पास आकर उसे छूकर, फिर वापस चलाये। इनका ऐसा करने भुषावे कि तुम बीती दिनों के साथ मेरा समानता हुआ है। पोटियों और मन्त्राओं (Pratish) में वह प्रेमिका के पास बैठे। किसी कहाने में उसका रूप करे, उनका पैर अपने पैर से दबाता रहे। नायिका के शरीर की परीक्षा करने के लिए वह कुछ मुद्र भीतर पकड़ का कहना करे। इससे फिर दबावे का उदात्त कार्य करवावे। तीस सायंकाल आतीत रात तक वह परीक्षा करे। यदि प्रेमो इन उपायों में सफल न हो तो वह अपने विद्वानों की तथा नायिका की सहोदरियों की सहायता ले। अपनी सौकरावियों को इसकी सहोदरिया बनाने। इसके बाद वह सभी (धार्मिक श्रेष्ठारों), विवाही, यस्तवी, माता, मादक आदि वाले स्थानों में नायिका में बदली होने पर अपना अनुराग (Courtship) करे (बा० कामधूम २१११-२४)।

वास्तविकता में कन्याओं को भी अपने प्रथम व्यवहार द्वारा प्रेमियों के ह्रास क्षिति के लिए किमालम्ब रूप में मुक्ताने हैं (बनोम्बार्थर प्रकरण ६:४ २५-२९)। वह ऐसे पुरुष से प्रेम दिखाने जिसके विषय में उसे यह समझना हो कि वह दुर्बलत्व (अपनी भावनाओं को रोकने में असमर्थ) है और विवाह में माना-पिता की परमाह नहीं करता। प्रेमिका प्रेमी से एकान्त में मिले। उसे पून, इस और दास आदि को भेद करे। फिर वहाने आदि की अपनी बला के प्रदर्शन के, उसे प्रसन्न करे, किन्तु वास्तविकता कन्या को यह भेदावली होता है कि प्रथम के मानने में उसे बहुत अधिक पढ़न नहीं करनी चाहिए। प्रेमी द्वारा अक्षरार्थत्वता होने पर भी, वह कोई उद्दिष्टता न बिनाये। जब कन्या को विश्वास हो जाय कि प्रेमी मुक्त पर अनुरक्त है तब वह प्रेमी द्वारा कौशल रूप के लिए अपनी करताये। अपने आप तथा अपनी किमालम्बता सहोदरियों द्वारा इस समानता को अच्छी प्रकार प्रकट कर दे (३:११२०)।

इस प्रकार अनुरागित नायिका के अनुराग को और अधिक बढ़ाने के लिए, नायक उसके पास अपनी भाई की लक्ष्मी (धार्मिक) को लेके। वह उसके अपने नायक के गुणों का इस ढंग से अज्ञान करे, कि नायिका को यह समझ न हो कि यह नायक (प्रेमी) द्वारा भेजा हुआ है। वह दूसरे वरों की तुलना करता, यदि भ्राता-पिता को यह वर पसन्द न हो तो उनके बारे में लक्ष्मी को यह कहें कि भ्राता-पिता दो गुणों को न पहचानने वाले और प्रेम के पीछे करने वाले हैं, वे मुझसे वर को छोड़कर तेरे लिये निकम्मे सभी वर को चुँड़ रहे हैं। अपनी बुद्धि और इच्छा से, पालन करने के प्रसन्नता रहने वाली अनुत्तमा आदि की कन्या उस नायिका को सुनारी योग्य। प्रेमी के

प्रति बलवान् अनुदण्ड होने पर दाई कन्या के दिन में से माता-पिता और नुम्मान का नाम निकाल दे और यह ब्रह्मन् भी निकाल दे कि गान्धर्व विवाह कोई युग कार्य है। उसे यह समझा दे कि तेरा प्रेमी यदि तुझे बन्धपूर्वक और बचानक हार से प्राप्त तो इधरे देरा दोष नहीं है (वा० का० सू० ३।३।१।१०)। प्रेमी प्रेमिका को गानक एकत्रण स्थान में ले जाये, वहाँ बाह्यण के घर से ब्रह्म की अग्नि लाये, कुशा बिलोके और यथाविधि कन्या के हाथ गीत वाग्न अग्नि की परिचय कर, विवाह कर ले, क्योंकि अग्नि को साक्षी बनाकर किये गये विवाह बल नहीं किये जा सकते। यह विवाह की मुख्यता अय्ये-माता-पिता को देवे। उस कन्या से औदार्यव्रत की शपथ ले की प्रेमा है, इस प्रकार प्रेमी को प्रेमी मोहना बगली बाह्यण, कि बलानी के और राजा के दण्ड के बल से कन्या प्रेमी को देनी पड़े (वा० कामसूत्र ३।३।११-१३)। यही गान्धर्व विवाह है।

कई बार कन्याएँ अपने सामाजिक कार्य के लिए तैयार नहीं होती थी। माता-पिता अपनी दम्पत्युत्तर अपनी कन्या का विवाह किसी बूढ़े युवक से निश्चित कर देते थे। ऐसी अवस्था में बाल्यायुग में गानक को यह समझ ही है कि वह दाई आदि किसी स्त्री द्वारा अपनी प्रेमिका को किसी दूसरे बरतने के बुरावे और बाह्यण के घर से अग्नि लाकर विधिपूर्वक सम्पन्न करें और उस कन्या पर पालिशका करे। प्रेमी को प्रेमिका के माई को अपना विश्व बताया बाह्यण। उनका माई उसकी उम्र को होने के कारण, उसे रोग आसनों से पर्याप्त सहायता देकर। वह उसके माई की भेंट बाह्यण से धुन ब्रह्म गन्धे और उसे यह बताया कि मैं तेरी बहू बन जाऊँगा। युवक अपने बाल्यायुगकाल में विधियों के लिए प्रत्येक कार्य के लिए तैयार रहता है, वहाँ अपने मित्र की हल अभिभाषा को पूर्ण करने के लिए उसका माई अथवा तैयार होता। प्रेमी प्रेमिका के माई द्वारा प्रेमिका को किसी सुरक्षित स्थान पर पहुँचा दे और वहाँ उसके साथ विधि-पूर्वक विवाह कर ले।

बाल्यायुग के इस चरित्रों और बाधों को प्रेमी-प्रेमिका गान्धर्व विवाहों में किम्वदुत एक काम से सटी है, यह जानने के लिए हमारे पास निश्चित ऐतिहासिक प्रमाण नहीं है, किन्तु बाल्यायुग ने इस प्रकार की करने अधिक विस्तार से सिखा है और इसने बाल्यायुग सृजित किये हैं कि इनसे इस बात में संदेह नहीं रह जाता कि बाल्यायुग के समय में इस प्रकार के विवाह सम्पन्न थे।

संस्कृत काव्यों में गान्धर्व विवाह

संस्कृत नाटकों और काव्यों में गान्धर्व विवाहों का बहुत वर्णन है। अजितान-बाहुनय में कामिदास ने कहा है कि अनेक राजविक्रमियों में गान्धर्व विवाह किये

और माता-पिता द्वारा वे सत्कर किये गये।^{४५} कामिदास के इस आदर्श का विषय कुमुदता और सक्तुस्तता का गान्धर्व विवाह है। छठी शती के मध्य में या कन्ता में होने वाले कुमुदन्तु की वासवदत्ता में चिन्तामणि के पुत्र कन्वर्षकेतु और कुमुदन्तु के राजा अर्धराजेश्वर की कन्था वासवदत्ता के प्रथम-विवाह का वर्णन है। सातवीं शती में बाब भट्ट ने कामम्बरी लिखी। इसमें कामम्बरी और कन्थापीठ के राजा महावर्षेता और पुण्डरीक के गान्धर्व विवाह का वर्णन है। सातवीं शती के मध्य अतिवृत्त पुण्डरीक की मन्त्राध्यक्षा की प्रकट करने के लिए महावर्षेता के पास आता है और उसे पुण्डरीक का ज्ञान सुनाता है। किन्तु महावर्षेता की प्राप्ति भी भारती देव-मन्त्राध्यक्षा जैसी सीट जागा है। बाब के पुत्र ही समय बाब होने वाले प्रच-भूति ने वात्स्यायन के कामसूत्र का पूर्ण अनुसरण अपने मास्तीमाधव नामक मादय में किया है। गदुमावनी राज्य के राजा भूरिचतु और वैद्यमन्त्रा के राजा देवदास ने पुत्र के पास शिक्षा ग्रहण करने हुए यह प्रतिज्ञा की थी कि वे अपनी सत्ताओं का पदस्तर विवाह करेंगे। अब देवदास के पुत्र माधव का भूरिचतु की कन्या मास्ती से विवाह होना चाहिए था। माधव इस उद्देश्य से गदुमावनी में आता है। किन्तु भूरिचतु राजा की प्रसन्न रहने के लिए अपनी कन्या का विवाह राजा के एक कृपापात्र गन्धर्व से करता चाहता है। कामम्बरी (एक बौद्ध मिश्रणी जो इस आदर्श में वात्स्यायनसम्मत होती या मन्त्रेयी का कार्य करी करी करती है)^{४६} को भूरिचतु का यह मन-मन बहुत बुरा मसीत हुआ है। वह माधव और मास्ती को कई बहुतायत से मिलाकर उनसे प्रगाढ़ प्रेम उत्पन्न कर देती है। भूरिचतु से अब लोगों ने कहा कि उसने मास्ती को कन्या के साथ अत्याहुने को निरन्तर धारके कन्या संग किया है, तो भूरिचतु ने कहा कि कन्या पर पिता का पूरा अधिकार होता है। परन्तु कामम्बरी इसका विरोध करती हुई कहती है—विवाह में सर्वोत्तम अंगल मन्त्र-मन्त्र का पारस्परिक प्रेम है, जिसमें अन्ध-धर्म ॥ यम और मास्ती ऐसी रहती हैं, इसी में सम्पत्ति होती है।^{४७} यह कन्या अन्ध-धर्म वात्स्यायन (१।१।१५) से निजरा है। वात्स्यायन ने यह सलाह दी थी कि वैधिया को सक्तुस्तता आदि की कथाएँ सुनाकर, मेरी के प्रति अधिक अनुरक्त बनना चाहिए।

४५ अग्निशामराजसुक्त, दुतीय अंक श्लोक २१

गान्धर्वेण विवाहेन बह्व्यो राजस्मिन्वयता।

सूयते परिणीतस्ताः पितृमित्राभिमतितः ॥

४६ कामिदास के 'मानविकार्णमित्र' में ऐसा कार्य एक परिवाजिका कीरिणी ने किया है। संस्थासिनी होने से सब लोगों का जब पर विश्वास होता था तब वह यह कार्य दूसरी स्त्रियों को जेफा अधिक आसानी से कर सकती थी।

४७ मास्तीमाधव, २ रा मंत्र—इतरेतरामुरागो हि शारकमधि पराधर्म मंगलम्।
गीताचार्यमर्षी अंगिरसत चर्या मन्त्रचतुषो विवर्णस्तस्यामुद्धिरिति ॥

कामन्दकी दूसरे अक्षर में इस महाह का पूरा उपयोग करती हुई आगती की बजाती है कि पुराने समय में शाकुन्तला ने सुयन्त का तथा उसीकी से पुकर का वन किया था। मातृवत्ता की इसी वित्त में राज्य नामक राजा को देना चाहता, किन्तु उसने उपर के प्रति अहमगमार्ग किया। आगती गिरा द्वारा अपने को इस प्रकार उपहार दिये जाने पर आश्चर्य प्रकट करती हुई कहती है कि पिता के लिए राजा को प्रसन्न रखना क्या भक्षण उचित है, किन्तु आगती की जेब पर्याप्त नहीं है। कामन्दकी दूसरे अक्षर की समाप्ति पर कहती है कि मैंने आगती के विषय में दूसरे चर के प्रति रोष उत्पन्न कर दिया है और वह अपने गतिप्रसन्न के विषय में पिता के अधिकार में समझ प्रकट करने लगी है, उसे विनिमयिका उपाश्रय गृहस्थ देते शर्तव्य कर थी निर्देश कर दिया है। आश्रय के भाव, भुक्त और गुणों की वहाई की है और अब उनका सम्बन्ध (विवाह) भाग पर छोड़ दिया है।¹⁴ आश्रय गिरा की वजह के प्रतिकूल होने पर भी आगती आश्रय से ही परिग्रह करना चाहती है और आगती तथा आश्रय का विवाह सम्भव होने के साथ मातृत्व की समाप्ति होती है। इस मातृत्व के स्पष्ट है कि मातृत्व जती तक किन्तु समाप्त में आश्रय विवाह प्रयोजित है।

गाम्भीर्य बिबाहो मे सस्कार की आवश्यकता

राजधर्म विवाहों में अभिज्ञान एवं सम्कार आवश्यक है या नहीं, यह एक सर्वाधिक प्रश्न है। वास्तविक के समय तक विवाह-सम्पन्नो का विचार बहुत प्रबल हो चुका था। यथाचार सम्कार ही जाने पर विवाह अविवेक सम्बन्ध माना जाने लगा था। अतः व्यासजी ने वाग्धर्म राक्षस और वैशाख विवाहों में इस बात पर बहुत बल दिया है कि कथा का पितृगृह से दूर लेने के साथ तुरन्त ब्राह्मण के घर में अभिज्ञान सम्कार करना होता है, क्योंकि अभिज्ञानार्थ विवाहों का भग नहीं हो सकता।

ऐसा आम मतलब है कि पुराने मसाले से सच्चा और आरोग्यकारी गन्धी संयोजन बनाया जा सके। कच्चे में स्पष्ट रूप से महाभारत (१।७२।२७) में शास्त्रोक्त विधानों को निर्गोपित किया है।^{१४} इसी का अनुसरण करते हुए भारतीयों में अभिमानवाक्यमूल से व्युत्पन्न

६५ भाग्यलीयाप्यत्र, ५ हा अंश

बदेऽस्यस्मिन्नेवः किलारि विष्टिभिरुता न शानिता

पुदावृत्तौदुगारैरपि च कश्चित्ता कर्मपदवी ।

स्तुतुं शान्तिप्रदार्थं यदस्मिन्मन्त्रो पञ्च गुणतः ।

ब्रह्मगङ्गात्सप्तोत्पन्नः ॥ १ ॥ विद्येयः शिष्यः ॥

४१ महाभारत १।७७।२६ अक्षिपत्य हि याससर्षो विवाहः श्रेष्ठ इत्यनेन ।

सुखमायाः शक्त्यानेन निर्भन्धो एतसि इति ।

और सन्तुलन का विवाह संस्कार नहीं कराया। किन्तु धीरे-धीरे इन मानकी आधारे-कता प्रतीत होने लगी कि ऐसे विवाहों को समाज द्वारा स्वीकृत कराने के लिए विवाह-संस्कार का होना अनिवार्य है, मग्नमा समाज में ऐसे विवाहों के बढ़ने की संभावना थी, जिसमें पहले कोई अपनी प्रेमिका से शादी कर ले और बाद में उसे छोड़ दे। इस प्रकार छोड़ी हुई स्त्रियाँ अपना और भ्रमरुहम हो जाती होंगी और इन विवाहों के समाज द्वारा स्वीकृत न होने के कारण उन्हें पति से अपेक्षित विवाह के लिए किसी प्रकार की सहायता मागने का कानूनी अधिकार भी नहीं होगा। इन भ्रमरुहम स्त्रियों की रक्षा के लिए तथा इस प्रथा से बढ़ने वाले दुष्टाचार को रोकने के लिए समाज इस विवाहों में संस्कार को आवश्यक समझा गया, किन्तु फिर भी छोटे शरीर के मध्य में शुभम्बू अपने सामक-नामिका के लिए विवाहमहोत्सव आयोजन नहीं समझता। यह बर-मधू से अनुराग उत्पन्न हो गया तो उनके लिए विवाह की किसी दूसरी विधि की आवश्यकता नहीं है। शुभम्बू ने प्रेम के बन्धन को संस्कार के बन्धन में अधिक दृढ़ मानते हुए कर्त्तव्यकेतु और दासवदला का कोई संस्कार नहीं कराया और विवाह के बिना कर्त्तव्यकेतु ने दासवदला के साथ अभिलगित सुरलोक के दुर्लभ मूर्खों का अनुग्रह करके हुए बहुत समय व्यतीत किया।^{५२} किन्तु बाणभट्ट ने शुभम्बू के इस मत में असमर्थता प्रकट की है। कर्त्तव्यकेतु का पिता बिजय बन्नापीड के पिता तारापीड से कहता है कि यद्यपि इन दोनों का परस्पर प्रेम होने के कारण समाजानुसार विवाह हो चुका है, किन्तु विवाह विधि के लिए लोक-व्यवहार का अनुसरण करना चाहिए (कादम्बरि, पृ० ५००)।

धर्मशास्त्र तथा गान्धर्व विवाह

धर्मशास्त्रों ने सामान्य रूप से गान्धर्व विवाहों को समर्थन नहीं किया। वे कन्या-दान को आदर्श मानते हैं, अतः अपनी दृष्टि से किये जाने वाले विवाहों को के साम-वाचना की संतुष्टि करने वाला समझते हैं,^{५३} अतः धर्मशास्त्र गान्धर्व विवाहों को क्षत्रियों

अथर्व ५० पा० (११७३१२०) में कहा है—

‘अप्राह विधिवाचापानुबन्धः स तथा सः।’ किन्तु अन्धकार कर रित्तों इन्दीरपूत दूता के संस्करण में इस श्लोक को अक्षिप्त अक्षरकर छोड़ दिया गया है।

५१ वासवधरता—अभिषेक कथिका।

५२ इसीसिधे अक्षिकाल धर्मशास्त्रों-बीजयन्त्र १; १११२०, वारह १२१२०, ३३) ने इसे चार धर्मभूत (धर्म) और अस्त विवाहों के बाद पाँचवाँ स्थान दिया है। मरुतसम्ब (३।५।१२) और वसिष्ठ (१।२६) आज्ञासम्ब का उल्लेख न करने के कारण केषव उग्रव अर्च और देव विवाह को ही समाजिक मानते हैं, वे इनके बाद

के लिए ही उचित समझते हैं। महाभारत १।७.३।२७ में स्पष्ट रूप से यह बात कही गयी है। मनु ३।३६ में इसका संक्षेप में उल्लेख है, किन्तु कौस्तुभ ४० सू० (१।११।१३) और और श्रुत के लिए श्री गान्धर्व और राजस विवाह को बीच मानता है, क्योंकि इनकी शिवाहों को संकलन दिया नहीं होता और वे दोनों और सेवा का कार्य करते हैं (१।११।१४।१५)। इसके बाद कुछ लोगों का मत उद्धृत करते हुए यह कहता है— "कुछ लोग यह शिवाहों के लिए गान्धर्व विवाह की प्रशंसा करते हैं, क्योंकि यह पारम्परिक प्रेम में होता है" (बी० घ० सू० १।११।१६)। यह चारों ओर के लिए इस प्रकार मानता है। वा० ग० सू० में दो विरोधी मत मिलते हैं। धर्मशास्त्र की पारंपरिक या अनुष्ठान करने हुए पहले यह शास्त्र विवाह की पर्याय संज्ञा है (वा० का० सू० १।१।२०)। किन्तु इसके बाद अपनी सम्मति देता हुआ कहता है (१।१।२१-२२)— "विवाहों का एक अनुष्ठान है, इसलिए सम्प्रदाय या शब्द दोनों का गान्धर्व विवाह अनुष्ठान की एक में युक्त होने के कारण सम्प्रदाय होता है। गान्धर्व विवाह शब्दोक्त है, क्योंकि इसमें वर-वधू के दूधन का संस्कार नहीं, प्रत्येक को मुख होता है, अधिक कर्मों नहीं हैं और वर-वधू में सम्प्रदाय प्रेम भी पाया जाता है" (वा० का० सू० १।१।२२-२३)।

गान्धर्व विवाह के दो भेद

मनुस्मृति (३।२६) में कहा गया है कि गान्धर्व और राजस नामक विवाह शिवाहों के लिए वर्तमान हैं (धर्म) हैं, अर्थात् वे पुत्र-पुत्रकर्म के लिए ही या सिद्धि के लिए हैं। इस श्लोक के आधार पर शब्दार्थ के यह सम्प्रदाय की है कि उस समय गान्धर्व-विवाह के दो प्रकार प्रचलित थे। पहले राजस विवाह से मिथिल गान्धर्व विवाह तथा दूसरा इससे अतिमिश्रित विवाह। मैथिलि में उपर्युक्त श्लोक की टीका में पहले प्रकार का स्वल्प रूप से बताया है कि यदि कोई कन्या अपने पिता के घर में रहती हुई किसी लड़के को देखती है, उसकी प्रशंसा सुनती है, उसमें प्रेम करती है, किन्तु माता-पिता के विरोध के कारण उससे न मिल सकने की वृत्ति में प्रेमी के साथ गुप्त सम्पर्क करती है, उसकी किसी प्रकार से अपराध अपहरण करने को कहती है, वर सुधीर होने के कारण उसके सम्बन्धियों को मार कर तथा धर्मकर्म करके इस कन्या का अपहरण करता है, तो इसमें वर-वधू के परस्पर प्रेम की गान्धर्व विवाह की बात पूरी होती है तथा वधू का अपहरण करने से राजस विवाह की बात भी पूरी होती है। अतः इसमें दोनों प्रकार का सम्मिश्रण हुआ है। भागवतपुराण में वर्णित कविशर्मा का

इसे जोधा स्वयं चेत है किन्तु मनु (३।२९) तथा मातृगण्य (१।२६-२७) शास्त्रों, ईश, भार्गव आदि शास्त्रों और भागवत के साथ उक्त स्थान चेत है।

विवाह इसी प्रकार का है। वृद्धरेप्रकर में अपहरण मही होता था, किन्तु वर-बधू भगता-पिता की इच्छा के बिना परस्पर प्रीति होने पर विवाह कर लेते थे।

गान्धर्व विवाह का अर्थ है—गान्धर्वों की जाति में होने वाला विवाह। इनके विषय में प्रसिद्ध है कि गन्धर्व स्वर्ग लोक में धामकरी की एक विशेष देव योनि है। इन जाति के लोग संगीत, वाद्य और नाट्य कला में पचीस और असंख्य कपटान् वृत्ति हैं। गान्धर्व शब्द का अर्थ ही गाने वाला है (गो बाण्य शास्त्रमिति ० शिखु पुराण १।४)। प्राज्ञात गन्धर्वों में गन्धर्वों की स्त्रीप्रेमी बताया गया है।^{५४} गान्धर्वों के स्त्रीप्रेमी होने में इनमें प्रथम विवाह की प्रथा का हान्य व्यापारिक है।

मध्यकाल में बालविवाह की प्रथा का प्रचलन होने तथा स्त्री-अधिकारी का पूर्णकष से अपहरण कर लिये जाने के बाद गान्धर्व विवाह का रिवाज बहुत कम हो गया, किन्तु जिन जातियों में तरुण-विवाह प्रचलित था, उनमें मध्यकाल में प्रणय विवाह (गान्धर्व विवाह) चलता रहा और आजकल भी कुछ जातियों में गान्धर्व विवाह की गजाल प्रचलित है।

वर्तमान काल में गान्धर्व विवाह

प्राचीन काल की तरह आजकल भी यह विवाह जड़ियों एवं राजाओं के अधिक प्रचलित है। विप्लव के राजापरिवार में प्रचलित सुश्रुतनिका नामक विवाह गान्धर्व विवाह का एक श्रेय है, सुश्रुतनिका में वर-बधू के बीच में परस्पर दर्जन में प्रेम उत्पन्न हो जाने पर शास्त्रीय विधि से उनका विवाह कर दिया जाता है।^{५५} बंगाल की तरह बंगाल में १८१३ में ऐसे विवाहों को रोक दिया था, फिर १८२० और १८२३ में भी इन की रोकता स्वीकार की गयी, परन्तु इन्ग्लैण्ड हार्डिगेट ने मराठी जनता महराजपति के मामले में यह फैसला दिया था कि यह विवाह उपपत्नी या रखैल रखने के अतिरिक्त कुछ नहीं है।^{५६} उत्तर प्रदेश में बने ही यह विवाह मान्य न हो किन्तु बंगाल में यह विवाह वैध है।

गान्धर्व विवाहों में शास्त्रीय विधियाँ आवश्यक हैं या नहीं, इस विषय में हार्डिगेटों के मतभेद है। बंगाल के राजाओं में प्रचलित गान्धर्व विवाह में वर-बधू परस्पर साक्षात्कार का आवास-अदान करते हैं, इसमें हस्त करना आवश्यक नहीं धमका जाता। कलकत्ता हार्डिगेटों ने जड़ियों से इस प्रकार के विवाह वैध माने हैं, किन्तु मद्रास हार्डिगेटों ने ऐसे विवाहों में होम (हवन) को आवश्यक विधि माना गया है। मद्रास में उसके बिना ये विवाह अवैध समझे जाते हैं।^{५७}

५४ गे० सं० ६।१।६।५ ऐ० का० २।१ 'स्त्रीकामा वी गान्धर्वः'।

५५ बीकानेर रिपोर्ट १८४ (१८६४) २५ खो रि० ४०४ (१८८६)

५६ मराठी जनता महराजपति ३ इल्लुहाबा, ७३८

५७ दिव्यार काम मराठा राजा प्रति १२ मद्रास, ७२

गान्धर्व विवाहों में अपनी जान में ही विवाह करने के नियम का बंध होता है। यह आवश्यक नहीं कि जिस युवक और युवती में प्रेम उत्पन्न हो, वे एक ही धर्म से हों। काम का धर्मता अन्तर है, चाहे एक धर्म के नियमों के अन्तर्गत रहे। संजानीय विवाहों के प्रकरण में इस धर्म पर विशेष विचार किया गया है। इस प्रकरण में केवल उतना ही उल्लेख करना आवश्यक जान पड़ता है कि गान्धर्व विवाह जब अन्तर्जातीय होते हैं तो प्रकरणों के दृष्टि से उनकी वैधता स्वीकार करने में कम्पार काम होती है। बाबदे में मूल राजपूत और ब्राह्मणों तथा गूढ़ों के गान्धर्व विवाहों को अन्तर्जातीय होने में स्वीकार नहीं किया गया।^{५८} किन्तु पंजाब में राजपूत और महाजन स्त्री की लारो में आगम रहस्यवासी।^{५९}

परिचारी गणना एवं शिक्षा के अन्तर्गत कामा केन्द्री और निरनविद्यालयों में शिक्षा के कारण कुछ समय में गान्धर्व विवाहों की संख्या बढ़ने लगी है। अधिन्य में इस समय विवाहों के करने की पूरी संभावना है।

बाह्य, वैध, धार्म और आजापश्य विवाह

इन चारों विवाहों में काम का दान किया जाता है। काम का दान करने वाला-पिता या अभिभावक कामा की मायुष्यो एवं सम्पत्ति। अर्पण करने उतना दान करता है। बाह्यविवाह को सर्वप्रथम माना गया है, इसमें काम का दान केवल सुधीय दर की अपर धर पर हुआ है और उरी अपनी सम्पत्ति की उतना दानों से सम्प्राप्तित कर दान कर देता है।^{६०} (मनु ३।१७)। बाह्य विवाह में कामा एक से भग आदि बहुत नहीं किया जाता। आर्थ विवाह में कामा मात्र के लिए लीनों का एक जोड़ा भिदा को दिया जाता है।^{६१} इस को बहुत लम्बा अपने पर, दान के समय में बुद्धिमान को जब अर्पण कामा का दान किया जाता है तब उसे वैधविवाह कहते हैं।^{६२} जब कामा अर्पण करके, पति को दान दानों के साथ लीनी जय कि लल्ल हमके लाल वाचनजीवन धर्म का धारण करी, उनको आजापश्य विवाह कहते हैं।^{६३}

५८. लक्ष्मी वसन्त कलियवर्तिन, २, मजई ला० रि० १२८ आई कामी वसन्त वसन्त-वसन्त १४ व० ला० रि० २४७

५९. लक्ष्मी वसन्त कलियवर्तिन ५७ प० रि० (१३०३)

६०. मि० ली० व० पू० १।१११२, आय० व० पू० ५।२।११।१६

६१. ली० व० पू० १।१११४, आय० व० पू० २।२।११।१८, ली० व० पू० १।१११६।

६२. व० व० पू० १।११६, ली० व० पू० १।१११४।

६३. ली० व० पू० १।१११६, ली० व० पू० १।१११४। आयस्तम्भ धर्मपूज तथा धर्मपूज धर्मपूज इन विवाह का वर्णन नहीं करते।

आज्ञा विवाह आसुर विवाह से विस्तृत ज्ञात है। पहले में कन्या का दान किया जाता है और दूसरे में कन्या खरीदी जाती है। आर्य विवाह इन दोनों का मध्यवर्ती है। इसमें कन्या के पिता की गौ-बील की एक जोड़ी दी जाती है। आर्य विवाह में कन्या का पिता सुत्क नहीं मानता, किन्तु उसे यह भेंट किया जाता है। ऐसा भवित होता है कि गौ-बील की जोड़ी श्राद्धोत्सव में दिये जाने वाले सुत्क का एक अवशेष या प्रतीक मात्र है। यह भी संभव है कि घर में साता-पिता यह अनुभव करते हैं कि हमें कन्या तथा भी कुछ देना चाहिए। इस प्रवृत्ति से या अपनी इच्छा से, वे कन्या तथा भी यह भेंट देते होते। यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि आर्य विवाह में संश्लेष का धार की परिभाषा प्राचीन काल के सुत्क का अवशेष है या स्वेच्छापूर्वक दान माने जाया मान। किन्तु प्राचीन भारत में आर्य विवाह का पर्याप्त प्रचलन था। यूनानी साक्षियों ने ऐसे विवाहों का उल्लेख किया है। स्त्रोनों ने मेगस्थनीस के इस कथन को उद्धृत किया है कि एक ब्राह्मी देशों में दूध रिक्त हो करीब लेते थे। १४

धर्मशास्त्रों में स्पष्ट रूप से यह कहा गया है कि आर्य विवाह में विवाह आने वाला दान सुत्क नहीं है। [॥ यह देख चुके हैं कि धर्मशास्त्र शास्त्रासुत्क के विरोधी है। अतः ४००-४०० २१६/१३/१० में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि सन्तान का धर्म-विधाय नहीं होता। यह कावेह हो सकता था कि आर्य विवाह में विवाह आने वाला यह दान एक प्रच्छन्न विधाय है। आपस्तम्ब धर्मसूत्र (२१६/१३/११) इसका विरोध करते हुए कहता है—“आर्य विवाह में लक्ष्मी वाले के लिए दान देना भुक्ति द्वारा प्रतिपादित है। भुक्ति में कहा गया है इग्नियु लक्ष्मी वाले के लिए १०० गौएँ और एक पशु देना चाहिए। यह भेंट उस बाँवों की होती है। इसका उद्देश्य लक्ष्मी का धर्म देना उठाने की माँ-बाप की कामना और वास्तविक लक्ष्मी को प्राप्त करना है। इस सम्बन्ध में ‘कर्म’ बचर आर्यवर्णिक है, क्योंकि प्रति-प्रती का सम्बन्ध धर्म से होता है न कि विधाय से (अतः २१६/१३/११)। श्रीधायन धर्मसूत्र के टीकाकार भोविन्द स्वामी ने स्पष्ट रूप से कहा है कि कन्या के पिता की गौ-बील की जोड़ी देकर उससे उसे फिर वापिस ले लेता ही आर्य कहलाता है। भद्राभारतकार इस भेंट की वापिस करने से सम्बन्ध नहीं था। उसे इसमें कन्यासुत्क की गण्य जाती थी, जतः उसने आर्य विवाह में दान दान की स्पष्ट रूप से लिया भी है। १५

१४ मेगस्थनीस का भारतवर्षीय विवरण, पृ० ३४

१५ स्टर्नबैक ने इस कथन के आधार पर यह परिचय दिया है कि भद्राभारत का उक्त संदर्भ यह सूचित करता है कि जिस प्रकार आसुर विवाह (Marriage by purchase) से प्रतीकमय धनराशि लेने वाले आर्यविवाह (Marriage through purchase) की पद्धति विस्तृत हुई और इसके साथ कन्या का श्रेष्ठ होने की परिभाषा का विवाह हुआ (अपूरिफिकल स्टर्नबैक, भाग १, पृ०, ३६७)

(म० मा० १३१/५२०-२१)। उसमें यह भी कहा है कि 'कन्या के पिता, माहवां, स्वाम्य आदि को कन्या के प्रति गुरु सम्मान दिखाना चाहिए, यदि वे पुत्र्य प्राप्त करना चाहते हैं तो उन्हें कन्या को आशुयुग्मों में आनन्दन प्रमदा चाहिए। इससे उनके मुख में मुक्ति होती है। वे राजन्। कुछ व्यक्ति आगे विवाह में योग्यता देने को शुभक कहा करते हैं, यह भी विम्वर कथन है, क्योंकि शुभक भोजन हो या अधिक, उसके नेत्रों में कन्या का विकस हो जाता है। अर्थात् कुछ योग्यता देने से वह गुरुमानन धर्म नहीं है।' १२७
अथवा (३१२१-५४) गङ्गाशरम दल पद्धति की वधू को सम्मानित करने का ढंग सम-
झता है और हिन्दू सम्प्रदाय में भर्तृपत्नीयों पर आज तक का विवाह है कि विवाह सम्कार के समय वधू को स्वयं पहनाती है। वे घर के दिने हुए होते हैं। हिन्दुओं में विवाह के समय वह गुरु की आँखें बारी गंगाजल की गङ्गापानी में धोती है। और वधू को दिये जाने वाले अन्न-पौष्टिक के ओढ़ने में शुभक होती है। किन्तु अब इसका प्रत्यक्ष विवरण कथन गया है। वह हारा दिये जाने के स्थान पर अब गोदान सम्कार के पिता द्वारा होता है और वह दहेज का एक अंग बन गया है। इस समय विवाह में दहेज का बहुत महत्व है, अतः यहाँ उसका वर्णन किया जायगा।

दहेज प्रथा

वैदिक युग के श्राद्ध विवाह में कन्या को अलङ्कृत करते देने की प्रथा का अर्थ विकास दहेज के रूप में हुआ। वेद में कन्या के विवाह-अवसर के योग्य अवसरों और आशुयुग्मों की स्पष्ट चर्चा है। उस समय दहेज के लिए 'बहुत' शब्द का प्रयोग किया जाता था। आने (१०१८१३) तथा अथर्ववेद (१४/११३) में कहा गया है कि दूरी को उसके पिता ने जो दहेज दिया था, वह वधू के स्वाम्यराम्य नृपते से पहले ही भर्तृपत्नी बना। १२८

उस समय दहेज की जाती हुई वधू के साथ कुछ आशुयुग्म एवं शब्द देने जाते थे। अथर्व १४/११३-७-८ में एक कथा द्वारा वधू के दहेज (बहुत) का यह वर्णन किया गया

१२८ म० मा० ३३१/५२-२० आगे योग्यता देने शुभक के विवाह नृपतेयम्।
अथवा वा बहु वा दत्तान् दिव्यस्तवदेव। तां प्रथमपत्नितं कीच नैव धर्मः
समाश्रयः ॥

१२९ अ० १०/८११३, सूर्याय बहुतः प्राणात् सविता धर्मवासुक्तः।

सत्यमेव बहुत की व्याख्या करते हुए लिखा है कि कन्या की प्रसन्नता के लिए विवाह के समय वी आदि को वरार्थ दिये जाते हैं, वे बहुत कहलते हैं। अथर्व भी उससे संबंधी को विवाह के समय प्रेमपूर्वक दिये जाने वाले वस्त्र, अर्थात् आदि की बहुत कहा है।

है—“अब दसू पति के घर गयी थी उसके वस्त्र निश्चित रूप से अलङ्कृत और सज्जों से परिष्कृत थे, उसके गीकर स्थान थे और कन्व ही कुंरीर और बाँपल नाम के सामूयण थे।”

महामोक्ष व दहेज—महाभारत के अनुसार राजकुमारों के विवाह में दहेज बड़ा विषय आया था। राजा कुन्तिबोध ने पान्दु के साथ अपनी पुत्री कुन्ती के विवाह के बाद, दासाद की नाता क्षत्र के धर्मों से भूजा की (१।११३।१२) दूधर ने विवाह के समय अपनी कन्या की रत्नों ॥ आभूषण कर दिया (१।२००।६)। उनके पात्रियों में दहेज में सौंते की दास बाने बाद काँहों से कुछ १०० रत्न, सुनहरी झूल लबा होयामुनः १०० शशी, सुत्यवान सहने, कपड़े मातादि से सनी हुई १०० दासिया, सामूयण और चम्प विधे (१।२००।१५-१७)। राजा कन्द ने द्राष्टाओं की कन्यादान करके उनके लिए अलङ्कृत प्रासादों का तथा अन्य ऐश्वर्य मानकी सब भी दान (दहेज) दिया। इन दहेज में अलङ्कृत गीर, रेशमी वस्त्र, कपड़े, लवे हुए हथौ, भाँडे, रत्न, पदाति, सुन्दर दास-बायियों, घोना, मोली, घूना आदि समस्त चीं (१।२०।३-२)। मुद्रा के विवाह में भी श्रीकृष्ण और बलराम ने अर्जुन को बहुत अधिक दहेज दिया था (भ० भा० १।२२।१४४)।

दहेज दहेज व दहेज—दहेज दहेजों में दहेज का वर्णन चलता है। दहेज विवाह का अनिवार्य अंग नहीं था, किन्तु धनो भोग अपनी कन्याओं का विवाह करने समय बहुत अधिक दहेज दिया करते थे। इसका सब से प्रसिद्ध उदाहरण विवाहों की कथा में पाया जाता है। विवाहों के पिता धर्मजय देवरी ने अपने दामाद पुर्णवर्धन की अपनी कन्या को कराँड़ बाभूयणों से दूधित करले दी की। इसके बाद ही सन्ते के बर्तनों को ५०० गाड़ियों, भी, साफ किमि हुए काबलों और हल बारि कुंभ के उपकरणों की भी पाच सौ दासियाँ विवाहों के दहेज में थीं। ६० हजार ललिताली बेल और ६० हजार दामों की एक दहेज के साथ दी गयी। सम्पत्ति की टीका कण्ड १ अनु० वि० ख० ८० (१।७।२) में ५०० दासियाँ और २०० उत्तम रत्नों के रत्न का वर्णन है।

संस्कृत काव्यों में भी दहेज का कुछ उल्लेख मिलता है। विदमराज नाय ने अपनी कन्या इन्दुमती को अने के साथ विवाह संस्कार के समय दानादि के साथ मधुपर्क और रेशमी वस्त्रों का एक ढोड़ा दिया (रघुवंश ७।१८) और बाद में अने के चलने के समय अपने उल्लाह के अनुसार वह चित्तरी संपत्ति दे सकता था चित्तरी संपत्ति दी (रघुवंश ७।३२)। विवाहों में भी हिमालय द्वारा सोपे हुए सरल अर्ध और ग्रीन हुकूल को पहन किया (कु० गं ७।१२)। बाद में राजकुमारों के विवाह से पहले के राजकुमार का वर्णन करते हुए कहा है कि राजकुमार के वाक्य में धैर्य (दहेज) में दहेज धर्मयोग्य हाथियों और मोकों का चुनाव किया जा रहा था। उस चुनाव के लिए अपने हाथी-मोड़ों से ऐसे दहेज काय बागन उन से भरकर उत्पन्न हो गया (ह० प० ५० १।४२)।

बहेल प्रचलित होने के कारण

ऐसा अतः पता है कि आधुनिकता की वृद्धि समाज में सर्वमान्य होने से इस प्रथा को बहुत प्रोत्साहन मिला। काय्याओं को रजस्थान होने से पूर्व व्याहृत का विषय प्रचलित होने से माता-पिता अपनी कन्या की शादी ब्रह्मदे के जन्मी कन्या चाहते थे। उन्हें कन्या के व्याहृत की गुरु थी, किन्तु स्वयं के माता-पिता को अपने लड़के व्याहृत की कोई मरज नहीं थी। काय्या के पिता मरजमन्त होकर लड़कों के रिताओं के पास पहुँचते थे। लड़के के अधिप्राप्तकों की दृष्टि में अपने लड़के के लिए अधिक से अधिक धूम पाने का यह अच्छा अवसर था। कुलीन विदाह में क्या अपनी जाति में काय्या को व्याहृत से की उच्छा से भी ब्रह्मदे को प्रभावित किया। संग्राम में कुलीन व्याहृतों की संख्या थोड़ी थी, अधिकांश काय्याओं के लिए था। देखकर उनके साथ अपनी भवित्तियों की भावी कर देते थे। राजपूतों में भी विवाह कुलीन होता था वह जतने की अधिक बहेल की भांग करता था।

हिन्दू समाज के उन्मूलन में काय्या पिता पुरुष पति दोनों के घर में पालन-पोषण योग्य होने से आकाशगोत्री है। जिस समाजों में काय्या आर्थिक दृष्टि से गरीब कर लेती है, लड़के काय्या का पिता उसे बेचना है और वह को वह खरीदनी पड़ती है। किन्तु जहाँ आर्थिक दृष्टि से स्त्री पति पर दबाव है। लड़के काय्या के माता-पिता उसके ब्रह्मदे को लड़का करने में सहायता करते हैं और यह महायज्ञा बहेल के रूप में भी जाती है। देखें में आधुनिकता का बलाने के लिए उपयोगी सामान, बस्त्र, बरतन, धातु आदि उपकरण दिये जाते हैं। रोम में बहेल का स्पष्ट रूप से यही उद्देश्य था। अतः वेले अपने बारे में लिखता है—“ब्रह्मदे पत्नी को उसके मित्र-वर्गिक द्वारा दिया जाने वाला ऐसा दान है जो पति को गृहस्थी का व्यव बलाने में सहायक हो”।^{१४} भारत में इस प्रथा का प्रारम्भ अपनी

१४ बहेल की प्रथा सम्य देशों में भी इसी प्रकार के उद्देश्यों से प्रचलित हुई है। जिस में बहेल के घरों को लड़के के लिए कर्मावर, पोशाक और आवश्यक वस्तुओं में धन दिया जाता है। पुराने समय में बहेल का उद्देश्य व्यावहारिक संकट में पत्नी को सहायता देना था। सोमर ने लिखा है कि पत्नी पिता के घर से मिलना देखकर जाती थी उसका ही पति को अपनी ओर से उसमें भ्रष्टाचार पड़ता था और यह संयुक्त राशि पति के मरने पर पत्नी को मिलती थी। पूर्वभक्त में धूमनों हिन्दुओं द्वारा बहेल जाती थी और इस बहेल पर स्त्री का स्वाभिमन्य सम्भल जाता था। चाही और गृहस्थी के कर्म में यह पत्नी का विवशता सम्भल जाता था और इसके कारण पति के कारण या लड़के कारण से पत्नी को छोड़ नहीं सकता था। विधियों के पास इस प्रकार की बहेल-की सम्भल रहती थी। अस्तु के जमाने में पत्नी में २/५ सम्भल बहेल के रूप में विधियों के पास सुरक्षित थी। रोम बहेल के बारे में धूमन

कान्धारी को अर्धकृत करके धान करने से शुरू हुआ। बालविवाह, सत्राणीय विवाह और कुलीन विवाह से इसको बल मिला और मध्यकाल में यह तथा भारत में बहुत व्यापक हो गयी।

बहूत तथा ग्रामणीय—बहूत के कारण कन्या का जो कष्ट उठाना पड़ता है, उसको कुछ ज्ञानसंग्रामगीतों में पानी जाता है। ऐसे ग्रामणीय हमारे सामाजिक जीवन का भारती प्रभिमिच्छ है, अतः उसमें इसका पाया जाना स्वाभाविक है। एक गीत में पिता कन्या से विधु कर भी कुछ सन्मान करने के साथ कन्या से कहता है—*संत पुत्रक सुभूत, गरिमम वृद्धा, दिल्ली और गुमराज भी बूढ़ लिया, किन्तु बेटी, सुम्नाने लिए कड़ी बर नहीं पाया।* मुग़लुमारी रहो। बेटी ने कहा—हे पिता, तुमने गुरु भी कुछ डागा परित्यक्त भी कुछ डागा, दिल्ली और मुम्बराज भी कुछ लिया, पर धार ही कष्ट पर अयोग्यता करती है, जहाँ दो बर करती है। पिता ने (बड़े दुःख से) कहा—हे बेटी, मे भोड़ा, हाथी और गन्धम मांहरें तथा नौ धातु का बहूत भाँपते हैं। मेरी हिम्मत जो इतना देने की नहीं है।^{११} एक दूसरे गीत में पिता सगा में खड़ा होकर सुन से प्रार्थना करता है कि हे सुन, मेरे मन पर कन्या न देना, कन्या का बन्धन छोड़ो जो अब धर से सम्पत्ति हो।^{१२} एक अन्य गीत में कहा गया है—*जब व्याह हो बर, मांग में तिलकुर पक गधा और नौ सख की सम्पत्ति भी बाँटी ससही तकी, तब मां ने पीतर का बरतन माँगा बाहर पटक दिया और कहा कि जवु के भी कन्या न हो।*^{१३}

से भी एक कबज आये वा। पिता से बहूत को धार करना स्त्री का कानूनी अधिकार था, वह संयुक्त परिवार के धर्म को बचाने के लिए आवश्यक हिस्सा समझा जाता था। इस पर पति का अधिकार माना जाता था। किन्तु अस्टोनियन के नियम से स्त्री द्वारा तत्काल धर्म पर उसे यह बहूत व्यापित करना पड़ता था, अर्थात् कि पत्नी को छोड़ने का कारण पति का दुर्भ्यवहार न हो। अस्टोनियन ने यह नियम बनाया था कि बहूत उच्च वर्ग के लिए ही आवश्यक है, किन्तु उसके इस नियम पर किसी ने ध्यान नहीं दिया। साथ में नैवीनियन के आदेशानुसार माता-पिता के लिए यह आवश्यक नहीं रहा कि कन्या उनसे कानूनी तौर से बहूत की भांग कर लोहाइंगलेव में बहूत एक विभिन्न कारण से प्रचलित हो। जहाँ स्त्रियों की संख्या अधिक है और एक विवाह का नियम प्रचलित है अतः कुछ सिद्धांत अवश्यमेव अभिव्यक्ति रह जाती हैं। जो पिता अपनी कन्याओं की व्याहारा चाहते हैं उन्हें धन भाँति देकर अपनी कन्याओं के लिए पति को खरीदना पड़ता है (१० गा० हि० १०, १५०-१५१)।

^{११} रामनरेश त्रिपाठी—ग्रामणीय, पृ० १४०

^{१२} बहो पृ० १४४—सगा सेंटि बाबा धूरक के दिनवाई सोरे बूते जोरिया भिज हों, जोरिया अन्य तब बिहा बिबुना अब धर सम्पत्ति होई।

^{१३} बहो, पृ० १३९

अपनी कबोरी बत्ती के बिना भी बड़े की बिना में एक पिता हुआ परतान होता है कि यह जो उसे बीच भी नहीं आती। किन्तु की बात में सेटी कहती है—पिताजी, आपकी नींद खुल जा रही है। पिता ने कहा—कुछ-कुछ तो रहा है, कुछ-कुछ जाग रहा है। बिनके घर में नवगी कन्धाओं, भला उन्हें नींद कैसे आ सकती है।^{२१}

नरमान मृत में दर्शन प्रथा के दर्शन का कारण

अंग्रेजी शिक्षा का प्रभाव—पिछली जनी में अंग्रेजी शिक्षा के प्रभाव के दर्शन की प्रथा भारत की उच्च भाषाओं में बहुत अधिक बढ़ गयी है। इस जनी के भारत में शिक्षाप्रदाय के कारण के विषय में जो बात लिखी थी वह आजकल बड़े भारत के सम्बन्ध में सत्य समझी जा सकती है। यद्युक्त घर के पिता के लिए बरमानसेन द्वारा कर्माची गयी मुनीन प्रथा की अपेक्षा विश्वविद्यालयों की शिक्षा अधिक लाभदायक है। यदि एक बी० ए० (बीचमर आन आर्ट्स) अधिवाहित है, जेने ही यह विज्ञान की उद्योगता एवं श्रद्धावत्ता पर जीवन बिता रहा है, किन्तु संशायी मुहावरे में अनुसार वह बेर की बरी आशय जो मि० गरीब तक मोंमे के आधुनिकी और रत्नों में नहीं हुई है और साथ में वह अपने पिता १०००)३० मानेगा। पिता के दुर्भाग्य में वह कल्या का रंग मानेगा है या उसमें कोई दोष है तो यह भाग १२,०००)३० तक जा पहुँचती है। भावः यह क्या पहुँचेगी के लिया जाता है या कुछ कम भीषण की दम हल तक उद्योग आने है कि एक नवजाली कामज घर पहुँचे ही निश्चय केने है कि कल्या का पिता घर की इतना सामान देगा ताकि घर में यदि कल्या का पिता यह जानि नु के जो अयामय में मुकबमा कल्याकर लिया जा सके। ब्रिटिश शिक्षा में 'कायस्थ परिवार' में बच्चे के पिता पर अंधाध काते हुए शिक्षा का कि एक बच्चे का पिता, जिसके पास अपना घर नहीं और जो एक मित्राये के भ्रमण में रहता है, वह अब बच्चे की माँ की बच्चे दुर्भाग्य भ्रमण का स्वामी बनता चाहता है। वह कार्य में बूबा हुआ है किन्तु सेटी के स्वाह में अपना सारा कार्य उद्योगता चाहता है, वह अपने सेटी को आर्च० बी० एन० बनाने के लिए इन्पैण्ड भेजना चाहता है, उसके पास कम नहीं, इसलिय बच्चे की माँ से उसे यह धन अवश्य प्राप्त करना चाहिए। भारतीय बन्ध विधान में बारी-बकीली की लक्षण है किन्तु ऐसे धन की बन्ध देने के लिए कोई विधान नहीं है, क्योंकि यह अदरान उपर्युक्त अपराधों जैसा ही बुरा है।^{२२} आजकल भारत के सभी जगहों में बड़े की बुराई भीषण रूप से प्रचलित है। घर के लिए धनी जाने वाले बड़े की यात्रा उसकी सामाजिक स्थिति और प्रतिष्ठा के साथ बढ़ती जाती है। उदाहरणार्थ,

^{२१} वहीं, पृ० १६२ कुछ रे सुतीला कुछ कागिला सेटी नींदो न माये।

बाहि घर कया दुबारी सेटी नींद कीते माये।

^{२२} रिक्लो—बीकन भाव इतिहास, पृ० १६०-७० पर पढ़ा।

संसार प्रदेशों की विधान परिषद् से हुई बहुत के अनुसार इस प्रदेश में विधवाविधवाओं के प्रवृत्ति के लिए बार से बार हुआर अपने तक के क्षेत्रों की सार की जाती है, दार्शनिक तथा कानून के लिए १० से १५ हजार की, प्रांतीय विधिविधान सार के लिए २० से २५ हजार तथा आई० सी० एम्० के लिए तीन करोड़ हजार १५ के क्षेत्रों की सार होती है।^{१०५} दक्षिण भारत में माने जाने वाले संसार के विधान में भी विवाह के उपाय के अनेक रोचक तथ्य दिये हैं।^{१०६}

क्षेत्रों की कुख्यात में हिन्दूगणों में प्रवृत्ति^{१०७} और भीषण दुर्गति^{१०८} का स्वरूप मिले है। इस समय इससे प्रथम दुर्गति^{१०९} निम्नलिखित है—

(१) माता-पिता की विधवा तथा अनाथता—एक प्रथा का कारण जगहों के लिए एक बच्चा एक महिला तक ही जाता है। इसमें माता-पिता को बड़ी कठिनाई पड़ती है। साधारण स्थिति वाले माता-पिता कमाई की भाँति के लिए अपने अपने अपने अपने को मुक्त के लिए साधुगणों से भ्रष्ट होते हैं और कई बार एक भ्रष्ट को उत्पन्न हुए एकमात्र सारा जीवन विधवा, परेशानी और भ्रष्टाचार में बीताता है। कमाई के विवाह की विधवा के तो वे भ्रष्ट हो जाते हैं, पर इस पर किसे गये स्वयं का बार उपाय के लिए आनन्द एक भरी विधवा के प्रत्यक्ष ही जाते हैं।

(२) कमाई की अविवाहितता तथा अनाथता—जिन कमाई के माता-पिता अपने मुक्त के बार आनन्द करते वे अत्यन्त गरीब हैं, उनका विवाह नहीं होता है। माता-पिता को अपनी कमाई का विवाह न होने से जीवन सामान्य कष्ट होता है। कई बार कमाई की अविवाहितता और अनाथता के कारणों का अन्त करने के लिए मित्रों का तेज छिड़का कर आनन्द करने की जाती है।

(३) अविवाहितता—कमाई के बार विवाह न होने पर उनमें सब कष्टाचारों की भाँति का कारण बुरा सामान्य है। स्वाभाविक सम्पत्ति और सामान्य। एक विधवा तथा अपने लिए सम्पत्ति नहीं है। सभी संसार में कमाई के अविवाहित गरीब के समाज में अनाथता तथा अविवाहितता की वृद्धि होती है।

(४) कमाई की अविवाहितता—दहेज की कठिनाई के कारण कमाई के परिवार में बुरी समझौता जाती है। इसलिए गरीब तो स्वाभाविक रूप से उनमें सब की कुख्यात प्रवृत्ति थी। अब मर्यादा पालन और सौकर्य के कारण उनका सब अन्त ही गया है, किन्तु उन्हें माता-पिता की सुखीयता की जड़ और विधवाओं का सुखीयता समझा जाता है।

(५) अविवाहितता तथा अविवाहितता—कई बार अब माता-पिता अपनी कमाई के लिए

^{१०५} राज—हिन्दू केमिली इन्डियन सर्विस, पृ० २५१

^{१०६} श्री विवाह—मैरिज एंड केमिली इन्डियन सर्विस, पृ० ५७

^{१०७} दक्षिण केमिली इन्डियन सर्विस—हिन्दू परिवार मीमोरा, पृ० १६४-२००

अपवृत्त कर दिया जाता आते आता रहेज सुख में जसमर्भ होते हैं। वे उसका विवाह ऐसे समुपयुक्त बरों में कर देते हैं जहाँ रहेज कम माया जाय। वे बर प्राय धनी एवं कन्या की आय से बहुत अधिक तथा कई बार उधके गिता की साथ रखने वाले होते हैं। वे प्राय किसी प्रकार के रहज की राय नहीं रखते हैं। कई बार वे अधिक बूढ़े होते हैं कन्या को अपनी ओर में रहेज भी प्रस्तुत कर देते हैं। जितनी ऐसे वंशज विवाहों में कन्या का वैवाहिक जानम्य और समुद्र कल्याण गलत हो जाती है, उनका अधिक मायकीय क्षय जाता है, बूढ़े व्यक्ति के मास सामान्य जीवन दुष्कर हो जाता है, पति के बूढ़े होने के कारण पत्नी के विवाह होने की सम्भावना कम जाती है। कई बार यह श्रावणव्यापक करके ही मायकीय जीवन में प्रवृत्तता पाती है।

(२) अन्य दुष्परिणाम—इसके अन्य दुष्परिणामों का उल्लेख करते हुए एक लेखक ने लिखा है कि कम रहेज वाले यादों विवाहों की सुसंगत में बड़ी अप्रतिष्ठा होती है, उन्हें गलत-गलत के ताने मारे जाते हैं, मा-बाप में अधिकतम मान के लिए विवाह किया जाता है, ऐसा करने के लिए उनके मास सीपण दुष्परिणाम किया जाता है। कई बार इस प्रकार इनकी मनामनी कम जाती है कि बहनों की हत्या करने की शोकायक जाती है।^{१०४} अधिक रहेज वाले बायी बहनों की समुगल में अधिक प्रतिष्ठा होती है, कम रहेज वाले वाली बहनों का तथा इनके पतिमों का हीन दुष्टि में देखा जाता है। इससे घरों में असन्तुष्टि, अमानि, कलह और असन्तुष्टि में दुष्टि होती है। रहज का एक बुरा फल यह है कि पहले इस विषय में मद वाले तब करने के बाद विवाह सम्कार के समय बर मध्य वाले अपनी मां में एकदम यह सोचकर बुरा रहते हैं कि इस समय वाराण का विधि कीटता कन्यापद के लिए बर कम की बात होनी और उनमें बुराहमानी समुद्र मिल जायेगी।^{१०५} यह स्पष्टरूप में कहती है। इसी पिस्तौल सीने पर रख कर धन पागता है, कन्यापद वाराण कीटाने की धमकी दिख कर कन्या के माता-पिता में अधिकारिक पति बहुत करना चाहता है। इस विषय में एक भूतमांसी कन्या की माता का विवरण इस प्रकार है—

१०४ रास—बही, पृ० ६६३

१०५ इसका सर्वोत्तम उदाहरण लखनौ हाईकोर्ट का विनिबन्धनपत्र की मामला है। विनिबन्धन पत्र अपनी पत्नी बघावती को इस बात के लिए निर्दल परेशाम करता रहता था कि उसकी बहुत कम रहेज दिया गया है, वह बसते एक रेडियो सेट के लिए ४००) रु. माये। बघावती ने कहा कि उसके माता-पिता इसमें धन नहीं थे सकती कि उसकी तब इनकारों पूरी कर सकें। इस पर पति ने उसके साथ दुष्परिणाम औरत किया तथा १२ नवम्बर को हवाई अड्डा दिखाने के कहते उसे छत पर छोड़कर कहा की भुँडें से लकड़ा देकर नीचे बिधकर उसकी हत्या का प्रयत्न किया। अदालत ने विनिबन्धन पत्र को ७ वर्ष की कड़ी कैद का दण्ड दिया।

“मैं विधवा थी, मेरे पास पर्याप्त पैसा नहीं था, फिर भी मैंने अपनी सहेली के लिए दहेज की सब वस्तुएँ देने का प्रयत्न किया। भारी तय करके समय बचने के व्यक्ति प्रकार के आये और हमने दहेज में दी जाने वाली सब वस्तुओं को सूची बना दी। किन्तु विवाह संस्कार के समय इस सूची में ऐसी बहुत सी चीजें बचा दी गयीं जिन्हें देने के लिए मैं तैयार नहीं थी। फिर भी मुझे इन वस्तुओं को देना पड़ा। सहेली की शादी हो जाने के बाद भी घर के माता-पिता प्रत्येक त्यौहार पर हीरे की अंगुठी, कपड़े घर आने वाली बड़ी आदि विभिन्न प्रकार की वस्तुओं को मागकर रहे। मैं अपनी लड़की को दम्पत्य वंश के लिए पाँच छः रुपये तक भिरगार रंती रही।”^{१४६} एक अन्य लेखक ने लिखा है कि दहेज ने कन्याओं के माता-पिता का विवासना बना दिया है, उन्हें साहूकारों के बंगले में रक्ता दिया है, भारी बने विभिन्न धार्मिक संस्कार के स्थान पर आभार और सोनेचाँदी बना दिया है और भगुराम में निर्दोष वस्तुओं का जीवन नारकीय बना दिया है।^{१४७}

हिन्दुसमाज में दहेज के बीच के दुस्वभावों के होते हुए भी, उत्तम समाज में कुछ व्यक्तियों की दृष्टि में कई उपयोगी कार्य हो रहे हैं। (१) पहला कार्य शिवा के प्रसार का है। श्रीनिवास का विचार है कि दक्षिण में अनेक निर्धन विद्यार्थी दहेज के भ्रमण की वृत्ति में अपनी उन्नति के कार्य को कभी पूरा नहीं कर सकते थे। (२) दूसरा महत्वपूर्ण कार्य मातृविवाह की वृत्ति के अन्तर्गत गरीब विवाह की आयु को अधिकतर बढ़ाता है क्योंकि इससे मध्यम तथा निम्न श्रेणी के माता-पिता को अपनी कन्या का ऐसा घर चुनने में बाड़ी समय लगता है, जिससे यदि दहेज देना उनके लिए संभव हो। इसकी वजह से काफी समय बच जाता है और इस बीच में कन्या की आयु बढ़ती चली जाती है। (३) तीसरा कार्य यह है कि यह अन्तर्जातीय विवाहों को प्रोत्साहित करता है। जब कन्या को माता-पिता को दहेज की कठिनाई के कारण अपनी जाति में घर नहीं मिलते तो वह उन्हें अपनी जाति से बाहर निकालने के लिए विवश होता है। (४) चौथा कार्य मानने रंग बाँधी, भूरी और बकसूरत कन्याओं का विवाह हो जाता है, इनके लिए दहेज अधिक दिया जाता है और दहेज के आलाप में युवक इनसे विवाह के लिए तैयार हो जाते हैं। यदि दहेज की प्रथा बन्द कर दी जाय तो ऐसी कन्याओं के पिताओं के लिए बड़ी जटिल समस्या उत्पन्न हो जायगी। इस समय दहेज से निर्धन कन्याओं के माता-पिता परेशान हैं, इस प्रथा के बन्द होने पर बकसूरत कन्याओं के माता-पिता की परेशानी बच जायगी। (५) पाँचवाँ कार्य यह है कि दहेज में दी गयी सम्पत्ति से नवदम्पती को अपनी नयी गृहस्त्री उमा घर का आर्च-आयान जुटाने में बहुतमूल्य सहायता मिलती है। दहेज का आरंभिक संकेत

^{१४६} दल—पृ० १०, पृ० २९२

^{१४७} जार्ज नॉथ, सितम्बर १९४४, पृ० ६२३

भी यही था। वैदिक साहित्य में कम्मा द्वाग्रा बहुतों में बरेलू सामान, वस्त्र तथा अलंकरणों के वर्णन का वर्णन है। दहेज का आरंभ इसी प्राचीनता में हुआ था, माता-पिता कन्या की अपनी इच्छा से उसका दम पर बचपन के लिए आवश्यक सामग्री दिया करते थे। यह पक्की का पितर की श्रमति से से माया होने वाला हिस्सा समझा जाता था, सत्तकों का पिता की अन्नोद-आयदाद मिलती थी, पक्षियों का विवाह के समय दहेज के रूप में प्रयुक्त होता था। यह उनका स्वीयम समझा जाता था।^{२१}

वर्तमान दहेज में तथा इसके प्राचीन मूल रूप में दो बड़े तबे थे— (१) यह माता-पिता द्वारा अपनी इच्छा से समस्तता पूर्वीक दिया जाने वाला धन था, वर्तमान दहेज कन्या के माता-पिता से अवश्यवन्ती करूँ की जाने वाली धनराशि है। (२) दूसरा तबे यह है कि पुराने दहेज (पहलु) को स्वीयम समझा जाता था, अतः उस पर पत्नी का पूरा प्रभुत्व और स्वायत्तता होता था, बाल्य में वर्तमान दहेज प्रायः घर को त मिलकर उसके माता-पिता को मिलता है। कई कारणों की दहेज में ने एक भाई भी नहीं मिलता है, यद्यपि यह उनके नाम से दिया जाता है। उसके पिता का इस पर पूरा अधिकार होता है और वह इसका प्रत्येक विनिर्माण कर सकता है। प्रायः यह दहेज अपनी भद्रियों की माती में व्यव करना है। इन दो महत्वपूर्ण तबों के कारण कई उपवासी कार्य करते हुए भी दहेज ने इस समय भीयन कुप्रथा का रूप धारण कर लिया है।

दहेज की कुप्रथा खन्ध करने के उपाय

(१) इसका पहला उपाय अनिवार्य विवाहों को प्रोत्साहित करना है। इस समय दहेज की बुराई बड़ों का एक प्रयास काटन अपनी ही जाति में करना है। निम्न पर कुर्बान का नियम है, इससे घर के पुत्रों का क्षेत्र सीमित और संकुचित हो जाता है। जब घर बहुत बड़े होते हैं तो वे दहेज की मांग बढ़ाने लग जाते हैं। यदि लड़के की अपनी जाति से बाहर रुका जाय, पुत्रों का क्षेत्र विस्तीर्ण हो तो दहेज की बुराई स्वयमेव कम हो जायगी। (२) दूसरा उपाय दहेज विरोधी प्रचार और प्रबल को बढ़ा देना है। जब तक समाज में इस प्रथा के विरुद्ध प्रबल आशाकरण नहीं होता तो दहेज की बुराई पाप एवं मुर्खाई नहीं समझा जाती, तब तक इस कुप्रथा का उन्मूलन संभव नहीं है। नवयुवकों में ऐसी भावना पैदा करनी चाहिए कि वे दहेज की मांग करना छोड़ दें। समाजसुधारक संस्थाओं को ऐसा प्रचार करना चाहिए। श्रीनिवास ने दक्षिण भारत के बारे में लिखा है कि कुछ आधुनिकीय तमयुक्त व्यवस्था (दहेज) में से से दूर कर देने लगे हैं। कलकत्ता में अखिल भारतीय भारतीय सम्मेलन ने यह प्रस्ताव पारित किया था कि युवक-युवतियों इस बात की प्रशिक्षण करें कि वे अपने विवाह में कोई दहेज नहीं लेंगे। इस प्रकार दहेज

विरोधी पक्ष आन्दोलन इस कुप्रथा का अन्त कर सकता है। (२) तीसरा उपाय बरमून द्वारा इसका निषेध करना है। यह १६९० के दहेज निषेध कानून (Dowry Prohibition Act) में कर दिया गया है। किन्तु अभी तक दहेज विरोधी पक्ष लोकमन में होने के कारण इस कानून से हिन्दू समाज में दहेज की दुहाई का उन्मूलन नहीं हुआ और यह पूर्वका प्रचलित है तथा कानून के माता-पिता को अप्रसन्न और असन्तुष्ट कर रही है।

अब बाह्य विवाह में प्रारम्भ में कन्या को इच्छापूर्वक अलग दान के दान किया जाता था, जो अब अन्त में अवश्य ही रहने और नया माता जाता है। यह दान सांख्यिक और धार्मिक परिचालन है। यदि प्राचीन काल में स्मृतियों में आगुन विवाहों की इस निम्न गिना की हो कि उत्तम कन्या का विवाह किया जाता है, तो दहेज द्वारा होने वाले धन-विषय की कन्या एक ही अधिक भिन्ना की जाती बाह्य।

द्वैत विवाह

यह विशेष परिस्थितियों में किया जाता है। उत्तर वैदिक युग में धार्मिक कर्म-काल का आरम्भ बहुत बड़ा था, कन्याओं, नवियों और कहीं तक अन्य लोगों पर नुक़्त रूप। इन पुरोहितों या अधिपतियों को इन धर्मों में दान देना पड़ता था वे अपने विवाह और द्वैतत्व कर्तव्यों की और पर्याप्त ध्यान नहीं दे सकते थे। [] बार वजन ऐसे लम्बे यन्त्रों को बनाते जो पुरोहितों को बलिगा कर्म में या धर्म ही अलग कन्या का दान किया करते थे। एक बड़े यन्त्र में बीसियों पुरोहित बुलाए जाते थे। इनमें कुछ अधिपति भी होते होते और कुछ धर्मधारा अपनी कन्याओं का विवाह करना चाहते होते। कन्याएँ भी इस अवसर पर अपने पतिगो को साथ ले जाती थीं। अतः ऐसे अवसरों पर बहुत से विवाह होते थे। इस प्रकार के विवाहों को द्वैत अर्थात् देवताओं की प्रसन्नता के लिए किये जाने वाले धर्मों में किया जाने वाला विवाह कहा जाता था।

इस द्वैत के अर्थ को विश्वकर्म (प्राग्वशक स्मृति १।२६-२७) में कुछ स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है। वह कहता है—“द्वैत अर्थात् धर्म कहते हैं, जो विवाह अर्थात् अर्थात् देवों के योग्य हो उसे द्वैत विवाह कहते हैं।” “द्वैत के बारे में यह भी कल्पना की जाती है कि देवताओं के आराधन के लिए किये जाने वाले धर्मों में इन विवाहों के किये जाने के अन्त में नाम द्वैत विवाह हुआ।

मोघायन कर्मसूत्र (१।१।५) के टीकाकार ने इन विवाहों के स्वर्ण को कुछ अन्तिम स्पष्ट किया है, वह कहता है—“यह धर्म अर्थात् धर्मों के करने के समय पर भी योग्यताओं से कुछ किसी व्यक्ति को पुरोहित कर्म में वरण करे और बलिगा के समय उसको किसी भी आर्थ कन्या का भी दान करे।” विश्वकर्म ने भी इस मत की

पुष्टि करने हुए कहा है कि (यष्टू का) यह नाम दक्षिण के अतिरिक्त होता है।

अब तक हिन्दू धर्म में दीर्घकाल तक चलने वाले यज्ञ होते थे, सब समय तक वैध विवाह का पर्याप्त प्रचलन था। ब्रह्मवेत्ता (५१६०, ७६) में एक अन्तर्देशीय वैध विवाह का समोरंजक उदाहरण दिया गया है। धर्म में यथोक्ति यथा काम में लिए अर्थोपसर्ग अस्त्रों का पुरोहित वा एव किया। अर्थोपसर्ग का मुख व्यावायव्य ही इस मत में पिता की महापत्नी या पत्नी था। व्यावायव्य ने राजा की सुन्दरी कन्या को वेष्टा और उस पर भुक्त होकर उसके साथ विवाह करना चाहा। राजा ने पत्नी के भागे व्यावायव्य के साथ अपनी कन्या के विवाह का प्रस्ताव रखा। राजा उन सम्बन्धों को पसन्द करता था, किन्तु राजा ने कहा कि व्यावायव्य पुरोहित है, लेकिन यज्ञ अष्टा ऋषि नहीं है। यदि किसी ऋषि को व्यावायव्य पितावाता तो वह सहस्रति दे सकती है। व्यावायव्य निराशा होकर अपने पितावाह सति के आश्रम में प्रविष्ट बना गया। अश्वत्थ में उसके छात्रों ने अश्वत्थ बाधित्व [] और उसमें 'य इव मय्ये' नामक मन्त्र का रहस्य किया। ऋषि हो जाने के बाद व्यावायव्य योग्य पद सम्पन्न गया और राजाकन्या के साथ उसका विवाह हो गया।

४ वीं, ५ वीं शती ई० प० के बाद वैदिक यज्ञों का प्रचलन बन्द हो गया। यद्यपि इन यज्ञों की पहली पुष्पामित और समुद्रगुप्त ने तथा बाद में कुमारिल ने पुनरुत्थीकृत करने का प्रयत्न किया, तथापि वे प्रकृति हिन्दुसमाज के वैदिक धर्म का खनन रहे। इन यज्ञों के अन्तर्गत से वैध विवाह भी बन्द हो गये।

प्राजापत्य विवाह

अब कन्या अर्द्धहस्त करके पति को इन यज्ञों के साथ लीपी जाय कि तुम इसके साथ यावज्जीवन धर्म का पालन करो, तो उसे प्राजापत्य विवाह कहते हैं। वास्तव में ब्राह्म विवाह से इसमें कोई भेद नहीं है, किन्तु विवाह का उद्देश्य ही सर्वपातक है। भाष० धर्मसूत्र (२।६।१३।१६-१८) कहता है कि पति-पत्नी में कोई गुणवृत्ति नहीं है, पामिग्रहण करते से वे सब कामों में एक हो जाते हैं।^{२१} जब पामिग्रहण का यह उद्देश्य ही तो प्राजापत्य में, ब्राह्म की अपेक्षा बड़ा विशेषता है? सर्वसुखकार इस विषय में मौन है, किन्तु टीकाकारों की सम्मति है—“जब यावज्जीवन एकविवाह (Monogamy) [] आदर्श की रक्षा की जाय और संन्यास न दिया जाय तो वह प्राजापत्य विवाह होता है।” उनकी यह बात कुछ ठीक प्रतीत होती है। सम्भव है हम देखें कि बहुपत्नीविवाह का प्राचीन हिन्दू समाज में बहुत अधिक प्रचलन था। आपस्तम्ब

^{२१} भाष० धर्मसूत्र २।६।१४।१६—आचार्यधर्म विवाह की विधायी पामिग्रहण हि ब्रह्म धर्मसूत्र १।१६।

ही एकमात्र ऐसा सूत्रकार है जिसने स्पष्ट शब्दों में बहुभार्याता की निन्दा की है। विवाह को यह धर्म के लिए ही सम्बन्ध है। अतः उसके मत में डाहुरविवाह के बाद कोई व्यक्ति दूसरी स्त्री से विवाह नहीं कर सकता था। यही कारण है कि उसे एक विवाह के बंधन की अनिवार्य मानते माने प्राजापत्य विवाह का अन्त उपलब्ध करने की आवश्यकता नहीं प्रतीत हुई, उसने केवल एक विवाह ही माने है। अग्रे सूत्रकार द्वारा विवाह में एक-विवाह के बंधन की आवश्यकता नहीं समझते थे, अतः एकविवाह के आदर्श के लिए उन्होंने प्राजापत्य नामक चरम की पुष्टि करायी थी।^{१४}

हरकण गीतम धर्मसूत्र १:१५४ की व्याख्या करते हुए कहता है कि यद्यपि ब्राह्मण विवाहों में प्रतिपत्नी एक साथ धर्माचरण करती है, किन्तु प्राजापत्य में जीवन न्यूनतम पत्नी के साथ धर्म का आचरण करने, दूसरे माध्यम में त प्रविष्ट होने और दूसरी स्त्री के साथ न जाने के जनों का प्रतिपादन करने वाले यन्त्रों द्वारा प्रतिज्ञा की जाती है। ब्राह्मण विवाहों से प्राजापत्य की यही विशेषता है। बौद्धसंघम (५० ४५२) तथा गंगक-कोट्युप (५० ५१२) भी द्वापरे के अर्थ का ही तत्पर्यय करते हैं। मत्सरकोट्युप प्राजापत्य में, दूसरे जीवन के अन्तर्गत जाने का निषेध मानता है तथा पत्नी पत्नी के जीवित रहते [] दूसरे विवाह की अनुमति नहीं देता। इस प्रकार प्राजापत्य विवाह की विशेषता एकविवाह का बन्धन है। बाह्य विवाह में इस प्रकार की कोई विशेषता नहीं थी।

प्राजापत्य अथ है अर्थ की विमर्श ने कुछ स्पष्ट किया है। उसके मत में प्राजापत्य स्मरक है, यद्यपि उसने धर्म के उपराधन की इच्छा की है। यह विवाह प्राजापति के योग्य होने से प्राजापत्य कहलाता है (भाष० स्मृति १:२६-२७)।

हिन्दू विवाहों के आधुनिक रूप

हिन्दू विवाह के प्राचीन कालों में इस समय केवल बाह्य और आन्तरिक रूप ही अधिकतर प्रचलित थे। किन्तु वर्तमान हिन्दू समाज के विभिन्न वर्गों, वर्गों, उपवर्गों, जातिधर्म, कबीलों एवं समुदायों में विवाह की कुछ ऐसी प्रवृत्तियाँ प्रचलित हैं जिनका शास्त्रों में कोई उल्लेख नहीं है। ये विवाह इन जातियों में सेकड़ों वर्षों से होते चले आये हैं और अद्यावत् इनको विवाहों का रूप में स्वीकार करती हैं। इनमें किसी भी प्रकार की

^{१४} आत्मब्रह्म स्मृति (१:१६०) की भाष्यप्रदीप्ति टीका में इस बात की स्पष्ट रूप से कहा गया है कि प्राजापत्य विवाह एक-विवाह (Monogamy) का आदर्श मानने करने वाले धर्मपरी के लिए है, इस प्रकार से परिणय कुरु में आग्रह होने वालों के लिए एक-विवाह के निषेध का पालन करना आवश्यक था। प्राजापत्य विधि से विवाह करने वाला प्रथम दूसरा विवाह नहीं कर सकता था।

सार्वभौम विधि का पालन नहीं होता। इस प्रकार के विवाहों का यहाँ संश्लेष से उल्लेख किया जायगा।

दक्षिण भारत के विवाह

हिन्दू समाज के विवाहों की दृष्टि से अधिक आरक्षीय सम्प्रदायों में एकत्र किया है कि हम अब यह अध्ययन भी नहीं कर सकते कि कोई ऐसा भी विवाह हो सकता है जिसमें कोई पुरोहित न बुलाया जाय, कोई भस्म न पड़े आदि और कन्या का दान न किया जाय। दक्षिण के हिन्दू समाज से इस प्रकार के विवाह बहुत प्रचलित हैं। इसका ही नहीं, बल्कि हिन्दू समाज जिस प्रकार के तम से जीता जाता है, बहुत सख्त दक्षिण की कुछ अन्य समझी जाते वाली जातियों से प्रभावित है। असुविधा का यह विषयों में दक्षिण भारत बहुत ही कट्टर है, किन्तु विवाह के विषय में, उनके कुछ वर्गों में विशाल स्वतंत्रता पायी जाती है।

मत्स्यार और कन्नडा की तामर और तम्बूदरी जातियों में विवाह के कई रूप प्रचलित हैं। उन्हें विवाह न कहकर स्त्री-मुक्ता-सम्पन्न कहना अधिक उचित होगा। इन सम्प्रदायों का बहुत बड़ा स्वीकृत नहीं माना जाता है। ये सम्प्रदाय अधिकतर संस्कार नहीं हैं, बल्कि जब बाह्य रूप संकाया जा सकता है, इनमें कोई पुरोहित नहीं जाता, कोई वैदिक मन्त्र या पौराणिक धर्मोक्त नहीं पढ़ा जाता और कोई विशेष विधि भी नहीं की जाती।

इन विवाहों की एक और विशेषता यह है कि हिन्दू समाज के सभी विवाहों में यदि पत्नी का अपने घर पर ले जाता है, किन्तु दक्षिण के इन विवाहों में पत्नी अपने पिता के घर में रहती है, यदि उसके घर पर जाता है। पहले स्त्री अपनी सम्पत्ति के अनुसार एक, दो या कोई पुरुषों से सम्पन्न एक सखी भी और इसी समाज में उसकी कोई अप्रतिष्ठा या बदनामी नहीं होती थी। इसलिङ्ग कहा जाता था कि कि मत्स्यार में कोई विवाह-विषय नहीं है। यहाँ संश्लेष से इन विवाहों की धर्म की जायगी।

तामिलकेट्टु तथा सैम्बम्—मत्स्यार ■ तामरों में यह एक विशेष एक विधि प्रया है कि प्रत्येक स्त्री को दो प्रकार का विवाह करना पड़ता है। पहले की तामिलकेट्टु संकाय वाली का विवाह और दूसरे को सैम्बम् कहते हैं। इसी स्त्री के गले के आकार की छोटे की बनी हुई एक वस्तु होती है। स्त्री का नामवाक्य का यदि तासी की उसके गले में बाँधता है। यह विधि बड़े ठाठ-ठाठ और दान के साथ की जाती है और यदि यह न की जाय तो उस स्त्री का सामाजिक अधिकार कम जाता है। एक ही कारण, (भाव: यह एक बड़ा धातुन होता है,) बहुत ही कन्याओं का यदि उनके उनके गले में तासी बाँध देता है और उसके बाद दक्षिण सेकर यह धातुन अपने घर लाना जाता

है। इससे बाद उक्त व्यक्ति का उन कामधायी से कोई सम्बन्ध नहीं रहता; जिस गण्डा के साथ उसी व्यक्ति के पुत्र उससे विवाह किया है, उसके साथ सम्बन्ध करने का उसे कोई अधिकार नहीं है।

पूजावस्त्रा प्राप्ति कर लेने पर मायरा कन्या का दूसरा विवाह होता है। इसे संवत्स्रम्, भूषणवस्त्रम्, पद्मसूत्री (कपड़ा देना) या शीटाकोरन (शय्या या बिछाव) कहते हैं। इसकी विधि बहुत सरली होती है। घर, गधू के स्त्री-सम्बन्धियों के सामने राज की गधू-गुह में गधू को पान या भस्म देता है। उसकी सम्बन्ध में सम्बन्धम् की पद्मसूत्री विधि अधिक प्रकीर्णित है। इसमें पहले एका वधोतिथी घर और गधू की सम्बन्धों के मिलाता है। यदि दोनों की पत्नी मेल जाती है तो विवाह का एक दिन निर्दिष्ट कर दिया जाता है, फिर वधोतिथी और वरातिथी में गधू को घर पर आगमन कराया जाता है, घर की बहुत सी भेंटें मिलती हैं। इसे प्रारम्भिक विधि को परमुरि कुरुकल कहा जाता है।

विवाह के नियत दिन से १ या ४ दिन पहले परमुरि (Parmeri) विधि समाधी जाती है। इस अवसर पर घर अपने घर के सबै-भूतों की मारिगल देता है और उससे विवाह की आज्ञा प्राप्त करता है। विवाह के लिए नियत दिन पर सूर्यास्त के पश्चात् अपने मित्रों सहित घर गधू के घर पर जाता है। वहाँ उसका स्वागत होता है और वह घर के वशिणी भाग में बिठाया जाता है। वह बाहुगों को पान देता है, एक सहयोग होता है, ग्योतिषी मंगलमूर्तों की पूजा देता है। घर की फिर घर के मुख कारे में या "भदिनाहु" में लाया जाता है। वराती अपने साथ बहुत से कपड़े और मारिगल लाये हैं। इन कपड़ों को भदिनाहु में इकट्ठा किया जाता है। इसी कठरे में प्रायः घर के नामस्वना इतिहास उल्लेख किये जाते हैं। इसे समाकर एक अवयव बना दिया जाता है। इसमें प्रतीय तथा विवाह के अवसर की आज्ञा मायसिक वस्तुएँ—आमल, जल, मारिगल के पत्र, मोष्ठ, करीण, मदीन अस्ति और एक गोम सफाई का बच्चा (गधू) रखा जाता है। घर अपने एक मित्र के साथ धूरी द्वार से उस कमरे में प्रविष्ट होता है, पश्चिमी द्वार से उत्तर-उत्तर पक्षों और बहुमुख्य वस्त्रों से अलंकृत एवं सुशोभित गधू अपनी जाड़ी या किसी अन्य बड़ी स्त्री के हाथ आती है। घर का मित्र घर की गधू के लिए कुछ कपड़े देता है। इसके बाद बच्चा स्त्री वन क्षेत्रों के सिर और प्रतीयों पर आमल फैलाती है, घर इस समय वशिणी कमरे में अपने मित्रों को पान-सुपारी भेंट करता है, अतिथियों के जाने के बाद घर गधू के साथ शयनकक्ष में जाता जाता है। १४

यह विवाह घर और गधू की इच्छा न रहने पर भी किया जा सकता है। सामान्य कारणों पर प्रायः विवाह का विच्छेद नहीं होता है। लोकमत तथा समाचार के संयुक्त परिवारवाद व्यवस्था का बुद्धिमान प्रायः ऐसे विच्छेदों को विरुद्ध होते हैं। यदि पति

संपन्न होता है तो पत्नी उसके घर में रहती है, अन्यथा वह अपने घरवालों में ही रहती है और उसका पति स्वयंप्रयत्न में उसके पास जाना करता है। मन्नास इन्फोर्मेन्ट ने एक विवेचन में इन विवाहों के विषय में यह लिखा था—'पति और पत्नी के बीच का यह सम्बन्ध सामान्य में विवाह नहीं है, अपितु एक प्रकार का सम्बन्ध है। स्त्री अपनी इच्छा से इस सम्बन्ध का अन्त नहीं सकती है।' विवाह के मूल रूप से यह स्पष्ट है कि स्त्री अपने परिवार में रहती है और उसका पति उसके पास जाता है। मन्नास इन्फोर्मेन्ट ने इसका कुछ अर्थव्यवस्था में अर्थ परिवर्तन का भाव नहीं है, किन्तु इसमें स्पष्ट नहीं कि वे अपनी इच्छा से नहीं रहती हैं, वे जब चाहें अपने परिवार में लौट आती हैं। ५२

सम्बन्धों की प्रथा के प्रचलित होने के मूल कारण

इस विविध विवाह का कारण यह बताया जाता है कि इस प्रथा के मूल में यह विचार था कि विवाह की प्रथा में देवताओं या उनके प्रतिनिधि ब्राह्मणों का देवी आदि। मन्नास इन्फोर्मेन्ट ने यह लिखा था कि अब अमेरिकी विवाह कानून में भी यह अपनी पत्नी के साथ 'जब तक' सम्बन्ध नहीं रख सकता जब तक कि मुख्य पुरोहित (मन्त्री या मन्त्रवर्ती) द्वारा उपाय न करा जाय। यदि यह पुरोहित चाहे तो उस स्त्री के साथ तीन साल सम्बन्ध कर सकता है, क्योंकि विवाह का प्रथम कार्य देवताओं के लिए भेंट करना आदि। जिसकी बहुत मूल्य होती है। कुछ अधिक लोग ब्राह्मणों के लिए अपने इशारे होते हैं कि वे उन्हें यह काम करने दें, किन्तु सामान्य जनता उन्हें यह ऐसा नहीं करने दे सकती, जहाँ पुरोहित का उपाय वे स्वयं ले लेते हैं। ५३

यह कारण दीक प्रतीत नहीं होता। क्योंकि यह प्रथा भी आदिमों में ही प्रचलित है और इन जातियों की स्थिति के साथ कोई सम्बन्ध नहीं रखता। इस विषय में मन्नास की यह कल्पना अधिक दृष्टि-भ्रम प्रतीत होती है कि यहुदा विवाह आयों की बहुमूर्तिता (Polyandry) प्रथा का ब्राह्मणों द्वारा संस्तुत एवं प्रोत्साहित करने का एक प्रयास माना जाय। सामर, लोगों की राजनीतिक प्रभुता होने पर भी ब्राह्मण उनके इस कार्य का पूरी तरह पराजित नहीं करते थे। उन्होंने यह व्यवस्था बनायी कि कन्या का विधिपूर्वक विवाह एक बार अवश्य हो जाना चाहिए, इसके बाद भले ही सामर अपनी प्रथा के अनुसार कुछ भी करते रहें। ५४

५२ सी. रि. इ. १२११, भाग १, पृ. २४२

५३ रिजली—बीजल जाक की इन्फिया, पृ. २०६

५४ सी. रि. इ. १२११, भाग १, पृ. २४२

मराठार विवाह कानून

पिछली शती के अन्त तक मराठार में सम्बन्धम् विवाह होते थे, किन्तु वहाँ विवाह विधायक किरियमता को दूर करने के लिए पिछली शती में थोर आन्दोलन हुआ। मराठा सरकार ने १८६१ में इस विषय पर विशेष विचार करने के लिए मराठार विवाह कमीशन की नियुक्ति की थी। इस कमीशन को दो कार्य सौंपे गये—(१) मन्मथकामयम धर्म धर्म के नियम को मानने वाले व्यक्तियों की वैवाहिक प्रथाओं का निरूपण करना, (२) इस विषय पर अपनी सम्मति देना कि क्या इन विवाहों की किसी विधि को कानूनी तौर पर स्वीकृत करना आवश्यक है या नहीं। इसके बाद मन्मथों में दो गणों का यह मत था कि निम्न कारणों से विवाहों के लिए एक अनुमति देने वाले कानून (Permissive Legislation) की आवश्यकता है—(१) अनुमति देने वाला कानून बन जाने पर भी चाहेंगे, वे कानूनी विवाह कर सकेंगे और जो दूसरे लिए बाध्य नहीं होंगे क्योंकि, (२) राष्ट्रीय उन्नति एवं मराठार के लिए विवाह के कानून का अन्त आवश्यक है, (३) यदि कानून नहीं बनता तो भविष्य में बहुत बड़े नुकसान हो सकते हैं। अतः अन्त में यह मत कि अब तक इस विषय का कोई कानून नहीं बनाया, अतः अब ऐसे विवाहों को सर्वथा माननीय नहीं। अतः उन्हें बीच बनाने के लिए एक कानून बनाना चाहिए। तब सन् १८६६ में इन विवाहों को अन्त में द्वारा बीच बनाने के लिए मराठार विधायक एक्ट पास किया गया।

इस कानून में सम्बन्धम् विवाह का उल्लेख यह किया गया है—सम्बन्धम् एक शरीर और पुत्र के बीच का ऐसा सम्बन्ध है जिस सम्बन्ध में वे अपनी शक्ति की प्रथा के अनुसार पति-पत्नी के रूप में सहवास करते हैं या सहवास करने का विचार करते हैं। यह सम्बन्धम् निविष्ट पक्षियों के अन्तर्गत नहीं हो सकता। किन्तु सम्बन्धों या कर्णों में विवाह निविष्ट है, उनके साथ ही यह सम्बन्धम् नहीं होना चाहिए और भावात्मिक को अपने अधिनात्मिक की सहमति प्राप्त करना आवश्यक है।

विवाह की सूचना विवाह के रजिस्ट्रार को देनी चाहिए, यदि इस पर कोई आपत्ति नहीं उठती जाती तो सूचना देने के एक मास पश्चात् विवाह हो सकता है। ऐसा विवाह कानून द्वारा वैध होगा और पति पत्नी तथा सम्बन्धों को मानने के लिए बाध्य होगा।

१८९३ के मराठा मन्मथकामयम एक्ट द्वारा इस कानून को और अधिक परिष्कृत एवं विस्तृत किया गया है। इस कानून द्वारा निम्न महत्वपूर्ण परिष्करण हुए हैं—(१) सम्बन्धम् को कानूनी विवाह समझा गया है। (२) तत्काल का पूर्ण अधिकार दिया गया है। तत्काल के दिने कोई कारण देने की आवश्यकता नहीं है, (३) एक-विवाह (Monogamy) के सिद्धान्त को लागू किया गया है।

मम्बूवरी विवाह

मम्बूवरी ब्राह्मणों में यह प्रथा भी कि उनमें केवल बड़े भाई को ही विवाह करने का अधिकार था, छोटे भाई सत्वधर्म ही कर सबसे वे और इनकी रान्तों में सबसे के परिचार में उसको साथ रहती थी। इस नियम का उद्देश्य बड़े भाई की सम्पत्ति पर पूर्ण अधिकार देकर भ्रातृपति को विचलित होने से रोकना था, किन्तु इसका परिणाम यह हुआ कि मम्बूवरी जाति का विस्तार विस्फुल्ल एक गया, क्योंकि छोटे भाइयों द्वारा उत्पन्न सभी बालक गता भी ब्राह्मण के समझे जाते थे। बालकन प्रजासंघ के युग में संख्या का बहुत महत्त्व है। सुवक्त्र मम्बूवरीयों ने देखा कि यदि उनकी वर्तमान प्रथा के अनुसार बड़े भाई के पास ही विवाह का अधिकार बना रहता, तो उनकी संख्या अवश्यमेव कम हो जायगी, राजनीतिक जीवन में उसका कोई महत्त्व नहीं रह जायगा। अतः १६२३ में महाराज मम्बूवरी विवाह कानून पास हुआ। इस कानून की ६ वीं धारा सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। इस धारा के अनुसार प्रत्येक मम्बूवरी की अपनी जाति में विवाह करने का पूरा अधिकार है और प्रत्येक कन्या के लिए विवाह में पहुँच की गारंटी निश्चित कर दी गयी है। यह कानून कन्या के हितों में जाने वाली सम्पत्ति के तिहाई भाग से कमका १०,००० रुपयों से अधिक न होगी। मम्बूवरीयों को एक-विवाह का नियम पालन करना पड़ेगा। केवल निम्न तीन अवस्थाओं में उन्हें एक पत्नी के रहते दूसरी स्त्री से विवाह करने का अधिकार है—(१) जब पत्नी ५ वर्ष से किसी असाध्य रोग से पीड़ित हो, (२) जब १० वर्ष तक पत्नी से कोई संतान न हुई हो, (३) जब स्त्री जाति से अशुद्धता हो गयी हो। यह स्वयंसेवक दलाल चाहिए कि मम्बूवरीयों को कन्या का अधिकार नहीं दिया गया।

कथा—यह विवाह संयुक्त शास्त्र के बाद, "१० पूज्य और शीर्षिकी" में अवलिख है। पंजाब में भी इसका प्रचार है। इस विवाह में बिना किसी विधि के मृत स्त्री को पत्नी को उसका भाई से लकता है। इस विवाह को अवाधर्मे वैध मानती है। कदापि कोई विशेष विधि नहीं होती है। इसमें मुख्य बात यह है कि कोई पति-शरीर धर्मन्ध के लिए सहमत हो जायगा कन्या के मरता-पिता या अविवाहक अपनी कन्या को उसके साथ विवाह की इच्छा रखने वाले युवक को देने के लिए तैयार हो। ऐसे अवसर पर विवाह प्रारंभ शास्त्र कपड़े पहनती है और पति उसे गंगण, नम, बाली या वैवाहिक जीवन की प्रतीक कोई अन्य वस्तु देता है। कई स्थानों पर इस विवाह के लिए यह विधि भी जाती है कि स्त्री-युवक एकट्ठे बैठ जाते हैं और कोई ब्राह्मण, शास्त्र या बड़ा भाई उन दोनों पर एक तपेक चारद डालता है,

१० रीतिरेक—पंजाब कस्बवरी का= ७ नं० संस्करण, पृ० १४१, पूर्वमल कानन मुद्रित ३ सलादा पृ० १६०

११ ४ भा० ६० प्रोवि० मृ० को०, रि० पृ० १२४

स्त्री को उपयुक्त भेंट या श्रावणें भूक खयर दिया जाता है। बट-बट्ट पर चादर लाने के कारण इसे 'चादर अंदाजी' भी कहते हैं। कारण श्रावः विधवाओं की चादर अंदाजी को कहते हैं। यन्ने ऐसी भूट्ट छुटक देकर सादी जाती है उस समय कोई विधि सम्बन्धक नहीं सम्झी जाती। यदि हाथ भली को काटीयना हो उन दोनों के वैवाहिक जीवन का आरम्भ करने के लिए पर्याप्त समझा जाता है।

जगन्नाथ विवाह—यह धर्मिक धारण के मुख्यता अयोध्या में प्रचलित है। जब बच्चे किसी भी भी जाति की हों और जब मुस्लीम या जमीन्दार हों, तब यह विवाह हो जाता है। इस विवाह में जगन्नाथ या जगन्नाथ का उपासना आत्मपरायण है; दूसरे शब्दों में यज्ञादि कहते हैं। जमीन्दार विवाह के समय उपासित नहीं होता, उनको स्थान पर एक चूल्हा रख दिया जाता है। इस अंजन के समये बच्चे को बड़ (मंगल सूत्र) की धागा दिया जाता है। जगन्नाथ के साथ इस प्रकार विवाहित स्त्रियों को भोग-विषया कहा जाता है और विवाहपूर्वक विवाहित स्त्री गृहस्था कहलाती है।^{११} यह विवाह संभार के आशुओं में प्रचलित था, जिसे कौशिल्य ने इस विवाह की निष्ठा की है और ऐसी स्त्री को यमना में अर्पित मानी है।^{१२}

जामिनी गृहीत—दिनरा (बंगाल) में यह प्रथा प्रचलित है कि विपुला बेटी की पूजा करने के बाद पुरोहित राजा-राजी को माताई और जवन धर्मधार देता है, तत्पश्चात् उन्हें जामिनी-जल दिया जाता है। यह गान्धर्व विवाह का एक भेद माना जाता है।^{१३}

सातव्य विवाह—शिक्षा ॥ विवाह पहले हिन्दू विधि के अनुसार होते थे। उन्हें सातव्यपुत्रोद्दिष्ट करते थे। हिन्दू व सातव्य विवाहों में केवल प्रथम अन्तर था कि पिछले विवाह के समय हिन्दू गीतों के स्थान पर गाथा पढ़ा करती थीं। यह गाथा शिक्षकों के बीच गुरु की रामदास ने अपने विवाह पर कहा था। बाद में शिक्षकों ने बाह्य सातव्य किया जाने लगा। पहले हिन्दू पद्धति में विवाह होता था, बाद में विवाहित स्त्रियों मुख्यतः साहित्य की चार चार प्रशिक्षण करते और प्रथी उक्त भाषा पढ़ता था। पारम्परिक प्रशिक्षण वंशजी में होती थी। गाथा चार चोरों (जमिन के चारों और प्रशिक्षण या वंशजी परकम्पा—परिकम्पा) का ही प्रतिकूल है और विवाह की अभिवादन विधि माना जाता है। गाथा के बाद सातव्य-गाथा पढ़ी जाती है। यह हिन्दू शास्त्राचार की तरह है। विवाह के साथ इधका विशेष सम्बन्ध नहीं है, किन्तु कोई भी मंगलिक विधि आत्मप-

११ मन्नास ४२२। रामसरणीतः कदाच जगन्नाथीर लेखकः १६३४ श्री० ८५०
१२ जगन्नाथ कीरकम्पा १५० रि० १६४, रामपुरीर सद्गुरुतः कदाच कीरकम्पा
१६५० रि० ४०।

१३ महाराज कोल्हापुर कदाच मुम्बईर मन्नास ४८ व १

१४ स्त्रीध ५० ३१

बानों के बिना पूरी नहीं समझी जाती। इसके बाद वसा स्नान या अग्नि का चक्रावर्त प्रसाद (जलपा) बाटा जाता है। इस विधि का आनन्द विवाह कहा जाता है। यह स्पष्ट है कि आनन्द विधि में पवित्र अग्नि का स्वागत गुरुधन्य साहित्य का दे दिया गया है और अग्नि की तरह गुरुधन्य साहित्य की प्रवर्धना की जाने लगी है।

द्विकर्तों के विवाह की नीसगी अलग्ना यह कुछ पि उन्हांने सिन्धु विवाह पद्धति का सर्वथा स्थापन किया। उनमें केवल साधा और अनन्त-बाणी के साथ ही विवाह होने लगे। पहले उन विवाहों को बंधता में गन्नेन दिया जाता था। १६०६ में आनन्द मंदिर मन्दिर द्वारा एक प्रकाश के सब विवाहों को बंध बना दिया गया है। आनन्द विवाह विषय धर्म स्वीकार करने वालों में ही बंध माना जाता है।^{१४}

काष्ठी-वस्त्र विवाह—बीसवीं में वर-वधू के कंठी बंधने पर विवाह बंध माना जाता है।^{१५}

कलियानम् विवाह—कुछ हिमाचलों (भीरौनों) में विवाह की यह परिपाटी है कि वे भोज देते हैं, उनमें वर और वधू अतिथियों के साथ एक भोजन पर बैठते हैं और पाद स्नान है। उनको कपड़े एक साथ बांध दिये जाते हैं। उसी रात्रि को सहाय किया जाता है। यही कलियानम् (कल्याणम्) कहा जाता है। विधवाओं के ऐसे विवाह को 'उद्वेगि' कहा है।

नासक विवाह—मुजरात की कुछ जातियों में पहली स्त्री का छोड़ कर कोई पुरुष जो दूसरा विवाह करता है उसे नासक (नासा या नमा सम्बन्ध होना) कहते हैं। मध्वाचार्य में स्त्री या विधवा के दूसरे विवाह को 'पाट' कहते हैं।

बाबर अन्दाजी विवाह—स्वाक के सिक्ख और राजपूत इस विधि के अनुसार मुसलमान रिवाजों के साथ विवाह करते हैं। पंजाब केमरी मध्वाचार्य रणबीरसिंह ने बाबर बालकर कई मुसलमान स्त्रियों बहान की थीं, गेरसिंह ने भी इस विधय में उनकी अनुसरण किया था। एक मुसलमान स्त्रिया ने कुंवर देवरसिंह की सम्पत्ति में इस आधार पर उत्तराधिकारी होना चाहा था कि देवरसिंह ने बाबर बालकर उसे बहान किया था। अदालत ने सिक्ख सरदारों से इस विषय में पूछताछ कराया। सरदारों ने कहा कि यद्यपि मध्वाचार्य रणबीरसिंह और गेरसिंह ने ऐसे विवाह किये हैं किन्तु वे राजा थे, उन्होंने इस विषय में आचार और प्रथा की परवाह नहीं की, अतः उनका यह कार्य आमाधिक नहीं माना जा सकता। पंजाब के हाई कोर्ट ने १८६८ में एकजाद नारीवाद के एक ब्राह्मणी के साथ बाबर अन्दाजी द्वारा किये गये विवाह को अवैध माना था। किन्तु बाद में अदा-

१४ श्री० दि० पं० १६११ आ० १ उम्मेद १५० २७०

१५ विनोद बन्धन सविस्तर १४ फल० श्री० सो० पं० ६२५

ज्यों में पंजाब में ऐसे विवाहों को बंध माना है। पंजाब के हिन्दुओं के विभिन्न वर्गों में ये विवाह प्रचलित हैं।

सर्वस्वसन्तान् विवाह—यह विवाह धर्म के सम्बन्धियों में प्रचलित है। इसका अर्थ यह माना जाता है कि सड़की के सड़की को अपनी सम्पत्ति का उत्तराधिकारी बनाया जाता है। जब किसी व्यक्ति की कोई पुत्र सम्पत्ति नहीं होती और सड़कियां ही होती हैं, उस समय यह विवाह किया जाता है। विवाह के समय पिता दामाद से कहता है—“मेरे यह अर्धसन्तान आत्मा तुम्हें देता है। इस कन्या का कोई भाई नहीं है। इसका जो पुत्र होगा वह मेरा पुत्र समझा जाएगा।” कुर्ग में भी यह रिवाज पाया जाता है। जिस व्यक्ति की कोई पुत्र सम्पत्ति नहीं होती, वह अपनी कन्या का विवाह इसी शर्त पर करता है कि उसका बेटा उसी घर में रहेगा। धरमाड़ को हीजेरों, मद्रास के कुलवत्त और मादिरी और कांची के सिंहलियों में भी इसका रिवाज है। आसाध और मरमौर में भी इसका प्रचलन है। आसाध में देता दामाद न केवल स्वभुर की सम्पत्ति का अधिकारी होता है, बल्कि उसका गोल भी बही माना जाता है, जो गोल उसके स्वभुरात्म्य का होता है। छोटा नागपुर के सबातो और ओरावों में ऐसी स्त्री का पति, जिसका कोई भाई नहीं है स्वभुरात्म्य में खुद का काम करता है और स्वभुर के बाद उसके सम्पत्ति का अधिकारी होता है। पंजाब में पुत्र न होने पर स्वभुर द्वारा दामाद को पुत्र बना लिया जाता है। यह स्वभुर के घर में रहता है, उसे घर बंधाई, घर-नामाद या जाना-बाना कहते हैं।^{१६}

संत परिवर्तन (संयम परिवर्तन)—दो परिवारों में जब यह निश्चय हो जाता है कि एक परिवार द्वारा एक विवाह किया जाने पर, दूसरा परिवार उसके बदले में उस परिवार के साथ दूसरा विवाह करेगा तो दोनों कुल या परिवार आपस में कन्याओं का साधन-प्रदान या परिवर्तन करते हैं। कन्नड़ और बंगाल में इन विवाहों का विशेष रिवाज है। बंगाल में ये विवाह साधनों में भी प्रचलित हैं। पंजाब में ऐसे विवाहों को बहू-सहू (अधन-वजन या परिवर्तन) कहते हैं। मधुरा के विभिन्न वर्गों में भी बहू-विवाह पाये जाते हैं।

^{१६} सी० रि० ई० १९११, खंड १, भाग १, पृ० २२६।

विवाह संस्कार

संस्कार का उद्देश्य

वर्तमान युग में हिन्दुओं का भी विवाह, विवाह-संस्कार के बिना पूर्ण नहीं माना जाता। पुराने जमाने में गान्धर्व आदि विवाहों में वर और बहू की स्वीकृति को ही पर्याप्त समझा जाता था, किन्तु बाद में अपनी हफ्ता से किये जाने वाले प्रथम-विवाहों में भी संस्कार को आवश्यक माना जाने लगा। विवाह-संस्कार का मुख्य उद्देश्य यह है कि विवाहित होनेवाले स्त्री-पुरुष के सम्बन्ध को सार्वजनिक एवं बंध बना दिया जाय। संस्कार के बिना नर-नारी का कोई सम्बन्ध होता है समाज उन्हें कभी भी मान्यता एवं आने लिए हानिकर समझता है। ऐसा सम्बन्ध रखने वालों को समाज में घृणा भी दृष्टि से देखा जाता है; अतः न केवल हिन्दू समाज में अपितु मानव समाज के अधिकांश भागों में कुछ ऐसी विधियाँ आवश्यक समझी जाती हैं जिनको करने के बाद ही स्त्री-पुरुष पति-पत्नी बन कर रह सकते हैं। इस प्रकार समाज विवाह-संस्कार द्वारा विवाहों का नियन्त्रण करता है, यह नियन्त्रण कई प्रकार से हो सकता है। कुछ समाजों में यह विवाह-संस्कार पुरोहित द्वारा कपाया जाता है। हिन्दू समाज, रोमन समाज और ईसाई जगत के अधिकांश विवाहों में पुरोहित की उपस्थिति आवश्यक है। मुसलमानों में विवाह एक बीबानी मामला है, अतः वहाँ विवाह के समय में दो साक्षियाँ आवश्यक हैं। जापान के बीबानी विवाहों (Civil marriages) में किसी मजिस्ट्रेट के सामने विवाह की घोषणा आवश्यक मानी जाती है। स्त्री-पुरुष में पाई किस्सा ही सच्चा प्रेम हो, समाज उनके सम्बन्ध को एक तक बँध नहीं मालेगा जब तक उनके बीच समाज द्वारा स्वीकार की जाने वाली कुछ विशेष विधियाँ न की जाय और जसमें कोई पुरोहित या मजिस्ट्रेट सझी न हो।^१

हिन्दू समाज के प्रत्येक वर्ग, समुदाय या जाति में विवाह-संस्कार की अलग-अलग विधियाँ हैं और अत्यन्त प्राचीन काल से इनकी विविधता इसी प्रकार बनी आ रही है। यह अज्ञात प्रसिद्ध है कि कौत-कौश पानी कंदमला है और १२ कौश पर पानी

^१ मलाबार का सम्बन्धम् नामक विवाह इस विषय का अग्रिम है।

महल जाती है। विवाह की विधियों के सम्बन्ध में भी यही कहा जा सकता है कि वे १२ कोम पर स्थल जाती हैं। आधुनिक गृह्यसूत्र के आरंभ से २००० वर्ष पूर्व यह कहा जा कि विभिन्न गृह्यों और संतों के रीति-रिवाज भिन्न-भिन्न होते हैं। जिस तरह आजकल पुराने रिवाजों के जाने में बड़ी झूलने प्रामाणिक मानी जाती है, उसी तरह अतन्त्र के चलाने में भी इनके रीति-रिवाजों को परम अज्ञान माना जाता था (आर० गृ० गृ० १।१२)। पाठक गृह्यसूत्र (२५।३) में भी विवाह में देवाचारों और कुलों के आधारों के पालन की अनुमति दी है। पाठक गृह्यसूत्र (१।८।१।११) धर्मवीर विधियों के नाम नाम की विभिन्न विधियों करने की अनुमति देता है। इन अचारों में कर्म, हिन्दू विवाह की विधि बहुत प्रसृत, जटिल और पैगोवा हो गयी है, विवाह-संस्कार एक बहुत लम्बा-चौड़ा गूच्छ धर्मशास्त्र हो गया है। इसमें बहुत सी विधियाँ स्थापित की गयी हैं और बहुत सी विधियाँ वैधवा संतों के गण्य पूर्ण की जाती हैं। यहाँ हम पहले वैधवा संतों के साथ की जाने वाली शास्त्रीय विधियों पर उल्लेख करेंगे और बाद में विवाह के सम्बन्ध में किये जाने वाले अन्य संस्कारों या देवाचारों का संक्षिप्त वर्णन करेंगे।

वैधिक युग की विधियाँ

वैधिक युग की विधियों का विशेष ज्ञान ऋग्वेद के सूक्तान्त (१०।८५) में तथा अथर्ववेद के तीर्थहोम काण्ड में होता है। इनमें विवाह की प्रायः सभी विधियों पर प्रकाश डाला गया है। इनमें सबसे पहली धार्मिक कर्म से लोग की जाती है (ऋ० १०।८५।१-५; अथर्व० १५।१।१-४)। उसके पश्चात् में कथा के धार्मिक कर्मों की व्यवस्था मानी है (ऋ० १०।८५।१२, ८.१०-१३; अथर्व० १५।१।९-१०)। ऋग्वेद में प्राणिग्रहण (१०।८५।१६), केसरीकरण (१०।८५।२४), बधू की विवाह (१०।८५। २९-३३; ३३), स्वमुखाजय प्रवेश (१०।८५।२७, ४९-४९) व कथाप्राण (१०। ८५।३३-४९) की विधियाँ हैं; किन्तु उसमें अश्वारोहण, मूर्धदर्शन, भुवर्जन आदि विधियाँ नहीं हैं। अथर्ववेद (१५।१।४८।५२) में प्राणिग्रहण का अधिक विस्तार के वर्णन है, अश्वारोहण (१५।१।४७) का भी प्रतिपादन है। बधू के घरों (१५।१।४५), स्नान (१।२७), स्वमुखाजय प्रवेश (१।२०-२४) का उल्लेख है। किन्तु यहाँ भी भुवर्जन और भाषाहोम का वर्णन नहीं है।

गृह्यसूत्रों की विधियाँ

हिन्दू विवाह को गृह्यसूत्रों में सम्यक् एवं सुव्यवस्थित किया। पुरानी विधियों में कुछ नयी विधियाँ जोड़ी गयीं। भुवर्जन और भाषाहोम इसी युग में विवाह के आवश्यक अंग बने। इन गृह्यसूत्रों में विधियों की संख्या और एकत्र व्यवस्थित रहने से तथा

उनके विषय में परस्पर मतभेद रहा है। वर्तमान समय में प्राच्यीय हिन्दू विवाहों में ऐसी विधियों का अनुसरण किया जाता है। अतः इन विधियों का विस्तार में वर्णन किया जायगा। इस वर्णन में आप्तसामय गृह्यसूत्र तथा पारस्कार गृह्यसूत्र की विधि को आधार बनाया गया है, किन्तु वहाँ अन्य गृह्यसूत्र विशेष विधियों का उल्लेख करते हैं, वहाँ उल्लेख भी काम में लिए गए हैं। ॥ विधियों प्रायः सभी प्राचीन कार्यजातिओं में पायी जाती थी। पाण्डित्यविधियों में यथासम्भव इनका उल्लेख किया गया है।

विवाह की विधियों को दो मुख्य भागों में बाँटा जा सकता है—(१) विवाह की प्रारम्भिक विधियाँ। ये बहुत बड़े घर पर की जाने वाली विवाह की आवश्यकता रखते हैं, यथा पारिव्रतय, पारवाण, अंगारोत्थन आदि विधियाँ। (२) बधू को घर में प्रवेश ले आना की जाने वाली विधियाँ। उवाहुरणार्थ, भुवदशों की विधि बधू के प्रवेशार्थ पूर्व में जाने पर होती थी, किन्तु वर्तमान समय में दोनों विधियाँ प्रायः एक साथ ही बधू के घर पर पूरी की जाती हैं। इन विधियों के पौनःपुन्य में विभिन्न सूक्तकारों में बहुत उल्लेख है। आप्तसामय गृह्यसूत्र सप्तपदी से पहले अग्निपरिस्त्रमन का निर्देश करता है। आप्तसामय गृह्यसूत्र सप्तपदी का अग्निपरिस्त्रमन से पहले मानता है। पारिव्रतय की अधिकारता सूक्तकार सप्तपदी से पहले मानते हैं, किन्तु गोविन्द, आदित्य, भीष्मामन हंस आदि मानते हैं। यहाँ इन विधियों का वर्णन-क्रम पारस्कार और आप्तसामय गृह्यसूत्रों के अनुसार है। यह आवश्यक भी बात है कि आप्तसामय विवाह संस्कार की पारिव्रतय की विधि से शुरू करता है, उसके पहले मधुपर्कान्ति की महत्त्वपूर्ण विधियों का वर्णन नहीं करता। यहाँ पहले इन विधियों का वर्णन उचित मान पड़ता है।

मधुपर्क—विवाह के लिए घर वपतिओं के साथ बधू के घर पर पहुँचना है। बन्धु के घर पर बरात ले जाने का रिवाज बरगन प्राचीन है और वैदिक काल से बना का रहा है। मधुपर्क (१।१।११) में एक जलकणिका विवाह का वर्णन करते हुए यह सूचित किया है कि उस विवाह में तीन बराती (अम्ता) के और तीन धुत्ता थे। बरात के साथ घर द्वारा बधू के घर पर पहुँचने पर उसका स्वागत किया जाता था। पारस्कार गृह्यसूत्र के मत में घर आने से मोग्य (स्वकार करने योग्य) होता है, अतः एक बड़ा द्वार पर जाता है जो बधू पक्ष के लोग उल्लेख करते हैं कि “आप अच्छी तरह बैठिए, इन आपका स्स्कार करेंगे” (१।१।१४)। बधू पक्षवाले घर को बैठने के लिए आसन, पाँच छोटे और आसन करने के लिए जल, (अर्घ्य) तथा मधुपर्क देते हैं।

मधुपर्क प्राचीन काल में सम्माननीय व्यक्तियों को दिया जाता था। पारस्कार गृह्यसूत्र (१।१।१९) में अतिथि, घर, स्नातक, राजा और शिव व्यक्ति को मधुपर्क के सम्मान के योग्य समझा गया है। भीष्मामनगृह्यसूत्र (१।२।६५) अतिथियों को भी मधुपर्क

सम्पन्नता है।^१ मधुपर्क में क्या चीजें होती थीं, इस प्रश्न पर गृह्यसूत्रों में बड़ा मतभेद है। इस बात पर सब सहमत हैं कि उसमें मधु होना चाहिए। मधुपर्क का अर्थ यही है कि मधु से मिली दुर्घ (घण्टा) बज्य। किन्तु मधु के साथ मिसायी जाने वाली अन्य मधुओं के सम्बन्ध में मतभेद है। आपस्तम्ब गृह्यसूत्र व जायसम्ब गृह्यसूत्र इसे मधु और कहीं या मखन का मिश्रण बताते हैं। आप० गृह्यसूत्र (१३:११।१२) कुछ लोगों की यह सम्मति उद्धृत करता है कि इसमें जो भी मिलाया चाहिए। कौशिक सू० (३२) में ६ प्रकार के मधुपर्क के मिश्रण का वर्णन है। मानवसू० सू० (१।३।२२), श्रृङ्गवेदी सू० सू० (१।१३।१४) तथा जीवामय सू० सू० (१।२।५१-५४) में मधुपर्क में शी या बकरी के मांस को भी देने का वर्णन है, बाद में इसे दूध तमझा जलें लगा। इस समय हिन्दू समाज में मधुपर्क का रिवाज बहुत कम हो गया है, बस विवाह के समय यही और मधु मिलाकर मधुपर्क दिया जाता है।

गृह्यसूत्रों में मधुपर्क की बहुत विस्तृत किंथियों का वर्णन है। कई मंत्रों को पढ़ते हुए घर मधुपर्क का ग्रहण कराया है, उसको अगमिका और अंगूठे में बिलोत है, फिर कुछ मन्त्र पढ़ता हुआ मधुपर्क का ग्रहण करता है। मधुपर्क की विधि की समाप्ति सोपान से होती है। पञ्चमान या षष्ठुर अग्नि या घर को तीन बार गौ शब्द बाह्यर गौ का घन करता है। इस सोपान से उद्देव का अभिर्वादन स्वाभाविक है, किन्तु वास्तव में ऐसी बात नहीं है। सोपान मधुपर्क की विधि का अंग है और मधुपर्क का विवाह से सम्बन्ध नहीं है, वह अग्नि, अस्थि, घर, काष्ठक, षष्ठुर, आमा, माचार्य किसी भी ग्रिय अग्नि के घर अग्नि पर दिया जाता था। वह विवाह में ही होता ही, ऐसी बात नहीं। आपस्तम्ब गृह्यसूत्र विवाह के पहले किसी मधुपर्क का उल्लेख नहीं करता। आपस्तम्ब गृह्यसूत्र (३।८), जीवाम० सू० सू० (१।२।१), मानव सू० सू० (१।६), काठक सू० सू० (२।४।१-३) में विवाह से पहले मधुपर्क का वर्णन है। शौका० सू० सू० (१।१२।१०) विवाह से पहले और मधु के घर में प्रवेश करने के समय मधुपर्कों का उल्लेख करता है। काठक सू० सू० (२।४।१) घर टीका करते हुए आदिधरर्वाग मिलता है कि मधुपर्क विवाह के अन्त में देना चाहिए, परन्तु जलते बाव वह शिथिलता है कि सब प्रवेक्षों में मधुपर्क विवाह से पहले दिया जाता है।

गृह्यसूत्रों के समय में बाहे जैवों परिपाटियाँ रही हों, किन्तु इस समय सर्वत्र हिन्दू समाज में मधुपर्क विवाह में पहले ही दिया जाता है और उसका मुख्य उद्देश्य घर का स्वर्गात् एवं सकरार करना है।

^१ गौ० सू० सू० ५।२५, मानव० सू० सू० १३।१६-२० मानव० सू० सू० २।३।८।५-६ और सू० सू० २।३।६ व ५५, गौ० सू० सू० ५।१०।२३-२४, सू० सू० ५।४।२६, मनु, १।११६ व मनु० सू० सू० ५।१०।२३-२४ में मधुपर्क की विधि विस्तार से बतायी गयी है।

मन्त्रदान—मन्त्रों द्वारा स्वागत होने के बाद घर मन्त्र को कुछ वस्त्र पहनाता है। उस समय 'जरा मन्त्र' तथा "का संकुन्तान्नमन्त्र" (अथर्व १४।१।४५) के मन्त्रों का पाठ करता है। दोनों मन्त्रों का अर्थ इस प्रकार है—“हूँ कन्या, तू बुढ़ावस्था तक पहुँचने वाली हो, (मेरे दिये हुए) इस मन्त्र को तुम पहन, कामादि से बचने हुए व्यक्तियों के बीच में इनके अधिपति में अपनी रक्षा करने वाली हूँ, १०० वर्षों तक जीवित रह, तेजस्विनी होकर धन और पुत्रों का समूह कर, हूँ आयुष्मति, इस वस्त्र को धारण कर।” दूसरे मंत्र में यह कहा गया है—“ये वस्त्र कर के घर की स्त्रियों द्वारा काले और धुले गये हैं, वे तुझे बुढ़ापे तक ऐसे वस्त्र पहनाती रहें। जिन देवियों में इस वस्त्र के तुल्य का जाता है, जिन्होंने इसके मूल का पीनापा है, जिन देवियों में दोनों और से लाभ लाभ में हम पीताया है, वे देवियाँ तुझे बुढ़ावस्था पर्यन्त ऐसे ही वस्त्र पहनाती रहें। हूँ आयुष्मति, इस वस्त्र को पहन” (अथर्व, १४।१।४५)। गृहपूजक घर द्वारा मन्त्रों की इन वस्तुओं के पहनाये जाने का विधान करते हैं, किन्तु आजकल ये वस्त्र मन्त्रों को प्रदान किये जाते हैं और मन्त्र उन्हें स्वयं धारण करती है।

कन्यादान—पारम्पर (१।४।१३) में इसका उल्लेख प्राप्त किया है, किन्तु मा० सू० सू० (१।५।१।६) में इसका विन्दार के वर्णन किया है। कन्यादान करने वाला पिता या माई तीन बार संवत्स मन्त्र कन्या बुद्धा 'दद्यामि' (देता हूँ) कहें और बार तीन बार 'अतिबुद्ध्यामि' (स्वीकार करता हूँ) कहें यह मन्त्रों की स्वीकार करे। कई बार घर कन्या को लुत्क रंकर करीबता में। उस परिस्थिति के लिए मा० सू० सू० यह कहा है कि घर अपनी अर्द्धांगि में लुत्क का धन घर में, कन्या को स्वीकार करते हुए वह धन कन्या के पिता की है। पिता उस समय यह कहें कि मैं तुझे धन के लिए देता हूँ और घर यह कहें कि मैं तुम्हें के लिए तुम्हें स्वीकार करता हूँ (कन्या तथा दद्यामि, अतिबुद्ध्यामि)। इसमें कन्या के और घर के दोनों का व प्रतितामह तक के नामों का उच्चारण किया जाता है और कहा जाता है—“किसने दिया, किसको दिया, काम के काम को दिया। काम देने वाला है, काम लेने वाला है। काम समूह में तु प्रविष्ट हो, मैं तुझे काम से बहक करता हूँ” (छं० डा०)। इस मन्त्र में स्पष्ट है कि बाल्य में विवाह परस्पर इच्छापूर्वक होता था, पिता कन्या का तामस्य का दाता है, वास्तविक दाता काम ही है।

धर्म में कन्या के पिता (अथिष्ठ या उपराधक) द्वारा कन्या के दान का संस्कार है और आधिकारिक रूप से अग्नि द्वारा कन्या को दिये जाने का वर्णन है (श्रु० १०।८।३६-४१, अथर्व १४।२।३-४)। बाद में अर्धकृत कन्या के दानवासे बाध विवाह को बाध विवाहों में सर्वश्रेष्ठ विवाह माना है। बाल्यकाल (१।२२) में कहाया गया है कि घर कन्या को लेते समय कहें कि मैं तुझे सर्व और प्रजा की प्राप्ति के लिए कहता हूँ (अतिबुद्ध्यामि तथा अतिबुद्ध्यामि)। छं० को० में इस अवसर

पर सोले जाने वाले विविध मन्त्र पढ़े गये हैं। इस समय कन्या का विवाह मन से जाता है—“हूँ इस पत्नी के प्रति धर्म, अर्थ और काम के कर्तव्यों को पूरा करने में कोई उपेक्षा या झील नहीं करता (धर्मं सर्वं च कामे च नातिपरितप्त्वा त्यज्य इदम्)।” पर इसका उत्तर देते हुए यह कहता है कि मैं इन कर्तव्यों का पालन करने में कोई डीन नहीं काँटता (नातिचिन्तामि)।

परस्परसमीक्षण—पारस्पर गृह्य सूत्र काव्यशास्त्र के बीच बधू के गरम्या-अमीत्य की विधि का वर्णन करता है। कछे पदों का पालन करने वाले द्विजसूत्रों को मात्र नामान्तर, गामय आश्रय ही, किन्तु पुराने सामन्य में बर-बधू को गन्त-गुगन का दर्शन कराना एक महत्त्वपूर्ण विधि थी। पारस्पर इस समय सू० १०।१५।४८, ४९, ५० प्रश्नों की श्रृंखला का अर्थग करता है। इन श्रृंखलाओं के अर्थ इस प्रकार हैं—“हूँ शम्भू हूँ सोम्यर्षिष्ठ या अगाध वृष्टि वाली होवीं हूँ वृद्धि को प्राप्त कर, पति के भयंजनी का घोर बनने वाली न हो, शत्रुओं के लिए भयानकालीणी हो, उलम समवासी न संश्लिषी हो, बीरों को उत्पन्न करने वाली, विद्वानों को बाह्य वाली, मनुष्यों और वीरों के लिए सुखकर हो। जाँघ, तन्मय, अग्नि सेरे पहले पति के, बहु बभ्रुव ठेरा बीमा पति है। सोम ने वृष्टि अन्धर्व को, अन्धर्व ने अग्नि को और अग्नि ने भुने बिना कीर इसके साथ पुत्र और धन को दिया। जो पूषा देवता है, वह इसे संश्लिषी बनाकर इसे हमारे प्रति प्रेरित करे (हमारे साथ अनुदत्त करें)।”

आश्वलायन गृह्यसूत्र परितिष्ठ (१।१२) में परस्पर समीक्षण की विधि का बड़ा मनोदमक वर्णन है। एक अनजान बर ने जहाँ ब्रह्म मंगल गीत गाये जा रहे हैं, वहाँ ■ बर को पूर्वोक्तमुख तथा बधू को शशिमाम्बिमुख करके दोनों के बीच में एक सांकेतिक चक्र (स्वविक्षकी, तिरस्कृषिणी) डाल दे। इस समय काव्याय सूर्य-सूक्त का पाठ करें, तिरस्का मंगल गीत गावें और निश्चित समय पर अमीतिविद् परदे को उठा दे, दोनों मुँह जोरे की एक दूसरे पर फैकते हुए तथा अवर्णित नलों का पाठ करते हुए एक दूसरे का निरीक्षण करें। सधू आश्वलायन स्मृति (१।१।२०) में भी इसी तरह बर-अधू द्वारा एक दूसरे का निरीक्षण करने का वर्णन है। इस विधि की आयस्तम्ब सू० सू० (४।४), श्रीयायन सू० सू० (१। २४-२५) में भी दिया गया है।

अग्नि स्थापन और होम—अग्नि स्थापन विवाह की आवश्यक विधियों में से है। अग्नि वेदाय की सरसी बनाकर किये गये विवाह अभिषेक समझे जाते थे। आगे चलकर हम देखेंगे कि भारस्वामन ने अग्निध्यात्मिक विवाहों पर बहुत बल दिया है। होम को इतना महत्त्व देते हुए भी, उसकी आकृतियों के स्वरूप और संख्या में मतभेद है। पारस्कर के मत में अग्निहोम की सरभाग्य आकृतियों के बाद राधुमूर्त होम की १२ आकृतियाँ दी जाती हैं, फिर कपाहोम की १३ आकृतियाँ और अभ्यातान होम की १५ आकृतियाँ। राधुमूर्त का अर्थ है राधु का पोषण करने वाला, अभ्यातान का अर्थ है अथ-

शिक्षक सर्वाधीन विकसित करने वाला। राष्ट्रभक्त परचम के लिए है, जम्हातरान् स्मार्त के लिए। इन दोनों के समन्वय से विषय होती है। यहाँ पहले सामाजिक प्रारम्भ की गयी है और बाद में वैयक्तिक विकास। इससे यह सुनिश्चित किया जाता है कि हमें राष्ट्र के हित को वैयक्तिक हित से ऊँचा रखना चाहिए। यह भावना बर्तन का परिणाम यह होता है कि ऐसे व्यक्तियों वाले राष्ट्र को विकास प्राप्त होती है।

पारिवर्धन—सोम के बाद पारिवर्धन होता है। पारिवर्धन विवाह की दूसरी आवश्यकता विधि है कि पारिवर्धन और विवाह एक दूसरे के समान समझे जाते हैं। इस विधि में वर-वधू एक-दूसरे का हाथ पकड़ते हुए बीच में एक दूसरे के साथ दबड़ें करने की प्रतिज्ञा करते हैं। पारिवर्धन केवल हिन्दू विवाह की ही विशेषता नहीं है, अपितु रोमन तथा जर्मन व्यक्तियों में भी एक प्रकार का प्रचलन है। यह विधि वर-वधू के सम्बन्ध को दृढ़ करने वाली समझी जाती है।

पारिवर्धन के सम्बन्ध में आश्वलायन गृह्यसूत्र की विधि सबसे अधिक संक्षिप्त है। उसका पहले वर्णन करते हैं गोविन्द गृह्यसूत्र (२।२।१६) की विधि का वर्णन किया जायगा। आश्वलायन की विधि में यह बात अनिवार्य है कि वह पुत्र और पुत्री प्राप्त करने के लिए विभिन्न प्रकार के पाणिग्रहणों का वर्णन करता है। यह कहता है कि अग्नि-प्रतिष्ठापन के बाद परम्परा को रखकर उत्तर पूर्व में पानी का बहा रहे, फिर वह आश्वलायन की है। यह पूर्व दिशा में मुख किया हुआ, पश्चिम की ओर मुख करके बैठे हुए वधू के अंगुष्ठों को 'गृह्-भाति ते शीघ्रात्प्राप्तम्' (१०।२।३६) मंत्र के पाठ के साथ पकड़े। यदि वह यह चाहता है कि उसकी अनाने पुत्र ही पैदा हों तो वह वधू का अंगुठा पकड़े, यदि वह पुत्री चाहता है तो उसकी अंगुली पकड़े। यदि वह लड़का लड़की दोनों चाहता है तो बायें बायीं तरफ से (हथेली की चट्टी ओर से) वधू के अंगुष्ठ सहित हाथ को पकड़े। पारिवर्धन के मन्त्र (ऋ० १०।२।३६) का पूरा लक्ष्य इस प्रकार है—'मैं तेरा हाथ शीघ्रात् के लिए पकड़ता हूँ। तू मूल पति ॥ साम सुगन्धे तक पहुँचने वाली हो, अर्थात्, अविवाह और पुराणि देवताओं से गृहस्थ के कर्तव्यों का पालन करने के लिए मुझको तेरा दास किया है।' गोविन्द गृह्यसूत्र (२।२।१६) में भी पारिवर्धन की विधि में यह मंत्र पढ़ने का वर्णन है।

इन मंत्रों के लक्ष्य से स्पष्ट होता है कि हिन्दू विवाह के क्या अर्थ हैं। इनमें पति पत्नी से कहता है कि मैं तुझे गार्हपत्य या सप्तलोत्पति कपी गृहस्थ के प्रधान कर्तव्य के लिए ग्रहण करता हूँ, तू अग्निपूर्वक मेरी पत्नी है। सप्तलोत्पति धर्म है और अतः अग्नि के पावन के लिए तू मेरी पत्नी बनी है, भोगविलास या कामवासना की पूर्ति के लिए पत्नी नहीं बनी है। पति का दूसरा मुख्य कर्तव्य यह है कि वह पत्नी और काम-वर्णों का शोका करे। परिवार का पालन पति का एक आवश्यक कर्तव्य है, वहीँलिए वह पत्नी को अपने द्वारा पोषित होने वाली (प्रियेयमस्तु पोष्या) कहता है। पति और

मानी मानसिक दृष्टि से एक और अभिन्न होते हैं और उनमें यह अभिन्नता इतनी अधिक होती है कि वर कहता है—किसी भी प्रकार का समष्टि व्यवस्था देने पर मैं जोरी से या असम कभी किसी वस्तु का उपयोग नहीं करूँगा।

संविधिविरुद्धता (येरे)—आवसायन के अनुसार वर अग्नि और वल के चक्के को अपनी दाहिनी तरफ रखता हुआ वधू से अग्नि की प्रशिक्षणा करवाता है। इन प्रशिक्षणाओं के समय वह "मनोऽव्यसिन्" (मैसिरीय साधना ३।७।११) के मंत्र का पाठ करता है। इन मंत्र का यह अर्थ है—"मैं यह हूँ, तू यह है; तू यह है मैं यह हूँ। मैं सुलोक हूँ, तू पुत्रिणी सोचा है, मैं सीम हूँ तू अन्तर् है, इन दोनों यहाँ विवाह करने लगताम उत्पन्न करें, इन दोनों एक दूसरे के प्रति प्रेम रखते हुए, उत्तम मनुष्य के तौर पर १०० वर्ष तक जीवें।" अग्नि की प्रशिक्षणा विवाह का आनन्दक अंग है। यह प्रशिक्षणा सामाजिक के समय और उसके बाद भी की जाती है। इन परिणामों की संख्या बार है। अग्नि के चारों ओर परिभ्रम करने समय कम्पा का भाई जनकजन लेकर उनके पीछे चलता है। अग्निकण्ड के चक्रों के अतिरिक्त इतना मन्वीर अर्थ यह है कि यदि कभी किसी सामाजिक कारण से प्रति-पत्नी में कल्प-ह्रासि प्रभावित होती हो वर के सामने इस सीतल जल की चट्ट छड़े बिनाप से काम मिले हुए समुद्र, समस्तमायक एवं सीतल मन्वीर से उस अग्नि की बुलावे का यत्न करेंगे। परिभ्रम की प्रथा अन्य देशों में भी पायी जाती है।

आवसादोहन—अग्नि प्रशिक्षणा करते हुए प्रत्येक चक्रे में वर वधू को गल्लर पर बहाता है और कहता है "कि इस पर वर, पत्नर की तरह स्मिर रह, मनुजों पर विजय पा, मनुजों की कुशल।" आवसादोहन की विधि का आगम यह है कि "हे वधू तू धात्री के समान बुद्ध हो, अपने पर आक्रमण करने वाले व्यक्तिक का बुझापूर्वक मुकाबला कर, उसे हरा और उसे इस पत्नर की तरह अपने दाहिने ओर के ओर मुखात्।" अपनी प्रतिष्ठा की रक्षा करने में तू युद्ध पर जा अभिमत मत रहना, अपने आप की इस कार्य में समर्थ समर्थ और इस कार्य के लिए अपने गरीर की पत्नर के द्वारा समर्पण करना।

सावाहीन तथा कैमनोवन—आवसायन के अनुसार वधू का भाई वर भाई के स्थान पर कोई दूसरा व्यक्ति बीबी को वधू की संजलि में डो वर डालता है, यदि वर का गले कमरबन्ध है तो तीन बार वधू की संजलि में बीबी को डालता है। इन समय वर यह शपथ मढ़ता है—"कम्पा से अर्चना देवता का यश किया है। अर्चना इस कम्पा को यहाँ (विपुगुह) से मुक्त करे, यहाँ (मतिगुह) से मुक्त न करे। कम्पार्जों से दण्ड देवता का। यह किया, वह इस कम्पा को यहाँ से छुड़ावे, यहाँ से न छुड़ावे, कम्पार्जों से दण्ड देवता का यश किया, वह इस कम्पा को यहाँ से मुक्त करे, यहाँ से मुक्त न करे।" इन मंत्रों के साथ वधू की संजलि को बिना कौनसे वर बीबी की हवि आलता है, अग्नि की प्रशिक्षणा किने बिना। बीबी वर वधू तीन घण्टे बीबी की आहुति देता है। इसके बाद वह वधू के

बायीं की दो सटीं को मढ़िने सेही है तो सोसता है। बाहिनी अट को ७८० १०१५५१२४ के मेल से तथा बायीं अट की 'मैती मुकुटामि' (७८० १०१०५१२५) के मेल से जोसता है।^{१०}

पारम्परिक गृह्यसूत्र में आजाहोम के सम्बन्ध में यह बात विशेष बतायी गयी है कि लाजा में बायीं के पसे की भिजा देने चाहिये। आपनपापन गृह्यसूत्र के धर्म के प्रतिरिक्त ज्ञाने की मंथी का भीर विघात किया है। इनका यह अभिप्राय है कि मेरा पति आपनमान् हो और मेरे माई-बापु बचें। हे पति, मैं तेरी समृद्धि करने वाली हूँ जो लायी को अग्नि में जगती हूँ। मेरा और तेरा जो अनुपाम है, अग्नि देव उसको अनुपति दे।^{११}

३. बायीं की हथि के साथ जो मंगल पड़ जाती है, समते यह स्वप्न हो जाता है कि बायीं की बिधि को यहाँ विशेष उद्देश्य से किया जाता है। धान के पीसे भिन्न प्रकार एक स्थान से उखाड़े जाकर, दूसरी स्थान पर बोये जाते हैं, उसी प्रकार कच्चा पितृगृह में वह चुको के बाद अब पतिपुत्र में वृद्धि के लिए तैयार हो रही है, यह इसके लिए मंगलमय हो। लाजाहोम के एक मंत्र ७८० १०१५५१२४ में पुरोहित कहता है, हे बधू, तुझसात तेरे पिता से भिन्न धर्म-विषय के बात से तुझे बांधा था, मैं उस बाध के तुझे मुक्त करता हूँ। हे बधू, तुझे उपकारित कर पुत्र के स्थान (पति के घर) में पति के साथ रहता हूँ। दूसरे मंत्र ७८० १०१५५१२५ में वह कहता है कि हे बधू, मैं तुझे पितृगृह से मुक्त करता हूँ, यहाँ (पतिगृह के साथ) तुझे स्थिर बनाता हूँ ताकि यह बधू उत्तम तुझी और सीधाय वाली हो। लाजाहोम या इससे मिलते-जुलते रिवाज, किर्क वर-बधू वर धान की धीने या फल बँके जाते हैं, मंगल भिन्न अर्थ जातिधर्म में पाये जाते हैं। पुराने ब्रह्म में बधू जब वर के घर में प्रविष्ट होती थी और अग्नि की प्रविक्षा करती थी तो एक वर खमुर, अजीर भावि फल वरकाये जाते थे। पीन में तथा कई स्थान देशों में तो यह रिवाज था। कृषि में अम्बरी वर गेहूँ वरकाया जाता था। ईश्वर में बाबल के सिवा अग्न्य अग्नी का प्रक्षेपण होता था। चर्च से भीर वर आते ही बधू के सिर पर गेहूँ के बाने डाले जाते थे।

लगावाराधियों ने इस प्रथा का उद्देश्य समृद्धि माया करना, लालन प्रशस्त करना, बधू के लिए पतिगृह को सुखमय बनाना, बधू को बुरी वृद्धि से बचाना आदि अनेक कारण बताये हैं। किन्तु वैदिक लाजाहोम का उद्देश्य तो उपर्युक्त मंथी से स्पष्ट है (वे० शा० हि० सं०, पृ० १२३-२५)। मग्न बधू के लिए पति के महीन मुख में लिबास को समृद्धिपूर्वक और सुखमय बनाना है।

४. इस आर्मुपकृते लाजावापयितका। आपनपापनसु से प्रतिरेमता में अक्षर्य। इस-
लाजावापनपापनसु समृद्धिकरणं तव। मग्न मुखे च सौमन्यं लक्ष्मिस्तु मय्यता-
नियं शक्या। पहले मंत्र के लिए वे० अथर्व० १५१२।५३।

सप्तपदी—साजाहोम के बाद विवाह की सप्तान्त महत्त्वपूर्ण सप्तागदी विधि प्रारम्भ होती है। घर बधू को पुर्वोत्तर दिशा (अपराजिता दिक्) में सात कदम में जाता है और प्रत्येक कदम के साथ यह वे वचन कहता है^४— (१) अन्न के लिए एक कदम उठाने वाली हो, (२) दान के लिए दूसरा कदम उठाने वाली हो, (३) ममता के पोषण के लिए तीसरा कदम^५, (४) आत्मत्वमम होने के लिए चौथा कदम^६, (५) सन्तान के लिए पाँचवाँ कदम^७, (६) शत्रुओं (विषम पराजित या वीर्य जीवन) के लिए छठा^८, (७) सूर्य के लिए सातवें के लिए सातवाँ कदम उठा। सूर्य के अनुकूल चल चलने वाली या मेरा अनुसरण करने वाली हो।^९ हम बहुत से गुणों का प्राप्त करें, वे शत्रुओं की आयु तक पहुँचें।

सप्तपदी विवाह का महत्त्वपूर्ण अंग है। इसमें घर की गृहस्थ के आकस्मिक कर्तव्य आता है। गृहस्थ में सबसे पहले अन्न की प्राप्ति के लिए दान करना पड़ता है, अन्न आर्ति के अभाव में धर्म कायें ही बसा, जीवन साक्षात् का निर्वाह कठिन हो जाता है। अतः सबसे पहले अन्न आवश्यक है किन्तु वह ऐसा होगा चाहिए जिससे कभी भी भय, दुष्टि और घाति न मिले। इसके अतिरिक्त गृहस्थ को धन के लिए भी दान-दान होना चाहिए और वह धन मुख्यतः अन्न के नाम पर हो। ये बातें पहले घर में ही कही गयी हैं, पाँचवें पग में गृहस्थ के मुख्य शत्रु सत्प्राप्तपादन की ओर संकेत किया गया है। छठे पग में सब कार्यों को निरमयपूर्वक समर्थ पर करने का संकल्प है और सातवीं प्रतिज्ञा सबसे महत्त्वपूर्ण है कि पत्नी पति की सभी या मित्र बनकर रहे।

मूर्धाभिषेक (करनक्ष के छिद्र पर पानी छिड़कना तथा पूर्वभिधि की समाप्ति—) सातवाँ पद पूर्ण होने पर दोनों के सिर मिलाकर आकार में उनमें सिर पर पानी के थड़े से पानी छिड़कता है। बधू को उस रात को ऐसी बाह्यणी के घर रहना चाहिए जिसका पति और पुत्र जीवित हों (आश्वलायन गृह्यसूत्र १।७।२०-२१)। यह नियम उद्यी दशा में लागू होता है जब घर दूसरे भाग का हो और बधू को उसी रात अपने घर न ले जा सकना हो। आश्वलायन गृह्यसूत्र (१।८।१२) व गोविन्द गृह्यसूत्र में भी यह विधि पायी जाती है। पारस्कर 'आपः धिधानः, आपो हि ध्याः' 'मन्त्री के साथ इस विधि को करने

^४ सप्तपदी के पाँच उठाने के विषय में गो० गृ० सू० (२।२।१२-१३) में यह विशेष विधान दिया गया है कि बधू पाठ उठाती हुई पहले दाहिने पैर उठाये और बायें पैर (वक्षिणेन अक्षम्य सन्नेनानुक्रमतः)। धर जसे यह कहें कि शाये पैर से पहले बायाँ पैर उठा उठा (धः सन्नेन वक्षिणमतिथामेति सूत्रात्)

^५ 'सा माभ्युद्यता भव। पुत्राभिव्यक्तहै अहंते सन्तु करनक्षका' यह उपर्युक्त शायो वचनों की टीका है और उनमें से प्रत्येक के बाद पढ़ा जाता है। पारस्कर गृह्य सूत्र (१।८।१२) इस वचन के साथ 'विष्णुस्वा नमः' के आख की वृद्धि करता है।

का आदेश देता है। पार० के टीकाकार जगन्नाथ के अनुसार जब छिड़कने काया बर, आत्मनाथन गुह्यपूज के टीकाकार के अनुसार आचार्य और गोपिन गुह्यपूज के मत में पानी का बड़ा घंटाना बाला होता है।

सूर्यदर्शन व हृदयदर्शन—पारस्कर गुह्यपूज के अनुसार वस्तुत्वेन और छुद-
दर्शन के बीच में सूर्यदर्शन और हृदयदर्शन की दो विधियाँ और हैं। पारस्कर गुह्य-
पूज (१।७।८) में लिखा गया है—इसके बाद घर बधू को 'नम्यसूर्यदर्शित' (पृ० ७।९६।
१९, पृष्ठ० १६।२४) मंत्र के साथ सूर्य दर्शन कराये। सूर्य दर्शन के समय घर-बधू पात्र
सकल करने हैं कि वह भी सर्वे तक देख गति सम्पन्न रहें, १०० को तक दिवें, १००
को तक भक्षण और शशी की मन्त्र से मुक्त हों, भी सर्वे तक महीन होकर रहें और
१०० को गे अधिक भाव मुक्त के तब कर दें।"

हृदयदर्शन में (पा० पृ० सू० १।८।७) घर बधू के हाथें कंधे पर ले अपना हाथ
हाथ ले आते हुए उससे बधू के हृदय को स्पर्श करते हुए "भय करो ते हृदयं ब्रह्मायि" मंत्र
का पाठ करता है। पूरे मंत्र का अर्थ इस प्रकार है—'हे बधू, मैं तेरे हृदय की अपनी
धर्म के अनुकूल धारण करता हूँ। मेरे धर्म के अनुकूल तेरा धर्म रहे। तू अपना
धर्म से भरी सेवा कर। इसका का धर्मन करने वाला धर्मशाला मुझे मेरे लिए
विमुक्त करे।"

हृदय स्पर्श के बाद घर बधू के दाहिने पर हाथ तबकर नीची में 'सूर्यमन्त्रीरियं
बधू' के मंत्र द्वारा पढ़ करता है कि इस कटवाकराग्री बधू को आजीवार सेकर माने-
माने कर जाती। आत्मनाथन गुह्यपूज में इस विधि को सूर्यदर्शन के बाद लिखा है,
वास्तव में यह पहले हीनी चाहिए, क्योंकि हृदयदर्शन के बाद गहरी विधि समाप्त हो
जाती है। आत्मनाथन गुह्यपूज अन्य क्षेत्र के बाद पूर्वविधि की समाप्त कर देता है और
कहता है कि ये हमारे धर्म को बाते हुए रात की आशुता के घर में छुड़ें।

पारस्कर इसके बाद बधू को मुद्रित घर में बिठाने तथा अपनी धार्मिक में
प्रवर्तित भय विभिन्नों को करने का आदेश देता (१।८।११।१३)—ये धर्म के लोगों,
धूर्तों और सिद्धों द्वारा कही गयी बातों का पालन करें, क्योंकि विवाह में और सम्मान
में धर्म वालों के धर्म की प्रमाण भागना चाहिए, ऐसा कृति में कहा गया है। इसके
बाद घर बधू हाथ होने पर आचार्य की भी का, अग्रिम होने पर धर्म का, वीर्य होने
पर बाँधे का ध्यान करें।

सूर्यदर्शन—जब बधू सकलगी और कर्त्तव्य को देखे तो वह बधू को कि मेरा
पति जीवित रहे और मैं सम्मान प्राप्त करूँ। सूर्यदर्शन विधि को आत्मनाथन गुह्यपूज
की अपेक्षा पारस्कर और गोपिन गुह्यपूज में अधिक स्पष्ट किया है। पा० गु० सू०
(१।८।१९) के अनुसार घर सूर्यदर्शन होने पर बधू को सूर्यदर्शन कराता है और वह कहता
है कि "हे सूर्य दे, मैं तुझे निम्न धर्म विवर देकर हूँ। तुझसे धर्म में स्थिर रहने वाली

वर वधू को अपने साथ वर में प्रविष्ट करायें। इस मन्त्र का मर्म इस प्रकार है—“(हे वधू) इस पति-कुल में सन्तान के साथ तेरा सुख भूख बढ़े। इस वर में तू गृहस्त्री के कार्यों के लिए भया आचरक रह। तू इस पति के साथ अपने शरीर का संस्कार कर, पुत्रावस्था को प्राप्त होंगे हुए, तुम दोनों पति-वली सामगोष्ठियों में बोलने वाले होगी।” इसके बाद (समिदाओं से) विवाह की शक्ति को प्रदीप्त कर पश्चिम दिशा में बैस का चर्चापन बिछाये। उससे दाएँ जाने हिले की ऊपर रखे और उसकी गर्दन पूर्व की ओर रखे। वधू उस स्थान पर बैठ आय और वर के हाथ को पकड़ ले। वर वार चूमाओं से वार आहुतियाँ दे। ये वार आहुतियाँ ‘मा नः प्रणां जनयतु’ (१०।१४।३३-३६) आदि वार वाली होनी हैं। इनमें गृहस्थ का आचरण और कर्त्तव्य प्रतीति अभिव्यक्त हुए हैं। इन मंत्रों का अर्थ इस प्रकार है, “हे वधू प्रजापति तुम्हारी सन्तान को उत्पन्न करे। अर्थात् देवता आराधना तक जीने के लिए तुम समर्थ बनोगे। हम प्रसन्न प्राण करें। मनुष्य और वीर्यों के लिए सुखकर हों। पति का हृदय न करने वाली वधो प्रामः मिथ दृष्टि वाली, तू बहि को प्राप्त हो, सब वधुओं के लिए प्रसन्न करने वाली उत्तम मन और तेज वाली, वीरों को उत्पन्न करने वाली, देवर को शासन करती हुई, सुख वाली हे वधू, तू हम मनुष्यों व हमारे वीर्यों के लिए प्रसन्नकारीणी हो। हे ऐश्वर्ययुक्त वर्षा वर, तू इस वधू को उत्तम पुत्र युक्त और सुन्दर प्रीत्यय वाली बना। इस वधू में सब पुत्रों को उत्पन्न कर (जीवित नहीं)। हे वधू, पति को ही ११ की पुत्र उत्पन्न। हे वधू, तू स्वयं के लिए सम्पत् प्रकाशमान या राजी हो, मात, नव व और देवों के साथ राजी बनकर रह।”

फिर वर ‘विश्वेदेवाः’ (१०।१४।४७) मन्त्र के साथ कुछ वही जाने और दाकी वही वधू को दे दे वषट्का पठते रहे हुए की कीवह अपने तथा वधू के हृदय पर लगाये। ‘विश्वेदेवाः’ मन्त्र का मर्म यह है—सब देवता हमारे हृदयों को भिजाये, उन्हें संयत करें, वायु देवता तथा उत्तम उपवेश करने वाला अस्ता हन दोनों का शीघ्र सम्पत् प्रकार से धारण करायें।” यह विधि वर-वधू के वभिन्न या एक होने को सूचित करती है।

जिसराजस या विवाहोत्तर संवन—आयुष्मायन (१।१।१०।१५) के अनुसार इससे बाद पति-वली वार^१ और लवण ग कावे, ब्रह्मचारी रहें, आयुष्म न धारण करें और जमीन पर सोयें। विवाह के बाद ३ या २ रात तक इस तिथि का पालन करें वषट्का कुछ आचार्य एक अर्थ तक वृत्त नियम के पालन का उपदेश करते हैं। वे आचार्य

^१ वार का अर्थ आयुष्मायन के टीकाकार मारयण ने उत्पन्न, पुंग, मनुष्य आदि कावे भिजा है। मनुष्य (हिरण्यकेशी मुद्राग्र १।१।१) वाली द्वारा वने कुछ आदि को वार कहता है। हरवत भाष० ख० पु० (२।६।१२।१९) में पुंग में वाली लट के वाली वधू पुंग जाति को वार समझता है।

कहते हैं कि इस प्रकार एक श्वशुर जैसा पुत्र उत्पन्न होना : इस प्रकार बात पूरा करने पर हर पूर्ण वृत्त (१०।८२) को जानने वाले को बहू के बस्त्र का दान करे, बातचीत को बान दे तथा उनसे स्वस्तिवाचन का वाद कराये। आश्व० सू० सू० की अन्तिम विधि का पारस्कर गृह्यसूत्र (१।८।२१) में भी संमर्पन किया गया है।^१

अन्य विधियाँ

आत्मवायन और पारम्पर की इन विधियों के अतिरिक्त अन्य सूक्त ग्रन्थों में कुछ और विधियाँ भी पायी जाती हैं। इन विधियों में निम्नलिखित विशेष रूप में उल्लेखनीय हैं :

१. **वर प्रेषण**—इस विधि के अनुसार लड़के के बाता-पिता अपने नईके के लिए उपयुक्त बहू चुनने के लिए कुछ व्यक्तियों या मित्रों को भेजा करते हैं। आश्वेय में सोम के लिए अश्विनी देवताओं ने बहू चुनने का आदेश किया था (श्रु० १।०।८३।६)।

२. **घड़ी विवाहोत्तर**—संघर्ष की व्यवस्था का उद्देश्य किया गया है। इस विचार में गृह-पुत्र इसके अतिरिक्त कुछ नहीं कहते कि इससे श्वशुर का पुत्र रहने वाली सम्मान होगी। बतस्या० का० सू० और आश्वयन के परिचयी श्रमर जो गृहपुत्र की इस विधि का समर्थन करते हैं। उनका कहना है कि विवाह में संयोग से नष्ट हो गयी-पत्नी को पुनः रूप से आत्मिक अनुकूलता प्राप्त कर लेनी चाहिए। इस अनुकूलता को प्राप्त करने के लिए यह कार्य पशुता है, इसका समान पर भ्रष्ट प्रभाव नहीं पड़ता। बतस्यायन कायसूत्र २।२।६ कहता है कि स्त्रियाँ कुसुम की तरह सुकुमार होती हैं, उनमें उपक्रम बहुत सुकुमार होना चाहिए। जबबंसी स्त्रीयों से कई बार उन्हें शिखरों पर के लिए घीन सम्मेलन से मुक्त हो जाती है, अतः आत्मवायन १० दिन तक श्वशुरों को भोजन करने की सलाह देता हुआ कहता है कि इस समय वह कन्या के पास जाये, उसे विनम्रता से सम्मान दे, किन्तु बात बग द करे। भगवतीमध्यम (७ व संक) में सुदूरस्थित ने इस नियम का भंग करने के लिए मन्त्र को भर्त्सना की है। आधुनिक विवाहसाली वैज्ञानिक ज्ञान विवेक ने Ideal marriage नामक ग्रन्थ में आत्मिक अनुकूलता पर बल दिया है (अध्याय ८)। आत्मवायन कई आश्वियों में विवाहोत्तर संबंध कई विविध कारणों से किया जाता है। महास के अनुसार, कन्या, कुछ दुःखों का भोग करती है, अतः तब संयोग नहीं करती। उनमें एक साल में एक परिवार में तीन बहियाँ अलग समझी जाती हैं। वे इस दुर्भाग्य को दूर करने के लिए, संघर्ष सम्मेलन सम्मते हैं। अन्तरिया एक बहूने तक यह देखने के लिए संघर्ष रहते हैं कि कहीं यही दर्शनी हो नहीं है (सं० रि० ई० १६११, अध्या १, भाग १, सू० २६१)।

साक्षात् ० गू० सू० (११६११-४), श्री० गू० सू० (१११११४-१५), माप० गू० सू० (२११६१११-२३०) में इस विधि का वर्णन है। इसके का विधान ब्रह्मदेवता के लिए स्थितियों को धरने से होता हुआ, ऋ० १०१५१२३ का पाठ माना था, जिसका अर्थ है—“जो देवों, वे मार्ग लिखक और तरल हों, जिन मार्गों में हमारे धर्म का पला के धर जाते हैं; अर्थात् और भग्न हमारा अच्छी तरह नेमक करें।”

आजकल हमें मने ही यह गरिपाटी विधि का प्रतीत हो, किन्तु प्राचीन काल में यह पाठ बहुत बारण था। वर्तमान में कुमारसम्भ (११२४-२६) में इसी मन्त्र को विनाया है। विध और पार्वती एक-दूसरे के साथ में करते हैं किन्तु पार्वती कहती है ॥ मुझे प्राप्ति करने के लिए मेरे पिता हिमालय से प्रार्थना करें। जिसकी सफलता तथा अन्त्यर्था की अपना हूत बनाकर हिमालय के पास भेजते हैं, उनकी प्रार्थना पर हिमालय विध की के साथ अपनी कथा का व्याहृत के लिए तैयार हो जाते हैं (कुमारसम्भ १६४ मं)। बाण ने अभी मती में, इसी मन्त्र का उल्लेख किया है। मनुस्मृति के हूत मन्त्राकारधर्म के पास उक्त उद्देश्य से जाते हैं कि राजा अपनी कथा राज्य की का प्रहर्षण से बिराह करे।^{१०}

बीह साहित्य में बर-प्रमाण के कई मनोरंजक उदाहरण मिलते हैं। आधुनिक के नेट नगर को अपने पुत्र पूर्णवर्धन के पुत्र होने पर उसके लिए अर्घ्यक वधू काजने की आधुनिक भेजने गये। से स्थिति अन्त में साकेत पहुँचे। उन समय साकेत की बहुत-सी संधारण नगर में बाहर उत्सव मनाते सभी दुई-ती, इसी समय वर्षा होने लगी। कथाएँ अपने कीमती कथनों की भीमने में बघाने के लिए दी-कर नगर में जाने लगीं। किन्तु एक कथा सबसे अन्त में बड़ी सन्धर्भित में बनी जा रही की। नगर के द्वार पर कई हुए नगर के स्थितियों में उससे यह मन्त्रा किया—“कथा तुम अभी से बड़ी हो गयी हो कि दी-दी-दी चले रही हो” ? कथा ने बड़ी बुराई से उत्तर दिया कि “मुझे साक्षियों के भीमने की चिन्ता नहीं, मेरे घर में बहुत-सी साक्षियाँ ॥ किन्तु यदि वर्षा में फिसलकर मेरा कोई अंग खराब हो गया तो बिवाह में विफल होगी।” दूसरा ने साक्षियों ने उसे ही अपने स्थायी के पुत्र के लिए उपयुक्त वधू समझा (देखिए विद्यासाधन, अर्घ्यसंनि० म० क० ११५२)। किन्तु इससे भी अधिक मनोरंजक कथा गिप्स की प्रायवक की है। गिप्स की विध की वधू बिवाह नहीं करेगा। किन्तु माता-पिता ने उसे बिवाह के लिए बहुत धैर्यवान किया। अन्त में उसने उस परेशानी से अपने के लिए सोने की ॥ सुन्दर स्त्रीमूर्ति समझी और यह कहा कि यदि इस मूर्ति वैसे कोई सुन्दरी मिले, सभी मैं व्याहृ करेगा। माता-पिता

१० **हर्षचरित**—तोमने च दिवसे प्रहर्षणः कथा प्रार्थितुं प्रेषितस्य पुत्रागतस्यैव प्रयागवृत्तपुस्तकस्य **हर्षराजमुत्तमस्य** पुत्रिपुत्रागतस्य अयागतः ।

ने बधू को बुझने के लिए अपने बावली भेजे। अन्त में वे बावली सुन्दर लियी की खान मज्ददर (स्यामकोट) में पहुँचे और वही के भाल पर भूमि रखकर स्नान करने लगे। इसने वे वहाँ एक दासी बावली और उसने भूमि को अर्पण मारते हुए कहा "तू जितनी बेचनी है वो यहाँ बड़ी है।" वास्तव में उन्हें इस भूमि से अपनी वास्तविक की बहकी का भ्रम हुआ था। गिण्टी के जादूधियों में यह देखा और वे समझ गये कि जिसकी सहाय में वे मिलने हुए हैं, वह उन्हें निलम्बी। स्वर्णमूर्ति सद्गुण सुन्दरी महा कारिमावली ने अन्त में पिण्डी बावली की बाड़ी हुई (अंशुल विचार अ० क० १५।१।११, अ. वि. अ. क. १।१।४)।

माथीय का मातृ-विवाह—मातृकम एक विधि का वर्णन महत्त्व है, किन्तु गृह्यसूत्रों में वे केवल ११० सू० सू० (१।६।१२-१३) इसका वर्णन करता है। मातृ-विवाह का प्रकार बड़े के साथ-साथ मातृकम का महत्त्व बढ़ता गया। जिस प्रकार मातृकम कई जातियों में तन्त्राज उत्पन्न होने से पहले ही वे मातृकम अपनी कन्याओं का शास्त्रान्तरण करने हेतु एक-दूसरे को उदाहरण पूर्वक मध्यम में भी मिलते हैं। मातृकी-विवाह (१ भ अंक) में मातृकी और मातृक के पिता भूमिपुत्र और देवराज ने अन्त में अपनी कन्याओं के मातृकम का निष्पन्न कर लिया था। त० २० वा० ने मातृकम की मातृकीय विधि का अर्थ विस्तार से समझा किया है, किन्तु मातृकम मरुत के अधिकार का नाम है यह विधि विवाह के लिये पर होती है।

विवाह का मुहूर्त—विवाह एक अत्यन्तपूर्व आधिकारिक इत्यर्थ है और उसे विशेष व्यवहार कर किया जाना चाहिए। यह विचार बहुत पुराना है, अ० (१०।६।१३) में मातृकम मातृ में अर्पण का वर्णन है। मातृकम अथवा गृह्यसूत्र (१।४।१-२) विवाह के काल में विधाय में अपनी सम्पत्ति देता हुआ कहता है कि उत्तराधिकार, वृत्त वत्त और कार्यवाहकत्व मज्जत में, नील, उपनयन, मुक्कन और विवाह संस्कार करने; इसके साथ यह कुछ लोगों का मत प्रकट करता है कि विवाह हर समय हो सकता है। इससे बात हीना है कि अन्त समय शुभ मज्जती का विचार बहुत अधिक दृढ़ नहीं हुआ था, किन्तु बीरे-बीरे हिन्दू समाज में यह विचार अन्त तक बढ़ने लगा। गोपिनाथ गृह्यसूत्र कहता है कि पुष्प मज्जत में विवाह करना चाहिए।^{११} किन्तु दूसरे सूत्रकार इस काल का निश्चित निर्देश करते हैं (बीषा० सू० सू० १।१।१३-२१, वा० सू० सू० २।६।१३)। मातृकम (३।३) की दो यह सलाह है कि जो यह चाहता है कि उसकी मज्जती वत्त की श्रियता बढ़े, उसे स्वाति मज्जत में विवाह करना चाहिए। यह रोहिणी, वृत्तमिदा, उत्तराश्विनी भी उत्तम समयता है (मि० मा० गृह्यसूत्र १।४।३)। श्री रामकृष्ण का विवाह मज्जतीय वात्त उत्तराश्विनी मज्जत में हुआ था (वा० रामा० १।४।१३, १।४।१२४)। महाभारत (१।५।१६) में यह

^{११} श्री० सू० सू० १।१।१ 'पुष्पमज्जतम कारम् कुर्वीत'

का मन्त्रों के साथ विवाह अभिषेकता के नक्षत्र में हुआ, किन्तु द्रोणों के विवाह के विध्वंस में महाभारत ने इतना ही बताया है कि वह गुण विवाह था (१।५।३।२०) ।

अन्य विधियाँ—गृह्यसूत्रों में विवाह के लिए मन्त्र बताना (पारस्कर गृह्यसूत्र १।४), तान्त्रीयान्त और गुह्याह्वान (दीर्घामन गृह्य सूत्र १।१।२४), बधू को गहनाने, कपड़े पहनाने (आप० सू० ४।८ काठक सू० २४।४, पारस्कर सू० १।८), संगमसूत्र बाँधने (प्रतिशतबन्धन, मांका० १।१।२।६-८, कौ० सू० ७।१।८) की विधियाँ पायी जाती हैं। इन विधियों का उस समय निर्धार महत्त्व नहीं था, किन्तु मध्यकाल के भिन्नभेदकारों ने इनमें के अनेक विधियों को बहुत महत्त्व दिया है।

गृह्यसूत्रों में अति उपर्युक्त विधियाँ लगभग इसी रूप में अंकित थीं जाती हैं, प्रत्येक धार्मिक विवाह में हीम और धन्वपरी भाग्यफल होती है। वैवाहिक कर्तव्यों और व्याख्या की विलगी सूचक अभिव्यक्ति हिन्दू विवाह में हुई है, उसकी साम्य ही किसी दूसरे समाज के विवाह में हुई हो। प्रत्येक विधि एक निश्चित उद्देश्य में की जाती है और सब विधि के जान बूझे जाने वाले मंत्र में उस विधि के उद्देश्य एवं प्रयोजन का ज्ञान हो जाता है। विवाह की विधियों में कुछ तो घर गछू की अभिप्राय के सूचक हैं और कुछ विवाह के उद्देश्य एवं महत्त्व को बताती हैं। मन्त्री का उद्वाहण सुधयन्त्र और दूतरी का पाणिग्रहण, शायनरी और भूचक्रासन है।

रामायण व महाभारत की वैवाहिक विधियाँ

रामायण व महाभारत में विवाह-विधि के सम्बन्ध में किसी नई बात का उल्लेख नहीं है। श्री रामचन्द्र के विवाह में मुख्य विधियाँ सम्वाधान, पाणिग्रहण, भूशीर्षिक तथा अभिषेकण थीं। महाभारत में द्रोणों के विवाह में उपर्युक्त विधियों का पालन करते हुए हुए ने बहुत-सा दर्शन दिया है। महाभारत में विवाह की विधि का सबसे पद्युत्तम स्वयं कुन्ती का अपनी बहू को दिया गया यह वाणीर्वाह है—“इति कल्प्याणि, कित प्रकार इत्यादी मन्त्रों की, स्वाहा विवाहसु की, दमपत्नी नत की, नवा कुन्तेर की, वरगृहीती नतिष्ठ की, अकनी मारामय की पत्नी है, वीरो ही तुम अपने पति की पत्नी बनो। भरो, तू वीरो जीवन चाहे पुत्र उत्पन्न कर। बहुत सुख और शीघ्रमृत्यु के मुक्त हो, पतिव्रता बन, कतिपय, काम, वृद्ध, पुत्रों की सेवा करते हुए तेरा समय बीते। हे पुत्रवति, वृद्धी पर जो भरोते रहें, तू उनको प्राप्त कर। हे कल्याणि, तू १०० वर्ष तक जीवी रह।” (१।२०-१।२१-११), वर्तमान समय में विवाह की समाप्ति पर बोले जाने वाले सांगतिक श्लोकों में कुन्ती के उपर्युक्त आशीर्वादात्मक शब्दों का स्पष्ट प्रभाव है।

वैवाहिक आशीर्वाद, उप दे—कुन्ती के आशीर्वाद और वैवाहिक आशीर्वाद में बड़ा अन्तर है। वैदिक आदर्श में पत्नी को स्वसुरालय में रानी बनने का आदेश दिया था, कुन्ती के पत्नी के लिए पति के अनुकूल रहते हुए जीवन किताने का उपदेश दिया है।

हिन्दू कासिदास के समय तक यह आचरण ब्रह्मकुल ब्रह्म गंगा था। वैदिक युग की स्वाधीनता और तेजस्विता का विवाह के समय तक प्रतिबल पत्नी के पूर्ण आश्रमसमर्थन के रूप में परिवर्तित हो चुकी थी। कासिदास में शकुन्तला के प्रवीण में विवाह होने पर कथ के मुह से उसे यह आशीर्वाद कहसबाया था—‘गुह्यो की सेवा करो। शीघ्र की सहेली सम्पत्ति, प्रति द्वारा अपमानित होने पर भी कोप में उसके प्रतिशून्य आचरण भन करे, शेषको भर अधिक उदार हो। अपने माया पर बहुत जसिमाने करने वाली न हो। इस प्रकार युवतियों गृहिणी पद की प्रतिष्ठा को प्राप्त करनी है। इनके प्रतिशून्य आचरण करने वाली स्त्रियाँ कुल को पीडा देने वाली स्त्रियाँ की तरह होंगी।’^{१२} बौद्ध-शास्त्र के सुप्रसिद्ध विद्याकाव्यनि (ज० वि० ज० प० १।७।२) के चतुर्कोटी नामे वाली शिक्षा पर महा मनोहरक प्रकाश पड़ता है। विद्याका के पिता धनञ्जय सेठ ने अपनी कथा को यह उपदेश दिया था—“स्वशास्त्रालय में निवास करते हुए (१) भीतर की आत्मा बाहर नहीं ले जानी चाहिए, (२) बाहर की आत्मा भीतर नहीं जानी चाहिए, (३) देने हुए की देना चाहिए, (४) न देने हुए को देना चाहिए, (५) देते हुए नवा न देने हुए को देना चाहिए, (६) सुख से बैटना चाहिए, (७) सुख से आना चाहिए, (८) दुःख से बचना चाहिए, (९) अग्नि परिचरण करना चाहिए, (१०) भीतर के देवताओं को समझकर करना चाहिए।” पहले दो उपदेशों का अर्थ था कि घर के भीतर राजा आदि में जो गुण बात, प्रगट आदि पैदा होता है वह बात-आसियों से नहीं कहनी चाहिए। अपने घर में बाहर की बातें और अगले घर में नहीं जाने चाहिए। तीसरे-चौथे उपदेश का अर्थ यह था कि जो सगनी की चीजों से आकर मोटाते हैं वह नहीं मोटाते, उन सबको समझकर दे जान करना चाहिए। छठे से दसवें तक के उपदेश चतुर्कोटी नामे का मतलब है। चतुर्कोटी नामे का अर्थ है कि माता, समुद्र, आमी को भीतर परंपराकर उन्हें बिसासिमाकर स्वयं अपने पीछे भीज करना चाहिए।

कासिदास द्वारा वर्णित विवाह विधि

महाकवि काव्यो से और विशेषकर कासिदास^{१३} के ग्रन्थों से निम्न प्रकार के विवाह

^{१२} कवि० पृ० ५।१८ शुभकृत्य शुक्लकृत श्रियसङ्कीर्णित सपत्नीकते, यमुनिव-
कृतपि रोधशतया या स्व प्रसीयं गमः। यमुनिं सव रसिना परिचये भागे-
ज्जोतुलेकिनी, धान्येयं गृहिणोपयं युक्तयो भाषाः कुलस्वाध्यायः ॥

^{१३} कासिदास (२५०० ७।३९) ने विवाह के समय घर-चतुर्कोटी नामे को अन्य
स्त्रियों से युक्ति बजाकर छोटी से बड़े का बड़ा सुन्दर वर्ण किया है—

तपोरसगमिस्तारितानि कियस्ततापसिनिर्दिष्टानि ।

हृदिभ्यामावृत्तिरे शरीराभ्याम्यवरोमाणि किलोचनानि ॥ (२५०० ७।३९)

की विधि ज्ञात होती है। घर के बूढ़े कन्या के पिता के पास जाते थे, यदि कन्या का पिता विवाह के लिए तैयार हो जाता था तो विवाह के लिए एक गुप्त दिवस मिलत किया जाता था। बधू को घर की लंबा घर के माथे को देवमी बम्बों से बनी हुवि पंखाकाओं ('भीमांभुर्कः कश्चित्केतुमाश्रय' कु० सं० ६१३) तथा तोरणों से खूब सज्जामा जाता था। पति और पुत्र बान्सी निश्यां बधू का दुबो को साथ तथा देवमी वस्त्र से मृगहार कण्ठी थी। बधू का स्वाग फणसा आना था और बेबी में मुर्खभिमुख बिठा दिया जाता था। यहाँ उसके कैमां की बुबो से युक्त अष्टोद बधू का गुणों से बाधा जाता था, उसके अंग को मांहीचक्र से विधित किया जाता था, पैरों को महावर से रखा जाता था, कैमां में अंकन प्रत्यामा जाता था और अंगों में आभूषण धारण कराये जाते थे। माता कुशला और सता तिला द्वारा आई हुबो से काया का तिलक आरणी (७।२४) और उसके हाथ में मंगल हस्तद्वय बांधनी थी (७।२५)। बधू कुल देवताओं की प्रणाम कर पतिव्रता दिवसों की चरमबन्धना कर, जगत् काशीबोध मन्त्र आरती थी। बूझों का भी हस्ती तरह सजामा जाता था। बाटीर में काभूषण पहनने जाते थे और भक्तक पर हृदिताल तिलक लगाया जाता था (७।३२-३३)। बुधुव पहनकर बुझा बरातियों के साथ बधू के घर पर आया था। बरात के साथ प्राणाला भाई बजती रहते थे (७।४०)। बरते हुए घर के ऊपर जातक और चावर लंबाया जाता था (भाग० ह० ब०, २० ब० ७।१७)। बधू का पिता उसकी अगवाणी करता था। बाहुर की स्थिति बूझों की देखते हुए उस पर अक्षत भादि की बनी करनी थी। घर को महाब्र आगत पर बिठाकर रक्षपुष्प मधुपर्क और कपड़े (दुल्ल युग्म) दिये जाते थे। अग्नि भग होम करके पुरोहित घर-बधू की पाणिग्रहण विधि कराता था (२० ब० ७।२०-२१) पाणिग्रहण के साथ अग्नि की प्रदक्षिणा शमीप्रदक्षिणा विधित लाजाहीम (२० ब० ७।२५-२६) के साथ होती थी और पुरोहित कहता था (कु० ७।१३) "हिरत, अग्नि तुम्हारे विवाह कर्म में साथी है। तुम्हीं पति के साथ धर्मपूर्वक आचरण करवा आहुति।" उसके बाद पति-पत्नी को भूच दर्शन कराया था और पत्नी भूच की देखने के बाद कहती थी—"मैंने भूच दर्शन कर लिया है"। पति-पत्नी के मात्स्य घर बैठ जाते पर स्वागत उपर आश्रितारोपण (चामल का तिलक) करते थे। (कु० ब० ७।१८, २० ७।१८)। विवाह-विधि समाप्त होने पर घर-बधू को गटक भादि विद्यावार उमका अतीरंजन किया जाता था (कु० सं० ७।१९) और बाब में पति-पत्नी सने हुए मयनकम में प्रविष्ट होते थे। बाब में राध्याभी के विवाह का हर्षपरित के बधुन उच्छ्वास में बने विस्तार से वर्णन किया है, किन्तु उसकी तथा कातिव्रत के वर्णन में कोई अन्तर नहीं है।

मध्यकालिक विधियाँ

मध्यकाल के विधायककों में शीकिलकाचारों की रका करते हुए कई नई विधियों का विवाह में विधान किया। इनमें कुछ विधियाँ नीचे दी जाती हैं। ये विधियाँ

मीरभिलोचन, धर्मविष्णु, संस्काररत्नमाला आदि ग्रन्थों में पायी जाती हैं। इनमें से अधिकतर महाराष्ट्र में विशेष रूप से प्रचलित हैं।

आश्विनारोपण—असल निम्न दृष्टे हुए विवाह को कहते हैं। इस विधि में विधवा को भी या ब्रूध में बाई करके घर बधू के ऊपर फेंका जाता है अथवा उसका विधवा लगाया जाता है, अतः इसे आश्विनारोपण कहते हैं। रघुवंश तथा कुमार संभव में कानिद्वारा इसे विवाह की अंतिम विधि कहा है। किन्तु आजकल महाराष्ट्र में यह विधि विवाह होने में पहले की जाती है। एक तीर्थ (बाँदी आदि) के पास में कपड़े बाधल लेकर उन पर बाँझ दूध या भी डाला जाता है। घर, बधू की अञ्जलि में भी या दूध लगाकर उन अञ्जलि में अन्न काशन भर कर भी या दूध छिड़क देता है। घर की अञ्जलि की कोई भी व्यक्ति इस प्रकार भर देता है, फिर कच्चा या पिला उसमें दवा। गन्धक काथा की अञ्जलि की घर की अञ्जलि पर गन्धक हुआ 'कच्चा धारण्य वसिष्ठाः वासु शत्रुघ्नं वासु गृध्रं कौन्ताभु शक्तिः पुष्टिस्तुष्टिश्चास्तु' का पाठ करता हुआ बधू की अञ्जलि की उठाकर 'उमति' 'मगो मे कामः समुत्पत्तम्' का पाठ करता हुआ बाधल या अन्न घर के द्वार पर रखता है। २. 'कामः समुत्पत्तम्' का मंत्र पढ़ता हुआ अपनी अञ्जलि के अन्न बधू के द्वार पर डालता है। इस प्रकार घर-बधू तीर्थ-तीर्थ घर कच्चा, घस, घस, घस और जग, भी तथा प्रजा की तन्मति की धर्मता करते हुए अश्विनारोपण करते हैं, अन्त में घर अपने द्वार का एक पुष्प लेकर उसे ब्रूध या भी में आधाचित करके बधू के मस्तक में गिरा देता है। बधू भी इसी प्रकार घर का निमज्ज करके उसके गले में एक पुष्पलता डालती है। फिर घर कच्चा के गले में बांधा डालता है। घर बधू भी एक संयमसूत्र बांधता है और आश्विन पुरोहित द्वारा पूजा गयी स्तुतिपत्रों की दोनों के पादों के एक ओर में बांधता है। विवाह की विधि की समाप्ति तक यह गाँठ नहीं खींची जाती।

देरणी दान—देरणी दान की बनी टीकरी को कहते हैं। जब कच्चा विवाह के चौथे दिन पिता के घर से अपनी सुहराज जाने लगती है, इस समय कच्चा का पिता देरणी की बहुपुत्रक वस्त्र तथा अन्य सैंटों से भर कर घर की धातु की इस टीकरी का देरणी का दान करता है। पहले यह कच्चादान की सिद्धि के लिए इस संजयस के दान का संकल्प करता है। इसमें उक्त है : उद्देष्टुं यह है कि पति-पत्नी की प्रीति जमा-महेश्वर जीवी हो। इसे वेले हुए अन्न में वह कहता है—'इतने कर्म तक इस कच्चा की मैंने पुत्रवत् पाला है, अब आपके पुत्र के लिए देता हूँ। जब आप इसे स्नेहपूर्वक पालें।'

संगमपुत्रकवस्त्र—बधू के गले में संगमिक स्वर्णहार डालने का प्राचीन सूत्र ग्रन्थों में कहीं वर्णन नहीं है। पास्तकर (१११) का टीकाकार महाश्वर स्पष्ट रूप से कहता है कि पुत्रों में इस विधि के न पाने जाने पर भी बधू-घर संयमसूत्र और गले में माला धारण करें। सौनक, लज्जावन्धन (१५३३) यह कहते हैं कि संयमसूत्र धारण करना चाहिए। पुराणा विवाह आदि कुछ रहर हो, लेकिन आजकल घर और संगम

सूत्र विवाह का एक आवश्यक अंग बन गया है।

श्रीरक्षितक पुस्तक—संस्कृत शास्त्र में विवाह के पहले सम्पत्ति तथा सम्पन्नताओं की पूजा की जाती है। तस्कारकौस्तुभ (पृ० ७६६), तस्काररत्नसामा (पृ० १२४) तथा धर्मसिन्धु (पृ० ६१) गौरी तथा हर की पूजा का विधान करते हैं। गौरी तरङ्ग सं० की० (पृ० ७४६) में तथा सं० २० भा० (पृ० १४२) में दुर्गाजी की पूजा का विधान है। सं० की० (पृ० ७६६) के अनुसार कहा है कि कन्या का पिता आज की सीमा पर नाकर बनाने की आवश्यकता है (शिवान्त पुस्तक)। वे सब विधिपूर्वक सम्पत्ति में सम्पन्न होते हैं, और उनसे पूजा की जाती है।

२. विवाह—विवाह का अर्थ है—पुरुष और स्त्री के बीच की सम्बन्ध की जाती है। श्रीरक्षितक (पृ० ८८८) में वर्णित है कि एक पुरुष और एक स्त्री के बीच की सम्बन्ध की जाती है। इस विवाह में पहले विष्णु की स्मृति का नाम लिया जाता है और कन्या की मंगलशुभ के सम्बन्धित किया जाता है, क्योंकि मन्दिर में विधिपूर्वक विवाह करने वाले को एक लाभ में माना जाता है। उस समय पुत्र के पिता यह मानना करता है—“हे पुत्र, पुत्र कन्या ॥ गति और पुत्रों की तरह एक जीवन रखे।” विवाह की समाप्ति पर ब्राह्मणों को दान दिया जाता है। इस विवाह का निम्नलिखित (पृ० ३१०), तस्कारकौस्तुभ (पृ० ७४६) तस्काररत्नसामा (पृ० १२४) में भी वर्णित किया है।

सम्पन्न व शक्ति विवाह—श्रीरक्षितक (पृ० ८६८) में वर्णित है कि एक पुरुष के शक्ति के लिए इन विवाहों का वर्णन किया है। इनकी विधि सम्पन्नविवाह से मिलती है। पिता एक धूमि में सम्पन्न बसावे, गौरी, मन्दिर, पत्नी की पूजा करते यह कहें कि मैं श्रीधाम और पुत्र के लिए इस पुत्र कन्या की सम्पन्न के साथ विधिपूर्वक शादी करेगा।

इसके बाद वह पुत्र विवाह की तरह अपनी कन्या का सम्पन्न (पिता) से विवाह करे। इस प्रकार दोनों की सम्पन्न बनकर, अपनी कन्या का उसके साथ विवाह करे। विष्णु की यह मूर्ति कुछ वर्षों की बचपन अपनी शक्ति के अनुसार शक्ति, मन्त्र, चक्र, गदा से युक्त और शीतलरूप धारण करते हुए होनी चाहिए। उनको ऐसे समय कन्या एक मन्त्र पढ़ती है जिसका मन्त्र लिखा है कि “यह शक्ति सम्पन्न के पुत्र समूह का नाम करने के लिए और बहुत सी सम्पन्न की शक्ति के लिए मैं यहाँ विष्णु की अपनी शक्ति से बनायी हुई इस मूर्ति को कुछ देती हुई आज मैं इस वान के निष्ठाप हो गयी हूँ”। ब्राह्मण इस पर उसे ‘एवमस्तु’ का उपदेश करते और बाद में पिता उसका विवाह करे।

०४ की० वि०, पृ० ८६८

भारतीय पुराण विद्वानों के अनुसार

अर्क विवाह—सासनों में तीसरी स्त्री से विवाह करना निषिद्ध है, क्योंकि इसे अर्कजन्म माना जाता था। वीरमिश्रोदय (पृ० ८७६) ने मत्स्यपुराण में अर्कजन्म का अर्थ बचन उद्धृत किया था कि "वक्तिसिद्धि के लिए कभी भी तीसरी स्त्री से शादी न करे। सोह में या अज्ञान से यदि कोई ऐसी श्रादी करता है तो मायों के बचन के अनुसार वह मृत्यु में जाता है। इससे तत्पेह नहीं कि शरीरय ममी से यदि वह शादी करता है तो वह स्त्री विधवा ही जाती है, अतः चौथा विवाह करने के लिए, तीसरी बार अर्क (आक के पैर) ने शादी करनी चाहिये"।^{१२}

ब्रह्मपुराण तथा व्यास ने अर्कविवाह की यह शिक्षा दी है—महाभारत, अष्टम स्कन्ध और अर्कव्यास धारण कर उत्तम पुत्र्य और शास्त्राचार्य अर्क के पैर के पास आये। वहाँ मायों पात्र, मधुपर्क आदि विवाह की विधियों का पूरा करे और यह प्रार्थना करे कि 'हे त्रिमोक्ताजी, तब चोड़ों वाले, छाया सहित सूर्य, तीसरे विवाह में उत्पन्न होने वाले पुत्र का विचारण करो और पुत्र हो (वीरमिश्रोदय पृ० ८७७)। यह विवाह ब्राह्मण द्वारा अर्क या सूर्य की पुत्री के साथ किया गया समझा जाता है, उसके बाद चौथा विवाह करने में कोई बाधा नहीं माना जाता। निर्गमसिन्धु (पृ० १२८), सं० की० (पृ० २१६) तथा श्रीछायनलेखसूत्र २।५ में भी इसका उल्लेख है।

इस समय पंचाच में दोसे विवाहों का प्रचलन है। एक विधुर जब तीसरी या पंचाच के पहाड़ों में चौथी स्त्री से शादी करता माहता है, तो वे स्त्रियाँ उसको लिए बहुत मानी जाती हैं। अतः वह पहले (अर्क) आक से या किसी दूसरे पैर से शादी कर जाता है ताकि तीसरी या चौथी शादी में उत्पन्न होने वाले पुत्रों में बाधा न पड़े।

पश्चिमी पंचाच में ऐसी रीति में पुत्र्य की चोड़ से, अर्क पंचाच में पैर या पीछे, पैर और पूर्वी पंचाच में आक के साथ तीसरी शादी की जाती है। यह अर्थात् अर्क, अर्कों और अर्कियों में विशेष रूप से प्रचलित है। तीन की संख्या को बुरा समझा जाता है और यह विचार किया जाता है कि यह विवाह या पाप का चिह्न है। जैसे पहली पत्नी के मरने पर पुत्र्य ली जाता है कि दूसरे विवाह से उसकी सात्मा की विलेश पहुँचेगा, वह भूत या भेड़ बनकर इस विवाह को बराम करने का प्रयत्न करेगी। पहली पत्नी के भूत को खूब करने तथा ओछा देने के लिये ही उपाय किये जाते हैं—(१) दूसरी पत्नी के लगे में विवाह के समय मृत पत्नी का, छोले या चाँदी के धर्मे में लकीरों बिना बाँधा जाता है, ताकि वह समझ सके कि यह विवाह पहली पत्नी से हो रहा है। (२) दूसरी पत्नी को गुजरी, मरित या महुरी का उपाय महीनाया जाता है और यह कहा जाता है कि यह शादी कास्तिक पत्नी से नहीं अपितु गुजरी, मरित या महुरी किसी दासी से हो रही है। इसी

^{१२} की० मि० (पृ० ८७६) दूसरी वक्ति चोड़हैसहि या विवाह नबेह।

अनुप्रासिचिवाह्य तुल्यैर्कं समुद्धेतु ॥

सामग्रियों रखने के बाद भी यदि दूसरी पत्नी पर जाती है तो यह समझा जाता है कि पहली पत्नी की प्रेतात्मा ही उसकी मृत्यु का कारण है। इस प्रेतात्मा के प्रयोग से बचने के लिए तीसरी बार तीसरी स्त्री से शादी करने के बजाय किसी देव या मनु के साथ शादी की जाती है। माक या देव के देव की कपड़ों और बहुमूल्य रत्न आदि से सज्ज किया जाता है और घर उसकी प्रदक्षिणा (जाया या फेर) करके उसके साथ विवाह करता है और बाद में चौथी बार किसी मायावीय पत्नी का भागिद्वह्न करता है। पहिली पंजाब में भेड़ को खूब सजाया जाता है और घर विवाह में पहले भेड़ के साथ फेरें लगाए जाते हैं। यह विवाह की अन्य विधियाँ दीखता हैं, तीसरी शादी में ही ये विधियाँ आवश्यक लगती जाती हैं, चौथी में नहीं।

इसका कारण यह माना जाता है कि पहली पत्नी की प्रेतात्मा का दुष्प्रभाव अपनी या पत्नियों तक ही प्रभाव डाल सकता है, उसके बाद नहीं। कई बार काले कुत्ते या किसी दूसरे काले जानवर को चौथे विवाह में पहली प्रेतात्मा का दुष्प्रभाव रोकने के लिए देवी पर आया जाता है और उसके अग्नि की परिक्रमा करायी जाती है ^{१५}।

पंजाब में उपर्युक्त विवाहों में मिलती-जुलती एक प्रथा यह है कि यदि यह माना जाय कि किसी स्त्री को विधवा होना है, तो उस स्त्री को दूर करने के लिए कुम्भी-विवाह किया जाता है। पानी से भरे एक बड़े को सड़के की सड़क सजाया जाता है और सड़की का इस तकलीफ के साथ विवाह पूरा सम्कार किया जाता है। बाद में बसती पहुँचने के बाद पुरी विवाह विधि किये सड़की देखी जाती है। इस सम्बन्ध के विषय में यह सोचा जाता है कि कन्या का असली विवाह तो पहले से हुआ है और यदि पति पर कोई दुर्भाग्य या अप्रतिफल पड़ती है तो वह सब पर पड़ोसी, असली पति पर नहीं। कारण तो कि विवासियों में यह विवाह माया जाता है (पं० सी० रि० १९११ वॉ १ भाग १ पृ० २२४)। इस प्रकार के विवाह की कृत्रिम विवाह (Mock Marriage) कहा जाता है। यह विवाह अन्य बातों में नहीं पाया जाता है। ^{१६}

^{१५} पंजाब व संसद रिपोर्ट १९११, वॉ १, भाग १, पृ० २२४।

^{१६} हिन्दू समाज में कृत्रिम विवाहों (Mock Marriages) के कई अन्य विभिन्न उदाहरण- विष्णुसिंह—उत्तरी कनारा में बहुपत्नीयता विद्यमान नहीं है, यहाँ दूसरी शादी दूरी लगती जाती है। अतः जब कोई स्त्रीसिंह की मृत्यु के बाद में यह मन्त्रिणाओं करता है कि इस स्त्री की दो स्त्रियाँ होतीं, तो इसका अर्थ यह समझा जाता है कि पहली पत्नी पर आघात। यदि उसकी पत्नी की मृत्यु पड़ती है तो वह एक बड़े के देव के साथ शादी करता है और बाद में उस देव को काट डालता है। यह यह समझा है कि दूसरे विवाह की पत्नी के घर जाने के उसकी वास्तविक पत्नी की मृत्यु होगी (सी० रि० ई० १९११, पृ० २२४-२५)।

वाम्नाश का विचार

वाम्नाश विवाह को शास्त्रकारों तथा अधिष्ठेय सम्बन्ध बना देता है या नहीं, इस प्रश्न पर शास्त्रकारों में मतभेद है; किन्तु अधिकांश धर्मशास्त्रियों का मतान्वय यह होता है कि वाम्नाश होने के बाद विवाह सम्बन्ध उचित है, किन्तु आवश्यक नहीं। मनु-स्मृति (१।१६-७०) ने यह व्यवस्था दी है कि जिस कन्या का वाम्नाश नियम आदि पर, छतका पति मर जाय तो वह कन्या देवर के साथ शादी करे। मनु (१।७१) यह भी कहता है कि जिसकी व्यक्ति के साथ वाम्नाश करके बुद्धिमान् व्यक्ति वह कन्या को किसी दूसरे को सदे, दूसरे व्यक्ति को लगवा देता हुआ वह अनुसंधान भी शक्य था। मनु ने सर्वत्र वाम्नाश की अधिष्ठेय सम्बन्ध उत्पन्न करने का भाव नहीं माना, किन्तु भी छतने वाम्नाश करके दूसरे व्यक्ति के साथ अपनी कन्या का विवाह करने का भी बहुत विचार किया है। श्रुति स्मृति (२।८) ने यह विचार किया है कि "यि तुमे कन्या दूया, मै श्रेष्ठ कन्या भूय।" ऐसा निश्चय हो जाने पर जो इसका पालन नहीं करता, वह दण्ड का भागी होता है। "उपमन्वस ने 'बुद्धितत्त्व' में वाम्नाश कन्या के मरण पर उत्तम पिता और पति दोनों के घर में तीन दिन का अशौच माना है (अष्ट २, पृ. १२७)। कन्या की सदा बीवानी अवसर ने भी इस विचार में यह फैसला दिया था कि वाम्नाश एक अधिष्ठेय सम्बन्ध है।^{१५}

किन्तु यह विद्वान् ठीक नहीं जान पड़ता। यद्यपि अकारण दूसरी जगह विवाह करना बुरा है, तथापि माता-पिता कन्या का वाम्नाश करने से किन्तु इस प्रकार नहीं सोचते कि वे अपनी कन्या का विवाह किसी दूसरी जगह न कर सकें और वाम्नाश करने हुए पति के मरण पर उनकी संतुष्टि हेतु विधवा ही रहे। अतिष्ठ धर्मशास्त्र ने कहा है कि जब एक कन्या का वाम्नाश जल के साथ या बाँधी द्वारा पुष्ट हो चुका हो और उसका पति मर जाय और विवाह के भन्धन पड़े चले हों तो वह बुनारी पिता की ही रहती है, पिता संतुष्टि दूसरे व्यक्ति से शादी कर सकता है।^{१६} मनु (२।१२७) स्पष्टपटी से विवाह की पूर्णता समझता है। नारद (१२।२-३) का भी यही मत है, मतः यह स्पष्ट है कि विवाह को अधिष्ठेय बना देने के लिए वाम्नाश पर्याप्त नहीं है। पात्रकथन (१।१४) को वही तक कहता है कि कन्या यदि एक बार किसी को दी जा चुकी है और उसके बाद उससे शोधन कर मिल जाता है तो पहले घर को दी हुई कन्या को धर्मित ले ले। यह व्यवस्था मनु (६।१६-७१) के सर्वथा प्रतिबल है; किन्तु यह स्पष्ट है कि वाम्नाश को प्राचीन धर्मशास्त्रों ने विवाह का अधिष्ठेय सम्बन्ध उत्पन्न करने वाला नहीं माना।

^{१५} शेष—हिन्दू नॉ, पृ. ८६।

^{१६} स्मृति चन्द्रिका में उद्धृत पृ. २१६। अङ्गिरसा मरता या निवेतोर्ध्व लरो यदि।
न च मन्मोपरीता स्यात् कुमारी तिरुदेव तः॥

कई बार यह प्रश्न उठाया जाता है कि बान्धन भंग करने वाले को क्या बद-
अलत द्वारा अपनी कन्या का विवाह करने के लिए बाध्य किया जा सकता है। इस विषय
में पहले अवाधता के निर्णय स्पष्ट नहीं थे, किन्तु अब यह स्पष्ट हो चुका है कि बाधन
भंग करने वाले को अवाधत विवाह करने के लिए बाध्य नहीं कर सकती। १८७७ के
स्पेशल रिज्यूट एक्ट (Special Relief Act) के भाग २१ की धारा ४ के अनुसार
बाधन पर समझौता या सन्धि (Contract) अवाधत द्वारा अवरुद्ध नहीं
कराया जा सकता। यदि कोई पक्ष यह समझता है कि विवाह न होने के उसे कोई नुकसान
उठाना पड़े, तो वह दूरी पक्ष पर हर्षित का दावा कर सकता है।^{२०} इस प्रकार के
हर्षित के दावे छोटी अवाधता से वेक नहीं हो सकते।

बान्धन का लौकिक रूप

बान्धन की प्रथा का शास्त्रीय न कानूनी रूप देखने के बाद उसका रिवाजी
रूप देखना उचित मानी होता है। प्रथा में बान्धन को सगाई या कुबवाई कहते
हैं। पश्चिमी प्रजा में लड़के के सम्बन्धी कन्या के घर पर लड़क के विवाह के
लिए धार्मिक समारोह होते हैं, कन्या का पिता उसका पिछाई पत्र आदि से स्वागत करता
है, मंगल पूजन तथा गाना-बाज के साथ लड़के के सम्बन्धी उपहारों के साथ
मौत जाते हैं। अन्य प्रजा में पहले लड़के के घर से लड़की के घर पर भगुन (मिठाई
सख आदि का उपहार) भेजा जाता है और बाद में लड़की के घर से भी लड़के के घर
में भगुन जाता है और इसे ले जाने वाला पुरोहित लड़के के साथे घर लौटता जाता है,
और इस सम्बन्ध की घोषणा करता है। उत्तर प्रदेश, बिहार में बान्धन दिसका की
प्रथा के रूप में प्रचलित है।

एक बार बान्धन हो जाने पर उसे विशेष कारणों के न होने पर भंग नहीं किया
जा सकता। ये विशेष कारण लड़के का कोई असाध्य रोग या अंग विकार होता है।
कई बार सगाई का दूसरा रिश्ता करने के पहले कुछ ऐसी कियार्थ की जाती है जिससे
पहले रिश्ता का रद्द समझा जाय। धीरे रोज में ऐसी विधियों का १९०१ की प्रजा
अन्यगण रिपोर्ट (पृ० २१४) में भरीरजक वर्णन किया है—'बान्धन भंग करने
पर अवरुद्धी जारी नहीं करायी जा सकती; पश्चिमी प्रजा के किराये (अरोही)
में यह नियम है कि वे विवाह की रातों पर करते हैं - (१) निमिषध से— अपने कुल की
लड़की दूसरे कुल में इस शर्त पर व्याहते हैं कि वह कुल भी अपनी किसी लड़की को
हमारे कुल में देगा। इसकी सट्टा-सट्टा (निमिषध) कहते हैं। वहाँ सट्टा के तीन
शेरे हैं—(क) आर्षी साम—इसमें एक पक्ष अपनी लड़की को दूसरे पक्ष की एक

ब्रह्मी शीकर था। (क) जेज—इसमें दरस्तर तीन आन्ध्र एक साथ एकट्ठे मिले जाते हैं। तीन ब्रह्मियों के आदान-प्रदान का निश्चय होता है, (ग) भीम—इसमें एक दूसरे के साथ बार आन्ध्र एक साथ एकट्ठे मिले जाते हैं। इन आन्ध्रों को करने के लिए सब सम्बन्धी एक निश्चय स्थान पर एकट्ठे होते हैं। एक-दूसरे को अक-मियाँ देने का वायदा करते हैं। इसके बाद ब्रह्मी का पिता सक्के के पिता को कुछ तथा दूसरी मिठाई देता है, जो घर में बाँकर बाँट दी जाती है।

(५) आन्ध्र का दूसरा प्रकार लम्बे लेकर आदान करना है। सब ब्रह्म-संघा नहीं होता और न लम्बे लम्बे जाते हैं तो उस आन्ध्र को 'धर्मपता' कहते हैं। लम्बे बाँधी लगाई रख करती पर लम्बे बाँधित होने पड़ते हैं।^{११}

विवाह की आवश्यक विधियाँ

● विवाह संस्कार के सम्बन्ध में एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह है कि वेद विवाह के लिए कौन-सी विधियाँ आवश्यक हैं। हम यह देख चुके हैं कि गृह्यसूत्रों तथा विवाहकालों की विधियों में बहुत से भेद हैं। आश्वलायन गृह्यसूत्र तो स्पष्ट रूप से यह कहता है कि वह केवल सामान्य विधियों का उल्लेख करेगा, ऐसी बातों में किन विधियों की प्राधान्यिक समझा जाय ?

मनु ५:१५९ कहता है कि विवाहों में यज्ञ और होम तो केवल मंगल के लिए ही वांछित हैं कन्या के दान से ही पति का उस पर अधिकार हो जाता है। ५:३५ में भी उसने यही बात ब्रह्मपत्नी है। किन्तु कुल्लूक की यह व्याख्या ठीक जान पड़ती है कि मनु की वांछना में यहाँ केवल कन्या के स्वाधित्व की बसोभा ही अभीष्ट है। कन्यादान से उसके पिता का स्वाधित्व हट जाता है और पक्षिकर स्वाधित्व स्थापित होता है। इससे यह सही समझना चाहिए कि वह उसकी स्त्री ही नहीं। स्त्री, पति की पत्नी तो सत्त्वपत्नी पुरी होने पर ही बनती है।

मनु के अगस्त विवाहों की आवश्यक विधियों पर अपनी छान्वि स्पष्ट रूप से प्रकाश की है और अधिकतर स्मृतिकार उसी सहमत हैं कि अन्तर्गती होने पर विवाह की पूर्ण समझना चाहिए। "विवाहों की यह धारणा चाहिए कि पाणिग्रहण के मन्त्रों के द्वारा कन्या का पानिग्रहण हो जाना धार्मिक का कारण है सत्त्वपत्नी विधि पूरी होने पर धार्मिक की पूर्णता हो जाती है।"^{१२}

बाद विवाह के लिए पाणिग्रहण के मन्त्रों की आवश्यक समझा है (१२:२)

११ पं० टी० रि० १६१९, अंक १, पाल ५।

१२ मनु० ५:१२७, पाणिग्रहण का मन्त्रा विधि का प्रारम्भिक ॥

तेजा मित्र हूँ विजोया विभिन्नः सत्यमे परे ॥

किन्तु किसी विशेष विधि का निर्देश नहीं करता। मनु साधवसाधन स्मृति (१५।६०) कहती है कि विवाह के समय जब तक सप्तपदी नहीं होती तब तक विवाह पूर्ण हुआ नहीं समझा जाता। अमरस्मृति में कहा गया है कि अब द्वार, दान से या कान्दान से कोई कन्या का पति नहीं होता, बल्कि पाणिग्रहण संस्कार ॥ सप्तपदी के बाद ही वह उसका पति होता है।^{१३} स्मृतिभ्रंशिका तो यहाँ तक कहती है कि सप्तपदी से पहले पति के घर में पर भी पत्नी विधवा नहीं होती।^{१४} वात्स्यायन में सप्तपदी को इतना महत्व नहीं दिया, वह अग्निहोम या अग्नि की साक्षी को ही विवाह के अविच्छेद होने का प्रमाण मानता है।^{१५}

सर्वांगीण समय में अष्टाक्षरों से मारीचमर्मनाक्षरों का अनुसरण करते हुए विवाह में यश (श्रीम) और सप्तपदी को ही आवश्यक विधियाँ स्वीकार किया है।^{१६} १६५५ के हिन्दू कानून में धार्मिक विवाहों में इन दोनों विधियों को ॥ आचार को विवाह की वैध धिष्ठ करने के लिए पर्याप्त समझा गया है।

असर्वत्र कन्याओं के विवाह को विधि

यह स्पष्ट रचना चाहिए कि उपर्युक्त सब संस्कार और विधियाँ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य के लिए अपने-अपने वर्गों में ही विवाह करने के लिए हैं। मनु अपने वर्ग की कन्या से ही पाणिग्रहण संस्कार की व्यवस्था करता है, अन्य वर्गों की कन्याओं के साथ विवाह के लिए यहाँ विशेष व्यवस्था बतसादी नहीं है। श्रेष्ठ जाति (ब्राह्मण वर्ग) के पुरुषों के साथ विवाह होने के समय कत्रिया कन्या घर के हाथ के बाँधे छोर को ग्रहण करे, बीधा कन्या घर के हाथ से स्थित पीने (प्रतोष) का छोर पकड़े और गूदा कन्या घर के गखर का छोर पकड़े। मनु (३।४३-४४) वाज्ञं स्मृ० (१।६२), राज स्मृति (४।१४) में भी यही व्यवस्था देखी जाती नहीं है। गूदों की वेध भरतों का अधिकार नहीं है, जहाँ उनकी शादी में आचार मा कवि को ही परम प्रमाण माना जाता है। पुरुष-

१७ बोककेन बाला वा कन्यायाः परिनिष्कृतौ। पाणिग्रहणसंस्कारात् नित्यं सप्त-
मे पदे ॥

नि० होचपर्व ३३।५५-५६ लगीशामुद्रितंभावा दत्ता चोचकपूर्वकम्।

पाणिग्रहणसम्प्राप्त्यं प्रविष्टं चरतब्रह्म ॥ मन्वेना निविशता निष्ठा निष्ठा-
त्तापयो स्मृता ॥

१८ एवं च सप्तमपवाचनार्थं परिभेदुर्मरमेदपि न विज्ञातव्यमित्युक्तं मरति।

१९ वा० का० सू० १।५।११ अग्निहोत्रिका हि विवाहा न निर्गत्य इत्युक्तार्थेऽसम्यक्।

२० कुलात्मनश्च जगाम बार्हस्पती ११ य० २५३, मेकलं चरपुत्रं ब्रह्मण रंगाचारं पुन
१४ य० ४१८

रत्नाकर (पृ० ५७) में कहा गया है कि मूल का विवाह उस समय पूर्व समझना चाहिए जब कन्या घर के बापड़े के छोर को पकड़ ले।

विवाह संस्कार से स्त्रियों के संरक्षण की अभिच्छेदता

हिन्दू समाज में विवाह संस्कार पत्नी के निरूपित के साथ अभिच्छेद सम्बन्ध स्थापन करने वाला समझा जाता है। पुरुष की कुछ अवस्थाओं में पुनर्विवाह (अधिवेश्म) का अधिकार प्राप्त है।^{१२} किन्तु स्त्री का पारिवर्तन के साथ इस अवस्था में पुनर्विवाह करने का कोई अवसर प्राप्त नहीं है। मनु में इस स्थिति का समर्थन में दो युक्तियाँ दी हैं—(१) कन्या नाम देने वाले योग्य बन्धु हैं, पिता बन्धु या भाग एक द्वार ही विवाह करता है, इससे बाद उस घर धुंधरे या अशुद्ध हो जाता है। विवाह के बाद स्त्री काया नहीं रहती है। अतः व्याही गयी कन्या के विग्न मकर गलों पड़े जा सकते हैं।^{१३} मनु (७) २२५ की इस अवस्था का दुर्भारिणार्थ यह हुआ कि हिन्दू समाज में विधवाओं का विवाह मिलकुल सम्भ हो गया। मनु के विद्योत तथा वैवाहिक सम्बन्धों की विविधता का अन्त करने के उद्देश्य से विवाह संस्कार को अभिच्छेद माना भा, किन्तु बाद में विधवा विवाह विधेय के रूप में इस अवस्था से कुलका हिन्दू समाज को संगत पड़े। वर्तमान हिन्दू समाज किस प्रकार दलों की वीक्षण क्षति उठा रहा है, इसका उल्लेख आगे विधवा विवाह वाले अध्याय पृ० ६३६-५२ में किया जायगा।

अभिच्छेद हिन्दू विवाहों की अभिच्छेद ईसाई विवाहों से आत्मक तुलना

बहुधा हिन्दू विवाहों की इस अभिच्छेदता की तुलना रोमन कैथोलिक विवाहों की अभिच्छेदता से की जाती है, किन्तु इस तुलना में यह बात ध्यान दी जाती है कि रोमन कैथोलिक विवाहों में यह प्रतिबन्ध स्त्री और पुरुष दोनों पर समान रूप से लागू होता है। दोनों के लिये विवाह अभिच्छेद स्थापित किया जाता है, स्त्री एवं पुरुष दोनों मिली धुंधरे पुरुष या स्त्री से शरीर नहीं कर सकते। हिन्दू विवाह का सम्मान विभिन्न है। वह पुरुष के लिये मिलकुल नहीं है। पुरुष पहली पत्नी के रहते हुए अग्रेष्ठ विवाह कर सकता है किन्तु स्त्री के जाना रहती जाती है कि वह उसके मरने पर भी दूसरे पति का नाम ले ले।^{१४}

वास्तव में विवाह का अन्तर्गत नियम ही यह होता चाहिए कि उसमें पति-पत्नी के अधिकार तुल्य होने चाहिए। अब विवाह संस्कार हो जाने पर पत्नी की यह अधिकार

^{१२} हरिदत्त केशवसंस्कार—हिन्दू परित्कार जीमांसा, पृ० ६५

^{१३} मनु० ८।२२५ पारिवर्तनिका मन्त्रा कन्यात्वेव प्रतिष्ठिता ।

नाकन्यातु रवाचिन्तुनां नृपसमर्थविधा हि सा ॥

^{१४} ईसाई धर्म के विवाह को बहुत देर बाद अर्थात् १५वीं से १६वीं के संस्कार (Sacra-

अर्थात् कि वह दूसरी शायी कर मनें सो पति को भी पुनर्विवाह का अधिकार नहीं होगा बाहिर । १६५५ के हिन्दू विवाह कांमून में ऐसी ही व्यवस्था बार की गयी है ।

सर्वोच्च समय ये अवधानों की धार्मिक विधि से सम्बन्ध हुए, हिन्दू विवाह को अधिकृत सम्बन्ध मानती हैं । विवाह के अधिकृत सम्बन्ध को स्वीकार करने के दो मुख्य परिणाम हुए हैं—(१) पति के मरने पर स्त्री में पुनर्विवाह का अधिकार छीन दिया गया । विवाह का आगमार्थ या निमित्त है, अतः पति की मृत्यु के बाद स्त्री को अनुत्पन्नता नहीं प्राप्त होती कि वह कोई दूसरा पति कर लें । (२) पति के जीवन रहते हुए दूसरी भाग्य पति का किसी भी कारण से त्याग नहीं दे सकती ।^{१०} अर्थात् [सब जाति में त्याग की प्रथा न हुई । दूसरी अवधारणाओं की, ^{११} वेधवा की, ^{१२} इत्यादि

मार्ग) बताया । भारत में विवाह विलक्षण ऐहिक या सांसारिक (Secular) कार्य समझा जाता था । पुरोहित विवाह को आसीर्वाच से संबन्ध बताया था ।^{१३} किन्तु इस लासीर्वाच के न होने पर भी विवाह वैध समझा जाता था । इसके बाद यह विचार बना कि विवाह की मौकिक विधि पूरी करने के लिये जो जाकर उसे वैधानिक (धार्मिक संस्कार) का रूप दिया गया । १९वीं शती तक विवाह को प्राद-विम्व विधियाँ बर्च से बाहर होती थी और ब्रह्मण अथ बर्च में प्रार्थना (Man) के साथ होता था । १९वीं शती में सारी विधि पुरोहित द्वारा ही होती लगी । यह प्रथा यहाँ तक बढ़ी कि ईश्वर को परिषद् (Council of Trent) ने १६ वीं शती में होने वाले वैधानिक विवाहों को पास और बदराज बना दिया । इसके बाद विवाह को बर्च की विधियों के साथ करना आवश्यक ही गया । किन्तु यह समझ बनाना बाहिर कि उस परिषद में कुछ व्यक्तिओं ने अपमूर्त प्रस्ताव के विषय में होठ दिने थे । इस सम्बन्ध की अधिकृत बनाने में बर्च को कई शर्तों से बंधा मिली । बाइबिल में बाधन और हुम्मा की एक ही शरीर (One flesh) वाला बताया गया है, फिर बर्च और ईश्वर का सम्बन्ध भी अधिकृत समझा जाता था । विवाह इसी सम्बन्ध का मौकिक प्रतीक था, अतः वह अधिकृत होता बाहिर । जब ईसाई सप्त अक्षय बहुधर्म की प्रतिज्ञा लेते थे तो पुस्तकों के हिन्दू अक्षय एवं अधिकृत विवाह की व्यवस्था क्यों नही ? अतः १६६५ में विवाह अधिकृत संस्कार स्वीकार किया गया और १६वीं शती में वैधानिक विवाहों को गैर कानूनी व अवैध ठहरा दिया गया ।

^{१०} कुशीली सगल श्रीमतीराव ३ अत ३ (२०८), सगल सगल सगल २८ अत ७६१ (७६८), सगल सगल सगल २६ अत ५ (६)

^{११} मुद्राया सगल सगल २६ अत १७१ (१७१, १७८)

^{१२} गृही, कुशीली सगल श्रीमतीराव ३२ अत ८७१, सगल सगल सगल सगल ५, ६३

या किसी दूसरे धर्म की स्वीकार कर चुकी हो, तो भी पति के साथ उसका विवाह-सम्बन्ध व्यवस्थापूर्वक कायम रहता है । पति अपनी पत्नी को या पत्नी अपने पति को पुरा-चार या धर्मपरिवर्तन के कारण नहीं छोड़ सकती ।

पहले परिणाम का १९वें अध्याय में विस्तार में प्रतिपादन होगा । यहाँ केवल पहले परिणाम पर विचार किया जाएगा । पत्नी के व्यक्तिचरित्र की होने पर भी पति उसे नहीं छोड़ सकता है ।^{१३} कुछ मुकदमों में अवास्तवों ने यह स्वीकार किया है कि दुर्गन्ध से विवाह-सम्बन्ध विच्छिन्न हो जाता है ।^{१४} हिन्दू दाम्पत्य अधिकारों को प्रकट करने पर यह देखेंगे कि साम्प्रदायिकों ने यह विधान किया है कि पत्नी के व्यक्तिचरित्र की होने पर भी पति का यह कर्तव्य है कि वह उसका भरण-पोषण करे और यदि वह कुमारी न बिम्ब नहीं होती तो पति केवल यही कर सकता है कि उसके पोषण की मांग की जा कर है, किन्तु उसे पत्नी के साथ विवाहसम्बन्ध विच्छिन्न करने का कोई अधिकार नहीं ।

धर्म परिवर्तन और विवाह की अविच्छेद्यता

हिन्दू विवाह एक सामिक सम्बन्ध है, अतः पति-पत्नी में किसी एक के धर्म-परिवर्तन से तो वास्तव में अथवा पति-पत्नी के बीच भी कुछ सम्बन्ध विच्छिन्न नहीं होता है । धर्म में एक हिन्दू स्त्री गंगा मुसलमान हुई और उसने पहले हिन्दू पति के अधिकार भूते हुए एक मुसलमान से शादी की । सरकार की ओर से उस पर मुकदमा चलाया गया और पहले पति के अधिकार रहने पर, पहले व्यक्ति के साथ विवाह करने में अपराध में उसे स्त्री की सजा दी, गयी ।

भारत में हिन्दू स्त्रियों ने अपने अत्याचारी पतियों से परिहाण जाने से किए धर्म परिवर्तन के उपरान्त बहुत अधिक अदम्यमान किया । यहाँ यह विचार धर्म पड़ा था कि जो स्त्री अपने पति द्वारा छोड़ दी जाती थी या बहुत सतायी जाती थी, वह मुसलमान जाती थी और अदम्यमान में अपने पति के विरुद्ध यह दावा कर देती थी कि वह अपने गैर मुसलमान पति के साथ नहीं रह सकती, इसलिए या तो पति मुसलमान हो पाय, तबकि वह उसके साथ रह सके, या अदम्यमान उसे अपने पहले पति को छोड़कर देने की स्वीकृति प्रदान करे । ऐसी वक्ता में प्रत्येक पति अदम्यमान में उपस्थित नहीं होते थे; क्योंकि वे इसका भली स्वीकार करना चाहते थे । अदम्यमान प्रतिधारी की अनुपस्थिति में

^{१३} विश्वेश्वर कानन भातुलान २ मार्च अक्टूबर प्रोविन्सियल हा० को० रि० १००, ललाट कानन मारिचमुत्ती ४ अ० १४१ । एडमिनिस्ट्रेटर जनरल कानन अलमल-चारी २ अ० ४६६, स्वयंशयी कानन भारत मन्त्री १५ अ० २५४ ।

^{१४} राममलान कानन मुमुर्वाई ४ अ० १०० हा० रि० ११ (४१, ४२) विवक्ति कानन मितलान १२ अ० १७७, नरलला अलमल मुमु ११ अ० १३३ ॥

बारे की हिन्दू पति ने लम्बाक की स्वीकृति दे दी थी। इस प्रकार अपने पति की लम्बाक देने के बाद वह स्वी आर्यसामाजिक विधि में कुछ होकर फिर हिन्दू बनती थी और अपनी पसन्द के दूसरे पति से अपनी शादी कर लेती थी। पतिव्रती को इस उपाय की मज्ज लेने की आवश्यकता नहीं होती थी क्योंकि १९५५ तक प्रचलित हिन्दू कानून के अनुसार ये पंचांग विधियों से शादी कर सकते थे।

मुसलमान बनकर अपने पहले हिन्दू पति से मुक्ति पाने का सबसे अधिक उपायग्रह धीनती सीतादेवी का है। यह पीठापुरम् (मद्रास) के महाराज की मूलिय कथा है। ६ अगस्त १९११ को एक अतिरिक्त हिन्दू से उसका विवाह सम्पन्न हुआ। १० अक्टूबर १९४३ को अम्बई में उसने एक बाजी बुझाया, बालमा पदा धीर मुसलमान हो गयी। उसने अपने पति को यह लिखा कि मैं मुसलमान हो गयी हूँ, तुम भी मुसलमान हो जाओ। पति ने मुसलमान होने से इन्कार कर दिया। इस पर मद्रास हिंदी विविज कोर्ट में सीता देवी ने यह आर्यसामाजिक विवाह कि "६ अगस्त १९११ को हिन्दू विधि के अनुसार हुए भेदे विवाह को यह समझा जाय, क्योंकि मैं १० अक्टूबर १९४३ को मुसलमान हो गयी हूँ। मैंने पति की मुसलमान होने से लिए लिखा किन्तु उसने ऐसा करने से इन्कार किया है।" २३ जून १९४६ को यह मुसलमान की सम्यक् इमामुद्दीन के नाम से पेश हुआ। बच के अपने फैसले से लिखा कि "यदि प्रतिपादी अश्वमेध में उपस्थित नहीं हुआ और बादी अम्बई में बाजी के सामने मुसलमान हो चुकी है, वह कहती है कि इस्लाम के सिद्धान्तों से अकुल होकर वह मुसलमान बनी है। काजी की गवाही से भी गयी है। उल्लेख पति मुसलमान बनना स्वीकार नहीं करता। निरस्त ने एंग्लो मुहम्मदन को (पैरा ५४ ए०) में कहा है कि यह बचू से मेरे यदि कोई मुसलमान हो जाय तो तो विवाह पर कोई असर नहीं पड़ता, किन्तु यदि वह मुसलमान नहीं होता तो दूसरा पक्ष अस्माक से लड़ता है। यह विधि वास्तविकता या मुस्लिम देशों के लिए है, जहाँ अस्माक द्वारा यह विवाह-सम्बन्ध विच्छिन्न भीतर किया जाता है।" इस निर्णय के बाद किन बाद १ जून १९४४ को सीता-देवी का विवाह अम्बई में बड़ीदा के महाराज की प्रतापसिंह से हो गया। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि सीतादेवी दूसरे विवाह से पहले कुछ होकर हिन्दू बन चुकी थी।

इसमें कोई शक नहीं कि मद्रास के विभिन्न हाई कोर्टों में इस सम्बन्ध में सतत है कि यह-बचू से तो किसी एक के मुसलमान होने पर भी विवाह-सम्बन्ध विच्छिन्न होता है या नहीं, किन्तु अधिकांश कोर्टों का सुकाव इस ओर है कि यह विवाह-सम्बन्ध विच्छिन्न नहीं होता है। अम्बर हम अम्बई हाईकोर्ट के गंगा बासे मामले का उल्लेख कर चुके हैं। अस्माक हाई कोर्ट ने १९६१ में राजकुमारी के मामले में भी ऐसा ही फैला दिया था (इ. का. रि. १० का. २९४)। मामला इस प्रकार था कि एक हिन्दू स्त्री मुसलमान हुई और उसने एक मुसलमान से शादी कर ली। अश्वमेध में हाजिर हुए से यह कहा कि स्त्री के मुसलमान हो जाने पर भी वह हिन्दू कानून की परिधि से बाहर नहीं गयी जाती। १९४१

में कसकता हार्डकोर्ट के जस्टिस एगले (Edgley) ने एक दूसरे मामले में ऐसी बहति की घरेलूनी की। इस मामले में एगलेज भी एक कभी स्त्री ने दीवानी पड़ति से एक स्त्री पुनः में बलिने में पारी की, एनि एतसंगी बना मया और फनी मारन में जारी, वह मुसलमान हो गयी। उसने अपना नाम नुज्जहा रखा और फति का नाम धेरा कि यह मुसलमान हो नाम। एति ने मुसलमान होने से इन्कार कर दिया। इस पर नुज्जहा ने कसकता हार्डकोर्ट में एति से कसक वाता आहा। ग्यामासीन स्त्री एमने में यह बीमला किमा कि मुसलमान न बनने वाले पर विवाह-सम्बन्ध के विच्छेद का इस्लामी मान्य किटि कसत में लागू नहीं हो सकता। १८६२ में कसकता हार्डकोर्ट में यह कसत का कि इस्लामी कानून भारत का कानून नहीं है और यह बात न्याय (Equity) और उचित आत्म-करन (Good conscience) के संघर्षा एतिष्ठन है कि किसी हिन्दू को इस्लामी कानून से किसी प्रकार बाधित किया जाय। एमने के मत में, स्त्री एरा किस्ती व्यक्ति के मुसलमान बनने पर दूसरे व्यक्ति को मुसलमान बनने या विवाह-सम्बन्ध विच्छेद करने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता, यदि ऐसा मान लिया जाय तो राज्य सर्वोपरित्व में स्थापक बन जायगा।

इस विषय में लिम्बर बनाम आर्ट (१८७१-७४ एड की इंडियन अपील २०६) के मामले का उल्लेख उपर्युक्त है। इस मामले में यह ईसाई विधवा ने जो म मामले के साथ अपना सम्बन्ध बताया। जो म मामले की पत्नी जीकिता थी और ईसाई कानून के अनुसार उसका एक विधवा के साथ दूसरा विवाह दणनीय अभिग्रह था। उसने अपने के लिए दोनो धर्मसमान हो गये, क्योंकि इस्लाम में और बाधिया जायज होती है। इलाहाबाद हार्डकोर्ट और त्रिबी कीकिज दोनों ने इस विवाह की निन्दा की और इसे वैध नहीं माना।

अतः उपर्युक्त फैसलों से यह स्पष्ट है कि वैधानिक स्थापन के उद्देश्य में किये गये कर्मपरिवर्तन को अदासत जायज नहीं मरनी और न ही अदासतों को ऐसा मानना चाहिए। यदि ऐसा मान लिया जाय तो धर्म एक मरान और खिलवाड़ की चीज हो जायगी। यह प्रवृत्ति अत्यन्त निन्दनीय है कि बहुविवाह का मान्य देने या अभीष्ट व्यक्त से विवाह करने के लिए धर्म परिवर्तन के उद्देश्य भावी का अवलम्बन किया जाय।

हिन्दूदम्पती में यदि कोई ईसाई हो जाता है तो भी उन पर विवाह की अविच्छेदता का बंधन लगा रहता है। अनिया बनाम जेवतिह (८०. ला. रि. ५५६) के मामले में अनिया ने भारतीय कसक कानून (१८६६ का ४ का कानून) के अनुसार अपने पति से कसक भाग आहा। अदासत को यह पता लगा कि उनकी पत्नी हिन्दू किमि से हुई थी और उसके बाद वे ईसाई हुए। अदासत ने यह फैसला दिया कि भारतीय कसक कानून में एकविवाही (Monogamous) विवाहों का विधान है, पत्नी-अविवाही की पत्नी हिन्दू कानून के अनुसार हुई, इसमें बहुविवाह जायज है,

अतः हिन्दू कानून भाग होने की वजह से भारतीय पक्ष का कानून उन पर नहीं लागू हो सकता ।

यद्यपि हिन्दू विवाह सम्बन्ध अविवच्छेद्य है, किन्तु ईसाई धर्म स्वीकार करने वाले हिन्दू विधोप अवस्थाओं में देशी ईसाई विवाह संग कानून (Native Converts Marriage Dissolution Act, १८१९ वा २१ वा कानून) के अनुसार कुछ बातें या पापन करके हुए तत्काल प्राप्त कर सकते हैं । यदि पति-पत्नी में से किसी एक के ईसाई बन जाने पर कानून विच्छेद छः महीने के बाद आत्म-सुखकर उसका पट्टास परिचय कराना है जो पट्टास व्यक्ति सामान्य अधिकारों (Conjugal rights) के लिए खाना प्राप्त करता है । यदि पतिपत्नी दोनों ईसाई बनने के बाद कोई ईसाई स्वीकृत एक धर्म की समीक्षा करने वाले पुनः सम्बन्ध पुनः होने में सम्मिलित करता है तो अद्यतन उस विवाह को संग कर सकती है । धर्म परिवर्तन करनेवाला व्यक्ति कि इस कानून का उद्देश्य तत्काल को सुख बनाना या जोलायित करना नहीं, बल्कि यह है कि सम्पत्ति में से किसी एक व्यक्ति के ईसाई होने पर, यदि दूसरा धर्म परिवर्तन के कारण पट्टास का समाप्त करता है तो परिवर्तन व्यक्ति को सुखी जागी या अवसर मिल सके । इसी कानून के २२ में साथ में यह स्पष्ट कर दिया गया है कि पट्टास-परिचय (Dissolution) धर्मपरिवर्तन के कारण होता है । यदि यह परिवर्तन कुल या कुलधर्म के कारण होता, तो उस अवस्था में यह कानून लागू न होगा ।

भाषीय भाग में सामयिक या सवर्त विवाह (Contractual Marriages)

आवकल हम प्रथम पर तीव्र ध्यान है कि विवाह अविवच्छेद्य धार्मिक सम्बन्ध (Sacrament) है या वो पक्षों द्वारा जपन में तब किया हुआ एक सन्तोष, समय या ठेका (Contract) मात्र । पिछले दो हजार वर्षों में विवाह संसार की प्राथमिकता एवं अविवच्छेदता पर इतना अधिक बल दिया गया है कि हम यह भूल गये हैं कि अत्यन्त पुराने कालों में ऐसे अनेक विवाह होते थे जिनमें विवाह सम्बन्ध सामयिक या प्राथमिक (Contractual) होता था, परन्तु कुछ शताब्दियों पर विवाह करते थे । ई = वा = (१३१०) में प्रेषिका जर्मनी प्रेषी भाग से यह कहती है कि वह उसके साथ तब तक विवाह नहीं करेगी, जब तक कि वह उसकी कुछ बातों को स्वीकार नहीं करेगा । महाभाष्य में सवर्त विवाहों के अनेक उदाहरण मिलते हैं । जलवाय की एक अपन पिछली की रक्षा के लिए साधारण हीकर विवाह करने का निश्चय करना पड़ा तो अपने अपने पिछली से कहा कि मैं इन बातों पर विवाह करूँगा—

१—मुझे अपने नाम वाली पत्नी मिले ।

२—मुझे वह धिका में मिले ।

३—मुझे अपनी पत्नी का सम्बन्धपूर्ण न करना पड़े । किन्तु उस भूँ जागी

को, जिसमें अपनी से अपने शरीर को जिसकुछ कीज कर जाता था, कीज अपनी कथा देता ? अन्त में उस क्षण में अपने में जाकर तीन बार बीटे-भीरे काहु कि "मम जगज्जाती तुने, मेरे पितर संभट में है, और ऊँहोंगे मुझे विवाह के निध आशा की है। मैं कन्या बाहता हूँ।" इसके बाद क्षण में अपनी शरीर की भी पोषण की। मगराज बासुकि के अनुचरों ने यह समाचार अपने स्वामी के पास पहुँचाया। बासुकि अस्त्राक्ष के विवाह की इच्छा अपने ही अपनी सगी-सगायी महिला को लेकर इन में उस क्षण के निकट आया और उस महात्मा से उसने यह कहा कि "यह कन्या मेरी बहिष्ठ है, तुम्हारे नामवासी है, तुम इसे पत्नी रूप से स्वीकार करो। मैं ही इसे पाऊँगा।" ३५ क्षण में कहा—"मेरी यह शर्त है कि मैं इसका धरण-प्रापण नहीं करूँगा और यह कन्या किसी तेरा अग्रिम कार्य नहीं करेगी। अग्रिम कार्य करने पर मैं इस कन्या को छोड़ दूँगा।" ३६ बासुकि ने यह बातें संजूर कर ली। बासुकि के घर क्षण गये। पचासिदि विवाह के बाद वह भारी सहित वासगृह में प्रविष्ट हुआ और वहीं अपनी पत्नी के साथ ही उसने यह शर्त पेश की "मेरा अग्रिम कार्य न करना और मुझे अग्रिम लभने काशा बचन न बीक्ष्मा। ऐसा करने पर मैं तुझे छोड़ दूँगा।" ३७ बासुकि की बहिन ने इसे कुछ से 'एज-मस्तु' कहकर क्षण की शर्त स्वीकार की और बहुत साधवानी के साथ क्षण की सेवा करने लगी।

एक दिन अस्त्राक्ष अपनी पत्नी की गोद में सिर रख कर सो रहे थे। सूर्य अस्त हो गया, किन्तु क्षण की नींद नहीं टूटी। पत्नी उस समय अक्षि चिन्ता में पड़ गयी। यदि वह अपने पति की गद्दी जगाती तो क्षण के संख्या समय के धार्मिक कार्य में बिच्य पड़ता है, उसके समीप या दाय जगने को संभालना है और यदि वह अवाती है तो पति की निद्रा संग करने का अपराध करती है। पत्नी ने समीप और पति की निद्रासंग में से धर्मसंग को अधिक महत्त्वपूर्ण समझा और यह कहते हुए पति को जगाया— 'शु श्रुतीम, सध्वान सुर्वेव ब्रू रहे है, उच्छाकर धन स्थान कर संस्मरमासना कीरिए। बेधिए अभिहोत्र का समय था गया है।

पत्नी की यह बातें सुन कर क्षण बड़े मुन्न हुए। वे बोले—'तुने इस प्रकार के श्रुत औरमान किया है, मैं तेरे साथ अब न रहूँगा। मैं यह बात निम्नित रूप से जानता हूँ कि मेरे सोने रहने से सुर्वेव कभी उचित समय पर अस्त नहीं हो सकता। सममानित होकर कोई पुरुष नहीं रहता बाहता। मुस-जैता धार्मिक व्यक्ति तो ऐसी हालत में कभी नहीं रह

३५ म० म० १।३७।३ न भविष्योऽहमेतां मा एव से सम्यः कृतः।

अग्रिमवचन न कर्तव्य कृते क्षेपे त्यजाम्यहम् ॥

३६ यही १।३७।६-१० विप्रिये मे न कर्तव्यं भव वाच्यं कवत्तन।

त्यजेयं विप्रिये जल्यो कर्तव्यं च ते गृहे ॥

सम्पत्ता।" पत्नी में बही ससारी देल की, हाथ-पैर जोड़े, किन्तु जेहि नही दिखले। उन्हीने अपने कबल का स्मरण कराया और पत्नी को छोड़कर अन्यत्र चले गये (महाभा० १।४।१२५-२४)।

इस कथा से स्पष्ट है कि प्राचीन हिन्दू समाज में विवाह नहीं बर बरों पर होता था और जब बर्तों के संस होने पर विवाह संबंध विच्छिन्न हो जाता था। इस संबंध में उर्वशी-मुक्ताबा और वैष्णवी-धारावि की कथाएँ भी स्मरणीय हैं।

दीवानी विवाह

इस अध्याय के आरंभ में यह साक्ष्य प्रस्तुत है कि स्त्री-पुरुष के सम्बन्ध की समाज द्वारा स्वीकृत प्रथाओं के लिए कोई न कोई विधि आवश्यक होती है, चाहे वह पुरोहितों द्वारा पूरी की जाय या मजिस्ट्रेट के आगे सम्पन्न की जाय। पहली विधि के होने वाले विवाह को धार्मिक विवाह (Sacramental marriage) और दूसरे को दीवानी विवाह (Civil marriages) कहते हैं। हिन्दू समाज में पुरोहितों द्वारा अग्नि के समुच्च पंक्ति-ग्रहण संस्कार की वैवाहिक विधि सदियों से आवश्यक मानी जाती रही है। गान्धर्व विवाह के प्रचलन से प्रत्येक यह देखा जा कि परस्पर प्रेम बलवत् होने पर विवाह के लिए पहले संस्कार की आवश्यकता नहीं समझी जाती थी। बहुसंख्या और बुध्दधर के विवाह में कोई संस्कार नहीं किया गया था। किन्तु शास्त्राध्यय के समय तक ऐसे विवाहों की निवृत्त करने पराक्रम के नाम पर होने वाले व्यभिचार की रोकने के लिए सम्सार की सती सविधान बना दी गयी। उसके बाद दिल्ली शासकी के समय तक हिन्दू विवाह की वैध बनाने का एक मात्र उपाय पाणिग्रहण संस्कार था।^{२०} किन्तु १८५२ के विधेय विवाह कानून के कुछ विशेष व्यवस्थाओं के लिए मजिस्ट्रेट या रजिस्ट्रार के सामने कानून द्वारा नियत कर्तों

- २० आधिकार अधिकार पत्रिका में दीवानी विवाह की प्रथा प्रचलित है। पृष्ठ (पृ० २६२-५ वि०) यह बातका प्रस्तुत है कि यूरोप में १२ वीं सदी तक विवाह बर्तों का विषय नहीं समझा जाता था। जब से इसे धर्म के अधिकार में लेने का ध्यान किया, किन्तु सुधार तथा अन्य सुधारकों ने कहा कि विवाह दीवानी अधिकारों का विषय है। ईसा की परियन्त में सुधारकों की इस सम्मति को कुछ (Heresy) घोषित किया किन्तु इसके बाद कुछ यूरोप के अनेक कॅथोलिक देशों में दीवानी विवाह ही एक मात्र कानूनी विवाह माना जाता है, जर्मनी में केवल दीवानी विवाह को वैध माना जाता है। उत्तरी अमेरिका की प्रजासत्ताओं में विवाह एक संघर्ष (Contract) माना है। यूरोप के अधिकांश देशों में दीवानी विवाह के बाद बर्तों में विवाह या-पुरोहित के सामने धार्मिक विधि से पुनरा विवाह किया जाता है (इंका० वि०, अध्या १४, पृ० २५२-५५)

के अनुसार किये जाने वाले दीवानी विवाहों (Civil marriages) को भी वैध समझा गया। भारत में इन विवाहों को वैध बनाने का अनोखक इतिहास है।

दीवानी विवाह के कानून का इतिहास

ब्रह्मसमाज १९वीं शताब्दी में भारत का सबसे बड़ा और एक महत्वपूर्ण सामाजिक सुधार आन्दोलन था। ब्रह्मसमाज ने हिन्दू समाज में कई असाध्यियों में बने जाने वाले जादूविशवासी और क्रूर रीतियों को दूर करना चाहा। ब्रह्मसमाजी भूमि पूजा को नहीं मानते थे, क्योंकि उस समय हिन्दुओं का कोई भी संस्कार बिना किसी ऐदना की मूर्तिपूजा के बिना पूरा नहीं हो सकता, जब ब्रह्मसमाजी ऐसी सब विधियों में अलग रहते थे। जिस समय बाह्य वेदेय धर्म के घर में कोई धार्मिक उत्सव होता, उस समय वे मूर्ति पूजा से बचने के लिए जंगल में चले जाते थे। १८२७ में ब्रह्मसमाज में एक मतिभासग्रन्थ 'मैदाबी और तेजस्वी मुकुट श्री केशवचन्द्र सेन का अग्रगण्य पुत्रा श्री उन्होंने ब्रह्मसमाज की सभी लोगों से सुधारग्रन्थ के नाम पर ईसाइयत का नामा पहचाना शुरू किया। प्रगतिशील ब्रह्मसमाजी विवाह के हिन्दू स्यादों विधि दोनों का इस एवं व्यापक समझे थे, उनका कहना था विवाह स्त्री और पुरुष के बीच में एक समझौता (contract) माना है, कयादान बिस्कुत बेकार है और विवाह की धार्मिक विधि व्याप्य है। प्रगतिशील ब्रह्मसमाजियों ने मूर्तिपूजा के प्रचारों को सर्वथा दूर करते हुए विवाह की एक नयी विधि बनायी।

फिरु भीम ही यह प्रश्न उठ खड़ा हुआ कि इस विधि के अनुसार किये गये विवाह क्या वैध होंगे? प्रगतिशील ब्रह्मसमाजियों ने उस समय के एडवोकेट जेम्स श्री कोबी से इन विवाहों की वैधता सम्बन्ध में सम्मति ली। श्री कोबी की सम्मति थी कि ये विवाह वैध नहीं माने जा सकते। इस पर ब्रह्मसमाजियों का एक प्रतिनिधि मण्डल उस समय के वायसरॉय मार्क पैन्सकाउल से मिला और उन्होंने ब्रह्मसमाजियों के विवाहों की वैध बनाने के लिए एक कानून पास करने की माँग की। उस समय स्थिति यह थी कि हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, यूरोपियन और भारतीय जातियों के लिए विवाह के कानून बने हुए थे किन्तु ब्रह्मसमाजी अपने को न हिन्दू मानते थे न मुसलमान, न ईसाई, न भारतीय। यतः उनके लिए कानून ड्राय विवाह करने का कोई तरीका नहीं था। इसका मतलब यह था कि कानूनी दृष्टि से ब्रह्मसमाजी विवाह कर ही नहीं सकते थे। इस दोष को दूर करने की दृष्टि से ब्रह्मसमाजियों के विवाह के लिए एक कानून बनाना आवश्यक था। किन्तु इसमें सबसे बड़ी दिक्कत यह थी कि ब्रह्मसमाज का कोई निश्चित रूप नहीं था। १० वर्ष के समय ही इसमें दस पैदा हो गये थे और दोनों विवाह के सम्बन्ध में पर्याप्त मतभेद रहते थे। सरकार किस दल की सम्मति और विधि को प्राथमिक माने? दूसरी ओर यह कि यदि ब्रह्मसमाजिक सम्प्रदाय के लिए अलग कानून बनाये जाने

मर्त्य हो भीतिमो विवाह कानून बनाने पड़ेगे। हर एक सम्प्रदाय अपने लिए अलग-अलग कानून की माँग करेगा। साम्प्रदायिक विवाह कानून (Denominational Marriage Act) बनाने में एक सप्ताह भी काया भी कि विभिन्न धार्मिक सम्प्रदायों के बीच से होने वाले विवाह का नियमन किस प्रकार किया जायगा ?

भारत सरकार के तत्कालीन कानून सचिव सर हेनरी मेस ने इस समस्या का यह हल निकाला कि ईसाई धर्म भी न मानने वाले तथा हिन्दू, मुसलमान, बौद्ध, पारसी या यज़ुही धार्मिक विधि से शादी न करने वालों के लिए एक कानून बनाया जाय। १८ नवम्बर १८६८ को उन्होंने इस प्रकार के कानून का मसिदा पेश किया और सम्मति के लिए, वह मसिदा भारतीय मन्त्रालय के पास भेजा गया। भारतीय सरकारों ने इसका इस आधार पर और विरोध किया कि यह हिन्दू-मुस्लिम मतभेदों में जातिकारी परिचर्जन करने वाला है। विवाह के विषय में, हिन्दू कानून और हिन्दू धर्म एक है, जो हिन्दू विवाह को नहीं मानता, वह हिन्दू कानून को भी नहीं मानता, उसे हिन्दू धर्म में रहने का कोई हक नहीं। अन्तस्वार्थिका परिषद् को यह अधिकार नहीं कि वह हिन्दू धर्मस्थ कानूनों को मनमाने ढंग से बदलती रहे। कानून सचिव सर स्टॉफन ने इस बिल को १८७१ में अन्तस्वार्थिका परिषद में पेश करते हुए उक्त आलोचकों को यह सुन्दर शब्दों में समझाया कि हम अन्तस्वार्थिका परिषद के कानूनों द्वारा न तो हिन्दुओं को अंग्रेज और न अंग्रेजों को हिन्दू बनाने का अधिकार रखते हैं।

मेस के मसिदे में से उद्धृत आपत्ति हटाने के लिए इस कानून में एक प्रस्तावना जोड़ी गयी और वह प्रस्तावना ही। इस बिल का सबसे महत्वपूर्ण भाग है। इसमें यह कहा गया है कि जो लोग हिन्दू धर्म, ईसाईयत, इस्लाम, पारसी, बौद्ध, सिक्ख या और अन्य नहीं स्वीकार करते, उनके लिए यह कानून बनाया जाता है। इस कानून के अनुसार विवाह करने वाले को यह घोषणा करनी पड़ती है कि वह हिन्दू धर्म को नहीं मानता है।

दीवानी विवाह का स्वरूप

इस कानून के अनुसार, विवाह मुख्यतः से एक धीवानी भावना समझा गया और इसमें किसी धार्मिक विधि का पालन आवश्यक नहीं है। यह विवाह विवाहों के एजिस्ट्रार के सामने कुछ शर्तें पूरी करने पर नियत विधि के अनुसार हो सकता है। ये शर्तें इस प्रकार हैं—हर एक क्रमांक कम से कम १८ और १४ वर्ष के हों, यदि वे २१ वर्ष से कम आयु के हैं तो उनके अभिभावक को सहमति होनी चाहिए। उनमें समझौता या कृत्रिम समझौता (Affinity) नहीं होनी चाहिए और उनमें किसी की पत्नी या पति नहीं अंकित होना चाहिए (धारा २)। विवाह से पूर्व हर एक व्यक्ति को अपने निवास स्थान के एजिस्ट्रार को विवाह की सूचना देनी पड़ती है। निवास स्थान उसे माना गया है जहाँ उक्त सूचना देने से कम से कम १४ दिन पहले से हर मां बच्चा में से कोई रहा हो (धारा ४)।

सूचना देने से १४ दिन बाद तक यदि उस विवाह संबंध पर कोई अंतर्गत न जमायी जाय तो यह विवाह तीन साक्षियों की उपस्थिति में रजिस्ट्रार के सामने हो सकता है। यह विवाह किसी भी विधि से किया जा सकता है बशर्ते कि पति-पत्नी एक-दूसरे को रजिस्ट्रार तथा साक्षियों की शपथ कराते हुए समझ दें जहाँ उन्हें कि वे तुझे पति के रूप में स्वीकार करती हूँ। और मैं तुझे पत्नी के रूप में स्वीकार करता हूँ (आध १३)। ऐसे विवाहों में प्रत्येक विधि जा सकती है (आध २३)।

नये कानूनों का निर्माण—१८७२ का कानून हिन्दुओं को अनुष्ठान न कर माना, क्योंकि भारत में उन समय तक कोई ऐसा कानून नहीं था, जिस कानून के अनुसार हिन्दुओं में दीवानी विवाह हो सकें, इस कानून में बर-बहु को यह भीषणा करना आवश्यक था कि हनु हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, बौद्ध, जैन, सिक्ख या पारसी धर्म नहीं स्वीकार करते। बहुत से हिन्दू ऐसे थे जो अपने धर्म में ही रहते हुए दीवानी विवाह करना चाहते थे। इस मामले में देशी राज्यों ने बम प्रवेश किया। १९०० में बड़ौदा राज्य में तथा १९१५ में इन्दौर राज्य में दीवानी विवाहों का वैध बनाने के कानून बने। कलकत्तापुर में भी इसी तरह का कानून बना। भारत सरकार ने स्वयं इस विषय में कदम नहीं उठाया। श्री हरि विहारी गौड़ ने १९२१ में हिन्दू-कानून में दीवानी विवाहों का वैध बनाने का मसौदा केन्द्रीय व्यवस्थापिका परिषद् में प्रस्तुत किया। उसकी शक्ति थी कि भारत की सभी न्यायियों के लिए दीवानी विवाह का कानून बनाया जाय, किन्तु मुसलमानों और पारसियों ने इसका विरोध किया। अतः अन्त में यह मसौदा केवल हिन्दू, बौद्ध, सिक्ख और जैन धर्मों तक के लिए अंगीकृत किया गया और १८७२ के ऐक्ट का १९२३ के कानून के अनुसार संशोधित किया गया। इस संशोधन के अन्तर्गत अब एक हिन्दू को यह भीषणा करने की आवश्यकता नहीं रही कि वह हिन्दू नहीं है। वह हिन्दू होते हुए भी दीवानी विवाह कर सकता था। १९४४ के विशेष विवाह कानून (Special Marriage Act) द्वारा इतनी अनेक आवश्यक और समायोजक संशोधन किये गये हैं। इसकी सबसे अधिक महत्वपूर्ण व्यवस्था वास्तविक सहमति (Mutual consent) द्वारा विवाह विच्छेद का विधान है। अब हिन्दू इस कानून के अनुसार दीवानी विवाह कर सकते हैं।

ब्रह्मसूत्र कर्तव्य व अधिकार

विवाह संस्कार प्राग्वहिक-स्त्री एक भूमि में आते हैं। फली पति के घर में बनी बानी है और पति के साथ मिलकर दुहृयों का संभालन करती है।^१ इस अवस्था में दोनों में एक-दूसरे के प्रति कुछ कर्तव्य और अधिकार उत्पन्न हो जाते हैं। यह स्मरण रखना चाहिए कि प्राचीन काल में हिन्दूधर्म में कर्तव्यों पर अधिक जल दिया गया था और संतुलित अधिकारों की आवश्यकता नहीं थी। अतः प्राचीन धर्मशास्त्रों में पति-पत्नी के और विशेषतः पत्नी के कर्तव्यों की बड़ी अधिक है और अधिकारों की कम। हिन्दू धर्मियों की स्थिति गिरने से पूर्व वैदिक युग में पति-पत्नी के अधिकार तुल्य थे, विवाह के बाद तबसे धीरे-धीरे घटती हो जाती थी।^२ किन्तु कुछ ही सदी के बीच में इनमें बड़ी अंतरात्मिकता में बड़े परिवर्तनों का देखा दिया।^३ नारी की स्थिति में यह परिवर्तन भूमि भूमि तक पूर्ण हो चुका था।^४ इस परिवर्तन के कई कारण थे।

(१) पहला कारण आधुनिक व्यवस्था में व्यवहारिक बुद्धि के विचार की वृद्धि से जन-जन की स्थितियों का समीक्षा करने से प्रेरित किया जाता था। आधुनिक धर्म व्यवस्था के कारण धर्म में अपरिचित मानने वाले धर्मों की। धीरे-धीरे इस विचार का सब लोग मानने लगे और नए विचारों के धर्मों में पत्नी का अधिकार बढा होने लगा। धर्म में स्त्री का अधिकार न रहने से वह शूद्र की तरह हीन मानने लगी, क्योंकि शूद्रों का भी अब में कोई अधिकार न था।

^१ ब्रह्मसूत्र धर्मशास्त्र के कुछ प्रवेष्टों में पत्नी अपने घर में रहती है, पति उसके घर में आता है। इसके अर्थों के लिए देखिए हरिदत्त वैद्यशास्त्र—हिन्दू परिवार शीर्षाङ्क ५० २७०-७२।

^२ ब्र० १०१८, १०१९—संस्कृत धर्मशास्त्रों में पत्नी की स्थिति—वि० अर्थ० १४१ १४२।

^३ ब्रह्मसूत्र २२२७—आधुनिक धर्मशास्त्रों में पत्नी की स्थिति—वि० अर्थ० १४१ १४२।

^४ इसके विचार-प्रतिपादन के लिए देखिए हरिदत्त वैद्यशास्त्र—हिन्दू परिवार शीर्षाङ्क, ५० १०५-१०७

(२) पुत्र पिता के वंश को चराने वाला और पितरों को विष्णु स्तन करने वाला होता था। भोज्या आशिया के जीवनसंभर्ष में कन्या की जपेका पुत्र पिता को अधिक सहानुता दे सकता है, अतः ऐसे समाज में कन्याओं की जपेका स्वाभाविक थी।

(३) स्त्री किला का जन्म न माल विवाह—वैदिक समय में कन्या कन्याओं पूर्वक विवाहप्रयत्न करके ही युवती होने पर विवाह करती थी। बाद में स्त्रीविवाह की उपेक्षा एवं आत्मविवाह के प्रचलन से अब बहुत ही छोटी बाधु में कन्याओं के विवाह होने लगे, इस समय स्त्रियों के अधिकारों की उपेक्षा स्वाभाविक थी।

(४) इस स्थिति में यह विचार उत्पन्न हुआ कि स्त्री स्वतन्त्र नहीं रह सकती, उसका कोई न कोई रक्षक होना चाहिये^१। इन भय कारकों ने हिन्दु समाज में भारी की स्थिति में बड़ा अन्तर आने लगा।

वैदिक युग में दाम्पत्य अधिकार

वैदिक युग में उपर्युक्त कारणों में से कोई कारण विवाधान्त नहीं था, अतः कुछ ऐसे कारण के विना ही स्त्रियों का अधिक महत्ता मिली। उक्त समय अन्तर्गत के भाष्य संभर्ष था, अतः राजनीतिक दृष्टि से अन्तर्गत की बहुत अधिक आवश्यकता थी। अतः वे १० गुणों को पैदा करने की योजना प्रकट की गयी है (१.५.८५.४५)। मित्रों गुणों के प्रत्येक काम में सहायता होने से समाज का अस्तित्व उपयुक्त होना और संस्थान तथा स्वाभाविक के विचारों के प्रभाव न होने से विवाह एक आवश्यक कर्तव्य समझा जाता था। मित्रों के मित्रित एवं सुसंस्कृत होने से समाज विवाह में उनकी वृत्त तथा अधिकारों का पूरा स्थान रखा जाता था।

इन कारणों से पति-पत्नी के अधिकारों में उक्त समय बड़ा वैषम्य नहीं था। पत्नी घर की दानी थी और पति का कोई बड़ा वाणिज्य कार्य पत्नी के बिना पूर्ण नहीं हो सकता था। अथर्व में अनेक स्थानों पर (१.१०.२.५, १.१.१२) पति-पत्नी द्वारा एकदुसरे होकर घरेलू कार्य न करना करने का वर्णन है। तै० बा० (३.१७.५) उन्हें एकदुसरे रथ में बैठे हुए दो बैल कहता है। तै० बा० (३.१७.१) यह बताता है कि उस यज्ञकर्ता का आधा फल मरु हो जाता है, जिसे मरु के दिन (अधुना के कारण) स्त्री नहीं प्राप्त होती है। अथर्व वेद में पत्नी पति का सम्भर्षण करती है, अतः उसका वह यज्ञ में उपस्थित रहना अनिवार्य होता है। तीला के न होने पर राम का उनकी सुसंस्कृति अधिका नगवानी पड़ी थी (१.०.७.१.१२५)। यह भी पति के साथ बैठने तथा मरु की कियारें करने की दृष्टि से स्त्री को

^१ स्त्री की स्वतन्त्रता ■ विचार के विद् वेदिये हरिश्चन्द्र—हिन्दु परिवार विभागा, पृ० ११७-८, पृ० ४३६-४०

'पत्नी' कहा जाता है (शत० भा० १।१६।२।१४, पाणिनि ४।१।३) तथा इसके साम्बन्ध साम्बन्ध को कताने के लिए जाया मन्व का प्रयोग होता था। ब्राह्मण ग्रन्थों के समय से पति को पत्नी का अंग अंग कहा जाने लगा था (तत्तपत्र भा० ४।१।६।१०)। माण्डूक्य धर्मसूत्र (२।६।१४, १६, २०) को पति-पत्नी में अनेक स्वीकार करने के गुरु कहता है कि दोनों की गत कार्य एकट्ठे करने चाहिए।

वचन में यहाँ में जाया की दृष्टि में स्त्री का महत्त्व करने लगता है। शत० (१।१।६।१३) में प्राप्त होता है कि एक पक्ष में पढ़ने जाया ही आहुति उल्लास करती थी, किन्तु बाद में इस कार्य को पुरोहित भी करने लगता है। मनु के समय तक स्थियों को धार्मिक यज्ञों में पति के साथ सम्मिलित होने का शूरा अधिकार था, किन्तु उनसे मन्त्रोच्चारण का अधिकार छीन दिया गया था। मनु (३।१८९) यह कहता है कि सायकाल के पक्ष में पति की गरिबी पत्नी मन्त्रोच्चारण के बिना ही रहे। इससे पहले गौतम धर्मसूत्र (४।६।१४) और गोपबन्धन गृह्यसूत्र (१।४।१६, १८) में पति का समान किया था, किन्तु के ऐसे किसी प्रतिबन्ध का उल्लेख नहीं करते।

यज्ञिय अधिकारों के सम्बन्ध में यह स्मरण रखना चाहिए कि पत्नी को ये अधिकार समुक्त रूप में होना चाहिये। पृथक् रूप में मनु के शब्दों के अनुसार (२।१४२) स्थियों के लिए कोई यज्ञ, व्रत या उपवास नहीं है (धिल्लिङ्ग विष्णुस्मृति २४।१४, मार्क० पुराण १६।६१, महाभाष्य १।१४।२।२४, १३।८।२०)।

यहाँ में अधिकार कम होते हैं ब्राह्मणग्रन्थों के समय पत्नी पति के यज्ञों से मिल के यज्ञों तक उत्तरादायी (हिन्दू परिवार, पृ० ७२)। ब्राह्मण ग्रन्थों में स्थियों की निन्द के सर्वोच्च बचन मिलते हैं, उनका अन्त्य उल्लेख हुआ है (हिन्दू परिवार, पृ० ११९)। शत० भा० (१।२।२।१२।) में कहा गया है कि पत्नी को पति के बाद भोजन करना चाहिए क्योंकि एक साथ बैठकर भोजन करने से दुर्बल सत्ता पैदा होती है। बसिष्ठ धर्मसूत्र (१।३।३१) में तत्तपत्र का अनुमोदन किया गया है। गौतम ने (१।१।१८) स्त्री के साथ बैठकर भोजन करने को पाहित आचरण माना है। ऐत० (३।२४।७) व गोपबन्धन (२।३।२२) ब्राह्मणों में जवाब न देने वाली (अश्रित्यदिनी) स्त्री की प्रशंसा की गयी है। इसी समय से स्थियों की नसबर्दी बनाने की यह प्रक्रिया शुरू हुई, जिसका चरम बिन्दु हमारे पास वैसी स्मृतिश्री में दिखायी पड़ता है।

बीड साहित्य में श्वशुर-सह सचर्य

बीड साहित्य से हमें ज्ञात होता है कि उस समय सास और बहू में घर में व्यवहार के लिए बड़े अवर्धित अंग्रेज होते थे। इनमें कभी-कभी सास के हाथ बायीं दाहिनी और कभी बाहू के। वैदिक युग में सास पर आश्रय करने वाली बहू इस काल में कभी-कभी सास के अत्याचारों से इतनी अधिक परेशान हो जाती थी कि वह उसके अत्याचारों के बचने के

लिए बटों में गरम-बूझती थी (वेदीगाथा ४५, अल्ले० पौ० पु० १०७)। सास गृहसे भी बहू को नुसल के पीटककर आग के मार बातली थी। किन्तु इसके विपरीत कुछ वहुओं में पूरना-बासल और दोन कोयल रखा, ऐसे बटों में सासों को भिक्षुणी बनना पड़ता था (सम्भवतः अ० क्र० ११५)। बार बहुरों जब एक बार अपने स्वभूर में बहुत लंग भा भयीं तो उन्होंने उसे अपने घर से बाहर निकाल दिया। (सम्भवतः अ० क्र० ३२४)। सातक सं० ३२४ में सास-बहू के झगड़े की एक मनोदंजक कथा दी गयी है। हम में बहू ने सास को मारते का पूरा प्रयत्न किया, किन्तु वह असफल रही। बारभाली में भार-झण्डों और बहिषासों से सरी एक मयी के तिनारे एक स्थिति रहता था। उनमें पिता के मरने पर माता ही उसमें देखभाल करती थी और उसके न चाहते हुए भी माना में अपने मझके का स्वाह कर दिया। बहू ने पहले तो सास से प्रति प्रेम दिखाया, किन्तु बाद में लड़के-सड़कियाँ होने पर वह सास से छुटकारा चाहने लगी, बहू की माँ भी उसी घर में जाकर रहने लगी। बहू ने प्रति पर यह दवाब डाला कि मैं तुम्हारी माता का नती पाले छकती, पुत्र उसे मार वे। लड़के ने पूछा—कैसे? बहू ने जवाब दिया कि जब वह भी जाय तो हम उसे दितार समेत बहिषासों वाली मदी में बाम करेंगे। सास और बहू की माता एक ही कमरे में सोती थी। बहू ने पास की महकान के लिए एक निचास बना दिया, किन्तु रात के अंधेरे में सास वाली आँख को उठाकर मदी में डाल दिया गया। अगले दिन बहू को यह पता चला कि रात को दोहों में उसने अपनी माँ को मदी में डाल दिया है। वह बहुत दुखी हुई। सास से छुटकारा पाने की दूसरी योजना बहू बना कि उस बुढ़िया का कमजोर में कला दिया जाय। एक रात प्रति-बली रात को खोली हुई गास का प्रमाण में के गले, किन्तु वहाँ आग न मिली। प्रति आग-लेने के लिए जाने लगी, किन्तु पानी बहाँ धकेले में हर अपने के कारण जगमे छाव चली गई। जबर प्रयासों की टण्डी हवा में बुढ़िया की लौट भूल गयी। आस-पास का हाल देखकर उसे सारी स्थिति समझ में आ गयी। उसने जलद्वी से टंकार पास ही पड़ी एक लावा को जल-दितार में बाँध दिया और अन्य उपायों पर से छिन गयी। प्रति-बली ने लौटकर चिता का आग जगा दी। जबर बुढ़िया की धुआँ से हारे, चोती, व आधूधमी की एक पाँटनी मिली। सबसे जब वह उस पाँटनी के साथ घर पहुँची तो बहू के अक्षर्य का टिकाना न रहा। सास के पास हीरे-मांती देख कर उसके मुँह में पानी भर साधा। उसने पूछा कि जागने से कहाँ गये। सातक बुढ़िया ने जवाब दिया कि इस प्रमाण की चिता पर जलने वाले सभी व्यक्तियों की जीवन के बात के साथ यह पाँटनी भेंट मिलती है। बहू बुढ़िया के हाँस में जा गयी और यह कहने की आवश्यकता नहीं कि अपने भासक में बहू चिता पर उल मरी और सास को बहू से मुक्ति मिली। अनुसर निधाय की अ० क्र० (१७७२) में बिलावा के अपने स्वभूर के साथ बड़े मनोदंजक झगड़े का वर्णन है। इस झगड़े का निर्णय करने के लिए एक दफ्ते होते हैं। के बिनावा की निर्दोष पादे हैं और अगल में स्वभूर बिलावा से लमा मोमता है। किन्तु बोझ

नर्त्यों में सामान्य रूप से नर्त्यों में अपने मातृ-स्वभाव के प्रति आदर भाव पाया जाता है।^६

महाभारत में दाम्पत्य कर्तव्य

महाभारत में हमें पति-पत्नी के कर्तव्यों के सम्बन्ध की बहुत-सी बातें ज्ञात होती हैं। पहले यह स्मरण का पूरा है कि हिन्दू भास्वों में पति की अपेक्षा पत्नी के कर्तव्यों पर अधिक ध्यान दिया गया है, किन्तु महाभारत इसका अपवाद है। महाभारत में हमें पति-पत्नी के सम्बन्धों के संविधान का अनुमान-सा विश्व मिलता है। इसमें यदि पति द्वारा पत्नी में कुछ कर्तव्यों की मांग की जाती है, तो पत्नी पति से भी उन्हीं कर्तव्यों के पालन की मांग करती है। यद्यपि सामान्य रूप से महाभारत पत्नी के लिए पति की सेवा भावना के विचार पर बल देती है, किन्तु उसमें प्राचीन संस्कारों की कुछ समझ अदृश्य है। इसमें तारी अनेक अधिकारों की रक्षा के लिए प्रयत्न कर रही दृष्टिबोधर होती है।

अकुलना में कुलान्त द्वारा निरस्तृत होने पर पति-पत्नी धर्म की विलुप्त भीष्माचार की है (महाभारत १।३५।३७)। उनके बारे में नाथ्य में बड़ा बोध और तर्कता है। हमें इसमें संदेह है कि आश्रयन स्त्री की स्मरणता तथा समानाधिकार के लिए उच्च मान्यता करने वाले भारीबादी (Ecclesiastical) दृष्टि रीति में मरिचों के महत्त्व का प्रतिपादन करते हैं। उनके मतानुसार 'स्त्री पतिधर्म का बाधक बल है, स्त्री दुर्मर्त्य का येष्ठतम विषय है, विषय का मूल है, गुरुत्व में प्रिय करने वाला सखा है, धर्म-धर्म में द्वितीय विषय के समान है, पीड़ा की दशा में माया के समान है। वह पति के लिए विनाशालय रास्ते में पथिक को आगम देते जाने स्वयं की भाँति है, संतति ब्रह्म होने पर भी पति को पत्नी का अग्रिम धर्म नहीं करना चाहिए, क्योंकि रति, प्रीति और धर्म सब धर्मों के द्वारा हैं।'^७ अनुमता की मारी युक्तियों का कारण है कि पति पत्नी के बिना मर्त्य को पूरा कर सकता है और न मुझी यह प्रकृत है। अतएव अंत के आदेश में भी स्त्री की दृष्टि के विषय कोई काम नहीं करता चाहिए।" निर्विह्वल अनुमता का यह बहुत बड़ा दावा था और वैदिक युग की भावना को सर्वथा अनुकूल था। किन्तु भास्वकारों ने इन अधिकारों को नहीं माना, और बाबा के अग्रिमवादिनी होने के दोष पर ही, एक पत्नी को संत कर दूसरी पत्नी को प्रहृष्ट करने का आदेश दिया (वीरामन धर्मसूत्र तथा मनु)। भारतीय भास्वों का चिन्तन करने वाले कानिदास ने अनुमता को कथ्य के मुंह से नहीं उपदेश दिखाना था कि पति द्वारा अनुमानित होने पर भी पति के अतिरिक्त आचरण मत करना (अभि० हर० ३।१५)।

^६ येरी नाथ, श्री अन्तेकर द्वारा अनुव, वेकिट पोसीजन मन्त्र चुनेन

^७ महाभारत १।३५।३२ दुर्धरबोधमि रामाणा न कुर्ममिधियं परः ।

रति प्रीति च धर्म च तत्त्वतस्तत्त्वमेव हि ॥

पति का मुख्य कर्तव्य—पत्नी का पालन

महाभारत में पति का प्रधान कर्तव्य पत्नी का भरण-पोषण करना बताया गया है। पत्नी भरण करने योग्य होने से भार्या कहलाती है, इसका अर्थ भरण वाले व्यक्ति को भर्ता कहा गया है और उसका पालन करने से वह पति कहलाता है। जो पति अपनी पत्नी का पालन न कर सके तो क्या उसे छोड़ कर पत्नी दूसरा विवाह कर सकती है; यह प्रश्न कुछ विवादार्थक है। दौर्धरता की पत्नी प्रदोषी अपने पति को उपर्युक्त कर्तव्य का पालन करानी हुई कहती है (१।१०-१।३१) कि 'यै सुभ्राती जन्माभ्या के काश्यपमुभ्रातृ और सुभ्राते पुत्रौ का भ्रातृ-सीपण कागी पात्रो धक भसी हूँ, अब और भरण नहीं कर सकूँगी'। इसके बाद अग्रे में यह अर्थ पति को पूर्ण ब्राह्मण का न पितृजा प्रेमी है। महाभारत (१२।२१६।३१-३७) में यह स्पष्ट कहा गया है कि मनुष्य स्त्री के भरण में अनर्थ और पासव से पति कहलाता है, यदि वह उस कर्तव्य का पालन नहीं करता तो वह न भर्ता है और न पति।^६ पति को हर हाल में पत्नी का पोषण करना चाहिए, यह विचार स्मृति-कारों ने बहुत बल के साथ रखा है। मनु ८।३-८ में कहा है कि भ्राता-पिता, स्त्री और पुत्र रक्षा के योग्य नहीं हैं, उनको सेवा और भरण-पोषण की सही छाँड़ जा मंगला। इन को छोड़ने वाले को रक्षा की धर से ६०० पण का दंड होता चाहिए।^७ याज्ञवल्क्य (१।७४) एक दुस्र दूसर विवाह कर देने पर वह स्त्री-स्त्री के भरण-पोषण को भ्रातृव्य कर्तव्य मानता है। यदि कुछ ब्राह्मण पालन करने धार्मिक, दम पुत्र पैदा करने वाली, मयूर पोषने वाली स्त्री को छोड़ देता या तो याज्ञवल्क्य के अनुसार उसे अपनी मर्ति का नीतंग हितार्थ पत्नी की सेवा पढ़ता था। यदि पति निर्धन हो तो उसे पत्नी का भरण-पोषण से अक्षय करना पड़ता था (भाष० १।७६, सारथ स्त्रीपु० २५)। दशमूनि (०।३६) पोष्य, धर्म में अर्थात् भ्रातृ-पोषण करने योग्य व्यक्तियों में पत्नी भी गणना करती है। हम मानें यह देखेंगे कि सर्वमान्य श्रवणों की पति में भरण के कर्तव्य पर बल देती है।

स्त्री की पराधीनता

उर्मसूत्रों के समय से ब्राह्मणविवाह के प्रचलन तथा कन्या की शिक्षा के बन्द होने से

^६ महाभारत १।१०-१।३१, साधविध सरकःपूर्ता पालनाच्च पतिः स्मृतः । वि० १२।२२६।३६ करणाद्धि निद्रया भर्ता पालनाच्च निद्रयाः पतिः । मुनत्तयास्य निवृत्तो न भर्ता न पुनः पतिः ।

^७ मनु ८।३-८, न माता न पिता न स्त्री न पुत्रस्त्यगमर्हति । त्यक्तस्त्यगितामेतत्सत्ता दण्डः घातानि च ॥ यह स्त्रीक धर्मसाक्षकारों को बहुत प्रिय है, दे० मनु० ६।३, धी० ध० धृ० १-११, कश्चित् ध० धृ० ५।१२, यज० १।८५, सारथ १।२८।३१, विश्व २५।१२।१३, महाविर्वाक्य ५।१०६, बीता० २।१।५९, भा० १।३।२०।३१ ।

स्त्री की स्थिति मिरने लगी और उसके अधिकारों का ह्रास होने लगा। उसी समय यह सिद्धांत प्रचलित हुआ कि स्त्री स्वातंत्र्य नहीं है, बचपन में पिता उसकी रक्षा करता है। बौद्ध धर्म में पति और पुरुषों में पुरुष, स्त्री कभी स्वतंत्र होने योग्य नहीं है (मनु ६/३)। बौद्धायन धर्मग्रंथ उसी वाक्य के साथ यह कहता है कि पति की आज्ञा का पालन करके पत्नी स्वर्गलोक प्राप्त करती है। इसमें की जन साम्प्रदायिक स्वातंत्र्यता से धुंध होकर एक आधुनिक स्त्री से यह सिद्धांत कि हिन्दू स्त्री पति से केवल एक ही स्त्रीत्व पर स्वतंत्र हो सकती है और यह स्त्रीत्व ही मरक।^{१०}

वास्तव में एक साम्प्रदायिक में हमें बहुत अधिक आधुनिक न बनने हुए, हम समय के, समाज की स्थिति को देखना चाहिए। जब सम्प्रदायों की छांटी बामु में जाती हो और वे विनयपूर्ण आचरण हो, तो उन्हें स्वतंत्रता कैसे दी जा सकती है? न केवल राज्य के विनय उच्च समय दूसरे राज्य समाजों की भी मही वषा भी। टकराव प्रभावित दूसरी समाज के विनय में गिरा है कि प्राचीन ब्रह्मण में कोई स्त्री अपने जीवन के किसी भी समय में स्वतंत्र नहीं हो सकती थी। यदि उगादा पति बीजित न हो तो उसका अधिकारण पुत्र साम्प्रदायिक उपाय अधिभाषक होता था और उसका ब्याह होने के बाद भी वह अधिभाषक बना रहता था। पति के विधित, पश्य और वसकयोगक होने की कारण स्त्री पर उसका प्रभाव रहता आवश्यक था।

मनु का आदर्श—मनु ने विवाह के विषय में जितना अच्छा आशय हमारे सामने रखा है, वह संभवतः किसी अन्य धर्मिकार में नहीं रहा। उसने अत्यन्तु मात्र पति-पत्नी आभरण एक-दूसरे के प्रति सम्बन्ध (सम्बन्धित) का व्यवहार करें, संजय में सही स्त्री-पुरुषों का सम्बन्ध प्रदर्श है। विवाह करने स्त्री-पुरुष ऐसा दण्ड करें कि (अपराधकार के विषय में) एक दूसरे से अलग होकर जगल में प्रतिष्ठा प्राप्त पर सम्बन्धित न करें।^{११}

स्त्री के अन्य कर्तव्य—धर्मिकारों में स्त्री का धर्म अपने पति की सेवा और घर का काम करना बताया है। पवित्रता उसके लिए शुभकृत में विवाह के लक्ष्य घर का काम अधिहारा करने के लक्ष्य है (मनु २/६७)। उसके आधिकारिक कार्यों का मजबूत करते हुए मनु कहता है (२/१४०, २/१४१) “स्त्री का धर्म है कि वह सदा प्रसन्न रहे, घर के कार्यों में मदुर हो, घर की सामग्री की रक्षा रखे, कर्म काम करे, पिता ने अपना पिता की अनुमति से पाई ने स्त्री को जिस पति की दीया, वह उस पति के जीने तक उसकी सेवा

^{१०} एपाबाई—बी हुई काल हिन्दू-मुसल, पृ० ४१। इस विषय के विस्तृत विश्लेषण के लिए देखिये हरिदत्त—हिन्दू परिवार प्रीतिभा, पृ० ११६

^{११} मनु २/१०१-२ अन्योपस्थाप्यविचारों प्रयोगपरमस्थितः। एव धर्मः समासेन सेवः स्त्रीपुंसयोः परः। तथा सित्यं वसेयता स्त्रीपुंसी सुकृतिक्या। यथा नाभि-वरेतां तो विपुस्त्यवितरेतम्।

करे, उसके मरने पर भी उसका दलभजन न करे। पति के लोक में जाने की इच्छा वाली पतिव्रता स्त्री को उचित है कि वह अपना पाणिपट्टन करने वाले पति के जीवन काम में व्यवसा उसके मरने पर भी उसका कोई अभिग्रह काम न करे।" ये बातें नवीनीक थीं, किन्तु इनके अतिरिक्त धनु ने ५११४४ में अपने उपर्युक्त वैवाहिक आदर्श के सम्बन्ध में निम्नलिखित यह कहा कि पतिव्रता स्त्री को उचित है कि पति यदि जीवन्मृत, परन्तीनामी अथवा मृत्यो से हीन हो ही भी यह देवता के समान उसकी सेवा करे।

पतिव्रत का आदर्श तथा माहात्म्य

मनु स्मृतियों के लिए पतिव्रत धर्म का मान्यता, पार्श्विक के उत्तम स्त्रियों के प्रशंसन से तथा नरक के भूतत्वों की भीति द्वारा आवश्यकता बता देता पाता है। "जो स्त्री भय, भयान और हेतु से जीवन्मृत के साथ अभिभार नहीं रहती है, वह अपने पति पति के साथ स्वर्ग में निवास करती है और येष्ट सावर्ग द्वारा पतिव्रता पत्नी बानी है। जो स्त्री पति के साथ अभिभार करती है, वह इस लोक में निन्दित होती है, मरने पर सिपाई बन जाती है और अनेक दोषों से पीड़ित होती है" (मनु ६।२८-३०, ५।१९६१)। महाभारत तथा पुराणों में पतिव्रता का महत्त्व की भाषा के लिए अनेक किंवदन्ति कहानियाँ और चमत्कार बताये गये हैं। इत्यन्त में पतिव्रता गान्धारी ने कहा है कि मुझ अपने कोश से दौलत मेरा द्वारा गरीब मृषी को असाध में सार्थ हो (६।३।२१)। मार्कण्डेय पर्व में अनेक पतिव्रत के प्रसंग से मनु पति को पुनः प्राप्त किया था (महाभारत ३।२६३-२६६)। सामर इती आधार पर स्कन्दपुराण (३ खण्डस्कन्द, पर्व ५।५४, ५५) कहता है कि "जैत मरेरा भिन्न से साँप का निवासना है, वैसे ही पतिव्रता अपने पति के जीवन की मृत्यु के हस्तों से छील लेती है, पति के साथ स्वर्गलोक का पहुँचती है, पतिव्रता को देखकर यमभूत भाग भाते हैं।" पतिव्रता के महात्म्य की पराकाष्ठा त्रिशूतमात्र में उपाध का रूप में हुई।

पतिव्रता के कर्तव्य—स्मृतियों में पतिव्रता स्त्रियों के अनेक कर्तव्य बताये गये हैं। म्यासस्मृति (२।२१ प्र०) स्त्री के दैनिक कर्तव्यों का वर्णन करती हुई कहती है कि "वह पति से पहले उठे, खीर की मूट्टि करे, लम्बा को सहाये, हाँडू आदि से घर को साफ करे, अग्निवासा व अंगन को सीप कर मूट्ट करे। (घोरे से) बाहर खोई के सब पावों को धोये, मिट्टी के चूल्हे को सीप कर उसमें भात रखे। भाली के समान सदा पति को आज्ञा का पालन करे, रखाई बनाकर अतिथिवासे दिये हुए अन्न को पुतादि को और पति को खिलाये और पति की आज्ञा होने पर बचे हुए अन्न से स्वयं भोजन करे। भोजन करते भोजन दिन को आमदनी और कर्ष की चिन्ता में बिताये।" पतिव्रता स्त्री भिरव ही उत्तम स्वादिष्ट पक्वान्न बनाकर प्रीतिपूर्वक पति को खिलाये, फिर स्वयं भोजन करेगी भली प्रकार सम्मान को बिठाकर पति की सेवा करे, पति के सो जाने पर मन में पति का ध्यान करती हुई उसके निकट ही जाये।

स्त्री के लिए निश्चित कार्य—अनेक स्मृतियों में स्त्री के लिए निश्चित कार्यों का विस्तार से परिचयन किया गया है। उदाहरणार्थ, विज्ञानशालाकार विज्ञानमन्त्र १।८७ की श्लोका में स्त्रियों के जीवन काचार के विषय में संक्षेप द्वारा निर्दिष्ट विभिन्न निर्देशों का वर्णन करता है—“मह्यं चर मेदिना चर्यं बाह्यं न आये, उद्योग्यं मोक्षं वनैर न जाये, जन्वी न भवे; अग्निं, मन्वासी, वृद्धं वृद्धं के अनिश्चित किसी परपुरुष से शात न करे, अगनी भाषि भुषी न रहे, लड़ी न क कटका पहने, स्नानों पर से काढ़ा न हटाये, बड़े भूँ बड़े बिना न हो, गति धा मन्त्रियों से युवा न करे। बह्यं मोक्ष, भूते, अग्निवाहिनी, मन्वाहिनी, भाव्य वाताने वाणी, भाव्य-द्वेष्टा तथा वृद्ध विधियाँ करने वाली दुःखी स्त्रियों की संगति न करे। इनकी संगति से कुलविधियों का भंग हो जाता है।”

गति के विदेश जाने पर, प्रोपितपति का स्त्री को सब प्रकार से भक्षणों से उचित रूप का परामर्श दिया गया है। शास्त्रमन्त्र कहता है (१।८८) —“प्रोपितपति का भक्षण के योग्य, शरीर की सजाया, सजाया और उचित देखभाल, हँसना और दूसरे के घर में जाना छोड़ दे”। व्यासस्मृति (२।१२) दो इस राजा में स्त्री का यह घर कर पूरा भोजन करने से भी बचा करती है। संक्षेप-निश्चित ने प्रोपितपति का करनीय कर्तव्यों की एक लम्बी सूची दी है। उसे सुने और याद में रखे रहना चाहिए। बिना यही देखभाल चाहिए, अपनी से नहीं चुपचा चाहिए, चुने स्वामी में अमायु होकर नहीं सोना चाहिए, उचित भोजन और वेस में चलना चाहिए, गैर से संगत, सुपुत्रित इत्यादि, भूमा और भाभूपन, उचित भोजन और भक्ति का जीवन उसके लिए अधिक है।

वतिवत्ता ब्रह्मणः परीक्षा—स्त्री के अपने लक्षण में कहे हैं तो ये हैं—“मन, मन, शरीर में मृदु रहती हुई मृदु स्वेता सम्राट की मृदु पति का अनुसरण करे, स्त्री के समान पति का हित करे, दासी में समान पति की आज्ञा का पालन करे।” एक मन्त्र में कहे भी पति, स्त्री का देखता है। महाभारत के मन्त्रों में “स्त्रियों के लिए पति देख है”। पति ब्रह्मा ही वा धुरा, उचित कहा है वा अनुचित, पतिवत्ता वाली आती एक ही कर्तव्य है कि वह उसे मौखिक रूप से कर माने और उसकी इच्छा पूरी करे क्योंकि पति देखता है, देखता की आज्ञा का पालन होता चाहिए। हिन्दु नारियों का भक्षण पतिवत्ता होता है। उनके आदर्श कथन के हैं—“स्त्री के लिए पति देखता है, वही उसका गुरु और भगवत् है, अतः स्त्री की पानों द्वारा (जपने प्राण देकर भी) पति के लिए श्रेष्ठ कार्य करना चाहिए।”

सौदा के इस मायने पर स्त्री की हुई कपड़ों हिन्दू स्त्रियों में पतिवत्ता के कठोर धर्म का पालन किया है।

अथ वैवाहिक अधिकारों के सम्बन्ध में विभिन्न प्रश्नों पर विचार किया जायगा।

- १— स्त्री को दण्ड देने का अधिकार,
- २— साम्प्रदायिक अधिकारों की पुनः प्राप्ति,
- ३— व्यक्तिगत विषयक नियम।

दण्ड का अधिकार

पति अपनी पत्नी को दो प्रकार से दण्ड दे सकता है—पीट कर या भुमना बांधे। ब्रह्मसंहिता में भवेत्ती इति पीटने के अधिकार पर नरक-को सिद्धांत, किन्तु धर्म यह नहीं मानता कि पिता पुत्रान् मारने में यह अधिकार सब देवों के पतिव्रता को प्राप्त था और सम्प्रति के अस्मिन्मानी दण्डलक्ष्य से १८६१ तक पति पत्नी को पीट सकता था। पुर्न जमाने में भारत में जब स्त्रियाँ अपने अधिकारों के प्रति जागृत थी, पति अपनी पत्नी को धक निसल मर्यादा के भीतर ही पीट सकता था। कौटिल्य में वर्णनार्थ (५.२.११) में यह व्यवस्था की थी कि "यदि स्त्री पति की आज्ञा न मानती हो तो पति 'शर्म' 'नवी', 'अशर्म', 'वापसरी', 'मांसरी' आदि गतिविधियों में एक न प्रत्यक्षपूर्वक 'पुनः' की शिक्षा दे। यदि इस प्रकार शिक्षा देने पर भी पत्नी उसकी आज्ञा पर ध्यान न दे तो पति की पत्नी को पीट, रस्सी से बांध में उसे तीन बार चराना जा सकता है। यदि वह फिर भी बांध न माने तो (अवसत द्वारा) उसे बाणदण्ड या पौष्प दण्ड का आधा दण्ड दिया जा सकता है"। इसमें यह स्पष्ट है कि पति अपनी पत्नी को तीन से अधिक दण्ड नहीं मार सकता था। मनु (५.१२.६६-१००) अपराध करने पर स्त्री, पुत्र, दाम, नौकर और भाई को रस्सी या बाँध की बाँधी (वेन्दुल) से पीटने का विधान करता है, किन्तु इस वर्ण के साथ कि इन्हें सर्वे पीट पर बारा बाँध, तिर पर नहीं। इस नियम का उल्लंघन करने काफ़ी को पोर का दण्ड दिया जाना चाहिए। गण्डवृत्ति (१४/१६) के अनुसार पत्नी की सर्वे प्यार करना चाहिए और मानना भी चाहिए क्योंकि ऐसा करने से वह स्त्री भौतिकीय होती है, मरणा नहीं। इन अवसरों में शांत होता है कि प्राचीन भारत में पति को मनु ज्ञेय से तथा कुछ मर्यादाओं के भीतर रहते हुए पत्नी को पीटने का अधिकार था।

पत्नी को दण्ड देने का दूसरा उपाय उस पर भुमना करना या उसकी सम्पत्ति छीनना था। मनु (६.१०४) के अनुसार जो स्त्री गँगे जल पर भी प्रवास पीती हो या घर से बाहर नरक-उमाभा देखने जाती हो उसे मर्दण्ड दिया जाता था। मनु (६.१०७) के अनुसार पति अपने से डेढ़ रकम का स्त्री को एक वर्ष तक देखता रहे, एक वर्ष के बाद भी यदि वह वैध करे तो पति उसकी सम्पत्ति छीन ले और उसकी सहाय के मुक्त से वित्त करे।

साम्प्रत्य अधिकारों की भूमि: श्राप्ति

विवाह ही जाने पर पति-पत्नी का यह अधिकार है कि वह परस्पर सहवास के सुख का उपयोग करें। यदि उन दोनों में कोई एक दूसरे को इस अधिकार से वंचित करता है तो वह निःसंशुद्ध अशर्म का जाता है। कौटिल्य धर्मसूत्र ४.१.१६.२०-२२ के इस विषय पर बहुत स्पष्ट व्यवस्था की है कि "यदि पति तीन वर्ष तक अनुमती स्त्री के पास नहीं जाता है तो उसे भूणहत्या का पाप लगता है; जो स्त्री पति को अपने पास जाने से रोक, उसे पति

के लिए मृत्युदण्ड की व्यवस्था की है। कानी बालि और मुर्जा के अभिमान से पराक्रम के साथ संग करने वाली स्त्री के दण्ड का भाव उल्लेख होगा। किन्तु ऐसा संप्रदाय करने वाले पुर्वक का मनु में सोत्रों के प्रथम विस्तार पर आग ले असा देने का विधान किया है (८।३।७२)। मारुत ने (१६।२) व्यभिचार की, महाभोग बताने हुए पुच्छ पर १००० पथ के दण्ड की, सम्पत्ति की अन्धी की, निष्कायन की, भिक्षासेवन की और मृत्यु-दण्ड की व्यवस्था की है।

व्यभिचारो होने पर पुच्छों के लिए कठोर दण्ड की व्यवस्था करने हुए, शास्त्र-कारों ने व्यभिचारिणी स्त्री को दण्ड देने में तरती दीवानी है। मनु (८।३।७१), शौतम (१२।१।४) और महाभोग (१२।१३।१५५-६४) में यथार्थ दण्ड विधान में उदात्त विचारों है और व्यभिचारिणी स्त्री को गार्हपत्यिग स्वाग में कुत्ता द्वारा कटवाये जाने का विधान किया है, किन्तु अधिकार स्मृतिकार इसके दण्ड तथा मरण प्रागज्ज्ञान को पर्याप्त समझते हैं। कुछ स्मृतिकार वहाँ तक कहते हैं कि उसे शूद्र की आवश्यकता की नहीं, बल्कि रजःश्राव में ही मृत्यु आती है। व्यभिचारिणी संतनु पर भी उसे पनि से भरण-पोषण पाने का पूरा अधिकार है। मनु ने स्वर्ग ११।१७७-७८ में व्यभिचारिणी होने पर स्त्री को घर में रोक रखने तथा रोक रखने पर व्यभिचारिणी होने पर भी आन्ध्रमण ब्रह्म से उच्छेदी सुक्ति मानी है। याज्ञ० (१।७०) कहता है कि व्यभिचारिणी स्त्री से भग के मन्त्र अधिकार छीन बाहर, जैसे बस्त्र पहिना कर उसे केवल जीवन रहने के लिए निवास योग्य भोजन देकर, जनावर के साथ बरा भूमि पर सुसाना चाहिए। नाग्य (१२।६१-६२) ने ऐश्वर्य विधान किया है, किन्तु पुराने मूलकार इस हर तक नहीं गये थे। वीद्याधन २।२।५० में सामान्य व्यभिचार में कुछ व्रत से और गृह के साथ संयोग करने पर आन्ध्रमण भग से स्त्री का धुड़ होगा मानता है। वसिष्ठ (२१।५-१०) व्यभिचारिणी स्त्री की मूर्ख को बड़ी विस्तृत विधि देता है। अनेक मासकालों का भग है कि स्त्री व्यभिचार से दुषित नहीं होती है। मात० (१।७।१) ने कहा है कि स्त्रियों का कर्ममात्रे शौच, गन्धर्व ने उत्तम वाणी और पवित्रता दी है, इत्यादि स्त्रियों सब प्रकार के पवित्र हैं। वीद्याधन (२।२।५७) ने स्त्रियों की सर्वथा धुड़ होने की दूररी मूल मह दी है कि प्रतिभास का रजःश्राव इसके पापों और मन्त्रों को दूर करता है^{१२}। यह युक्ति अति ३।१६५ में भी पानी आती है। मातृवन्धन में परपुत्र से प्राप्त धर्म की रक्षण के पर व्यभिचारिणी स्त्री की शूद्रि मानी है। अति (३।१६५-३, मि० देवत ५०-५५) ने विस्तारपूर्वक यह बताया है कि पतिव्रतों की अपनी व्यभिचारिणी स्त्रियों का परिवर्तन नहीं करना चाहिए, स्त्रियों किसी भी सम्बन्ध से दुषित नहीं होती, क्योंकि प्रतिभास रजःश्राव उनकी अशुद्धि को

^{१२} वीद्याधनधर्मसूत्र २।२।५७, विज्ञानः पवित्रमनुषं निवः शुद्धमिति कर्तव्यम् । मासि मासि रजो ह्रासो दुषितमपकर्षति ॥

हो देता है। केवल गर्म होने पर ही वह जल्य (सत्तान) को प्रतीक्षा करे उसके निम्न जाने पर रजःसाध के बाद वे खुल हो जायी है।

शास्त्रकारों द्वारा स्त्री को व्यक्तिभार को इससे हलनेमन से देखे जाने का विशेष कारण है। वे स्त्री को संबंधा परतन्त्र समझते थे, वह स्त्री यदि ऐसा कार्य करती है तो इस पाप को किए लगका पति चापी है, जो उस पर हीक सबहु निमन्त्रण नहीं रखता है। इसी लिए ब्रिगारु धर्मपुत्र (१६.४६) ने तथा मनु २.३.१७ में कहा गया है कि स्त्री के व्यक्तिभारिणी होने पर उसके पति को उसके व्यक्तिभार का पाप लगता है।

स्त्रियों के व्यक्तिभारिणी होने पर, केवल पुराने शास्त्रकारों ने ही उन्हें हल्का दण्ड नहीं दिया, बल्कि बनेमन विद्वान-निर्माताओं ने भी भारतीय दण्ड विज्ञान में व्यक्तिभार को दण्डनीय अपराध बताते हुए स्त्री को इस अपराध के दण्ड से मुक्त किया है। स्त्री को ऐसी छूट देने का कारण सा बमीधन ने इस प्रकार स्पष्ट किया था—'इस देश की स्त्रियों की रीतिविधि दुर्भाग्यवशा दृगसेम्य और फल की स्त्रियों में बर्माया सिद्ध है। उनका दण्डन में विवाह हो जाता है। पति-दूसरी दुबली पत्नियों के काम्य उनकी अपेक्षा करता है। अपनी कई स्त्रियों के साथ ही वे पति का ध्यान अपनी ओर धीमे रखती हैं। जब तक पति का अपना अन्त पुर विधियों में सरने की काम्य द्वारा पूरी स्वतंत्रता मिली हुई है, जब तक पत्नी के व्यक्तिभार को दण्डनीय अपराध बनाने के काम्य को हम बाल्यमय नहीं समझते'।

पुनर्विवाह के विषय में स्त्रियों के साथ धास्त्य में अन्याय हुआ है, बिल्कुल इस विषय का हम अपने अध्याय में विस्तार से देखेंगे।

विवाह-विच्छेद या तलाक

हिन्दू समाज में यह विवाहसंस्था पाया जाता है कि विवाह एक अविवर्धनीय सम्बन्ध है, पति-पत्नी के बीच समाज में विद्यमान विच्छेद नहीं हो सकता, मृत्यु भी इस सम्बन्ध को अंग नहीं कर सकता, तभी तलाक फल-जमाना में से भी आने परि की प्राप्ति करनी है। उन्मत्त कोई व्यक्ति नहीं कि वह विवाहसंस्था में प्रवेश करने के धर्मशास्त्रों के अन्तर्गत में प्राप्त होता है, किन्तु यदि ऐतिहासिक दृष्टि से देखा जाय तो मनुस्मृति में भी कि वृद्धावस्था में ६० वृ० से मनुस्मृति तथा कर्मकाण्ड की अन्तर्गत मनुस्मृतियों में विवाह की अविवर्धनीय सम्बन्ध के रूप में प्रतिपादित किया है। उन्मत्त पक्ष में भी विवाहों को धर्म पवित्रता नहीं मिली थी; विधियों का गुण विवाह की आत्मा के बाद उन्हें कुछ विशेष अवस्थाओं में वृद्धावस्था विवाह करने का अधिकार था। मनुस्मृति के बाद की कुछ मनुस्मृतियों में भी विधियों का यह अधिकार स्वीकृत किया, किन्तु बाद में हिन्दू समाज में विधियों की चला गिरनी गयी और उन्मत्त यह अधिकार छिन गया।

वैदिक काल में स्त्री का पुनर्विवाह

वैदिक युग में पति के मर जाने पर पत्नी को वृद्धावस्था विवाह करने का अधिकार प्रदत्त रूप में था।^१ यदि पति-पत्नी का सम्बन्ध अविवर्धनीय है, तो पत्नी को दूसरे विवाह का अधिकार नहीं होना चाहिए। उसे आधरभ वैधव्य का जीवन बिताते हुए अपने भुक्त पति की शक्ति करनी चाहिए। इस आगे चल कर यह देखें कि जिस समय से हिन्दू समाज में विवाह को अविवर्धनीय सम्बन्ध मानने का धिक्कात्त शुरू रूप से माना जाने लगा, उसी समय से स्त्रियों का वृद्धावस्था विवाह बन्द हो गया। किन्तु वैदिक साहित्य में स्त्रियों के पुनर्विवाह के कुछ संकेत मिलते हैं। अथर्ववेद के एक मन्त्र में स्त्री के पुनर्विवाह की उक्ति है—“ओ पशुं पति को प्राप्त करने के पश्चात् वृद्धावस्था पति को प्राप्त करती है, के दोनो, ‘पञ्चोदय अन्व’ को वेते हैं और पुनः नहीं होते। जो वृद्धावस्था पति ‘पञ्चोदय अन्व’ और इतिहास के अनुसार अन्व को देता है, वह पुनर्विवाहित स्त्री के क्षम सम्मान देन करता होता

^१ को वं मातुला विधवेन देवतम्। (अष्ट० १०।४०।१)

उदीर्घं ताम्बिनी श्रीमतीकं गतामुत्तेतमुपशोच एहि।

हस्तसामन्य विधिभीस्त्वये पत्युर्नित्यमि तं वसुप (अष्ट० १०।१५।८)

है।^१ हमें यही 'पंचोदक अज' के पक्ष में पक्षों की जरूरत नहीं। वह तो विधायन है, किन्तु इससे यह स्पष्ट है कि स्त्रियों को कुछ विशेष दशाओं में पुनर्विवाह का अधिकार था। यहाँ से पुनर्विवाह की विशेष दशाओं पर कुछ अधिक प्रकाश नहीं पड़ता।

धर्मसूत्र और पुनर्विवाह

ऐदिक युग के बाद मनुष्यों के आधार की वैधानुक्रमिक एवं उत्तम वर्णन के लिए धर्मसूत्रों की रचना हुई। इन धर्मसूत्रों में विवाह सम्बन्धी आचारों का भी प्रतिपादन है। वेदों में स्त्रियों के पुनर्विवाह की विशेष दशाओं पर अधिकार का प्रश्न पड़ा हुआ है, धर्मसूत्रकारों ने उस परदे को चीका सा उड़ा दिया है। स्त्रियों के पुनर्विवाह की अवस्थाओं में प्रकाश मुख्य है। नलिप्ट धर्मसूत्र में इस विषय का विस्तार में प्रतिपादन है और वह इस प्रकार है—'प्राप्यतन्वस्त्री (अथवा पति विदेश गन्ता गयी) पश्चि चर्ष सप्त प्रदीक्षा करके, उसके बाद पति के पास आय। यदि धार्मिक व अधार्मिक कारणों से उसमें गम न जा सके तो उसे इस प्रकार का व्यवहार करना चाहिए कि उसका पति मर चुका है। सम्मानवती आश्रमी पश्चि चर्ष तथा निःसन्तान चर चर्ष, सम्मानवती क्षत्रिया पश्चि चर्ष तथा निःसन्तान गौण चर्ष, मन्थानकर्त्री ब्रह्माचार चर्ष और निःसन्तान गौ चर्ष तथा मन्थानवती शूद्रा चर्ष और निःसन्तान गुरु चर्ष पति की विशेष से संतान की प्रतीक्षा करे। इसके बाद वह पति के गमन स्वार्थ, नाति, पिण्ड, उदक व गोमूत्र वाले श्रोत से विवाह करे। इसमें गृहस्था ध्यति पिछ्णों से अधिक गौरव बताया है।^२ अतिपुत्र की इस व्यवस्था से स्पष्ट है कि श्रोतित वरिष्ठ का पत्नी की वाङ्मय चर्ष की हमें परंपरा चर्ष बाद दूसरा पति करण करने का अधिकार था। इस सम्बन्ध में यह स्मरण रखना चाहिए कि चतुर्मासभूय में मातापिता एवं पत्न-व्यवहार के सामन्य दसिप्ट धर्मसूत्र के समय की अपेक्षा बहुत उन्नत हो गये हैं, ताँ की इंग्लैण्ड के १६३६। 'दि मैट्रिमोनियल कान्वेन्ट एक्ट'

^१ या पूर्व धीति हित्वा अध्यायं चिन्तते पतिम्।

पंचोदकं च तावजं वदती न विधेयतः॥

समादलोको न भवति पुनर्मुखा परः पतिः।

श्रोत्रं पंचोदकं वक्षिता श्रोतिपं वदति॥ (अथर्व० ३।५।१६-१७)

अथर्व ५।१७।६-६ में ऊँचे पतिर्षों का संकेत है किन्तु यह वर्णन आध्यात्मिक प्रतीत होता है।

^२ श्रोतितपती पंचवर्षाभ्युपसीत्। अथ पंचोदकी चर्षोऽथो कर्तुं सकार्यं गच्छेत्। पति धर्मार्थीया प्रवृत्ते प्रत्यनुकाशा न स्माद्यथा श्रेत एव वर्तितव्यं स्यात्। एवं वाङ्मयी पंच मासावधायता कर्तारि...। अत उक्तं सप्तमासं सम्पत्तिकोदकपौत्राणां पुत्रो मुनीं गरीयान् (अतिपुत्र धर्मसूत्र अध्याय १७, सूत्र ७५-८०)।

(The Matrimonial Causes Act) में यह अवधि सात वर्ष रखी गयी है। १९२२ के हिन्दू विवाह कानून में भी यह अवधि छान्त कर दी है। किन्तु नतिष्ठ ने इसे अधिक में अधिक ब्राह्मणों के लिए पाँच वर्ष तथा मुरा के लिए कम में कम दो वर्ष रखा है। नतिष्ठ धर्मग्रन्थ में पाँच वर्ष अवधियों में भी गम्भी को पुनर्विवाह का अधिकार दिया है—जै पति का मृत्यु होना, यातिष्कृत होना, मर जाता यदि है। "जो अपनी कुमाराभ्या के भर्ता को छोड़ कर दूसरे व्यक्तियों में विषम्य करके उन पतिव्रत में आ जाती है वह 'पुनर्भू' है। जो मृत्यु, याति से भ्रष्ट या उन्मत्त पति को छोड़ कर जबका पति के मरण पर पुनरे पति को प्राप्त करती है, वह भी 'पुनर्भू' होती है"।^१ बौधायन धर्मसूत्र (८।२।२६) केवल मृत्युव्रत की आतिष्ठा के ही स्त्री के पुनर्विवाह का कारण मानता है। इन अवध में यह भी कह देना उचित है कि विवाह मन्त्रा के समय यदि पति मर जाता है तो मैत्री अक्षतयोगि कण्ठ के पुनः स्फुरण का बोधो अवैधवर्ती में विधान है (बौधायन धर्मसूत्र १।१।१०, नतिष्ठ १।३।६२, ६४)।

महाभारत व बौद्ध साहित्य में मनाक

प्राचीन इतिहास में विवाह विच्छेद के ऐतिहासिक प्रमाण बहुत कम मिलते हैं। बौद्धगमा की पत्नी प्रसेवी ने अपने पति से छान्त जाकर उसे पूर्वी इराक देश में विक्रय दिया था (महाभा० आदि पर्व)। किन्तु महाभारत इस विषय में भी है कि प्रसेवी ने दूसरा विवाह किया था नहीं। बौद्ध वाङ्मय में अक्सर इस प्रकार के वृत्त मिलते हैं कि स्त्रियों का पुनर्विवाह होता था। उल्लेख आतक (पृ० ६७) से हमें ज्ञान होता है कि महा बाद एक स्त्री का पति, भाई और पुत्र मरने पर। उसने अपने सम्बन्धियों के लिए उन्मत्त से विवाह शुरू किया। उस स्त्री के विवाह करे बादमादने राजा के हृदय को इतित कर दिया। राजा ने उससे कहा—"मैं इन तीन में से एक को छान्त करता हूँ। तुम इनमें से किसी छान्तवाना चाहती हो? स्त्री ने उत्तर दिया—"महायज! यदि मैं जोचित नहीं तो मैं दूसरा पति और दूसरा पुत्र प्राप्त कर सकती हूँ, किन्तु मेरे माता-पिता मर चुके हैं, अब मैं दूसरा भाई प्राप्त नहीं कर सकती, इतिमिष्ट, मुझे मेरा भाई देने की कृपा करें।" स्त्री का यह उत्तर स्पष्ट रूप से सिद्ध करता है कि उस समय स्त्री दूसरा विवाह कर सकती थी। बेरीनामा न० क० (५०-२६०) में इमी नामक बाली का वर्णन है। इमीवाली का विवाह पहले नमोष्ठा के एक व्यापारी से हुआ था। उस व्यापारी ने उसे एक महीने में ही छोड़ दिया। इसके बाद उसके पिता ने एक अन्य व्यक्ति के इमीवाली की खाली की, किन्तु महा

* नतिष्ठ धर्मसूत्र १६।१६-२०, पर जैकारं उत्तराकुसुमाव्याजः सः चरित्वा तस्यैव कुटुम्बसम्पत्तिं वा पुनर्भू भवति। वा न जैकारं पतितकुसुमं वा उत्तराकुसुमाव्याजं पति किमपि ज्ञो वा ता पुनर्भू भवति।

भी बहुपति को पसन्द नहीं आयी और एक सहीने बाप याता-पिता के पास लौट आयी। छिटर जेबारा एक तीसरे व्यक्ति से विवाह हुआ, किन्तु यह विवाह १५ दिन भी नहीं टिक। उसे यह पता लगा कि उससे पति ने उसकी अनुपस्थिति में दूसरा विवाह कर लिया है। वह उसने पति के पास लौटने से इन्कार किया। कुछ के कहने से एक रात ने उसे गोद से लिया और उसका विवाह सञ्जाल कुल के एक व्यक्ति से कर दिया। अन्तिम निवेदन (पृ० ६० पृ० ७७-८२, १०१-१०६) में हमें यह पता चलता है, जिस के व्यक्ति एक तलाक की हुई स्त्री को उसकी प्रकृति के विच्छेद एक वर्ष पति से अलग था। किन्तु कुछ काल के विच्छेद के पुनर्विवाह की दृष्टि से चेन्नै लगे जाया। अन्तिम निवेदन (इन्फण्ट प्रिन्सिपल) अन्तः (८४६) में सचिव ने अपनी पत्नी से यह प्रश्न करता है कि "मेरे घर से मुझे अधिकतर दृष्टि वाली कबाली की वला से अपनी स्त्री के रूप में नहीं से आया था, व विच्छेद में मेरे साथ अपने साथ जीवन में फिर प्रकट नहीं?" अन्तिम की स्त्री उत्तर देती है कि "इस मुझ में यह प्रकट नहीं है कि विवाहित स्त्री कोई तथा पति कर, न कभी ऐसा हुआ है। मैंने इस विच्छेद का वास्तव विच्छेद भाग मुझे कोई भी न कहे। ऐसे अन्तः के प्रश्न में मुझे यहाँ उल्टे लगे मेरे नाम प्रेमपूर्ण होकर खुले को बाध्य किया।" उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि यदि अन्तिम में विवाह विच्छेद के अन्तः उल्टे लगे गिनाते हैं, किन्तु उसे लगे इस प्रश्न को अन्तः नहीं समझा जाता था।

कौटिल्य तथा पुनर्विवाह

अन्तिम की बाप कौटिल्य अन्तिम ने इस विषय की विचार से नहीं है कि पति के अन्तः एक विच्छेद प्रकट में अन्तः पति-विच्छेद तथा विवाह विच्छेद के अन्तः में कौटिल्य ने बहुत लम्बे तथा अन्तःपूर्ण विचार किया है। कौटिल्य यह अन्तः लगे समझता था कि विच्छेद की कुछ अन्तःपूर्ण में अन्तः के अपने पति से विच्छेद की जाती है, पति पुनर्विवाह का अधिकार न दिया था तो अन्तः में अन्तः, अन्तिम एक अन्तः बहुत बड़ा था। अन्तिम के लिए अन्तिम से अन्तः लगे अन्तिम के अन्तः की यदि अन्तिम पति नहीं मिलेगा तो वह अन्तिम माता से अन्तः अन्तिम की अन्तः करेगी। अन्तिम कौटिल्य (३।३।४२) में स्पष्ट अन्तिम में यह अन्तिम की कि "स्त्री के अन्तः का उपरोध (अन्तः) से अन्तिम के अन्तः का न होगा। अन्तिम का अन्तिम है।" अन्तिम अन्तिम की दृष्टि में अन्तिम है कौटिल्य ने अन्तिम प्रकट के विवाहों में, अन्तिम में अन्तिम ही या अन्तिम, अन्तिम विच्छेद अन्तिम-विच्छेद में अन्तिम विवाह का विधान किया है। अन्तिम अन्तिम-अन्तिम में अन्तिम-विवाहों को अन्तिम विवाह आता है और अन्तिम अन्तिम-अन्तिम आता है, अन्तिम अन्तिम-विवाहों के विच्छेद में कौटिल्य की अन्तिम-अन्तिम अन्तिम अन्तिम है।

* तीनों-दोनों ही अन्तिम अन्तिम कौटिल्यः। (अन्तिम-अन्तिम ३।३।४२)

उसके भद्रानुसार (३।४।३-४५) धर्मविवाह से परिपूर्ण कुमार पति आपत्ति-यस्त हो और पति उससे बिना पक्षे विवेका भला गया हो, तो स्त्री सात तीर्थों (याज्ञिक धर्मों) तक प्रतीक्षा करे, कहकर गया हो तो एक वर्ष तक प्रतीक्षा करे, पति के विदेश जाने पर कोई समाचार न मिले तो पति तीर्थों का प्रतीक्षा करे और म्रियन्त पर दश तीर्थों तक। इसके बाद धर्मप्रतिष्ठा की आशा पाकर वह अपनी इच्छानुसार विवाह कर सकती है। बोले समय के लिए बाहर जाने वाले (हस्तममसी) पतिव्रता की पुत्रहीन स्त्रियाँ एक वर्ष तक प्रतीक्षा करें और पुत्रपत्नी इससे अधिक। यदि पति उनके धर्म-गोपण का प्रबन्ध कर पक्ष हो तो दुगते कान तक। पति के उद्देश्य में बड़े ब्रह्मर्षी की स्त्रियाँ दस वर्ष तक प्रतीक्षा करें और राज्य कार्य पर गये पुरुषों की स्त्रियाँ आयु धर्मन्त (अर्धशास्त्र ३।४।२६-२०)। आयु गर्वन्त प्रतीक्षा की अवधि बहुत आधी होती है। कौटिल्य ने इस अवधि के लिए विशेष छूट दी है। इस तत्त्व आयु धर्मन्त प्रतीक्षा करने वाली स्त्री का यदि समान वर्ष के निर्मा पुत्र के बन्धन पैदा हो जाय तो वह तिन्धनीय नहीं है (अर्धशास्त्र ३।४।३१)। तीर्थगरोक्ष का धर्म ब्रह्म मानने वाले कौटिल्य के लिए ऐसी व्यवस्था करना स्वाभाविक ही है। इसीलिए कौटिल्य (३।४।४३) ने पति के बोधेप्रमाणी एवं संन्यासी होने अथवा मर जाने पर सात महीने की प्रतीक्षा के बाद स्त्री को पुनर्विवाह की आज्ञा दी है।

तत्ताक के सम्बन्ध में कौटिल्य (३।२।५६) का स्पष्ट मत ॥ कि नीच, प्रमाणी, राजाहीन, भ्रातृक (जाति अथवा धर्म के आधार से) पतित, तपुस्तक पति स्त्री के लिए त्याग्य है।^१ यह नियम पहले बार प्रकार के ब्राह्मणिक धर्मविवाहों के लिए है। दूसरे विवाहों के लिए कौटिल्य बहुत उत्पार है। प्राचीन धर्मशास्त्रों में साठ प्रकार के विवाह माने गये हैं—बाह्य, मातापत्य, आश्र, देव, गाम्भर्व, आसुर, राजस और पैताम। इन में पहले बार धर्मविवाह कहलाते थे। इनमें उपर्युक्त कारणों से तत्ताक सम्भव था। पिछले बार प्रकार के विवाहों में वह एक दूसरे से द्वेष होने की अवस्था में तत्ताक की अनुमति देता है। विवाहों में कई बार ऐसी स्थिति आ जाती है कि पति-पत्नी में द्वेष उत्पन्न हो जाता है। कई बार यह द्वेष इतरका होता है और कई बार दोनों ओर से। यह द्वेष उत्पन्न हो जाने पर विवाह एक बार समाप्त होने सकता है और पति-पत्नी वैवाहिक बन्धन से मुक्त होना चाहते हैं। कौटिल्य परस्पर द्वेष के आधार पर पिछले बार प्रकार के गाम्भर्व, राजस, आसुर, पैताम नामक विवाहों में स्त्री-पुरुष को मोक्ष अर्थात् तत्ताक का अधिकार देता है। कौटिल्य (३।३।१७-१८) ने इस विषय में स्त्री-पुरुष के अधिकार सुन्यही रखे हैं। “पति की इच्छा न होने पर उसके साथ द्वेष रखती हुई स्त्री उसका स्वाग नहीं कर सकती। ऐसी व्यवस्था में पति भी अपनी पत्नी का परित्याग नहीं कर सकता। दोनों का एक दूसरे के साथ द्वेष

^१ नीचत्व परसेन या अस्विकृत राजाधिकारिणी।

गाम्भर्विहन्ता अतिव्यवसायक पत्नीवोदधि या पति। ॥

होने से परित्याग संभव है"। उसही दृष्टि में परस्पर द्वेष की दौरे कुछ विविध भी जान सकती हैं। किन्तु आगे हम देखेंगे कि परोक्षान्तर में पवित्री अथवा केटोवह एसेस जैसे अन्ध कान्टि के विचारक यह आपसमें समझते हैं और स्वीडन, नार्वे, डेन्मार्क, बेल्जियम और स्विट्जरलैंड के नये तत्काल कानूनों में यह सर्व स्वी गयी है। १६५४ के ब्राज़ के विधेय विवाह कानून में इस कारण के आधार पर विवाह निकलें की अनुमति दी गयी है।

कौटिल्य धर्मसूत्रकारों की तरह विवाह को संस्कार नहीं मानता। उसकी अन्वति में यह एक अनुष्ठान (Contract) या डेका है, नैसा आजकल पवित्री देखों में माना जाता है। धर-बधू या उसकी अभिभावक इसे करते हैं और बन्धुबन्धों की भाँति कर्मगूरों सहित पर यह तंका भी जा सकता है। कौटिल्य (३।१६।१७) ने बन्धुओं के क्रम-विधय प्रकरण में विवाह का उल्लेख किया है और यह विधान बताया है कि प्रथम तीन वर्षों में गाम्पिहण हो जाने पर भी यदि स्त्री-मुख के प्रथम जलनकास में किसी में (किसी भाग्य में) कोई दोष मालूम पड़े तो विवाह सम्बन्ध तोड़ा जा सकता है। कथा के किसी गुण दोष को छिपा कर यदि कोई उसका विवाह करता है तो उसे ६६ पण के दण्ड का विधान है और जो घर के लोगों को छिपाता है तो उसे ११२ पण दण्ड का। दोनों अवस्थाओं में स्त्रीधन व गुणक उल्लेख का किया जाता था।

सर्वशक्ति संगठन के तत्काल बाद में जोध धर्म के विरुद्ध अथवा प्रतिक्रिया हुई। महाप्राय दुष्कर्मों के मेलने में श्राद्ध धर्म का अनुष्ठान हुआ और इसी समय कर्त्तव्य काल में उपस्थित अनुष्ठान के अधिकार का सम्पादन हुआ। अर्थात् के विधियों के विरुद्ध धर्मसूत्रकारों ने आचार्य उद्योगी और कौटिल्य के विधियों से बहुत परिवर्तन किया। अनुष्ठान अर्थात्कारों की भाँति विवाह को डेका या अनुष्ठान (Contract) माना नहीं मानते के, अथवा एक पवित्र धार्मिक बन्धन समझते थे। अनुष्ठानों की समूची वैवाहिक व्यवस्थाएँ इस मूल सिद्धांत के प्रभावित थीं। एतन्नि कौटिल्य ने स्त्री का जिन हालातों में सोस का अधिकार दिया था, अनुष्ठानकार ने उस अधिकार को, अपूर्ण सिद्धान्त के अनुसार, सीमित कर दिया। हमने ऊपर कौटिल्य के प्रभावितपति का नियम देखा है। यदि पत्नी पूरवती हो, तो वह पति के लौटने की अधिक से अधिक ८ वर्ष तक प्रतीक्षा करे और निराश हो तो घर छोड़ दे। इसके बाद वह धर्मविवाह में इच्छानुसार पति का बदल कर सकती थी। यदि वह कुमारी हो, तो कुछ मात प्रतीक्षा करके पुनर्विवाह का अधिकार था तैसी थी। मनु ने अर्थात्कार की इन व्यवस्थाओं के स्थान पर अपनी यह व्यवस्था दी कि प्रभावितपति का यदि पति उसके निर्वाह के लिए बुद्धि दे गया हो, तो वह उससे निर्वाह करे। यदि बुद्धि नहीं दे गया है तो मन्त्र में निम्नीय न समझे जाने वाले श्रमों से अपना निर्वाह करे। इस प्रकार निर्वाह करती हुई पत्नी धर्म कार्य से पति के विदेह जाने पर, ८ वर्ष विद्या के लिए जाने पर, ६ वर्ष अन्य काम के लिए जाने पर ३ वर्ष प्रतीक्षा करे (मनु ३।७३-६)। इस प्रतीक्षा के बाद भी यदि उच्छा

को पति न लीटे तो भली क्या करे, इस विषय में मनु सर्वथा मौन है। वसिष्ठ ने प्रतीक्षा की अवधि व्यतीत होने पर पति के पास जाने या पुनर्विवाह करने की आज्ञा दी थी और कौटिल्य ने इच्छानुसार अरण्य या अधिकार दिया था। किन्तु मनु इस विषय में कुछ भी अवस्था नहीं करता। अनुसूति के टीकाकारों में मनु के इस मौन पर बहुत मतभेद है। मन्दन के सिद्धांत हैं कि स्त्री को पुनर्विवाह का अधिकार है, किन्तु मेघादित्य ने प्रत्यक्ष विरोध किया है। दूसरे टीकाकार कहते हैं कि पत्नी को पति की आज्ञा के बिना जाना चाहिए। मनु के समय से स्त्रियों से पुनर्विवाह व मन्त्रांक का अधिकार हिन गया और पुर्णों ने एक स्त्री के रहते हुए दूसरी स्त्री के साथ विवाह करने के विषय अथवा अविवेक के अधिकार का उपयोग किया।

कौटिल्य तथा मनु की तुलना

कौटिल्य ने विवाह के साथ पति-पत्नी के कोई भी प्रकट होने पर दोनों की सम्पत्ति या मौल्य का अधिकार दिया, किन्तु मनु यह अधिकार पुर्णों तक ही सीमित कर देता है। विवाह के बाद पत्नी के साथ बात होने पर वह उसे छोड़ सकती है, किन्तु पत्नी पति के बीच प्रकट होने पर उसे गद्दी छोड़ सकती है (मनु २।७२)।

पति के मृत्यु का कारणों की होने की वजह से कौटिल्य पत्नी के पुनर्विवाह के अधिकार को स्वीकृत करता है, किन्तु मनु (२।७६) पति के उभय या कभीकल होने पर भी पत्नी से यह आज्ञा करता है कि वह पति की सेवा करेगी। यदि वह पति की सेवा नहीं करती, तो उस के साथ भी विवाह की गयी है कि पति को उसका त्याग नहीं करना चाहिए। यौन कानून मात्र ही पत्नी का अधिकार था कि वह उसे पति की सेवा (तन्त्रांक) देकर दूसरा पति स्वीकार करे। गुण वंश के समय पत्नी पर यह अनुष्ठान किया गया कि ऐसे पति की सेवा न करे। पत्नी को पति त्याग न करे। अनुसूति में पति के साथ एक भली सहायता दिखायी गयी है कि उसके समय, पति या कभीकल होने पर भी पत्नी उसे छोड़ नहीं सकती, किन्तु यदि पत्नी पति के साथ एक वर्ष से अधिक होए रखे तो पति को उसका भर्त्सनादि होय छोड़ कर उसका त्याग कर देना चाहिए (२।७३)। जो स्त्री सुतादि व्यवसाय, यदिरोगमत्त या तथा पति की सेवा न करके उसका अपमान करती है, पति उसने भर्त्सना कर उसका त्याग महीने के लिए धर्म करे (मनु २।७८)। पत्नी के मरण, दुर्घात, अतिमृत, व्रण, हिंस तथा अपभ्रंश होने पर पति को दूसरा विवाह कर सेवा चाहिए। स्त्री व्रध्ता हो तो उसके वर्ष, उस की स्त्रियों के वर होकर मर जाती हो तो १०वें वर्ष, लक्ष्मिणी ही उत्पन्न होती हो तो ११वें वर्ष उसा अश्रित्यादिनी होने पर पति को एकदम दूसरा विवाह कर सेवा चाहिए (मनु २।८०-८१)।

पुर्णों का अधिवेदन या दूसरे विवाह की इच्छा सरल सूट का, स्त्रियों की विधवा या बहुत बुरा प्रभाव पड़ा। कौटिल्य के समय तक दोनों के अधिकारों में कोई

विशेष अन्तर नहीं था। स्त्री नृपसक्त और पति पति को छोड़ सकती थी। मनुस्मृति में पत्नी से यह अधिकार छीन लिया गया और साथ ही पति को दूसरा विवाह करने की कड़ी छूट दे दी गयी। प्रायः यह कहा जाता है कि दूसरे विवाह का अधिकार स्मृतिकारों ने एक न स्रोत की रक्षा में ही दिया है, किन्तु मनुस्मृति के उपर्युक्त पंक्तियों से यह स्पष्ट है कि अलग अलग अवस्थाओं में, स्त्री के अग्रिमवादी होने की वजह से, पति को पुनर्विवाह का अधिकार है। इस का गट्टियास गुप्तों तथा क्षत्रियों, दोनों के लिए प्रासंगिक हुआ। गुप्त गुणगोपीयन के उच्च भाषाओं को भुलने लगे और क्षत्रियों की रक्षा जो उस समय हो गिरनी शुरू हुई, वह मध्यकाल में निरस्त हो गयी।

गुप्त युग में स्त्रियों का पुनर्विवाह, पुनर्भू का स्वरूप :

प्राचीन काल से जले आगे जाते स्त्रियों के अधिकारों के उपर्युक्त समूहों को राज के अनेक स्मृतिकारों ने स्वीकार नहीं किया। गुप्त युग के स्मृतिकार गारद ने पति के मृत्यु का होने की वजह से पत्नी को दूसरे विवाह का अधिकार दिया।^{१०} गुप्तकाल में स्त्रियाँ अपने पतिव्रता को छोड़ सकती थीं। इसका एक प्रबल प्रमाण यह है कि समुद्रगुप्त के स्पष्ट गुप्त रामगुप्त की पत्नी भूषस्वामिनी ने अपने पति को छोड़ कर समुद्रगुप्त के साथ विवाह किया।^{११} मध्यकाल में जालियुग के लिए प्रामाणिक भारतीय जाले वाली परास्मृति (४।३०) ने भी पति के अपराध, भूत, बन्धन, पतिता और सम्पासी होने पर मरने पति को छोड़कर दूसरे पति के साथ विवाह को अनुमति दी।^{१२} किन्तु हिन्दू स्त्रियों की स्थिति इसकी तरह चुकी थी कि वे अपने अधिकारों का उपयोग करने में असमर्थ हो गयीं। स्त्रियों के पुनर्विवाह के निषेध हिन्दुसमाज में प्रबल आंकड़ों अन्तर्गत हो गया। इस नीतिगत की व्यवस्था का अनुयायि रही तथा तथ्य से ही सचता है कि विधवा विवाह कानून की प्राप्ति एक सतासी से अधिका समय हो गया है, किन्तु हिन्दू समाज में विधवाओं की संख्या अभी तक बराबर है और इसका पुनर्विवाह बहुत कम होता है।

गुप्त युग तक स्त्रियाँ पुनर्विवाह कर सकती थीं, इसका प्रबल प्रमाण गारद का पुनर्भू स्त्रियों का विस्तृत वर्णन है। पुनर्भू का अर्थपूर्व की उमे बाह्य है जो एक पति से

* अथवाचं स्त्रियः सुधाः स्त्रीलोकां जीमिनी गताः ।

श्लोक जीमिनी रोयं गायत्री श्लोकमूर्ति ॥ (गारद)

१० विशेष विस्तार के लिए देखिए—बामुदेव रामायण का गुप्ता साहित्य का इतिहास ।

११ गरा० स्मृ० ४।३०, गच्छे मृतो मरतिसे पत्नी ॥ पतिसे पत्नी ।

पंचकथायत्तु गारोपा पतिरन्यो विधीयते ।

यह श्लोक गारद ५।६७ व अतिपुराण १।२।७।१०।१।१५।५६ में प्राप्ता जाता है ।

जादी करने के बाद, उसके बाद चाने पद या किसी अन्य कारण से दुबारा (पुनः) विवाह करके बूढ़े पति को प्राप्ता करती है। पुनर्भूत शब्द का अर्थ है जो दुबारा किसी व्यक्ति के साथ पत्नीत्व प्राप्त करे और अन्यपुरुषों का संलग्न है पहले पति के शिव मर्त्य में विवाह करने वाली स्त्री।^१ गारुड के मतानुसार (स्त्रीपुत्र ५।४२) सात प्रकार की स्त्री (पदपूर्वा) स्त्रियाँ हैं जिनकी एक पुनः से जादी होने के बाद पुनः पुनः से जादी होती है। इनमें तीन प्रकार की पुनर्भूत हैं और चार प्रकार की स्त्रीधरिणी। तीन प्रकार की पुनर्भूत स्त्रियों में पहली यह है जो अक्षय्यादि है, जिससे विवाह संन्यास में स्थित है। उसको दुबारा संस्कार हो जाने के कारण पुनर्भूत कहते हैं (श्रि० मनु० २।१७९, वि० १२।८)। दोत धर्म का विचार करते शुभार्थ द्वारा जो दम्पति किसी की भी जादी है, जिससे वह (भगनी इच्छा से) विधम रस करके (अभिचार द्वारा) दूसरे पति के पास जाती जाती है, उसे दूसरे पति की पुनर्भूत कहते हैं। तीसरी पुनर्भूत वह है जो (पति के मरण पर) देवर्षों के न होने पर पुनः व्यक्ति के लक्षण और लक्षण गुरुद को भी जाय। चार प्रकार की स्त्रीधरिणी ये हैं—(१) पति के जीवित होने पर, उसकी जाड़े समाप्त हो या न हो, वह धर्मवत् बूढ़े के पास जाती है। (२) जो अपने विवाहित पति की छोड़कर दूसरे के घर जाती था और फिर पति के घर में वापस आ जाय। (३) पति के मरण पर वैधव्य आदि के साथ वाली दम में रहने वाली स्त्री। (४) रक्षा की इच्छा से जादी हुई, जैसे श्रीवी हुई या भूत-प्राण से लड़ाई हुई या स्त्री "मे लेरी हूँ" यह कहते हुए किसी पुरुष के पास जाये (स्त्रीपुत्र ५।४२)। गारुड के मत में पहली पुनर्भूत कदाचित् की पुनर्भूत स्त्रियों की अपेक्षा अधिक अच्छी है। गारुड की इस विस्तृत भेदभुक्तता की विवक्षणा (पात्र = १।९७) विस्तृत बेकार समझा है क्योंकि उनके लगभग एक पुनर्भूत के विवाह की प्रथा विस्तृत रूप से चुकी थी। पूर्व मध्ययुग के व्यक्तिवारी के पुनर्भूत स्त्रियों का इतनेक बड़ी निन्दा और विरक्तता के साथ किया है। स्मृतिचिन्तन (अध्या १ पु० ७५) में ब्रह्मण तथा श्रीधायक द्वारा विचार्य गई पुनर्भूत स्त्रियों का उल्लेख है। इसमें अधिभास अक्षय्यादि के सम्बन्ध रखती हैं। श्रीधायक ही इन्के विषय में इसका ही कहता है कि इन्के बहुत न करे, किन्तु कथन कहता है कि प्रष्टु किसे जाने पर ये भुक्त को जान करि सरह से जमा देगी है।

पुनर्भूत से उत्पन्न होने वाले पुनः को पौनर्भव पुनः कहते हैं और उसके पति को पौनर्भव पति कहा जाता था। स्त्रियों के पुनर्निवाह होते थे, इसका प्रथम प्रमाण यह है कि अनेक स्मृतिवार्थों में दायभाग में पौनर्भव पुनः की कथा है। इसमें कोई संशय नहीं कि उसका दायी भी था है। बसिष्ठ धर्मसूत्र (१७।१८-२०), गौतम धर्मसूत्र (१६।२), श्रीधायक (२।२।३१),

१०. मातृसत्य कोस पु० ४३१३—

पुनर्भूत स्त्री, पुनर्भवति प्रायश्चित्तम्।

एकेन पुरुषेण पुनरन्यपुत्रीतामाह सायणम्।

पूजा करती आतिथि ।^{१४} किन्तु परम्परायुक्ति ने यहाँ तक व्यवस्था दे ली कि जो पत्नी दरिद्र, रोगी या भूत पति का अपमान करती है वह बार-बार कुली तथा मूजरी होती है ।^{१५} स्त्रियों के लिए पति के साथ सती होने को जायज कर घोषित करने लगा । इसका परिणाम यह हुआ कि पत्नी को न तो पति की जीवनवस्था में और न उसके मरण के बाद ही द्वितीय विवाह का अधिकार रहा । सती प्रथा ने पति के मरण के बाद अधिकतर अवस्थाओं में पत्नी को जाबरजबरी सती होने पर बाध्य किया । अक्सर वे इस कुलीन की शूद्र करनेवाली हो, किन्तु वह अपने सम्पत्ति नहीं हारती । विधवा कष्टग्रस्त विधवाओं को भी पति के मरण के लिए भुगतान होता था । ऐसी सामाजिक स्थिति में मानव की कल्याण भी सर्वथा विस्मृत हो गयी थी । यह निश्चित सर्वमान्य हो गया कि द्विपुत्रों में विवाह एक पवित्र कर्मानुष्ठान है और इससे सत्यता अभव नहीं है ।

हिन्दू समाज ने उपपत्तियों में साम्यों द्वारा लम्बा की प्रथा का सर्वथा निषेध होने तक की नीची जातियों में विवाह के लिए घर लम्बा भुगतान करने में बाध्य माना है । १६५१ की भारत की जन गणना रिपोर्ट में समाज के सम्बन्ध में आधुनिक स्थिति का यह विश्लेषण दिया गया है—“कट्टर हिन्दू विवाह को एक धार्मिक संस्कार मानते हैं और इस सम्बन्ध का संन नहीं किया जा सकता । एक अधिचारिणी स्त्री से उसका बच्चा होता जा सकता है, उसे पति के बाहर भिजा जा सकता है, लेकिन लम्बा अनसम्भ है । किन्तु उत्तर भारत की नीची जातियों में लम्बा स्थापित भारत की ऊँची एवं नीची जातियों दोनों जातियों में, विशेषतः लम्बी ‘सम्बन्ध’ विवाह प्रचलित है, लम्बा पास होता है । खाली सत्यता में, जहाँ विवाह का सम्बन्ध बहुत प्रचलित है, कुछ स्थिति होने वैवाहिक शांति का बो-नीय मात्र परिणाम करने है । कौटुम्बिक जाति में तान पति करने वाली स्त्री भी बड़ी प्रतिष्ठा होती है । विवाहों और दार्मिक संस्कारों में बहुत भ्रष्टाचार है । अथवा स्त्री लम्बी दण्डानुसार जिसकी धार जाहूँ लम्बा भी बड़ी सत्य विधि से पति केवल सत्य है । कबर, कलम और पाली जातियों में भी वही प्रथा है । अथवा लम्बा के सम्बन्ध में दार्मिक के सूचना भी है ”अर्थात् स्त्रियों की अधिकता भी है जहाँ उन्हें अपना पति भुगतान की पर्याप्त स्वतंत्रता है और होशंगाबाद के जदनों जैसे लम्बा जाति (जो अन्धविवाही राजपूतों की एक शाखा है) के सम्बन्ध में यह कहा जाता है कि कई बार एक स्त्री के २ या १० तक पति होते हैं । उत्पीड़न में स्त्रियों को प्रायः पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त है कि वह एक पति के

^{१४} अनु ५१५५—विहीनः कामजुतो वा गुणेनैव परिनिमित्तः ।

उपचार्यः निम्बा लम्बा लम्बा देवचारिणः ॥

^{१५} १९५१ कृति ४१५५—

परिचर्या धार्मिकं पुत्रं भवति वाचनमेव ।

सा कुली जाते भूषा सुखी कृष्ण पुनः ॥

बाद दूसरे पति बदल जाँ। बहुत सी मरम्माओं में पहले विवाह के विच्छेद के लिए पति की स्वीकृति या अनुमति आवश्यक समझी जाती है। इन जातियों में पुनर्विवाह का नियम तलाक के विवाह की स्वीकार करता है। पुराने पति की विवाह का बंध नहीं दिया जाता है और नया पति इस आधार पर जाति को एक धाँक देता है। इन सोच को "धरती-बोती" का जोन कहते हैं। इसका यह मतलब है कि पत्नी पहले पति के लिए मर गयी और नये पति के लिए जिन्दा हो गयी है। कई बार पत्नी को दूसरा विवाह करने के लिए 'छोड़-छिड़की' (अपने छान भस्मन्ध को छोड़ कर दूसरे के साथ विवाह करने का निश्चित अनुमति-पत्र) दी जाती है। पत्नी इस छिड़की से पहले पति को छोड़ सकती है। कुछ जातियों में पतियों द्वारा तहसब स्थान (Desertion) पर पत्नी को पुनर्विवाह की आज्ञा दी जाती है।

"कट्टीबा प्रदेश में सभी जातियों में तलाक की अनुमति है, किन्तु इन का प्रचलन प्रायः सीधी जातियों में ही है। तलाक के जातियों में तलाक बहुत ही सामान्य बात है। मैदान में एक सेवार औरत अपने पति से असह्युष्ट होने पर उसे किसी भी वन में तलाक दे सकती है। अपने स्थान की सूचना लिख के रूप में वह अपने दियार पर दो मुद्राहियों छोड़ जाती है। किन्तु वह स्त्री जब चाहे अपने पहले पति के पास गीट सकती है और परिवार का भार संभाल लेती है। मैदान की गर्म ज़रत से तलाक की खुशी अनुमति है और तलाक की हुई स्त्री दुबारा पूरी विधि के साथ शादी कर सकती है। विधवाएँ ऐसा नहीं कर सकती। जहाँ तलाक आधारी से प्राप्त हो जाता है वहाँ विधवा का प्रायः पुनर्विवाह से नहीं रोका जाता, किन्तु मंगलपुर की और गोंडों में पहले यह नियम था कि स्त्री विधवाओं को कुछ धन लेकर दूसरा विवाह कर सकती थी। पंजाब के राई हिस्सों में विधवाओं की स्त्री है, वहाँ विधवा बाहर से खरीदी जाती है और नाममात्र की विधि के साथ ब्याह दी जाती है। कई बार इस तरह स्त्री खरीदने वाले को अपना लीज पत्र नहीं आता, वह उस स्त्री को कुछ कम वाम पर किसी और को दे देता है। अम्बू के पहाड़ों में, कुछ जातियाँ स्त्री को अपनी दण्डासुधार पति बदलने की आज्ञा देती हैं वहाँ कि नया पति पहले पति को उचित क्षमता प्रदान करे।^{१६}

वर्तमान समाज में तलाक

अधिकांशों ने, विशेष रूप से सम्बद्ध व कलकत्ता हाईकोर्टों ने, विभिन्न जातियों में विवाह द्वारा होने वाले इन पुनर्विवाहों की वैधता स्वीकार की है।^{१७} इन के फैसलों के अनुसार भूतों में इसका अधिक रिवाज है।^{१८} किन्तु अल्प जातियों में इसका विवाह कम

^{१६} भारत की अलगजना रिपोर्ट १९११, खण्ड १, भाग १, पृ० २४५

^{१७} लालू लालू नाम मुख्य १७ अं. ४७६; सागरी नाम सहायी १६ भाग ६२७

^{१८} रेवन्डर नाम उमीराकर १० अं हा० को० रि० ३४१

महो है।^{१९} महाराष्ट्र के तीसमसुर बाहुगणों में मलाक प्रचलित है। उ० प्र० के जोड़ों और दक्षिण के विराटत अतिथी में समान दिखे जाते हैं।^{२०}

बम्बई प्रांत में दोह विवाहों में विशेष प्रचलन है। स्त्रियाँ पहना परि ओखिल होते हुए अवका विधवा होने पर दूसरा विवाह कर सकती हैं। महाराष्ट्र में इन विवाहों को 'पाट' कहते हैं। यह निम्न बातों से किया जाता है—

(१) **पति की विभिन्नता या गोज की समानता**—यदि पत्नी के दुसरी हाँस या बच्चा होने से पहले विद्वानीयता या साम्राज्य का पता पत्नी आय लाँ पति, पत्नी को हाँस बिट्ठी दे देता है और पत्नी दूसरा विवाह कर सकती है। (२) **नपुंसकता**—पति की नपुंसकता का ज्ञान होने पर पत्नी की अमृतमति से पत्नी को दूसरी लाई है जाती है। (३) **पारस्परिक सहमति**—यदि पत्नी पति-पत्नी दोनों की सहमति से हाँस है, उस समय पति पत्नी के पति की माया या मासुपण के दो टुकड़े करवा हुआ संगे हाँस-बिट्ठी दे देता है।^{२१} (४) **दुर्घटकार**—तमाक देते या कारम कई बार गह भी होता है कि पति-पत्नी के हाथ धूरा बतवि करता है और उसे कष्ट देता है। स्त्री के दुर्घटकार को विधवा विवाह की अपेक्षा अधिक बुरा समझा जाता है। इस विवाह में उनकी सामाजिक स्थिति नीची हो जाती है। ऐसी स्थिति को किसी के विवाह के समय उपस्थित नहीं होने दिया जाता तथा कहीं पर ये बाँझन आदि महो मनाता।^{२२} पहले पति की सम्पत्ति पर उनका अधिकार जाता रहता है और पहले पति से उत्पन्न बच्चे भी उनसे छिन जाते हैं।^{२३} किन्तु पुनर्विवाह में उत्पन्न बच्चे अयज माने जाते हैं और सम्पत्ति में उन्हें विवाह द्वारा परिणीत स्त्रियों के बच्चों के तुल्य अधिकार मिलता है।^{२४}

विवाह विच्छेद की कानूनी व्यवस्था की मांग

१९५५ का हिन्दू विवाह कानून पास होने से पहले कलमान समय में हिन्दू विवाह एक पवित्र धार्मिक संस्कार एवं अविच्छेद बन्धन था। हिन्दू समाज के निम्न वर्ग में ऊपर बतायी जातिकों में ही विवाह के आधार पर तलाक की व्यवस्था थी, किन्तु उच्च वर्ग में तलाक की कोई व्यवस्था नहीं थी। बीसवीं शताब्दी में भारत में सराब सुधार के आन्दोलनों के परिणामस्वरूप बीजसूत्रपूर्व मारी-आवरण तथा महीन सामाजिक चेतना

१९ कोलरी बनाम कारधन ५ का० बी० मा० हा० को० रि० ६४

२० बीरसंगप्पा बनाम खन्ना ।

२१ स्त्रील—आ शास्त्र कास्ट्रस, पृ० १६३

२२ मार्ले का आइजेस्ट, पृ० २८६, भी बीजर्नी द्वारा उद्धृत पृ० २४६

२३ स्त्रील—आर्ली, १६२ व ३६४-६५

२४ मही, पृ० १७६-१७७.

उत्पन्न हुई, उसके परिणामस्वरूप हिन्दू विवाह में तलाक की माँग कई कारणों से की जाने लगी। पहला कारण स्त्री जाति के साथ समान व्यवहार की माँगवा थी। हिन्दू सभ्यता की वैवाहिक अधिकारों में विधिवत स्त्रियों के प्रति अन्यायपूर्णता थी। उपर्युक्त कानून पास होने से पहले हिन्दू समाज में दुखों को धोखेक विवाह (अभिवेदन) करने का अधिकार था, जहाँ यदि किसी पुरुष को पहली पत्नी में कोई दोष प्रतीत होता था, उससे वह किसी कारण समुदा नहीं था, तो वह दूसरा विवाह कर सकता था। इस प्रकार, विवाह वसति सिद्ध अभिप्रेत बनाने नहीं था। हिन्दू नारी एक बार विवाहित होने पर किसी भी प्रकार दूसरा विवाह करने का अधिकार नहीं रखती थी, वह अपने और दुःखमय विवाहों से मुक्ति किसी भी दशा में नहीं पा सकती थी। इस प्रकार दोनों के वैवाहिक अधिकारों में यह विषय था। इसे दूर करने के लिए तलाक-नारी पर समान रूप से एक-विवाह (Monogamy) का ध्यान लगाने तथा दुःखमय विवाहों से मुक्ति पाने के लिए हिन्दू समाज में तलाक की व्यवस्था की प्रयत्न माँग की जाने लगी। यह ही दृष्टि के जागृत महिला दलों की धर्म से विशेष रूप से की गयी। इसका दूसरा कारण विवाह को सुखमय बनाना था। उसके मूल उद्देश्यों को पुरा करना था। पहले यह बताया जा चुका है कि विवाह का प्रधान उद्देश्य सम्मानरक्षण बनाना तथा जीवन को सुखमय बनाना है। यदि पति नपुंसक हो, भ्रष्टान उत्पन्न न कर सकता हो, भागना होना, घोर क्रूरता और दुर्व्यवहार के कारण पत्नी के प्राणों को संकट में डाल दे, तो इस दशा में विवाह के प्रधान प्रयोजन पूरे नहीं होते, पत्नी के लिए साम्प्रदायिक जीवन नरकमुल्य हो जाता है। इस विषय स्थिति में उसका समाधान करने के लिए तथा वैवाहिक जीवन के प्रधान प्रयोजनों को पूरा करने की दृष्टि से तलाक की माँग की जाने लगी। इसके परिणामस्वरूप १९५५ के हिन्दू विवाह कानून द्वारा इसकी व्यवस्था की गयी है।

हिन्दू विवाह कानून की तलाक सम्बन्धी व्यवस्था

इस कानून के खण्ड (Sections) १३ में वर्तमान हिन्दू समाज में पहली बार तलाक की व्यवस्था की गयी है। इससे पहले कानूनी स्थिति यह थी कि एक बार संपन्न हुए हिन्दू विवाह को किसी प्रकार भंग नहीं किया जा सकता था, धर्म के परिवर्तन से, जाति से अलग और अहिंसक होने से, किसी एक पक्ष के व्यक्तिवाद होने से, पति द्वारा पत्नी को छोड़ देना या पत्नी के वेश्या बन जाने पर भी हिन्दू विवाह भंग नहीं हो सकता था।^{२२} इस कानून ने यह स्थिति बदल दी है। अब द्वारा १३ के अनुसार कोई भी विवाह, चाहे वह इस अधिनियम के पास होने से पहले हुआ हो या बाद में हुआ हो, पति या पत्नी में से

२२ एडमिनिस्ट्रेटर जनरल यांक थॉमस का मतमा (१८८९) ६ मद्रास ४६६, १८ कलकत्ता २५४, नारायण ४० जिलोक (१९०५) २६ इन्सुलवाय ४

किसी भी अवस्था में प्रार्थना-पत्र प्रस्तुत करने पर निम्नलिखित कारकों में भ्रम किया जा सकता है—

(१) **व्यभिचार**—यदि दोनों में से कोई एक पक्ष व्यभिचाररत रहने द्वारा जीवन व्यतीत करता है (Live in adultery) (आर १)। इसका यह अर्थिभाग है कि यदि पति या पत्नी में से कोई एक बार ऐसा काम करता है तो दूसरा पक्ष तुरंत आचार पर तत्काय भी सांग नहीं कर सकता, ऐसी दशा में वह दोनों दूसरे पक्ष में न्यायिक पार्षण (Judicial Separation) की ही राई कर सकता है।^{११} तत्पश्चात् भी सांग के बिना वह सिद्ध करना आवश्यक है कि दूसरा पक्ष निरन्तर व्यभिचारपूर्ण जीवन बिता रहा है। पुराने हिन्दू कानून के अनुसार व्यभिचार के कारण पत्नी के वैधवा बन जाने पर भी विवाह सम्बन्ध बग नहीं होता था, ऐसी दशा में विवाह का प्रयोजन धिक्का हो जाता था। अतः इस कानून में किसी एक पक्ष के कुछ समय तक निरन्तर व्यभिचारपूर्ण जीवन बिताने की दशा में दूसरे पक्ष को तत्पश्चात् भी अधिकार दिया गया है। व्यभिचार का आत्म पति-पत्नी में से एक पक्ष द्वारा दूसरे पक्ष के अतिरिक्त किसी अन्य व्यक्ति में भी सम्बन्ध स्थापित करना है। आश्रय में व्यभिचार विषयक प्रथम साक्षी प्रामाणिकता प्राप्त प्रमाण नहीं होता, अतः इस विषय में प्रामाणिकता (Circumstantial evidence) को भी स्वीकार कर ~~ले~~ है, जो इस बात को सिद्ध करने के लिए पर्याप्त हो कि कोई पक्ष व्यभिचारपूर्ण जीवन बिता रहा है। उदाहरणार्थ, यदि कोई विवाहित स्त्री अपने घर से साठ-छः दिन तक निरन्तर गायब रहती है, किसी काम तथा पति के पुत्र के सम्पर्क में भी रहने से दूर रहने के कारण देखी जाती है, वह इसके साथ विभिन्न स्त्रियों के अपने-वैधवा होने का कोई समुचित कारण नहीं दे सकती है, तो यह परिणाम निकाला जा सकता है कि अतः उस ~~पक्ष~~ के साथ अनैश सम्बन्ध है और वह उसके साथ व्यभिचारपूर्ण जीवन बिता रही है।^{१२}

(२) **धर्मपरिवर्तन**—यदि दोनों पक्षों में कोई एक हिन्दू धर्म की छोड़ कर इस्लाम, ईसाइयत, पारसी, बौद्धी आदि किसी अन्य धर्म को ग्रहण करता है तो दूसरे पक्ष को विवाहविच्छेद पाने का अधिकार है। बौद्ध, जैन तथा सिक्ख धर्म हिन्दू धर्म के ही अंग समझे जाते हैं, अतः किसी हिन्दू के बौद्ध ~~जा~~ जाने पर दूसरे पक्ष को विवाह विच्छेद की सांग करने का अधिकार नहीं है। इस कानून में पक्ष धर्मपरिवर्तन से भी हिन्दूविवाह का विच्छेद सम्भव नहीं था। इस कानून में यह व्यवस्था बड़ा आचार पर की गयी है कि आन्तरिक त्रुटि को दबाये रखने के लिए धर्मपरिवर्तन करना

^{११} **शिवमजिह्व व मुसम्माद विमला देवी, आ० ई० १८५६, बम्बूतकद कानून ७२।**

^{१२} **काशीप्रसाद सक्सेना—हिन्दू मैरिज एक्ट, १५०**

टीक नहीं है, यदि कोई पक्ष धर्मपरिवर्तन कर सकता है तो हिन्दू अपने पहले वाले दूसरे पक्ष को तलाक भी तलाक का अधिकार होता चाहिए। १८६७ के विवाह विच्छेद कानून के अनुसार हिन्दू या मुसलमान को ईसाई बनाने पर यह अधिकार दिया गया था कि धर्म परिवर्तन के बाद यदि दूसरा पक्ष उसे छोड़ देता है तो यह वैधव्य अधिकारी भी पुनः प्रार्थना के लिए उसके विच्छेद अभिप्राय प्रस्तुत करता है। इसके बाद भी यदि वह उसका परिचालन करता है तो वैधव्य इस विवाह के भंग होने की घोषणा कर सकता है। यही अधिकार हिन्दुओं को इस कानून द्वारा किसी एक पक्ष द्वारा धर्म परिवर्तन की वला में दूसरे पक्ष को प्रदान किया गया है।

(३) वागलपन—यदि पति-पत्नी में से कोई एक निरन्तर तीन वर्ष से ऐसे मानसिक वागलपन से पीड़ित है जिसकी चिकित्सा करना संभव नहीं है, तो दूसरा पक्ष यह तलाक दे सकता है। यदि वागलपन चिकित्सा से ठीक हो सकता है तो तलाक नहीं दिया जायगा। इस विषय में यह स्तरण रखा चाहिए कि यदि कोई पक्ष विवाह के समय ही वागलपन से पीड़ित है तो कानून के खण्ड १२ बी० के अनुसार वैधव्यकारीय या वैधव्य (Voidable) घोषित किया जा सकता है। इसका मतलब यह है कि इस विवाह की वे हीजा समाप्त जायगी। यदि ऐसा वागलपन हो वर्ष से हो तो इसके लिए वैधिक वागलपन (Judicial Separation) का आवेदन-पत्र दिया जा सकता है।

(४) जोड़ की बीमारी—यदि कोई पक्ष तीन वर्ष से असाध्य एवं उग्र (Incurable and virulent) जोड़ से पीड़ित हो तो दूसरा पक्ष तलाक के लिए आवेदन-पत्र दे सकता है।

(५) संकायक रोग रोग—विवाहविच्छेद की माँग एक पक्ष इस आधार पर भी प्रस्तुत कर सकता है कि दूसरे पक्ष की रोग रोग है, जिसकी शूल उरी भी भग सकती है तथा उसे ऐसा रोग आवेदन-पत्र देने से तीन वर्ष पहले से था। इस वला में न वैधव्य वैधव्य संभव नहीं है, यदि दूसरे पक्ष के इस रोग से पीड़ित होने की आशंका है, अतः इस वला में तलाक की व्यवस्था की गयी है।

~~(६) संकासी होने—~~यदि कोई पक्ष सामाजिक जीवन का त्याग करके संकासी हो जाता है तो दूसरा पक्ष तलाक पाने का अधिकार रखता है। इसका यह कारण है कि संकास का अर्थ सामाजिक कर्तव्यों की दृष्टि से व्यक्ति का त्याग। जात या वंश की वीणाभी मृत्यु (Civil Death) है। इससे दूसरे पक्ष के साथ वैवाहिक संबंध रहे ही समाप्त हो जाता है जैसे मृत्यु से समाप्त जाता है। ऐसी वला में मरुत, पराभार आदि प्राचीन शास्त्रकारों ने स्त्रियों को पुनर्विवाह का अधिकार दिया था। इस कानून में इसी का अनुसरण किया गया है। संकासी होने का अभिप्राय केवल अपने वंश त्याग करना नहीं है, किन्तु इस आशय में प्रवेश के लिए आवश्यक सभी सामाजिक

विधि-विधानों का पालन करना है।^{२५} शूद्र को संन्यासी होने का अधिकार नहीं है, अतः वह इस आधार पर तलाक नहीं दे सकता। वैदिकी संन्यासी होने हुए भी विवाह कर सकते हैं।^{२६} अतः इस बात में सन्देह है कि कोई व्यक्ति वैरागी सम्प्रदाय में दीक्षित हो जाय तो दूसरा पक्ष उससे इस आधार पर तलाक ले सकता है।

(४) **जायता होना**—यदि दोनों में से किसी पक्ष का कोई व्यक्ति मग्न बने तक दूसरे पक्ष को या उसके ऐसे सम्बन्धियों को नहीं मिलता, जिन्हें मग्न पक्षाधीन मिलना चाहिए था, तो इस बात में यह मत लिया जाता है कि जायता व्यक्ति पर मांग हो सकती है। इस बात में दूसरे पक्ष की तलाक देने का अधिकार दिया गया है। मग्न व्यक्ति शारीरिक काम में परापर में लौ लौ, हिन्दू विवाह के धातून की यह धारा दण्डविधि के १९५० के विवाह कानून (Matrimonial Causes Act) में उल्लेख की गयी है।

(५) **पूषण होने के साथ सहवास न करना**—यदि-यस्त्री में से जब कोई पक्ष अदायत से पूषण होने की आज्ञा प्राप्त कर लेता है तो इसमें उनका वैवाहिक सम्बन्ध भंग नहीं होता है। यदि इससे साथ उनके पुनः सम्बन्धित हो जाता है और वे एकट्ठा रहने लगते हैं तो उनके पार्ष्वय की अदायती आज्ञा रद्द की जा सकती है (पत्नी धारा)। यदि ऐसी आज्ञा बिना रद्द करवाये यदि-यस्त्री एकट्ठा रहने लगती है तो ऐसी आज्ञा तलाक का कारण नहीं बन सकती है। किन्तु यदि ऐसी आज्ञा प्राप्त करने के दो वर्ष बाद तक भी वे सहवास नहीं करते हैं तो इस आधार पर तलाक भी मिली जा सकती है। इसमें बाकी का तीन भाग सिद्ध करने की पड़ती है—(क) उसने प्रतिवादी के विरुद्ध कानूनी अलहदगी की आज्ञा अदायत से प्राप्त की है। (ख) ऐसी आज्ञा प्राप्त किये हुए दो वर्ष बीत चुके हैं। (ग) आज्ञा प्राप्त होने के बाद दोनों ने सहवास बराम्भ नहीं किया, सहवास का अर्थ दाम्पत्य जीवन बिताते हुए यदि-यस्त्री का एक साथ रहना है।

(६) **दाम्पत्य अधिकारों की पुनः प्राप्ति की आज्ञा का पालन न करना**—यदि दोनों पक्षों में से कोई पक्ष दूसरे पक्ष को दाम्पत्य सम्बन्ध से रक्षित करता है और दूसरा पक्ष पहले पक्ष के विरुद्ध इस विषय में अदायत से दाम्पत्य अधिकारों की पुनः प्राप्ति (Restoration of Conjugal Rights) की आज्ञा शपथ कर लेता है, किन्तु इस आज्ञा के बावजूद यदि वो दो तक बहुधा पक्ष दूसरा पालन नहीं करता, तो दूसरा पक्ष इस आधार पर तलाक के लिए आवेदन पत्र दे सकता है। इसका कारण स्पष्ट है, यदि-यस्त्री दाम्पत्य जीवन बिताने के लिए विवाह-सूत्र में बाँधे होते हैं, यदि इन दोनों में से कोई पक्ष दूसरे को आन नुसराने दाम्पत्य सम्बन्ध स्थापित करने से रक्षित करता है तो दूसरे को व्यावायव्य द्वारा इसे पाले का अधिकार है। यदि वह इस विषय में व्यावायव्य

२५ ब्रह्मसंहिता ३० कार्य प्रतिनिधि समा (१९५०) ६९ अन्तः ७८६

२६ श्री रामदास ६० साईनर करनू ब्रह्मन् १९४१ पृ० ४१३

की भासा की अवज्ञेयता करता है तो इसका वह अभिप्राय है कि वह दूसरे पक्ष के साथ सामान्य सम्बन्ध नहीं रखना चाहता है। इस दशा में वैवाहिक सम्बन्ध की अवधि रहने में कोई लाभ नहीं है, अतः इस अवस्था के आधार पर इस कानून में तलाक की व्यवस्था की गयी है।

पत्नी द्वारा तलाक प्राप्त करने के दो अन्य कारण—उपर्युक्त दो कारणों के आधार पर प्रति-पत्नी समान रूप में तलाक के लिए आवेदन-पत्र दे सकते हैं। किन्तु इसके अभिप्राय को धारणा ऐसी है किनेके आधार पर वैध पत्नी विवाह-विच्छेद की राय को मंजुरी है। वस्तु-तः पारम्परिक से अधिक परिसरों का जीवित होता है। इस कानून द्वारा एक-विवाह की अवस्था की हिन्दू समाज में कठोरतापूर्वक लागू किया गया है और एक पत्नी के जीवित रहते हुए दूसरे विवाह का दण्डनीय अपराध बना दिया गया है। किन्तु दूसरे पक्ष के हिन्दू कानून में दूसरों को बहुविवाह की मुनी छूट थी, किसी कानून से ऐसे विवाहों को रद्द नहीं किया जा सकता था, अतः इन विवाहों के कारण सम्पन्न जीवन बिताने वाली स्त्रियों को इस व्यवस्था से तलाक पाने का अधिकार दिया गया है। इसका सम्बन्ध इस कानून के पास होने से पहले बिये गये बहुविवाहों में है, क्योंकि इस कानून के पास हो जाने के बाद कोई गलत दूसरे पक्ष के जीवित रहते हुए दूसरा विवाह नहीं कर सकता है। इस व्यवस्था के अनुसार तलाक पाने के लिए पत्नी को निम्नलिखित बातें सिद्ध करनी पड़ती हैं—(क) प्रतिवार्ता से इस कानून के पास होने से पहले उसके साथ तथा किसी अन्य स्त्री या स्त्रियों के साथ विवाह किया है। (ख) आवेदन-पत्र देने के समय उसकी अन्य परिसरों जीवित है। पत्नी द्वारा पति से तलाक देने का दूसरा विशेष कारण पति द्वारा बलात्कार (Rape), मुसर्तपुन (Sodomy) या वसुर्देय (Bestiality) का अपराध होता है।

तलाक का आवेदन-पत्र देने की अवधि

हिन्दू विवाह कानून के अर्थ १४ के अनुसार कोई भी व्यापारिक तलाक के किसी आवेदन-पत्र पर तब तक बिचार नहीं कर सकता, जब तक कि आवेदन-पत्र देने के समय विवाह सम्बन्ध तृप्त तीन वर्ष में व्यतीत हो चुके हो। यह व्यवस्था १९५४ के विशेष विवाह कानून की तथा संवत् १९५० के विवाह कानून की व्यवस्था से भिन्न है। इसके अनुसार विवाह के आरम्भिक तीन वर्षों में तलाक का कोई आवेदन-पत्र नहीं दिया जा सकता। इसका उद्देश्य यह है कि प्रति-पत्नी विवाह के बाद फौरन तलाक न दें, तीन वर्ष तक एक-दूसरे के साथ मिल-जुल कर रहने का और निश्चय करने का प्रयत्न करें, तीन वर्ष ऐसा निश्चय करने के बाद जनमें स्वाभाविक रूप से ऐसा मीतिपूर्व सम्बन्ध हो जायगा कि तलाक की संभावना बहुत कम हो जायगी।

विवाह के पहले तीन वर्षों में सामान्य रूप से तलाक का अधिकार न देते हुए

भी दो विशेष दशाओं में इसका आवेदन-पत्र देने का अधिकार इस कानून में स्वीकार किया गया है। पहली दशा असाधारण दुःखरिजता (Exceptional Depavity) की तथा दूसरी असाधारण कष्ट (Exceptional Hardship) की है। इन दोनों की कानून में कोई स्पष्ट व्याख्या नहीं की गयी। सामान्य रूप से असाधारण कष्ट का यह अभिप्राय है कि जब मधु को साथ नहीं मुरता या व्यवहार किया जाय, इसके साथ पति व्यवहार में अथवा पत्नी को छोड़ देने वाला हो। पत्नी का व्यवहार पूर्ण सम्बन्ध से घनात उत्पन्न करना भी इसी प्रकार का कष्ट है। कष्ट का अधिग्रह शारीरिक, मानसिक, आर्थिक और सामाजिक आदि सभी प्रकार के तम कानूनों में है, जिनके अध्याय पर समाज की सीमा भी आती है। असाधारण दुःखरिजता का अभिप्राय प्रतिभावी हाथ बादी के साथ उसकी दृष्टि के विच्छेद से ही दशा में जो मध्यस्थ स्थापित करता है, जब वह शरीर रोग तथा कोई से पीड़ित हो। बॉम्बे न. बोम्बे ॥ एक सिटिज सामने में असाधारण कष्ट और दुःखरिजता के बारे में निम्नलिखित सिद्धान्त निम्नलिखित हैं—(१) पत्नी के लिए असाधारण कष्ट उस वक्त में होता है जब पति व्यवहार पर होने के साथ-साथ पत्नी का दूसरी स्त्री के लिए परिश्रम करे अथवा उसके साथ क्रूर व्यवहार करे, केवल व्यवहार असाधारण कष्ट नहीं है। (२) व्यवहार के साथ इसका परिकार अर्थात् पत्नी द्वारा जबकि सम्बन्ध से सन्तानोत्पादन भी असाधारण कष्ट है। (३) यदि पति विवाह के कुछ समय बाद ही मानी से या घर की मौकरी से अनुचित शरीर सम्बन्ध स्थापित करता है तो यह असाधारण दुःखरिजता है। मजरा के मध्यस्थ बनाम सुलोसा (आ. इ. रि १६५५ न. ४२३) मानक मामलों में उपर्युक्त सिटिज मामलों का अनुसरण किया गया है। उपर्युक्त दोनों कारणों के आधार पर किसे जाने जाने समाज के मामलों पर विचार करते हुए न्यायालय को बातों को ध्यान रखेगा, पहली बात बच्चों की सुरक्षा और व्यवस्था की है। यदि इनके हिस्सों को कोई बाध आती है तो तलाक के आवेदन-पत्र पर विचार नहीं हो सकता। दूसरी बात इसकी युक्तिमूल संभावना है कि तीन वर्ष की अवधि समाप्त होते से पहले ही उनमें समाप्ति हो जायगा। न्यायालय को इस बात का प्रयास करना चाहिए। यदि इस बात की संभावना हो तो समाज की प्राप्ति मस्तीकार कर दी जानी चाहिए।

पुनर्विवाह करने की प्रक्रिया

तलाक का आवेदन-पत्र स्वीकार होते ही दोनों पक्षों को पुनर्विवाह का अधिकार नहीं प्राप्त हो जाता है, इसके बाद एक वर्ष तक उन्हें प्रतीक्षा करनी पड़ेगी है (खण्ड १५)। इस अवधि के बीच दोनों का विवाह-सम्बन्ध पूर्ण रूप से विच्छिन्न हो जाता है और वे नया विवाह कर सकते हैं। एक वर्ष की यह अवधि जानबूझ कर रखी गयी है। इसका उद्देश्य लोगों को तलाक के लिए निरन्तरहित करना और नयी

साथी के लिए ही तलाक जाने की प्रवृत्ति को रोकना है।

अब हिन्दू विवाह कानून में तलाक की व्यवस्था का प्रस्ताव रखा गया था, उक्त प्रथम सर्वेकारी हिन्दुओं ने इसका इस आधार पर जोर विरोध किया था कि इससे समाज में तलाक की जाड़ का आसपास तथा अनैतिकता में जोर बूझा जायेगी। किन्तु हिन्दू विवाह कानून में इसकी व्यवस्थापूर्व इसकी कठोर धनायी गयी है कि इसे कोई आसानी से प्राप्त नहीं कर सकता है। सामान्य रूप से विवाह के पक्ष में हीन नयी से तलाक का कोई आदेश-पत्र नहीं दिया जा सकता, तीन साल बाद आवेदन-पत्र देने पर विवाह के दीवानी मामले का फैसला होने में दो तीन वर्ष लगना सामूची बात है। इससे बाद पुनर्विवाह के लिए दोनों पक्षों को एक वर्ष की प्रतीक्षा करनी पड़ेगी। इस प्रकार तलाक प्राप्त करने में मौन-रुद्ध बने लग जाते हैं और भारी व्यय करना पड़ता है, अतः इस उपाय का व्यवस्तम मोचन नहीं लोग करते हैं, जो बाकल में अव्यक्त पुनः में है। अतः तलाक की व्यवस्था ऐसे ही लोगों के लिए है, अतः अब हिन्दू समाज में तलाक की व्यवस्था का पुनर्स्थापन नहीं हुआ, इससे अनैतिकता में कोई बृद्धि नहीं हुई और भविष्य में इसकी कोई संभावना नहीं प्रतीत होती है।

बालविवाह

वैदिक युग में बालविवाह की प्रथा का अभाव

भारतवर्ष में बालविवाह की प्रथा प्राचीन वैदिक युग में ही प्रचलित नहीं थी। किन्तु प्राचीन वैदिक युग में ही प्रचलित नहीं थी। उक्त समय में विवाहसम्बन्धी वैदिक मंत्रों एवं भूक्तों में यह बात प्रती-भाति स्पष्ट होती है। बाद में आठ और दस बरस के और बहुत बाद इससे भी कम आयु के बाल अनेक मामलों में मन्त्र-वाचक-वाग्विदों के विवाहों का प्रचलन हुआ तथा विवाह की गृह्य-गुह्यवाओं का खेल रंता बिया गया, किन्तु वेधों में इसकी कोई गन्ध तक नहीं है। प्राचीन वैदिक युग के लिए तो यह एक कल्पनासीत वस्तु थी। इस युग में विवाह तभी होता था जब बर (माम) वधू की कामना करता था और वधू पति की इच्छा करती थी।^१ उक्त समय पर सामान्यतः वधू भी सहाय करती थे और कन्या के माता-पिता वर को अपनी कन्या देते थे। युवक-युवती में प्रेम का उदय युवावस्था प्राप्त करने पर ही हो सकता है, बाल्यावस्था में नहीं। वेध में बार-बार वर-वधू द्वारा एक-दूसरे का चिन्तन करने तथा अपने मनों को एक-दूसरे के अनुकूल बनाने और प्रेम प्राप्त करने का वर्णन है। तैत्तिरीय उपनिषद् (१।६।१) में एक स्थान पर वधू वर से कहती है—“मैं इस बात को जान लिमा है कि तुम मेरा ध्यान करते हो और सम्मानोत्पत्ति के कार्य के लिए मुझे अपना सहयोग देने को प्रस्तुत हो।” वर वधू को इसका उत्तर देते हुए कहता है—“मैंने यह जान लिया है कि तुम मन से मुझे चाहती हो। सम्मान चाहती हो। हे युवती स्त्री, तुम मेरे पास आओ और हे पुत्र की कामना करने वाली, तुम स्वयं उत्पन्न करो (तैत्ति० उप० १।६।२)। अथर्ववेद के त्रीसिंजमन (६।८।६), अथर्वश्रम (६।१०।२।२), श्वर (६।१६।१) इत्यादि में लवण विवाह की प्रथा सूचित होती है। श्रुतवेद में अनेक स्थानों पर बलिनी देवताओं (वर के माता-पिता) द्वारा विवाहों के संयोजन होने का ज्ञेय है।

^१ श्रुत १०।६।६ ‘कोनो वधूयुरवधवस्मिन्मत्तातुया धरा । सुप्रां गच्छेत्तंभस्मिन् वरतः प्रसिद्धा ददातु’ । अथर्वश्रम का भाष्य धर्मोत्तमोक्त, पति कामनावान्, मातापिताभिर्यवः ।

एक मुकती कहती है—हे अविवाही ! मुझ प्रति मुकती के साथ शुरु में निवास करता है (च० १०।४४।११) । च० २।३५।४ में उस की प्रति अत्यन्त निर्भय, उदात्तचित्ती, प्रसन्नचित्ती, मुकतियों को मुझा पुत्र प्राप्त होने का वर्णन है ।

वैदिक विवाह में दम्पती के जित् कर्त्तव्यों, बायित्वों एवं आदतों पर बल दिया गया है कि जसम विवाह में ही पूरे हो सकते हैं । विवाह के कर्मों में दम्पती प्राणि-सङ्ग, सप्तपत्नी तथा अन्य विधियाँ करते हुए जो बन्ध पड़ते हैं उनमें परस्पर प्रेम, सङ्गर्ष और आत्मन्वीजन एक दूसरे के अनुकूल रहने की प्रतिज्ञाएँ की गयी हैं । उनका आशय यदि वे न समझते हों तो सारी विवाह विधि एकदम खोरा मात्र रह जाती है । विवाह के समय बहुतों यह भावीवच दिया जाता है कि दूधबलुदाय में साह और सधुर गम रानी सगमर रह (च० १०।४५।४३) । यह आतीवचि भाट बल बरत की ऐसी बालिका को सही दिया जा सकता, जो अपने साथ की कठिमाता से संभाव सकती है । यह अनेक बालिका अनुसूक्तों को संसाधने और शासन करने के बायित्व को प्राप्त प्रकार पूर्ण कर सकती है । यह कार्य केवल योग्य और निमित्त मुकती द्वारा ही संभव है । अतएव में विवाह के समय के सङ्घर्षों का सम्पन्न के दृष्ट भी है (१०।४५।२७-२८, ३७) । बाल-विवाह के समर्थक कहते हैं कि पूर्ण मुक्त विभिन्न प्रकार के कर्मों का संकलन मात्र है, बन्धुतः गृहवासविधि विवाह होने के पदों का भाव प्रेक्षी की और उस समय के बन्धु बन्धुता में जोड़ दिये गये हैं । किन्तु विवाह के समय यह जाने करते दम्प इस स्थापना का सम्पन्न करते हैं । बाल के सम्पन्न पर, बन्धु की अविजम्ब तात्पत्त उत्पन्न करने के लिए अपने पास भुजता है (वीमितीय गृह्यसूत्र २१।८) । विवाह के तीसरे दिन गर्मावाज का विधान है । यह कर्त्तव्य पर-बन्धु के पुत्र होने पर ही हो सकता है । विवाह होते ही बन्धु पर के घर जाती है और घर के सारे कान-प्राप्ति की संभाव होती है । उसी को प्रति के घर में निविष्ट होते हुए कहा जाता है कि तू इस घर में गृहस्थ के कार्य के लिए तथा आगच्छ रह (च० १०।४५।४५) ।

अतएव के कुछ स्थलों से वैदिक धर्म में बाल-विवाह सिद्ध करने का दल दिया जाता है । इन स्थलों में अर्धग तथा अर्ध गम्य का प्रयोग हुआ है । कहा जाता है कि अर्ध और अर्धग का अर्थ बालिका एवं बालक है । च० १।१५६।१ में अविधिविधों द्वारा अर्धग विजम्ब की अर्धत् बालक विधम की पत्नी दिये जाने का वर्णन है । च० १।५१।१३ में यह उल्लेख है कि इस ने कर्त्तव्यत्व की अर्ध अर्धत् बालिका बुद्ध्या दी । किन्तु इन दोनों स्थलों पर अर्धग और अर्धग का अर्थ बालक और बालिका नहीं है । किन्तु को अर्धग कहने का आशय केवल इसका ही है कि वह अपने जन्म प्रतिज्ञास्वी राजाओं की अपेक्षा कम आयु का था । सामन्तधर्म्य द्वारा बलिष्ठ भीराविक गाथा के अनुसार उसने युद्ध में अपने प्रतिज्ञास्वी राजाओं को हरा कर बन्धु प्राप्त की थी । दूसरे स्थल में बुद्ध्या को अर्ध का जो विशेषण दिया गया है, उसका कारण यह है कि कर्त्तव्यत्व की बड़ी आयु की

मुसलमानों ने मुसलमानों को मृत्यु बहुत छोटी दी।

वैदिक युग में बाल-विवाह न होने का एक प्रबल कारण यह था कि जालमयों तथा बालिकाओं को शिक्षा के लिए कुछ वर्ष तक ब्रह्मचर्य या गाम्भ्य करना पड़ता था, उपनयन एवं विद्याभ्यास के बिना व्यक्ति गृह संस्था जाता था। उपनयन संस्कार के साथ गृह के पाठ ब्रह्मचर्यपूर्वक वेदाभ्यास करने के बाद ही व्यक्ति गृहस्थ संस्था में प्रविष्ट हो सकता था। वेद का अध्ययन करने के लिए उस में कम १२ वर्ष का समय लगाना पड़ता था। उपनयन संस्कार प्रायः ८ वर्ष की आयु में होता था। ८ वीं व्रत में १० वर्ष में १० वीं आयु के पुरुष ने विवाह संभव था। अतः वैदिक व्यवस्था में अतृप्त गृहस्थ आश्रय के लिए उपयुक्त नहीं मालूम था जो युवा हो। "यं पुत्रसंयोगात् और ब्रह्मचर्य संन्यास के उपरान्त शिक्षापूर्ण, गुणवत् बालों को जालमयों के ब्रह्मचर्य में आता है वही संगमजारी संन्यास है" (ऋ० ३।८।४)। पुत्रों के प्रत्यक्षारी रहना वेदाभ्यास करने में किसी का समय नहीं है, किन्तु कुछ संन्यासियों में ब्रह्मचर्यपूर्वक वेदाभ्यास करने में रुचि करते हैं। किन्तु अवश्यैव वे ब्रह्मचर्य मूल में बड़े स्पष्ट भावों में कहा गया है कि ब्रह्मचर्य द्वारा प्राप्त युवा व्यक्ति का प्राप्ति अश्लील है (ब्रह्मचर्य का कथा वृत्तान्त विनियम पतिम्)। वैदिक काल में शिक्षा की पुष्टि की तरह ब्रह्मचर्यपूर्वक वेदाभ्यास करती थीं। विवाहारा (ऋ० ४।२८), अपात्ता (ऋ० ८।६१) तथा यीरा कलीवारी (ऋ० १०।३६) विविध युक्तियों के संन्यास का वर्णन करने वाली हुई है। इन प्रकार स्त्री-पुरुष का विवाह ब्रह्मचर्यपूर्वक विद्या प्राप्त करने के उपरान्त ही पूर्ण युवा-वस्था में होता था। साथ में शिक्षा और युवती के ब्रह्मचर्य का पूर्ण शिक्षा की अस्ति होने से ही बाल-विवाह आरम्भ हुआ।

गृह्यसूत्रों के आरम्भिक काल में हिन्दू समाज में समस्त विवाह सम्बन्धित रहते, किन्तु बाद में बाल-विवाह का बोझ बहुत प्रचलन होने लग गया। जायन्तवास, आश्व-सम्भार तथा अन्य गृह्यसूत्रों में विवाह की विधियों का विस्तार से वर्णन है, किन्तु वह तब तक नहीं आया कि कोई निश्चित निर्देश नहीं है। गृह्यसूत्रों में विवाह के बाद अविमन्त्र गर्भाशय का वर्णन है। सोमयाज (१।१७।४-५), गार्हपत्य और आपस्तम्ब गृह्यसूत्रों में विवाह के बाद ही गर्भाशय की व्यवस्था है, इससे यह स्पष्ट है कि कथा विवाह के समय युवती होती थी, अपस्तम्ब गृह्यसूत्र स्पष्ट रूप से कहता है कि पति-पत्नी घर आने पर हीन दिन ब्रह्मचर्यपूर्वक रहकर यदि विम गर्भाशय करें, किन्तु सौम्याजि (काण्व) गृह्यसूत्र कुमारियों का ब्रह्मचर्य १० या १२ वर्ष ही बताता है और ११ वें या १३ वें वर्ष की विवाह की व्यवस्था करता है। यह स्पष्ट रूप से यह स्पष्ट है कि इससे पहले के वैदिक साहित्य में यादु का कोई निश्चित स्थिति नहीं मिलता। यदि समयाजों का उपनयन ८ या १० वर्ष में माना जाय तो कल्पों में विवाह काल १८ या २० वर्ष होता। किन्तु द्वादशकेपी (१।१६।२) और गोविन्द गृह्यसूत्र (४।४।१) में कहा गया है कि विवाह

के लिए नमिका कन्या सेव्य होती है।^{१२} नमिका कन्या की व्याख्या करते हुए गोमिना के आधुनिक सम्प्रसार ने 'गृह्यसंग्रह' का यह भाग सम्यक् किया है कि नमिका उस कन्या को कहते हैं जो अशुभ होती है। इसी टीकाकार ने एक दूसरे श्लोक में ऐसी कन्या को नमिका बताया है जो पुरुषों के साथ भी सम्बन्ध से अपने अर्थों को न कापती हो। अतः टीकाकारों के मत में नमिका उस कन्या को कहते हैं जिसमें अभी तक प्रजन्म की वृद्धि उत्पन्न नहीं हुई। किन्तु यह अवश्य ठीक नहीं मान सकता। हिरण्यकेशी गृह्यसूत्र का टीकाकार मानुसमिधनाह का ही नमिका समझता है।^{१३} श्रीप्रियोज्ञ ने महाभारत का एक सर्गक उद्धृत किया गया है, जिसमें १६ वर्ष की कन्या की नमिका बताया गया है। का० चण्डीकरण ने बताया है कि हिरण्यकेशी गृह्यसूत्र को मौखिक परम्परा द्वारा सुरक्षित रखने वाले जनेक वैदिक ब्राह्मणों में तथा इस गृह्यसूत्र की अनेक हस्तलिखित प्रतियों में "सजाता नमिका" के स्थान पर "सजातानमिका" पाठ है, अर्थात् 'नमिका' कन्या से ही बोदी करनी चाहिए।^{१४} यदि इस कल्पना का छोड़ कर हिरण्यकेशी में नमिका का ही पाठ माना जाय और उसका अर्थ छोटी-सी वासिका किया जाय तो इसके आगे बह्मचारिणी

- ^{१२} अभिकल्पसु बह्वेकान्यां यावन्मर्त्यवती भवेत् । अशुभती स्वभक्तिका तां प्रसज्येतु नमिकाम् । अश्वत्थरक्षसा गीरो प्राप्ते एवमि रोहिणी । अश्वत्थरक्षसा ज्ञेयं कन्या शुभहीमा च नमिका ॥
- ^{१३} गोमिना गु० सू० ३।४।६ में उद्धृत—वाचस्पति सप्तम्यांगानि कन्या पुत्रवसन्ति यो योग्यानीधमगृहेत तावन्मर्त्यवती नमिका । मि० हिरण्य० सू० सू० १।१।२ नमिकायासजातानाम् । तस्माद्दक्षिणोपचारो नमिका सेचनमर्त्यवतीः ।
- ^{१४} उपर्युक्त श्लोकों से स्पष्ट है कि नमिका के अर्थ के सम्बन्ध में धर्मशास्त्रियों में मत भेद है। पहले मत में नमिका ऐसी कन्या को कहते थे जिसमें लंगी पट्टे में सज्जा का अनुभव नहीं होता था, जिसने घोषण नहीं प्राप्त किया था, जिसको रजोवर्जित नहीं हुआ था, जिसमें दीवार के चिह्न—कुचरि प्रकट नहीं हुए थे। अश्वत्थपुराण के मतानुसार यह १० वर्ष की लड़की थी। दूसरा मत इसे प्राग्जातानामाख्या तथा सैचनयोग्य कन्या मानता था। १० वर्ष से अधिक आयु को तथा यौवन न प्राप्त करने वाली लड़की गण्यारी कहलाती थी। चण्डीकरण और संवत् १० वर्ष की तथा अश्वत्थपुराण १२ वर्ष की लड़की को कन्या कहते हैं, इसके कुछ अधिकारिता होते थे। इसी को सप्तम्य भी कहते हैं। कुचरि यौवन प्राप्त करने वाली १२ वर्ष से अधिक आयु की लड़की होती थी। रजस्वला १० या १२ वर्ष से अधिक आयु की कन्या होती थी। रोहिणी युवावस्था में आरोहण करने वाली तथा रजोवर्जित सारथ्य करने वाली लड़की होती थी (एस० स्टर्नबक—अधुनिक कन्यावर्धन एंड एसेम्ब इंडियन लॉ, भाग २, दिल्ली १९६७, पृ० ६६) ।

का विशेषण धर्म का मान बढ़ता है। नविका समूह की इस तरह की विरोधी व्याख्या का गम्भीर समाश्रय हो सकता है कि पहले 'नविका' का अर्थ 'नवती' ही था, किन्तु जब बालविवाह की प्रवृत्ति प्रचलित हो गयी तो टीकाकारों ने इसका अर्थ बदरदादी 'वाधिका' कर दिया। इस प्रकार का एक और सुन्दर उदाहरण एल्फिंस्टन उपनिषद् की (१:१०:११) उपनिषत्-आश्रयण की कथा का अर्थ माना है। निर्धनवाग्म्या में कसम श्राद्ध होने के कारण कुम्भेन में अन्नम करने वाली उपनिषत्आश्रयण की कली के लिए धूम में "वाधिका" शब्द है। शंकर ने यहाँ वाधिका शब्द का अर्थ गौरी वाधिका दिया है जिसमें यौवन के बिना अभी नहीं प्रकट हुए हैं।^१ ऐसा प्रतीत होता है कि उन समय बालविवाह की प्रवृत्ति प्रचलित हो गयी थी। प्रारम्भ में जब विवाह प्रथावस्था में होता था तो वेद तथा गृह्य-धर्मों में विवाह की भावना निर्मित होना देने की आवश्यकता भी नहीं पड़ती थी, किन्तु जब बाल विवाह होने लगा तो बौद्ध और हिन्दुधर्मों को यह ही भाव या मनिका शब्द में विरोध करना पड़ा। सुधुन ने भी (इतिहास के मत में उनका समय = बी ५० ई० पू० ई०) बाल-विवाह की प्रवृत्ति को रोकने का यत्न किया और पिता पि माँपन्न अर्थ से नून बालु बाली ली और पत्नीस अर्थ से नून बालु बासा मुख्य यदि संश्लेषण करते हैं तो यह अर्थ एक नहीं बनता, उत्पन्न होने पर बहु देश तक प्रीति नहीं रहता और यदि प्रीति रहता है तो दुर्मेष्टि हो जाता है, इसलिये अन्नम बासा से नहीं स्थापन न करे।^२ गौह अर्थ से कम बालु बाली कथा को सुधुन अन्नम बासा समझता था।^३ किन्तु यह एक विचित्र बात है कि अन्ध (अधिर म्याम १:११) में सुधुन ने कथा की विवाह शीघ्र बालु ११ अर्थ लिखी है।^४ संभवतः सुधुन की उड़ी

१. बाली० १:१०:११ अन्धीहोतु कुम्भादिपिता लक्ष्मणादीवसिर्ह्यु आश्रयणा इत्येवामेव उवाच, शंकर—वाधिका अनुपपन्न अन्नमया उद्योगराशि। लोकेन नृक मल की दृष्टि सीरीस के इस उपनिषद् के अनुसार में यही अर्थ किया गया है, किन्तु यह कली शब्द का अर्थ ही यहाँ हीक प्राप्त सकता है।

२. सुधुन श्रा० स्वा० (१:१५४-५५) अन्नोद्योगाश्रयणाश्रयणाः संश्लेषातिनू पचासते पुनान् अर्थ कुम्भेनः क विपद्यते। बासा वा न किरं जीवेनजीवेहा-दुर्मेष्टिनिवः, अन्नाद्यन्नमवासाया अर्थान्नम न कारयेत्।

३. बासेति पीपते भारी पाच्यधर्माणि श्रेयसा। पु० शा० स्वा० १:१५१

४. अन्धार्थ संश्लेषातिनिवः इत्यल्लक्ष्यं कलीवाच्यते—अन्धार्थकामाज्यां श्रामध-भीति। सुधुन की १६ अर्थ की शब्द का समर्थन अन्नमया के परिध्वनी शब्दों से करते हैं। उनका कहना है कि भारत में कथाओं का विवाह १६ अर्थ से कम बालु में कथाएँ नहीं होना चाहिए। डा० लेकस्टर ने अपनी अन्ध पुस्तक द्यूबल-

समय यह बेटाबगी बंभे की आकस्मिकता प्रतीत हुई होगी जब यह बुराई प्रकटित हो चुकी होगी ।

घर्मसूत्र व बालविवाह

पिछले गृहधर्मों की अनेक घर्मसूत्रों में बालविवाह की प्रवृत्ति अधिक स्पष्ट रूप में उद्दिष्टावली होती है । श्री३-धीरे यह विचार प्रकटित होने लगा कि ऋतुकाम के समय एक कन्या का प्रयत्न कर देना चाहिए, यदि उस समय के बाद भी पिता कन्या का विवाह नहीं करता तो कन्या की कुछ प्रतीक्षा करके अपना विवाह स्वयं कर देना चाहिए । नौतम (१८।२०-२३) के मत में यदि तीन ऋतुकाम बीत जायें के बाद भी पिता कन्या की सादी नहीं करता तो कन्या अनिन्दित पुण्य के साथ विवाह कर ले और पिता के दिने हुए बहनों को छोड़ दे । पिता को ऋतुकाम से पहले ही कन्या शान कर देना चाहिए (प्रधानं प्रायुतः) । कुछ आचार्यों के मत में तो कन्या के वस्त्र पहनने के योग्य होने से पहले ही उसका शान कर देना चाहिए । इससे स्पष्ट है कि नौतम से पहले ऐसी कन्याओं का भी विवाह प्रारम्भ हो चुका था जो वस्त्र पहनना न जानती थीं । किन्तु नौतम उनसे असहमत होता हुआ ऋतुकाम से पहले कन्या के शान का विधान करता है । नौतम (४।१।१२-१४) और ब्रह्मसूत्र (१०।७०-७१) उपर्युक्त सिद्धान्त का अनुसरण करते हैं और यह बात और बढ़ा देते हैं कि अब तथा कन्या अविवाहित है उस समय तक प्रति ऋतुकाम में भ्रूणहत्या का दोष उसके माता-पिता को लगता है । योग्य वर न मिलने पर कन्या विवाह करे या नहीं, इस पर कुछ सम्मति-भेद है । मनु (२।८८-८९) सख्यन्त, जनिक्म एवं सद्युक्त वर पर बल देता है और यह कहता है कि ऋतुपती होने तथा जन्मपर्यन्त कुमारी रहने पर भी कन्या का विवाह गुणहीन वर के साथ न करे । यदि माता-पिता कन्या का विवाह न करें तो कन्या तीन वर्ष तक प्रतीक्षा करके योग्य वर से स्वयं विवाह कर ले, इसमें उसे कोई पाप नहीं लगता (२।१०-११) । मनु ने गौतम की तीन ऋतुओं की अवधि को ३ वर्षों तक पहुँचा दिया तथा उपर्युक्त वर न मिलने पर कुमारी रहने का विधान किया । किन्तु बौधायन घर्मसूत्र (४।१।१२-१४) कहता है कि पिता कन्या को गुणवान् वर के लिए वे, गुणवान् वर नहीं मिलता तो गुणहीन को ही वे,

कसोत्तम पुनर्द्विधा (भारत में अवरोध, पृ० १४७) में लिखा है—यह कहा जाता है कि जल्य प्रवेशों में स्त्रियों के योग्यता का परीक्षा गौतम होता है और समय-योग्य कसोती के प्रवेशों को अपेक्षा भारत की कन्याएं गौतम तकम्ब प्रकट करती हैं । इस गौतम विचार के लिए दो वर्ष कम किये जा सकते हैं । पश्चिम में विवाह की मूलतम आयु १८ वर्ष समझी जा सकती है, इस बात (भारत) में यह आयु १६ वर्ष होती चाहिए ।

किन्तु स्वस्वला कन्या को घर में रोक कर न रखे।^{१०} ऋतुमती होने के बाद ही तीन मई तक यदि कन्या का विवाह नहीं होता तो कन्या स्वयमेव योग्य पति प्राप्त करे और यदि योग्य पति नहीं मिलता तो गुणहीन का ही सामग्र्य ग्रहण करे। मातृनित्य (१:६४) ने भी स्वस्वला कन्या के विवाह न करने पर माना-गिरा को भ्रूणहत्या का दायीग कराराया है और कन्या को स्वयं विवाह करने की आज्ञा दी है।

स्वस्वला होने से पहले कन्या का विवाह कर देने के लिए इस अर्थों से जो आवश्यकता विद्यमान है उसके परंकारण प्रणीत होने हैं। पहला मंगर्य श्राविक है और दूसरा राजनीतिक। धर्मशास्त्रों में भ्रूणहत्या एक बर्मेकर पाप माना गया है और अज्ञान्य की हत्या इसके लिए १२ वर्ष तक प्रायश्चित्त करने का विधान है (मनु ११:३७, याज्ञ० ३:१९६)। अत्येक ऋतुकाल में स्त्री गर्भ धारण करने योग्य होती है। उस समय यदि गर्भाधान न हो तो वह राज बर्मे जायगा। इस राज को शास्त्रकारों ने भ्रूण के तुल्य समझा है और जो जिता कन्या के स्वस्वला होने पर भी उसका विवाह नहीं करता उसे भ्रूणहत्या के पाप का भागी कहा गया है। इस भ्रूणहत्या के पातक से बचने का एक ही उपाय था कि कन्या की शादी स्वस्वला होने से पहले कर दी जाय ताकि भ्रूणहत्या की संभावना ही न रहे।

दूसरा कारण राजनीतिक था। जनसंख्या की आवश्यकता को ध्यान में रखते ही उत्तम पुत्र प्राप्ति करने की अपेक्षा अधिक से अधिक पुत्र उत्पन्न करना अधिक भव्य समझा जाता था। कौटिल्य ने १२ वर्ष की ही स्त्री को विवाहित समझा।^{११} मनु ने भी कन्या को इसी अवस्था में विवाह के योग्य समझा है। कौटिल्य ने अपने निमंत्रण में श्राव का पूरा ध्यान रखा है कि स्त्री के ऋतुकाल का उपरोध नहीं होना चाहिए। इसका यह बर्मेवश के तुल्य समझता है। कौटिल्य की यह चिन्ता संभवतः जनसंख्या का बढ़ाने की दृष्टि से थी। बंदा जातियों का जीवन संघर्ष में विजय पाने के लिए सदा और पुत्रों की आवश्यकता रहती है और वे अधिक से अधिक संतानों को उत्पन्न करने पर बल देते हैं।^{१२}

१० श्रीमद्भगवद्गीता ५:१५, 'अथाभुगन्मते कन्यां नमिकं सङ्गृह्णातिने। अपि वा पुनः स्त्रीनाय तेष्यकन्याद्वयस्वभावात् ।'

११ कौटिलीय अर्थशास्त्र—शावभावन स्त्री प्राक्कन्यारा नमति ।

१२ इसके मनुष्यिक उदाहरण जर्मनी और इटली हैं जहाँ आर्थिक सहायता, पैसे, कर्ज तथा अन्य अनेक सुविधाएँ देकर जनसंख्या बढ़ाने का प्रयत्न किया जाता है। इटली के जर्मनी में १ को मरत १.६३६ से लेकर ३ = सितम्बर १.६३५ तक २,२२,०० हस्तियों को श्राविक सहमति दी गई। इन लक्ष्यकारों का यह परिणाम हुआ कि वर्ष १९३२ में जर्मनी में ६,१७,००० विवाह हुए थे जहाँ

भारत पर ईरानी एवं मुगली हुमलों के समय अनुग्रहों की संख्या का बीता ही महत्व नष्ट गया होगा, जैसा १६३०-४० में जर्मनी, इटली आदि देशों में था। उस समय के इतिहास में गर्मियों की विधान सेवा का उल्लेख पाया जाता है। मुगली सैनिक इस सेवा की थकाई सुनकर डर मने के और छिन्दर को व्याप्त नदी के तट से धुनान की मोहर पाण्डित्री भेंटना पड़ा था। कीटिल्व ने संभवतः इस राजनीतिक आवश्यकता का पूर्ण ज्ञान के लिए ही "तीपेरिरोथ" न होने (अनुमान व्यर्थ न माने) की गथा १२ वर्ष की लम्बा के विवाह की व्यवस्था की।^{१३}

बालविवाह का मुख्य कारण—स्त्रीशिक्षा का अग्रचलन

भूमिहीन का तब तथा जनसंख्या की शान्ति के कारण जो बाहुल्यमयों एवं-
मुहूर्तों के समय की रहे होंगे, उस समय कहीं समय विवाह होता रहा, यह एक अति

१६३४ में यह संख्या ७,४०,००० हो गयी जबकि जो वर्षों में बढ़ाई लाख विवाहों की कृति हुई। १६३६ में यह ६,१०,००० हो गई। यह १६५२ की अपेक्षा १ लाख ज्यादा थी। इटली ने १६३७ में उस जनसंख्या वृद्धियों को जो निश्चित दिनों का समय करते थे कुछ छन राशि का प्रोत्साहन देना शुरू किया। १६३६ में इटली में २,२७,५२४ विवाह हुए थे। किन्तु प्रोत्साहन देने के बाद १६३७ में यह संख्या २,६६,२१६ हो गई। इस प्रकार इटली ने एक ही वर्ष में पौन सात के लगभग विवाहों की संख्या बढ़ा ली (ईसाईमतनोदितया विटारिका की प्रिन्स बुक, १६३८, पृ० ४०१)।

- १४ संख्या बढ़ाने की दृष्टि से बाल विवाह तथा कथा का १२ वर्षों में विवाह करना हिन्दू संप्रदाय के लिए ही विशेष बात नहीं थी। यजुर्वेदों में २० वर्ष की आयु के के बाद ही यदि कोई विवाह नहीं करता था तो उसे अवसतत द्वारा विवाह करने पर मजबूर किया जाता था। पुत्र के विवाह की आयु १८ तथा स्त्री के विवाह की आयु १२ वर्ष थी। मासिक होने के जो यही वर्ष समझे जाते थे। किन्तु हिन्दुओं की भाँति आज में यजुर्वेदों ने विवाह की आयु को बहुत बढ़ा दिया और १८ वर्ष से पहले जो लड़का विवाह नहीं करता था वह पापी समझा जाता था। यद्यपि यह व्यवस्था के "बढ़ो और द्विपुत्रित होओ" (Increase and multiply) के मन्त्र की वश करने का अग्रचली था। १३ वर्ष का होते ही उसे विवाह का अधिकार हो जाता था। १३वीं सदी में यहो कथाएँ लम्बातम व्यवस्था में ही व्यवहृत हो जाती थीं। १४वीं सदी के उत्तरार्द्ध में कर प्रायः १० वर्ष के अधिक का नहीं होता था और यजु इस से भी कम आयु की होती थी (विक्टर गार्ने—सर्व हिन्दुसो जलक मैरिज, पृ० ४०)

समस्या है। महत्त्वपूर्ण है कि तार्क्यिक दोनों कारण ब्रह्मविवाह की प्रकृति में सहायक एवं सहायक हो सकते हैं, किन्तु मूल कारण नहीं हो सकते। ब्रह्मविवाह का मूलकारण स्त्रियों की शिक्षा की संस्था एवं अन्नदान है। इस बात पर ध्यान देना चाहिए कि वैदिक युग में स्त्रियों द्वारा चारित्रिक रहकर शाप प्राप्त करती थीं। उनमें से अनेक स्त्री विदुषी होती थीं कि उन्होंने वैदिक सूत्रों के गुरु अर्थात् का स्पर्श किया और मन्त्रपुष्ट होकर स्त्री ब्रह्म-सायी। यही जैसी कुछ ब्रह्मविवासी स्त्रियाँ आजीवन अनिवाहित रह कर अपना नाम सन्नत दर्शन सास्त्र की गुणितता सुनसान में बिताया करती थी। किन्तु गर्भ-कर्म-स्त्रियों की स्थिति गिरने लगी। दूसरे को अधिक उपपत्ति, स्त्रियों का रज की अपवित्र गमना का रजस्वलाओं को भग्न एवं दुषित समझना, गुरु स्त्रियों के साथ विवाह के बाद उन्हें गुरु के अधिकार से वंचित रखने की प्रवृत्ति, स्त्रियों का गुरु ममझना, कर्मकाण्ड की बुद्धि का साथ-साथ ब्राह्मणों के प्रभाव की बुद्धि तथा ब्राह्मणों द्वारा स्त्रियों की शिखा आदि अनेक कारणों से स्त्रियों की स्थिति गिरने लगी।^{१४} जब रज की अपवित्रता के कारण उन्हें गुरु सम्पर्क जाने तथा तां गुरुओं को चरख उनके उपनयन, शिक्षा एवं वेदाभ्ययन की अपेक्षा स्वाभाविक ही थी। हारीश ने इस प्रवृत्ति का विरोध करना चाहा। उसने जिस उद्योग से यह विरोध किया है उससे यह स्पष्ट है कि स्त्रियों को गुरु समझने तथा उनका उपनयन संस्कार न करने और शिक्षा न देने की बुराई काफी बड़ चुकी थी। यह कहना है कि “स्त्रियाँ गुरु के समान नहीं हैं क्योंकि गुरु की योग्यता में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र होते हैं। इसलिए स्त्रियों के सब संस्कार वैदिक मन्त्रों के साथ ही करने चाहिए”।^{१५} स्त्रियों के दो श्रेय हैं—(१) वेद का अध्ययन करने वाली ब्रह्मविवासी तथा (२) शिष्य शिक्षा करने वाली स्त्रियाँ। वेद का अध्ययन करने वाली स्त्रियों का उपनयन संस्कार होता है। वे पवित्र अग्नि प्रज्वलित रखती हैं, अपने घर में अध्ययन करती हैं तथा भिक्षा द्वारा प्राप्त भोजन पर निर्वाह करती हैं। रजोवर्धन के समय उनका सम्मान होता है। दूसरी स्त्रियों के लिए ये श्रेय गीण है और उनकी प्रतिष्ठा भी ही सम्मान हो जाती है। यह बड़े दुःख की बात है कि हमें हारीश का ग्रन्थ उद्धरणों के रूप में सत्यकारीन सेवकों के ग्रन्थों में ही मिलता है।^{१६} संभवतः उसने अपना ग्रन्थ तब लिखा

^{१४} इससे निश्चित बर्तन के लिए देखिए हरिवंश-विवाहसंस्कार—हिन्दू परिवार जीवनसंस्कार, १०९-११४

^{१५} हारीश २१२-२३१ न कुटुम्बः स्त्रियः । न हि गुरुयोगी ब्राह्मणक्षत्रियवैश्या नामस्ते तस्मात्कृष्यसा स्त्रियः संस्काराः । तासां द्विविधे विधयः ब्रह्मविवाहः सद्योब्राह्मणेति ब्रह्मविवासीनामुपनयनमग्निहोमसंस्कारः स्वयंवेदभ्ययनं संनयनार्था च प्रकृती रजसः समावर्तनम् । अतिरिक्तोपपत्तिश्च सद्योपपन्नसम् ।

^{१६} हारीश का सर्वप्रथम पूर्ण रूप से उपलब्ध हो जाने से उसका समय निर्धारण बहुत

जब बालविवाह की प्रथा बहुत अधिक प्रचल गयी थी। उपर्युक्त उद्धरण से यह स्पष्ट है कि हारीत ने स्त्रियों के होने जाते हुए सम्पत्ति के अधिकार को बिना अपनी आशय्य उठायी थी।

किन्तु हारीत की यह व्यवस्था अल्पसंख्यक मात्र सिद्ध हुई। किसी धर्मग्रन्थकार ने हारीत के इस मत का समर्थन नहीं किया। सम्य के प्रभाव से हारीत की इसी बात से आशय्य गयी कि स्त्रियाँ वंशरह की हाराती हैं और वेदाध्ययन करने वाली स्त्री का विवाहात्मक दर्जादर्शन से पूर्ण ही समायात्रा जाय है। अधिकांश स्त्रियों का उप-नयन विवाह मात्र ही रह गया। मनु (२०० ई० पू०) के समय यह कहा गया कि स्त्रियों के उपनयन में वैदिक मन्त्रों के पाठ की आवश्यकता नहीं है (२।६६)। इसके साथ ही मनु ने कन्या के पित्र, पिताह संस्कार को ही उपनयन संस्कार माना, क्योंकि कन्या के भिन्नवर्ति की सेवा ही मुख्यतः बाल के मुख्य है और घर के कार्य ही मात्र। आशंका के अविमर्श है (मनु २।६७)।

कन्याओं की शिक्षा की व्यवस्था ने बालविवाह को ही तरह से प्रोत्साहित किया। पहला तो यह धार्मिक यदि कन्याओं को शिक्षा नहीं दी जाती तो घर-घर से विभक्तुत छात्री रहती। “मायी विनाग वीतान का घर होता है” और काशकर कुमारी अवस्था में मायी रहना बहुत अव्यक्त है। वैदिक काल में यह विवाह प्रचलित था (मनु १।०।१५। ४०-८९) कि कन्या के विवाह में पहले गंध, गन्धर्व, और अग्नि उसका उपभोग करते हैं। मनु १० (३।४।६) में उक्त गृह्यसंहिता कहा है यजु के मन्त्र प्रणत होने पर इन तीनों देवताओं द्वारा उसके उपभोग की कर्त्तव्य करता है, और उसके मत है कि इन सभर्तों के प्रणत होने से पूर्व ही कन्या का विवाह कर दिया जाय। यह विवाह सत्य हो या न हो, कन्या के माता-पिता अपनी कन्या के सम्बन्ध में कोई प्रत्यक्ष कर्त्तव्य होने से पूर्व ही उक्त विवाह कर देना अच्छा समझने लगे और प्रभाव से अपना तभी संभव ही समझा था जब कन्या की जादी बहुत जल्दी कर दी जान। गांधर्वविवाह (स. वा. ३।४।२२६) में एक गिरा स्पष्ट रूप से अपनी कन्या से कहता है कि यदि तू इस नयी नजानी में मुझे दुःख देना चाहती तो इच्छापूर्वक देर तक कुमारी पत रह, क्योंकि इसी अवस्था में बहुत आसानी से हो जाती है।

कन्याओं की शिक्षा के अग्रचरण ने वैवाहिक नरतु को एक बूझने रूप में सब प्रकार प्रभावित किया कि जब संस्कार की दृष्टि से विवाह की उपनयन धर्म विधा गया तो यह स्वाभाविक था कि विवाह उपनयन की अवधि जाठ वर्ष की आयु में ही किया

काल है। किन्तु धीमायन (२।१।५०) अल्पसंख्यक १४।१३।११, १।५।१८।२, १।५।१८।१२, १।१०।२५।१, ६, १६, १।१०।२५।१२, १६, अथिष्ठ (२।६) में हारीत का मत उद्धृत किया गया है। अतः इसका काल धीमायन के काल ५००-२०० ई० पू० में रहने ही होना चाहिए।

धाम। यस से कहा है कि जब विवाह की उधनयन कहा गया है तो गर्भ से या जन्म से मांठमें बांधे विवाह करना श्रेष्ठ है। स्मृतिकौस्तुभ में कहा गया है कि जबकि स्त्रियों का विवाह उपनयन का स्वाभाविक है, अतः उपनयन की अवस्था में ही विवाह करना चाहिए।

इस समय धाति, पिण्ड, गोस्तादि के वैवाहिक प्रतिबन्ध क्रमशः दृढ़ हो रहे थे। इनकी दृढ़ता के भी छोटी आशु में विवाह की अनिवार्य बना दिया। यदि कन्याओं और ब्राह्मणों के विवाह में अद्वैती तर्कों की आगामी तंत्र धीरे-धीरे के विकास के साथ-साथ जब उनमें प्रेम का झोत करने प्रयोग हो यह आवश्यक नहीं कि यह प्रयोग विष्णु, जामि और गोमल की सर्वाधारों में रहता हुआ ही रहे, वह सर्वाधारों का अतिक्रमण करने भी रहे सकता है। इसलिए उपर्युक्त सर्वाधारों की रक्षा करने के लिए यह अच्छा समझा गया कि प्रेम की आधार के समय पर ही और विना आम, निष्ठित यह धारा बाध में उद्गम होकर सर्वाधार के मुलों का अतिक्रमण न कर सके। इस धारा के अंतर्गत के रूप में बामविवाह की उगमगिता स्वतः सिद्ध थी।

बालविवाह के अन्य कारणों की आलोचना

वेदकीय की कल्पना—बालविवाह के उद्गम के सम्बन्ध में वेदकीय ने १८८५ में यह विलक्षण कल्पना की थी कि पहले पुरुष अपनी इच्छानुसार किसी भी स्त्री के साथ सम्बन्ध कर सकते थे, स्त्रियाँ सारे समाज या वर्गों की सामी सम्पत्ति थी। इन पर किसी का वैयक्तिक अधिकार नहीं था। समाज में सामूहिक विवाहों (Communal Marriage) का व्यवस्था था और कई बार दूसरी बातों की स्त्रियाँ गन्तव्य कर जाती थीं। ये स्त्रियाँ भी सामूहिक सम्पत्ति का अंग होती थीं। किन्तु बहुत से मनुष्यों को यह बात पसन्द नहीं, वे स्त्री घर अपना पूर्ण वैयक्तिक अधिकार चाहते थे। उन्हें यह असह्य जान पड़ता था कि कोई दूसरा व्यक्ति उनकी स्त्री का उपयोग करे। अतः उन्होंने बचपन से ही गरायी कन्या की अपने पास रखना शुरू किया ताकि वह उनकी वैयक्तिक सम्पत्ति समझी जाय। बालविवाह की प्रथा स्वच्छन्द विवाहों की प्राथमिक चक्रियों (Primitive mores) के विरुद्ध खबरदस्त वैज्ञानिक विद्रोह था। इस प्रकार हिन्दू समाज में प्राचीन काल में बालविवाह की प्रथा का अध्युषण हुआ।^{१०}

इसमें कोई शक नहीं कि यह एक विलक्षण सूत्र है, किन्तु यह आपत्तिसम्पन्न होती सूत्र है। इसमें भारत के पुराने इतिहास पर कुछ भी विचार नहीं किया गया, यही अपनी कल्पना के समर्थन में कोई प्रमाण उपलब्ध किये गये हैं। इस पहले अध्याय में यह स्पष्ट बूके है कि वैदिक साहित्य में कामचार (Promiscuity) या सामूहिक विवाहों का कोई उल्लेख नहीं है। वैदिक युग में वैयक्तिक विवाह होते थे। विवाह से

^{१०} रिङ्गो—नोपस आद इतिहास, पृ० १८८

पहले युवक युवतियों का आपसी प्रभुरंजन, अन्धमन और प्रकाशन (Courtship) काये थे और युवतियाँ इच्छानुसार अपने परिधर्मी का चरण निम्न करती थीं। यदि बालविवाह सामयिक युग के अन्धगी दिवालों के विरुद्ध एक प्रतिनिध्या भी हो वैदिक साहित्य में हमें उसका कोई प्रमाण नहीं मिलता? वेदों में तबम युवकों और युवतियों के विवाह की क्यों चर्चा है? वैदिक युग तक यदि आर्य लोग प्रीति छोड़ चुके थे तो उनमें बालविवाह की प्रथा होती चाहिए और यदि उनमें अगाधीन या तो वेद में प्राग्वार (Prenuptial) या सामूहिक विवाह (Communal Marriage) का प्रलेख होता चाहिए। किन्तु वेदों में से एक भी प्राग्वार या अगाधीन में नहीं पायी जाती। इस बात में निस्संशय ही कल्पना अगोचरक होने पर भी प्रमाण के अभाव में निराधार और अमान्य है।

बालविवाह के उद्भव के सम्बन्ध में सर्वप्रथम ज्ञानता में एक जगह प्राचीन मुसल विचारस यह प्रकटित है कि मुसलमानों के हमले होने पर स्थिती की रक्षा के लिए उनका छोटी आयु में विवाह किया जाय अथवा। किन्तु यह कारण भी पूरी तरह सत्य नहीं प्रतीय होता है। इस्लाम का आरम्भ ७ वीं शताब्दी में हुआ और मुसलमान ८ वीं शताब्दी के आरम्भ में भारत की सीमा पर पहुँचे। यदि यह कारण सही हो तो भारत में ८ वीं शताब्दी के पहले बालविवाह की प्रथा विकसित नहीं होनी चाहिए। लेकिन उपर हम देख चुके हैं कि बालविवाह की प्रथा गुजरात में तथा अरबियों के आगम से कुछ ही चुकी थी। कम से कम गौतमधर्मसूत्र के समय—१६वीं शताब्दी ई० पू० से बालविवाह की रिवाज अच्छी तरह से प्रचलित हो चला था। मुसलमान इनके १२०० वर्षों बाद भारत में प्रकट हुए। अतः उन्हें बालविवाह के उद्भव का कारण नहीं माना जा सकता। इस सम्बन्ध में हमारा सत्य मत यह है कि इन्होंने पहले से होती आने वाली प्रचुर को प्रोत्साहित किया होगा।

अनेक विद्वानों की यह कल्पना है कि बालविवाह की प्रथा को हिन्दुओं ने ब्रह्मिक जातिधर्मों में प्रचल किया।^{१८} किन्तु यह भी कोरी कल्पना है और मिलकुम स्पष्ट तथ्यों के विरुद्ध जानी जाने वाली है। तीक्ष्णों क्यों से बालविवाह करने वाले हिन्दुओं के दाह रहते हुए जब भी अधिवंश अधिक जातिधर्मों में तथ्य विवाह होते हैं। कुछ जपकारों को जोड़कर उद्यम बालविवाह की प्रथा प्रचलित नहीं है। श्री टिप्पणी ने लिखा है कि छोटा नागपुर, मध्य प्रायद्वीप और मद्रास की पहाड़ियों में रहने वाली ब्रह्मिक जातिधर्मों में तथा हिमाचल, मत्तस और बर्मा की बंगाल जातिधर्मों में अब तक सत्य युवक-युवतियों में अनुरंजन (Courtship) और विवाह की परिपाटी प्रचलित है।^{१९} जो जातिधर्म अभी तक सत्य विवाहों की प्रथाओं को अपनाये हुए हैं उनके अतीत काल में हिन्दुओं ने बाल-

^{१८} सी० टी० इं० १२११, भाग १, अध्या १, पृ० २७०

^{१९} टिप्पणी—बीसल मॉड इंडिया, पृ० १८७

विवाह की प्रथा पहले की होती, यह बात निश्चयनीय नहीं प्रतीत होती है।

भी गेट की यह कल्पना है कि बालविवाह मर्म-प्रतिष्ठ संघर्ष का परिणाम है। २५ इतिहासकों में कावों के साथ सम्पर्क में जाने से पहले तल्ल विवाह की प्रथा प्रचलित थी। इसके साथ ही सगमें युवक-युवती को विवाह में पहले पर्वण भाजा से स्नानस्नाना से स्नानस्नाना प्राप्त थी। आर्यों के साथ सम्पर्क में जाने से से इस स्नानस्नाना को बुग मानते सगे और उनमें अधोपमनि कुमारों कायाओं को साथ विवाह प्रकटा माना जाने लगा। ऐसी कायाओं सभी मिन राजनी है अब कायाओं का विवाह प्रकटन से कर दिया जाय, मतः उन आदिमों से बालविवाह का विवाह प्रकटन। बाद के भावों से इनसे यह विवाह प्रकटन भिन्न। यह कल्पना की गिऊनी कल्पना की प्रकट असाध्य है, क्योंकि जिस इतिहास आदिमों से आज भी बालविवाह प्रचलित नहीं है उन आदिमों से आर्यों से बालविवाह को प्रकट किया होगा, यह संभव नहीं प्रतीत होता है।

इस प्रकार उपर्युक्त वाक्यों से बालविवाह की प्रथा जो वैदिक काल में विद्यमान नहीं थी, ईसा से ८वीं शती पूर्व से भारत में फैलने लगी और ब्रह्मरी मंत्री ईगबो तथा कल्पना १००० वर्ष से इसका प्रचार इतना अधिक गया कि सब धर्मशास्त्रकारों ने मर्म-प्रतिष्ठ से पूर्व ही काया के विवाह को प्रकट समझा। किन्तु धर्मशास्त्रकारों की व्यवस्था के अनुसार इस सारे समय में तथा १००० वर्ष बाद तक विदेशी धर्मशास्त्रों से मर्म-प्रतिष्ठ विवाहों का प्रचलन रहा और कुछ स्थानों पर अन्त्येष्टि से भी मर्म-प्रतिष्ठ विवाह की प्रकटि प्रचलित रही।

अब ऐतिहासिक दृष्टि से बालविवाह के विकास पर विचार किया जायगा।

बालविवाह तथा रामायण—राम और सीता के विवाह की भाँट का टीक-टीक निर्वचन करना कठिन है, क्योंकि इस विषय में अनेक परस्पर विरोधी कथोक मिलते हैं। इस सारे प्रकरण में एक बात का विशेष ध्यान रखना चाहिए और वह यह है कि जमना-पुरी से विवाह करने चारों ओरों के कथोपमा सपत्नीक सीटने पर कहा गया है कि सब स्थितियों में पत्नियों के साथ एकत्र से रहना किया (१।७।१३-१४)। इसका अर्थ यह है कि ये विवाह भीषण व्यवस्था को प्राप्त करने के बाद ही हुए थे। कथोपमाकथ (२।१।१३४) में सीता मनुष्या से यह कहती है कि मेरे पिता मेरी विवाह योग्य अवस्था को देखकर उसी प्रकार विधित हो गये, जैसे धर्म का नाम हो जाने से निर्धन व्यक्ति विधित हो उठता है, मतः यह स्पष्ट है कि सीता उस समय बालिका नहीं थी। किन्तु बालकाल में सीता राजा को अपना परिचय अन्त्येष्टि हुए कहती है कि विवाह के बाद यह कथोपमा से १२ वर्ष रही। राज्याभिषेक के समय राम की अवस्था २५ वर्ष की थी और इस समय मेरी अवस्था १८ वर्ष की। सीता की इस उक्ति को ठीक माना जाय तो

विवाह के समय सीता की अवस्था ६ वर्ष और राम की अवस्था १३ वर्ष माननी पड़ेगी। ११

सीता अनुसूया से विवाह के समय अपनी आयु कम से कम १२ वर्ष की बता चुकी है। इसमें न केवल सीता की ही आयु में संदेह उत्पन्न होता है, अपितु राम भी आयु भी विश्वासार्थ बन जाती है। रामचन्द्र के मनवास का निश्चय हो जाने पर कौशल्या विभाव करती हुई कहती है कि 'तुझे भी तो हुए १७ वर्ष हो चुके हैं और मैंने तेरे बड़े बहन बहना से विलम्ब है कि तेरे दुःखों का अन्त होगा (१:२०:४५)। वाल्मीकि में जब विवशामित्र राक्षसों के संहार के लिए रामचन्द्र को भोगे आदि है तो उस समय वरदत्त कहते हैं कि मेरा कर्मजनमन राम तो शीघ्र वर्ष का भी नहीं हुआ (१:२०:५२)। यदि यह मान लिया जाय कि राम का विवाह १६ वर्ष में हुआ तो मनवास के समय राम की अवस्था २० वर्ष की होगी चाहे, क्योंकि सीता स्वयं यह कहती है कि वह अयोध्या में राम से साथ १२ वर्ष रही, किन्तु मनवास के समय राम की अवस्था २५ वर्ष बताती है। इस प्रकार मनवास के समय कौशल्या के अनुसार राम की अवस्था १७ वर्ष, सीता के अनुसार २५ वर्ष और यज्ञश्रु की वर्णनना के अनुसार २० वर्ष बँटती है। अन्तिम दो संस्कारों में कोई विशेष अन्तर नहीं, किन्तु यज्ञश्रु दो संस्कारों में बहुत अन्तर है। टीकाकारों में अपने व्याख्याकारों ने इस अन्तर को दूर कर दिया है। उनका मत है कि वर्णनना में राम के विश्व अन्न का वर्णन किया है वह ज्ञानमन आदि अन्न दुःख अन्न है। सत्य का ज्ञानमन संस्कार ११वें वर्ष में होता है इस प्रकार राम अग्निवेश के समय १० वर्ष के थे। इस हिसाब से राम का विवाह १६ वर्ष में हुआ। इस तरह राम की आयु साँझी बन जाती है, किन्तु सीता को अवस्था की समस्या इस नहीं होगी। कुछ लोगों ने इसे हल करने का बड़ा बरख उपाय देखा है, वे कहते हैं कि सीता का पर्युष के साथ इस प्रकार का संभोग सर्वथा अवस्थाभाषिक है, इसलिए अरण्यकाण्ड का उपयुक्त मंत्र प्रक्षिप्त है। वास्तव में रामायण का वर्तमान रूप महाभारत के वर्तमान रूप के बाद दूसरी तारी ई० पू० में प्राप्त हुआ। पहले हम देख चुके हैं कि इस काल में बालविवाह का प्रचलन हो चुका था, अतः रामायण के संस्कारार्थों ने अपने मूल के विचार रामायण के इस दिशि। इसलिए यह निश्चय करना कठिन है कि राम और सीता की विवाह के समय वास्तव में क्या आयु की।

बाल विवाह तथा अज्ञानरहित—महाभारत का वर्तमान रूप रामायण के वर्तमान रूप से प्राचीन है। हमें इसमें प्राचीन काल के तथ्य विवाह की प्रथा उपलब्ध होती है, जबकि कई स्थानों पर कथा की आयु काफी छोटी बतायी गयी है। गोपनी का स्वयंवर के समय जो वर्णन किया गया है उससे स्पष्ट है कि वह उस समय तक्षणी थी। प्राचीन

२१ ३:१७:१०-११ अविद्या इन्द्रसमा इवाकृता भिजेने। यय भर्ता महातेजाः ययता पंचविततः। अष्टादश हि वयसि तम जन्मनि जायते व

गृह्यसूत्रों की व्यवस्था के अनुसार पाचन इष्टि की सप्त विवाह होते ही पत्नी के साथ स्त्री-प्राप्ति से सहवास करते हैं। विवाह से पहले ही कुली का बानीय पुत्र—बर्ण उत्पन्न हुआ था। सुमित्रा की हरण के समय युवती ही थी। उत्तरा का अभिषेक से विवाह होने के बाद मीमांसा की शीर्ष का समावेश हुआ और पदीकित सामक पुत्र उत्पन्न हुआ। अथर्ववेद एवं श्रौतवेद विवाह का प्रवर्धन होने से यह स्वाभाविक ही था कि विधवा का विवाह सम्भवम्भा में ही। गनुस्तथा विवाह के समय तरुणी थी। देवदानी ने भी युवावस्था में ही कन्या में प्रणय विवाह मानी थी।

अनुशासनधर्म में (४८।१४) विवाह के विषय में सुश्रुतिष्ठ का उद्देश है कि समस्त जीवन में कहा है कि ३० वर्ष की आयु मात्रा पुरुष १० वर्ष की महिला का भी २१ वर्ष की अवस्था बाद कात वर्ष की पत्नी का भाग्य भग से प्रकृत भारे (१५) पुनः श्रौतः का सम्पन्नता के निबन्धकारों ने उद्भूत कार्य हुए, इस के स्थापन पर दोषण का पाठ किया है, दोषण राज्य का पाठ मानने से छन्दोग का भाग्य गैरा होता है। श्रौतविवाह के मुक्त में सम्पन्नता में होने वाले निबन्धकार का सम्पन्नता की परवाह न करने दोषण पाठ केले है, तो यह मानना पड़ेगा है कि मूल में दोषण का ही पाठ था। इस पाठ को ठीक मानने का यह भी कारण है कि महाभारत में युवावस्था मात्रा का लेने पर ही विवाह का वर्णन है। अनासुर के पास जाने की स्त्री की शीर्ष (१।१५६) जब बाह्य का कन्या राज्य के पास स्वयं जाने की शीर्ष होती है तो बाह्य में उगे गन्तव्य है कि अभी युवावस्था है, उसे अभी लाभ्य की नहीं मान्य किया, यु अथर्व स्त्री की निम्न अभी शरीर का नही है (१।१५७।६५)। एक दूसरे स्थापन पर कहा गया है कि अथर्व (नवनी) के ही स्त्री स्त्री करनी चाहिए। क्योंकि संस्था का पारिभाषिक कार्य है और तरुण के निम्न प्रमुख होता है। महाभारत में पुरुष की विवाहयोग्य आयु कम से कम १५ वर्ष बताया गया है (१४।५६।२२-२३)। शीर्ष उत्तर के कहता है कि यदि आयु १५ वर्ष के हो तो नि आपकी अपनी कन्या पत्नी रूप में ले लूँगा। इस प्रकार महाभारत के अनुसार उस समय तरुण कन्या अथर्व विवाह का ही सम्पन्न मानी होती है।

वसतिविवाह तथा वीर्य शक्ति—वीर्य शक्ति से प्रायः सभ्य विवाहों का उत्पन्न होता है। वेदशास्त्र की मनुस्मृति में पिप्पलीयावर्णक और महा कर्मिणाश्री की मनोरंजन कथा में विवाह के समय पिप्पली की अवस्था २० वर्ष और महा की आयु १६ वर्ष लिखी है। अ० नि० अ० क० (१।७।२) में विवाह के विवाह का विस्तृत वर्णन है। इस वर्णन से स्पष्ट है कि विवाह के समय तत्काल शरीर की। जतिवस्था

१५ महाभारत १५।७।१५ विवाहों प्रामाण्य जति विनीत मर्तिनाम् :

एकविंशतिवर्षी वा सप्तवर्षीविवाहमुदाहृतम् ।

मिताह्वये ययुः ३।६४

आयुक्त (सं० १२६) में एक ऐसी राज्यकन्या का वर्णन है जिसका विवाह १६ वर्ष की आयु में हुआ था। सम्भव कीटीका (२१२५७) में राज्यसूत्र के एक श्रेष्ठ की सुन्दर कन्या कुम्भलमेरवी को अविवाहित असाक्षि हुए बहा गया है कि इस उम्र में विवाह पुरुषों की कामना किया करता है।

मौर्यसमय में बालविवाह—वीर्य युग में बाल-विवाह की प्रथा का प्रचलन हो चुका था। कौटिल्य का इस प्रकार का विधान हम पहले ही देख चुके हैं, किन्तु मेगस्थनीज के मत कथन में सहसा विवाह नहीं होता कि पाण्ड्य (अयुर, सिलेनरी जिने) देश की स्त्रियाँ जब ६ वर्ष की होती हैं तब प्रसव करती हैं। यह प्राकृतिक दृष्टि से असम्भव एवं अविश्वसनीय है कि छोटे बर्ष में पुत्र उत्पन्न हो। परिणत इस असेम्बल बैठना पर विश्वास कराने के लिए सिद्धांत है कि इतनी छोटी आयु में प्रसव होने का यह कारण था कि उन्हें मृत्यु की वेला हिमालय के द्वारा ऐसा दरवान दिखा हुआ था। मेगस्थनीज ने पाटलिपुत्र में बैठे हुए सुदूर अक्षिण के विषय में सुनी हुई बातों के आधार पर लिखा होगा अतएव उसकी प्रामाणिकता संदिग्ध है। पाटलिपुत्र के बारे में यदि यह इस प्रकार का उल्लेख करता तो कुछ प्रामाणिक माना जा सकता था। मेगस्थनीज का मेघनाम की वरत में प्रामाणिक मानने की प्रवृत्ति में अनेक जगहों को उत्पन्न किया है। मेगस्थनीज ने लिखा है कि हिन्दुस्तानियों को सिखना नहीं आता था, बहुत देर तक इसे सत्य माना जाता रहा किन्तु जब आर्यीन शिमासेनो के दिव्य जाने के बाद मेगस्थनीज की इस उक्ति में कोई विश्वास नहीं रख सकता। अतः उसकी पाण्ड्य देश की कथा सर्वथा अविश्वसनीय प्रतीत होती है।^{२३}

सातवाहन, गुप्त एवं पूर्व मध्ययुग में लिखे गये काव्यों में यह स्पष्ट है कि इस समय तक हिन्दू समाज में तत्काल-विवाहों का प्रचलन था। गांधर्व और स्वयंवर विवाहों का इस काल के ग्रन्थों में प्रचुर उल्लेख है और वे दोनों तत्काल विवाह की सूचना देते हैं। काशिरास व अमरभूति के वाद्यों की भाषिकाएँ प्राप्तीयोजना कथ्याये हैं। लक्ष्मणा, सोम-विकार और मासवी औषधवाक्या की बार बार औषधवाक्या में पर रख चुकी हैं। यह एक बड़े आश्चर्य की बात है कि अमरभूति ने मासवीमासव में तत्काल-नामिका का विवाह शुभ-वस्था में कहा है किन्तु उत्तरदासचरित में उसने सीता की विवाह के समय विभक्त

^{२३} मेगस्थनीज के युक्त में बालविवाह कुछ प्रचलित था, तत्पश्चात् उसने अपने देश के हितार्थ से भारतीयों के बारे में यह कथना की हो। बड़े हिमालयनीज ने अपनी पाँच वर्ष की कन्या का विवाह अपने सतीने के साथ किया। गूर्थनी (Gorthis-
mian) के नियम के अनुसार कन्याएँ १२ वर्ष में विवाह योग्य हो जाती थी (इंस्टा-
रिमीशन एण्ड ईजिप्स, चप्ट ६, पृ० ४४६)

भाविका दिखाया है। सामान्य रीतिरिवाज का उपर्युक्त वर्णन हमका ध्यान आकर्षित है। बाण की महाकविता तथा राजशेखरी विवाह के समय सुवर्णियाँ थी।

स्मृतियों द्वारा बाल विवाह की प्रोत्साहन

शास्त्रों में लक्ष्मी नारिकेलों के वर्णन के साथसूत्र उस समय की स्मृतियों और पुराणों में विवाह की आयु का कम कर देने की प्रबल प्रवृत्ति सुनिश्चित हो जाती है। पराशर स्मृति ने (निर्वाण काण्ड १ की सं ५ अथवा १० की सं ५) बालविवाह का बहुत बल दिया, आयु की सीमा बहुत कम की तथा राजाधर्मों में पूर्ण कन्या का भी विवाह न करने वाले पिता की निन्दा तथा १२ वर्ष के बाद कन्या की अवाहने वाले पितृनाश की कथा में भाषण करते तथा पक्षि में चित्रों के असंगत संग्रह। उर्गता अनुसार आठ वर्ष की लड़की गौरी, १ वर्ष की रोहिणी तथा १० वर्ष की वत्सा होती है, इनके बाद वह रत्नवत्सा हो जाती है। श्री मनुष्य कथा ॥ १२ वर्ष की पूर्व को से पर भी अष्टम विवाह नहीं करता उसके पिता प्रतिमास उसका रज पीते हैं। उसके माता-पिता और बड़ा भाई सीमां भवत्वाही रत्नवत्सा कन्या को ब्रह्मचर्य नष्ट में लाते हैं, जो ब्रह्मचर्य लेगी कन्या के शादी करता है वह शांतावन करने तथा पक्षि में बैठने योग्य नहीं है, जहाँही बुधजीर्णम मतनरा चाहिए। १४ वीटी पहले १० से १२ वर्ष की कन्या समशी क्षात्री थी (बैशाखा अर्धपूर्णिमा)। पराशर ने इसकी दो वर्ष और घटा दिया। पराशर के इस विधान का उसके बाद के स्मृतिकारों ने पूरा अनुसरण किया। तैत्तिरीयस्मृति (१५-१६) और बृहन्न (२०-२१) पराशर के समर्थक हैं किन्तु पराशर में जहाँ १२ वर्ष तक विवाह का विधान है, वहीं संवत् (६५) में कहा गया है कि कन्या का रत्नवत्सा होने से पहले ही विवाह कर देना चाहिए, ८ वर्ष की कन्या का विवाह उत्तम है। कन्यक में आठ वर्ष की गौरी की ५ वर्ष का वत्सा दिया। भविष्यपुराण (वीरमित्रोदय, पृ० ७५६) में सात वर्ष का समवेण किया, किन्तु मरीचि ने तो कन्या की आयु ५ वर्ष की बराबरी (वीरमित्रोदय पृ० ७५६) और ब्रह्मपुराण में कहा है कि ४ वर्ष के बाद कन्या विवाह के योग्य हो जाती है। यह सब धर्मोप भी बात है कि स्मृतिकार ४ वर्ष की आयु पर ही इस गति किन्तु लोकाचार में तो बाते अलग-अलग बालविवाह को छह हज तक पहुँचा दिया कि कुछ पीले बच्चों की गोम में उठाकर हाथियों की जाने सबी और कई जगह बच्चों के उत्पन्न होने से पहले ही गर्भ-

१४ पराशर ७।७-८, अष्टमवर्ष भवेत् वीटी भवत्वा ही रोहिणी। अवाहनी चवेत्कन्या मतः उर्गता रत्नवत्सा।। माटी तु द्वादसे वर्षे यः कन्यां न वयनञ्जति। भालि भालि रत्नवत्स्य चित्रित चित्रोऽ भिशम् ॥ भासा येन पिता यं च ज्येष्ठां धाता तमेव च। ज्येष्ठे नरकं याति बुद्ध्या कन्या रत्नवत्साम्॥ वत्सा तु जहते कन्यां ब्रह्मचर्यो भवत्येवमुक्तः। अष्टममाथ्यो ह्युपानयोः ७ चित्रो बुधजीर्णमिति॥

बाती स्त्रियों द्वारा वर्ज्य अभिमुखों के सेरे पूरे कर लिये जाते थे। धर्मग्रन्थकारों तथा विद्वान् स्मृतिकारों ने एक अन्तर स्पष्ट रूप से प्रकटित कर दिया है। यह कि धर्मग्रन्थकार विवाह की आयु उन्नीसवीं नहीं ने बने थे, वे उन्नीसवीं होने के बाद ही कुछ प्रतीक्षा करने को समार थे। मनुस्मृत्य करन विद्वान् दृष्टिकोण के आजीवन अधिवाहित रहने में कोई शेष नहीं देखता और दृष्टिकोण होने के बाद विवाह न करने पर शाश्वत-विवाह इसे बलपूर्वक नहीं मानते थे। किन्तु बाद के स्मृतिकारों के लिए ही दृष्टिकोण भी सीमा एक प्रमाण ब्रह्म है। भाषा-विद्वान् ने नहीं कम्पा को यह सीमा बाद करने दी, वे बलपूर्वक रूप से बोली ही भवे और इसके बाद विवाह करने वाला समाज के बहिष्कृत, अशुभात्म, अशान्ति और दुःखीपति हो गया।^{२५} स्मृतिकारों की इस विन्यास का क्या कारण था ?

बालविवाह की प्रोत्साहन देने वाले कुछ कारण

१) बाल वर्ग का भय—हम पहले (१०-११३-८) जिन कारणों का निर्देश कर चुके हैं वे कारण ही बालविवाह की तथा की प्रोत्साहित कर रहे थे; किन्तु इस समय

२५ एडमंड्स (एनरिकिफिल स्टडीस, चप २, पृ० ३८-४१) ने यह प्रस्तावित किया है कि बालविवाह विषयक उपर्युक्त भिन्नता का अन्तः-तन्त्रः धर्मिक विकास हुआ है। पहली अवस्था में दृष्टिकोण होने से पूर्व लड़कियों का विवाह करना स्मृतिकारों के मतानुसार एक परम्परागत था। जो पिता इस अवस्था तक अपनी लड़की का विवाह नहीं करता था वह विन्यास का दृष्टिकोण मानता था। मनु २।४ में कहा गया है कि 'काम्येष्टताः पिता माताः।' इस पर मेधातिथि ने कम्पास के काल की व्याख्या करते हुए कहा है कि यह बात बल की आयु होती है (कः पुनः कम्पासा दानकालः, अन्तर्भावः पर्याप्तमिति इत्यन्ते)। मनु (२।४.३) यह भी मानता है कि यदि पिता अनुकूल से रहने कम्पा का विवाह नहीं करता तो कम्पा पर पिता का अधिकार नहीं रहता है (तत्र स्वाम्यप्रतिष्ठाभवेन अनुकूलं प्रतिरोधकम्)। मनु से पहले गौतम (१८।२१-२३) ने भी यह घोषणा की थी कि अनुकूल से रहने कम्पास न करने वाला पिता दोषी होता है (प्रधानं प्रमत्तोः, अशक्यम् दोषी)। दूसरी बातों में अनुकूल से रहने कम्पास न करने का महात्मा मरक ने अपने समान माना जाने लगा। पराशर (८।१, ८), ब्रह्म (२२.२३) स्मृतियों में यह कहा गया है कि बालवर्ग में बल की लक्ष्मी न करने वाले माता-पिता और बड़ा भाई मरक-प्राप्ति होते हैं (अवरोधे मरकं प्राप्तिं दुष्कां कम्पा दक्षकामम्)। महाभारत में यह घोषणा की गयी है कि कम्पास कम्पा का विवाह न करने वाला पिता महादुष्टा का पापी होता है। कुछ अन्य स्मृतियों ने कम्पास न करने से उत्पन्न

कुछ अन्य भी कारण भी बालविवाह की प्रथा में सहायक सिद्ध हुए। बौद्ध धर्म ने एक नवीन संकट उत्पन्न हो गया था, बौद्ध धर्म में श्रमिकविहित सिद्धांत भी प्रचलन में आये। सिद्धांतों का शक्ति भी। धर्म कल्याणों का विवाह उनके समकक्ष और समान होने लगे। बाल विवाह तो उनके बौद्ध धर्म में दीर्घकालीन की संभावना नहीं रही मरणा भी। इस संभावना को विमर्शपूर्ण समझा कर देने के लिए यह आवश्यक था कि कल्याणों का विवाह भी कर दिया जाय।

(२) वैवाहिक नियमों की कठोरता—आठवीं-नवीं शताब्दी में प्रायश्चित्त के शास्त्र-शास्त्र उपस्थापितों के भी अंगन में धर्म होने लगे थे। इस कारण से भी बालविवाह की प्रवृत्ति बढ़ी। उपस्थापितों के अंगनों में कारण धर्मों के अनुसार का श्रेष्ठ बहुत छोटा होने लगा, बाड़े के बेटों के लिए अंगन में अंगन में। इसी की माता-पिता अच्छी करते थे, वे स्पष्टतः माता में रहते थे। जितनी अल्पी अंगनी तथा के लिए वह मुश्किल करा दिया जाय उतना ही अधिक लाभ था।

(३) उत्तरी प्रथा—इस समय तक समाज में उत्तरी प्रथा भी चल चुकी थी। एक यूरोपियन यात्री फ्रिच ने समाज में प्रचलित बालविवाह का एक कारण यह प्रथा भी बताया है, यदि बालविवाह जातिवाद का विनाश करने वाला है तो समाज को उत्तरी होना पड़ेगा। यदि कल्याणों का विवाह भी कर दिया जाय तो माता-पिता के धर्म मान पर भी अन्तर्वासन में उत्तरी देखभाल होती रहेगी।

संयुक्त परिवार प्रथा में बालविवाह बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ। यदि यह सफल

होती अर्थात् धर्म की अग्रिम कथ्य धारणा की है। उनका यह कहना है कि प्रति स्त्रीवर्ग के समाज कल्याण में धर्म धारण को तथा समाज की संभावना होती है, यदि एकलव्य कथा का विवाह नहीं होता तो प्रतिभास उत्तम संभावित धर्म या धर्म की हत्या होती है, अतः उसे धर्महत्या का पाप लगाता है। मात० (१६४) में कहा गया है 'अप्रयच्छन् तमाप्नोति धर्महत्यामुत्तमोपि' मि० ब्रिटिश १७१२१, बार० १२१२६। तीसरी बात में बालविवाह की प्रथा अधिक प्रचलित होने पर स्त्रीवर्ग के पहले विवाह न करने वाले कथा को जातिव्युत्पन्न और पिता के प्रति तथा कथा को विवाह के अयोग्य बताया गया (व्यास स्मृति २१७)। ब्रह्मसंहिता (संस्कारप्रकाश पु० ३७५) की सम्मति में ऐसी कथा कुल या वृद्ध हो जाती है। विष्णुस्मृति (५४:४९) ऐसी कथा को कुल की बताते हुए उसके अपहरण में कोई दोष नहीं मानती (तथा कथा कुल की सेवा करते हैं व विष्णुस्मृति)। पराशर की सम्मति में ऐसी कुल के साथ साथ करने वाला ब्राह्मण बलवती करने अर्थात् तथा ब्राह्मणों की प्रति में होने अर्थात् नहीं होता है (वर्तमानों द्वारा प्रतीतः व विष्णुस्मृति)।

एवं समाजधार हो और अपने स्वतन्त्र विचार रखती हो तो यह संभव है कि कई बार अपनी मान, समुद्र और घर के मानवीय मूल्यों से उसकी असहमति हो जाय और पारिवारिक कानून उत्पन्न हो। किन्तु यदि यह बहुत छोटी उम्र में ही व्याही नाम से उसका सारा परिवार-निर्माण स्वमुद्रालम्ब द्वारा हो होगा। इस दशा में वह बिल्कुल ऐसी नई मिट्टी के समान होगी जिसे इच्छानुसार अभीष्ट रूप दिया जा सकता है। वरदान से ही वह अपनी शक्ति, प्रवृत्ति और स्वभाव को स्वमुद्रालम्ब की परम्पराओं के अनुसार ढालने का प्रयत्न करती थी और यही कारण था कि संयुक्त परिवार में कभी कोई वैतन्यत्व या मान्यत्व उत्पन्न नहीं हो सकता था।

पूर्व मध्य युग के उदय विवाह

बालविवाहों का रिवाज होने पर भी पूर्व मध्य युग (१०००-१२००) के पहले हिस्से में हमें तदन्य विवाह के कुछ उदाहरण मिलते हैं। हर्ष की पहिली राज्यधी विवाह के समय तकनी थी। विवाह के बाद उसने अपने पति के साथ सहवास किया। किन्तु कदाचित् के राजा विक्रमोक्त नाम्बुक्क की कन्या का गोत्र के कर्मवर्ग की राजकुमार से बाल-विवाह हुआ था। सम्राट युष्मिराज का भी पहला विवाह छोटी आयु में हुआ था। जलके-छत्री (१०३० के लगभग) ने यह लिखा है कि हिन्दुओं में विवाह छोटी उम्र में हो जाते हैं, इसलिए यहू का चुनाव माता-पिता ही करते हैं। ११वीं शती के बाद केवल राज्यों में और कुछ विशेष अवसरों में तदन्य विवाह के उदाहरण मिलते हैं। १५ वीं शती में पराकर स्मृति के व्याख्याकार माधव ने लिखा है कि केरल देश में कन्याओं का मधुमेरी होना दोष नहीं है। यह रही पाण्ड्य देश के साथ अपरा हुआ है जिसके बाद में ४ वीं ५० ई० पूर्व में मेघस्थनीज ने यह बात लिखी है कि यहाँ की कन्याएं १० साल में बच्चे बना करती हैं। ११००-१२०० (ई० परमात्) के बीच में वासिष्ठाथ हरदत्त ने माधवभाष्य गुरु-सूत्र की टीका करते हुए लिखा है कि कई देशों में विवाह के बाद तीन दिन के अङ्गवर्ष की शर्त का पालन नहीं किया जाता अपितु अश्लेष्य सहवास शुरू हो जाता है। तस्मिन् बहुधा अपनी कन्या की काशी रजस्वला होने के बाद ही करते थे। निरुद्धिध ने १७ वीं शती में तस्मिन् को इस प्रकार की सूट डेटे हुए लिखा है कि बालविवाह की विधि ब्राह्मणों के लिए ही है। किन्तु मध्यकालीन हिन्दू समाज में बालविवाह ही प्रथा सामान्य रूप से अभिहित थी, उपर्युक्त उदाहरण इसका कपवाद साज ही है।

१६वीं शताब्दी में अकबर के समय तक यह दुराई इसी तरह चुकी थी कि अकबर ने इसे सुधारने का यत्न किया, किन्तु कट्टर मुस्लिमों के विरोध के कारण यह यत्न अवलन में सफल न हुआ। १६ वीं शती के अन्त में व्यापारी किम्ब ने बंगाल में १० और ६ वर्ष की बालक-बालिकाओं के विवाह देखे। १७ वीं शती का इतालवी यात्री यन्तुपी कहता है कि प्रायः सबतियों का विवाह बीसना शुरू करने के पहले ही ही जाता है और १० वर्ष

की आयु से पहले-पहले ही सब कन्याएं ब्याह दी जाती हैं। किंच बायीं टैमनियर कहता है कि विवाह की आयु ७-८ वर्ष होती थी। एम्मे ब्रांरुह ने १८ वीं शती के अन्त में दक्षिण भारत का वर्णन करते हुए लिखा है कि १६ वर्ष का ब्राह्मण पंडित, सात या अष्टमिक से अष्टमिक से वर्ष की कन्या से शादी करता है।

ग्रामप्रीत तथा बालविवाह—अध्य युग में माताओं द्वारा बालविवाह के अनिवार्य बना दिये जाने पर भी युवक और युवतियों के विवाह की प्रथा सर्वथा मृत्यु नहीं पायी। ग्राम गीतों में हमें जो विवाह का भावार्थ मिलता है, वह इसमें सर्वथा भिन्न है। उमरे बाल-विवाह का सम्बन्ध नहीं होता। इन गीतों में प्रायः दूज और कन्या के एक दूसरे के प्रति आकृष्ट होने तथा एक दूसरे के वचन करने के बाद ही विवाह करने का वर्णन मिलता है। पहले अध्यायों में इस प्रकार के गीतों के कुछ उदाहरण दिये गये हैं। एक गीत में दूज कन्या को पसन्द करता है, उसने दाय विवाह की दृष्टि प्रकट कर रखा है, किन्तु कन्या के बाई को यह नकारा नहीं हो सकता कि वह अपनी बहिन को उसके पास ले जाय। वह उसे मीनने वाले को मारने के लिए तत्पार तैयार हो जाता है। इसके बाद पीछर से कहा में धरी हुई कन्या निकलती है, उसकी मांग मोठियों से धरी होती है, वह कहती है—
हे बाई, इस वपस्वी को मत मारी, इसे भार बालों से तो मेरे जीवन की सेवा कीन पाद करावेगा।^{१६} क्या यह बाई ५, ६ वर्ष की कन्या प्रकट कर सकती है? कई ग्रामगीतों में दूज झूठे आते समय कन्याएँ पिताजी से धारणा करती हैं कि झूठे लिए इन प्रकार के बर जोचना। मारबाइ के एक गीत में कन्या पिता से कहती है—“मेरे लिए काला बर मत दूदना। वह कुटम्ब को खपित करेगा। गिरावर डूकना, जो कभी में बात कर चुका हो अर्थात् मिश्रित हो।”^{१७} कन्या समझदार होने पर ही ऐसी बातें कह सकती है। एक अन्य गीत में एक युवक कहता है कि मैं अब दक्षिण देश से पककर सीढ़ सब मेरा विवाह हुआ। ये एक गीत सूचित करते हैं कि बालविवाह की कुप्रथा प्रचलित होने के बहुत बाद तक भी हिन्दू समाज में कुछ संघन विवाह होते रहे।

ग्राम युग में अन्य देशों में बालविवाह—बालविवाह भारत की विशेषता हो, वह बात नहीं है। मध्यकाल में यूरोप में भी यह कुप्रथा अपना प्रभाव जमाये हुए थी। रोम में कन्या की आयु १० वर्ष की उम्र में हुआ करती थी।^{१८} रोमन कानून द्वारा पुरुष १४ तथा स्त्री १२ वर्ष की उम्र में विवाह कर सकते थे (इंस्टीट्यूट ऑफ दो जस्टी-नियन, चप्ट १, आर्ट १०, १३)। मध्यकाल में कर्ष ने विवाह की महो आयु स्वीकार

१६ रामनरेश त्रिपाठी—ग्रामगीत कविता कौमुदी पृ० ११७ ‘मीठर से बिलसो लाइसो मोठिसम बांग अरो। अति मारी पूज तपसिमा जमन मेरो को चोहू है।’

१७ कविता कौमुदी, तु० भा०, पृ० २०६

१८ म्यूलर—बीमिनी, पृ० २६०

की थी। प्रायः सभी देशों के कानूनों में इसका अनुसरण किया गया, किन्तु प्रायः इस सर्वोच्च का पालन नहीं होता था। फ्राइन्ड मैरिजिज एन्ड वार्डशिप (बालविवाह व हस्तगत) नामक पुस्तक में यह बताया गया है कि १६वीं सदी में इंग्लैण्ड में कुछ बाल-विवाह होते थे, ६ सता १० वर्ष के और कभी दो और तीन वर्ष के बालक-बालिकाओं की भी शादी होती थी। १६२६ ई. एक इंग्लैण्ड में लड़के-लड़कियों की विवाह की उम्र १४ और १२ थी। १६२६ में भारत में भारत का नून के बगले के साथ ही इंग्लैण्ड में पार्लियामेण्ट ने कानून बना बालक-बालिकाओं के लिए विवाह की कानूनी आयु १६ वर्ष नियत की।^{२१}

मध्ययुग में बालविवाह प्रचलित होने के कारण

उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि मध्ययुग में हिन्दू समाज में बालविवाह का प्रचलन बहुत अधिक बढ़ गया था। उस समय इसके प्रचलित होने के कारणों में प्रमुख कारण निम्नलिखित थे। प्रथम कारण सामाजिक व्यवस्था और कटिबाध था। विभिन्न स्मृतिओं में इस व्यवस्था पर बल दिया गया था कि एकादशवर्ष में लड़के लड़कियों का विवाह हो जाना चाहिए, एकादशवर्ष के बाद उसका विवाह करने वाले माता-पिता की बृहत्तम स्मृति में पापी घोषित किया था। अगर पिछे पड़े विवरण के अनुसार यह भूलकर या के गहालोक के बचाने था, इससे माता-पिता जाति के कष्टकृत तथा कष्टा मुक्त तथा विवाह के योग्य नहीं रहती थी। इस बात के बचने के लिए बाल विवाह की प्रथा बढ़ावत हुई। दूसरा कारण अशांति राजनीतिक परिस्थिति थी। मध्य युग में विदेशी एवं विदेशी आदिओं के प्रवेश आक्रमण होने से तथा इनका शासन स्थापित होने पर देश की सामाजिक स्थिति बड़ी असुरक्षित और अस्थिर हो गयी थी। विदेशी आक्रमणकारी अपने साथ विधवा नहीं लाते थे। उन्हें इस देश की विधवा को लेने में आपत्ति नहीं थी, किन्तु हिन्दू विधवा स्त्रियों को अपनी कन्याएँ देने को तैयार नहीं थे। कन्याओं को मुरिजब हाथी में पकड़ने से बचाने का सरल उपाय छोटी आयु में उनका विवाह कर देना था। क्योंकि इससे माता-पिता के बचने का सरल उपाय बालविवाह था। तीसरा कारण लड़कियों के कौमार्य की रक्षा की चिन्ता थी। कौमार्य हिन्दू विवाह की आवश्यकता नहीं थी, अधिक कौमार्य वाली लड़कियों का विवाह समाज में संभव नहीं था। कन्या के बड़ी होने पर उसके पक्षपात हो जाने पर कौमार्य-भंग की संभावना कमी रहती थी। इसे दूर करने के लिए बालविवाहों की प्रथा

२१ १६२६ जार्ज रिचर्ड वॉटर ३६, पुस्तक-६ द्वितीय भाग वीरिज एन्ड वार्डशिप (बालविवाह व हस्तगत) १६२६, पृ० १६६-७।

की प्रीतिमानु मिलता ।^{१०} लीबा कारण कृषि प्रधान संयुक्त परिवार की प्रथा थी । कृषि प्रधान ग्रामों में खेती के काम के लिए जितने अधिक व्यक्ति मिल सकें, कृषय की गुंवाई, बीजार्ह और फटाई के समय में उतने ही अधिक उपयोगी होते हैं । छोटी जायु में विवाह से अधिक सन्तानें मिलती हैं । संयुक्त परिवार की व्यवस्था में युवका पावन-योग्य परिवार के संयुक्त कोश में होता है, किसी एक व्यक्ति द्वारा नहीं होता है । जानकर अपने परिवार में पुत्रक रहने वाला मनुष्यक आर्थिक दृष्टि से स्वायत्तगी होने के बाव भी विवाह करना चाहता है, क्योंकि उसे अपनी पत्नी और बच्चे को मरण-योग्य की व्यवस्था करनी है । अध्ययन में ऐसी स्थिति नहीं थी । पत्नी का भरण-पोषण संयुक्त परिवार में होता था । जल्दी विवाह होने से घर का काम निपटाने में विवाह एक उपयोगी प्राणी मिल जाता था, यह विवाह जितनी छोटी आयु में हो उनका अच्छा था, छोटी बच्ची को जिस किसी कार्य में जोता जा सकता है, वही घर भी मनुष्य नहीं करनी, बड़ी आयु की बड़ी ऐंठ की दिया लगती है । पंचिका कारण दहेज की प्रथा थी । लड़की की आयु बढ़ने के साथ-साथ उसकी हेमियत अधिक होने से दहेज की मात्रा में वृद्धि होती जाती है । छोटे बच्चों के लिए दहेज का प्रश्न अधिक विषय नहीं होता है, बच्चे दहेज की विन्ता से बचने का हस्तज छोटी आयु में विवाह करना था । छठा कारण बामविवाह से एक बड़ा लाभ यह था कि इससे समासीय विवाह के नियम का पालन आसानी से हो सकता था । अध्ययनीन शास्त्रकार अपनी ही जाति में विवाह के पक्षपाती थे । उनके धारण में भी बामविवाह उपयोगी था । यदि विवाह बड़ी आयु में हो गया युवक-युवती अपनी इच्छा से विवाह करने में तो वे अपनी जाति और विरासती से बाहर विवाह कर सकते हैं । माता-पिता द्वारा बामविवाह के फिये जाने के कारण उसमें यह संभावना नहीं रहती है । लक्षण कारण इस अवस्था में वैवाहिक जीवन में शोचनम्य और अनुकूल्य बने रहने का लाभ है । बड़ी आयु में विवाह की व्यवस्था की प्रथा में शादी होने तक बच-बचु की आदरें आयु अधिक होने के कारण परिपक्व हो जाती हैं, इन्हें संभोग आमान नहीं होता है । यदि दोनों के स्वभाव में विरोध या मतभेद हो तो सामंजस्य कदा भी संभावना न हो जाती है, गृहस्थ जीवन तदन बन जाता है । बामविवाह की प्रथा में यह अंतरा नहीं है । इसमें बहु बहुत छोटी आयु में अनुपस्थित में जाती है, वह बीबी मिट्टी के समान होती है, उसे बड़ी आसानी से किसी भी स्थान में धावा जा सकता है । घर शीघ्र ही अपने को नये परिवार के अनुकूल बना लेती है । इसके साथ उसका पूरा सामंजस्य हो जाने के कारण परिवार में तथा सम्प्रत्य जीवन में किसी प्रकार के विरोध अथवा भ्रंश की संभावना नहीं रहती है । इसी बात को दृष्टि में रखते हुए कई ने लिखा है कि बामविवाह की प्रथा के प्रचलन का एक कारण यह था कि इनमें बहु अपने पिता

के प्रभुत्व के प्रति के प्रभुत्व में कमी जाती थी, यह कार्य छोटी जातु में अधिक आसान था, क्योंकि इसमें बहुत से अभी देखी सभ्यता का विकास नहीं होता था जिसमें वह प्रति के अधिकार पर कोई अन्दरूँ नज़र नहीं आती थी ।^{११}

आधुनिक युग में वासविवाह की हानियाँ

उत्पन्न परिस्थितियों तथा कारकों के प्रभाव के मध्यम से हिन्दू समाज में वास-विवाह की प्रवृत्ति अत्यधिक प्रचलित हो गयी, जड़ियों का विवाह समाज में न केवल स्वीकार्य हो चुके २ से १० वर्ष की आयु में किया जाता। साक्षात्कार एवं अच्छा समझ जाने लगा, अतः कुछ बाल-विलासियों के जन्म से पहले ही उनके विवाह राम करने लगे ।^{१२} किन्तु १९वीं शताब्दी के मध्य में भारत में नयी राष्ट्रीय चेतना तथा यह जागरण उत्पन्न होने के वासविवाह के प्रचलित परिणामों को हिन्दू समाज अभी-भी अनुभव करने लगा । इस की पहली बड़ी हानि यह थी कि अदरिक्त आयु में विवाह होने का प्रति-फल ही तथा समाज के स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता था । संक्षिप्त शिक्षणक्रम या गरीब की व्यवस्था में कई बार इस मुद्देबाज का समुचित प्रतिकार हो जाता था, किन्तु वास्तविकताओं के प्रभाव तथा समाजोत्पादन पर बहुत कम कामगारों प्रतिफल थे । १८६० के भारतीय अधिनियम में कई-कई के लिए सामान्य सहवास की अनुमति व्यवस्था (Age of Consent) १६ वर्ष थी । इससे कम आयु के सहवास को ही अवैध माना गया था । यह आयु समकालः उत्पन्न करने के उत्पन्न करने को तथा वासविवाह की प्रथा को देखते हुए तब की गई थी । १८६० में संसद में यूनिवर्सल मास यूनिवर्सल व्यवस्था का ११ वर्ष की आयु में प्रति के साथ सहवास के कारण देखा ही गया । प्रति पर परती की हत्या का अभियोग लगाया गया, किन्तु भारतीय अधिनियम की १० वर्ष की आयु में सामान्य सहवास की उत्पन्न व्यवस्था के आधार पर प्रति निर्णय लम्बा गया । इस घटना के इस तथा की सीमाय हानियों की ओर तथा इसके संशोधन की ओर समाज-सुधारकों का ध्यान आकृष्ट किया । इससे सब लोगों की यह पता लगा कि छोटी जातु में विवाह एवं लाभसम्पन्न करने में बर-बस न्यायी में भूरे हो जाते हैं, उनका स्वास्थ्य नीच हो जाता है, उनकी उत्तम निर्वास होती है, अन्तर्धु में प्रभाव होने पर स्त्रियों का ज़रूर निर्वास होने के कारण अनेक बीमारियों का बर बन जाता है, यूनिवर्सल बीता बहावी स्त्रियों नकाल में ही काम का हाथ बनती हैं, स्त्रियों की तथा बच्चों की भुल्य संख्या में वृद्धि होती है, अन्तर्धु में ही विवाह का उत्तरदायित्व था करने से प्रति-पत्नी का विकास अव्यक्त हो जाता है, लड़के-लड़कियों की शिक्षा में बाधा पड़ती हो जाती है, वे शिक्षा प्राप्ति के अवसरों से वंचित हो जाती हैं । इन सब हानियों का अनुभव करते हुए १९ की

११ कर्क—क्रिस्तियन मार्क्विन्सन्, इन इंडिया पृ० १६८

१२ कर्क—क्रिस्तियन मार्क्विन्सन् इन इंडिया, पृ० १६८

राज्यी के सभी धार्मिक और समाजसुधारकों ने, ब्राह्मणमान एवं आर्यसमाज ने, स्वामी दयानन्द, ईश्वरदत्त विद्यासागर, महादेव गोविन्द रानडे आदि सुधारकों ने इस मुद्दे को दूर करने पर बल दिया, इसके विरुद्ध प्रबल लोकोपकार जनता और कानून द्वारा इसे रोकने का प्रयत्न किया गया।

बालविवाह की प्रथा दूर करने के कानूनी प्रयत्न

कानून द्वारा बालविवाहों को रोकने का पहला प्रयत्न १८६० के भारतीय १५-विधान द्वारा निर्धारित दस वर्ष की सहवास की अवस्था को ऊँचा उठाया था। एक भारतीय सुधारक श्री बहुरामजी अनावाजी (१८३२-१९१२) ने १८८६ में एक विषय में एक आवेदन-पत्र भारत सरकार की ओर से दूर सरकार ने यह अनुरोध किया कि इस प्रथा के भीषण दुष्परिणामों को देखते हुए इस आयु को ऊँचा उठाया जाय। वे इस विषय में प्रचार के लिए ईर्ष्या रखे। इस पर, वर्तमान विधानविमर्श और बाद-विवाद के बाद भारत सरकार ने यह निश्चय किया कि हिन्दू समाज के धार्मिक मामलों में सरकार का हस्तक्षेप नहीं करना चाहिये। किन्तु १८६० में फूलमणि की पुस्तक बाल-विवाह विरोध काव्यात्मक पुस्तक प्रकाश हुआ और १८८१ में भारतीय दण्डविधान में संशोधन करते हुए साम्प्रदाय सम्बन्ध की धूमिल अवस्था (Age of Consent) दस वर्ष से बढ़ाकर बाईस वर्ष कर दी गयी।

किन्तु सड़कियों के लिए यह अवस्था भी बहुत कम थी, यतः इसे बढ़ाने का माँग-जन और प्रयत्न किया जाने लगा। १९२४ में श्री हरिजित् गोइले इस संझ को १४ वर्ष तक करने का प्रस्ताव केन्द्रीय विधान सभा में रखा। इससे पात्र न होने पर १९२७ में सहवास को आयु के प्रश्न पर विचार के लिए उनके प्रस्ताव के आधार पर सहवास अवस्था समिती (Age of Consent Committee) बनायी गयी, इसने अपनी रिपोर्ट में यह कहा कि कम्पा के विवाह की १२ वर्ष की अवस्था सुनिश्चय है, सड़क में कम १४ वर्ष होनी चाहिये। श्री हरिजित् सरकार ने इस समिती की सिफारिशों को क्रियान्वित करने के लिए एक बालविवाह विरोधक कानून (Child Marriage Act) १९२९ में पास कराया। यह उनके नाम से सरकारी कानून कहलाया है।

सरकारी कानून—इसके अनुसार विवाह के समय लड़के की आयु १८ वर्ष से तथा लड़की की आयु १४ वर्ष से अधिक होनी चाहिये। १९४९ के एक संशोधन के अनुसार लड़की के विवाह की आयु को १४ वर्ष से बढ़ाकर १५ वर्ष कर दिया गया है। इससे कम आयु वालों को बाधक समझा जाता है। संशुद्ध विवाह बालविवाह है तथा इसे करने वालों के लिए निम्नलिखित दण्डव्यवस्था की गयी है। यदि १८ से २१ वर्ष तक की आयु वाला लड़का १४ वर्ष से कम आयु की लड़की के साथ विवाह करता है तो उसे १५ दिन की आश्रम कारावास या एक हजार रुपये ठेका का जुर्माना या दोनों दण्ड दिये जा सकते

है। २१ वर्ष में अधिक आयु के लड़के द्वारा १४ साल से कम आयु की लड़की के साथ विवाह करने पर उसे तीन साल तक की कैद की सजा दी जा सकती है। कालविवाह कराने में सहायता करने वालों की भी तीन महीने की जेल का दण्ड दिया जा सकता है, कालविवाह कराने वाले माता-पिता के लिए भी इसी प्रकार के दण्ड की व्यवस्था की गयी है। इस कानून के अनुसार किसी लड़के की कागजात का दण्ड नहीं दिया जा सकता। ऐसे मामलों की चौक बचपन सेमो का मैजिस्ट्रेट ही कर सकता है। कालविवाह का अपराध सिद्ध हो जाने पर भी इसे ससंयम या धार्मिक अवसर कानून द्वारा कभी न हुआ घोषित नहीं किया जा सकेगा, यह विवाह तो माना जायगा, किन्तु उसके लिए दण्ड दिया जायगा, विवाह को रद्द नहीं घोषित किया जा सकता है। कालविवाह कानून द्वारा हस्तक्षेप अपराध नहीं किन्तु अहस्तक्षेप (Non-interference) अपराध है। हस्तक्षेप अपराध में है जिन पर पुलिस स्वयमेव कार्यवाही करती है, लूट, चोरी के भीषण अपराध इसी कोटि के हैं। अहस्तक्षेप अपराध में होते हैं, जिन पर पुलिस ठानी कार्यवाही करती है, यद्वत् इसकी सूचना कोई व्यक्ति पुलिस को देता है। स्वयमेव पुलिस ऐसे अपराधों पर कोई कार्यवाही नहीं करती है। इस कानून के अनुसार कालविवाह को जो भी गिनायत हो, यह एक वर्ष के भीतर मुक्त हो सकता है। विवाह के बाद एक साल बीत जाने पर कोई शिकायत नहीं मुनी जा सकती है।

इन कानून के १९२६ में पार हो जाने के बाद भी हिन्दू समाज से कालविवाहों का पूरी तरह सोंप नहीं हुआ है। १९४१ की भारतीय जनगणना की रिपोर्ट के अनुसार भारत में मात्र से बीसह वर्ष की आयु के विवाहित पुरुषों की संख्या २० लाख ३३ हजार विवाहित स्त्रियों की संख्या ६१ लाख १८ हजार, विधवा पुरुषों की संख्या ६६ हजार तथा विधवाओं की संख्या १ लाख ३४ हजार थी। कालविवाह की प्रथा प्रचलित रहने के कुछ बड़े कारण—स्किनायिता, धर्म कास्त्रीय आदिनों के शासन की कारण तथा भारत कानून की व्यवस्थाओं का विफल होना है। फिर भी जन-जन, नवीन परिस्थितियों से तथा अपने बगारे जाने वाले कारणों से भारत में विवाह की धार जैसी उठ रही है तथा इस कुप्रथा का प्रचलन कम हो रहा है। यह बात अपने पृष्ठ पर दी गई ताजिमा के आंकड़ों से स्पष्ट हो जायगी।^{११}

इस ताजिमा से यह स्पष्ट है कि १९२१-२१ की दशक की जो छेह कर स्त्रियों की विवाह की कोष्ठ आयु में निरन्तर वृद्धि हो रही है, इस दशक में वृद्धि न होने का कारण यह था कि भारत कानून के पहली अप्रैल १९३० से लागू होने से पहले इससे बचने के लिए सारे देश में बहुत बड़े पैमाने पर कालविवाह किये गये थे।^{१२}

११ एन० एन० मजमा—एन एट पेरिस इन इंडिया, पृ० ७२

१२ लोकमत इंडिया १९३१, पृ० १, ५० २२६-२४

भारत में विवाह की औसत आयु^{३६}

जन्मसमय के वर्ष	पुरुषों की आयु	स्त्रियों की आयु
१८९१-१९०१	२१.०१	१२.७७
१९०१-११	२०.४४	१२.०४
१९११-२१	२०.७४	१३.५२
१९२१-२१	१८.४५	१२.५०
१९३१-४१	२०.३४	१४.६६
१९४१-५१	१९.६३	१५.३८

वर्तमान समय में बालविवाह कम होने के कारण

बीसवीं शताब्दी में अनेक आधुनिक नवीन प्रवृत्तियों के कारण बालविवाह की प्रथा हिन्दू समाज में, विशेषतः शहरों के मध्य वर्ग में कम होने लगी है। इस विषय में श्री काण्हिया द्वारा किये गये एक अध्ययन से यह प्रतीत होता है। इससे केवल १५ प्रतिशत लड़कियों का विवाह १७ वर्ष की आयु से पहले हुआ था, ३५ प्रतिशत के विवाह की आयु १७-१८ वर्ष थी, २२ प्रतिशत का विवाह १९-२० वर्ष की आयु में हुआ था, १७ प्रतिशत का २१ तथा २१ से २४ वर्ष की आयु में तथा ४ प्रतिशत का २५ से २७ वर्ष की आयु में। इस प्रकार ७५ प्रतिशत लड़कियों का विवाह १७ वर्ष की आयु के बाद हुआ।^{३७} इससे यह स्पष्ट है कि स्त्रियों के विवाह की आयु ऊँची उठ रही है।

इसके बाद प्रमुख कारण हैं। पहला कारण शिक्षा का है। अब बच-बच के भविष्य शिक्षा को अधिक महत्व दिया जाने लगा है। पहले संयुक्त परिवार की प्रथा होने के कारण बालविवाहित दम्पती उस में पहले से और अपना घर-आपस परिवार के संयुक्त घर से होता था, युवकों को अपने परिवार का आर्थिक दायित्व उठाने की जिम्मा नहीं होती थी। किन्तु संयुक्त परिवार प्रथा का विघटन हो जाने से अब युवकों को अपने परिवार का आर्थिक बोझ स्वयंसेव अपने कंधों पर उठाना पड़ता है, अब वे तब तक विवाह नहीं करवा चाहते, जब तक वे आर्थिक दृष्टि से स्वावलम्बी न हो जायें। ऐसा होने का प्रयास सामान्य भौतिकीय हैं और वे शिक्षित युवकों को ही मिलती है, अतः युवक अपनी शिक्षा समाप्त करने से पहले विवाह के बंधन में नहीं पड़ना चाहते हैं। रास के अध्ययन में १८ महिला-विवाहित युवकों में से सोलह ने यह कहा कि आर्थिक दृष्टि से स्वावलम्बी होने से पहले वे विवाह नहीं करना चाहते।^{३८} एक युवक का कहना था कि “२६ वर्ष की आयु में मैं

३६ एच० एन० अग्रवाल—सूचक पुस्तक पृ० ७५

३७ काण्हिया—भारत पृष्ठ संश्लेष पृ० १५, १५०-११

३८ रास—श्री हिन्दू संश्लेष पुस्तक पृष्ठ संश्लेष पृ० १५८

पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त कर ली, उस समय मुझे अच्छे बेतन वाली नोकरी मिल आयी, तभी विवाह करने का विचार करने लगा। ऐसे युवक प्रायः पी-डी-एच की शिक्षा प्राप्त करके विवाह करने को मजबूर होते हैं, अतः अब हिन्दू समाज में स्त्रियों की शिक्षा पर बहुत ध्यान दिया जाने लगा है। स्त्रियों के लिए मध्यम शिक्षा वैदिक की है, इसे प्राप्त करने तक के १२-१६ वर्ष की हो जाती हैं, डी० ए० प्राप्त करने तक १६-२० की आयु हो जाती है। इस आयु तक बच्चों का विचार करने लगा है। समाज के मध्य एवं उच्च वर्ग में अब इस आयु तक प्रायः सामान्य शिक्षा प्राप्त करने के लिए अधिकाधिक ध्यान देने लगे हैं। दूसरा कारण आर्थिक है। युवक आर्थिक दृष्टि से स्वावलम्बी होने की इच्छा के कारण नौकरी पाने पर ही विवाह करना चाहते हैं, अतः समाज विवाह और भी बढ़ी आयु में होने लगा है। अगर २२ वर्ष की आयु में विवाह करने वाले युवक का उदाहरण दिया गया है क्योंकि वह समझता था कि इस आयु तक पी-एच० डी० करने के बाद उसे बेतन वाली नौकरी मिल आयी। लेकिन कारण नौकरियों के लिये उपयुक्त नर नरतों में समाज का समय है, आत्म-प्राप्त, शांति, प्रेम, सम्पत्ति आदि के अनेक वैवाहिक प्रतिबन्धों के कारण हिन्दू समाज में यह दृष्टि अत्यन्त बुरी है, इससे बहुत समय लगता है, इस कारण भी विवाह की आयु और बढ़ी है। तीसरा कारण वही है कि समाज में विवाह में किया जाने वाला धर्म अथवा धर्म। इनके लिये आवश्यक समस्त व्यक्तियों में बहुत समय लग जाता है।

अतः हिन्दू समाज में बालविवाह की प्रथा का उपर्युक्त कारणों से स्वयमेव खत्म हो रहा है। इसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है कि समाज की निम्नलिखित दो श्रेणियों में हो रहा है। पहली श्रेणी में इस व्यवस्था में सम्मिलित होने वाले स्त्री-पुरुषों को भी वर्गों में बांटा गया, क्योंकि समय पहले शादी करने वाले (Old married) तथा नवविवाहित (Young married)। विभिन्न आयु वर्गों की दृष्टि से भी वर्गों के लिये-प्राप्त के विवाह की आयु इस श्रेणी में वर्गीकृत है (उत्तर पृ० २५६)।

विवाह की आयु

विवाह की आयु	पुराने विवाह वाले वर्ग		नव विवाहित वर्ग	
	पति	पत्नी	पति	पत्नी
१०-१३	—	१२	—	२
१४-१६	—	४	—	६
१७-१८	६	७	—	१३
१९-२४	१३	४	१२	१४
२५ वर्ष से तथा इससे अधिक	६	—	१५	—
	२८	२७	१५	३३

इस तालिका से स्पष्ट है कि १० से १३ वर्ष की आयु में जहाँ पुरानी जाती जाती विधवाओं की संख्या १२ थी, वहाँ अवविवाहिताओं में यह घट कर केवल ७ ही रह गयी है। १६ से १८ तथा १९ से २४ वर्ष की आयु में विवाह करने वाले नव दम्पतियों की संख्या बढ़ रही है। २५ वर्ष तथा इससे अधिक आयु वाले पतिव्रताओं की संख्या पुरुषों सम्प्रति में ३ थी, किन्तु नवविवाहिताओं में यह १५ हो गयी है (सम १०-२६)।

दूसरी तालिका विवाह की आयु के सम्बन्ध में नवीन धर्मांतरितों की श्रृंखला दर्शाती है। इसमें अवविवाहिता स्त्री-पुरुषों में यह प्रथम गुहा गंगा का कि वे निम्न आयु में विवाह करने की इच्छा रखते हैं। इन के उमरों का पर्यावरण निर्मात्मीयता विधि का है।

विवाह करने की अवस्था आयु

	अविवाहित पुरुष		अविवाहिता स्त्रियाँ	
	वर्ग	परम	वर्ग	परम
१०-११	—	—	—	—
१४-१५	—	—	—	—
१६-१८	—	४	—	—
१९-२४	—	१६	१	३
२५ तथा इससे अधिक	२५	४	५	५
सर्वमूल	२५	२८	६	८

इस तालिका से स्पष्ट है कि जब हिन्दू समाज में विभिन्न स्थानों १३ वर्ष में पहले विवाह करना प्रचलन नहीं करती है।

कानून द्वारा विधवाओं के विवाह की आयु बढ़ाने का प्रस्ताव

राजीव गांधी सरकार द्वारा इस समय हमारे देश की समाजशास्त्रीय समस्याओं में ध्यान दिया गया है। विभिन्न संसदीय योजनाओं द्वारा देश की आय में जो वृद्धि होती है, उसे बढ़ती हुई जनसंख्या समाप्त कर देती है। अतः समाजशास्त्रियों की सम्पत्ति बढ़ाने की दृष्टि से जनसंख्या नियंत्रण कार्यक्रम को बढ़ावा देने की आवश्यकता है और यह प्रयत्न किया जा रहा है कि भारत की वर्तमान जनसंख्या दर को ४१.५ प्रति हजार में घटा कर २५ प्रति हजार कर दिया जाय। अभी तक इस कार्य में इस प्रकार की कमी बन्दूक आदि सड़कों के निमित्त वर्ष में हो सकती है। इसे देखते हुए व्यापक रूप से नीति की दृष्टि से कुछ वैज्ञानिकों और विचारकों का मुताबक है कि भारत में सड़कों के विवाह की प्रवृत्ति आयु कानून द्वारा

यदि २० वर्ष कर दो आध जो कम्युनर में जीस प्रतिष्ठान की समीप कमी होय ही हो सकती है। किन्तु इस मुसलमान का भारत के पहिला संगठनों तथा नेताओं की मोर से इस-लिए तीव्र विरोध हो रहा है कि भारत सरकार अभी तक १५ वर्ष की मूलसम आयु निर्धारित करने वाले भारत का नून का पालन नहीं करता सभी है तो यह २० वर्ष वाले का नून का पालन कैसे करा सकेगी। कही को आयु को और बढ़ाने का कानून यह पालने हुए पालन करना कि उसका पालन नहीं होता, कानून के उल्लंघन को बकाया देना है, यह किसी भी समाज के लिए हितकर या बाधनीय नहीं है। विधायी की विवाह की आयु को बढ़ाने का सर्वोत्तम साधन उनकी शिक्षा की तथा रोजगार की सुविधा बढ़ाना है। इससे कमियों के विवाह की आयु स्वयमेव ऊँची उठ आयेगी।

विधवाविवाह

विधवा विवाह के निषेध की क्रमिक अवस्थाएँ

वाधवाविवाह की भाँति विधवाविवाह के निषेध की धार्मिक प्रथा भी बर्तमान समय में हिन्दू आदि की शीघ्रता एवं विनाश के एक पक्ष से आ रही है। यह प्रथा वैदिक काल में प्रचलित नहीं थी, बाद में इसका प्रचलन हुआ। विधवा विवाह का निषेध भी ऐतिहासिक अवस्थाओं में से होकर गुज़रा है—

(१) प्रारम्भिक काल से २०० ई० पू० तक विधवा विवाह प्रचलित था।

(२) २०० ई० पू० के बाद में क्षत्रियों में विधवाओं के विवाह की निन्दा की शुरुआत हो गई। मनु ने ऐसे विवाहों की चार निन्दा की। लगभग १४०० वर्षों में क्षत्रियों में विधवाओं का विवाह विष्णुज अथवा ही नहीं माना, किन्तु अक्षतर्षाणि विधवाओं का विवाह ही सकता था।

(३) १३ वीं शती से अक्षतर्षाणि विधवा का विवाह की अक्षत सम्प्रदाय वाले क्षत्र और समाज के उच्च वर्ग में विधवा विवाह के निषेध की प्रथा पूर्ण रूप से प्रचलित हो गयी। हिन्दू समाज की बहुत सी नीची समझी जाने वाली जातियों ने विधवा विवाह के निषेध को उच्च जातियों से ग्रहण किया, किन्तु क्षत्र, भी इन जातियों ने अब तक इसे पूर्ण रूप से नहीं अपनाया। हिन्दू समाज की अनेक निम्न जातियों में विधवाओं के पुनर्विवाह की प्रथा अब तक प्रचलित है। इस अध्याय में विधवा विवाह निषेध के ऐतिहासिक विकास का प्रतिपादन किया जाएगा।

वैदिक युग में विधवा विवाह

वैदिक युग में पति के मर जाने पर पत्नी विधवा बन सकती थी या दूसरे पुरुष से विवाह कर सकती थी। समवेद के पितृवेद सूक्त (१८।३) में इसका स्पष्ट उल्लेख है। यह सूक्त अत्यधिक संस्कार से संव्यक्त है और इसके प्रारम्भिक सर्गों में पति की मृत्यु के दुःख से संतप्त एवं विलाप करने वाली पत्नी की शान्तिकला दी गयी है। उसे वास्तवता से बुरा कहना है कि "बच होकर शोक करने का कोई लाभ नहीं है, तू मृत पति के पास से उठ, अपने सांसारिक कर्तव्यों की ओर ध्यान दे और अश्वमेध यज्ञ का पालन करने

हुए, पुनर्विवाह द्वारा ज्ञानान उत्पन्न कर ।" इतना ही नहीं, अपितु यह भी कहा गया है कि जब उसने पुनर्विवाह कर लिया तो ब्रह्मा जोर हो गया और फिर उसकी मन्त्रमायी के साथ सम्बन्ध करने हुए उसके दूसरे पति की पत्नी (वैश्व) कहा गया तथा पत्नी की बात आने पर विद्या गया कि तू इसकी प्रीतिपूर्वक सेवा कर । एक भक्त ने पति की मृत्यु के बाद इत्यदिष्ट विधि में गये होने बोले इन मन्त्रों में पुनर्विवाह की वधा का बहुत बन्धना है ।^१ किन्तु पत्नी के शोक को शांत करने के लिए ब्रह्मन्त्र देते हुए पुनर्विवाह की प्रेरणा करने में हमें कोई बहुरूपी नहीं प्रतीत होती है । इन मन्त्रों का सम्बन्ध इस प्रकार है—“हे मनुष्य, पति के मरने के बाद पति की चाहती हुई और ब्रह्मन्त्र धर्म का पालन करने की हुई यह वही तेरे पति की है । तू इस शोक के इसे उत्पन्न और सम्पत्ति है ।”^२ “हे मारी, तू इस मृत पति के साथ बैठी हुई है, तू वहीं में ब्रह्म और जीवित रहने

१. शतकोट—श्री० पृ० ६० ई० द्वितीय संस्करण पृ० ११०, अथ स्मृतियों में पत्नी का ब्रह्मन्त्र करने एकदम विवाह करने की आज्ञा दी गयी है (आश० १।१६) तो पत्नी के लिए इस प्रकार के विवाह को बहुत ही बन्धना बोले ?

२. अथर्व १।१।१, इस मारी पतिलोक कृष्णान् विप्राय उच त्वा मयं मेतु ।

अथ पुराणमनुपलभ्यती, तर्क प्रकाश विमल वेद वेदि ।

ब्रह्मन्त्राचार्य ने इस मन्त्र का अर्थ यह किया है—“हे मरनेवाले मनुष्य, यह तू पति द्वारा किये गये मन्त्रों के स्वयं—स्वयंलोक का भोग करती हुई (मृत संवत्सरी) गये हुए मरणात् दुष्कालोक्त के गये हुए मृत पति के पास पहुँचती है । पुराणदर्शन का मरणात् जन्मि काल के विचारों के स्वयं की स्मृतियों और पुराणी में विद्ये अर्थ का पालन करती हुई और तेरे साथ लगी हो गये जाती इस रीति के लिए तू इस लोक में मरणात् दूसरे जन्मों में (मरणादरे) उत्पन्न और धर्म को के । आश्व मे इस प्रकार की प्रजा को वैश्वानुभूति कालसे हुए स्मृति के एक प्रमाण के भी अपने अर्थ को मुष्ट करना चाहिए । किन्तु स्वयं का यह अर्थ कई कारणों से अस्वीकार नहीं प्रतीत होता । स्वयं के समर्थ में लक्ष्य प्रकाश विमल भी । स्वयं मे इस मन्त्र से उस प्रजा की सिद्धि को है । आश्व मे वैदिक काल से लक्ष्य प्रकाश विमल नहीं भी । इस विमल में वैश्व तथा मनुष्यों के प्रमाण अन्यत्र किये गये हैं । इसी प्रकार का ही अमला मन्त्र लक्ष्य प्रजा का स्वयं करता है, उसमें स्त्री को पति की चित्ता के साथ के करने का आदेश दिया गया है । स्वयंलोक स्वयं मृत की उत्पत्ति में इसे स्वीकार करते हैं ‘परि च्छ इल लोक में जीवा जाहे तो “उत्पीर्ण” के दूसरे मन्त्र (अ० १०।१८।८) के मृत पति के साथ बैठी हुई पत्नी को उठावे’ (सा यदि इहलोके पुनर्प्राप्तिमिच्छेत् तदा उत्पीर्ण इत्यन्वया द्वितीयार्थे वैश्व संविद्यां तदपस्विमन्त्रं उत्पद्येत्) ।

आगे प्राणिजी के दस लोक में था। विवाह का प्राचिनहो करने वाले गया पुनर्विवाह की दृष्टि करने वाले पति की थापा हो। येन भूतका से (पुनः स्वतित्यो के स्थान-प्रसात से) दूर के आसी आसी हुई तथा व्याही आसी हुई पृथ्वी को देखा है। यह पाने आका-अकार से तिररी हुई थी, उसे मे पृथ्वी दशा से आकाराहू तूभरी दशा मे मे थापा है। मे अहमे, तू रग जीवभोक को अच्छी तरह जाली है, मरने के योग के पथ का अवमन्य करती है। यह तेरा गोलि है, तू अगली गया कर और पुनः पुनः लोक को प्राप्त कर।"

अथर्ववेद में एक दूसरे स्थान (४।१।२३-२८) पर कहा गया है कि "आ स्वी गहमे गति का प्राप्य कर उसने बाद पुनः पति का प्राप्त करनी है और वे पृथीपय अज (तब अहरी दशा प्राप्त थी पाव माणिया) को लेने है, वे दोनों कभी अमन नहीं होने। यह दूसरा गति की दक्षिणा में स्मरति गा प्रभात का तथा पृथीपय अज भग दात करनी है, पुनर्विवाहित स्त्री के श्रावण कर ही लोक को प्राप्त होगा है।"

अथर्ववेद (४।१।७।१८-१९) में यह कहा गया है—"यदि कोई स्त्री गर्भव दत्त आश्राय गति करे, किन्तु जल में गति वह आश्राय में विवाह करे तो वह उसका आश्रायिक पति है, न कि अहित या वैश्य। यह बात सूर्य पथ जाली (पौष प्रकाश के आश्रय मयी या समुहो) में भोजित करता चलता है।" इसका तात्पर्य यह है कि पति स्त्री का पहले अहित या वैश्य नहीं थापा होगा है और इसकी पृथु के बाद वह किसी आश्राय में विवाह करती है तो वही उसका आश्रायिक पति समझा जायगा।

आर्युक्त मयी में यह स्पष्ट है कि वैदिक काल में विवाह के आश्रायिक विवाह-विवाह की अभिहित था। पति के मने ही विवाह कृष्ण विवाह कर केनी थी और ऐसा करने हुए वह अथर्विक काल से कने आगे आते अनात्म धर्म का प्रामन करनी थी। आर्य में पूर्ण काल से अहित आने वाले इस विधवा-पुनर्विवाह के धर्म को अथर्व प्रामन करने तथा और अनात्म धर्म को वासन का अभिवाक करने आसी ने विवाह विवाह-विधेय के गर्वका अनात्मन धर्म के वासन पर आग्रह करते हुआरों हिन्दू विवाहों को वैश्य की दास्य अग्रणी कहने से निवृत्त आर्य किया।

दूसरी बात यह है कि 'इह' राज्य संस्कृत में दक्ष (परलोक) के प्रतियोगी के रूप में आता है। लावभाचार्य ने परिलोक तथा इह दोनों जगहों के अर्थ कथना स्वरूप में पति का स्वाम तथा दूसरे जगह की यह बुझिया किये हैं। दोनों स्वरूप में स्पष्ट किम्वद करनी है। फिर वैश्व में प्रमुक्त पुराण राज्य के अर्थ को वर्तमान काल के पुराणों के अर्थ में प्रमुक्त करना वैदिक जगहों के साथ अग्र्या करना है। सत्ता हर्षे यह अर्थ हीन नहीं जान पड़ता। तब आ० ४।१।१९ में यही लक्ष आया है और वही 'अर्थ' पुराण के स्थान पर विवर्ण पुराण का भाव है। लावभाचार्य ने अनात्म अर्थ 'अनात्मिकता-अनुरा' करने स्वीकार्य किया है।

धर्मसूत्रों में विधवाविवाह

धर्मसूत्रों में विधवा-विवाह के स्पष्ट उल्लेख हैं। दक्षिण धर्मसूत्र (१७।१८-२०) धीनर्मेव पुत्र को व्याख्या करता हुआ कहता है कि पुत्रर्तु का पुत्र धीनर्मेव होता है और पुत्रर्तु वह स्त्री है जो अपने अविवाहित (कीमर) पति को छोड़कर दूसरे के साथ विधवा बनती है और उसको बाद फिर अपने पहले पति के पास लौट जाती है, अथवा और नष्टक, आतिशय, दमस्त या भूत पति को छोड़ कर दूसरे पति की प्राप्ति करती है।

मई बार ऐसा होता था कि कन्या का सम्मान हो जाता था, किन्तु विवाह से पहले ही उसका पति मर जाता था। इस अवस्था में भी धर्मसूत्र उसके पुनर्विवाह की व्यवस्था करते हैं। यदि धर्माग्रहण हो गया हो और कन्या अथवा अश्वत्थोनि हो तो उस अवस्था (पति की मृत्यु हो जाने की दशा) में भी उसका दूसरा विवाह हो सकता था।^१ शौण्यन धर्मसूत्र (४।३।१८) ने दक्षिण के विस्तीर्ण-जुसती व्यवस्था की है। कौटिल्य (३।४) ने पति के मर जाने पर सात महीने की प्रतीक्षा के बाद पत्नी को पुनर्विवाह का अधिकार दिया है।

बालविवाह की वृद्धि से अश्वत्थोनि विधवाओं के लिए नपुंसक व्यवस्थाएँ बनाना आवश्यक हो गया। इन व्यवस्थाओं के अतिरिक्त कुछ ऐसी दशाओं में, जब पति को मृत के लुप्त समाजा जाता था, स्त्री को पुनर्विवाह का अधिकार प्राप्त था। इन दशाओं की अन्यत्र (पृ. २८६-६७) विस्तार से चर्चा की जा चुकी है। दक्षिण धर्मसूत्र (१७।७।२।८०) तथा कौटिल्य (३।४।३।४९) पति के विदेह जाने के बाद विधवाका एक सप्ताहभर न भिक्षा लेने पर पत्नी को दूसरे विवाह की आज्ञा देते हैं और हिन्दू विधवाओं को छोटी धाती ई० तक यह अधिकार प्राप्त रहा है।

रामायण तथा महाभारत में विधवाविवाह

रामायण, महाभारत और पुराणों में विधवा विवाह के अनेक उदाहरण पाये जाते हैं। रामायण में सीता के मरने पर राजा लक्ष्मणसेनापति के मर्त्य में अपने पति की मृत्यु पर विचार करती है और राम से यहाँ तक कहती है कि तुम मुझे मार दो, तुम्हें पत्नीत्व का पाप नहीं लगेगा, किन्तु अन्त में विधवा द्वारा सुवीर की पत्नी बन जाती है। उसका पुत्र पश्चिप अपने पितृघाती बाबा की नपुंसक करता है, विष्णु द्वारा सुवीर से सम्बन्ध स्नेह रहती है।

महाभारत में नल-अम्बाली के उदाहरण से स्पष्ट है कि उस समय विधवा विवाह

^१ दक्षिणधर्मसूत्र १७।६६

धर्माग्रहे मृते राजा केवलं कर्मसंस्तुता ।

या अश्वत्थोनिः स्वायुजःश्रृङ्गारमूर्ति ॥

को बुरा नहीं माना जाता था। दम्पत्यो ने नल के बुढ़ने के लिए एक ज्वाबदी व्यवस्था की रचना की थी (महाभा० ३।७०)। उमें मान्य है कि नल राजा आनुष्य के घर पर है। उसने माता के परामर्श करते आनुष्य का अपने द्वितीय स्वधर में जीवित गर्ह करने का निमन्त्रण किया। यदि विधवाओं का विवाह अर्थ में गमना जाता तो आनुष्य और के कभी इतनी तीव्रता न करता। नल ने दम्पत्यो को यह भी यह उपानयन भी दिया है कि तुम आनुष्य पति को जीवित रूप से विवाह के लिए नहीं भेदना तुम्हें (मं० ३।७२।७६)। दम्पत्यो विविधोपयोग को मुख्य पर ध्यान से यह प्रार्थना करती है कि वह उसके पुत्र की विधवाओं के विवाह करे। आर्जुन शत्रुघ्न के उग्र ने दामन की प्रविष्टा भीष्म द्वारा विवाह करने में बाधक थी, किन्तु गन्धर्वा का प्रस्ताव विधवाविवाह के प्रचलन का प्रमाण सुचित करता है। कामना मेरावत ने अपनी विधवा पुत्री का अर्जुन के साथ विवाह किया। इन विवाह से अर्जुन का इरादा नामक पुत्र उत्पन्न हुआ (परीक्ष्य पर्व ६१।७-८)।

बीर धर्म में विधवाओं के पुनर्विवाह के कई स्पष्ट उल्लेख हैं। नन्द मानव (मं० ३.६) में एक ऐसे पति का वर्णन है जो वह धोचकर मरता जाता है कि उसकी सुखी पत्नी अन्धकार मृत्यु के बाद किसी अन्य पुरुष से बाँधी कर लेगी और उसके पुत्र को वसति में छोड़े हिंसा नहीं मिलेगा। अन्धकार आतक (मं० १७) में यह वर्णन है कि किसी स्त्री का पति, मारें और पुत्र राजा द्वारा कत्तों बना लिये गये। स्त्री ने राजा के आगे बड़ा कलम चलाया किया। राजा ने उस पर दया दिखाते हुए कहा कि यदि मैं इन भीमों में से किसी एक को बन्धनभुक्त करने की आज्ञा दूँ तो तुम हमें से किसीकी मुक्ति चाहोगी। स्त्री ने कहा—“महाशय यदि मैं जीवित रहूँ तो मुझे दूसरा पति और दूसरा पृथ मिल सकता है किन्तु मेरे माता-पिता मर चुके हैं, जतः मैं मर्त्य की सुखदामा पसन्द करूँगी।” स्त्री के इस उत्तर से स्पष्ट है कि उस समय स्त्रियों का पुनर्विवाह प्रचलित था।

विधवाविवाह के निषेध का आरम्भ

महाभाष्य से यह ज्ञात होता है कि उस समय केवल विधवाओं के अपितु स्त्री मात्र के पुनर्विवाह को बुरा समझा जाने लगा था। दीर्घतमा ऋषि की पत्नी प्रवेदी दीर्घतमा को छोड़कर दूसरे के पास जाने का विचार हुई (महाभा० १।१०४)। उस समय ऋषि ने कहा कि “आज मैं मैं ऐसी सर्पटा स्थापित करता हूँ कि जन्म कर के सिद्ध स्त्री का एक ही पति हो। पति जीवित हो या न हो, स्त्री को दूसरे पति के पास नहीं जाना चाहिए” (१।१०४।३४-३६)। स्पष्टतः यह विधवा के पुनर्विवाह का स्पष्ट निषेध था। महाभारत के समय में यह कानून किन्ना लोकप्रिय होने लग गया था, यह दम्पत्यो को नल द्वारा दिये गये एक उपानयन से स्पष्ट है। दम्पत्यो ने उस उपानयन का यह उत्तर दिया है कि “तुम्हें वहाँ सुनने के लिए ही मैंने इस मुक्ति से काम लिया है।

मुन्हारे सिवाय कोई मनुष्य भी योजन नहीं जा सकता। जो मैं इसमें पाप करती होंगी तो यह वायु मेरे प्राणों का नाश कर दे।" इसका यह आशय हुआ कि समस्तनी पुनर्विवाह को पाप मानती थी। दुर्घोषण ने कहा है कि श्रेष्ठ व्यक्तियों के मर जाने पर इस धृष्टी को नष्ट करने की इच्छा दूसरों उसी तरह नहीं है जैसे विधवा स्त्री को शीशों के लिए इच्छा या उसकाह नहीं होता (म० धा० २।३१।१५)। रामायण में विधवा विवाह के सम्बन्ध में जो उपाहरण ऊपर दिये गये हैं वे अन्तार्थ—कवि एवं राजस कावियों के हैं। इनसे यह स्पष्ट है कि आर्य जाति में उद्य समय विधवा विवाह को निन्दित समझा जाने लगा था।

विधवा विवाह के निर्बन्ध के कारण

(१) संस्कारों की परिष्कृता का विचार—वैदिक काल में जो सनातन धर्म समझा जाता था, वह बाव में निन्दित क्यों माना जाने लगा? इसका पहला कारण तो यह प्रतीत होता है कि प्राचीनों के प्रभाव की वृद्धि के साथ-साथ संस्कारों की परिष्कृता एवं सुवृत्ता को आवश्यकता से अधिक महत्त्व मिलने लगा। मौर्यवंश की स्थापति के साथ भारत में बौद्ध धर्म के निरुद्ध प्रबल प्रतिक्रिया हुई। ब्राह्मण धर्म का भौगोलिक अभ्युदय एवं उत्कर्ष हुआ। रामायण, महाभारत और सनुस्मृति के वर्तमान संस्करण इसी उत्कर्षकाल की रचनाएँ हैं। विवाह एक समझौता (Contract) है या पवित्र धार्मिक बन्धन (Crament), यह विवाद पहले से चला आता था। किन्तु इस प्रतिक्रिया के बाद विवाह की अधिकतम सम्बन्ध मान लिया गया। मनुस्मृति (२।४५-४६) में कहा गया है कि स्त्री और पुत्र गति के बाहिर का बन्ध होता है, अतः जायों पति से किसी भी प्रकार से विमुक्त नहीं हो सकती। मनु के इस सिद्धान्त का सीधा-सादा अर्थ यह है कि जो एक बार पत्नी हो गयी, वह सदा के लिए पत्नी है। बाद में यह सम्बन्ध जन्म-मृत्युस्तरों के लिए समझा जाने लगा, एक स्त्री का एक व्यक्ति से अधिक व्यक्तियों के साथ सम्बन्ध निन्दित और असम्भव समझा जाने लगा।

मनु ने इसी दृष्टि से नियोग का विरोध किया और विधवा के पुनर्विवाह का स्पष्ट खसैख भरी किया। विधवा विवाह में अन्य व्यक्ति का सम्बन्ध आवश्यक था, किन्तु वह उक्त सिद्धान्त के विपरीत था। अतः मनु ने शतबोधि कल्प के पुनर्विवाह की स्वीकृति नहीं किया। पिछले धर्मसूत्रकारी ने पति के विरोध चले जाने पर कुछ वर्षों के उपरांत पत्नी को विवाह का अधिकार दिया था। मनु इन परिस्थितियों की सम्भावना करता है, वह पत्नी को प्रतीक्षा करने के लिए कहता है किन्तु उस प्रतीक्षा के बाद पत्नी क्या करे इस विषय में वह सर्वथा मौन है। मनु के टीकाकारों में नन्दन ने ही इस मौन का यह अर्थ किया है कि वह पुनर्विवाह कर ले। किन्तु मेधातिथि आदि ने विधवा के पुनर्विवाह का विरोध किया है। मेधातिथि का अर्थ मनुस्मृति की भावना के अनुकूल जान पड़ता है। मनु (२।१४७-६२) के मत में 'पति के मर जाने पर पत्नी को अन्य पुरुष का साथ भी न लेना चाहिए, वह आभरण बाहुधारिणी रहे, पति के मरने पर जो स्त्रियाँ अपुत्रा होने पर भी

ब्रह्मचर्य धारण करती है वे स्वर्ग में जाती है। पुत्र के साथ वे जो स्त्री दूसरे पुरुष के पास जाती है वह निन्दित होती है। साक्षी स्त्रियों का कोई दूसरा पति नहीं होता।^१ यह बात धनु के विवाह संस्कार सम्बन्धी विचारों के सर्वथा प्रतिकूल थी कि विधवा के नाम कोई दूसरा स्थापित नावी करे। अतः उसने विधवा के पुनर्विवाह को स्पष्ट मन्त्रों में यह कहकर निषिद्ध किया कि साक्षी स्त्रियों का कोई दूसरा पति नहीं होता। मनु (८।२२६. २।४०) यह मानता है कि विवाह की विधि में विधवाओं के पुनर्विवाह का कोई स्थान नहीं है। शास्त्र-ग्रन्थ के मन्त्र ही कन्याओं के लिए ही हैं, और कन्यादान गुरु ही बात होता है। इस निष्पत्ति का कारण हिन्दू धर्म के पुनरुत्थान एवं विवाह संस्कार के अन्तर्गत की अधिकाधिक महत्त्व देना था, किन्तु मनु ने मात्र विधवाओं के सम्बन्ध में प्राचीन धर्मग्रन्थों की व्याख्या की यथा-पूर्व रखा। यह सब कुछ की बात है कि मनु ने संस्कार के पवित्र अन्धन की अर्पणा अर्थात् पत्नी के लिए ही रखा। यदि पति-पत्नी में कोई अविच्छेद सम्बन्ध है तो वह दोनों और से होना चाहिए, यदि पत्नी पति से अलग नहीं हो सकती तो पति भी पत्नी से अलग नहीं हो सकता। किन्तु पुत्र के सम्बन्ध में यह संस्कार शायद नहीं माना गया, उसके एकपत्नीयता होने की आज्ञा नहीं रखी गयी। प्राश्नब्रह्म ने विधवाओं के लिए आनन्द-वैधव्य की व्यवस्था की (१।७४) किन्तु पुत्र के लिए यह कहा कि पत्नी के मरण ही उसे मृत्यु दूसरा विवाह कर लेना चाहिए (१।८२)।

(२) अक्षतयोगि कन्या की आर्काशा—विधवा विवाह के निषेध का दूसरा कारण यह था कि उस समय धीरे-धीरे यह विज्ञान प्रचल रहा था कि विवाह के समय बहुत अनुपयुक्त एवं अक्षतयोगि होती चाहिए। अक्षियों में यह अभिमान होना स्वाभाविक है कि वे दूसरे द्वारा उपयुक्त स्त्रियों को ग्रहण न करें। यह आकांक्षा अभिमान बातियों में पायी जाती है। महाभारत में द्रौपदी (५।१६८।१४) के विवाह के सम्बन्ध में यह विधिगत बात कही गयी है कि वह सर्व पर्यन्त एक पंडित के सहवास में रहकर ही भगवत् की भक्त गुरु-भक्त सर्वथा कुमारी रूप में ही दूसरे पंडित को प्राप्त होती थी। कुलीन सूर्य द्वारा यहवाच के साथ भी अक्षतयोगि रही। यथाति की कायापादकी (५।११४।२९) की मंत्र पुन प्राप्त था कि वह प्रत्येक ब्रह्मर्षि के साथ कुमारी ही जायेगी और उसने मान्य हो कहा था कि तू मुझे बाद राजाओं को देकर १०० घोड़े प्राप्त कर। अर्जुन अश्वमेध-यज्ञ की प्रतिज्ञा करते हुए कहता है कि यदि मैं यह प्रतिज्ञा न पूरी करूँ तो मैं आज से चल बसूँगा। इन प्रतिज्ञा के समय उसने अनेक वचन कहे हैं, उनमें से एक यह भी है कि यदि मैं यह प्रतिज्ञा न पूर्ण करूँ तो मुझे वह निन्दनीय भोक प्राप्त हो जो मुक्तसूत्री स्त्री से लायी करण कर होता है। इससे स्पष्ट है कि अक्षतयोगि स्त्री से विवाह उस समय बहुत निन्दनीय समझा जाता था। जब संभव यह सिद्धांत मानने लगा तो स्वभावतः विधवा से शादी का अधिकार हिन बचा। मनु की तरह महाभारतकार भी अक्षतयोगि कन्या को ही पुनर्विवाह का अधिकार देता है।

२०० ई० पूर्व से उपर्युक्त कारणों द्वारा विधवा विवाह को मनु की दृष्टि से

देखा जाने लगा तथा विधवा स्त्री के लिए नहीं बाधनी लगता जाने लगा कि वह ब्रह्म-
चर्यपूर्वक अपना जीवन बिताये। किन्तु ऐसा मान बढ़ता है कि विधवाओं के विवाह अपने
७००-८०० वर्षों तक अर्थात् गुप्त युग की समाप्ति तक होते रहे।

वास्तव्यय के कामसूत्र में बात होता है कि जो विधवाएँ ब्रह्मचर्य छठ का
गामन करना कठिन समझती थीं वे दूसरी जारी कर लेती थीं। पराशर, (३।३०) ने
विधवा विवाह का समर्थन किया है। उनके मतानुसार पति के सापटा होने, मरण, मंग्याप्री
कर्मण्य होने या गतिष्ठ स्थिति की गांध आपत्तियों में स्त्री दूसरा विवाह कर सकती है।
नारद (५।३७) ने इसका अनुमोदन किया है। गुप्त युग में विधवाओं के विवाह का
ऐतिहासिक प्रमाण विधवा अनुवेदी का चन्द्रगुप्त द्वितीय के विवाह है। गुप्त युग एवं पूर्व
मध्ययुग में अधिकांश स्मृतियों में अस्तवीनि विधवा के अधिकार को स्पष्ट रूप से
सांग गया है, किन्तु अस्तवीनि विधवा के पुनर्विवाह की उल्लेख की गयी है। जहाँ जल्दकर
अध्ययन में पराशर की पुनर्विवाह विधवा के स्पष्ट व्यवस्था की थी टीकाकारों ने अपने
गतिष्ठ एवं व्याख्यात्मक से अर्थ करने का प्रयत्न किया। ऐसा मान पड़ता है कि जल्दी
जल्दी तक अस्तवीनि विधवा के विवाह को बहुत कुछ तकता जाने लगा था। वेदा-
विधि में विधवा विवाह के समर्थक पराशर के उपर्युक्त श्लोक की वज्र व्याख्या की है कि
यहाँ गांध का अर्थ वाच्य करने वाला गुण्य है, नहीं नहीं। विधवा को चाहिए कि वह
आजीविना के लिए श्रीकरात्री का काम करे और इन काम के लिए किसी दासक की
हत्या नहून करे। १० वीं शताब्दी के बाद कतिपयों की कल्पना बहुत कम रही थी और
अर्थशास्त्रकार जिस प्राचीन विधि को अपने मन के अनुसार नहीं मानते थे, उसके बारे में
वह कहते थे कि यह विधि कलिकाल में निश्चित है। आरित्य पूरण तथा कष्टपुराण
(अध्याय, ५०-६८) ने विवाहित स्त्री के पुनर्विवाह को अधिकृत्य बताया है। पराशर
स्मृति के टीकाकार माधव ने पराशर के इस श्लोक की टीका करते हुए यह कहा है कि
यह विधि दूसरे युगों के लिए है, यद्यपि कतिपय के प्रयोग का प्रतिपादन करने का ध्येय परा-
शरस्मृति की ही दिया जाता है। ११ वीं शती में अस्तवीनी ने यह कहा है कि हिन्दुओं
में विधवा का विवाह नहीं होता, वे या तो बर्ती हो जाती हैं या लक्ष्मी की तरह अपना
जीवन व्यतीत करती हैं। इससे स्पष्ट है कि ११ वीं शती तक अस्तवीनि विधवाओं का पुन
विवाह कितना कम हो चुका था।

(१) सम्पत्ति की रक्षा—गुप्त मध्ययुग में विधवाओं के पुनर्विवाह निषेध की
व्यवस्था को सर्वमान्य बनाने में जो अन्य कारण की सहायक हुए, उनमें साम्प्रतिक
कारण मुख्य था। अत्यन्त प्राचीन काल में विधवाओं के साम्प्रतिक अधिकारों की चर्चा
बहुत कम मिलती है। विधवाओं का पुनर्विवाह निषिद्ध होने पर भी स्मृतिकारों तथा
टीकाकारों और निष्कर्षकारों ने उनके सम्पत्ति के अधिकार को स्वीकार किया। राज-
वाक्य १।१३५-६ में पत्नी के लिए स्पष्ट रूप से पति की सम्पत्ति में अधिकार का विधान

कि यदि कन्या का शास्त्रानुसार ही गया है और विवाह होने से पहले उसका परिचय मर जाता है तो ऐसी कन्या कुलपति है और उसके साथ विवाह नहीं करना चाहिए। कन्या की यह चर्चा केवल उच्च न्यायाधीशों के बीच ही होती है। कन्या के प्रति यह सम्मानपूर्वक कृतज्ञता है। किन्तु समाज में इस आशयवादी शास्त्रीय विचार की अवधारणा, किन्तु फिर भी समाज में अन्तर्गत कन्याओं के विवाह हुए। प्रसिद्ध राजा हजिराजि ने सरकार को विवाह मुक्ति के विवाह किया।

समाज में विवाहविवाह प्रचलित करने के प्रयत्न

इसका मतलब है राजाजि के प्रयास—समाज में कई समझदार व्यक्तियों ने विवाहविवाह के विरोध की दुराई को दूर करना चाहा, किन्तु वे अपने लक्ष्य नहीं पहुँचे। समाज में प्रचलित हिन्दू कानून के प्रसिद्ध व्याख्याकार एम. एम. भट्टाचार्य (१८९०-७०) ने १९ वीं शताब्दी में अपनी विवाह कन्या का विवाह करने के लिए प्रयास से प्रयास प्रयत्न किया, किन्तु वह उसमें सफल नहीं हो सका। १८ वीं शताब्दी के मध्य में शिक्षणपरियोजना के अध्यक्ष राजा राजवल्लभ (१८९८-१७९९) अपनी सम्पूर्ण विवाह कन्या की सम्पूर्ण सम्पत्ति से बहुत ही व्यर्थ हुए। उन्होंने विवाह विवाह को प्रचलित करने का बहुत प्रयत्न किया। राजवल्लभ ने पूर्व और पश्चिम के अनेक पंडितों से यह अवस्था मंगाई कि विवाहविवाह शास्त्रीय नहीं है। पश्चिम के पंडितों ने इस अवस्था की स्वीकृति देने के लिए राजवल्लभ ने यह अवस्थाएँ नहीं पंडितों के हाथों में दिया तथा राजा हजिराजि की सलाह से सेवा। समाज में ऐसा प्रयास प्रसिद्ध है कि हजिराजि ने अपनी सलाह के पंडितों को एकत्रित में बुलाकर इस अवस्था के विषय में उनकी सम्मति माँगी। पंडितों ने कहा कि यह अवस्था शास्त्रीय नहीं है। यह पुनः हजिराजि ने राजा के पंडितों को आदेश दिया कि "यह अवस्था शास्त्रीय नहीं है और भी शैक्षिक व्यवहार के विरुद्ध है, इस कारण से राजवल्लभ को निराश करना होगा।" और समाज का एक आशय विवाह से सम्बन्धित व्यवहार को प्रचलित करने, और इस प्रकार समाज का सम्मान करने, यह सभी सर्वथा असंभव है। किन्तु इस समय राजवल्लभ का बहुत अवस्था है। इस कारण सुलतानमुल्ता ने उसके विरुद्ध आदेश दिया कि राजा पसन्द नहीं करता। उसके सन्तोष के लिए मैं आप से अवस्थाएँ पर हस्ताक्षर करने के लिए बहुत कुछ अनुरोध करूँगा। परन्तु आप लोग किसी तरह न मानियेगा। आप सभी कहिये कि महाराज किसी के भी अनुरोध पर इस अवस्था पर हस्ताक्षर करने हम आप के चाली नहीं करेंगे।"

समय १९१४, सुलतान ने यह अवस्था कभी नहीं करी इति स्मृतः।

धुंधला कर रखना चाहिए।^{१०} बम्बई हाइकोर्ट ने नटवीआई बनाम रासबन के मूकहूमे में इस प्रतीक के प्रमाण में संदेह प्रकट किया है। इनमें कोई शक नहीं कि यह प्रथा उत्तर मध्ययुग में शुरू हुई। पूर्व मध्ययुग के प्रारम्भ में बाण के वर्णनानुसार विधवा विर नहों भुंक्वासी थी, किन्तु बाद में को विशेष प्रकार से बाँधे रखती थी (हर्षचरित, उच्छ्रवस ५)। किसी व्यक्ति की मृत्यु पर उनके आस्थोपश्र्चकार और कराते हैं। कायद इसी तरह विधवा भी और कराती होगी। दाश में विधवा के लिये संन्यासी की तरह अनेक कठोर नियम चलने का विधान किया गया। संन्यासी श्रम कराते थे, पक्षीय विधवाओं का भी और होने लगा। पंडितों ने इस विधि को वैदिक सिद्ध करने का पूरा प्रयत्न किया है। किन्तु इसके लिए स्कन्दपुराण से पहले का कोई सन्दोषजनक प्रमाण नहीं देखा जा सका।^{११} १५ वीं सदी से विधवाओं के लिए भुंक्वाने की पद्धति प्रचलित हुई है। इसका अधिक प्रचार दक्षिण और मगध में है। विधवाएँ जब तक विर नहीं भुंक्वा लेतीं, तब तक उन्हें देवदंड का अधिकार नहीं मिलता और वही कोई बहुत व्यक्ति उनके छूला हुआ श्रावण वा बल ग्रहण करता है। विधवाओं के लिए यह अत्यन्त अपमानजनक और घराबाने के घावों को हरा करने वाली पद्धति है। महाभारत में तब यज्ञों को अन्तिम दशाव्दी में भी बाधकर ने इस प्रथा के विरुद्ध आदेशन किया। उनके लेखों से मराठा समाज में हर्षवर्धन मथ गयी। अब यह प्रथा धीरे-धीरे मिट रही है, किन्तु कट्टरपन्थी इसे बचावे रखने का पूरा प्रयत्न करते हैं। कुछ वर्ष पहले पंजरपुर के पुजारियों ने पिठोका की मूर्ति के चरणों में अक्षय्य करने से एक विधवा आश्रणीको इसलिए रोका कि उसको बाज भुंके हुए नहीं थे। इस पर वह मायका अदासत में गया और अवास्तव में विधवा के रक्त में रसना दिया।

आधुनिक युग में विधवाविवाह

विधवाओं की संख्या—वर्तमान युग में हिन्दू समाज में विधवाओं की संख्या बहुत अधिक एवं आसीध दृष्टि से घरोघर हाजिर है। १९३१ की जनगणना के अनुसार भारत में ५४,६६,६६० विधवाएँ थी। हिन्दुओं में एक हजार स्थितियों के पीछे १९६ विधवाएँ हैं। इनमें से एक सौबाई विधवाओं की आयु २० वर्ष से कम है। १९३१ की जनगणना में १ वर्ष से कम आयु की शिशुमूर्ती विधवाओं की संख्या १५१५ थी। १ से २, २ से ३, ३ से ४ वर्ष की नहों विधवाओं की संख्या क्रमशः १७०५, ३४६५ और ६०७६ थी। ५ से १० व १० से १५ वर्ष की १०५४=२ तथा १८३३६ बालिकाएँ वैवाह्य का कुछ मोम

^{१०} स्कन्द पुराण काशी खण्ड ४।७४—

विधवाकुरीग्रन्थो मर्त्यकण्ठाय जायते ।

गिरसो भयर्त्तस्मात् कर्म विधवाया तथा ॥

^{११} कावे—हिन्दुली ओक इतिहास, खण्ड २, भाग १, पृ० ३३२ ।

पहरी थी : जो आयु छौन-बूढ़ हो जाती है, दिन आयु में अभी पक्षि-भरती सम्पन्न का ज्ञान नहीं होती, जिन आयु तथा अल्प देकों की सर्वाकारण खानिवाजों का पियाह नहीं होता, उस आयु में हज्जों की संख्या में हज्जारी कृत्यायें विधिया हो जाती हैं और उन्हें बर्ष के मास पर जीवन भर कैदमा का जीवन विस्तार के विन्दु बाधित किया माना है। एक महीन वर्गस्थितियों में विचार की आयु छोपी हो रही है, इस कारण आज विद्यार्थियों की संख्या घटने लगी है।

ईस्वरचक्र विद्यासागर के प्रथम अंक— ईस्वरचक्र १८५६ को लार्ड ब्रिनिंगम बैटिक की आशा में भागत में गयी प्रथम चक्र कर दी गयी। इस आशा के बर्बरनी जगदीश बाने बानी गतिनी की गिता की आश भुक्त गयी, किन्तु इसके म्हास पर आजीवन निरन्तर गुप्तान बाने आशय वैधर्म्य की स्थिति प्रत्यक्षित हो उठी। मनी प्रथा में स्त्री भोंदे शस्त्र में ही सम्पन्न गमाय हो जाती थी, किन्तु वैधर्म्य-बलि उठे बीजन भर छिन्न-सिन्न करके खाली रहनी है। ईस्वरचक्र विद्यासागर के आशयवास में यह देखा था कि उनके गुप्त सम्पन्न बाधर्म्य के कृष्ण में एक आशिका के भाव बिकाह किया। वे मृत्यु में गले में पाक भद्रवाये बैठे थे, भोंदे स्थिति में वासिका को विधवा बनाकर बच गई। विद्यासागर की बाने कृष्ण की इस पटगा से गहरा क्षमका गया। उनसे गहरे घटापि लुप्यतागर के एक राजा के बर्बरप के विलोम से विधवा बिकाह की प्रवस्था भेधे का प्रयत्न किया, भीक क्षमक धनजी के इने प्रथमित किया, तयपि इस आश्वीसक को ईस्वरचक्र विद्यासागर की लक्ष्मीधनी में आजीवननी माया में मिले गये केशों से ही बच दिया। विधवा बिकाह की शास्त्रसम्मत सिद्ध करने के लिए, उन्होंने गारकों का सहारा सम्भन किया। बित बित उन्हें विधवा-बिकाह विधवा कण्ठर संहिता का प्रमाण मिला और उससे अर्थ की डीक संगति लगी, इस दिन रात भर ईस्वरचक्र विद्यासागर वलनी बकाया भिक्षाते रहे। उन्हें यह भूय गया कि कितनी रात भीत खुली है। सबेरे की ठण्डी हवा और छूय मित्रमने भर सब जगता लेक पूर्ण हुआ, सभी उन्होंने अपनी लेखनी को ब्रिहम दिया। १८५३ में विद्या-सागर के बसा-बिता की अनुमति से अपना विधवा बिकाह विधवा आशिका की प्रथम प्रकाशित किया। १८५५ में विनीतिनी द्वारा उठाय गये जातेगों का परिवार करते उन्होंने उठा प्रथम का विनीति संस्करण मिहाना। बंगाल का हिन्दू सत्ताय इस दम से खालना बिलुम्ब उठा। विद्यासागर को वास्तिक, क्रिस्तान आदि उपनिषदों से किमू-चित किया गया। गतिनी की बूब भीछार की गयी। खमकी मारने के भी कुछ असफल प्रयत्न हुए, किन्तु विद्यासागर इन बातों से जरा भी नहीं बचराये। विधवा बिकाह की शास्त्रसम्मत सिद्ध करने के भाव उन्होंने इने प्रथमित करने का प्रयत्न किया। किन्तु विधवा बिकाह के प्रथम में सबसे बड़ी अड़चन यह थी कि बिहवा के पुनर्विवाह के बाद उसके बच्चे लक्ष्मीन कामून के अनुसार पैतृक सम्पत्ति के अधिकारी नहीं समझे जा सकते थे। यह विद्यासागर ने इस अड़चन को दूर करने का प्रयत्न किया।

विधवा पुनर्विवाह कानून—इस कानूनी बाधा को दूर करने के लिए संसद के संसदीय प्रतिनिधित्व एवं प्रमुख सम्मेलनों के प्रतिनिधियों के साथ सरकार के पास एक आবেदन-पत्र भेजा गया। इसमें विधवा विवाह के निषेध को निन्दित, अस्वाभाविक तथा हिन्दू शास्त्रों के सर्वथा प्रतिकूल बनाने हुए, यह प्रार्थना की गयी थी कि सर्वोच्च हिन्दू कानून के अनुसार विधवा विवाहों में उत्पन्न बन्धनों को वैधक सम्पत्ति में संविन किया जा सकता है, अतः सरकार को यह प्राप्ति निःसन्देह की पूरा करने के लिए एक कानून बना दे। इस कानून द्वारा विधवा-विवाहों को वैध स्वीकार कर दिया गया। भारत सरकार के पास इस तरह के अनेक आवेदन-पत्र भेजे गये। कानून बनाने के द्वारा प्रदेन आन्दोलन हुआ। श्री ईश्वरचन्द्र के विधवा विवाह सम्बन्धी भीत हर जगह धाये जाने लगे। कोलकाता के लार्डजॉर्ज ने बहुमुख्य कानूनी के विचारों में विधवा विवाह के माने वन्दनर कानून बनाया। बांग्लादेश में इस आन्दोलन को असफल बनाने में कोई कोश-आराज शायद नहीं रही। उन्होंने सरकार के पास कानून के विरोध में हजारों पत्रिकाओं में हजार-हजार कारबाकर अनेक आवेदन-पत्र भेजे। जर्मन सरकार को कानून सर्वप्रथम पार के. पी. प्रोफ्ट ने अपनी वक्तुता में बताया था कि बिल के पास में ५००० धर्मियों के प्रस्तावों में ५५ आवेदन-पत्र आये, किन्तु विपक्ष में ५०-६० हजार धर्मियों के प्रस्तावों में ४० आवेदन पत्र थे। सरकार ने काफी के पहिलों में सम्पत्ति धारिणी। पहिलों ने अपनी सम्पत्ति विधवा विवाह के पक्ष में की। अन्त में ईश्वरचन्द्र विद्यासागर को यह प्रार्थना-मन सकल हुआ और २३ जुलाई १८५६ को विधवा पुनर्विवाह कानून (Widow Remarriage Act) पार गया।

इस बिल को उपस्थित करते हुए भारत सरकार के कानून सदस्य प्रोफ्ट ने कहा था कि सारी प्रथा को कानून द्वारा बन्द किया जा चुका है, उनके बाद विधवा विवाह की अनुमति देने वाला कानून अधिनियम प्रस्तुत प्राप्ति, यदि उन्हें यह निश्चय हो जाय कि इस कानून के पास होने में एक भी बाधिका बाधित बाधक के अवलोकन से सब सम्बन्धी, तो एक बाधिका के सिध भी इस कानून को पार करना चाहिए। यदि यह निश्चय हो जाय कि यह कानून पार होने पर भी सर्वथा निःसम्पत्ति ही रहेगा तो भी अवेधों के तीरस के सिध यह कानून पार होना उचित है।

कानून का स्वस्व—यह बात धार्यों का एक छोटा-सा कानून है। इसकी प्रुथिका में कहा गया है कि इस कानून का उद्देश्य विधवा-विवाह को वैध बनाना है। अतः समिध्य में कोई विधवा-विवाह या उसके उत्पन्न कन्ताम ताजापत्र नहीं समझी जायेगी (धारा १)। पुनर्विवाह करने वाली विधवा को अपने पहले पति की सम्पत्ति में कोई अधिकार नहीं होगा। पुनर्विवाह के साथ पहले पति के बन्धनों के संरक्षण का अधिकार विधवा से छीना जा सकता है, बल्कि कि पति उसे वसीयत द्वारा यह अधिकार दे दे गया हो। सम्मानरहित विधवा यदि इस कानून के पास होने से पहले जायदाद वाले

की अधिकारिणी नहीं थी तो अब भी वह उस आश्रय को पाने को हक्काद नहीं होती। साधारण विवाह को अत्यन्त इतरने के लिए जो विधियाँ हैं, वही पुनर्विवाह को भी बाधक बनायेगी (धारा ६) नाबालिग विधवा अपने पिता या अन्य सम्बन्धीयों से पूछ कर ही पुनर्विवाह कर सकती है (धारा ७)।

कानून की क्षमिती—इस कानून की दूसरी श्रार विवेक प्रकट करती है। इसके अनुसार विधवा पुनर्विवाह करने पर पति की सम्पत्ति में अपना स्वत्व को बेटी है। इस धारा ने इस कानून के उद्देश्य को बहुत कुछ विकल कर दिया है। विधवा के लिए पति के घर जाने पर उनकी सम्पत्ति ही कुछ सम्बलम्ब हो सकती है और वह सम्पत्ति उनके पास नहीं तथा वह शकती है जब तक वह पुनर्विवाह नहीं करती। अतः इस धारा का प्रभाव यह हुआ है कि इस कानून ने विधवा-विवाह को बहुत कम प्रोत्साहन दिया है।

संसार में विधवा विवाह आन्दोलन—विधवा विवाह की कानूनी व्यवस्था गुरु होने के बाद विधवा-विवाहों के लिए प्रयत्न शुरू हुए।^१ व्यर्थक कानून पास होने के ३ महीने के भीतर ही ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने एशियाटिक सोसायटी का एक विधवा के साथ ७ दिसम्बर १८५६ को संसार में पहला विवाह कराया। इस विवाह को देखने के लिए इतनी भीड़ हुई कि पुलिस को प्रवृत्त करना पड़ा। इससे बाद अनेक विधवा-विवाह हुए। विद्यासागर उन विवाहों में बहुत उत्साह के साथ भागे थे। उनके पुत्र ने भी विधवा-विवाह किया। उन्होंने वर्ष १८७० से अधिक विधवा-विवाह कराये और कन्याओं को आश्रयों से अलग करने के दान करते-करते वे स्वयं एक निर्धन हो गये। उनके अन्तिम दिन बड़ी दरिद्रता में बटे, किन्तु विद्यासागर को अपनी दरिद्रता का दाना दुःख नहीं था जितना अपने देवदासियों की भूखता और अज्ञा का। कानून द्वारा विधवा-विवाह को बंध हो जाने पर भी सांकाचार एवं आजीवन कष्टों में प्रवृत्त होने के कारण लोगों ने विधवा विवाह नहीं किये। ईश्वरचन्द्र विद्यासागर की इच्छा अन्यायक केदना होती थी। यह केवल उनकी विधवा-विवाह विषयक पुस्तक के अन्तिम भाग में अपनी-आति व्यक्त हुई है।

इसमें उन्होंने यह लिखा था—“किस्सेचित् कुसंस्कारों के बलीभूत एवं देशाचार के दाग भारतीयों को बुद्धि और धर्म प्रभृति ऐसी कमपुष्टि हो गयी है कि सामाजी विधवाओं की पुर्वता पर उनके हृदयों में काव्य का संसार होता कठिन है। देश में व्यभिचार और भ्रमहत्या का प्रचलन प्रकाश देख कर भी सुन्दर हृदयों में उस पर चूना होना सम्भव है। तुम प्राणधारी कन्याओं को वैश्य की कार्य में अजाने के लिए राजी हो, वे अनेक इन्द्रियों के बलीभूत हो व्यभिचार दोष से दूषित हो तो उन्हें तुम्हें क्या

^१ एशियाटिक सोस के ‘ईश्वरचन्द्र विद्यासागर’ में इनका विस्तृत वर्णन दिया गया है।

नहीं आयेगी। विधवे के पुत्रों में दया नहीं है, धर्म नहीं है, न्याय-अन्याय का विचार नहीं है, शिष्टाचार की चेतना नहीं है, जो सौकाचार की रक्षा का प्रधानकार्य और पण्य कार्य मानते हैं, वे ईश्वर, अथवा विष्णु का ऐसे देश में पैदा हो मत करो। हा अबपाशी, गुप्त विद्रोह के कारण भ्रातृत्वों में अन्त बहक चली हो।" १८२१ के चर्पते प्रयत्नों में असफल एवं निराश होकर ईश्वरचन्द्र विशन्माधन ने अन्तर्-धार्मिक जीवन को मजबूत किया। इसके ३५ वर्ष बाद बंगाल के दुर्गम सातगुहा में सूर्यन्दनाथ बनर्जी ने अपनी आत्मिका में ईश्वरचन्द्र के प्रान्तों की अनुकूलता रखी। ४२ वर्ष के उम्र यह विद्रोह कि हिन्दू विधवा की स्थिति आज १८२४ में भी जारी है जो आज में ५० वर्ष पहले भी।

भारत के अन्य प्रांतों में भी ईश्वरचन्द्र विशन्माधन की पॉलि अनेक गमायतुधारकों ने विधवा विवाह को प्रकाश प्रदानित करने का धर्मिक प्रयत्न किया। इनमें महाशय के विष्णु चरणगुप्त पंडित (१८२३-७६), मांगान हार्देममन, महादेव चोपिन रामारे, पारसी सज्जन और अहमदजी मण्डानी के नाम उल्लेखनीय हैं। उत्तर भारत में महर्षि दयानन्द द्वारा स्थापित आर्य समाज ने नया सार संपादन की विधवा-विवाह सहायक सभा ने इस विषय में बहुत कार्य किया है। फिर भी अभी तक प्राचीन कठिनी एवं विस्वासी के कारण उपर्युक्त कानून बन जाने पर भी विधवाओं के पुनर्विवाह समाज में बहुत कम होते हैं, उनकी दशा सुख की सीमा दलीय है। एक साधुनिक महिला के शब्दों में—“विधवा का समाज में कोई स्थान नहीं है। दुर्गम जमाने में वह धार्मिक रूप से खरी हुआ करती थी, जब वह मनोवैज्ञानिक रूप से खरी है। आज की साधुनिक परिवारों में वह विवाहादि के बाबोद-अधोद वाले पारिवारिक संस्कारों से अहिष्कृत की जाती है। पति के घर में एक बाल बन्नी खरी है, उसके जीवन, बीड़ा व्यवहार किया जाता है। उसे कुछ सहाय्युक्ति मिलती है, किन्तु वह अधिक नहीं होती है। उसे श्रम, पति की मृत्यु का कारण समझा जाता है।” १० हिन्दू परिवार में कदा समय तक विधवा की समस्या नहीं खेती जब तक विधवा के सम्बन्ध में अवशिष्ट वर्तमान कठिनी और अहिष्कृतियों का उन्मूलन नहीं हो जाता है।

१०. भार्गव कोर्लक—की हिन्दू धर्म, पाण्डेय संस्कार १८६१, पृ. १६४

सती प्रथा तथा नियोग

ऐतिहासिक विकास की तीन अवस्थाएं

आज से १५० वर्ष पहले सती^१ प्रथा हिन्दू समाज की सर्वमान्य व्यवस्था थी। पतिव्रता हिन्दू नारियाँ पति की मृत्यु पर उसकी चिता पर उसके साथ अग्नि में बड़े गौरव और गर्व भाव अनुभव करती थीं, इसे उस समय समाजतन्त्र शास्त्र से पनी माने वाली व्यवस्था समझा जाता था। किन्तु यह मात्र ऐतिहासिक दृष्टि से सत्य नहीं है। वैदिक युग में इसे इस प्रथा की सत्ता का कोई प्रमाण नहीं मिलता है। मनुना हिन्दू समाज में इसका विकास कई क्रमिक चरणों में से होकर गुजरा है। पहली बात वैदिक युग से २०० ई० पू० तक की है। इस समय प्रायः वे इसकी सत्ता के कोई प्रमाण नहीं उपलब्ध होते हैं। दूसरी बात २०० ई० पू० से ७०० ई० तक की है। इस समय इसका विकास मनी-मनी होने लगा, पहले यह प्रथा अत्रिओं में प्रचलित हुई, समाज के अन्य वर्गों ने जलियों से इसे ग्रहण किया। इस समय कुछ विचारकों ने सती प्रथा का विरोध भी किया। तीसरी बात ७०० से १८२५ ई० तक की। इस समय धर्मशास्त्रकार इसका प्रयत्न समर्थन करने लगे, सती प्रथा का हिन्दू समाज में व्यापक रूप से प्रचार हुआ, कई बार स्त्रियों को अनवरसती चिता पर बढ़ने के लिए बाधित किया जाने लगा। कुछ विशेष कारणों से संसार में इसका विशेष विकास हुआ। यही विभिन्न युगों में सती प्रथा के विकास पर प्रकाश डाला जायेगा।

- १ सती का भूमि सम्बन्ध उत्तम स्त्री है। मध्यकाल में सती का सर्वोत्तम धर्म पति की चिता पर अज्ञाना समझा गया, अतः इस प्रकार देहत्याग करने वाली स्त्रियों को सती कहा जाने लगा। इसकी संस्कृत में सप्तमरथ, सप्तगमन या सप्तारोहण (मृतपति की चिता पर चढ़ना) कहा जाता है, किन्तु अनुमरथ तब होता है जब पति किसी अन्य स्त्राव पर चढ़ता है और वही सती विद्या जाता है और विधवा उसने किसी विद्वान् पात्रका भावि के साथ अथवा उसकी वधवा के साथ पुनः कथ से सती होती है (अपराध, पृ० ११९)।

वैदिक युग में सती प्रथा का अभाव

विशाल वैदिक ऋग्वेद में सती प्रथा का कोई संकेत नहीं है। यह साहित्य बृद्ध के आधिपत्य के समय—ई. टी. ज. ई. १००० तक विकसित हो चुका था। इसके बाद विश्व-विद्वत् क्षत्रिय जाति गुरुकुलों (६०० ई. पू. से ३०० ई. पू.) में विभिन्न संस्कारों तथा विविधविधानों का विस्तृत प्रलेख है। यदि सभी प्रथा उस समय प्रचलित होतीं तो बृद्ध-कुलों के मरणांतर विधि-विधानों में इसका अवकाश प्रलेख होता, किन्तु हमें कोई ऐसा वर्णन नहीं मिलता। अतः हमारे प्रतिष्ठित आश्वलायन श्रौतसूत्र (४।२।१८) की मरणांतर श्रद्धाविधि में ■■■ अवस्था मिलती है कि शिरसा स्त्री की गर्भिणी की धिता से उसका गर्भस्थानीय बच्चा, शिरस या कूर्च की तरफ उठाने, यह प्रथा प्रातः की जाती है कि विधवा और उसकी संवत्सी गृहीतृ एवं समुद्र की कन्या अर्पण करें। अथर्ववेद (१५।२।१) के श्रद्धाविधि के मंत्रों में विधवा के लिए इसी प्रकार के धन-समाधि और मरणांतर की प्रार्थना की जाती है।

पिछली शताब्दी में जब राजा राममोहन राय ने सती प्रथा के उन्मूलन में विश्व प्रसक्त आन्दोलन किया, तो सती प्रथा के सम्बंध में श्रद्धाविधि में के प्रमुखत्व में भी प्रजापति के आधार पर इसे वैदिक अवस्था सिद्ध करने का प्रयत्न किया। किन्तु वे सर्वोत्तम विमर्शनीय नहीं प्रतीत होते हैं। पहला प्रमाण ऋग्वेद के मरणांतर (१०।१५।४) का है। इसके अठारहवें सूक्त के पादमें वस्त्र में लपेटा गया है कि वह जा रहा था अर्थात् से पहले अथवा मरित। उस घर की स्त्रियों, इसमें सभी प्रथा का कोई वर्णन नहीं है। किन्तु इस मंत्र के अन्त में 'आरोहन्तु जगदी धर्मिणी' का वाक्य है, तथापि ये श्रद्धा के प्रमणालो द्युतयम में इसमें 'अग्ने' के स्थान पर 'समे' का वाक्य आता तथा इस मंत्र के प्रतिपूर्ण वाक्य के आधार पर विधवा स्त्री द्वारा गर्भिणी की धिता पर आरोहण के प्रकार-वार को वैदिक विधि सिद्ध करने का प्रयत्न किया।^१ वस्तुतः हम मंत्र में अधिपत्य का प्रलेख ठीक नहीं है और यह मंत्र वैदिक युग में सती प्रथा के प्रचलन की भिन्न नहीं कर सकता है। दूसरा प्रमाण आश्वलायन श्रौतसूत्र के ८८ वे अनुब्रान्त में और औपपायायी की इतिहास में उद्धृत की गयी एक ऐसी प्रार्थना है, जिसमें विधवा श्रद्धा-विधता से यह प्रार्थना करती है कि वह प्रति की मृत्यु के बाद उसका अनुप्रापन करती हुई धिता पर बहुत अथवा परमममनसता का प्राप्त करना चाहती है, अग्नि देवता उसे इस मंत्र का प्राप्त करने की शक्ति प्रदान करें।^२ किन्तु तारावर्णीय श्रौतसूत्रांशप्रतिपद

^१ अ. १०।१५।४ इसा आरोहन्तु जगदी धर्मिणी सविता सं विश्वम् ।

अन्यको अमनीयाः सुरता आरोहन्तु जगदी धर्मिणी ॥

इसमें अग्ने ही शब्द पाठ है, समे नहीं।

^२ मन्त्रे जगदी धर्मिणी सविता सं विश्वम् अग्नि देवता सं विश्वम् ।

वैदिक युग को नहीं, अपितु उसके बहुत बाद का सिद्धा नया धर्म है। हर्ष वाक्यमन्त्र शीघ्र शाखा नहीं मिलती है। अतः इस मन्त्र के आधार पर वैदिक युग में सती प्रथा की सत्ता सिद्ध करना युक्तियुक्त नहीं मानी जाती है।

वैदिक युग में इस प्रथा का संघात माना कठिन: कुछ आधुनिकमन्त्र है। मुद्रादि वर्णन भिन्नान् भावर ने यह बताया है कि पुरानी ग्राम्य जातियों में सती प्रथा का प्रचलन था।^४ किन्तु भारत के भागों में तथा उनके वैदिक साहित्य में इस प्रथा की सत्ता सूचित करने वाले कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं होते हैं। संभवतः इसका कारण वैदिक धर्म और संस्कृति का उच्चतम विकास था। श्री अल्लोकर के शब्दों में वैदिक ग्राम्यों में इस समय तक ऐसे कबारा दुष्टकोण का विकास कर लिया था ॥ के सती

- ४ आह्वय—प्रतिस्वारिक एन्डोविशियल ऑफ़ दी आर्यन पीपल, (१८६०) पृ० १६१; ईन्डोविशियल ऑफ़ डेवलयमेन्ट ऑफ़ भारत आर्किवालय (१६०१) खण्ड १, पृ० ४७२-४७६, पोन्नर—मोहन और सरोरी, खण्ड ४, पृ० २५५-२५६। इन दोनों में दिये हुए उदाहरणों से यह स्पष्ट है कि इस प्रथा का प्रसार प्राचीन काल में यूरप तथा एशिया के विभिन्न देशों में था। सरोरी ने सती प्रथा की शीघ्र में यूरप में फैलने वाली दृष्टान्तिक जातियों के अन्तर्गत करती थी। जिस ने स्वयंसेविका तथा राज्यन के स्वायत्तता में इस प्रथा के उदाहरण दिये हैं। हिराबोद्ध ने मूलान की स्वयंसेविका जातियों के बारे में लिखा है कि पति की मृत्यु पर उनकी स्त्रियों में स्वयंसेविका की कि भीमती स्त्री जलती प्रियतम जलती है ताकि पति की समाधि पर उसे नारा न हो। हिराबोद्ध (४७१) ने सीधियन या थाक राजाओं के एक रिवाज का उल्लेख करते हुए लिखा है कि इनकी मृत्यु पर इनकी समाधि पर शयनोक्त में जीवन के लिए आवश्यक इनकी स्त्रियों, भीमती तथा भोगों की भारता जाता था। मोनियर विलियम्स (इंडियन सिविलिजेशन, पृ० २५५ की पाठ टिप्पणी) ने कहा है कि भारत के हिन्दुओं में यह प्रथा मध्य एशिया के शकों के सम्पर्क से आयी। प्राचीन जिली लोगों में इस प्रथा की सत्ता चीन में प्रचलित होती है। यहां १५ वें राजवंश के समय में राजा की प्रिय स्त्रियां या सी स्वयंसेविका आत्महत्या करती थीं, या उन्हें गला भीतकर या बाहर बेकर मारा जाता था ताकि वे परलोक में पति के पास पहुँचें और उसकी सेवा करें। जीबुट ने लिखा है कि चीन में जिनका के धर्मविश्वास की मृत्यु समझा जाता था, पति की मृत्यु पर आत्महत्या करने वाली स्त्रियों के स्मरण स्मृति के माध्यम से बनाये जाते थे। काफ़ी ने लिखा है कि जाति शीघ्र में एक राजा के मरने पर जलती सब स्त्रियां और रत्नों उनके साथ सती होती हैं, कई बार इनकी संख्या ही से ऊपर पहुँच जाती है।

प्रथा को सर्वत्र समझने लगे थे। इसके अतिरिक्त आकांक्षा होने के कारण भारत में उन्नीसवीं सदी तक भी, अपना राजनीतिक प्रभुत्व सुदृढ़ करने के लिए अपनी जनसंख्या बढ़ाने के लिए जति मानव्यक था। इस दशा में विद्यवाओं को जनमानों की अपेक्षा यह अधिक मालूम था कि विद्यवाओं को जीवित रखा जाए, पुनर्विवाह तथा विधवाओं द्वारा अपने सम्मानोत्पादन कराकर जनसंख्या में वृद्धि की जाए।^४

वैधिया साहित्य के बाद विकसित होने वाले बौद्ध साहित्य में हमें सर्वप्रथम का एक ही संकेत नहीं मिलता है। इसके बाद मंगलमयी और कोटिम्बने भी इसका कोई वर्णन नहीं किया है। प्रथम मुख्य तथा मनु, पातञ्जल्य आदि भारतीय स्मृतिकार उन्नीसवीं तक कोई उल्लेख नहीं करते हैं।^५

सत्री प्रथा की पहली घटना

भारत में सत्री प्रथा का संभवतः पहला ऐतिहासिक उल्लेख ३१६ ई० पू० की एक घटना में मिलता है। यह युवावी सेनापति अर्द्धांगनस के विरुद्ध लड़ने वाले भारतीय सेनापति कोटिपात (Kolapa) के युद्ध में मारे जाने पर उग्रवी छांटो पत्नी का विवाहोत्सव है। युवावी विवरणों से अनुसार भारतीय सेनापति की दो पत्नियाँ थीं, अधिक सामुदायी बड़ी पत्नी की शासन थी, किन्तु कम आय वाली छांटो पत्नी की कोई सहाय नहीं थी। पति के मरण पर दोनों सत्री होना चाहती थीं। किन्तु युवावी सेनापति ने समझा होने के कारण बड़ी पत्नी का विवाह पर लड़ने की अनुमति नहीं दी। युवावी संवर्धन में छांटो पत्नी के विवाहोत्सव का बड़ा रोक्का बुलाया सिखा है कि किस प्रकार उग्रवी छोटा भाई को विवाह में गया और वह अग्रणी भी उपासकों से बच होने पर भी मुक्तपत्नी रही और प्रसन्न बनी रही। आख युवावी लेखकों ने पञ्चाङ्ग की कठ (Kathina) काष्ठ में इस प्रथा के प्रचलन का उल्लेख किया है।^६ इन उल्लेखों से यह सूचित होता है कि सत्री प्रथा का प्रचलन इन्दी-विनी जातियों तक ही सीमित था। सिक्खर को पञ्चाङ्ग में पञ्चाङ्ग पर विभिन्न भारतीय राज्यों के साथ संबंध करना पड़ा था। इसमें अनेक भारतीय सेनापति और सैनिक मारे गये थे। किन्तु इनके

^४ अस्तोकर—वी पोर्जीराम और वुर्नल इन हिन्दू सिमिलिटीज, पृ० २१५

^५ ग्रन्थियों में केवल विष्णु (२५।१४) ने इसका उल्लेख करते हुए कहा है कि विद्यवा अपने पति की मृत्यु पर भा हो बह्मचर्य अत का पालन करती थी लक्ष्मी अक्षयी विवाह पर लड़ जाती थी।

^६ सूत्रों १५।१।३० तथा १२, इस लेखक ने यह भी लिखा है कि भारत में इस प्रथा का विकास इस आशय से हुआ कि दलितों अपने पतिपत्नी को छोड़ देगे या अन्य विध दे देंगी।

साथ इनकी पत्नियाँ के सती होने के केवल उपर्युक्त इनेंगेने दृष्टान्त यह सूचित करते हैं कि उस समय इस प्रथा का व्यापक रूप से प्रचलन नहीं था।

ऐसा प्रतीत होता है कि चौथी सती ई० पू० में कुछ प्रसिद्ध कृषकों में सती प्रथा प्रचलित होने लगी थी। रामायण में सती प्रथा का एक ही दृष्टान्त वेदवती की कथा (७।१७।१४) है। यह उत्तरकाल में होने के कारण मूल रामायण का भाव नहीं प्रतीत होता है। रामायण में इन्द्रधनु की मृत्यु होने पर उषाकी कोई पत्नी उसके साथ सती नहीं हुई। महाभारत में सती प्रथा के इनेंगेने उदाहरण मिलते हैं। इनमें सबसे प्रसिद्ध माद्री का पाण्डु की चिता पर आरोहण है (१।१३०)। किन्तु इस संबंध में यह स्मरण रखना चाहिए कि सब अधिमुनि माद्री को इस कार्य में रोकने का प्रयत्न करते हैं। किन्तु माद्री उनको मान न मानने के तीन कारण बताती है। पहला कारण यह है कि वह पाण्डु की अकांक्ष मृत्यु का अपने आपकी मामली है और इसके प्रायश्चित्त स्वयं भूमि-रोहण करना चाहती है। दूसरा कारण अपनी नायवासना पर निश्चयन न कर सकना तथा तीसरा कारण सब पुरुषों से समान व्यवहार न कर सकना है (१।१३०।७१)। इससे स्पष्ट है कि उस समय तक अहनर्ण को धार्मिक महत्त्व नहीं प्राप्त हुआ था। महाभारत में वृष्णि-उदाहरण कृष्ण की मृत्यु का समाचार जाने पर उनकी पंच पत्नियों कर्मिणी, भीष्मा, धाम्यवती आदि का चितारोहण है, किन्तु सत्यनामा चित्रा कर न चढ़कर सपत्न्या करने के लिए धन में भी माद्री है (महाभारत १६।७।१०)। इसी प्रकार में, भीमसेन एवं मेघदूत की चार पत्नियों—देवकी, माता, रोहिणी और मदिरा के सती होने का वर्णन है (१६।७।१० कि० विष्णुपुराण ५।३०२)।

किन्तु इन तीनों के उदाहरणों के अतिरिक्त महाभारत में पति की मृत्यु पर सती न होने वाली स्त्रियों के उदाहरणों की संख्या बहुत अधिक है। अधिमन्यु, यदोत्कच और होयाचार्य की पत्नियाँ सती नहीं हुईं। शायदों में यदुदेव की चार पत्नियों के सती होने का उल्लेख है, किन्तु इनके साथ ही पादकों की हज़ारों विधवाओं का धर्जुन के साथ हस्तिनापुर आने का वर्णन है। महाभारत का कुछ समाप्त होने पर इसमें कीराति प्राप्त पत्नियों के लिए स्त्रीपर्व में दैत्यों विधवाएँ विस्थाप कर दी हैं, किन्तु इनमें से एक भी स्त्री सती नहीं होती है।

३०० ई० पू० से हिन्दू समाज में सती प्रथा के कुछ अधिक उदाहरण मिलने लगते हैं। शास्त्रायन, भाष, काशियार और मुद्रक अपनी रचनाओं में भी प्रथा का उल्लेख करते हैं। काशियार के कुमारसम्भव में कामदेव के मरने हो जाने पर उसकी पत्नी रति उसके साथ सती होना चाहती है, किन्तु दैवी शक्ति उसे ऐसा करने से रोक देती है। कामसूत्र (२।२।१३) में शास्त्रायन यह बताता है कि किसी प्रकार यदकिणी प्रेमियों का दिन जीतने के लिए उन्हें यह मूढ़ा आस्थाशन देती है, कि वे उनके साथ सती हो जायेंगी। भाष इतयदोत्कच और उग्रभय नामक नाटकों में महाभारत के कर्मों के

सर्वथा विपरीत उद्देश, दुःखसा और पीछी के अभिमान, जयद्वय और दुर्विजय की विता पर लगी होने का वर्णन करता है। मृच्छकटिक में भास्कर की पत्नी पति के प्राणरक्षा का समाचार मिलने पर विदारोद्धम का संकल्प करती है। अश्वत्थामिना (२४। १६) लगी होने वाली स्त्रियों के साहस को प्रशंसा करती है। गुप्त युग में लगी प्रथा का ऐतिहासिक उदाहरण ५१० ई० में तुर्कों के विरुद्ध लड़ते हुए दिगम्बर हिंदू भाग्य मेनगरानि भोपराम के साथ उसकी पत्नी के लगी होने का है (फ्लीट नं० ३ पृ० १३)। ६०६ ई० में प्रभाकरवर्द्धन को मूल्य के समय उसकी पत्नी वसोवती जिना पर बकस लगी हुई (हर्षचरित उच्छा २)।

गुप्त युग के स्मृतिकारों के विचारों में गर्भवलेक आने लगा और वे लगी प्रथा का खलवण करने लगे। गुराने स्मृतिकारों में अनु में विवाह को अभिषेक समर्थ मानने हुए विवाह के लिए आजीवन ब्रह्मचर्य का ही व्यवस्था की थी (५। १२३)। किन्तु गुप्तयुग के स्मृतिकार विवाह के लिए ब्रह्मचर्य का आचरण मानते हुए भी द्वितीय विवाह के रूप में छलके लगी होने का वर्णन करने लगते हैं। पुरुष्मति (विवाहसूत्राकर, पृ० ४४५), पराशर (५। २९। १८) ऐसे ही स्मृतिकार हैं। अमिशुराज (२६१। २९) ने विवाह पर अपने वाली लगी द्वारा स्पर्श आने का वर्णन किया।

लगी प्रथा का विरोध

किन्तु इस समय कुछ शास्त्रकारों और विचारकों ने लगी प्रथा का प्रबल विरोध किया, [३] इसे शास्त्रहीनता का महापाप और निर्वर्ण्य कार्य समझते हैं। मनुस्मृति के सुप्रसिद्ध टीकाकार मेघातिथि (५१५३) यह कहा कि अतिराकृति लगी प्रथा का विधान करती है किन्तु यह शास्त्रहीनता का निषेध करने वाले वैदिक धर्मों का विरोधी है। इस विषय में मेघातिथि ने अनेकानेक का उदाहरण दिया है। यह अपने अनु को मन्द करने की एक धार्मिक विधि है। जिस प्रकार श्वेन या श्वेन अनेक प्रकार पर जपकर उत्तम लक्ष्मण स्नान कर देता है उसी प्रकार शत्रु का विजय करने के लिए श्वेनभाग की विधि होती है। केन में कहा गया है—‘श्वेनभागिचरन् मनेत्’। किन्तु वैदिक विधि हीन हुए भी जिस प्रकार श्वेनभाग को लक्ष्मीदुष्टि से नहीं देखा जाता है, जैसा धर्म नहीं, अतएव अर्थ माना जाता है (जैमिनि १। १। २ पर अथर भाष्य), उसी प्रकार अतिराकृति अनुमोक्षित लगी प्रथा अर्थ है, क्योंकि वह देश के इस धर्म के विरुद्ध है कि ‘अथ नरक भयं न हीत आयं तत्र तर्कं किंसी को यह लंका नहीं छोड़ना चाहिए।’^{१८} विराट का यह कहना है कि

* किन्तु मिताक्षरा ने दाख० (१। १८६) मेघातिथि के तर्क का विरोध करते हुए कहा है—‘श्वेनभाग वास्तव में अनुचित है अतः अर्थहीन है, क्योंकि उत्तम उत्तम पुनरे को मन्द में प्रत्यक्ष है, किन्तु अनुमोक्षित नहीं है।’ ‘यहां इसका कम स्वयं प्रस्थि

विधवा जीवित रहते विविध प्रकार के धार्मिक कर्मों से प्रति पाप कल्याण कर सकती है, किन्तु जब यह चिन्ता पर चढ़ती है तो जलसाहसा के पाप की ओर ही होती है। १९ वीं सताब्दी के एक निबन्धकार देबेन्ना सट्ट ने (स्मृति-विमर्शिका व्यवहारकाण्ड, पृ० ५६५) में इसका घोर विरोध करते हुए यह कहा कि सती होना विधवा के उद्धारपारिणी रहने की अपेक्षा बड़ा अशुभ कार्य है।

इस प्रथा का अंतिम विरोध दाण ने काश्मिरी (पूर्वार्ध पृ० ३०५) में किया है। उसका भट्ट कहता है कि पति की मृत्यु के बाद सती होना (अनुमरण) बड़ा निष्फल कार्य है, इसे पूर्ण भोग ही करते हैं। यह कार्य मोक्ष के प्रथा प्रत्यक्षीय में किया जाता है, इससे मृत व्यक्ति को लाभ नहीं होता, इससे उसे स्वर्गलोक नहीं प्राप्त होता और यदि उसे अपने कर्मों के अनुसार नरक में जाना है तो सहमरण से वहाँ वह जाने से नहीं बच सकता है। सती न होने से मरने पर वह कर्मों के अनुसार परलोक में उत्तम स्थान प्राप्त करती है, किन्तु सती होने वाली स्त्री सात्वतहृत्वा पाप के कारण नरक में जाती है। यदि वह जीवित रहे तो उत्तम कर्म करके अपने को लाभ पहुँचा सकती है। पति के प्राण मर जाने पर वह न तो अपने को और न ही पति को कोई लाभ पहुँचाती है।

बाबू द्वारा सती प्रथा की उपर्युक्त बड़ी निन्दा का समर्थन शान्तिनिकों ने भी किया। वे भारी को देवी भगवती का अवतार समझते थे। महाविमर्शसूत्र (१०७६) में स्पष्ट शब्दों में यह घोषणा की कि सोहृत्वा पति की हित पर चढ़ने वाली स्त्री नरक-वासिनी होती है (सोहृद् समुचितारोहाद् भवेन्नरयामिनी)।

उपर्युक्त विरोधों के बावजूद ७०० ई० के बाद के सांसेकार सती प्रथा का प्रबल समर्थन करते सगे और इसकी महिमा और गौरव का उद्घाटन बड़ी आलांकारिक भाषा में करते सगे। अगिरा ने मनु के उपर्युक्त अध्याय (५।१६७) के सर्वथा विपरीत यह कहा कि पति की मृत्यु होने पर दाक्षी स्त्रियों के लिए अग्नि में अन्न मरने (संनिपत्य) के अतिरिक्त कोई दूसरा धर्म नहीं है (अपराधं पात्र० १।५७ पर)। हारीत के महा-

ह्वी की उचित मान्य जाता है और भुक्तिप्रमत्त है। इसी प्रकार अनुगमन के संश्लेष में स्मृति श्रुति के विच्छेद नहीं है, यहाँ उसका अर्थ है—सिद्धि की रक्षा के आशय के लिए अपने जीवन का कुसंयोग नहीं करना चाहिए, क्योंकि स्त्री अनुगमन द्वारा स्वर्ग की इच्छा करती है अतः वह श्रुतिवाक्य के विरोध में नहीं जाती है। यह तर्क इस बात का सुन्दर उदाहरण है कि सातों के स्वाध्यायकार एक ही श्रुति-वाक्य से अपने समर्थ को व्यवस्था के अनुकूल अर्थ को अपने वृत्तिकीयता से किस प्रकार निकाला करते थे। अथर्वसूत्र (पृ० १११), मदनपारिजात (पृ० १६६), पराशरब्राह्मण्य (भाग १ पृ० ५३-५५) ने सितारार का तर्क स्वीकार किया है।

भूतार सती होने वाली स्त्री अपने हस्त कायों से इतना धूम्र उपार्जन करती है कि वह अपने पति का उसके भीषणतम महाकायों से उद्धार कर लेती है। पराधर स्मृति (४।३२-३३) में कहा गया है कि पति की मृत्यु के बाद सती होने वाली स्त्री ३५ करोड़ वर्ष तक स्वर्ग में निवास करती है। जैसे सपेरा लाभ को बिल में से भक्षणपूर्वक निष्कास करता है, वैसे ही सती होने वाली स्त्री मरक से पति का उद्धार करती है और उससे लाभ स्वर्गलोक में आनन्दपूर्वक ग्रहणी है। (मन्वन्तराण, ब्रह्मसंहिता, ब्रह्मसंहिता ७।५५)।

कश्मीर में सती प्रथा की उदाहरण

शास्त्रकारों द्वारा सती प्रथा के प्रथम सम्पर्क से इसका प्रचलन बढ़ने लगा। ७००-११०० ई० में इससे अधिक उदाहरण उत्तर भारत में, विशेष रूप से कश्मीर में मिलते हैं। कल्हण के राजतरंगिणी (८।१६६) में दश वर भक्तवर्ध प्रकट किया है कि राजा उज्ज्वल की जयमती जी की भूमिका निम्नलिखित थी कि राजा उज्ज्वल की जयमती जी की भूमिका निम्नलिखित थी। कश्मीर में राजा के भरण पर न केवल उसकी स्त्रिया, अपितु माता, बहिन आदि भाग्य संबंधी (१।१३८०, ८।१४४८, ७।१४४९), ज्योती, लीला-वाकर (५।२६६, ७।४४९, ७।४५०, ८।१४४७) भी बिताये हुए करते थे। कल्हण ने गुप्तसद की मृत्यु पर प्रेमवश उसकी किन्नी द्वारा उसकी पिठा में कर्पण का वर्णन किया है (७।१४४९)। ११०० ई० में कश्मीर में बिबो गर्व काकाचिन्नाकर की बहू काहानियाँ में सती प्रथा का उल्लेख है। श्री अस्लेकर (प्राचीनता आरंभ पु० १२३) ने यह कारण बताया है कि कश्मीर में सती प्रथा के अधिक प्रसार का कारण संभवतः यह था कि इसका समर्थन मध्य एशिया के या भीर गिरांडूत के मतानुसार एशिया के जनों में सती प्रथा का प्रचलन बहुत अधिक था।

शिलालेखों की साक्षी

सतीप्रथा के विषय में शिलालेखों की साक्षी बड़ी महत्वपूर्ण है। राजस्थान के शिलालेखों से पता चलता है कि १३०० ई० के बाद से इस प्रथा का प्रचलन बहुत बढ़ गया। १२००-१६०० ई० के बीच में सती होने के बीच उदाहरण मिलते हैं, किन्तु इससे पहले कास में बहुत कम शिलालेख इसका निर्देश करते हैं (अस्लेकर—पृ० ५०, ५०-१३०)। इस विषय में सबसे पहला उल्लेख ८४२ ई० में बालुमान राजा जयसिंह के पत्नी के सती होने का है। ८६० ई० में बटियाणा में सम्राटसदेवी सती हुई। एक शिलालेख में चेदिराज जयसिंह के प्रसाद के बटमून में अपनी १०० पत्नियों को साथ मुर्तिल पाने का वर्णन है (एपि० ६०, बं० १२, पृष्ठ २११)। यह संभवतः सती प्रथा का सही, अपितु प्रथा के संगम में बूझ कर मुक्ति पाने का वर्णन है। १३०० ई० के बाद से हमें उत्तर भारत के, विशेषतः राजपूताने के अधिव राजपरिवारों में सती प्रथा के बहुत

उदाहरण मिलते हैं। मध्य युग में राजपूताना में राजा के घरों पर संसारी सम्मानहीन सभी विधवाएँ सती होती थीं, कई बार इनकी संख्या बहुत अधिक होती थी। टॉड ने लिखा है (एगलस, खण्ड २, पृ. २३७) कि मारवाड़ में १७२४ में राजा अजोतसिंह की मृत्यु पर ६४ रानियाँ जलती धिता पर चढ़ी, मुन्दी के राजा बुरसिंह की मृत्यु पर २४ स्त्रियाँ सती हुईं। मयुरा के नामक राजाओं में भी ऐसी स्थिति थी। १६११ तथा १६२० में भी राजाओं की मृत्यु पर ४०० तथा ७०० स्त्रियाँ धिता पर चढ़ीं।

दक्षिण भारत के विज्ञानसेख भी यही सूचित करते हैं। कर्नाटक के विज्ञानसेखों के ग्रन्थ (Epigraphical Carnatic) में १०००-१४०० ई० तक सती प्रथा के केवल ११ उल्लेख मिलते हैं, किन्तु १४००-१६०० ई० के विज्ञानसेखों में इस प्रकार के ४१ उदाहरण मिलते हैं। सती होने वाली अधिकांश स्त्रियाँ दक्षिण भारत की मौरा आदिवासी के नायक और शासक वर्गों से सम्बन्ध थीं। वे उदाहरण वर्गों के भी हैं, किन्तु ब्राह्मण जाति की स्त्रियों के सती होने के बहुत ही कम उदाहरण मिलते हैं।^१ मध्य प्रदेश के विज्ञानसेख यह सूचित करते हैं कि १५००-१८०० ई० के मध्य में यहाँ जुलाहा, गार्ड, राज आदि सभी सामाजिक श्रेणियों और वर्गों की स्त्रियाँ सती हुआ करती थीं। मध्य प्रदेश में सतियों के अनेक विज्ञानसेख और स्मारक मिलते हैं।

मुस्लिम शासकों द्वारा विरोध

मध्य युग में मुसलमान शासक जीत कुछ मुस्लिम शासकों ने इस प्रथा को बन्द करने का प्रयत्न किया। हुमायूँ ऐसी सती विधवाओं का सती होना बन्द करना चाहता

^१ इस प्रसंग में यह उल्लेख करना उचित समीत होता है कि अनेक शासकदार ब्राह्मण विज्ञानसेखों के सिद्ध सती प्रथा बर्धित करते हैं। मुहम्मदशाह (२११५) इसे केवल स्त्रियों के लिए उपयुक्त समझता है। पद्मपुराण (सृष्टि खण्ड ४६।७२-३) स्पष्ट रूपों में ब्राह्मणी द्वारा पति की मृत्यु पर सहमरण का विरोध करता है तथा इसे बुराह्मण मानता है (५ प्रियेत् सत्तं भर्ता ब्राह्मणी ब्रह्मशासनम्)। अथर्ववेद में (मात० १।१७ पर) वैदिकता, अंगिरा, आश्वपाद आदि की स्त्रियों के आधार पर ब्राह्मणियों के सती होने का विरोध किया है। इसका कारण यह कि भारद्वाज में इस प्रथा का प्रकार दत्तकपुत्रों तथा अश्विपुत्रों तथा सीमित था। मध्य युग में इसका प्रसार व्यापक होने पर निम्नकार्यों ने अपराधों के निषेध की आकाश इस प्रकार की कि ब्राह्मणों की पत्नियाँ अपने को केवल पति की धिता पर ही प्रस्थ कर सकती हैं, यदि पति की मृत्यु काही दूरस्थान, या विदेश में हुई हो, वह अहं काही प्रका किया गया हो तो पत्नी को उसकी मृत्यु का तलाबोर पुन कर अपने को काही ब्रह्मण्य मानिए।

था, जो बन्धन पैदा करने की अवस्था पूर्ण कर चुकी हों। अक्सर ने अपने राज्य के २२ वर्ष में सती प्रथा बन्द करने के लिए ऐसे सरकारी निर्देशक नियुक्त किये जिनका काम यह चेखमा था कि किसी को सती की इच्छा के विरुद्ध सती न किया जाय। इसके परिणामस्वरूप आगरा के आसपास सती होना बन्द हो गया। अनेक प्रदेसों में धर्मिक प्रामाणों ने यह नियम बना दिया था कि कोई भी विधवा स्थायी अधिकारी की अनुमति से विवाह नहीं करे। इसका उद्देश्य इस प्रथा को बन्द करना था, किन्तु इस नियम का उस प्रथा पर विशेष प्रभाव नहीं पड़ा, क्योंकि सामान्य अधिकारी प्रामाणिकी अनुमति दे दिया करते थे।

सहमरण की विधि

मध्य युग के पिछले विधानग्रंथों, मुद्रितग्रन्थ, विनोदविनय (भाग १, पृ० ६२३) तथा धर्मसिन्धु (पृ० ४६३-४) में पहली बार सती होने की विधि का विस्तारपूर्वक प्रतिपादन किया गया है। इसी हीना एक भद्रानु पुत्र का कार्य समझा जाता था। इसे सामान्य में उन्नततम गौरव और सम्मान दिया जाता था। अब किसी स्त्री को सती होना होता था तो उन्नतता बहुत बड़ी भूषणार्थ से और राजसी दाह-बाढ़ के निकाला जाता था। गृह्य-पुराण (पाताल ब्राह्म १०२।१७) के अनुसार इसे बहुला-मुक्षकार, संमल संस्कार करके उसके शरीर पर सब सौभाग्यसूचक चिह्न, आभूषण, अंजन, गांध, गुण, धूप, हल्दी, बाजरा बरतन लगाये जाते थे, गोपी से भजना गायना आदि; वह हथ में कर्पूर, कुंकुम, लोथी, गान आदि लीलागायनका बन्धुन लेती थी, इस समय वह अपने शरीर पर अधिकांश के अधिक आभूषण तथा बहुमूल्य वस्त्र पहनती थी, घूमघांस से भोजन खाती के साथ इसका साथ धर्मिक विद्या पर पढ़ने से पहले वह अंगों बहुमूल्य वस्त्र तथा आभूषण अपने संबंधियों को दे देती थी, वे इसे धड़े आदर से साथ पहन करने के और बहुमूल्य स्मृति के रूप में सुरक्षित रखते थे। इस समय कुछ धार्मिक उद्देश्य अपने स्वर्गस्थ संबंधियों तक अपने संदेश पहुँचाने का काम भी निपटते थे। चिता पर बहुत धूप, वह अपने पति का सिर अपनी गोद में रख लेती थी और इसके साथ चिता की ज्वाला में हँसने हुए सती हो जाती थी। यदि ऐसा पुरुष की कई विधवा स्त्रियाँ हों तो उसकी प्रिय पत्नी उसकी सिर को अपनी गोद में रख कर एक ही चिता पर सहमरण की विधि पूरी करती थी, अन्य विधवा स्त्रियाँ कलम विद्याओं पर बसायी जाती थी। कई बार गृह्य जीवन के ईर्ष्या-वैष की मुला कर कई स्त्रियाँ एक ही चिता पर पति के साथ राखी हो जाती थी। यदि पति की मृत्यु किसी वृद्धता के लक्ष में हुई हो या उसके बाद के साथ चिता पर बढ़ना संभव न हो तो विधवा पति की दाढ़ी, जुड़े या किसी अन्य वस्तु के साथ चिता पर बढ़ती थी।

स्वेच्छापूर्वक पति की चिता पर बढ़ने वाली स्त्रियाँ कई बार आग की ज्वालाओं

ले भजना कर विद्या से बाहर जागने का अवसर करती थी, अतः सतियों की विद्या को विशेष रूप से इस प्रकार का बताया जाता था कि इनके भगवत की संभावना न रहे। सती की विद्या प्रायः एक गहरा गढ़ा खोद बांध बनायी जाती थी, दक्षिण एवं पश्चिम भारत में यह विद्या विशेष रूप से प्रचलित थी। विदेशी यात्रियों ने इसका कई बार वर्णन किया है। गुजरात और उत्तरी भारत में १२ बर्तुट की एक सोंपड़ी बना कर उसका चारों ओर सती होने वाली स्त्री को बाँध दिया जाता था। बंगाल में गरीबों में मजदूरी से पाड़े रुपये की छद्मों के साथ मित्रता के पैरों की मजदूरी से बाँध दिया जाता था तथा उससे तीन बार पूजा जाता था कि क्या यह वास्तव में स्वर्ग जाना चाहती है, उसने चहुँपछि देने के साथ विद्या में आग लगायी जाती थी, विद्या से बड़े होने के कारण स्त्री का प्राणना अक्षय्य हो जाता था, उसके आर्तनाम और भीकार की कल्पनाओं को उद्गार के लिए इस समय ठोक और मुँह में भरते और से बचाये जाते थे। अनेक विदेशी यात्रियों ने भारत के विभिन्न भागों में सती प्रथा के अनेक वर्णन लिखे हैं।

विदेशी यात्रियों के विवरण

दक्षिण भारत में १४ वीं तथा १५ वीं सती में विजयनगर के साम्राज्य में सती प्रथा का विकास अपनी चरम सीमा पर पहुँच गया था। फार्नाओ नुनिस (Fornao Nunes) तथा दुमार्ते बरबोसा (Duarte Barbosa) ने इसका बड़े रोचक वृत्तान्त लिखे हैं। बरबोसा के कथनानुसार राजा की मृत्यु पर चार सती या पाँच से दस या तथा इसी ही संख्या में पुत्र विद्या पर चढ़ा करते थे। निकोली कोम्प्टी नामका यात्री भी यह बताया गया था कि विजयनगर के राजा की १२००० स्त्रियाँ होती थीं, इनमें से दो या तीन हजार सती सती पर चढ़ी जाती थीं कि राजा की मृत्यु होने पर वे स्वच्छापूर्वक होती होती। बरबोसा ने अपनी में एक गढ़ा खोदकर विद्या बना कर सती होने का उल्लेख किया है। उसके कथनानुसार उन्मुखों की स्त्रियाँ सती होते समय बूझ ठाठवात से बहुमुख्य एवं कुत्तरनाम बरझ पहनकर धम धमकार तथा मणि मालिका धारण करके सम्पन्न कर भण्डों को ले कर सवार होकर बाले गाँव और जुलूस के साथ पति की विद्या के आग पर पहुँचती हैं। यहाँ तीन बार विद्या की गरिमा करके सती होने वाली स्त्री अपने पुत्रों तथा संरक्षकों को बुलाती है, उन्हें अपने गरीब पर धारण किए हुए रत्न, आभूषण तथा वस्त्र देती चली जाती है, यहाँ तक कि कन्ध में उससे गरीब पर केवल लज्जा निवारण करने के लिए दान-गिने रख ही रह जाते हैं। ये सब कार्य यह इसी प्रकार से करती है कि जानें उसे मृत्यु की कोई विद्या ही नहीं है। इसके साथ यह देव का बड़ा श्रम से तिर पर रख लेकर विद्या की तीन बार गरिमा करती है, तीन ओर आग में जालती है और जलन की ज्वालाओं में ऐसे कूट जाती है, जैसे वह बर्फ के मूलामय गढ़ पर कूट रही है। उपरान्त वह ज्वालाओं में जल कर भस्म हो जाती है। वृष्ट-

स्त्री (Mandeso) ने बम्बोस (मुजरास) में तथा बीटर मणी ने सूरत में तथा बामस बोरी ने बंगाल में सती प्रथा के अनेक वर्णन लिखे हैं। टैबर्नियर ने १५ वीं शताब्दी में कर्नाटप्रान्त के तट पर इसका वर्णन किया है। विवेकी बाबियों के वर्णनों से यह स्पष्ट है कि यह प्रथा उस समय देश के लगभग सभी भागों में प्रचलित थी।^{१०}

सती प्रथा में व्यवस्था

यद्यपि विच्छादक सती नहीं थी, या उन्हें सती होने के लिए बाधित किया जाता था ? इन प्रश्नों का सीधा और सरल उत्तर देना बहुत कठिन है। उसमें कोई संदेह नहीं कि सती होने के लिए स्त्रियों को विवश किया जाता था। ब्रह्म ने राजतरंगिणी में कश्मीर की दो ऐसी स्त्रियों के उदाहरण दिये हैं, जिनमें अनेक महिलाओं को इसविध ब्रत ही था कि वे जब पति पर विच्छादक बनने का दायें नौ ने मंत्री उन्हें विना पर कदम से उनके तक उनकी प्राण रक्षा करें। रावी सिंह ने अनेक सती नरप्राण की सहायता से इस प्रकार अपनी जान बचायी थी (६११६५)। किन्तु ब्रह्म-भती का धर्म सती का ऐसा लेकर भी डीक समय पर प्रमत्तान में सती पहुँचा और ब्रह्मगीतानी को मतिच्छादक सती होता पड़ा। ब्रह्मकामीय विवेकी बाबियों ने समग्रप्रमाण द्वारा सती किये जाने के अनेक उदाहरणों का उल्लेख किया है। मन्थी (कं० ३, पृ० ३५) ने लिखा है कि सतिव द्रष्टव्य को जबर्दस्ती सती किया जाता था, उसने ऐसी एक स्त्री की प्राण रक्षा की थी और बाद में इसका विवाह उसके एक भोगेधियम मित्र से हो गया था। निकोमो सौष्टी ने यह बताया है कि सती होने के लिए आश्रित ब्रह्म होता जाता था, बिना कोई धर्मकी ही जाती थी कि यदि वह सती न हुई तो उसकी स्त्रीजन के अधिकार से धर्मित कर दिया जायगा। बर्नियर (पृ० ३६३-६४) ने १२ वर्ष की एक बालविधवा का माहौर में सती किये जाने का वर्णन किया है। अन्तर का एक राजपूत कर्मचारी अपनी मरता के विधवा होने पर उसे जबर्दस्ती सती करना चाहता था; अन्तर के हस्तक्षेप से उसकी प्राणरक्षा हुई।

कई बार ब्रह्मपूजक सती की जाने वाली कुछ स्त्रियाँ जलती पित्त से भाग जाती होती थी। ऐसी स्थिति हिन्दू समाज में अस्पृश्य समझी जाती थी, उन्हें अपनी जाति और परिवार से दूर भेजा जाता था। वे स्थिति पित्त सहाय करने वाले निम्न जाति के व्यक्तियों के घरों में चली जाती थी। कई बार यूरोपियन व्यापारी ऐसी स्त्रियों के साथ विवाह कर लेते थे। स्त्रियों को जबर्दस्ती सती करना उनके साथ और अत्याचार था, किन्तु समाज संभवतः इसे संतुष्टि सहित करता रहा है कि विच्छादक सती होने वाली स्त्रियों की सहाय में काफी नहीं थी।

स्वेच्छापूर्वक सती होने के उदाहरण

मध्यकाल के विदेशी यात्रियों ने अहाँ एक ओर मध्य युग के सबसे सती होने के उदाहरण दिये हैं, वहाँ दूसरी ओर ऐसे उदाहरणों का भी वर्णन किया है, जिनमें स्त्रियाँ स्वेच्छापूर्वक सती प्रवृत्तता से प्रति भी चिता पर चढ़ती थीं।^{११} सती होने के एक बीच यात्री टैलरिडर ने लिखा है कि २२ वर्ष की एक विधवा पटना के सूबेदार के पास जाती होने की अनुमति लेने गयी, सूबेदार ने उसके सम्बन्ध लंकण की परीक्षा करने के लिए उसको हाथ की मसाल में जलवाया, उसका हाथ पूरी तरह जल गया किन्तु उसने उक्त लक नहीं की, अतः उसे सती होने की अनुमति दी गयी (पृ० ४१४-४७)। १४ वीं शताब्दी के एक विदेशी यात्री इब्नबतूता ने यह लिखा है कि चिता की स्थानाधी में तर्क्य भस्मने वाली एक विधवा का साक्ष्य देखकर वह घबरा रहा गया (पृ० १६५)। बलिवर ने एक स्त्री के सती होने के कुछ भाषण काले हुए लिखा है कि उस समय उसका भूत-मन्त्रक चुन्नी में बध्ना रहा था, उसकी घातपीठ में किसी प्रकार की चिता या कोई चिह्न नहीं था, उसका सारा विश्वासजनक एक अद्भुत था, उसने ताराज हाथ में ली और स्वयंसेव चिता में जाग गया थी। बलिवर की यह सारा कुछ आत्मविक्रम होते हुए भी एक अपना प्रतीति हुआ (पृ० ११२-१३)। एक अन्य यात्री पीट्रो डेल्ला वॉल्ले (Pietro della Valle) सती होने वाली स्त्रियों के अद्भुत माहुर से इसका प्रभावित था कि उसने यह लिखा है कि उसे मुझे यह पता लगता है कि कहीं कोई विधवा सती होने वाली है तो मैं इस युग की देखने के लिए अच्छम जाता हूँ (कपट २, पृ० २९९)।

भारतीय स्त्रियाँ स्वेच्छापूर्वक सती होने के लिए कितनी उत्सुकित, विद्वान और दुःखकरुण होती थीं, इसका एक बहुत सुन्दर उदाहरण कार्मल स्त्रीमैम ने प्रस्तुत किया है।^{१२} १७२६ में फ्रांसीसी मिशनर वैटिक द्वारा सती प्रथा निषेध की घोषणा बाद देने के बाद, स्त्रीमैम को मध्य प्रदेश में इस किन्दाहित करने का काम सौंपा गया था। मार्च १७२६ में एक परिषद द्वारा यह सरकार की भारत सर्वेक्ष प्रस्तावित की गयी कि किसी स्त्री का सती होने के लिए किसी भी प्रकार से प्रोत्साहित करने वाला व्यक्ति अपराधी समझा जायगा और उसे शत्रु दिया जायगा। स्त्रीमैम सती प्रथा के निषेध के नियम को नहीं बर्बाद से लड़ने करने पर तुला हुआ था। इसी समय २६ नवम्बर १७२६ को ६५ वर्ष की एक बाहुणी में विधवा होने पर सती होना चाहता। जिनसे राजदण्ड के भय से किसी भी व्यक्ति ने उक्त बाहुणी को चिता बनाने के लिए सहायता देना स्वीकार नहीं किया। बाहुणी सती होने पर सुखी हुई थी और उसने स्त्रीमैम से इसके लिए अनुमति माँगी। किन्तु स्त्रीमैम ने प्रतिज्ञा की आदेश दिया कि वह उस पर निरन्तर निगरानी रखे ताकि उसे सती न होने दे। बाहुणी अपनी प्रति की चिता के समीप सरप्रास करके बैठ गयी।

^{११} सार इतिवृत्त स्त्रीमैम—रेजिस्टर दण्ड रिकॉर्डराल पृ० ६६

उत्तरे चार दिन तक अन्न-जल नहीं ग्रहण किया : इस स्थिति में स्वीटन ईश्वर कृपा धातुमी के पास गया और उसने उसे बचाना सही होने का संकल्प छोड़ने का कहा, उसे कोई प्रकार की धर्मिकी और वसोअन भी दिये गये। हिन्दू यह अपने निश्चय पर अटल बनी रही। अन्त में स्वीटन को हारना पड़ा, उसने धातुमी को सती होने की अनुमति दी। जिस समय वह अनुमति दी गयी, उस समय धातुमी को कर्बनानील अगार हुए हुआ और वह भीत की भिछा पर सती हो गयी।

मध्य युग में हिन्दू समाज में विधवा होने पर सती होने के धार्मिक महत्त्व का विकास इतना हुआ और बलवान् बना कि कई बार आचार्य धर्म दासी भाग्यार्थ विवाहित न होने पर भी अपने को विधवा मानती थी और सती हो जाती थी। मुन्धरी ने एक ऐसे ही उदाहरण का वर्णन किया है। इसने बताया किसे हुए एक गुल्म की मृत्यु अपनी कान्हाता पत्नी को सोने के बंधन के बंधन में हो गयी। यद्यपि कान्हा का विवाह नहीं हुआ, या फिर भी उसने सती होने का आग्रह किया और वह अपने प्रेमी की बिना पर जग मरी (च० पृ० ४० ख० १९३६, पृ० २४८)।

सती प्रथा के विकसित होने के कारण

अपूर्वक विवरण से स्पष्ट है कि वैदिक युग में सर्वथा अप्रचलित होने पर भी मध्य युग में सतीप्रथा का प्रचलन हिन्दू समाज में बढाकाप्ता पर पहुँच गया। वहाँ इस प्रथा की उत्पत्ति एवं विकसित करने वाले कारणों की बीमोहता करना अनुचित होगी। सती प्रथा केवल हिन्दू समाज में नहीं है, अन्य समाजों में भी पायी जाती है। इसके प्राच्य-बाब के कुछ कारण अन्य समाजों जैसे हैं और कुछ कारण विशिष्ट हैं।

इसके सामान्य कारणों में बहुत कारण परमाधिकारिक कुछ विस्थापित हैं। इनके अनुसार अनेक आदिमों में यह माना जाता है कि मृत्यु के बाद परलोक में अनुर्थों की इस लोक की सति विभिन्न वस्तुओं की आवश्यकता पड़ती है। जब कोई राजा, वीर पुरुष या योद्धा मरता था तो परलोक में उसके जीवन के सुखमय क्षणों के लिए उसके साथ वैदिक जीवन की सब वस्तुएँ योजना आवश्यक लगता जाता था। इसमें उसकी विधवा, मीकर-आकर्षण तथा घोड़ों का प्रथम स्थान होता था, मतः इनमें उसकी मृत्यु के बाद उसके साथ जानाया जा गाना आवश्यक एवं उचित समझा जाता था। यिक के विचारधर्मों में ऐसी व्यवस्था थी। परलोक में पति की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए स्त्री को सती होने की पद्धति भारीपीय आर्य आदिमों में, बाल, बाब, नार्वेजियन, ईस्ट तथा स्थान लोगों में पायी जाती थी। इसी विस्थापन के कारण यदि बीन में कोई विधवा स्त्री पति के पास स्वर्गलोक में जाने के लिए अपनी हत्या करती थी तो उसके सब का मुलूम बड़ी धूमधाम से निकाला जाता था।

कुछ कारण योद्धा आदिमों में अपनी विधवा की पवित्रता बनाये रखने की

साधना थी। पहले यह बताया जा चुका है कि सती प्रथा का प्रचलन भारत में कश्चित् प्राति में विशेष रूप से पाया जाता था। अन्य देशों में भी कुछ स्थिति थी। योद्धा प्रातिवाँ अपनी विधवाओं की सुरक्षा के लिए विशेष यत्न करती हैं, वे यह नहीं चाहती कि लड़ाई में उनकी मृत्यु के बाद विधवा उनकी स्थिति का उपयोग करें।^{१२} अतः वे विधवाओं का सती होना अधिक अच्छा समझते थे। राजपूतों में योद्धा इन्हींलिए किया जाता था। मृत्यु के बाद परमोक्त में भी इन्हें अपनी जाति जिस वस्तुओं के समान परती की आवश्यकता होती थी। अतः इन को सामान्य कारणों के विभिन्न देशों की योद्धा प्रातिवाँ के इस प्रथा का आधिकारिक हुआ।

भारत में इसके विशेष रूप से विकसित होने के तीन कारण थे। पहला कारण प्रातिवत्य की भावना थी,^{१३} जहाँ प्रति की सेवा पर इतना अधिक भल दिया गया था कि पत्नी प्रति के बिना अपना जीवन निरर्थक समझती थी। वह तब ही इहलोक में तथा परलोक में उसकी सेवा करना चाहती थी, अतः उसकी मृत्यु पर वह अस्वी है अस्वी उसके बाद गर्भने के लिए जाती हुई जाती थी। दूसरा कारण वैश्य का दुःखमय जीवन था, जगत्त यह बताया गया है कि हिन्दू विधवा का जीवन अिडता पारसीय होता है, और इसे फिर प्रकाश के रास्ते दुःख भोगने पड़ते हैं। वे दुःख प्राप्त विधवाओं के लिए सहाय होती हैं, उन्हें जीवन भर पारसीय सम्प्रदाय में रखा कर बहुत अधिक अच्छा प्रतीत होता था। इसके उनके सब कारण दुःखों का जन्म हो जाता था। तीसरा कारण ब्राह्मण के वायसाय की व्यवस्था थी। यहाँ उच्चक परिवारों में विधवाओं का अत्यन्त सम्मान की विधवाओं की भोजन अधिक साम्प्रतिक अधिकार प्राप्त के^{१४}। अन्य प्राचीन में विधवा का भरण-पोषण में अतिरिक्त सम्पत्ति में कोई अन्य अधिकार प्राप्त नहीं था। हिन्दू व्यवस्था में ब्राम्हण की व्यवस्था के कारण पुत्रहीन विधवा का समुक्त परिवार की सम्पत्ति में बड़ी अधिकार था जो उसमें उसके प्रति का होता था। इसके उनके अन्य संबंधियों तथा उत्तराधिकारियों का बाधा था, अतः उनका यह व्यवस्था होता था कि विधवा सती हो

^{१२} प्राचीन काल में विधवा विभिन्न लोगों की पत्नियों से अथवा चुनती थे, उन्हें अपनी उत्तराधिकार में जाते थे और उनसे वसतिवाँ सेवा व्यवहार करते थे। मनु (७।६६) में सीनिकों को युद्ध में अन्य वस्तुओं के साथ विधवाओं को भी बचाने की अनुमति दी है। एकाकरवर्धन को पत्नी सम्पत्ती अपने पुत्र हर्ष को बताती है कि विधवा राजाओं की पतिव्रता करनेवाँ बंधा बना करती है (हर्षचरित ५)। इस प्रकार की हुई दुर्बला से बचने के लिए लगे होना एक उत्तम उत्तर था।

^{१३} प्रातिवत्य की भावना के विचार के लिये देखिये हरिवत्त वेदासाधार—हिन्दू परिवार नीमांक, पृ० १२४-५

^{१४} हरिवत्त वेदासाधार—हिन्दू परिवार नीमांक पृ० ४५०-१

याव ताकि वे उसकी संरक्षित प्राप्त कर सकें, अतः वे अपने स्वयं के लिए उसकी प्रतिभक्ति को कुछ उल्लेखित करने के ताकि वह सती ही जाए। इस कारण की दृष्टि इस बात से भी होती है कि सती प्रथा सबसे अधिक संख्या में प्रचलित थी। उदाहरणार्थ १८१५ में १५२८ तक पटना, बरेली और बंगाल जिल्लों में सतियों की संख्या क्रमशः ५०६, १६३ तथा ११६५ थी, किन्तु बलुछला जिल्ला में यह संख्या ५०६६ थी। १३ संख्या में अन्य प्रांतों की संख्या। सती होने का यह कारण था कि पति स्वार्थी संबंधों को अपने अधिकारों के लिए विधवाओं को विवाह पर जाने के लिए विवश करते थे।

सती प्रथा का निषेध

राजा रामराज्य राय ने अपनी भाभी की पचईसवीं सती निधे जाने का वाक्य ब्रूय देखा था। इसने उससे इलाक़ में पचसती प्रथा के निषेध निधे जाने वाले कुरानापूर्ण कार्य वाली-मालि अधिकार हो गये। उन्होंने इस अभ्यासिक एवं ख़तरा प्रथा के उन्मूलन के लिए प्रबल आन्दोलन किया। उद्दिष्टावियों ने प्रभावशाली प्रयास किया, किन्तु वे ब्रिटिश सरकार से विरुद्ध यह आग्रह करते रहे कि भारतीय भांगों द्वारा इनका उन्मूलन किया जाना चाहिए। अन्त में उनकी अपने प्रयत्न में सफलता मिली। १८२६ में भारत के गवर्नर जनरल लार्ड विलियम बेंटिक ने इस प्रथा का विरोध करने वाली सरकारों काका प्रसारित की, भांगों को वे कार्य में प्रभावशाली देखा संप्रतीति भगवान् बना दिया गया। इससे सती प्रथा की कुछ ही मात्रा में गयी, बाधित रूप से विवशतापूर्णक सती होने वाली सतियों की संख्या बहुत कम हो गयी। किन्तु मन्त्र पतिधर्म से प्रेरित होने वाली सतियों का स्त्री शोभा पूर्ण रूप से अन्त नहीं हुआ, अब मन्त्र की कही-कही सतियों के सती होने के समाचार आते रहते हैं।

नियोग

इच्छा

पति की मृत्यु पर विधवा होने वाली नारी के लिए प्राचीन हिन्दू कथा में तीन मार्ग बताये गये थे। पहला मनु के यतानुसार संयमपूर्वक, कठोर तपस्या और भगवत्पथ का अन्वय जीवन वित्तना था, दूसरा पति की विधा पर चढ़ना और तीसरा लक्ष्मी में बताये गये नियमों के अनुसार नियोग द्वारा संतान उत्पन्न करना था। पहले की का अन्वय का वर्णन हो चुका है, यही नियम का प्रतिपादन किया जायगा। नियोग का सामान्य अर्थ आदेश देना है, जब किसी सम्मानहीन कथना विधवा स्त्री को किसी विनिष्ट पुरुष

के समय सम्भोग द्वारा संमिश्र स्थापित करके पुनः पैदा करने का आदेश या अनुमति दी जाती है तो इसे नियोग कहते हैं। नीति (१८१४-१४) के इतना उल्लेख करते हुए कहा है कि प्रतिहीता-प्राप्ति यदि पुनः की जाय तो इसे वैध मान्य करे (अपति-रपत्तानिमुद्वेगत्)। किन्तु ऐसा करने के लिए उसे कुछ बातों से आजा नहीं बाधित, सम्भोग केवल क्षणिक के ही करना चाहिए। जब देवर स हो तो वह अग्रिम, भगोत्र, समग्र से पुनः प्राप्त कर सकता है। कुछ भाषाओं के मतानुसार वेदम देवर से ही नियोग द्वारा पुनः प्राप्त किया जा सकता है। इस प्रथा द्वारा जो से अधिक पुत्र सही प्राप्त करने चाहिए। नीति में अन्वय (२५३२, ४३) तथा मनु (६३२, ३३, ४६) ने नियोग से भगताम उत्पन्न करने वाली स्त्री को श्रेष्ठ तथा इसमें नियोग से होने वाले पुत्र को श्रेष्ठ, विधवा को विधवा पति को श्रेष्ठ या श्रेष्ठ (विधवा स्त्री को पति का स्थायी) तथा पुत्रीपति के लिए निम्न देवर यदि पुत्र का बीजा (बीज होने वाला) अथवा नियोगी (नियोग का कार्य करने वाला, अग्रिम १७१६४) कहा है।

नियोग के उदाहरण

महाभारत में द्वय नियोग के कुछ उदाहरण मिलते हैं। यदि पूर्व (अध्याय ६६, तथा १०२) में यह बताया गया है कि सत्यवती ने भीष्म को तब मेरुग की कि वह अपने विधवा छोटे भाई विधिवत्पति के विस्तारान्तर जाने पर उसकी विधवा रानी की के नियोग द्वारा पुनः उत्पन्न करने, किन्तु भीष्म ने इसे स्वीकार नहीं किया। अन्त में सत्यवती ने अपने पुत्र अश्वत्थ को इस कार्य के लिए निम्न किया और इसके परिणाम स्वरूप अश्वत्थ तथा पाण्डु पैदा हुए। पाण्डु पुनः उत्पन्न करने में सफल नहीं था, अतः उसने अपनी रानी कुन्ती को किा तपस्वी आश्रम से पुनः प्राप्त करने के लिए कहा। पाण्डु ने इस विधम में अनेक प्राचीन कथाएँ और श्रुतियाँ कहे हैं (आदिपर्व ४० १२०-१२९) और अन्त में वह परिणाम निकाला है कि नियोग में अधिक से अधिक तीन पुत्र पैदा करने चाहिए, इससे अधिक नहीं। किन्तु यदि बीजे या गर्भात् पुत्र की उत्पत्ति हो गये तो स्त्री स्वीकृति (मिलती) या वन्द्यकी (वेधवा) कही जायगी। अब परमपुत्र ने अश्वत्थ का सहारा दिया तो सहस्रो सप्तर्षिों पुनःप्राप्ति के लिए बाह्यों के पास जाने लगीं (आदि पर्व अध्याय ६४ तथा १०४)। महाभारत में अन्वय की नियोगविधम कुछ उदाहरणों की कथा है (आदिपर्व, १०४, १७७, अनुवाक ४४ ४५२-४६, शान्तिपर्व ७२१२)।

नियोग के निधम

नियोग की व्यवस्था को वैदिक ग्रन्थों में अर्थात् बनाये रखने के लिए शास्त्रकारों ने कई कठोर नियमों का प्रतिपादन किया। यहाँ पहले कुछ शास्त्रकारों के अन्त

इतिहास भाग १, पृ० ३२६) ने विधवा के लिए विधवाविधवा विधवाओं की आवश्यक बताया है—(१) इसके लिए मृत पति पुत्रहीन होना चाहिए, यदि पति जीवित है तो पत्नी की सती नपुंसकता आदि से प्रसूत होने के कारण पुत्रोत्पादन में असमर्थ होना चाहिए। (२) परिवार के बुद्धिमानों द्वारा निर्धारित पद्धति से पति के लिए पुत्र पैदा करने का विधवा या आदेश पत्नी की सेवा चाहिए। (३) विधवा करने वाला पुरुष पति का भाई (देवर), सपिण्ड या पति का श्रमिक (पति के मृतानुसार भ्रष्टर तथा अपनी खाति को) होना चाहिए। (४) विधवा करने वाले स्त्री-पुरुष में कामवासना का पूर्ण अभाव तथा कर्तव्य पालन का भाव रहना चाहिए। (५) विधवा करने वाले पुरुष पर मृत का या वेद का भेष होना चाहिए, उसे म धूम्र करना चाहिए और न ही स्त्री के साथ किसी प्रकार की काम-क्रीड़ा करनी चाहिए। (६) यह संबंधकेवल एक पुत्र होने तक तथा कुछ आचार्यों के मतानुसार दो पुत्र होने तक रहता है। (७) विधवा करने वाली विधवा की दूध, बाल, अंगनम कर्तव्य में असमर्थ, बीमार या गर्भवती नहीं, अपितु सुखी होना चाहिए। (८) एक पुत्र की उत्पत्ति होने के बाद दोनों को एक-दूसरे से पति-पत्नी का नहीं, अपितु पशु और श्व का सा व्यवहार करना चाहिए (मनु ८।१२)। (९) पति की मृत्यु के एक वर्ष बाद ही विधवा की अनुमति दी जानी चाहिए। (१०) यदि विधवा विधवा म करता चाहती हो तो उसे इस कार्य के लिए बाधित नहीं किया जा सकता। यह व्यवस्था इसलिए की गयी थी कि कामुख देवता की भारी से अवैध संबंध स्थापित करने का बहाना न मिल सके। विधवा का कार्य इसकी अनुमति मिलने पर ही किया जा सकता था। इसके बिना अपनी भारी से विधवा करने वाले के लिए गुरुपुराण (१।१०५-४२) में आन्ध्रमय्य व्रत के प्राक्-निषेध की व्यवस्था की है। स्मृतियों ने स्पष्ट रूप से यह विधान किया है कि गुरुजनों का विधवा या आदेश पाप किना उपर्युक्त श्रमिकों के अभाव में यदि देवर, भाई से सम्पन्न करता है तो वह ब्रह्महत्या का अपराधी (अगम्यागामी) माना जायगा (मनु ८।५५, ९१, १४३-४, नारद स्त्रीसूत्र ५५-६)। इस प्रकार के सम्पन्न से उत्पन्न पुत्र को वारक (कुलटो-त्पन्न) कहा जायगा, वह सम्पत्ति का उत्तराधिकारी नहीं होगा (नारद स्त्रीसूत्र ८४-५) और वह उत्पन्न करने वाले का पुत्र कहा जायगा (अतिथि १५।६१)। नारद के मतानुसार यदि कोई विधवा या पुत्र विधवा के विधवा का उत्पन्न करता है तो उसे राजा द्वारा दण्ड दिया जाना चाहिए, अन्धका समाज में व्यवस्था और पति का उपलब्धता उत्पन्न हो जायगी। इन सब विधवा और विधवाओं से यह स्पष्ट है कि इस समय विधवा की अनुमति कठोर प्रतिबन्धों तथा विधवाओं के साथ ही जाती की ताकि इस व्यवस्था का अभिवादन की प्रति में लिए दुष्प्रयोग न हो सकें तथा इससे समाज में अनैतिकता की प्रवृत्ति न बढ़े।

सती प्रथा की श्रेष्ठता

आजकल हमें विधवा की परिभाषा की विधि प्रतीत होती है, किन्तु प्राचीनकाल में

बौधायन (२।२।३-४) और यजु (६।६४-६८) अग्रणी थे। मायस्ताम्ब का यह कहना था कि नियोग से उत्पन्न होने वाला बालक पुत्र उसके उत्पादक या जनक का होता है, वह विधवा के पति को कोई धार्मिक लाभ पहुँचाने में समर्थ नहीं होता, अतः यह व्यवस्था विभक्तिकूल विरुद्ध है; बौधायन का भी यही मत था। यजु ने नियोग की बड़ी बड़ी तिन्या की है (२।६९), उसका यह मत है कि विद्वान् ब्राह्मण होते यजुओं का मतमं कहु कहु इसकी अपेक्षा करते हैं (अथ त्रिवेद्वि विद्विषिः यजुष्यो विराहितः)। उससे मतानुसार इसका पासन नहीं करना चाहिए। किन्तु इतना तीव्र विरोध क्यों हुए भी उसने नियोग विधवाक वित्तुष्ट नियम दिये हैं (२।६६-६९)। इससे यह स्पष्ट है कि शास्त्रगणों का विरोध होते हुए भी यह प्रथा समाज में प्रचलित थी और इसीलिए यजु ने नियोग-विरोधी स्तुतिकारों को इसके विरुद्ध विधि-विधान बनाने पड़े थे।

किन्तु शनैः-शनैः कई कारणों से नियोग-विरोधी विचारधारा समाज में प्रचल होने लगी। इस समय विवाह तथा साम्राज्य प्रेम के उष्णताम बादलों का विकास हो रहा था। यजु ने पति-पत्नी के लिए आसुरण एक दूसरे के प्रति सच्चा रहने तथा पति की मृत्यु के बाद विधवा के लिए ब्रह्मचर्य के आदर्श का प्रतिपादन किया, अतः नियोग को पशुओं का कार्य बताया गया। इसे पारिवारिक जीवन की पवित्रता और नैतिकता के लिए अतया समझा गया। विधवा के नियमों में कुछ सीमा के कारण देवर-भाभी के सम्बन्ध अवाञ्छनीय एवं आपत्तिजनक संबंध हो सकते थे। इनसे उत्पन्न होने वाली नैतिक अन्यायकता का विचारण करने के लिए विधवा पर प्रतिबन्ध लगाना अवाञ्छनीय समझा गया। देवर की पहली पत्नी के लिए दुर्भाग्यम नियोग को बुरा समझना सर्वथा स्वाभाविक था, इससे अनेक प्रकार के झगड़े पैदा होने की सम्भावना थी। परिवार के अन्य व्यक्ति भी इस प्रकार नियोग से पुत्र पैदा करके पारिवारिक सम्पत्ति में अपने एक नये हिस्सेदार के आगमन को अच्छा नहीं समझते थे। अतः इन सब कारणों से निर्वाह की प्रथा छीने-बीटे मृष्ट होने लगी। 'भूल दाय' में धातु ने दुर्वोधन के मुँह से यह कहलवाया है कि वह पाण्डवों का राज्य का उत्तराधिकारी नहीं मानता है, क्योंकि वे नियोग के उत्पन्न हुए थे (१।२९)। गुप्त युग में नारद और पराशर ने इसे स्वीकार किया, किन्तु बृहस्पति ने इसकी निन्दा की^{१०} इसे वर्तमान युग में करने का निषेध किया। मध्य युग के निषण्णकारों ने शायद समझते होते हुए भी नियोग की व्यवस्था कलियुग के लिए अनिष्ट एवं निषिद्ध होने की घोषणा की।^{११}

^{१०} बृहस्पति, पाञ्च० १।६।६ की टीका में उपरार्क द्वारा उद्धृत

अन्तो नियोगीं मुनिना निषिद्धः स्वधनेव नृ०। पुनः कमावशतोर्यं कर्तुं यथैव विधानतः।

^{११} अन्तात्मन्तं तमात्मन्तं संयत्तं पतयेदुक्तम्।

देवराज्य सुतोर्थालं ज्ञाती नैव विद्वन्नेतु।

वर्तमान युग में भार्य संभार के संख्याएक स्त्रीय वयानन्द सरस्वती ने अपने सुप्रसिद्ध ग्रंथ सत्याग्रहप्रकाश के अनुसार समुल्लास में नियोग का अभिर्भव किया।^{२२} श्री अलेक्जर के समानुसार उन्होंने अभिर्भव, यह इसलिए किया कि वे इस बात को अच्छी तरह जानते थे कि हिन्दू समाज विधवाओं के पुनर्विवाह ॥ विरोधी है, विधवा के बच्चों को दूर करने की प्रवृत्ति पद्धति वैशाखाभ्युदयित नियोग ही है। किन्तु स्त्रीय वयानन्द के अनुसार ही कार्यसमाप्ति इस पुरानी पद्धति का गुणवर्धन नहीं कर सके, उन्होंने नियोग के स्थान पर विधवाओं के पुनर्विवाह को अधिक अच्छा समझा।

२२ विवाहप्रथा सरस्वती—सत्यार्थ प्रकाश प्रकिर्णक; वैशाखाभ्युदयित नियोग, विवेकानन्द वैदिक संस्थान पालिघाट, तृतीयावृत्ति, पृ० १०२-३

बहुभार्यता

प्राचीन हिन्दू शास्त्रकारों ने विवाहों को साह, वीच, आर, वाञ्छावन्, अमूर, गांधर्व, राजा और वैवाच नामक आठ प्रकारों में बाँटा था; किन्तु वर्तमान काल के पश्चिमी समाजशास्त्री विवाहों का वर्गीकरण गति-वन्ती की संख्या की दृष्टि से करते हैं। इन दृष्टि से उन्होंने विवाहों के चार भेद किये हैं :^१ एक-विवाह (Monogamy), बहुपत्नित्व या बहुभार्यता (Polygyny) बहुपत्नित्व या बहुभार्यता (Polyandry) तथा गण-विवाह (Group Marriage)। एक पुरुष का एक स्त्री के साथ विवाह एक-विवाह (Monogamy) कहलाता है, एक पुरुष का कई स्त्रियों के साथ विवाह बहुविवाह (Polygamy), या बहुभार्यता (Polygyny) है। कई पुरुषों का एक स्त्री के साथ विवाह बहुपत्नित्व या बहुभार्यता कहलाता है। कई स्त्रियों के कई पुरुषों के साथ विवाह को गण-विवाह (Group Marriage) कहा जाता है।^२ इन चार प्रकार के विवाहों में से अंतिम प्रकार हिन्दू समाज में विद्यमान नहीं परमा जाता, बहुपत्नित्व भी बहुत कम पाया जाता है। अतः यहाँ पहले केवल पहले ■ प्रकार के विवाहों की ही नीमोना की जायगी।

वैदिक युग में एक-विवाह की प्रथा

वेद में स्पष्ट रूप से एक विवाह का आदेश है। ऋग्वेद के विवाह सामन्ती पूर्वमूलक के मंत्रों से यह बात पुष्ट होती है और आज भी अर्येक हिन्दू गति विवाह में गली का भागिग्रहण करते हुए यह प्रतिज्ञा करता है कि "मैं तेरे हाथ की सीमाय के लिए पक्ष कर रहा हूँ, जिससे तू पति के साथ दुबाये एक पहुँचने वाली हो" (ऋ० १०।८५।३९)। विवाह के समय बर-जम् की यह आशीर्वाद दिया जाता है कि तुम दोनों यहाँ (गृहस्थ अवस्था में) एकट्ठे रहो, दोनों कभी विमुक्त या पुत्रकृत मत हो, पौत्रों तथा दासियों के साथ जोशते हुए जाने पर मैं आत्मन्य मराले हुए अपना धर्म जीवन बिताऊँ (ऋ० १०।८५।४९)। जमर्तवेर में यह प्रार्थना की गयी है—^३ "हे इन्द्र, पति-वन्ती को नकला-नकली के

^१ ईसाईकलीपीडिया ब्रिटानिका, १४ वीं संस्करण, पृ० २४६

^२ वेस्टरमार्क-जार्ज हिस्टरो अटक मेरिज, पृ० २५६

मोमें की तरह से (बहुधा रहते की) प्रेरणा करो (अर्थात् १५।२।६)। इस मन्त्रों से प्रति-पत्नी द्वारा जीवन-पर्यन्त एक-विवाह के उच्चैतम आदर्श को निवाहने का स्पष्ट वर्णन है।

वेद में उपमा के रूप में भी अनेक स्थानों पर एक प्रति-पत्नी के विवाह का वर्णन किया गया है (ऋ० १।९।१७, ऋ० ४।३।२, १०।७।१४)। वैदिक काल में प्रति-पत्नी के लिए सम्पत्ती शब्द का व्यवहार होता था। वेद में दम्पती द्वारा प्रमाण होकर अनेक कार्य करते का वर्णन है (ऋ० ४।३।९)। छान्दोग्य के प्रकरण में कहा गया है कि प्रति-पत्नी एक धन धर्म होकर सौम का अधिष्ठापन तथा श्रद्धा करते हैं (ऋ० ८।३।१५)। उपर्युक्त मन्त्रों से यह स्पष्ट है कि वेद में स्पष्ट रूप से एक-विवाह का आदेश है।

बहुविवाह के संकेत

जित्नु अनेक स्थानों पर उपमा के रूप में और कई बार हीनीयमा के रूप में बहु-विवाह के कुछ संकेत यहाँ से अवश्य उपलब्ध होते हैं। ऋ० १।१०।५।८ में सायण के अनुसार जिस दमा स्वामी दवागन्ध के अनुसार स्वायत्तता की एक प्रकाश का वर्णन है। सायण के मत में कुर्त्त में पदा हुआ जिस मत प्रकाशन करता है कि चारों ओर की ईंटें उसे उठी प्रकार पीछा रही हैं, जैसे सीमें गीदा देनी है (स मा तपस्व्यमित्ता तपस्वी-ग्निर्गर्भव)। दूसरे मत में न्यायाधीश बादी-प्रतिवादी की प्रकाशता से प्रेरणा होकर कहता है कि ये धूलें सीता की तरह सदा रहे हैं। ऋ० १।१०।५।३ में सीतों को सब-अनन्त कर मदी के प्रवाह में हम धरने की उपमा दी गयी है। ऋ० (१०।१०२।११) में दो धुराओं का बहान करने वाले बैस के साथ दो पत्नी वाले प्रति की उपमा का वर्णन है। ऋ० ७।१८।२ में दन्त्र को बहुकहा गया है कि नू कान्तिवो के साथ उठी तरह निवास करता है जैसे कि राजा स्त्रियों के साथ रहता है। अन्य स्थानों (ऋ० १।६२।१९, १।१८।७, १०।४।११) पर भी उपमा के रूप में सपरिणयो का वर्णन है। ऋ० १०।१४५ सपत्नीबाधन सर्वात् सीतों से उत्पन्न होने वाली वाधाओं को दूर करने वाला सूक्त है तथा ऋ० १०।१५६ की दूरीविषय का सूक्त है। पहले में वह प्रामाणा है कि मेरी सीत को दूर कर और मेरे पति को केवल वर्णात् अन्य पत्नियों से रहित कर। दूसरे सूक्त में यह कहा गया है कि मैं सीता का पदापन करने वाली हूँ मैंने इन सीतों को सीता है। अगर्वेय वेद ही मन्त्रों की पुनरावृत्ति है (३।१०)।

ब्राह्मणग्रन्थों में अनुसंधान

ऐसा जान पड़ता है कि ब्राह्मणग्रन्थों के समय में आर्य जाति "ब्रह्मकाकेव सम्पत्ती" के उच्च मानकों से कुछ गिर गयी थी। राजाओं में तथा धर्मियों में अनुपत्नी-विवाह की प्रवृत्ति प्रचलित हो गयी। ब्राह्मण में सम्पत्ति इस प्रवृत्ति के प्रवर्धन का अर्थपूर्ण

की आकांक्षा थी। ऐतरेय ब्राह्मण (३.३.११) में हमें ज्ञान होता है कि इक्ष्वाकुवंशीय राजा हरिष्चन्द्र अग्रज था, उसकी सौ स्त्रियाँ थी और उनसे उन्ने पुत्र प्राप्त नहीं हुआ। मैत्रायणी संहिता (१.१५८) बताती है कि मनु की सप्त स्त्रियाँ थी। शतपथ ब्राह्मण (५.१.१।१५) में बड़े स्पष्ट शब्दों में पत्नी को पति का अर्धांग बताकर, एका-विवाह के उक्त्य आदर्श का प्रतिपादन किया है, किन्तु अश्वमेध के प्रकरण में उसने राजा की चार स्त्रियों—पद्मिनी, वाचाता, परिषुता और पात्सवती का वर्णन किया है। मद्भिषी पद्मिनी पत्नी या पटवती को कहते थे। वाचाता का अर्थ ऐतरेय ब्राह्मण (१.३.१११) में प्रिय पत्नी विवाह गया है। परिषुता परिश्रुता पत्नी होती थी और पात्सवती दरबारी अफसरों के धर्मोपजाति के पत्नी से जोड़ी हुई स्त्री होती थी। रामायण (१.१५.३५) में अश्वमेध यज्ञ के प्रसंग में हमने से तीन स्त्रियों के नाम ज्ञात किये हैं और इनकी होता, अश्वमेध, द्यूपाता से तुलना की गयी है। याज्ञवल्क्य ने ऐतरेय ब्राह्मण (१.२.१११) की टीका में वाचाता के पद की व्याख्या करते हुए "मूर्ध्नुः स्त्रः" की तीन व्याख्याएँ ॥ राजा की तीन प्रकार की पत्नियों की तुलना करके बताया है कि राजा की तीन प्रकार की स्त्रियाँ होती हैं, जिनमें ज्ञाति वाली स्त्री को मद्भिषी कहते हैं, गणम ज्ञाति से अलग की जाती तथा नीच जातिवाली को परिषुता। अश्वमेध यज्ञ में अश्व का अभ्यर्चन पत्नियों द्वारा होता था (शतपथ ब्राह्मण १.३.२।१५७)। तैत्तिरीय संहिता (१.१.५।५) में एक विचित्र ढंग से मनुस्मृतिकी-विवाह का निराकरण है। उसमें कहा गया है कि जिस प्रकार एक मूष पर बहुत की स्त्रियाँ (रत्नमार्ग) का घेरा बँधता है, उसी प्रकार एक पुत्र की पत्नियों को पाता है और क्योंकि वह एक पत्नी से दो पुत्रों का भेरा नहीं बनाता है इसलिये एक स्त्री की पत्नियों को आपा नहीं करती। इसी विचित्र तर्क का अनुदीपन करते हुए ऐतरेय ब्राह्मण (१.२.१११) कहता है कि "इति एव एकपुत्र की बहुत की स्त्रियाँ होती हैं, किन्तु एव स्त्री के बहुत से पति नहीं होते।"

पुत्रपुत्रों से भी अनुसंभ्रमता का प्रचलन सूचित होता है। हिरण्यकेशी तथा मांजायन गृह्यसूत्रों में पुत्र-पत्नी की विधि में जो प्रार्थना ॥ उसमें अनेक पत्नियों का उल्लेख है। मांजायन की एक विधि में कहा गया है कि लोग स्त्रियों की दृष्टि से समृद्ध हैं, वह सौ पत्नियों की दृष्टि से समृद्ध करें। आपस्तम्ब गृह्यसूत्र में आपत्तिपूर्ण एवं उपद्रवों के निराकरण तथा विशेष इच्छाएँ पूर्ण करने के प्रकरण में एक पत्नी द्वारा दूसरी स्त्री की निषिद्धता करने का उल्लेख किया है और इस प्रकरण में ऋषोष के सप्तर्षि-शास्त्र सूक्त का विनिर्वाण किया है। गृह्यसूत्रों में पास्तम्ब ने सर्वप्रथम यह व्यवस्था की कि विधिवत वर्णों के लक्ष्य से ब्राह्मण की तीन पत्नियों—ब्राह्मणी अग्निधा और वैश्य होती है, क्षत्रिय की क्षत्रिया और वैश्य दो पत्नियाँ होती हैं और वैश्य भी एक। तीनों वर्णों की वैदिक मंत्रों के बिना ब्रह्मा पत्नी की ग्रहण करने का अधिकार है। आगे चल कर हम देखेंगे कि जब से अनुसंभ्रम विवाह की इस पद्धति

का प्रयत्न बहुत बड़ गया और अभी धर्मसूत्रों एवं स्मृतिमें से इस विधम का समर्थन किया। यद्यपि इस समय बहुविवाह होता था, तथापि एकपत्नीत्व को बहुत अच्छा आदर्श समझा जाता था और उस समय समाज में एकपत्नीयता प्रचलित था। उपासकों (आवर्णों) की विधि में उल्लेखना तथा एक पत्नी वाले (उल्लेखनीयः एकपत्नीयः) पुनर्वा की विशेष प्रतिष्ठा के आमतों पर बिठाया जाता था।^१

बृहदारण्यक उपनिषद् (४।२।१-२) में ज्ञान भोगा है कि बहुपत्नी विवाह की प्रथा राजाओं के अनतिरिक्त दार्शनिक एवं विचारग्न शास्त्रियों में भी प्रचलित थी। यहाँ स्पष्ट रूप से बतला है कि यहाँ याज्ञवल्क्य की व्याख्या में और मैत्रेयी नामक दो धर्मियों की।

बौद्धधर्म में बहुपत्नीविवाह की प्रथा का प्रचलन था। महाभारत में यह कहा गया है कि भगवान् बुद्ध के पिता को माया और महाप्राया नामक दो माँ मनुमें धाही गयी थी। शिवजी अनुश्रुति की इसकी पुष्ट करती है। शिवजी अनुश्रुति में कहा गया है कि यद्यपि शास्त्रों में यह अटोत विधान था कि कोई पुरुष एक से अधिक स्त्रियों की प्रभु न करे, किन्तु मुन्दोदन ने राजकुमार अश्वत्थामें पंडित नामक पहली स्त्री को रूपाया था, अतः इस महान् कार्य के लिए उसके प्रति बाहर प्रशंसित करने के लिए उसे दो स्त्रियाँ रखने की आज्ञा दी गयी।

अबू जातक में यह वर्णन है कि जब एक स्त्री ने पीछर के लीटने में देर की तो उसकी पति ने दूसरा विवाह कर लिया। यह नामक एक नामक गृहस्थ की गथा, सुयंमरा, पित्रा, मुवाता नामक चार स्त्रियाँ थी। गृहस्थ जातक में एक पति ने प्रोक्त देने वाली स्त्री को अलग करके दूसरा विवाह किया।

उत्तकाक (इमथरु) राजा की पौष्ट पत्नियाँ थी, विंविभार की पौष्ट की (महा-कथा ८।१।१५)। जातकों में इमथर की पत्नियाँ की संख्या २४६ बतायी है। कुछ जातकों (१०।११४, १३५) में कोई राजाओं की ५६००० स्त्रियों का वर्णन है, किन्तु सबसे अधिक संख्या रखने का श्रेष्ठ कुशावती के राजा मुदरम को प्राप्त हुआ है, उसके अन्तःपुर में ८४००० स्त्रियाँ थी (कावेन, जातक प्रथम भाग, पृ० २३१)।

इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि पुरुष पहली पत्नी के रहते हुए दूसरा विवाह करते थे, बहुधा सौतेली पत्नी का कठोर व्यवहार सहन न कर पाते थे। कई बार पहली पत्नी संतान न होने पर पति को दूसरे विवाह की प्रेरणा करती थी, किन्तु सौतेली या संतानवती होने पर उसके साथ इस बातका से सुधरेवहार करती थी कि पति का प्रेम अब उसकी सौतेली के साथ ही जाग्रत। धम्मपद (१।४५) की टीका में जावहरी के एक गृहस्थ का वर्णन है जिसने पहली पत्नी से संतान न होने पर उसकी प्रेरणा से संतानार्थ

* श्री. एम. आर्ये—श्रीमान एम् रिचोवस नामक इन की गृहस्थधर्म।

दूसरा विवाह किया। दूसरी स्त्री के गर्भवती होने पर पहली पत्नी ने पति के समस्त धन के छिन जाने के डर से ब्याहनों द्वारा अपनी सौत्र का गर्भगम कराया। इस प्रकार सौत्र मार उठने यह कुचर्म किया और तीसरी बार उसकी सौत्र गर्भपात तथा ब्याहों के प्रयास से मर गयी।

बीड़ धर्मों के सम्मेलन में जाह्न सीता है कि बहुरत्नी-विवाह की रथा पहले राजाओं में ही और इसके बाद यह पुराई राजाओं से ब्राह्मणों ने ग्रहण की, ब्राह्मण धर्मिक भुक्त में धारणशील में तरकासीन ब्राह्मणों के सम-पदम की किया पर प्रकण बालने हुए बूढ़ के दत्तका वर्णन किया है।

अम्बष्ठ भुक्त में भगवान् बूढ़ में उस समय की ब्राह्मणों की श्रान्ति करण के ब्राह्मणों से तुलना की है तथा अम्बष्ठ नामका एक ब्राह्मण से भुक्त में ब्राह्मणों में उग मसम प्रचलित बुराईयों का स्वीकार कराया है। इस बुराईयों में एक बुराईय-विवाह भी है।^४ अम्बष्ठ भुक्त में एक पृथ्वी के घर में चार भायों का वर्णन है।^५ राष्ट्रपाल जब बीड़ सम्पादी हुआ तो उसके विवाह में उसे संसार के लौटाने के लिए अपने घर में प्रोजन कर निमंत्रण दिया और लोने की बड़ी राशि एकत्र करके राष्ट्रपाल की स्त्रियों को आमंत्रित किया—“बायो, बहूयो, जिन अलंकारों से जलकृत हो पहले राष्ट्रपाल कुसुम का तुम दिय होनी थी, उन अलंकारों से जलकृत होओ।” बाय में में स्त्रियों राष्ट्रपाल से लीं—“भार्य-पुत्र, लीं हैं वे अन्तराण हैं, जिनके लिए तुम बहूधर्म का धामन कर रहे हो” (बृहत्समी ५० ३५५-६)। बीड़ वाक्यम के इन उद्धरणों से स्पष्ट है कि उस समय हिन्दू समाज में बहुरत्नी-विवाह का वर्णित प्रचलन था।

बहुधर्मता तथा धर्मभूख

धर्मभूखारी में आपस्तम्ब ने बहुविवाह की प्रवृत्ति की रोकना चाहा। विवाह का वैदिक आदर्श एवं उद्देश्य पुत्र की प्राप्ति तथा धर्म का धामन है, इन दो उद्देश्यों के अतिरिक्त अन्य किसी उद्देश्य से किया जाने वाला विवाह निम्ननीय होना चाहिए। आपस्तम्ब धर्मभूख (२।४।११।१२-१३) ने इन दो उद्देश्यों के अतिरिक्त विवाह को न केवल निम्ननीय, अपितु दंडनीय ठहराया है। उतने स्पष्ट शब्दों से यह विधान किया कि पत्नी यदि धर्म और संतान के सम्पन्न हो तो पुरुष दूसरी स्त्री की प्रवृत्ति न करे, यदि धर्म और संतान में से कोई एक उद्देश्य पत्नी के सम्पन्न न हो तो दूसरी पत्नी को ग्रहण करे। इस नियम का अतिव्यवहार करके दूसरी स्त्री ग्रहण करने वाले

^४ अंगुसर निवाय ३।४।५ बृहत्समी ५० ३५०

^५ बन्धित निवाय २।४।३

^६ राष्ट्रपाल भुक्त बृहत्समी ५० ३५५-५६

के लिए उसने यह व्यवस्था की है कि यह गधे की आँख के बाजों वाला हिस्सा ऊपर उठाते हुए धारण करने तथा छः मास तक सरत चरों से चिढ़ता बाँध कर निर्बाह करने (१।१०।१५। १६)। किन्तु आपस्तम्ब की एक पत्नी-विवाह की यह कठोर व्यवस्था अन्य धर्मसूत्रों में उपलब्ध नहीं होती। बसिष्ठ धर्मसूत्र (१।२४) ने बहुपत्नी-ग्रहण की जो व्यवस्था की है, विलम्बे स्मृतिकार्यों ने उसका पूरा अनुसरण किया है। इस व्यवस्था के अनुसार वर्षा-मुपुष्प की वृष्टि से ब्राह्मण की तीन स्त्रियाँ, क्षत्रिय की दो और वैश्य की तथा बृह की एक स्त्री होती है। वर्षा-मुपुष्प का यह भाव्य है कि ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य से ऊँचा होने के कारण ब्राह्मणों की अतिरिक्त क्षत्रिय और वैश्य की स्त्री को वष में ले सकता है, अतः उसकी तीन स्त्रियाँ होंगी हैं और इसी तरह क्षत्रिय की दो और वैश्य तथा बृह की एक।

सरास शब्दों में कहा जाय तो ब्राह्मण की इस प्रकार बहुविवाह के मामले में सबसे अधिक छूट दे दी गयी। इह तीनों वर्गों की कन्याओं से विवाह कर सकता था। बृह ने भी ब्राह्मणों द्वारा निम्न वर्गों की पत्नियाँ लेने का वर्णन किया है। बसिष्ठ धर्मसूत्र से हमें यह ज्ञात होता है कि ब्राह्मणों से अपने से नीचे की तीनों वर्गों की स्त्रियों से विवाह का अधिकार उस समय प्रचलित था। बसिष्ठ धर्मसूत्र से हमें यह भी ज्ञान मिला है कि आर्य उस समय काले रंग वाली बूट स्त्रियों का भी लिया करते थे, किन्तु धार्मिक मामलों में वह उनका पत्नी नहीं समझी जाती थी। बसिष्ठ धर्मसूत्र कहता है कि अग्नि का बधन करके अर्वात् अग्निहोत्र की विधि पूरी करके पूजा के पास न जाय। कृष्ण-वर्णापूजा समय के लिए ही होती है, धर्म के लिए नहीं। यह स्पष्ट है कि इस प्रकार की स्त्री उस समय धर्म-पत्नी नहीं होती थी, किन्तु उपपत्नी (Concubine) या शैथिल मास होती थी। बौधायन धर्मसूत्र ने आपस्तम्ब की पुत्र न होने की बात को कुछ अधिक स्पष्ट किया है। ऐसा जान पड़ता है कि पुत्र न होने की बात का कुछ दुःखमान होने तथा था। पुत्र्य एक दो वर्ष तक पुत्र न होने पर ही पुनरा विवाह कर लेते होंगे। इस प्रवृत्ति को रोकने के लिए बौधायन धर्मसूत्र (२।२।६) ने यह व्यवस्था की है कि पुत्र्य संतान न होने पर बसके वर्ष और धर्म कन्याएँ ही उत्पन्न होती होंगी १२वें वर्ष अपनी पानी का त्याग करे। बौधायन की यह व्यवस्था बहुत उदार है, किन्तु उसके बाद उसने पुत्र्यों को अप्रियमाचिनी होने पर पानी को छोड़ने की व्यवस्था भी है, वह हिन्दू नारी के लिए अग्रणी स्त्रियों में बहुत प्रयत्नकर सिद्ध हुई। उसके पुत्र्यों को पक्षी स्त्री छोड़कर अन्य स्त्रियों से जादी करने के लिए एक बड़ा सुनम बहाना मिल गया।

बहुभार्यता तथा कौटिल्य

कौटिल्य ने बौधायन की भाँति पुत्र न होने की बात की अधिक स्पष्ट व्याख्या की। कौटिल्य (१।२) ने यह व्यवस्था की कि यदि पत्नी पुत्रहीन न जन्म

बांध है तो पूरव दूसरा विवाह करने से पहले बात चर्चा प्रतीका करे। यदि स्त्री अथवा पितृ होते हैं तो १० वर्ष तक प्रतीका करे और यदि स्त्रियाँ ही उत्पन्न होती हैं तो १२ वर्ष तक प्रतीका करे, इसके बाद यदि वह पुत्र के लिए उत्पन्न है तो दूसरा विवाह करे। यदि वह इस विधम का उत्पन्न करता है तो उसे राजा को २४ वर्ष दण्ड देना पड़ेगा तथा स्त्री को कुछ संपत्ति उसे धन के रूप में देनी पड़ेगी। कौटिल्य ने यद्यपि आगे शर्त कर यह कहा है कि एक पुरुष नहीं स्त्रियों से शादी कर सकता है बल्कि कि वह उन स्त्रियों को जिन्हें विवाह के समय कुछ नहीं दिया गया था त्याग करने के समय कुछ धन (अधिकेयनिक) दे तथा उसके जीवन-निर्वाह का उचित प्रबंध करे, क्योंकि स्त्रियों में धर्म विवाह पुत्र उत्पन्न करने के लिए ही दिया जाता है (अर्थशास्त्र ३।२)। इन उद्धरणों से स्पष्ट है कि पुत्र का अभाव ही कौटिल्य को दूसरे विवाह के लिए उपयुक्त कारण जान पड़ा था, न कि अग्रिमवादिनी होने का निस्सार कारण और वह इस कारण दूसरी स्त्री से विवाह करने वाले पुरुष की अप्रवीण समझता था।

वह्नुभायेता तथा स्मृतियाँ

नारद ■ अतिरिक्त अन्य स्मृतिकारों ने बहुविवाह की आवश्यकता तथा कौटिल्य की नीति द्वारा नहीं सम्झा। मनुस्मृति (५।१६७-१६८) ने तथा मातृत्वकथ स्मृति (१।८२) ने पति की पहली पत्नी के मरने पर कौटिल्य दूसरा विवाह करने की आज्ञा दी है। गृह्य को धर्मशास्त्र के लिए पहली पत्नी के मरने पर दूसरी पत्नी का ग्रहण करना उचित ही है, पुत्र न होने की दशा में श्री मनु (६।८१) ने दूसरी पत्नी के ग्रहण का विधान किया है, किन्तु उसके साथ उसमें औदायन की अग्रिमवादिनी की शर्त को धुंधलाया है। इसके अतिरिक्त मनुस्मृति में पहली पत्नी को छोड़ने के अन्य बहुत से कारण बताये गये हैं। पति को उचित है कि सदिरा पीने वाली, निषिद्ध आचरण करने वाली, पति से विमुख रहने वाली, अस्वस्थ रोग से पीड़ित, गर्भ आदि नष्ट करने वाली, बहुत व्यय करके धन नष्ट करने वाली पत्नी के अविच्छेद रहने पर भी दूसरा विवाह कर ले। कौटिल्य की तरह मातृत्वकथ (२।१४८) पहली पत्नी के सिद्ध स्त्रीधन की व्यवस्था करता है। इस दृष्टि से मनु की व्यवस्था बहुत कठोर है, क्योंकि उसमें पहली पत्नियों को किसी प्रकार के धन को देने का उल्लेख नहीं किया गया। दूसरी पत्नी के जाने पर पहली पत्नी की मां शोचनीय दशा हो जाती है, वह सभी जानते हैं। उस समय उसे केवल कुछ धन से ही मुखपुर्बक जीवन व्यतीत करने का संतोष प्राप्त हो सकता है। मनु ने यह संतोष उन दुःखस्त स्त्रियों को नहीं दिया। मातृत्वकथ इस दृष्टि से अत्यन्त उदार है कि उसमें अग्रिमवा (पहली स्त्री) को धुँक देने की व्यवस्था की है (२।१४८)। किन्तु यदि कोई पति पत्नी पर शूद्र-मुँह कोई दोष नगाकर दूसरी

स्त्री से शादी करती है तो उसके लिए किसी प्रकार की वरदम्पत्ति नहीं की गयी है।

मुपसक्तान् के समुदाय एवं जन्म आदर्शों को प्रतिफलित करने वाली गारुड-स्मृति को ही यह गौरव प्राप्त है कि पतिव्रतों द्वारा उपर्युक्त वर्तों का बुध्दयोग करने पर उसने उनके लिए दण्ड की व्यवस्था की है। यदि कोई पति अनुकूल, अपसक्तों का प्रयोग न करने वाली, धन, साध्वी, सत्तान वाली स्त्री को छोड़ता है तो राजा को उसे काँड़ा वस्त्र देकर डीक मारने पर माना चाहिए (स्त्री पुस्तक २२)। किन्तु अन्त में स्मृतिवार्ता में मनु द्वारा संगत दोहों वाली पहली स्त्री के रहते हुए अनुसूचित विवाह द्वारा वाङ्मन, सन्धिय, वंश के बहुविवाह के अधिकार की स्वीकार किया है।

पातञ्जल्य स्मृति (१।३३, मनु० २।५०) ने विधान किया है कि पति की कथित है कि यदिरा दीने वाली दोषवस्तु रहने वाली, पूर्ण, बन्ध्या, बहुत बर्ष करने कम का नाम करने वाली, अग्रिम पक्षन वाली, माया पैदा करने वाली और पति से द्वेष करने वाली स्त्री के रहते हुए दूसरा विवाह कर ले। इस से स्पष्ट है कि बहुविवाह का रीय उस समय अज्ञात प्रचलित हाँ गुना वा और उसके आधारोचित सिद्ध करने । लिए उपर्युक्त भवे वीय वाली में हूँगे गये। ऐसी पत्नियों का पति से दष्ट होना स्वाभाविक था, अतः मनु ने ऐसी पत्नियों के लिए बन्ध की भी व्यवस्था की है। दूसरा विवाह करने पर यदि पहली पत्नी कुपित होकर घर से बाहर निकले तो उसे दीक कर रवे अपरा उसे पिला के घर पहुँचावे। मनु (३।१२।११) यह मानता था कि पुण्य विवाह केवल धर्मकाय के लिए ही नहीं करते, अपितु उसके विवाह कामवासना से प्रेरित होकर भी किये जाते हैं और उन विवाहों के लिए वसिष्ठ की तरह मनु ने अनुसूचित काम के वाङ्मन को वाली वर्गों की स्त्रियों, धर्मियों को तीन, द्वेषों को दो तथा बृद्ध को एक स्त्री ग्रहण की स्वीकृति की है (मनु० ३।१७)। आगे चलते वे (३।१४-१६) स्पष्ट है कि मनु (३।१७) इस अनुसूचित विवाह का कोर निरोधी था और उसने अनुसूचित विवाह का वर्णन केवल इसलिए किया कि यह उस समय के समाज में प्रचलित था। मनु ने एक-विवाह को मानवी को स्पष्ट मन्त्रों में उन्मीलित किया है। पति-पत्नी विवाह करने दोष मल करे कि ने एक दूसरे के अधिकृत होकर रहते हुए कभी भी परस्पर विषम का संगम करें। पति-पत्नी आचरण एक दूसरे के प्रति रखने रहें, यही अंश में स्त्री-पुरुष का परम धर्म (मनु० ३।१-१-२) है।

दूसरा विवाह करने के विषय में मनुस्मृति का यह आदर्श था कि रोगिणी स्त्री भी यदि पति के हित में उत्तर और सुखी हो तो उसकी अनुमति मिले बिना पति दूसरा विवाह न करे। ऐसी पत्नी निरावर करने योग्य नहीं । (मनु० ३।५२)। किन्तु मनु ने पत्नियों को परामर्श मात्र ही दिया है। पति यदि पत्नी का निरावर करके दूसरा विवाह करता है तो उस पति के लिए मनु ने कौटिल्य वा आपस्तम्ब

की भाँति किसी दण की व्यवस्था नहीं की है। मनु (१.१.५) के यह विहित होता है कि बंगाल के कुलीन ब्राह्मणों को उत्पन्न उस समय के ब्राह्मण संतान होने पर भी धन के लोभ से विवाह किया करते थे। मनु के ऐसे विवाहों की निन्दा की है और उनका प्रथमतः धर्माने के लिए यह व्यवस्था की है कि इस प्रकार के विवाह से उत्पन्न पुत्र ब्राह्मण का नहीं होगा, अपितु धन देने वाले का होगा। मनु के मन्त्र इस प्रकार हैं—“यत्र कोई ब्राह्मण पक्षी स्त्री रहने पर (तन्त्रिणि वादि के निषेध के बिना—कुल्लुक) किसी से धन वाचना करके अपना दूसरा विवाह करता है, उस उत्तमोत्तम विवाह से केवल रक्षिकन विभक्ता है। विधवा स्त्री से उत्पन्न संतान धन देने वाले की भाँती है” (मनु १.१.५)।

वाचस्पति की तरह मनु के समय में भी दोनों बाँनी कन्या के बचने अच्छी बाल्य शिक्षाकर पिता विवाह के समय बीच बाँनी कन्या का दाव किया करते थे। कौटिल्य (अर्थशास्त्र ४६) ने इन व्यवस्था में दाव दाँनी कन्या का छोड़ने की व्यवस्था की है। किन्तु मनु कहता है कि बीच बाँनी कन्या के साथ दूसरी विधवा का उत्तम कन्या को भी से से (मनु ५.२.४)। अब कोई व्यक्ति घर का उत्तम कन्या विवाहकर विवाह के समय निष्कृत कन्या दे ती इस अपराध के दण्ड में उसे एक ही मुक्त में दोनों कन्याओं का विवाह उस घर के साथ कर देना पड़ेगा, ऐसा मनु ने कहा है (५.२.४)। याज्ञवल्क्य (१.१६६), व्यास (२.१.५.६७) तथा शारदा (३.१-३.३) भी इस प्रकार की व्यवस्था करते हैं। इन सब में बोधा देने वाले को संन्यास अपराधी बताया गया है, किन्तु इन सबने मनु की इस विविध व्यवस्था का समर्थन नहीं किया कि घर दोनों कन्याओं से शादी कर ले। सच्ची बात तो यह है कि वर्तमान संस्कृत के निर्मात्रकाल (१५० ई० पू०) से पहले ही हिन्दू समाज में बहुविवाह की प्रथा प्रचल हो चुकी थी। महाभाष्य (१.२० ई० पू०) में गार्गीय सूत्र २.१.२२ पर यह कहा गया है कि ब्रह्मण वसु के पूजने में बहुवचन का प्रयोग करना चाहिए, जैसे आपके किछने वाले हैं, आपकी कितनी स्त्रियाँ हैं।^१ स्पष्ट है कि बहुविवाह प्रचलित रहने के कारण ही यहाँ स्त्रियों वाला बहुवचनान्त उदाहरण दिया गया है। व्यास (२.१.५) ने मनु की यहाँ पर ही यति को दूसरे विवाह की अनुज्ञा की।^२ देवसं स्मृति ने स्पष्ट रूप से कहा है कि गृह की एक स्त्री होती है, वैश्य की दो, क्षत्रिय की तीन, ब्राह्मण की चार तथा राजा की पच्चेस।^३

* महाभाष्य २.१.२५ केविशालाहुरनिशोतेर्षं बहुवचनं प्रयोक्तव्यमिति ।

अथवा कति कनतः पुत्राः कति नक्तो भार्या इति ।

१ व्यास स्मृति २.१.५-

सुतां च कर्मकामनोक्त्युतां वीर्योपिनीम् ।

सुपुत्रां कृतवत्सलां नारोगिण्येवमेत ॥

२ देवसं स्मृति,

एका गृहस्य वैश्यस्य द्वौ मित्रः क्षत्रियस्य च ।

पञ्चतः ब्राह्मणस्य श्रुतार्थां राज्ञी पच्चेष्टतः ॥

द्रुव के ईश्वरपूजा करने के उसके पिता उत्तानपाद का उसकी माता सुनीति से शाप दिया जाने वाला उल्लेखार्थ व्यवहार था। अपनी छोटी स्त्री कुशवि के प्रीतिवा झाड़ू के कारण सुनीति को बड़ा कष्ट भोगना पड़ा। कुशवि के पुत्र उत्तम के शाप सुनीति के पुत्र द्रुव ने भी एक रात की नींद में बैठना पड़ा तो कुशवि ने उसे अपना मनुष्य नहीं माना—'तू बाल, यह उल्काचिम्बला छाड़ दो, तुम हीन स्थिति रखने वाली सुनीति के गर्व से उत्पन्न हो, यह स्वप्न सर्वश्रेष्ठ है। मरने दुम्हारे लिए यह उपयुक्त नहीं है। मेरा पुत्र उत्तम ही इस घर बैठ सकता है' (मिन्नुपुराण भाग १ अध्याय ११)। रामायण में बहुविवाह के उपर्युक्त संकेतों के होते हुए मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्र ने जीवन भरमा एक विवाह के उच्च आदर्श को निवाह्य तथा अश्वमेध के समय पत्नी को वाचस्पत्य मनुष्य होने पर भी उम्हें विवाह नहीं किया, अपितु पत्नी का मन्त्रावर्णन करने के लिए सीता की स्वयंभवी प्रतिमा का निर्माण कराया।

बहुसंख्या तथा बहुविवाह—महाभारत में बहुपत्नी-विवाह के स्पष्ट संकेत मिलते हैं। भीष्मपितामह विचित्रवीर्य के लिए, अम्बा, अम्बिका, अम्बाजिका नामक तीन कन्याएँ काशीयज्ञ के स्वयंवर में से अधिकार माने थे। पाण्डु की कुत्सी और माती नामक दो पत्नियाँ थीं। द्रुपद्यज्ञ के मेजद्वीप होने पर उसकी पत्नी नांधारी ने आधीकन अपनी भाँखों पर पड़ी बाँधकर वासिष्ठस्य का उज्ज्वल आचमन रखा, किन्तु गांधारी की गंधाबाया से तिलों में एक सेन्धा में धृतराष्ट्र की सेवा की तथा सुमन्तु की अश्वय किया था (महाभारत १।११।४।१)।^{१०} उसके १०२ पुत्रों की भी अनेक रात्रियों का बर्चन मिलता है। दुर्योधन की दो रात्रियाँ प्रसिद्ध हैं, इनमें एक दुर्योधन सामन्त की माता है और दूसरी रात्री कर्जिकराज की कन्या को दुर्योधन स्वयंवर से अपहरण करके भागा था। इन रात्रियों के अतिरिक्त दुर्योधन के अन्तर्पुर में सिखा की कोई भी नहीं थी। तत्पश्चात् (२।४६) में जब दुर्योधन पाण्डवों की वन्दना पर ईर्ष्या करता है और दुःखी होता है तो धृतराष्ट्र उसे सामन्तता देते हुए कहता है कि तू तब तक दुःखी होते हो, दुम्हारे लिए बहुमूल्य दिव्यी, मुन्दर सिखा, मत्ता प्रकार के सत्र सत्रे हुए पर और शष्पानुसार समान करने के स्थान तत्पुत्र है (महा० २।३।१०)।^{११} दुर्योधन के भाइयों के भी इस प्रकार के मूल्य थे और बाद में पाण्डवों ने उन पर अधिकार किया (महा० ११।४४)।

१० महाभारत १।११।४।१-४२ काशीयज्ञः निजसमाख्याया उपरेण विवर्धता ॥

धृतराष्ट्रं मूरारामं वीरपार्यवराकिम् ।

११ महाभारत २।३।१०, अश्वमेधं बहुमूल्यं दीक्षितस्य मनोरमाः ।

कुम्भजिह्वं केसलानि विहाराण्य कनानुबन्धुः ॥

महाभारत में विदुर की एक पत्नी बतलायी गयी है किन्तु जातक कथाओं में उससे १ महर्षी, १००० स्त्रियों तथा ३०० बेटों का उल्लेख है (जातक सं० ६०१ कावेक पृ० ३१६)। पत्नी पत्नी दुलहा के होते हुए राज्य की राजकुमारी के साथ ब्रह्म विवाह करने के लिए जाते हुए मंगल को मार्ग में ही पड़ी मिली। उसने झोपी का ही अपहरण करवा लिया। दक्षिणी के अतिरिक्त श्री कृष्ण की सपत्न्या, काशिकी आदि आठ पत्नियाँ थीं। इनके अतिरिक्त प्राग्व्योतिषपुर के राजा मरकासुर का दस करों से इसकी १६००० कन्याएँ थीं श्रीकृष्ण की पत्नियाँ बनीं। हुए ये दाँवों को ही पड़ी के साथ १०० पुत्रों का भिन्न बाल भी थी (महा० ११४६।१५)। इनके महर्षी में मरु भी बहुत ही पुत्री दक्षिणी थीं। ही पड़ी इनको अर्द्ध ब्रह्म पदवासी भी और मरुता के तट पर पाण्डव ही पड़ी और सुनता की तथा इन सबको साथ लेकर भ्रमण करने जाया करते थे। पाँचवीं की राज्यभूय पक्ष के सप्तम अपने अधीन राज्य में इसकी अधिक बसती दक्षिणी मिली थी कि सुगोचर अपने पिता की पाँचवीं का वैभव सुनाता हुआ बड़े दुःख से यह कहता है कि युधिष्ठिर के राज्य में वर हजार ब्राह्मण हैं और वह दत्त के लिए ३० दक्षिणी का करण-वीक्षण करता है (महा० २।४६।१५ १।२३४)। सुत में कहते हैं पाँचवीं से यह विद्याल धर्मोत्तुवाय विन लभ, किन्तु महाभारत युद्ध के बाद तारे हुए एवं मारे गये राजाओं के परिचारकों से यह फिर पूरा हो गया (महाभारत १२।४४)। महाभारत काय के वेदि, मंगल और मलय पर्वों के तथा पाँचवीं के राज्य-पर्वों में बहुपरवीकृत की दशा प्रचलित थी। नेविराज विमुक्त में अपनी पत्नी पत्नी के होते हुए भी अपनी वधू तथा राजा वैशाखी का अपहरण किया (२।४५।११-१२)। साथ ही राजा खरासं भी भी कन्याएँ अस्ति और अधिक फल से व्यापारी गयी थी (महा० २।४५।३२)। मलयराज विराट की बुधिका कीकी और कीकी नामक दो पत्नियाँ थीं। विराट के पुत्र उत्तर के विवाही जीवन से स्पष्ट है कि मलयराज का एक विवाह कन्यापुर था। पाण्डव राजा भी बहुपरवीक थे। बुद्धि गाम्भीर्य (१।२।६३) की १० वद्वि में व्यापारी गयी थी जिनसे १०० वद्वि का उत्पन्न (भाष्यपुराण ६६।६१) बहुर की सुतनु श्रीमतेनी, रत्ना गीष्वा तथा अस्तिनी नामक तीन पत्नियाँ थीं। भाष्यपुराण (अ० १२६-१३१) में श्रीकृष्ण की के पिता मरुदेव की बीच स्त्रियों का पूरा ब्यौरा दिया गया है।

श्रीकृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न ने शुभांगी वैदवी, वनावती और मापावती से विवाह किया था। हुए पुत्र काम्य ने भी दो विवाह किये थे। कृष्ण के पौत्र अनिरुद्ध ने स्वप्न-वती से तथा बालासुर की कन्या उषा से विवाह किया था। पौर्ण पाँचवीं में से प्रत्येक की ही पड़ी के अतिरिक्त कई दक्षिणी थी। युधिष्ठिर की वैदिका नामक स्त्री थी (आदि पर्व ६५।७६)। भीम की वसन्धरा और द्विदम्बा नामक दो वध्व पत्नियाँ थीं। अर्जुनकी सुमित्रा, चित्रांगदा और उरुपी नामक तीन स्त्रियाँ थीं।

सहमेव की दूसरी स्त्री मद्रास की कन्या मित्रवा भी और इसी तरह बहुत की भी दूसरी स्त्री पति की राज्यकारी करेबुद्धि थी। (महा० १।६५।३३-३६)।

महाभारतकार पुष्पों के लिए व्यवसाय में कोई रीति नहीं समझता, आश्वमेध की इस बात का है कि उसने यह विज्ञान स्त्रियों के मुंह से कर्तव्यमाना है। आश्वमेधिक यज्ञ में चित्तान्तर करने की कर्तव्यता पुनः कर्तव्यमान के मुष्मिन् हो जाने पर विमान करती हुई स्त्री ने कहा है—“हे मुष्मन्, पुष्पों के लिए व्यवसाय (अनेक पत्नियों रखना) अपराध नहीं है, त्वत्की के लिए यह अपराध है” (महा० १।५।८०। १५)। अथर्वधर्म में एक राजाजी अपने पति से बाह्य करती है कि उसका पति स्वर्ग के पास न जाय, किन्तु वह की गति बनने के लिए वह स्वर्ग जायगी, क्योंकि पुष्पों द्वारा अनेक स्त्रियाँ ग्रहण करने में दोष नहीं है। पत्नियों का अधिक स्थिति करने में कोई कथम नहीं है, किन्तु पुनः पति का छोड़ने में स्त्रियों के लिए बहुत बड़ा अधर्म होता है (महा० १।१६।३५)। दूसरे ने अपनी कन्या को पौषों पाषाणों को वाधारक पत्नी बनाने का विरोध करते हुए कहा है कि एक पुष्प की अनेक स्त्रियाँ होती हैं, किन्तु एक स्त्री के बहुत पति नहीं होते (महा० १।१६।३७)।

पति का अपनी अनेक पत्नियों के साथ तुल्य व्यवहार कन्या कितना कठिन है, महाभारतकार ने यह तथ्य धर्म और उसकी पत्नियों के अनुरोध का ध्यान में रखा है। अथर्वधर्म (१५ ब०) में बताया गया है कि एक प्रजापति को २० पुत्रियाँ थीं। उसने बताया कि कन्याएँ चन्द्रमा की भाँति थीं। वे सब सहे-सहे मेघों वाली और असाधारण रूपवाली थीं, किन्तु उनमें से रोहिणी सबसे अधिक स्वयंसी थी, इसलिए वहमा उसी से अधिक प्रेम करता और उसी के घर में रहता था। इस कारण बाकी सब स्त्रियाँ चन्द्रमा से छुट्टी होतीं और वे अपने पिता एक से कहने लगीं कि चन्द्रमा हमारे पास आकर नहीं रहता, इसलिए हम आपके पास रहकर अपना करेगी। यह सुनकर दक्ष ने चन्द्रमा से कहा कि तुम ऐसा बहुत अयत्न मत करो और सबसे सभ्य प्रेम रखो (सर्व वर्तमान भाषा)। फिर अपनी कन्याओं से कहा, कि “तुम चन्द्रमा के घर जाती जाओ। वह हमारी आज्ञा से सबसे सभ्य प्रेम करेगा।” वे चन्द्रमा के घर गयीं, पर चन्द्रमा फिर भी रोहिणी से पहले प्रेम विशेष प्रेम करता रहा। कन्याओं ने पुनः अपने पिता के पास आकर चन्द्रमा की शिकायत की। दक्ष प्रजापति ने इस बार पुनः चन्द्रमा को यह चेतावनी दी कि तुम सब स्त्रियों से सभ्य संबंध करते नहीं हो। तुम्हें साथ देना। (सर्व वर्तमान भाषा) मात्वा अपने विरोध)। किन्तु चन्द्रमा उनकी चेतावनी का विचार करके फिर भी रोहिणी के ही साथ रहने लगा। कन्याएँ क्रोध होकर तीसरी बार पिता के पास गयीं और प्रकाश करते रहने लगीं—“चन्द्रमा ने आपके वचन को नहीं माना, वे हमसे प्रेम नहीं करते, वे छटा रोहिणी के घर में ही रहते हैं, इसलिए

साथ हुआ तो या तो कारण खोजिये अथवा ऐसा उपाय कीजिये जिससे चन्द्रमा एक साथ सँभल करे"। उनमें बचन का मुमकद समझाने का प्रयास तो बहुत होकर राजमर्क्या के रोग को चन्द्रमा के पास लेजा। वह रोग चन्द्रमा के हृदय में घुस गया, चन्द्रमा दिन प्रतिदिन क्षीण होने लगा। उसने रोग से छूटने के लिए अनेक यज्ञादि के मत किये, पर सब का काम नहीं हुआ। चन्द्रमा के क्षीण होने में श्रीपतिदास की सलाह में उत्पन्न न हुई, वो थोड़ी बहुत औषधियाँ उत्पन्न हुई वे रजनीय तथा स्थाय के द्रव्यों की, औषधियों के नाम से प्रजा का साम होने लगा, शून्य्य दुर्लभ हो गये। सब देवताओं ने चन्द्रमा से कप की क्षीणता का कारण पूछा। देवताओं ने कारण जान कर सब से प्रार्थना की कि "चन्द्रमा के नाम से प्रजाओं का भला हो जायेगा, आप अपना धाम सौटा भीजिये।" इस प्रजापति ने कहा "कि आप स्वयं नहीं हो सकता, यदि चन्द्रमा सब स्त्रियों से समाज प्रेम करे, वो आप को कुछ अन्न में कप किया जा सकता है। साथे महीने तक चन्द्रमा खीन रहेगा और श्राव्ये महीने तक बड़ा करेगा" (गान्धर्व १५।४४।५०-५२। ३४२।५५)।

एहामार्य में अनेक स्थानों पर सप्तस्त्रियों के द्वेष एवं बलाह की चर्चा मिलती है। महाभारतखण्ड, सप्तस्त्रियों के दोष का अच्छी तरह समझा है, यही वह बहु कहता है कि (१।२१२।२६) स्त्रियों के लिए नीति में अधिक विचारक या भयंकर कोई दूसरी वस्तु नहीं है। सीधे तथा दूसरे को किस प्रकार नहीं सहन करती—यह भयंकराव के आख्यान से स्पष्ट है। एक महिष मदनपाद पत्नी रूप में उत्पन्न हुआ। वह पहले अपनी एक पत्नी अग्नि के पास रहता है, उसके बाद अगे होते हैं, वह उन्हें छोड़कर दूसरी पत्नी श्रिता के पास आता है। इसी बीच में अग्नि वन की अग्नि प्रज्वलित हो उठती है। वह पितृत्वेह में विह्वल होकर अग्नि के पास अपने अपने देवों के लिये जाना चाहता है। श्रिता जो ईर्ष्यापूर्वक जाने भरती हुई कहती है—"तू मेरे दुष्मन के पास जाना चाहता है। अग्नि पर मुझसे बेसा स्नेह का, अब मुझ पर वैराय नहीं है। अब नम अग्नि के पास ही आओ जिसके लिए व्याकुल हो रहे हो। मैं अभी तरह अकेली फिलीपी जैसे दुष्ट दुष्ट पर अश्रित श्री को अकेला फिजा गइरा है" (महा० १।२३५।११-१३)। कुन्ती के तीन पुत्र पैदा होने पर माँ की को बड़ा दुःख हुआ। माँ ने पाशू के कहा कि "जैसे भी पुत्र उत्पन्न करने की इच्छा है, आप कुन्ती से कहकर इसका उपाय करवा दें।" कुन्ती ने पाशू की प्रार्थना मान ली। किन्तु माँ के एक साथ दो पुत्र उत्पन्न हुए। अतः जब दूसरी बार माँ की अन्तान के लिए पाशू ने कुन्ती से प्रार्थना की तो कुन्ती ने स्पष्ट कहा कि मेरे एक बार कहने से माँ में दो पुत्र प्राप्त किये हैं, मैं रुकी गयी हूँ। मैं मुर्ख हूँ। मैं पहले नहीं जानती थी कि एक ही बार दो देवों को पुमाने से दो पुत्र पैदा होते हैं। अतः मैं आपसे दर माँगती हूँ कि आप इस निषण में मुझे माझान कीजिये (महा० १।१२५।२६-२७)। सौत का एक दुष्ट उदाहरण उपेवी का है। जब वर्जुन उसकी

नयीं हीन सुभद्रा को ग्राह कर काता है, उस समय औपवी अर्पण की प्रवृत्ति करते हुए चले कहती है (महा० १।२२३।१७) — "अर्जुन, तूम वही जायी जहाँ सत्यवत वध की पुत्री (सुभद्रा) है, (यहाँ क्यों आए हो), रस्सी से बंधी वस्तु की नाँव पर एक और कठोर मौँठ भगाने से पहला बंधन प्रबन्ध ही बीसा हो जाता है" इसका साक्ष्य स्पष्ट था कि अब सुभद्रा सुभद्रा के प्रेम के प्रयोजन में चले हो, अतः इससे मेरा साथ रहने प्रेम के बान का बन्धन हीन हो गया है। औपवी का कौन तब तक लागू नहीं हुआ अब तब सुभद्रा में ग्राहिणी का ता बंध बंधाकर, औपवी को प्रणाम करके यह मही जाता कि मैं आपकी बाली हूँ (महाभारत १।२२३।१३)।

महाभारत में एक अन्य स्थान पर (१।६८।८३-८४), द्रुपद विवाह करने पर पहली स्त्री (अश्विनी या अधिविधा) के पुत्र की गणना में व्यक्तिगत के साथ की गयी है जिसका सारा धन मष्ट हो गया है, जिसका पैदा घर गया है, जिसका व्यापक द्वारा पीछा किया जा रहा है और जो कभी है, यदि बिहीना है अथवा राजा द्वारा पकड़ा हुआ है। इसी प्रकार प्रजापति पर (५।३१-३२) में ऐसे व्यक्तियों की गणना है जो जाते हुए बड़े मष्ट से रात बिताया करते हैं, इनमें सर्वप्रथम वह पीड़ित अधिविधा स्त्री की भी गणना है।

ब्राह्मणों की स्त्रियों का दान—महाभारत के अनेक स्थानों में यह स्पष्ट होता है कि उस समय एक मात्र अनेक सुन्दर स्त्रियों की दान देने की प्रथा प्रचलित थी। प्रायः वे सुन्दरियाँ दासियाँ बना करती थीं। राजाओं से ब्राह्मण और अधिपति राजाओं की भेटों की आवश्यक प्रदान करते थे। महाभारत में इस प्रकार के उदाहरण की बड़ी प्रमाणाँ की गयी हैं। आनिमय में युद्ध के पीछे नाश से संतप्त युधिष्ठिर को यज्ञ के लिए प्रोत्साहित करता हुआ तनूज कहता है कि हे राजन्, यदि हम ब्राह्मणों को सज्जित हाथी, घोड़े, घो, अर्वाहृत दासियाँ, श्रेष्ठ, गाँध, भूमि और घरों का दान नहीं करते तो राजाओं में हम कतिपय अथवा बहुत बुरे समझे जायेंगे (महा० १२।१२।१०-११)। महाभारत में ब्राह्मणों को इस प्रकार सुन्दरियों के दान करने के अनेक प्राचीन उदाहरणों का वर्णन है। राजा सधर ने हजार अश्वमेध यज्ञ किमे और प्रत्येक यज्ञ के पूर्ण होने पर उन्होंने समस्त जैसे सुन्दरियों वाली स्त्रियों को समस्त एवं सोने के वस्त्रों बाँधे, सोने के बने महलों के साथ ब्राह्मणों को दान दिया (महा० १२।१६।११२)। अनुशासन पर्व (१०२।११) में गौतम ब्राह्मण को सुतराष्ट (सुवर्णम का पिता नहीं, किन्तु हाथी की पूरने वाला छवनेपी राज) यह कहता है कि मैं आपका एक हजार भीरे और एक सौ दासियाँ तथा श्रेष्ठ सो भूखों का दान करता हूँ (महा० १३।१०२।११)। इसी पर्व में भीमरथ के अधिलोक पहुँचने पर, जब ब्रह्मा आर्य्य में उसके जन कर्णों के बारे में पूछता है जिनसे वह इस लोक में पहुँचा है तो भीमरथ ने वहाँ पर उत्तम बलि देने वाले अनेक कार्यों का परिचयन किया है। इनमें एक उत्तम कार्य

सोने के १० हजार आकृतियों से भूषित, चन्दा की प्रति उज्ज्वल बने कारण करने वाली मुकुटहार कन्याओं का दाग बताया है (महा० ११।१०३।१२)। दूसरे नामक राजा ने अग्नि को १०००० सुन्दर वासियाँ दी थी (महा० ३।१०५।३४)। कन्याएँ बाहुओं को दिया जाने वाला स्वाभाविक दान है, इसका बहुत अधिक माहोत्सव बताया गया है। अनुशासन पर्व में उमा महेश्वर से प्रवृत्त करती है कि कित्त वस्तुओं के देने वाले स्वर्ग को प्राप्त करते हैं। इसके उत्तर में महेश्वर, अन्य वस्तुओं के साथ विष्णुओं के दाग को भी उम वस्तुओं के दानों से अधिक लाभ देने वाले स्वर्ग में बहुत देर तक वसना लोगों को भोगता हुआ, लब्धनाथि वही में अन्तरात्मों के साथ प्रसन्न होकर रहना करता है (१६।१८५।४)।

अपने अग्नि की कथा भी इस दाग की स्पष्ट करती है कि क्षत्रिय कित्त प्रकार कई बार स्वर्गपूर्ण उद्देश्यों से अपनी कन्याएँ बाहुओं को दिया करते थे। यहाँ अप्सरा भी एक वचन के तथ्यता करते हुए बहुत दिन बीत गये थे। उनका जोरा तब तक जारी रखा (वीर्य की मिट्टी) से एक गया था, जिसके बमकाली हुई दोनों बाँधे खुली रह गयी थी। राजा कर्पसि की एकमात्र बेटी, मुकुटा अपनी महेश्वरी के साथ खेलती हुई उधर जा निकली। उसे यह देख कर मुगुहल हुआ। बात सुनकर भयलता में, उसने उस अग्नि की बीबी में काटे चुम्बो दिये। इस पर अग्नि अक्षय अक्षय वृद्ध हुए और उन्होंने शीत के प्रभाव में, मार्गति की देना का सम्पन्न होकर दिया। राजा की श्रेष्ठ इस दाग के बहुत प्रेम-दान और पुत्री हुई। राजा ने इस किम्वदन्त बहना का कारण जानना चाहा। मुकुटा ने स्वयं राजा को इसका कारण बता दिया। राजा ने अक्षय के दाग जाकर जमा जाँचनी चाही। अक्षय ने सभी कठिनाई के एक ही क्षण पर समा करना स्वीकार कर लिया कि मार्गति मुकुटा का विवाह उससे कर दे। राजा ने एकवचन अपनी कन्या का दाग अग्नि को कर दिया और उस मुकुटा ने मर्गिन बहना में, उस वृद्ध और वदपुरत अग्नि की आशापात्रक पत्नी के क्षण में वेदा प्रारम्भ कर दी (महाभारत ३।१२२ वि० अ० १।११५।१०, १।११७।१३, तत्पश्चात् अ० ४।१।६, मार्गवत पुराण ३।३)।

मुकुटा ने अपने पिता के लिए आभ्यास किया वह अनुमत्त है। उनमें अपने वृद्धी जीवन की भी सन्तोष में दिखाया। किन्तु यह स्पष्ट है कि सभी कन्याएँ मुकुटा का सा उच्च आदर्श नहीं प्राप्त कर सकती थी। क्षत्रियों की कन्याओं को गटीय बाहुओं के धरो में वडा कष्ट उठाना पड़ता होगा। इसका सबर में बाहुओं को स्वयं अनुष्ठान और कन्या महिल कन्याओं का दाग किया, ताकि बाहुओं को कोई कष्ट न बढना पड़े। बाहुओं की आधिक क्षमति बहुत शोचनीय रहा करती थी, यद्वा ने (११।१३) स्पष्ट रूप से, दाग पूरा करने के लिए बाहुओं की मूढ़ तक के पर से, जोरी के धन लाने की स्वीकृति दी है। यदवा ही नहीं, बाहुओं के बाहुओं का धर्म और यथ बहना है (वही

१११२)। ब्राह्मण भूमा होने पर जोदी करती राजा को कोई एक उल्लेख नहीं देता चाहिए क्योंकि जो म की गुर्वता से ही ब्राह्मण भूमा करता है (वही १११२१)। इस प्रकार इति ब्राह्मणों के घर में राजकन्याओं का सुधी रहता कठिन था। ऐसी कन्याएँ बहुत होंकर घरों से भावती थीं। मनु (१।८३) में इसका स्पष्ट उल्लेख है और ऐसी कन्याओं को समपूर्वक बांध रखने या पीहर में खोल देने का विधान है। ऐसी कन्याओं के विधवा के उद्देश्य से ही, साम्प्रदायिक स्मृतिकारों ने स्त्रियों के पुनर्विवाह के अधिकार को साम्प्रदायिक संरक्षित कर दिया और पतिव्रत की पत्निया के बड़े गौरव माने। स्मृतिकारों की स्त्रीसम्बन्धी व्यवस्थाओं में इन महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक तत्त्व को जोरधन नहीं करना चाहिए।^{११}

१२ ब्राह्मणों को कन्या दान करने के दो प्रधान उपर विवेच्ये गये हैं, इनसे यह स्पष्ट है कि इस प्रकार का दान ब्राह्मणों को अभिमत एवं स्वीकृत था। अतः प्रकार के विवाहों में बाह्य विवाह सर्वोत्तम मतमा मथा है। यदि उक्तका अर्थ ब्राह्मणों में प्रचलित विवाह किया जाय तो हमें उक्तको उत्कृष्टतम मन्त्री तरह समझ में आ सकती है। इस विवाह में पिता कन्या को अलङ्कृत करने घर को देता है तथा घर में बैठ नहीं जाता। अन्य विवाहों में घर की कुछ सुलज्जा देना पड़ता था। स्मृतिवियों में इस सुलज्जा की मन्त्रा निम्न है (वेदिकेऽनुरधु० १६३-४) और ब्राह्मणों को कन्या दान करने की बड़ी प्रशंसा की गयी है। कई बार राजा कन्यापूर्व प्रवेशनों से ब्राह्मणों को कन्यादान करते थे। महर्षि विश्वामित्र के विधवा गानध को ५०० घोड़ों की सुवस्तिमा भूरी करने के लिए राजा घर्षाति ने अपनी कन्या भाग्यवी को दिया, क्योंकि घर्षाति के राज्य में इस सुन्दरी कन्या की बहुत भोग चाहेंगे। अतः गानध ने, कन्या पुत्र प्राप्ति की इच्छा रखने वाले हर्षवध, विभीषात और पराशर को माधवी इस हाल पर की कि वे माधवी से पुत्र प्राप्त करने के बाद, माधवी की उर से लौटा बने और पुत्र के बचने में २०० घोड़े बने। उपर्युक्त राजाओं ने माधवी से कन्या: वसुमता प्रसवर्ण और तिथि नाम के पुत्र प्राप्त किये और गानध को बचने में ६०० घोड़े मिले। २०० घोड़े भव भी बचे हुए थे किन्तु अब माधवी की तेज बाला कोई नहीं मिल रहा था। अतः में गानध ने ६०० घोड़ों के साथ माधवी को रुध के चरनों में अर्पित किया। विश्वामित्र के माधवी का अन्धक नामक पुत्र हुआ (महाभारत ५।१०६।१६)। इस कथा की आख्या मुनिमन्त्रमन्त्र सरकार ने 'शिव मन्त्रवृद्ध आक अन्तरी सौमन हिस्टरी आक ईशिया' (पृ० २०५) में यह की है कि हिन्दू राजाओं के आतंक से प्रपञ्चित पौरव (घर्षाति), विभीषात (हर्षवध), आसी (विभीषात), उशीवर और काम्यकुम्भ के राजा विश्वामित्र माधवी के संबंध में एक सूत्र में बच गये और उन्होंने हिन्दुओं के विषय अभिलिखित मोर्चा बनाया। महा-

संस्कृत काव्यों में बहुपादेता—संस्कृत काव्य के पाठकों और श्रोत्यों के सामील भारतीय समाज की विवाह संस्था पर जो प्रभाव पड़ा है, वह अविचारित राज्यों एवं समाज के उच्च वर्ग तक ही सीमित है। इस समाज में देवता के "सर्वा रात्रं पश्यन्तः" का श्रुत पावन होता था। कवि-कुल सिरांसि कानिवाच के श्रुतवा का श्रीगणेश वचन श्रुतवर्णों के मुख्य धर्म के इन आदर्श में होता है कि वे मन्त्रान के विना गृह्य-शास्त्र में प्रवेश करने के (यथाई गृह्यसंहितायाम् श्रु. १।७), -धर्मा ज्ञा गायत्री सप्तमि बहुत गी स्त्रियों ने साथ, विवाह करके, उनके साथ मन्त्र में निष्कृत विवाह करने वाले राजा अभिषेक के वर्णन के साथ होता है।

कागिपारा के तीनों पाटकों के नाथक अपनी पत्नी पत्नी या गलिनदी के होते हैं। दूसरी रिश्ते में तो साथ बिबाह करते हैं। सामन्तिकान्तिमित्र वगैरे नामक भक्तिमित्र गद-रागि भागिनी और दूसरी गली इरावती के होते हैं। श्री सामन्तिका की और अज्ञात होना है। भागिनी सामन्तिका को राजा की दृष्टि से पूर राजा बहती है, किन्तु राजा उनको चित्र। अज्ञात होकर उसे साधन लगता है, अपने मित्र बिदूषक गौतम की चतुर संभवा में, राजा सामन्तिका का मूख बेचना है और उसपर भयंकर अनुरक्त हो जाता है। गली प्रदेक राई द्वारा रचित भक्ति की तरह, सामन्तिका को कड़े गहरे में रखती है। किन्तु समयवश में अन्तर्गत के गहरे के लिए, बाकी हुई सामन्तिका का राजा के साथ अन्तर्गत भिन्न होता है, इसी गमक अन्तर्गत। रागि इरावती के धर्म का फल है गद में भग्न पड़ जाता है। इरावती अत्यन्त मूढ़ भोजन राजा को बेचना से पीड़ित हो भक्तिमित्र है और गदराग होकर बली जाती है। इरावती के यह वृत्तान्त गुरुवार, रागि भागिनी सामन्तिका को एक भूमिगृह (अज्ञात) में कैद कर देती है। किन्तु निरु-धक सामन्तिका को इस कैद के भी अड़े बसतारपुत्री धर्म से मुक्तता है और अन्त में दोनों रागिनी की सहमति से अन्तिमित्र सामन्तिका से बिबाह करता है और गदक की समाप्ति पर भवतावश में राजा रागि को यह कहता है कि "अन्तिमित्र द्वारा गौतम के गले हुए भक्तियों का अभीष्ट तो पूर्ण हो जायगा, किन्तु रागि के बारका अत्यन्त कोष करने वाली साथ बली गयी मुझे दसत रहे, यही मेरी आज्ञा है।" १११ भिक्तोंकेवीध में राजा गुरुवार काजीराज की पुत्री, पहली रागि के होते हुए भी बेबागता उवती है भेस करता है और टीपरे बंक में रागि विद्यावृत्तवाहन वगैरे करके, अपने सुख को सितावकमि लेकर राजा

भारत में कम्युनिज्म के साथ उदाहरणों के लिए देखिये १९५१-६०, १९६१-७०, १९७१-८०, १९८१-९० ।

११. मानविकाभिहित—एवं ते प्रसाधमभूति ! अयं देवि मित्यमेताच्छेदं हृदये प्रतिपादयामीह । असात्त्विकीतिविषयप्रभृति प्रज्ञायां, क्षणस्थितौ न कान्तिरिति शान्तिमिति ।

पासबय में जनेक बलिगों का बर्णन दिया है (२।१६४, ३१६, ७।३६) । श्री हर्ष के लक्ष्य में, इसका बनेक स्थानी पर उल्लेख किया है । बनेकली हंस द्वारा बनेक के पास बनेका बनेक संवेन निजवाणी है । हंस को मदेन बसाकर बनेक में उसे कहती है कि मेरा बहु संवेन राजा को उस समय न बुलाया, जिसे समय बहु मन्त्रपुर को तिस्यों के साथ बनेक के पास तिसान्त मनुष्य हो, क्योंकि जो बनेको से मृष्ट हो मुका है उसे स्वाधु बुधमिन्त एवं अन्धका जग बीने में बनेक नहीं जाना है (१।६३) ।

बीने मृग में कलुषावैता—बीने नाम में बहुमिकाह की प्रथा प्रचलित थी । बीनेस्थनीय विचारा है—“वे (मापरीय) बहुत भी तिस्यों से विवाह करते हैं ।”^{२०} विवाहित तिस्यों के अतिरिक्त बनेक तिस्यों को केवल जामोद जमोद से लिए राजा जाता था । बीनेस्थनीय में कहा है—“कुछ कोहों में बनेकित सधूमिनी बनाने के लिए विवाह काके भाते है और कुछ को केवल जामोद के हेतु उमा घर को लकड़ों से घर देने के लिए ।”^{२१} कोहिय के अनेकाल में श्री बीनेस्थनीय के विवरण की पुष्टि होती है । कोहिय (३।२) लिखता है पुष्प बहुत भी तिस्यों को श्राव्य करे, क्योंकि तिस्यों पुष्प उत्पन्न करने के लिए ही है । महलपुननय की बनेक तिस्यों भी और बनेकपुन मोर्षे उसकी पुरा नामक राजी के उत्पन्न हुआ कहा जाता है । बनेक की कई रागिया थीं । इनमें काव्याकी के राज का बनेक के एक विचारलेख में वर्णन है । बनेक के कथानु पुष्प कुणाल को अपनी विचारा विचारलेख का कोपकावन होकर अपनी बीने विचारा देनी पड़ी थी ।^{२२} पुनबन के प्रचारी बनेकपुन (विचारलेख) की कुहरेमाला और पुनबेरी या पुनबेरीनी को पतिया थी ।

बनेक में कलुषावैता—११ श्री कलुषावै के कारण में भारतीय समाज का बनेक करते हुए बनेकनी लिखता है कि हिन्दु लोग बार से अधिक तिस्यों से विवाह नहीं कर सकते, किन्तु बहु विचारलेख नहीं होती होता ।” बनेकलेख : उसने कुरान बरीक की बार तिस्यों की पात्रनी को हिन्दु अने के लिए भी एक समय दिया । बनेक काल के इतिहास में बार से अधिक विवाह करने वाले बनेक राजाओं की बनी मिलती है । पुष्पीराध राजी के अनुसार पुष्पीराज ने ११ से ३५ वर्ष की आयु के बीच में १४ विवाह किये । बनेकलेख के लिए अधिवार पर जाने के लकड़ी इल्ली, पुष्पीरानी, इलायची, हंस-बरी, कुरमी और हम्पीरनी रागियों में किस प्रकार एक वर्ष की देरी करानी, इसका बनेक बनेक के राजा के ११ से बनेक में बनेक बनेकलेख बनेक किया है । यदि पुष्पीराज राजी को कनेतिहासिक काम्य श्री भाग श्राव ही थी यह उस समय के राजपुत्र

२० बीनेस्थनीय का बनेक बनेक विवरण, पृ० सं० ३४

२१ बीनेस्थनीय का भारतीय बनेक विवरण, पृ० सं० ३४

२२ विचारलेख, पृ० ४००-४१० ।

को उर्वशी ने विवाह करने की स्वीकृति देती है। अभिज्ञानसाकुन्तल में दुष्यन्त हनूपर्वी, धनुमती आदि अनेक गर्तिनीयों के होते हुए भी जकुन्तला से तब वास्तव में विवाह करता है तो जकुन्तला की सभी अनुसूया यह अनिष्ट शंका उपस्थित करती है कि राजा बहुत ही स्त्रियों के पति होते हैं। दुष्यन्त इस आशंका का विदाकरण करता हुआ कहता है—'रानियों की अधिक संख्या होने पर भी, धने कुल की प्रणिष्टा की वो जी बन्तु है—साथर का सम्म बानी पृथ्वी और मुन्तारी वह गर्वी'।^{१४} कब अपने मृगमिष्ट आजीर्ण (अप०) में जकुन्तला को यह आदेश देता है कि अपनी सीता के साथ अपनी गर्तिनीयों का सा वर्णन करना।^{१५} प्रथम अंक के प्रारम्भ में राजा जंगमदी धनुष भी अर्पणति में राजा दुष्यन्त को उपलक्षण देती है कि वह अधिपति मनुमोक्ष मनुष्य की भाँति पहली भाग-मोक्षी (धनुमती) का आम्बोधन कर उसे कैम भूल गया है।^{१६} उस समय के अपनी सीता अनेक स्त्रियों से विवाह करने में। छठे अंक में राजा गुण व्यापारी के बारे में यह कहता है कि व्यापारी अवश्यमेव अनेक गर्तिनीयों का साथ होता है क्योंकि वह बहुत बनी वा।^{१७}

मुक्तकटिक में, आर्य काष्ठ का पहली पत्नी होते हुए भी, वसन्तमेव उसे धारती है। राजा हर्ष के दत्तात्रेय तथा प्रियदर्शिका के दोनों नाटकों में राजा अपनी पहली रानियों के होते हुए नागरिका (दत्तात्रेय) और प्रियदर्शिका में विवाह करता है। बाण में हर्ष को माता मनोमती के सुहृदों ने यह कहा था कि मैं लोगों के गिर करने पर उभा है मर्कट उसको पराभूत किया है (हर्षचरित प्रथम उपलक्ष्य)। कादम्बरी में अनेक रानियों के साथ राजा चन्द्रवीर के आनन्दमोद का मुखर चित्रण है।^{१८} जम्बवीर मुकुन्द में विद्या समाप्त करके अब वह क्षमिण मोंटा को उस समय उसकी माता विद्यामती ने उसे आजीर्ण देते हुए कहा है—'जैसे पिता को कुला से भू इस समय विद्या में से मुक्त देखा जा रहा है उसी तरह अस्ती ही मैं तुझे योग्य बहनों के साथ देखूँगी।'^{१९} माय में विष्णु-

१४ अभि० सा०' संक ३—मनुसूया—मनुपदमताः हि राजानः भूयते ।

राजा-परिग्रह बहुल्येऽपि हे प्रसिद्धे कुलस्थ मे ।

मनुपदमता भोर्वा सभी व मुनयोदियम् ॥

१५ कही अंक ४ श्लोक १८—मनुपदम गुरुम् कुप प्रियतमीवृत्त सपत्नीकने ।

१६ कही अंक ३, श्लोक १—अभिज्ञानमनुसूयो अवास्तवापरिचुम्ब्य भूतमन्त्ररीम् ।

कमलवसतिभारतिभूतो, मयुर विसृज्यतेऽप्येव कथम् । ११

१७ कही छठ अंक—मनुपदमताः बहुपत्नीकने तत्र भवता भविष्यन् ॥

१८ कादम्बरी ८८ संस्करण, पृ० १२६-३० प्रजभिनीत चामुत्तमस्तुताभिरिण कनकशृङ्गाको दीपिचरं चिह्नीत ।

१९ कादम्बरी पृ० २०६—यथा विष्णुः प्रसादस्तमस्तानिभवेत्तेविद्यानिदामोक्तो-
ऽत्येवमभिरुचि कालेनानुमानाभिधुनिरुपेक्षमाभोक्तविश्रामि ।

पासबज में अनेक बलिदानों का वर्णन किया है (२।१६४, ३११, ७।१६)। श्री कृष्ण ने मैत्रा में, इसका अनेक स्वाध्यायों पर उल्लेख किया है। एकमात्र हीन इन्द्र का केवल अपना प्रयत्न सर्वत्र विद्यमान है। इन्द्र को सर्वत्र प्रकाश करने में उसे कहाँ है कि वेरा यह सन्देश राजा को उस समय जब सुनाया, जिस समय वह अश्वपुर की स्त्रियों के साथ संन्यास के बाद गिराया भंग्य हो, क्योंकि जो पानी से धुंध हो चुका है उसे नया सुनिश्चित एवं कष्टा जल पीने में मना नहीं जाता है (३।६१)।

मौर्य युग में बहुकार्यता—मौर्य काल में बहुविधा की प्रथा प्रचलित थी। वैयस्यनीय लिखता है—“वे (मौर्य) बहुत ही स्त्रियों के विवाह करते हैं।^{१०} विवाहित स्त्रियों के अतिरिक्त अनेक स्त्रियों को केवल सम्मान के लिए रखा जाता था। वैयस्यनीय ने कहा है—“कुछ को ही वे वरधिता बहुविधों बनाने के लिए विवाह करके लाते हैं और कुछ को केवल सम्मान के हेतु तथा पर को सत्कारों से भर देने के लिए।”^{११} कौटिल्य के अनुसार मौर्य वैयस्यनीय के विवरण की पुष्टि होती है। कौटिल्य (३।२) लिखता है “कुछ बहुत ही स्त्रियों को प्राप्त करते, क्योंकि स्त्रियों का सम्मान करने के लिए ही है। मौर्यद्वारा अनेक स्त्रियाँ भी और अनगुप्त भी सत्कारी मृत नामक दासी में अपना बुद्धा कहा जाता है। अनेक की कई रसियाँ थीं। इनमें काकाकी के नाम का अनेक के एक निवास में वर्णन है। अनेक के समान कुछ कुलाम को अपनी विभागा विधायिका का संयोजन होकर अनेक स्त्रियों निवास करती थी थी।^{१२} सुप्रांत के प्रतापी राजा अनास (विजयविजय) की पुत्रेराजा और भुवनेश्वरी या भुवनेश्वरी को बलिदानों थीं।

अश्वपुर में बहुकार्यता—११ वीं शताब्दी के आरम्भ में भारतीय समाज का वर्णन करते हुए बाल्फोर्ड लिखता है कि हिन्दू लोग बार से अधिक स्त्रियों से विवाह नहीं कर सकते, किन्तु यह विवसनीय नहीं प्रतीत होता।^{१३} अश्वपुर: उसने कुरान शरीर की बार स्त्रियों की दास्यी को हिन्दू वर्ग के लिए भी एक समझ दिया। मौर्य काल के इतिहास में बार से अधिक विवाह करने वाले अनेक राजाओं की बर्णन मिलती है। पुष्पिण्ड राजा के अनुसार पुष्पिण्ड राज ने ११ से ३६ वर्ष की आयु के बीच में १४ विवाह किए। संयोगिता के लिए अभिमान कर जाने में उसकी इच्छा, पुष्पिण्ड, इन्द्रावती, इन्द्रावती, कुरमी और पुष्पिण्ड स्त्रियों ने जिस प्रकार एक वर्ष की देरी करानी, इसका पक्ष बरसाई ने राजा के ६१ वें मरण में बड़ा मनोरंजन वर्णन किया है। यदि पुष्पिण्ड राजा राजा की वैयस्यनीय काव्य भी माना जाय तो भी वह इस समय के राजकुल

१० वैयस्यनीय का विवरण कौटिल्य विवरण, पृ० सं० ३४

११ वैयस्यनीय का विवरण कौटिल्य विवरण, पृ० सं० ३४

१२ विजयविजय, पृ० ४०-४१० ।

अब तक कि राजपूत जाति इस कुरीति का सुशोभितन नहीं कर देगी।^{१५}

बिजाजी की आठ पत्नियाँ थी—मुगुलाबाई, मृतलाबाई, सईबाई, संभरलाबाई, सतपीबाई, काजीबाई, तथा गुणवन्ता बाई। रामदास स्वामी के एक हस्तलिखित जीवन चरित्र में यह बात बताई है कि इन आठ के अतिरिक्त मनोज्ञ और मनसुख नाम की अन्य दो स्त्रियाँ भी बिजाजी में स्थायी गयी थी।^{१६} बिजाजी के मरने के बाद लखपुर के झगड़ों ने संगठित साम्राज्य की शक्ति का कितना क्षीन किया यह बात किसी से छिपी नहीं है। पंजाब के मराठा महाराज गगरोलसिंहजी की भोजन दानियाँ थी। इनमें से पहली आठ के साथ उनका निगमपूर्वक विवाह हुआ था, और आठ का महाराज ने केवल शरीर काम में ही रीति पूरी करके हर्म में के विषय था। इनके अतिरिक्त बहुत सी स्त्रियों भी थी। अब रणबीरसिंह जी की देह बिता पर चलाने के लिए स्त्री गई तो उनके साथ उनकी भाद जिगलान दानियाँ तथा स्नान दानियाँ भी लगी हुई। इन विभिन्न दानियों तथा उनके पुत्रों के समस्त घरबारों के परस्पर ईर्ष्याद्वेष और कलह से शक्तिशाली सिक्ख राज्य का बीज ही पतन हो गया।

बंगाल के कुलीन बिजाह—आधीन काल के ब्राह्मणों में बहुविधा की प्रवृत्ति हम पहले देख चुके हैं। मध्यकाल में भी ब्राह्मणों तथा विशेष रूप से बंगाल के ब्राह्मणों में एक निश्चित अवसर की बहुभावेता प्रचलित हुई। यह स्मरण रखना चाहिए कि वह प्रवृत्ति सारे हिन्दू समाज में प्रचलित थी। महाराष्ट्र के प्रसिद्ध सक्त तुकाराम की दो पत्नियाँ थी, सबसे उनका गुरुत्त्व जीवन बहुत दुःखमय हो गया था। किन्तु बहुभावेता का चरम विकास हमें बंगाल के कुलीन ब्राह्मणों में मिलता है। बंगाल में यह अनुभूति प्रसिद्ध है कि जब वहाँ के ब्राह्मणों ने शास्त्रीय ज्ञान को निरमृत् कर दिया तथा उनका आचार भी प्राचीन बर्षावा [अनकूल] पड़ा, उस समय बंगाल के राजा बादिसुर ने कुलीन से बाँध बाह्य भेगावे। यह बात आठवीं सदी के प्रारम्भ की है। सिन्धु ६ वीं सदी के अन्त में, तत्कालीन के समय में, ब्राह्मणों का उपजाति में अधिक संघटित एवं दुर्बल हुआ। कुलीन ब्राह्मणों के भौतिक दृष्टि के दो मुख्य मंद किये गये—बीरेन्द्रमूय के कुलीन बीरेन्द्र कहुनाए और बह्मनराय तथा दूसरे स्थानों के कुलीन राडीस के नाम से प्रसिद्ध हुए। बहुभावेता का प्रचलन राष्ट्रीय कुलीनों में ही विशेष रूप से हुआ। इनके दो मुख्य मंद हैं—(१) कुलीन (२) शक्ति। बाद में इनमें बंगला नामक एक नये तीसरे मंद की भी वृद्धि हुई। शक्ति के कुलीन के जिसमें कुलीन ब्राह्मणोंचित्त की गुणों (ब्राह्मण के कलाओं का पालन, नम्रता, विद्वता, सदाचरण, तीर्थयात्रा की अभिलाषा, धर्म, समानता के प्राण बिबाह के विषय का संरक्षण, कष्टसहन एवं दयालता) में से आठ गुण हो।

१५ गौरीशंकर हीरकन्द बोला—रामायण का इतिहास अध्या १, पृ० १०६-१०७

१६ मध्यमधीन चरित्र कील, पृ० ७७६

संवर्धन का उद्देश्य अनिवार्य है। प्रथम धेनी के कुलीन प्रायः दो विवाह करते हैं, किन्तु संग कुलीनों में प्रचलित विवाहों की परिपाटी प्रचलित है। सरकारी रिपोर्ट के अनुसार इनमें विवाहों की संख्या १२, २०, ४०, ४० और २० तक है और यह बताया है कि कुलीन शास्त्रियों के लिए यह बड़ी साधारण ही बात थी। श्री बंकिम चन्द्र ने "बेबीबीस रासी" में एक शास्त्रण पात्र के मुख से कहलवाया है कि मेरे लिए विवाह तथा शास्त्र, जैसे घर में एक ही बाग़ थी, जैसे एक अन्ध विवाह कर लिया जाता है। शास्त्रियों के लिए वे तीर्थ बड़ी पुत्राग होती थी, इसके अनिदित उन्हें अपने घर में भीष्ट, पारा धिलाने और देवा करने का भी कोई संकट नहीं था, इसलिए बंगाल में कुलीन शास्त्रण ऐसी तीर्थ माने जाते थे।

श्री ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने बर्धमान, बाँकुड़ा, बीरभुज, हुगली, मेदिनीपुर, बीबीस बरगान, कलकत्ता, मयिदा, पकोहूर, बादीसान, करीबपुर, बाँका आदि बंगाल के प्रायः सभी जिलों के २७६ गांवों के बहुविवाह करने वाले व्यक्तियों की जो सूची तैयार की थी, उससे उपर्युक्त सरकारी रिपोर्ट की उक्त आंकड़ों की पुष्टि होती है। २७६ गांवों के १०१३ कुलीनों ने ४३२३ कुलीन कन्याओं के साथ विवाह किया था। इस तरह प्रत्येक व्यक्ति के हिसते में औसतन ४.३ स्त्रियाँ पड़ीं। किन्तु इनमें १०, १२, १५, २०, २५, ३०, ३५, ४०, ४० विवाह करने वालों की भी कमी नहीं है। ६०, ६५, ६७ विवाह करने वाले महापुरुष भी हैं। २० और २२ वर्ष की अवस्था के दो व्यक्तियों ने बाद, २५ वर्ष की आयु वाले एक व्यक्ति ने सात, २७ वर्ष की अवस्था वाले ने १२ और ३४ वर्ष की अवस्था वाले एक पुरुष ने ३५ स्त्रियों को सगाव बनाया था। श्री ईश्वरचन्द्र ने हुगली जिले के २६ गांवों की जो सूची तैयार की थी, उससे सात होता है कि इन गांवों के १६७ कुलीन शास्त्रियों ने १२४८ स्त्रियों से विवाह किया। इनमें १८ वर्ष का एक शास्त्रण ११ स्त्रियों के हीमाग्न (या कुजाग्न) का कारण बन चुका था, एक दूसरे सनगत २० वर्ष की अवस्था में ११ स्त्रियों के साथ भागिदारी कर चुके थे। बाँका, बादीसान और करीबपुर जिलों के १७७ गांवों की सूची से स्पष्ट है कि ६५२ व्यक्ति ६५४० विवाह कर चुके थे। इस प्रकार इनमें से हर एक के हिसते में ५.३ स्त्रियों की औसत बैठती है। इनमें बीबीस बरगान की सबसे अधिक रजा करने बंगाल के सामाजिक इतिहास में बलाघ कीर्ति प्राप्त करने वाले श्रीमूल ईश्वरचन्द्र मुखोपाध्याय हैं। वे बीटीसान जिले के कलकत्ता-सादी प्राय में रहते थे। उपर्युक्त सूची इनके के समय उनकी अवस्था ५५ वर्ष की थी और इस समय तक वे १०७ विवाह कर चुके थे। गण मंत्री सूची इनके के बाद जीवन की अन्तिम चढ़ी तक अन्ध किमती स्त्रियों को उन्होंने सगाव किया होगा।^{१३}

^{१३} १८६६ की बहुविवाह विधायक सरकारी समेटी की रिपोर्ट।

^{१४} श्रीमूल ईश्वरचन्द्र मुखोपाध्याय प्रणीत विद्याभारत या जीवन चरित्र, सिन्धी, लखनऊ, पृ० १०२।

इस प्रथा के मूल में यह है कि बच्चा का विवाह होना कुल में न हो, किन्तु बाह्यजनों में इसे बालीविवाह के एक शास्त्र के रूप में अपनाया है। वे शास्त्रात्मक विचारक जो भारतीय प्रथाओं का बहुत ही उच्चतम सम्मेलन करते हैं, जैसे ही इस प्रथा को भाति, की उन्नति का मानन समझें^{२०} किन्तु बंगाल में इसका मुख्य प्रेरक हेतु बाधिका ही रहा है। ये विवाह पट्टेन प्राप्त करने के लिए होते थे। प्रति बच्चे होने के बाद अपनी पत्नियाँ के बारे में कभी कुछ पूछताछ या उनके मरण-व्योपन की चिन्ता नहीं करते थे। वैवाहिक कर्तव्यों के पालन का उन्हें रब भाव भी व्याप्त न था। अत्येक विवाह पर बाह्यजनों की पर्याप्त देखभाल मिलता था और प्रति वर्ष स्वसुराज्य जाने पर कुछ धरकार एवं पुष्कल धन राशि उपलब्ध होती थी, उसका द्वारा जीवन अपने विविध सम्बन्धनों का बख्तर काटते हुए बीतता था, यहाँ वे प्राप्त धन के साथ उसका जीवन आराम से चलाता था। बालिका का एक मुकु इस उद्देश्य के बहुपत्नीविवाह करता था कि प्रतिदी उसके घर पर काम करके उसकी सम्पत्ति बढ़ावेगी। जयन्त कही उद्देश्य से बंगाल के कुलीन बाह्यजनों

२०. रॉबर्ट क्रिस्मस लिखते हैं कि बंगाल के एक प्रमुख विचारक हैं जहाँसे अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ "सेन्स इन रिजिजन" में सम्मिलित कुलीन बाह्यजनों की प्रथा की संस्था करते हुए यह भिन्न है भारत पूर्व के अनेक जातों में बाह्यजनों यन्त्री तथा जैसे गुद घोड़ों (Wellbred Stallions) का काम करते हैं। उनका यह कर्तव्य होता है कि वे भाति को उन्नत कर तथा निम्न भाति की सुधारियों को क्षय संशोधन करें। वे प्रतिष्ठित पुष्कल गृह और देश का बख्तर काटते हैं तथा सोल उच्च ज्ञान तथा अन्य वास्तुओं की चेष्टा करते हैं। उनके पांच घोड़े हैं और जैसे घोड़े में से चौड़े अंत को जैसे हैं तथा सोल जल सुरक्षित रखते हैं। इससे उत्पन्न जोष्य बच्चों के बहुपत्नी के बाद यह पुष्पात्मक विवाहिक पर्यंक के पात्र सम्पन्न जाता है यहाँ सुधारों उनकी प्रतीक्षा कर रहती होती है। बर्गार्ड सा के कुलीन बाह्यजनों के इस प्रकार के विवाह का प्रथम अनुबंध किया है, यह इसे भाति को उन्नत करने का एक उत्तम उपाय समझता है। इसकी सम्पत्ति में अनेकों के एकविधता (Monogamy) की प्रवृत्ति यही प्रतीक है क्योंकि इसमें सोल जीवन, सुधार एवं स्वस्थ पुष्कल को एक स्त्री के साथ जोड़ कर उसकी सोल जीवन और स्वस्थ संतानों पैदा करने की क्षमता पर एक अनुचित प्रतिबंध लगा दिया जाता है और सुधारों स्वस्थ निजों को निजमें वर्षों के प्रतीकों के साथ राज्य के लिए निजमें सम्मान पैदा करने की बसती है, यह राज्य एवं सम्पन्न के लिए यही उत्पन्न प्रथा है। देखिये ३ अक्टूबर, १९०७ के सम्पन्न के सम्पन्न में बर्गार्ड का काय पत्र। यह पत्र रिजनी की पुस्तक जीवन काय इतिहास, पृ० २२७-२६ पर वर्णित रूप में उद्धृत है।

बहुविवाह करते थे, किन्तु वे न तो उन्हें धर भाते थे और न उनसे काम करवाने में। पत्नियाँ अपने पितृगृहों में रखी थीं और पतिदेव सास में एक बार उनके घरों का बहकड़ काट काट कर अपने लिए पर्याप्त धन अर्जित कर लेते थे। उन्हें तो अपनी बहुत-पत्नी पत्नियों के नाम भी याद नहीं रहते थे, इन्हें ध्वज उड़ाने के लिए भी नोट घुकीं या प्रयोग करते थे। बाद-अध्यायक दास ने गठबन्धनी के समय में एक राधा में बहुविवाह का चित्र खींचते हुए यह कहा था कि "मैं जो कुलीन राज्यों को जानता हूँ, एक ने ६० के लगभग स्त्रियों का पालनपाल किया है और दूसरे ने १०० से ज़्यादा स्त्रियों के साथ विवाह किया है। दोनों के पास बहिराई हैं, इनमें से जिनके इन ग़ोशों के नाम विश्व में हैं, जहाँ उनके विवाह हुए हैं। बहिराई में स्वयंवरों के नाम भी दर्ज हैं। स्त्रियों के प्रारम्भ में प्रत्येक ब्राह्मण अपने स्वयंवरानियों की वैवाहिक (Nuptial) घाटा अपनी कही को देव कर करता है, प्रत्येक स्वयंवर से उसकी आर्थिक स्थिति में अनुसार तय होकर एक-एक वर्षों के प्रारम्भ में वह अपने घर लौट जाता है और साल का योग मान अपने गांव में बिनाता है। बहुधा ऐसा होता है कि पिता और पुत्र, पति और पत्नी एक दूसरे से विचित्र अजनबी भी बन सकते हैं और जब उनकी पारस्परिक संबंधों का साप होना है तो वे बहुत अधिक बुरा होते हैं। मैंने एक ऐसे कुलीन का नाम सुना है जो कशुद नाम प्राप्त होने के कारण एक दूसरे स्वयंवरानियों में रहने लगा। स्वयंवरानियों में इस जगह की कुछ आव-जगत हुई। यह कुछ दिन रह कर बादर सत्कार और धन के साथ बिदा हो गया। इनके कुछ दिन बाद जब घरवाले जगहों पर जाते हैं स्वयंवरों का अपनी बली पता पड़ी, बहुत आश्चर्य और दुःख हुआ।"^{१०} पिछली सदी के सत्रहवें के पास कुलीनों में बहुविवाह के विषय जो आभेदन-पत्र भेजे गये, उनमें विस्तार इन बात पर देव दिया गया है कि वे विवाह बात के मोन से होते हैं और इस घटा को अविश्वस्य कानून द्वारा बन्द कर देना चाहिए।

कुलीन विवाह की हरिमर्मा—इस बहुविवाह के कारण कुलीन ब्राह्मणों का जीवन मजे ही सुखमय हो जाता है, किन्तु हजारों स्त्रियों का जीवन बरबाद हो जाता था। धानि-काए बूढ़, लक्ष्मण, भीमिकारहाण और दुर्बल आदि स्त्रियों के साथ विवाह के पक्ष में बंध कर जन्म भर स्नेह सहती हुई पिता के घर पर रहती थीं। उन्हें केवल पति का नाम सुन देने का सौभाग्य प्राप्त होता था, क्योंकि पति उनके साथ कोई संबंध नहीं रखते थे और उनकी कोई खबर नहीं लेते थे, किन्तु इस प्रकार लोगों के मुँह से सुने हुए उर्ध्वका व्यर्थिक स्वामी के मरने पर इन स्त्रियों को कानून और समाज की कड़ि के घम से वैधव्य-जीवन के साथ कष्ट भोगने पड़ने को लाचार होना पड़ता था।^{११} यह वर्ग

^{१०} रिजली—वीथन आफ इंडिया, पृ० १६६-६७ पर उद्धृत।

^{११} १५ जुलाई १८६६ को भारत सरकार की भेजे गये बहुविवाह विरोधी आभेदन

की, समाज की और मोक्षदान की कितनी बड़ी विद्यमानता की कि कुल की प्रतिष्ठा के विचार से अनाथ बालिकाओं का विवाह किसी अछूत व्यक्ति में कर दिया जाय, वे बालिकाएँ आजीवन पवित्रेश के साथ सम्पन्न मुख से बर्जित रहें, किन्तु उनको मरने पर वैश्य्य जीवन की शरण मागना नहीं। वेमे तो मरि के जीवनकाल में ही इन स्थितियों को कुछ मुख नहीं था, किन्तु पनि के मरने पर वैश्य्य का भीषण दुःख अव्यक्तनी महता पड़ता था। इन स्थितियों के मुख का दर्शन और ईश्वरबन्ध विद्यासागर ने इन शब्दों में किया है—

"गुरु ब्रह्म ब्रह्म वे सत्त्वतः स वा, ब्रह्मिण असी चाहु नन केदरकायदेवते मवा ।
 सैन चारों ओर की बर्जित मकानों का चितमिहसा देखकर अपने साधियों के मुख कि इनने सुपडिग मन्दर मकान एक ही स्थितिसे वे क्यों बने हैं ? उत्तर मिला—“रुमें भारमाह की वेगमें रहती थी”। बारमाह की सैकड़ों बेमर्मी की बात सुनकर उस मर्मी श्वाभी में जो दियाव मुसे हुआ था, वह मुसे आन्ध तक नहीं भूला। किन्तु मछेड़ मारमा में इस निन्दनीय कर्म (बहुविवाह) का दोष देखना पड़ता है। “नवाबी मामसे बूझा होते हैं, उनके मुख मोन के अनुकूल लम्का ऐश्वर्य और सम्पत्ति भी होती थी। फिर उनकी वेगमें जो चाहें कर सकते थी, मनमाना बाली-महल तकवी थी, किन्तु जिनको मन्मथ पर परमा मुख ताकना पड़ता हो, ऐसी स्थितियों को ब्याह कर जो लोग धर्म-कर्म वा मुख मोन की लासवा से किसी दिन भूम कर जो उस स्त्री के घर जाने वाले नहीं, उनको क्या बर्जित-कार है कि वे मुकोमनः बर्जितों के मुख लपनों को मिटाकर उन्हें शरण मनसिक शाप और धन्दा के बलि कुछ में हाथकर अन्य घर जलावे।”^{१३}

ऐसी स्थितियों के लिए पनि के घर में कोई स्थान नहीं था और जब पिता के घर में भी उनके लिए स्थान न रहे तो उनके सामने यो ही विकल्प थे—जा तो वे भिक्षा वृत्ति करें या बेव्या वृत्ति करें। यी ईश्वरबन्ध विद्यासागर ने इसके कई उदाहरण दिये हैं। बहुविवाह संबंधी सरकारी कमेटी ने अपनी रिपोर्ट में इस प्रथा के कारण समाज में फैलनेवासी प्यारह बुराईयों का उल्लेख किया है, जिनमें बेव्यावृत्ति, अविचार, गर्भनाश, भूमहत्या तथा सिद्धहत्या मुख्य हैं। बंगाल में यह कतावरी के मध्य में इस प्रथा को हटाने के लिए तीक बाल्योत्तन हुआ। सरकार की कनेक बलेदन-पर भेजे गये। यी ईश्वरबन्ध विद्यासागर इस सान्वाजन के मुख्य नेता थे। महापरा बर्दवान तथा २१००० हिन्दुओं के हस्ताक्षरों के साथ सरकार के पास वह मार्चना-पत्र भेजा गया कि एक कानून द्वारा बहुविवाह की दानियों को रोका जाय। उस समय बंगाल के मेजिस्ट्रेट कर्नर तो इस प्रथा को मर्माहित करता आनन्दक संग्रहित थे।^{१४} किन्तु कर्नर बनरस की वह सम्पत्ति

पत्र का एक संक।

^{१३} कमीशनरलेशन—ईश्वरबन्ध विद्यासागर, पृ० २१०।

^{१४} कल्पवृक्ष है कि बहुविवाहविरोधी सिद्ध सम्पन्न जब बनरस से भिक्षा लेने लगे।

थी कि हिन्दू अभी इस सुधार के लिए तैयार नहीं हैं और उनमें बहुविवाह के निर्देश के विरोध का प्रचलन सम्भव नहीं है। १८६६ में एक सरकारी कमेटी बहुविवाह के विषय पर विचार करने के लिए बिठायी गयी। उसकी यह शर्तार्थ दिया गया था कि बहु से शर्तार्थों में रहते हुए एक सुधार को दूर करने के उपाय सुझाये। पहली शर्तार्थ थी कि हिन्दुओं को एक से अधिक स्त्रियाँ लेने की जो सामान्य स्वतन्त्रता प्राप्त है, उस स्वतन्त्रता को किसी प्रकार सीमाबद्ध किया जाय तथा दूसरी यह थी कि बहुविवाह की प्रवृत्ति को शरीर की मानून के द्वारा स्पष्ट स्वीकृति दी जाय। कमेटी को इन शर्तार्थों के अन्तर रहते हुए समाज के मूल्यों को ध्यान में रखकर विवाह की सुधार को कराने के उपाय सुझाये थे। इस कमेटी के साथ सम्मेलन के, इनमें भी अनेक तथा शर्तार्थ हिन्दू थे। कमेटी ने समाज में बहुविवाह के विनाश, विस्तार एवं शर्तार्थों का सक्षिप्त विवरण करके, समाज में अपनी यह प्रवृत्ति थी कि एक से अधिक स्त्रियाँ रखने की सामान्य स्वतन्त्रता को सीमित किये बिना आवश्यकता समाज द्वारा कोई कानून नहीं बनाया जा सकता है। इस समिति के सदस्य श्री ईश्वर चन्द्र विद्यासागर ने अपनी मतभेद सूचक सम्मति में यह लिखा था कि इस विषय में आवश्यक कानून अविनाश बन जाना चाहिए। विष्णु शर्मा सदस्यो शर्तार्थी रामशर्मा शर्मा, जयशरण मुकुर्मी, विद्याधर शर्मा ने कहा कि समाज के तथा किरासी लोकमत के प्रभाव से यह सुझाव अपने आप दूर हो जायगी, अतः राज्य का इस विषय में कोई हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। उन लोगों की यह मान्यता पूर्ण हुई और भारत में यह प्रथा अब बहुत कम हो गयी है।

समाज के जटिल अन्तर्गत प्रान्तों में वर्तमान समय में हिन्दुओं के शरीरों में बहु-विवाह की प्रथा प्रचलित थी और हिन्दू पुरुषों की कानूनी श्रृष्टि बहुविवाह करने का अधिकार प्राप्त था, किन्तु १९५५ के हिन्दू विवाह कानून द्वारा हिन्दू समाज में पहली गली या पति के जीवित होते हुए दूसरा विवाह करना दण्डनीय अपराध बना दिया गया है और हिन्दू समाज में अब बहुविवाह की प्रथा का अन्त हो गया है।^{२१}

कहा—यदि १८५७ का गदर न होता तो शायद शायद ही बहुविवाह को रोकने का कानून बना जाते।

- २१ वर्तमान हिन्दू समाज में कुछ मनोईयक बहुविवाहों तथा इनके श्रेष्ठ कारणों की विवेचना के लिए देखिये—इराक्ली कर्ब—हिन्दू सोसायटी एन इन्टरनेशनल एजेंस कालेज, पुना, १९९९, पृ० १५८-७९।

बहुभर्तृता

बहु विवाह (Polygamy) का अर्थ सहस्रवर्षों के पक्ष में है कि एक स्त्री के अनेक पति हों^१ इसे बहुभर्तृता (Polyandry), अनेकपतित्व या बहुपतित्व की प्रथा भी कहते हैं। इसके कुछ बड़े पैमाने पर उदाहरण प्राचीन एवं आधुनिक हिन्दू समाज में उपलब्ध होते हैं। प्रत्यक्ष समाज में इस प्रथा का प्रचलन बहुभर्तृता की अपेक्षा बहुत कम है। सबसे अधिक प्रचलन एक-विवाह (Monogamy) की प्रथा का है और सबसे कम बहुभर्तृता का। हिन्दू समाज में भी यही स्थिति है। भारत में इसके बहुत कम उदाहरण पाये जाते हैं।

वैदिक युग

इस समय बहुभर्तृता की प्रथा के कुछ संकेत अन्वय मिलते हैं, किन्तु उनके आधार पर यह नहीं कहा जा सकता कि उस समय के समाज में इस प्रथा का प्रचलन रहा होगा। ऋ० (१०।८५।३८) तथा अथर्व० (१४।२।१) में यह कहा गया है—
“हे अग्नि, प्रजा के साथ तुम (एक) पत्नी को बहुत से पतियों के लिए देने वाले हो।”
इसी तरह अथर्व० (१४।२।२०) में एक पत्नी में कई पतियों को बीज रपण का आदेश दिया गया है, किन्तु इन स्वरूपों से हम किसी निश्चित परिणाम पर नहीं पहुँच सकते। वेद में बहुवचन के लिए एकवचन और एकवचन के लिए बहुवचन का बहुत प्रयोग होता है। पाणिनि ने व्याकरण में वैदिक वाक्यरचना के इस विषय को स्वीकार किया गया है और इसकी विस्तार से व्याख्या की गयी है। इनके अतिरिक्त इस प्रथा का संघर्ष करने वाला और कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं किया जा सका। इसके विपरीत ऐतरेय ब्राह्मण

^१ इस विषय का गम्भीरतम सर्वोत्तम अध्ययन सीस तथा जेम्सों के सिंग कीदर के ए स्टडी ऑफ पोलिएन्ड्री (A study of Polyandry, Monlon & Co. HUGH 1963) में है। इसमें लेखक ने अंका, सिन्हात, केरल तथा नीलगिरी में बहुभर्तृता की प्रथा रखने वाली जातियों के विवाह स्थानों में जाकर बहुत विस्तृत सम्बन्ध स्थापित करके इस प्रथा के स्वरूप तथा इसे उत्पन्न करने वाले कारणों की सुन्दर समीक्षा की है।

(१२।११) इसे स्पष्ट शब्दों में यह बोधना करता है कि एक पुरुष बहुत ही स्त्रियों को प्राप्त करता है, अतः एक स्त्री की बहुत ही पत्नियाँ होंगी हैं, किन्तु एक स्त्री के बहुत से पति एक साथ नहीं होते।^१ स० सं० १।२।४।३ बहुभर्तृता का एक विभिन्न रूप है विदोष करवा है, उसके अन्तर्गत में “यद् एका यज्ञस्तम्भ (पुत्र) भो दो दण्डाभ्यां (पत्नियाँ) से भेरता है, यतः एक पुरुष दो स्त्रियों से प्राप्त भवता है, निम्नु यद् एका यज्ञस्तम्भ से दो पुत्रों को नहीं भेरता है, अतः एक स्त्री दो पत्नियाँ को नहीं प्राप्त करती।” बहुभर्तृता का मत है अधिक पत्यु विविध और नया ■ लभता है।

महाभारत में द्वीपदी का उदाहरण

प्राचीन भारत में बहुभर्तृता का सबसे अधिक प्रसिद्ध उदाहरण द्वीपदी था है। किन्तु महाभारत के अध्ययन से स्पष्ट है कि उसने दृष्टिगत की बात मात्र मात्र नहीं की कि बीच गाँव एका द्वीपदी के पति ही। उक्त समय सभी लोगों ने इसे लोकप्रिय एवं लोक के विरुद्ध सदा अर्थ में एवं पाप समझा था। महाभारत के प्रमुख पात्रों के धर्मिक पर यह एक बड़ा फलक और प्रख्यात प्रसन्नता था, अतः इसमें अनेक युक्तियों से द्वीपदी को पतिों भावों की पत्नी विरुद्ध करने का प्रयत्न किया गया है और यह इस कल्पना की पुष्ट करता है कि उस समय बहुभर्तृता की प्रथा बहुत घुरी सम्झी जाती थी। हम विषय में महाभारत का वर्णन निम्नलिखित है—

प्राञ्च नव द्वीपदी को लेकर अपनी कुटिया में पहुँचि तो उस समय उसकी माता कुन्ती कुटिया के भीतर थी (महाभारत १।१२४)।^२ भीम और अर्जुन ने कुन्ती से कहा— “माँ, आज एक अच्छी भिक्षा भिजी है।” कुन्ती ने द्वीपदी को न देखते हुए स्वाभाविक रीति से कहा— “तुम सब मिलकर इसका उपभोग करो।”^३ बाद में जब कुन्ती ने द्वीपदी को देखा तो वह बोली— “हाय, मैंने यह क्या कह दिया (१।१२४।२)। इसके बाद वह मार्ग के कारण अच्युत हुई तथा सोचती हुई पातलि द्वीपदी का हाथ पकड़कर बुधिमिदर के पास आकर बोली— “बेटा तुम्हारे दो भाइयों ने जब राजा हृष्य से उक्त पुत्री को शाश्वत विवाह के रूप में मुझे बतलाया, तब मैंने पराधनतावश यह काम के योग्य यह बात कह बोली कि तुम सब मिलकर इसका उपभोग करो। हे बुधिमन्त्रिय, ”

^१ स० सं० १२।११ सप्तमोक्षो भूधर्माया विनोते, सप्तमोक्षस्तु बहुभ्यो जन्मा जयन्ति नैकस्वर बहुभ्यः सहपत्यः।

^२ महाभारत १।१२४।१७-२२ एकस्य बहुभ्यो विहिता महिष्याः कुलपत्यः।
नैकस्या बहुभ्यः पुत्रः भूयसो पत्यः यवजित् ॥ लोकमेकविषयं त्वं भाव्यी यमैविभक्तुः।
कर्तुमर्हसि कीन्तोय तस्मान्मे भुङ्कितोदृष्टी ॥ सभापर्व (६८।२३) में कर्त्तुं ने द्वीपदी को लेकर (अपनी) आता है क्योंकि उसे कई पुरुष पति के रूप में प्राप्त है।

अब तुम ऐसी बातें करो कि मेरा कहा सुना न हो, प्रोपदी को अक्षय न स्पर्श करे और इस से कोई विभ्रम या भ्रान्ति न हो।" मुधिष्ठिर ने अर्जुन से यह कहा कि "तुमने इस स्वयंवर में जीता है, तुम इतने विधिपूर्वक बिवाह कर लो।" अर्जुन ने ऐसा करने से इत्तफा किया, क्योंकि मुधिष्ठिर और भीम के अविवाहित रहते हुए उनके छोटे भाई अर्जुन का बिवाह विधिपूर्वक नहीं हो सकता था। अर्जुन ने यह भी कहा कि "भीमसेन, नकुल, सहदेव, यह कन्या और वे आपसी आकांक्षायें कर रहे हैं, जो कुछ धर्म हो और जिसमें श्राव का फलभाव हो उस पर विचार करते आप हमें आज्ञा दें, हम आपकी आज्ञा का पूरा पालन करेंगे।" अर्जुन की वाणी सुनने के बाद पाण्डवों ने द्रौपदी की ओर दृष्टि डाली। द्रौपदी को देखकर पाण्डवों में उसके प्रति प्रचुर भावभाव उत्पन्न हुआ, क्योंकि विधवा ने स्वयं द्रौपदी के रूप को अन्य स्त्रियों की अपेक्षा अधिक सुन्दर बनाया था। मुधिष्ठिर भाइयों को मुख-बुढ़ा और आपस में देखकर उनके चित्त में घमस्का समाप्त नया। उसे व्यास की बात याद आ गयी और डर लगा कि कहीं इस प्रश्न को लेकर पाण्डवों में आगत में घूट न पड़ जाये। अतः मुधिष्ठिर ने कहा—“कल्याणी द्रौपदी हम सबकी पत्नी होगी” (१।१६३।१६)। द्रौपदी का गांधी पाण्डवों से आह्वान का जवाब तो नही था कि वे भी उसके रूप पर इतने अधिक प्रसन्न थे कि उनमें से यदि वह किसी एक को ही लीती तो पाण्डव उसके लिए आपस में उमीदगन्त बढ़ जाने को तैयार हो जाते जैसे मुद्रा और उन्मत्त तिलोत्तमा के लिए लड़ रहे थे। मुधिष्ठिर ने इससे घमस्का था यह माने हुए कि वह पाण्डवों की स्त्री हो, लेकिन इस न तो कुन्ती ने पसन्द किया और न ही द्रुपद ने चिन्तन समझा। मुधिष्ठिर ने अभी ही सूक्ष्म गति के माय पर इसे अव्यवस्थी पुराने कल्पित उदाहरणों से व्यापसंगत मिट्ट करने का प्रयत्न किया।

एक दिन राजा द्रुपद ने मुधिष्ठिर से कहा—“आज शुभ दिन है, महाबाहू अर्जुन द्रौपदी का विधिपूर्वक पाणिग्रहण करें।” इस पर मुधिष्ठिर ने कहा—“हे राजन् बिवाह तो तुमने ही करना होगा” (१।१६८।२१)। द्रुपद ने कहा—“तुम्हीं विधिपूर्वक मेरी कन्या का पाणिग्रहण करो अथवा तुम जिसके साथ कन्या को आश्रय चाहते हो उसे बताओ।” मुधिष्ठिर ने कहा—“हे राजन्, द्रौपदी हम सबकी पत्नी होगी, क्योंकि मेरी माता ने पहले ऐसी आज्ञा दी है। मेरा और भीमसेन का बिवाह नहीं हुआ है। यद्यपि अर्जुन ने तुम्हारी रत्नसयूक्त कन्या को जीत लिया है तथापि हे राजन्! हम भाइयों में एक नियम है कि रत्न पाकर हम सब उसका इच्छा भोग करते हैं। हम इस नियम को छोड़ना नहीं चाहते, अतः धर्मपूर्वक द्रौपदी हम सबकी पत्नी होगी। वह धर्म के सम्मुख हम सबका पाणिग्रहण करे” (१।१६८।२३-२६)। द्रुपद ने इस पर आपत्ति करते हुए कहा—“हे कुलन्तन, वास्तव की विधि के अनुसार एक पुरुष की बहुत सी स्त्रियाँ होती हैं, किन्तु एक स्त्री के बहुत से पति भेष-शास्त्रों द्वारा मिश्रित नहीं हैं या कर्म नहीं बुने गये। हे कौन्तेय, तुम धर्मवेत्ता होकर भी लोक एवं देव दोनों के मिश्र यह ज्ञान

क्यों करना चाहते हो? तुम्हारी बुद्धि ऐसी क्यों है।" बुध्दिष्ठिर ने उत्तर दिया—“धर्म का रहस्य बहुत सूक्ष्म है। हम उसकी राति नहीं जानते। हम प्राचीन बुद्धिमान लोगों का अनुसरण कर रहे हैं, मेरी बाबी कभी झूठ नहीं कहती, मेरा मन अधर्म में नहीं जमा हुआ है। मेरी माता ऐसा कहती है और मेरे मन में भी इसी बात है। राजन् धृष्टी निश्चित धर्म है। इसका बिना सोचे बिचारे आचरण करो। हे राजन् तुम्हें उनमें किसी प्रकार की कोई चला नहीं होगी चाहिए।” हिन्दू हुए बुध्दिष्ठिर के दम निश्चित धर्म की सधर्म मानता है और इस विषय पर विचार करने का विषय, दुष्ट, गुनी, बुध्दिष्ठिर और भूधृष्टि की एक परिचय देखनी है। इसी समय बात यह कि कृष्ण हीरासन का बात है।

कृष्ण हीरासन के साथ हुए कि यह विवेक करते हैं कि “बहुधातु का मन्त्र वेद विरक्त होने से अशर्म है, मैं इस बात को करने का साहस नहीं कर सकता।” बुध्दिष्ठिर अपने पक्ष का समर्थन करने के लिए कुछ गुराँथ बूझता उपस्थित करता है। जटिला बोलाही के साथ साथ अध्वर्यों ने विवाह किया था। पूर्वकाल में अनेक नाम के अथवा अनेकों ने बाबी (ब्रह्म के संबंध रखने वाली) कथा से बाबी की थी। साथ ही अनेक नामों के बाबी माता का कथन भी हमारे लिए प्रमाण है। इसमें मैं इसी कथन का परम धर्म समझता हूँ।”

इसके बाद इस प्रश्न पर आस धरना यह समझा वेते हुए, कहते हैं कि बुध्दिष्ठिर ने जो कहा है वही धर्मवृत्त है, इसमें कोई शंका नहीं है। जिस प्रकार यह भवात्म धर्म हुआ है, वह मैं आपके सामने नहीं कहूँगा। क्यात हुए का साथ पचाइ का उन्हें अन्तर से ऐसे और वही उन्हें प्रीति और प्रीति के पूर्ण जग की एक विविध बाबा गुलाबी और हुए को विभूति देकर अपने कथन का विस्मास कराया। बाद में यह कहा कि एक तर्पण में किसी साधि की एक कथा में समझती और गुणवती होने पर ही पति नहीं प्राप्त किया। पति धर्म के लिए उसने कठोर तपस्या की। अन्त में शिवजी ने प्रसन्न होकर उस कथा से कहा—“हरे भगो।” कथा उसको यह बात सुनकर धर्म का जल्दी कथी कई बार बोली—“मैं सब तुम्हें से मुक्त पति मांगती हूँ।” शिवजी ने कहा—“तुम्हारे जल्दी-जल्दी में मुझसे पाँच और माचना की है बात; अथवा अन्त में तुम्हारे पाँच पति होंगे।” यह इस जन्म में प्रीति हुई और पाँच पाँच इसके पाँच पति हैं। प्रमाण संकर के कारणों को हुए कई टाल सकते हैं, अतः उन्होंने पाँचों पतिवों से प्रीति की माती कर दी।

प्रीति की बहुवर्तता के कारण

महाभारत के उपर्युक्त वर्णन में प्रीति के पाँच पति होने के पाँच हेतु दिये गये हैं—

- (१) कुन्ती ने पाँचों पतिवों का प्रीति कपी भिन्न भाव धम्मिनिव रूप से जाँच करने के

सिद्ध आदेश दिया था।^४ (२) छोटे चाई जर्जून के विवाह से पहले चाई मुर्छिण्डिर और भीम का विवाह होना चाहिए था। (३) पाँचों पादवी के दिल में डीपदी का कम बार का चूका था, किसी एक को डीपदी के दिले जाने से शत्रुपुत्र का भय था। (४) प्राचीनकाल में बाली और अटिमा गौतमी ने अनेक पतियों से शादी की थी। (५) डीपदी को पिछले जन्म में चकर डारन यह था कि वह अपने जन्म में पाँच पतियों की पत्नी होगी। इनमें से पहले कारण पर तो विचार करना ही स्वयं है। कुन्ती ने विचार देते विधा ने जाने से प्रा सामान्य बात कह दी थी। बाद में उसे स्वयं इस बात का दुःख हुआ। वह इसे अनुचित भी समझती थी, अतः इस कारण का कोई मसूदा नहीं है। दूसरा कारण भी ठीक नहीं है। मुर्छिण्डिर का विवाह होने से पहले उसका छोटा चाई भीम द्विजिम्बा से विवाह कर चुका था। यदि भीम मुर्छिण्डिर से पहले विवाह कर सकता था तो जर्जून द्वारा विवाह क्यों में गया भीम था? यदि इस नियम का पालन ही करना था तो जर्जून के विवाह को चाँहे समय में लिए टाला जा सकता था। उससे पहले मुर्छिण्डिर और भीम के विवाह कर दिये जाते और बाद में जर्जून का विवाह ही करता। भीमे कारण में जो पुराने उदाहरण दिये गये हैं उनके विषय में नहीं कहा जा सकता है कि महाभारतकार इस बात में बहुत निपुण है। वह जान भी किसी बात का समर्थन करने लगता है। हाँ इस प्रकार के दुष्टाचर्य है। जान पड़ता है दुष्ट को इन चारों कारणों से समझ में नहीं हुआ। तब अन्त में पूर्वजन्म के बदलान वाली गटना की किन्हीं कल्पना की नहीं। यदि भीमा कारण ठीक था, पुराने जमाने में बाधक में ऐसे विवाह होते थे तो डीपदी का विवाह ही जाना चाहिए था। इसके बाद डीपदी के पूर्व जन्म की गटना का धुलामा इस बात की मुक्ति करता है कि व्यास इस प्रथा के अविवर को पहले चार कारणों से दुष्ट के दिल पर सही-शक्ति अंकित नहीं कर पाये थे। दुष्ट अपनी क्या डीपदी का विवाह पाँचों पादवी के साथ इसलिए नहीं करते कि यह कोई पुराना नियम है, किन्तु इसलिए करते हैं कि ठकुर उसे पिछले जन्म में यह बार से चुके हैं और पाँचों के बदलान की दावा नहीं आ सकता। दुष्ट ने कहा है—“जब समयान सकार में ऐसा विधाय किया है और इन्हीं के लिए कृपा बनायी गयी है, तब यह चाहे गर्म हो या अवर्ण, मुक्त को कोई भीष नहीं भग सकता, ये सोच सुख से कृपा के साथ निष्पूरक विवाह करें”।

अन्त आता है कि गारुड हिरनय मयेम में रहने वाली जिस जाति से सम्बन्ध रखते थे, उस जाति में यह प्रथा प्रचलित थी। उस प्रथा के अनुसार ही गारुडों में यह विवाह किया था। किन्तु वर्तमान महाभारत से इस कल्पना की पुष्टि नहीं की जा सकती। यदि वास्तव में पादवी में यह जातीय प्रथा थी तो कुन्ती को डीपदी देख लेने पर यह दुःख क्यों

^४ महाका० ११२०११२ कुन्तीप्रता सा स्वयमेव पुत्राग्नीवाह मुन्तेति समेत्य तमे ।

पन्नाच कुन्ती प्रसन्नीय कृष्णो भर्तृ तवा भाविनामिमुक्त

के रचना तुल्य होते थे 'न रेक्विरिट नरेय' के अनुसार उनके द्वारा की हुई बातों पर मान्यता नहीं करना चाहिये।

माथरों की बहुभर्तृता

मुगल एवं मराठा युग के मुदीपिबन प्रथाओं में समाचार की सामान्य जाति में प्रचलित बहुभर्तृता की प्रथा का वर्णन किया है।^१ १६९३ ई० में एक इंगलैण्ड वासी सीजरमैजिस्ट्रेट ने इस संबंध का उल्लेख करने के बाद लिखा था—'एन स्त्रियों का माथि से छत्र का छदीर भंग रहता है, जहाँ कपड़ों से ढकी जाती है, पैर बंधे होते हैं, जाल मन्त्रे और सिर को चोटी बंधी होती है। वे अपने साथ हमेशा काल और मंगी लम्बान लैफर आते हैं। इन माथरों की स्थिति साहो की होती है। जब कोई माथर किसी स्त्री के घर में जाता है तो वह अपनी साज और लम्बान घर के बाहर छोड़ जाता है ताकि कोई बूझा स्थिति उस घर में आने का साहस न करे।' एम गुर्गानी मराठी पत्रिका जीम्बा ककतल हेरा ॥ माथरों में इस प्रथा की प्रचलित प्रथा। उसके सम्बन्ध-नुसार इस देश के निवासियों का अनुसरण करते हुए माथर विवाह नहीं कर सकते, भग-विनी स्थिति का भिक्षित पुत्र या पिता नहीं होता, उसके सब सम्पत्ति ऐसी ही स्त्रियों के सम्पत्ति होती है, इनमें से प्रत्येक स्त्री के साथ तीन या चार माथर माथर में सम्बन्धित करके सहवास करते हैं। इन माथरों में से प्रत्येक इस साहो की स्त्री के साथ एक बंधन के अपने बंधन तक एक दिन रहता है और उसके बाद दूसरा पति एक दिन के पितृ, उसके पास आ जाता है। वे इस प्रकार अपनी स्त्रियों और बच्चों के सम्पत्तिपण की विधा से मुक्त होकर साग बीजन समन्वयक भित्तों में। कोई भी पुत्र अपनी स्त्री की हत्यानुसार छोड़ सकता है और इसी तरह स्त्री जब चाह किसी स्त्री को अपने पास आने से रोक सकती है। इन दोनों धर्मियों के वर्णन की पुष्टि एमिर्कहैडर हिल्टन (१७७४), जोनाथन डम्कन (१७९२), जॉसिफ बुकानन (१८०७), जेम्स पीटर्स (१८१९) नामक पात्रियों ने की है।

१८वीं शती के अन्त तक माथरों में इस प्रथा का ब्रह्म प्रचलन था। १७८८ में टीपू सुल्तान ने एक घोषणा गिवाली, इस घोषणा में माथर स्त्रियों से यह कहा गया था कि वे एक स्त्री के साथ इस पुरुषों के सहवास की प्रथा का परित्याग करें (पीटर पू० पु०, पृ० १७३)। १८वीं शती में बहुभर्तृता की प्रथा माथरों में बहुत कम हो गयी। (पीटर पू० पु०, पृ० ६२)। १८८१ में श्री बिजय ने अपनी एक पुस्तक 'भारत का एक कदम' में यह पाठ्य लिखे थे 'बहुभर्तृता की प्रथा अब बिजयुस मुप्त हो गयी है, भवति माथरों में उत्पत्तिकार भातु परम्परा द्वारा होता है और विवाह पारस्परिक

^१ रिक्ली—बी पीनल आक इण्डिया

सम्पत्ति से होता है और इच्छानुसार विवाह का विच्छेद हो सकता है, तथापि श्री नॉगल द्वारा यह टीका की कला यमा है कि कहीं भी विवाह के बंधन का हल्की बुझातपूर्वक पालन नहीं होता, इतने प्रयत्नपूर्वक उसकी प्रथा नहीं होती जिसकी सम्भावना से होती है, यद्यपि विवाह किसी सामूहिक विधान के अनुसार नहीं होता है।" किन्तु श्री विधायक ने इन वाक्यों में कुछ अतिशयोक्ति से काय दिया है, क्योंकि १८६१ में पलायन विवाह बिलीन ने आनी रिपोर्ट में लिखा था—“यदि बहुवर्त्यता का शासन ऐसे विवाह से है कि इसके द्वारा मृत स्त्री की यह छूट प्राप्त होती है कि वह अपनी स्त्री या धार्मिक प्रतिष्ठा भी अपने बिना अनेक पुरुषों के साथ सहवास कर सके, तो हम यह कह सकते हैं कि यह प्रथा मलाया में विवाह द्वारा स्पष्ट रूप से स्वीकार की जाती है और यहाँ ऐसे श्रेष्ठ तथा जानिबों हैं जहाँ भित्तियों की यह छूट प्राप्त है।” १८८६ के संसदीय मीटिंग एक्ट (बिल का १८८६ का अनुसू सं० ४) तथा १८८३ के 'दि मद्रास मदमक्कबायम् ऐक्ट' (१८८३ का २२वां कानून) द्वारा यह प्रथा अब दिसकुल समाप्त कर दी गयी है।

मलमक्कबायम् या अतिशयन्ताम दक्षिण भारत में प्रचलित एक सम्बन्धी नियमों को कहते हैं, जिसके अनुसार किसी व्यक्ति के मरने पर उसकी सम्पत्ति का उत्तराधिकारी उसके लड़का बन होकर उसकी बहिन का संरक्षक होता है। अतिशयन्ताम कन्नड़ भाषा का शब्द है और 'मलमक्क' मलयाली भाषा का। किन्तु दोनों का अर्थ बहिन के लड़के से मानी जाने वाली संरक्षकत्व है। इस व्यवस्था में किसी व्यक्ति के मरने पर सम्पत्ति उसके पुत्र की नहीं मिलती, किन्तु उसकी बहिन के लड़के को मिलती है। इस विचित्र प्रथा का कारण यह है कि मापदण्ड द्वारा जातिवादी किसी स्त्री से विवाह सम्बन्ध करके उस स्त्री की अपने घर नहीं लाते, वह स्त्री अपने पितृगृह में रहती है। उसके पति उसके साथ सहवास करने के लिए एकद्वाराय में जाते हैं और सहवास के बाद अपने घर लौट आते हैं। एक व्यक्ति ने जो सन्तान पैदा की है उसे पिता की वहीकर माता की समझी जाती है। नाना के घर में उनका पालन-पोषण होता है और वे नाना के परिवारागत लड़कियों से रहती हैं, अतः किसी व्यक्ति के मरने पर उसका पुत्र उसकी सम्पत्ति का अधिकारी नहीं होता, क्योंकि वह नाना की सम्पत्ति में से अपना हिस्सा लेता है। पति के मृत्यु में कोई पुरुष सम्पत्ति न रहने से वह अपनी बहिन के लड़के को अपना उत्तराधिकारी बनाता है।

वर्तमान भारत में बहुवर्त्यता

वर्तमान काल में भारत में बहुवर्त्यता की प्रथा दो रूपों में बारी जाती है :-

* इतिहास संशोधक—हिन्दू विवाह अधिनियम १० २७०-१

(१) मातृसत्ताक बहुपत्न्यता (Matrarchal Polyandry), इसमें एक स्त्री के कई पति होते हैं, किन्तु उनके पत्नियों में परस्पर कोई सम्बन्ध नहीं होता। मातृसत्ता में प्रचलित बहुपत्न्यता इसी प्रकार की थी। इसके पहले मातृसत्तापरम्परा (मठमकवायम्) का नियम होने के कारण इसे यह नाम दिया गया है। इसका दूसरा नाम अन्तर्मातृपत्न्यता (Non-maternal Polyandry) भी है। (२) आनुसूतृपत्न्यता (Intrauterine Polyandry) इसमें एक स्त्री के अनेकपति आपस में भाई-भाई होते हैं, जैसे ब्रह्मदी के पाँचों पति परम्पर भाई थे। भारत में वर्तमान हिन्दू समाज में दोनों प्रकार की बहुपत्न्यता पायी जाती है, किन्तु यह स्मरण रखना चाहिए कि यह प्रथा कुछ उर्वर-भूमि विशेष आदिवासी गड्डी ही सीमित है। उत्तर भारत में यह प्रथा देहरादून के जीनगढ़ बाजार के प्रदेश में, कश्मीर राज्य के नद्दाख प्रदेश में, मिट्ठूर तथा हिप्परी गढ़वाण की कुछ जातियों में, कश्मीर की दण्ड जाति में तथा दक्षिण भारत में नीलगिरि विमान्नी टोडा जाति में, केरल की ठंडन (Thandans) सम्प्रदाय तथा कुछ अन्य स्थानीय जातियों में पायी जाती है, पहले यह नामों में भी प्रचलित थी।^{१०}

दक्षिण में बहुपत्न्यता—दक्षिण भारत में नीलगिरि के टोडों तथा कोंट नोंगों में यह प्रथा प्रचलित है। टोडों में एक-पत्नी के अनेक पति प्रायः भाई होते हैं। बहुत भाई खादी करता है, किन्तु उसके छोटे भाइयों को छोड़े भाई की पत्नी के काम करने का अधिकार होता है। पत्नी का गर्भ रह जाने की दशा में क्या भाई सातवें महीने में शिशु बाण के साथ एक-विधि सम्पन्न करता है और इससे शिशु कच्चे का मासूनी पिता बन जाता है। अब तथा उसका छोटा भाई सूखी विधि नहीं कर लेता वह एक मक बच्चों का पिता बने भाई को ही माना जाता है।

केरल में निम्नलिखित जातियों में बहुपत्न्यता की प्रथा पायी जाती है—बामर, ठंडन, उन्नरी कीचीन के पिमा, सम्प्रदाय अथवा शिल्पकारों की विभिन्न जातियाँ, जैसे शम्भ (मुत्तार), काथमान (मुहार), जसरी (बुडई), मुसरी (उन्देरे), कोल्लुमुत्तम (शालिष करनेवाले), मिलकुथ (शुभ करनेवाले), तालकोल्लम (चमार), कर्मिन्न (ज्योतिषी), मन्न (धोनी, भाई)^{११}। नामों में अब बहुपत्न्यता बरकरार नुप्त हो गयी है (पीटर पृ० ६२)। १७०० में टीपू सुल्तान ने मराठार पर चढ़ाई करते हुए यह घोषणा की थी कि यह मैसूर पर नामों द्वारा किये जाने वाले हमलों के बदले को दूर करेगा। इसके साथ ही उसकी चढ़ाई का एक उद्देश्य नामों की इस अवगण प्रथा को भी

१०. प्रिंस पीटर—पृ० १०, पृ० ५०७, श्री एलेक्सिस् ब्राक इन्डिया १८६४ खं० १, पृ० ५४१, केरल की विभिन्न जातियों में इसके प्रसार के सम्बन्ध देखिए प्रिंस पीटर—पृ० १०, पृ० १५६-२३६।

११. पीटर—पृ० १०, पृ० १७६।

उन्मुखन करना था जिसके अनुसार एक स्त्री दस पुत्रों के साथ रहती है (पीटर, पृ० १७३)। अब सबसे परिस्थितियों में नाबरी में इस प्रथा का प्राग हो चुका है तथा अन्य कारितियों में यह स्त्रीता रही है।^{१२}

उत्तर भारत में बहुगर्भता—उत्तर भारत में बहुगर्भता की प्रथा अधिकांश हिमाचल के प्रदेशों में है। सिक्किम और पूर्वी तिब्बत के छोटी और निम्नलिखित में बहुत बार्ह जब किसी स्त्री में पायी करता है तो वह सब भाइयों की स्त्री समझी जाती है। यह नही समझना चाहिए कि यह सभी छोटे भाइयों के साथ सम्बन्ध करेगी। उसे इन विषय में धर्मोपदेशकत्व प्राप्त है और यह उसकी इच्छा पर अवलम्बित है कि वह किस भाई के साथ सहवास करे। यदि सबसे बड़ा भाई जिसने उस स्त्री को स्वीकारा था, मर जाता है तो स्त्री अपनी इच्छा के अनुसार छोटे भाइयों में से किसी एक को अपना पति चुनती है। यदि वह सब भाइयों के साथ गेय भाइयों में सबसे बड़े का अपना पति चुनती है तो वह सब भाइयों को स्त्री होती है, किन्तु यदि वह किसी छोटे भाई को चुनती है तो वह उसकी और, उससे छोटे भाइयों की स्त्री होती है। यदि वह सबसे छोटे भाई को अपना पति चुनती है तो वह बोकल सभी की पत्नी मयकी बनेगी। यदि बड़ा भाई बाकी नहीं करता है, किन्तु उससे छोटा भाई प्रावी करता है तो उस पत्नी पर बड़े भाई का कोई अधिकार नहीं होता, छोटे भाइयों का ही उस पर अधिकार होता है। बड़े भाई ऐसी हालत में परिवार से पुत्र हो जाते हैं और उनका अपने छोटे भाइयों की स्त्रियों पर कोई हक नहीं रहता।

संयुक्त प्रान्त में देहरादून जिले के बीमसार भाग में इस प्रथा का बुर प्रचलन है, वहाँ बहुत से भाइयों की एक पत्नी होती है। जब घर में बड़ा भाई होता है तो पत्नी उसी के साथ रहती है, उसकी अनुपस्थिति में वह उसके छोटे भाई के साथ रहती है। दूसरे भाई दिन के समय खेतों में पत्नी के साथ रहते हैं। कोई भाई अपनी पुत्र पत्नी भी रख सकता है और सामान्य पत्नी का भी उपयोग कर सकता है, बसते कि दूसरे भाई इस पर एतराज न कराये। कोई बार एक परिवार में सात की कई मिथी होती हैं। एक बार आठ भाइयों के एक परिवार में इस प्रकार की तीन स्त्रियाँ थीं।^{१३} पंजाब के पहाड़ी हिस्सों में भी कान्हा जिले के स्त्री, लाहौल परगनों, भम्बा, मुन्गू तथा मन्थी के ऊँचे प्रदेशों में तथा कानेतों में यह प्रथा प्रचलित है। प्रायः सभी ही एक पत्नी को स्वीकृत है। किन्तु १९०१ की पंजाब की जनगणना रिपोर्टों में स्त्रीता का एक ऐसा

१२ केरल में इस प्रथा के विस्तृत वर्णन के लिए देखिए पीटर पृ० १७३-२३६, सीक-विजि के टीओ के लिए देखिए पृ० २४०-२००।

१३ बीमसार भाग की इस प्रथा का विस्तृत विवेचन श्री ब्रिटेनमन भन्जुनवार की हिमाचल पोलीएन्थी (अक्टू १९१२) में है।

उपाहृत विवाह गया है (पृ० २२९) जिसमें दो विभिन्न व्यक्तियों ने पहले एक स्त्री के साथ शादी की, फिर उन्होंने अपनी सम्पत्ति मात्र में कर ली और दोनों एक दूसरे को साईं समझने लगे, किन्तु धर्मशास्त्रों के उपाहृत बहुत कम पाये जाते हैं।

बहुभर्तृता की प्रथा के प्रचलित होने के कारण

० उत्तर भारत में यह प्रथा वैद्वत्पूज के अनुसार बाहर प्रदेश में तथा दक्षिण में केरल प्रदेश में अधिक प्रचलित है। अतः यहाँ इस प्रथा के प्रचलित होने के कारणों का संक्षिप्त उल्लेख करना तर्कपूर्ण प्रतीत होता है।^{१४} इससे प्रभाव का एक निम्नलिखित है—

आर्थिक कारण—औसत बाहर ॥ पर्वतीय प्रदेश में कृषियोग्य भूमि बहुत कम है, यहाँ ५४ बेटों का भित्तौंग चढ़े बेटों परियम है किया जाता है और वर्षा ऋतु में यहाँ बहुत भूख पड़ती है, अतः यहाँ बेटों के लिए अनेक व्यक्तियों की आवश्यकता होती है। इसका समाधान इस प्रदेश में संयुक्त परिवार तथा बहुभर्तृता प्रथा के किया गया है। इसमें परिवार के सब व्यक्ति मिलजुलकर काम करते हैं और अपने सीमित साधनों का अधिकतम उपयोग करते हुए अपने जीवन निर्वाह के लिए आवश्यक उत्पादन करते हैं। बहुभर्तृता का एक बड़ा लाभ यह है कि इसमें साढ़्यों द्वारा बाल-व्यजन विवाह करके पारिवारिक सम्पत्ति का बँटवारा करने की प्रवृत्ति की प्रोत्साहन नहीं मिलता, यह सम्पत्ति सब साढ़्यों के एक ही घर में इकट्ठे रहने के कारण विभक्त नहीं होती है, बलितु सम्पत्ति बनी रहती है। यहाँ पहले ही कभीन बहुत बड़ी होती ॥ यह भाइयों की पुत्र-साधियों होने लगे तो इसकी बड़ी सी कमी होने अधिक छोटे दुकानों में बँट जायगी कि यह अधिक दृष्टि से सर्वत्र अनुभवयोग्य हो जायेगी। अतः जब भी अनुसंधान के दिवसीय प्रमाण में एक व्यक्ति ने पूछा कि यह इस प्रकार का अनुसरण क्यों करता है, तो उन्हें यह उत्तर मिला कि यह उनको लिये हितकर है, इससे उनकी कमीन सुरक्षित बनी रहती है और बँटती नहीं है^{१५}। औसत बाहर में इस कारण की दृष्टि इस बात में भी होती है कि यह प्रथा भूमि रखने वाले कर्मों का (राजपूत) तथा साढ़्यों में अधिक प्रचलित है। ऐय्यन के महापुस्तक में केरल की डंगल जाति में भी पारिवारिक सम्पत्ति को विभक्त और विभाजन से बचाने के लिए यह प्रथा प्रचलित हुई है।

१४ औसत बाहर में इस प्रथा की व्याख्या देने वाले कार्यों के लिए देखिए ऊपर लिखी पुस्तक, पृ० ४१-६। विभिन्न व्यक्तियों में इस प्रथा के कारणों की सीमासा बँटवारा की हिस्टरी प्राक इन्कन मैरिज के चण्ड २, अन्वय २० में है, इसका संक्षिप्त परिचय मिस पीटर की पुस्तक (पृ० १०७-११० तक) में है। मिस पीटर ने इन कारणों की आलोचनात्मक सीमासा (पृ० ४६४-४६९) की है।

१५ पीटर—पृ० ४०, पृ० ४६०।

भूमि पर काम करने वाले व्यक्तियों को अधिक संख्या में देने की सामान्य तथा पारिवारिक सम्पत्ति को बंटवारे से बचाते रखने के दो कारकों के अतिरिक्त वैस्टरमार्क के मठानुसार तीसरा आर्थिक कारण जनसंख्या का नियन्त्रण है। यदि सब माई पुत्रह् कम से विवाह करके अपने घर बसावे तो जनसंख्या नियंत्रण में कोई उपाय अपेक्षा इस प्रथा के परिवार में एक-दूसरी प्यार की स्थिति में जनसंख्या घीसी यदि से बढ़ती है। इससे जनसंख्या पर नियन्त्रण बना रहता है। यह पहचानें जैसे कम उपभोग के प्रदेशों के लिए बहुत उपयोगी है। इसी कारण भारत और तिब्बत जैसे पूरे प्रदेशों में यह व्यवस्था पायी जाती है।

वैस्टरमार्क के मतानुसार निम्नलिखित आर्थिक कारण बहुवर्तुता के प्रचलन में सहायक होते हैं—बहुत कम उरक वाले प्रदेशों में जनसंख्या को नियन्त्रित बनाने रखने की इच्छा, एक ही परिवार में सम्पत्ति को सुरक्षित एवं अधिकृत बनाने रखने की इच्छा, छोटी आर्थिक कार्यों को करने के लिए भ्रातृभावा की भावना को पुष्ट करने की आवश्यकता, सम्पत्ति की सामाजिक प्रभाव रखने वाले कुछ अमी व्यक्तियों के हाथों में केन्द्रित बनाने रखने की इच्छा, निर्धनता के कारण कमराभूक देने में असमर्थताइयों का पदस्तर मिल कर लाने सीमित सामनों की संमृहीन करने भूख मरने की संभावना तथा भ्रानुपातक जातियों में लगे प्रायः कारकों को संजम करके अपना काम करने की आवश्यकता। इनमें से अधिकतर कारण जीवनसार बाहर में पाये जाते हैं। इनके अतिरिक्त भी यजुमदार ने इस व्यवस्था का एक अन्य बड़ा लाभ आर्थिक आवश्यकताओं के साथ इसका सामंजस्य और अनुकूलता बतायी है।^{१४} इसमें परिवारों की संख्या आर्थिक साधनों तथा वैयक्तिक आवश्यकताओं के अनुसार बढ़ायी जा सकती है। दो या अधिक भाई अपना-अपना जीवन एक साथ ही स्थलों में आरम्भ कर सकते हैं, किन्तु बाद में आवश्यकता पड़ने पर इनकी संख्या बढ़ा सकते हैं। छोटी में काम के लिए पर्याप्त संख्या में मजदूर जाने के लिए पिता और पुत्र अपनी संख्या में अधिक स्थलों में सकते हैं। श्री यजुमदार ने इस विषय में नायपलबन्ध नामक व्यक्ति का उदाहरण दिया है, इसमें पिता-पुत्र दोनों ने दो-दो विवाह किये थे। प्रायः परिवार में पुत्र स्वस्थों की अपेक्षा पत्नियों की संख्या कम होती है, इस संख्या का कम होना भी लाभदायक है, क्योंकि पहचानें में एक-दो पति प्रायः कार्यबल बहुर बन जाते हैं, किन्तु स्वस्थियाँ घर पर ही रहती हैं।

वैयक्तिक कारण—कई बार वैयक्तिक कारणों के भी इस प्रथा को सुविधाजनक समझा जाता है। कई स्वार्थों में यह प्रथा परिवार में सुख और आर्थिक बनाने रखने वाली जाती जाती है। कई भाइयों की बुद्ध-बुद्ध पत्नियों साथ कमरु बुद्ध का कारण

होती है। नीच-दर्श का कहना है कि यदि माइनों की एक स्त्री होती तो उनमें मनुष्य नहीं होती (पीटर—पृ० पु०, पृ० ५६६)। महाभारत में प्रियत पीटर को बताया गया कि बहुभर्तृता के कारण स्त्रियों के हाइके बन् हो जाते हैं। जहाँ परिवार में एक स्त्री होती है, वहाँ सर्वत्र शांति बनी रहती है। पीटर को केवल में एक स्त्री के अपनी जाति में प्रचलित यह कहना मतलब भी कि वो स्त्रियों में भ्रमहीनता संभव है, किन्तु चार स्त्रियों में यह संभव नहीं है (पृ० ५६२)। इसमें संशय यह अधिग्रहण था कि वो पुरुष बिना रहे रह सकते हैं, किन्तु वो स्त्रियाँ बिना रहे नहीं रह सकती हैं। बहुभर्तृता धार्मिक परिवारों में एक स्त्री होने के कारण शांति बनी रहती है, किन्तु घर में कई स्त्रियाँ होने पर केवल की संतुष्टि मिलता है।

वैस्टरमार्क ने वो अन्य वैयक्तिक कारण भी इस प्रथा के बरकरार रखा है। पहला कारण पुत्र प्राप्ति करने की इच्छा है। कई बार पुरुष यह अनुभव करता है कि वह अन्तर्गत उत्पन्न करने में असमर्थ है, अतः वह बाई या अन्य पुरुष से सन्तान प्राप्त करने के लिए इस प्रथा को अपनाता है। दूसरा कारण स्त्री द्वारा अधिक अच्छे चीजें सम्भव करने की आकांक्षा है। यदि कोई स्त्री एक पुरुष से चीजें प्राप्त करे तो पूर्ण रूप से सन्तुष्ट नहीं कर सकती तो उसमें यह आकांक्षा होना स्वाभाविक है कि वह किसी अन्य पुरुष-सम्बन्ध पुरुष से अधिक आनन्द प्राप्त करे। उसकी यह इच्छा बहुभर्तृता में अच्छी तरह पूरी हो सकती है, अतः वैस्टरमार्क ने कुछ व्यवस्थाओं में इसे भी बहुभर्तृता प्रथा का एक प्रमाण कारण माना है। उसका यह मत है कि स्त्रियाँ अधिकांशतः घर में एक से अधिक पति इसलिए रखती हैं कि इससे उन्हें अधिक आनन्द मिलता है, अधिक सुरक्षा प्राप्त होती है तथा अपने समाज में अन्य स्त्रियों की दृष्टि में अधिक सामाजिक प्रतिष्ठा उपलब्ध होती है। किन्तु उपर्युक्त खूबियों के होने हुए बहुभर्तृता प्रथा के मानव समाज में अधिक प्रचलित न होने का मुख्य कारण यह है कि जब मनुष्यों में यह स्वाभाविक इच्छा है कि अपनी पत्नियों पर उनका अनन्य एवं शुभभाव अधिकार रहे।

कई बार इस प्रथा के समर्थन में यह युक्ति भी दी जाती है कि यह परिवार में नैतिकता को संस्थापित करने के लिए आवश्यक है, क्योंकि बड़े भाई की स्त्री अपने लक्षण देखने के प्रति आकर्षित होकर उनके साथ सम्बन्ध रखने की इच्छा रख सकती है। यह सर्वथा स्वाभाविक है, अतः इसकी व्याख्या में रखते हुए यदि एक सामाजिक प्रथा द्वारा इस व्यवस्था को मान्यता प्रदान की जाय तो समाज में नैतिकता सुरक्षित बनी रहेगी।

पीटर ने लिखा है कि उसी बहुभर्तृता का अनुसरण करने वालों ने यह बताया कि यह प्रथा नैतिक दृष्टि से स्त्रीय उत्पन्न कोटि की है, क्योंकि इससे परिवार हाइके से बना रहता है, यह उन्हें एकता का पाठ पढ़ाती है और यह शिक्षा देती है कि वे अपनी बहु-

मूल्य वस्तुओं का उपयोग भी सम्मिलित का में करें ।^{१०}

ऐतिहासिक कारण—अधिकांश जातियाँ ऐतिहासिक साधारण घर आजीवनकाल की धर्म्यदागत परिवारी होने के कारण इस प्रथा को समर्थन देती हैं। महाभारत में व्यास ने पांच पाण्डवों के साथ द्रिपदी के विवाह को इस आधार पर उचित एवं समझ-बूझ सिद्ध करने का प्रयत्न किया था कि यह प्रथा अनादिकाल में पत्नी का नहीं है। जीन-जार्ज बाबर के लोगों का कहना है कि वे पाण्डवों के संग्रह हैं तथा उनका समुद्रम तटों द्वारा वे बहुपति प्रथा का पालन करते हैं। जिन दीहल का मीनसिंह के डोंडी ने (पृ० ५५४) यह बताया था कि वे बहुभर्तृ प्रथा का पालन इतना ही करते हैं कि वे भारतीय हैं और महाभारत में उल्लिखित पांच पौंड्रों द्वारा द्रौपदी के साथ विवाह की परम्परा का अनुसरण करते हैं। केवल में बहुपति प्रथा का पालन करने वाली, विभिन्न हस्तजिप्सी सम्मेलन तथा ठंडल आदि जातियाँ अपनी बहुपतिप्रथा का उपयोग ऐतिहासिक साधारण घर

- १० बीहल-पृ० ५०, ५० ५६५—इस प्रथा के अपरिचित व्यक्तियों की इसका एक बड़ा दोष यह प्रतीत होता है कि इसमें जातियों के समूहों अधिक होने चाहिए। यह मुख्य-तत्त्वपूर्ण एक विशेषता है कि यह सब जगहों में तो इस प्रथा में कोई एक स्त्री के लिए ईर्ष्या द्वेष से प्रेरित होकर नहीं नहीं सब भरती ? ऐसा न होने का कारण ऐसी जातियों में कठोर जातिक परिस्थितियों में आत्मसंरक्षण की भावना के द्विप्रा-द्वे के स्थान पर सहयोग, प्रेम और सामुदायिक हित की भावना को सर्वोच्च स्थान देना है (बीहल पृ० ५६५)। जी मनुस्मृतिकार ने जीनसार बाबर के सम्बन्ध में लिखा है (पृ० ५६) कि यह प्रथा इसमें तीन ईर्ष्या के कारण उत्पन्न होने वाले संबंधों के स्थान पर धार्मिक एकता और सहयोग की भावना की जड़ों वाली सिद्ध हुई है। सब व्यक्ति परिवार के मुखिया (भार्या) और उनकी पत्नी (भार्या) के विचार एवं अनुशासन में प्रेमपूर्वक रहते हैं, जातियों में बड़ा प्रेम और सहयोग होता है। बड़े लार्ड माया छोटे जातियों के लिए एक या अधिक तबक परिवारों वाले का प्रयत्न करते हैं और इनके उपयोग में अपने अधिकार का प्रयोग नहीं करते हैं। दूसरी ओर कई बार पहली और बड़ी पत्नी अपने प्रतिष्ठा की रक्षायें यह प्रेरणा करती है कि वे खरेबू कार्यों में उनकी सहायता करने के लिए दूसरी पत्नी लायें, जयका कई बार बहुत स्त्री एक पति के साथ अधिक रहने के लिए जी दूसरी पत्नी लाने का प्रस्ताव देती है। इससे यह स्पष्ट है कि जीनसार में जहाँ एक और एक पत्नी के कई पति होते हैं जहाँ दूसरी और इनकी एक से अधिक पतिव्रता होती है, इस प्रकार जीनसार बाबर में बहुभार्या (Polygamy) तथा बहुभर्तृता (Polyandry) का विभिन्न सम्मिश्रण होता है, जतः जी मनुस्मृतिकार ने इसे बहुभर्तृपतिप्रथा (Polygynandry) का नाम नाम दिया है।

कारणी हुई। कहाँ ही कि यह एक प्राचीन सिद्धांती दृष्टि है और ये संकाशीय से बाहर होते हुए इसे अपने सामने लेते जाते हैं (पीटर, पृ० २५६)। श्रीरंका में काम्बी के प्राचीन राजाओं के इतिहास का प्रतिपादन करते होते एक बन्ध "राजावलिसे" में लिखा है कि एक राजकुमारी ने ऐसे दो बाइलों से विवाह किया जो राजा के। इसकी पुष्टि अब ऐतिहासिक मेलेफिल ने की है और यह बताया है कि मन्नाट विषयवाहू तथा उसके बाद राजसिंह की एक ही पत्नी थी। काम्बी प्रदेश के बहुपतिव्रता का वर्णन करते हुए कीर्तिनिधति ने यह बताया है कि मन्नाट इस प्रकार का सम्बन्ध इस माध्यम पर किया जाता है कि यह इस देश में व्यवसाय प्राचीन नाम से बतों जाने वाली वरिपाटी है (पीटर, पृ० २५६)।

पिछली संताली में विकासवादी दृष्टिकोण से विवाह के विभिन्न रूपों का प्रतिपादन करते काम सेबल्ट इसे विवाहव्रता के ऐतिहासिक विकास में एक महत्वपूर्ण चरण मानते हैं। वास्तविक जीवन में इसे बहुसत्रीविवाह (Polygamy) तथा एक-विवाह (Monogamy) के बीच तथा कामचार (Promiscuity) के पहले स्थान दिया। वैज्ञानिकता के महापुनरारम्भ ने मानवसमाज में विवाह प्रथा नहीं थी, बहुपतिव्रता विवाह का सबसे पहला रूप था। मेरु, सतुर्नी तथा हवैट स्पेन्सर ने इन विचारों का अध्ययन करते हुए कहा है कि बहुसत्रीयता समाज के किसी भी रूप में कुछ विशेष परिस्थितियों के कारण उत्पन्न होती है, पहले इन परिस्थितियों का वर्णन किया जा चुका है।

इन परिस्थितियों के कारण उत्पन्न होने पर अब यह प्रथा चिखी जाति में एक संस्था (Institution) का रूप धारण करती है जो ऐतिहासिक परम्परा इसे मुकुट एवं मुद्रा बनाती है (पीटर, पृ० २५६)। पुनर इतिहास में इस प्रकार का राया भाग्य समाज में इसे एक ऐसी सर्वमान्य कृति बना देता है, जिसका पासन समाज के सब व्यक्तियों के लिए आवश्यक एवं अनिवार्य माना जाता है। जब ऐसे किसी समाज का सम्बन्ध ऐसे न मानने वाली विदेशी संस्कृति से होता है तो बहुसत्रीयता भाग्य वाले व्यक्तियों के समाज में एक प्रकार की ऐसी टाप्पीचला की बाधका का अभ्युदय होता है, जिससे प्रेरित होकर वे बहुसत्रीयता का शासन न करने वाली आदिशों की तुलना में अपनी धर्मा का अधिक उन्नत के सम्बन्ध करने लगते हैं। इस कारण यह प्रथा अपसुक्त परिस्थितियों न रहने पर विलक्षण समाजों में भी बनी रहती है। इस प्रकार ऐतिहासिक कारण और प्राचीन परम्परा इस प्रथा को समाज में स्थायी बनाने में सहायक सिद्ध होती है।^{१०} (पीटर-पृ० ५०, पृ० २५०-५१)।

^{१०} अपसुक्त आर्थिक, वैज्ञानिक तथा ऐतिहासिक कारणों के अतिरिक्त इस प्रथा के उत्पत्ति और विकास में सहायक को अन्य प्रकार के कारणात्मक सम्बन्ध (Demographic) तथा समाजसमन्वित कारणों (sociological reasons) को पहले बहुत महत्व दिया जाता था, किन्तु अब वैज्ञानिक दृष्टिकोण से ऐसा नहीं समझा जाता।

डिग्ल वीटर ने बहुभर्तृ प्रथा ॥ ऐतिहासिक विकास के संबंध में नवीनतम मानवशास्त्रीय सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हुए कहा है कि इसका आरम्भ कठोर आर्थिक परिस्थितियों में होता है। बहुत कम उपजवाले प्रदेशों में उपरपूर्ति के लिए आवश्यक सामग्रियों मुँटान में कठोर परिश्रम करना पड़ता है, वहाँ रहने वाली कुछ जातियों में इस प्रथा का आधिपत्य होता है। वहाँ आर्थिक उत्पादन के लिए सब व्यक्तियों को एक दूसरे पर बहुत निर्भर रहना पड़ता है, एक दूसरे के साथ अशुभयोग करना पड़ता है, अपने वैयक्तिक स्वार्थ की अपेक्षा समाज के हित एवं कल्याण की प्रधान स्थान देना पड़ता है। इसके तममें भुदुद एकता और धारम्यविक प्रेम की भावना का इतना अधिक विकास होता है कि इसके धारम्यविक ईर्ष्या-हृदय की भावनाएँ दब जाती हैं। ऊपर बताये गये आर्थिक कारणों से भिन्न होकर कई-कई एक ही वर्गों बहुत करने की प्रथा नवनाती

जन्मजात संबंधी कारण का यह अभिप्राय था कि बहुभर्तृता के प्रारम्भ होने का एक कारण आत्मिकात्म्य अर्थ की दृष्टि प्रभावों से तथा अन्य कारणों से पुष्कों की तुलना में सिद्धों की संख्या कम होना है, प्रत्येक अधिक एवं सिद्धों कम होने से समाज में स्वयमेव बहु श्वाभाविक स्थिति बन जाना है कि प्रत्येक पुत्र एक स्त्री से विवाह करे। डिग्ल वीटर के आधुनिक अनुसंधान से (पृ० ११५) यह धारणा आत्मितपूर्ण सिद्ध हुई है; बीजका के रतनपुर क्षेत्र में, केरल के मल्ल-कनक तालुके में, मीनागिरि के ढोनों में तथा कश्मीर की लद्दाख तहसील में अनुभूत प्रथा का अनुसरण करने वाली जातियों में पुष्कों का अनुपात सिद्धों के अनुपात से बहुत मोड़ी मात्रा में अधिक है और यह इस प्रथा का कारण नहीं ही समझा। केरल की ठंडक और मल्लकनक जातियों में भिन्न ढोनों में बहुभर्तृ प्रथा का सबसे अधिक प्रसार है, वहाँ सिद्धों की संख्या पुष्कों से अधिक है। बीजका जिले में वीटर के अनुसंधानानुसार, सभी पुष्कों का अनुपात चार और धोख का है (पृ० १२५)। बीजका के बाहर के लोहारी और बीजका के गाँवों के बहुभर्तृता प्रथा वाले ढोनों की भी अनुसंधान की अनुसंधान (हिमाचल प्रदेश में पृ० ५-११) से भी है क्योंकि यह स्पष्ट है कि वहाँ सिद्धों की अपेक्षा पुष्कों की संख्या अधिक है, साम्राज्य-मजल में दोनों की संख्या में बहुत कम अंतर है। अतः यह कारण ठीक नहीं प्रतीत होता है। डिग्ल वीटर ने इस विषय में यह भी कहा है कि कई स्थानों में सिद्धों की संख्या पुष्कों की अपेक्षा कम होती है, वहाँ उपर्युक्त धृष्टि के अनुसार बहुभर्तृप्रथा होती चाहिए, किन्तु वास्तव में ऐसा नहीं है। उदाहरणार्थ, केरल में ओपला अनुसंधानों में पंच पुष्कों के पीछे केवल दो सिद्धों हैं, फिर भी वहाँ यह प्रथा नहीं पायी जाती है। अतः सिद्धों की कमी बहुभर्तृता के प्रचलन का अनुचित कारण नहीं प्रतीत होती है।

हैं। इससे जैनिक प्रकार के वैयक्तिक लाभ होते हैं। अतः व्यक्तिगत एवं वैयक्तिक दृष्टि से उपयोगी होने के कारण यह प्रथा समाज में प्रचलित हो जाती है, समाज इसे मान्यता प्रदान करता है क्योंकि जड़े व्यक्तिगत उत्थान के लिए विभिन्न व्यक्तियों में व्यक्तिगत सहयोग आवश्यक प्रतीत होता है। यह प्रथा श्रम-शरीर-कर्म का रूप धारण करती है और ऐतिहासिक परम्परा इसे समाज में सुगुह बनाती है तथा एक महत्वपूर्ण संस्था का रूप प्रदान करती है। किन्तु जब समाज में उपर्युक्त परिस्थितियाँ नहीं रहती अथवा इसकी विरोधी परिस्थितियाँ और बाधनाएँ प्रचल होती हैं तो यह प्रथा क्षीण होने लगती है। औद्योगिक क्रांति और केरल में इसीलिए इस समय इस प्रथा का स्तोप हो रहा है।

समाजशास्त्रीय कारण का संक्षिप्त विभिन्न कारणों से पति के घर से बाहर रहने पर, उसके अभाव की पूर्ति के लिए इस प्रथा का प्रचलित होना है (पीटर पृ० २५७)। उदाहरणार्थ संका में काशी प्रवेश की बहुपति प्रथा के बारे में गुजरले का यह मत है कि पहले अश्व के शरदारों और सामानों को राजदरबार में बहुत समय तक रहता पड़ता था, धीरे-धीरे उनकी अनुपस्थिति में धरेलु कार्य चलाने के लिए इस प्रथा का प्रचलन आवश्यक हुआ, इसके लिए पति के अतिरिक्त किसी अन्य व्यक्ति का पत्नी के साथ रहना आवश्यक था, पति के छोटे भाई के लिए यह कार्य करता सबसे स्वाभाविक था। श्री० बी० पम्बोर्नके ने पति की अनुपस्थिति का कारण रात के समय पशुओं से खेतों को रक्षित करने के लिए बाहर जाने पर पति की अनुपस्थिति से घर का कार्य उनके छोटे भाइयों द्वारा चलाया जाता है। पीटरबार्न ने सैनिक समाजों में पतियों के मृत्यु पर चले जाने के कारण इस प्रथा के प्रचलित होने का उल्लेख किया है और केरल की गामर जाति में बहुपति प्रथा का कारण इसे बताया है। किन्तु इस कारण को सभी मान्य में सबसे बड़ी आपत्ति मिश्र पीटर ने (पृ० २५७, २६५) यह की है कि सैनिक सेवा के कारण पति की अनुपस्थिति सभी सैनिक समाजों में होती है, यदि इसे बहुपति प्रथा का कारण माना जाय तो यह उन सभी समाजों में ही प्रचलित होना चाहिए, किन्तु यह केवल गामर समाज जैसे इनके मान्य समूहों में ही पायी जाती है। इससे यह सूचित होता है कि इसका वास्तविक कारण पति की अनुपस्थिति नहीं, बल्कि पहले बतायी गयी कुछ अन्य परिस्थितियाँ हैं।

हिन्दू विवाहविधयक नवीन प्रवृत्तियाँ

पिछले अध्यायों में हिन्दू विवाह के भतीत का वर्णन और वर्तमान का विवेचन किया गया है; इस अध्याय में हिन्दू विवाह के भविष्य की दृष्टि रखते सभी कुछ ऐसी नवीन प्रवृत्तियों और परिवर्तनों की मीमांसा की जायगी जो इस संस्था के सभी स्वरूप पर तबड़ा प्रभाव डालने वाली हैं। पिछले २५-३० वर्षों में भारत में परिवार और विवाह के संबंध में अनेक सामाजिक-राष्ट्रीय अनुसंधान हुए हैं।^१ वहाँ इन सबके आधार पर नवीन प्रवृत्तियों का प्रतिपादन किया जायगा।

पश्चिमी संसार में सामाजिकशास्त्रियों, वैज्ञानिकों तथा उपन्यास-लेखकों ने विवाह तथा परिवार के भविष्य के संबंध में अनेक मनोवैज्ञानिक अध्ययन की हैं। इनके अनुसार एक ऐसा भावी युग आने वाला है, अब समाज में विवाह एवं परिवार की प्रथा पूर्ण रूप से लुप्त हो जायगी। पुरुष और स्त्री एकानुसार कामोपभोग करेंगे, कर्त्त-विरोध के साधनों में नवीन प्रगति और आविष्कार हो जाने के कारण, कामोपभोग में हस्ताश्रो-स्पर्श की आवश्यकता न रहने से इसी निरालेक एवं निर्बोध रीति के क्रिया आ सकेंगे। बच्चों का पालन-पोषण करने के लिए माता-पिता और परिवार की आवश्यकता नहीं रहेगी। शिशुओं के पालन-पोषण का कार्य राज्य द्वारा संचालित शिशुशालाओं (Nurseries) में अनुभवी दाइयों द्वारा होगा। सुप्रसिद्ध लेखक आल्बस हक्सली (Albans Huxley) ने अपने एक उपन्यास 'नवीन साहसिक जगत्' (Brave New world) में यही एक भवेनवा की है कि भविष्य में विकास इतनी द्रवति कर लेगा कि बच्चों को वैज्ञानिक

१. इस प्रकार के कुछ प्रमुख अध्ययन और सम्मेलन निम्नलिखित हैं—

१. बीमती सी० ए० हावे—सीशियोलॉजिकल सोसायटी आफ़ लंडन के १९३०।
२. सी के० डी० बर्नह-बैरिंग—यूनिवर्सिटी आफ़ ऑक्सफ़र्ड १९३५।
३. बीमती सी० डी० वेसाई—यूनिवर्सिटी ऑफ़ लंडन १९४५।
४. बीमती सी० ए० हावे—दो सोसायटी ऑफ़ सोसायटी ऑफ़ हिन्दू यूनिवर्स १९४५।
५. 'टाइम्स'—सी शिम्पू बीमती हव इन्स अर्बन सीटिव १९५५।

प्रयोगशासकों में परीक्षण नलिकाओं (Test Tubes) में बीज (Sperm) और रज (Ovum) को मिलाकर उत्पन्न किया जा सकेगा, सिद्धों को प्रसूतिका बन्ध नहीं उठाया पड़ेगा। उक्त समय यदि किसी स्त्री का भ्रूण से कोई कन्धा उत्पन्न होगा तो यह एक बड़ी आश्चर्यजनक घटना होगी। विवाह और परिवार की व्यवस्था संबंधी अनावश्यक और निरर्थक सिद्ध हो जायगी।^१

निःसन्देह में कल्पनाएँ बड़ी रोचक हैं। इनका आधार भवीन आकिसमयों से तथा वैज्ञानिक उत्पत्ति के होने वाले उद्योगीकरण (Industrialisation) और नगरीकरण (Urbanisation) द्वारा उत्पन्न होने वाली नवीन परिस्थितियाँ हैं। इनका विश्लेषण हिन्दू परिवार सीमांमा (पृ० ४८८) में विस्तार में किया जा चुका है। यहाँ यहाँ केवल विवाह विषयक नवीन प्रवृत्तियों का संक्षिप्त उल्लेख किया जायगा। यह कुछ सामान्यास्त्रियों द्वारा हिन्दू समाज में किये गये अन्वेषणों के आधार पर किया जायगा। हिन्दू विवाह की प्रमुख नवीन प्रवृत्तियाँ निम्नलिखित हैं।

(१) विवाह का स्वरूप—इसके वैयक्तिक पक्ष की प्रधानता

पहले अध्याय में यह बताया जा चुका है कि विवाह के स्वरूप के संबंध में कई पक्ष और दृष्टिकोण हैं। इन्हें मुख्य रूप से निम्नलिखित पक्षों में बाँटा जा सकता है।

(क) धार्मिक पक्ष—इसके अनुसार विवाह एक पवित्र धार्मिक संस्कार है, अनुग्रह को अपने धार्मिक कर्तव्य पूरा करने के लिए विवाह करना चाहिए। पहले यह कर्षण हो चुका है कि भारतीय अधीशास्त्रकारों ने विवाह का एक प्रयोजन विभिन्न प्रकार के धार्मिक कर्तव्यों का वासन करना बताया है (पृ० २-११)। इस प्रकार धार्मिक संस्कार (Religious sacrament) होने के कारण विवाह एक अविच्छेद्य संग्रह होता है। अतः यह एक ऐसा अनुग्रह (Contract) नहीं है, जिसे दोनों पक्ष कुछ विशेष परिस्थितियों में तोड़ सकें। यह विवाह का अनुबन्धारमक (Consuetudinal) स्वरूप कहलाता है। हिन्दू विवाह अब तक धार्मिक अन्धन या अविच्छेद्य संस्कार (Indissoluble Sacrament) रहा है, अनुबन्धारमक (Contractual) संबंध नहीं है।

(ख) सामाजिक पक्ष—इसका यह अभिप्राय है कि विवाह का उद्देश्य समाज का कल्याण, सम्मान की प्राप्ति, समाज के कालक्रम को बनाये रखना तथा इसका संरक्षण करना है।

(ग) नैतिक पक्ष—इसका यह अर्थ है कि समाज में नैतिकता को सुरक्षित रखने के लिए यह आवश्यक है कि सबको विवाह द्वारा वैधरीति से कामवासना की पूर्ति

^१ इस विषय के विश्लेषण के लिए देखिए हरिवंश बेदामकार—हिन्दू परिवार सीमांमा, अठारहवाँ अध्याय, पृ० ४८८-४९४।

के साधन प्रस्तुत किये जायें ताकि समाज में नैतिक उदात्तता और अन्धविश्वास की स्थिति उत्पन्न न हो सके।

(घ) **वीर्य एवं वैयक्तिक (Personal)** है। इसके अनुसार विवाह का प्रमाण सहेय्य पति-पत्नी का एक दूसरे के लिए शरीर और मित्र होना, एक दूसरे के वैयक्तिक सुख-दुःख में सहभाग्य होना, एक दूसरे की पूर्णता को बढ़ावा देना होता है। पहले अम्बाल (पृ० ३-४) में बताया जा चुका है कि जनपद अम्बाल और बुद्धादित्यक के मतानुसार विवाह धर्म्य के वैयक्तिक जीवन की अपूर्णता को दूर करने के लिए तथा उसे सुधी बनाने के लिए होता था। समय-समय में यह धर्म्य के माता पिता द्वारा दो परिवारों में वीर्य में सह किया जाने वाला (Arranged Marriage) संबंध मात्र था, जो विवाह तथा परदे की प्रथा के कारण इसमें पति-पत्नी के वैयक्तिक संबंध का विकास बहुत कम होता था।^१

किन्तु विवाह के प्रधान एवं लचील परिस्थितियों से हिन्दू युवक और युवतियों को विवाह-विधयक दृष्टिकोण में बड़ा परिवर्तन आ रहा है। पहले विवाह के विषय में धार्मिक दृष्टिकोण को महत्व दिया जाता था। इसे एक पवित्र धार्मिक संस्कार और अधिष्ठीय्य व्यवस्था माना जाता था, इसमें वैयक्तिक तत्त्व को बहुत कम स्थान दिया जाता था।^२ किन्तु अब धार्मिक के स्थान पर वैयक्तिक तत्त्व को अधिक महत्व दिया जाने लगा है। यह बात वी० के० टी० मर्चेंट द्वारा किये गये एक अनुसन्धान से प्रकट होती है। इसमें बम्बई, गुजरात और पुना के युवक-युवतियों से विवाह के संबंध में प्रश्न किया गया था। अधिकतर युवकों तथा युवतियों ने इस विषय में विवाह के वैयक्तिक स्वयं को प्रमुख स्थान दिया और इसके बाद अधिकतम संख्या में इसके धार्मिक स्वयं का उल्लेख किया।^३ इस विषय में दिये गये उत्तरों से इस समस्या पर सुन्दर प्रकाश पड़ता है। एक युवक ने लिखा था—“विवाह का मुख्यतः किसी संस्कार में निहित नहीं है, यह पुरोहित द्वारा बोले जाने वाले मन्त्रों में भी नहीं है। यह दो आत्माओं का मिलन है। यह बुद्धि और हृदय का संगम है। . . . विवाह से दो आत्माओं का शीघ्रतापूर्वक एवं स्वस्थ विकास होता है।” एक दूसरे युवक के शब्दों में विवाह प्रकृति के सम्बन्ध में प्रयोगशाला की तुरा करने के लिए दो व्यक्तियों का सम्मिलन है (पृ० ५२)। एक युवक ने विवाह के धार्मिक स्वयं का विरोध करते हुए लिखा था—“आध्यात्मिकता से विवाह के संबंधित होने के विचार का अंत्योपान बहुत सिद्ध हो चुका है। आध्यात्मिक संबंध से लिए सहवास की अपायकता नहीं होती। इसके विपरीत पति-पत्नी का निरन्तर

^१ राजेन्द्र प्रसाद—धर्म्य कथा

^२ के० टी० मर्चेंट—बोला अनुसन्धान और वैयक्तिक एवं वैयक्तिक (हिन्दू युवक) मद्रास १९३५, पृ० ४०-४९।

^३ वही, पृ० ४८

सहस्राब्द इसकी एक आध्यात्मिक संबंध बनने में सहयोगी होया है। विवाह प्रधान रूप से भौतिक संबंध है। इसे एक धार्मिक संस्कार स्वीकार न करते हुए सब प्रकार की परम्पराओं से जीर धार्मिक भक्त-विश्वासों के धक्कों से इसे मुक्त करना चाहिए। मनुष्य मृत्यु के अतिरिक्त किसी अन्य प्रकार से विच्छिन्न न हो सकने वाले हिन्दू विवाह ने हिन्दू स्त्रियों के उत्पीड़न एवं दासता को उत्पन्न किया है " (पृ० १३)। कुछ अन्य उताड़ों में कहा गया था कि पत्नी पति की सहयोग, परामर्शदाता तथा जीवन-संगिनी होती है, उनका पारस्परिक संबंध भूतल पर बनिष्ठ मित्रों जैसा होना चाहिए। विवाह के अनु-बन्धनात्मक (Contractual) रूप का समर्थन करते हुए एक उताड़ में कहा गया— "विवाह एक ऐसा अनुबन्ध है जिसको समाप्त दोनों पक्ष पारस्परिक सहमति से कर सकते हैं (पृ० १३)।" इन उताड़ों से यह स्पष्ट है कि हिन्दू युवक-युवतियों की विवाह-विषयक धारणा में एक बड़ा भौतिक परिवर्तन आ रहा है, अपने इसे धार्मिक संस्कार या बहिष्कृत बन्धन के स्थान पर वैयक्तिक संबंध और एक प्रकार का अनुबन्ध (Contract) समझने की प्रवृत्ति बढ़ रही है।

(२) विवाह का अनावश्यक समझा जाना

पहले अध्याय (पृ० १७-२२) में यह बताया जा चुका है कि कई कारणों से हिन्दू समाज में विरकास में बड़े-बड़े परिवारों के लिए विवाह एक अनिवार्य धार्मिक कर्तव्य माना जाता रहा है; किन्तु अब बत-बत-बत नीची परिस्थितियों से इस धारणा में परिवर्तन हो रहा है और कुछ युवक-युवतियाँ विवाह को अनावश्यक समझने लगे हैं। सर्वोत्तम द्वारा किये गये अनुसन्धान में ५६-२ प्रतिशत युवक-युवतियों ने विवाह को अनिवार्य तथा आवश्यक माना था और १३-२ ने अनावश्यक।^६ युवकों ने इसे आवश्यक मानने के लिए दो कारण दिये हैं जिनमें प्रधानता वैयक्तिक कारणों की है, विवाह व्यक्ति के विकास एवं पूर्णता के लिए आवश्यकताओं और अच्छे पाने के लिए, जीवन को आमन्दन्य बनाने के लिए तथा उत्तम स्वास्थ्य प्राप्त करने के लिए आवश्यक माना जाता है (पृ० ६८)। इस प्रश्न में यह तथ्य स्मरणीय है कि युवकों में केवल १३.२ ने विवाह को अनावश्यक माना है, किन्तु युवतियों में पचास प्रतिशत इसे अनावश्यक मानती हैं।

विवाह को अनावश्यक समझने के लिए युवक-युवतियों द्वारा प्रस्तुत निम्ने दो कारण प्रधान रूप से निम्नलिखित हैं—

(क) स्वतन्त्रता पर आधारित—विवाह समुदाय की वैयक्तिक स्वतन्त्रता पर कई प्रकार के प्रतिबन्ध लगाता है, आधुनिक युवक-युवतियों द्वारा अपनी पूर्ण स्वतन्त्रता आवांछने के लिए विवाह न करना उत्तम समझा जाता है। इस विषय में युवतियों

^६ सर्वोत्तम—पूर्वोक्त पुस्तक, पृ० ६६

जाता बिधे गये उत्तर बड़े मनोरंजन हैं। एक युवती के शरीरों में हुसारी कर्तमान विवाह पद्धति स्थितियों के स्वाभाविक अधिकारों पर कुछ प्रतिबन्ध लगाती है, इनके व्यक्तित्व के विकास की अवसरदात्री है। अविवाहित रहते हुए व्यक्ति पत्नी की तरह स्वायत्त रह सकता है, नवयुवती अपनी पूर्ण स्वायत्तता सुरक्षित रखते हुए, वेन की अधिक सेवा का भोग कर सकती है (पृ० ८६-८)।

(ख) **बाल्यवयव का प्रारम्भ**—अनेक युवक विवाह की लीला बाल्यवयव के आदर्श को अधिक ऊँचा और लम्बा समझते हैं, इनसे अनानुसार कामोपभोग एक अस्वाभाविक कार्य नहीं है, बल्कि प्रत्येक का विवाह के अन्तर्गत में नहीं पड़ता चाहिए।

(ग) **आर्थिक स्वायत्तत्व**—नवीं युवतियों में इस बात पर दृढ़ धिया कि पहले स्त्री के पास स्वायत्तत्व से आजीविका कमाये के साधन नहीं थे, अतः विवाह उसके लिए अनिवार्य था, किन्तु अब शिक्षा गाने के साथ वह अपने पैरों पर खड़ी हो सकती है, अतः उसे विवाह करने की आवश्यकता नहीं है (पृ० ७९)। कुछ गुजरती युवती ने बहुत लक्ष विचार भटक किया कि स्त्री के लिए अविवाहित रहना विवाहित होने की अपेक्षा अधिक बेधकर है, क्योंकि विवाह उसे परम्परा बनाये बाँधा तथा उसके कार्य में बाधा डालने वाला है। विवाह की आवश्यकता चाहने वाली आधी स्त्रियों में इसका कारण आर्थिक परिस्थितियों को माना है।^{*} इनका यह मत है कि शिक्षा अब अपनी आजीविका कमाते हुए स्वतन्त्रतापूर्वक जीवन-यापन कर सकती है। अतः उन्हें विवाह करने की आवश्यकता नहीं है। स्त्रियों का विवाह आर्थिक अवस्था को सुलझाने के लिए किया जाता था, अब वे स्वयं इसे सुलझाने में समर्थ हो गयी हैं तो उनके लिए विवाह की कोई उपयोगिता नहीं रह गयी है। कुछ युवकों ने बीस बरस पर ध्यान दिया है कि आर्थिक दृष्टि से दूसरों पर आश्रित एवं परावसम्बी युवकों को विवाह नहीं करना चाहिए।

(घ) **जनसंख्या की वृद्धि की रोकना**—कुछ युवक विवाह की इसलिये अनिवार्य मानते हैं कि इस समय देश की समृद्धि को बढ़ाने तथा दृष्टिगत धुर करने के लिए जनसंख्या की वृद्धि पर प्रबल अंकुश लगाया जाना चाहिए। विवाहों की अनिवार्यता सेन की जनसंख्या बढ़ाने में अक्षयक सिद्ध हो रही है, अतः इस पर प्रतिबन्ध लगाया जाना चाहिए, अविवाहित स्त्री-पुरुषों की संख्या बढ़ने से जनसंख्या में कमी होगी, अतः वर्तमान युग में विवाह को आवश्यक नहीं समझना चाहिए। एक युवक के शरीरों में "विवाह का प्रसार प्रयोजन वैधर्म्य से छत्ताभोत्पादन करना है। प्रत्येक व्यक्ति यह स्वीकार करता है कि भारत में जनसंख्या की वृद्धि अभी तेजी से हो रही है। इसे रोकने

के लिए विवाह के बाद नवें विरोधादि शत्रुता की अनुपस्था होने की अपेक्षा विवाह न करने अधिक अच्छा है।^१

उपर्युक्त अनुसन्धान में पुरुष-पुत्रियों के प्रथम अनुमत न विवाह को आवश्यक माना है। इसका सम्बन्ध वैयक्तिक, सामाजिक, नैतिक और शारीरिक कारणों के आधार पर किया, और इसे आवश्यक न मानने वाले पुरुषों में केवल ११.२ प्रतिशत ही थे। फिर भी विवाह को आवश्यक न मानने वाली अल्प संख्या इस बात की सूचित करती है कि हिन्दू समाज में विवाह को अनिवार्य एवं आवश्यक कर्तव्य समझने की सार्वभौम भावना में सदैव कमी रही है। इसका प्रधान कारण स्त्रियों की शिक्षा तथा आर्थिक दृष्टि से स्वावलम्बी होना है। विवाह के अतिरिक्त पहले स्त्रियों के जीवन में कोई अन्य बड़ा कार्य नहीं था, अतः विवाह, मातृत्व और अपने-अपने गृह, अनिवार्य थे, इनके बिना उनका जीवन ठूला था। किन्तु आज माटी मिटा पाया करने करने की विविध कानों में भरा सकता है, आर्थिक दृष्टि से स्वावलम्बी हो सकती है, अतः उसके लिए सुविधाएँ देती प्राचीन भारत की स्त्रियों की प्रति विवाह अनिवार्य करीब नहीं रहा। किन्तु फिर भी सामान्य तौर से हिन्दू नारी के लिए अब भी विवाह आवश्यक माना जाता है।

राज ने भी अपने अध्ययन में उपर्युक्त निष्कर्ष को पुष्ट करते हुए यह लिखा है कि इस समय पुरुष-पुत्रियों में विवाह की अनिवार्यता घटती जाती है।^२ उसके अध्ययन में पाँच अनिवार्यताएँ सूची की हैं कि वे विवाह नहीं करना चाहते। इनके विवाह न करने के कारण विभिन्न प्रकार के थे, जैसे वेद की सेवा में अपने जीवन को लगा देने की इच्छा, धार्मिक जीवन बिता देने की इच्छा, विवाह में कोई दिलचस्पी न होना, परिवार के पालन-पोषण के गंभीर आर्थिक उत्तरदायित्व को ठगने से अपने की इच्छा तथा वह विश्वास कि विवाह दुर्भाग्य और दुर्भाग्य का धाम बनता होता है। राज ने एक ऐसी सूची का भी सम्पादन किया, जो अपने कार्य में इसकी अधिक संकीर्ण की कि उसने विवाह करने की बात ही नहीं सोची थी।

स्त्रियों-स्त्रियों आर्थिक दृष्टि से स्वावलम्बी और मनोवैज्ञानिक दृष्टि से समुष्ट होती जाती हैं, स्त्रियों से अपना मनपसन्द या सन्तोषजनक घर न मिलने की वजह से विवाह को मान्यता करने लगती हैं। इस विषय में एक पुरुषों के ये विचार उल्लेखनीय हैं—“मेरी माता बी० ए० की उपाधि प्राप्त करने के बाद मेरा विवाह करना चाहती थी। मुझे बी० ए० पास किये हुए तीन वर्ष बीत चुके हैं, मेरे विवाह के लिए कई प्रस्ताव आ चुके हैं किन्तु मैंने इस समय तक विवाह न करने का निश्चय किया है, जब तक मुझे

^१ सर्वेक्ष—पूनाई पुस्तक पृ० ७२-८०

^२ राज—दी हिन्दू कोयली इन इन्स सर्वेक्ष वॉल्यूम पृ० २७६

अपने पिता, सर्वथा उपमन्य कर नहीं मिल जाता है। मैं ऐसे व्यक्ति को पति नहीं बनाता चाहती हूँ, जिसमें मेरे साथ ही पति की सब विशेषताएँ हों। मैं यह भी अनुभव करती हूँ कि मेरा वर्तमान जीवन पूर्ण रूप से रोचक है। मेरे पास जीवन व्यतीत करने के लिए अपनी पुस्तकें और संगीत है।" (पृ० २७६)। इस उदाहरण से यह स्पष्ट है कि किशोरियों में उपमान्य कर से मिलने तक अविवर्हित रहने की प्रवृत्ति बढ़ रही है। किसी एक-दो, एक-पाँच, दो-पाँच-बी० या डाक्टर बनने के बाद अपने जैसी पिता रखने वाला तमा आशिका दृष्टि से सम्मन्य पति दूर होती है, ऐसी आदर्श पति की तलाश में कई बार ऐसी प्रवृत्तियों की अविवर्हित रहने की निम्न होना पड़ता है। वैदिकयुग में पिता के घर में इस प्रकार बूढ़ी होने वाली कन्याओं की अमान्यता का शासन था (पृ० २११-२१३), जब पुनः हमारे समाज में यह प्रवृत्ति उत्पन्न हो रही है।

(३) वरणास्वामिकता

हिन्दू समाज में वामविवाह की वृद्धि व्यापक रूप से प्रचलित होने पर सभी विवाह माता-पिता द्वारा आयोजित (Arranged) किये जाते थे। वर्तमान वर-वधू को किसी भी प्रकार से अपना जीवनसाथी चुनने की कोई स्वतन्त्रता नहीं थी। यह विवाह वस्तुतः दो व्यक्तियों में न होकर, दो परिवारों में होता था। पहले वर-वधू को एक-दूसरे को विवाह से पहले देखने, अपने जीवनसाथी के भूषण के विषय में कोई सम्मति प्रकट करने^{१०} या किसी प्रकार के अनुबंध (Couship) की कोई छूट नहीं थी। इससे पहले विवाह होता था और इसके बाद वेम विकसित होता था। यह विधवा की वेम उत्पन्न होने के बाद विवाह करने की (Love Marriage) प्रवृत्ति से सर्वथा भिन्न था। यह बात अपने वर्षों की शादी छोटी क्षण में तय करते थे और इससे वर-वधू को अपना जीवनसाथी स्वयं चुनने का या इस विषय में कुछ भी कहने का अधिकार नहीं होता था।

किन्तु पिता के प्रकार एवं प्रभाव से अब सभी युग्म अपना जीवनसाथी चुनने में स्वतन्त्रता चाहते हैं। हाटे (पृ० ३६) की गवेषणा में ७४ प्रतिशत कन्याओं में यह बात सामने आई कि वे अपना जीवनसाथी स्वयं चुनना चाहती हैं। हाटे ने इस विषय में यह सत्य ही लिखा है कि सम्प्रदाय से विचार करने पर यह प्रतीत होता है कि किशोरियों में ऐसे विवाहों के विरोध करने का निश्चय कर दिया है, जो उनके माता-पिता द्वारा विधिवत किये जाते हैं और जिसमें उनके कोई सम्मति नहीं होती जाती है; किशोर वर-नारियों की यह दृष्टि स्वाभाविक है कि ऐसे सहस्रवर्षीय प्रथम में उनकी इच्छा का ध्यान रखा जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त कन्याएं धन के प्रसौत्र्य से किये जाने वाले प्रेम विवाह के

सुव्यवस्था से बचने के लिए श्री अरुणस्वात्मन् की आज्ञा काटनी है।^{११} मन्त्रों की गणेरणा के ७६२ प्रतिशत युवक-युवतियों ने अपना जीवनसंगी स्वयमेव चुनने की इच्छा प्रकट की (पृ० ४५), जो व्यक्तियों ने यह कहा कि अरु-अरु का विस्मय इनके सागा-विदा द्वारा होता था।^{१२} किन्तु विवाह में पूर्ण दृष्टिमानों में अरु-अरु की स्वीकृति अवश्य ली जाती थी।

रास की गणेरणा में स्त्रियों तथा पुरुषों की तीन वर्गों में बांटा गया था—अविवाहित, छोटीविवाहित (Young married) मिनकर विवाह हुए धोखा समय बीता का तथा बिरविवाहित (older married) अर्थात् विवाह विवाह हुए काली समय बीत चुका था। अपना जीवन सारी युवकों के मित्रों में इनसे तीन बिकरों काया प्रत्य गुला गया था, यरा में इस विधाय में पूर्ण स्वतन्त्रता चाहते हैं, स्वतन्त्रता चाहते हैं या कोई स्वतन्त्रता नहीं चाहते हैं। इस प्रश्न के उत्तरों को निम्नलिखित तालिका में प्रदर्शित किया गया है।^{१३}

विवाह में अरुण स्वात्मन् की आज्ञा

	पूर्ण स्वतन्त्रता	कुछ स्वतन्त्रता	स्वतन्त्रता का अभाव	सर्वधीन
स्त्रियाँ				
अविवाहित	७	७	५	१३
छोटीविवाहित	१	१३	५	२१
बिरविवाहित	२	१०	१०	२३
स्त्रियों की कुल संख्या	१२	३०	२०	६२
पुरुष				
अविवाहित	१२	२१	३	४२
छोटीविवाहित	५	८	१०	२०
बिर विवाहित	—	७	४	११
पुरुषों की कुल संख्या	२०	३६	१७	७३
सर्वधीन	३२	६६	३७	१३५

इस तालिका से यह स्पष्ट है कि बिरविवाहित पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों का अविवाहित युवक-युवतियों में अवयव करने की प्रवृत्ति अधिक है। ४२३ पुरुषों में

^{११} हरिदास बेदानकर—हिन्दू परिवार नीतिशा ५० ३०३

^{१२} रास—पूर्वोक्त सुत्रक, पृ० २५२

१८ एकताकी पुण्या में विवाह के संबंध में पूर्ण स्वतन्त्रता की ओर २१ में कुछ स्वतन्त्रता की ओर गयी, केवल तीन ही पुण्या ऐसे थे जो इसमें कोई स्वतन्त्रता नहीं आहूते थे और इसका निर्णय माता-पिता पर छोड़ने के दृष्टिकोण से। किन्तु सभाविवाहित पुण्या में केवल ३ को पूर्ण स्वतन्त्रता मिली थी, १३ को आंशिक स्वतन्त्रता तथा पाँच को कोई स्वतन्त्रता नहीं प्राप्त हुई थी। चिरविवाहित पुण्या में किसी भी भी अपनी पत्नी का पुनराव करने में स्वतन्त्रता नहीं मिली थी। अविवाहित स्त्रियों में १४ पूर्ण अथवा आंशिक वरणा स्वातन्त्र्य आहूतो थी, किन्तु पाँच अब भी गति के पुनराव के लिए पूर्ण रूप से माता-पिता पर अवलम्बित रहना चाहती थी। सभाविवाहिताओं में केवल तीन को पूर्ण, १३ को आंशिक तथा पाँच को कोई स्वतन्त्रता नहीं मिली थी। चिरविवाहिताओं में केवल दो को ही पूर्ण स्वतन्त्रता मिली थी, एक को आंशिक एवं दस को कोई भी स्वतन्त्रता नहीं प्राप्त हुई थी।

ये जाँचके इस बात को सूचित करते हैं कि (१) यद्यपि अविवाहित युवक युवतियों अपना जीवनसाथी चुनने की पूर्ण स्वतन्त्रता आहूते हैं, तथापि अभी तक यह उन्हें छतरी अधिक मात्रा में नहीं मिल रही है, जितनी माता में इसे वे पाने के लिए इच्छुक हैं। (२) अब भी युवक-युवतियों में काफी बड़ी संख्या यह आहूती है कि उनके विवाह का निर्णय माता-पिता ही करें। ऐसा प्रतीत होता है कि अब तक माता-पिता पर-शु के बारे में पूरा नियंत्रण करते थे, किन्तु अब युवक-युवतियों स्वयमेव यह चुनाव करना आहूती हैं और अपने चुनाव पर माता-पिता की स्वीकृति की मुहर लगवाना चाहते हैं।

वरणा स्वातन्त्र्य की प्रवृत्ति नव-जनैः प्रत्येक पीढ़ी में किंचि प्रकार बढ़ रही है, यह बात के द्वारा प्रस्तुत किये गये एक भविष्य के विष्णुसिद्धि विवरण में स्पष्ट हो आया—“जब हमारा विवाह हुआ तो मेरी माँ दस वर्ष की तथा मेरे पति की आयु १६ वर्ष की थी। मेरे माता-पिता ने विवाह से पहले मेरे पति को तथा उनके माता-पिता से मुझे देखा था, किन्तु दोनों ने एक दूसरे को विवाह संस्कार से पहले नहीं देखा था। पिछले कुछ वर्षों में एक नयी प्रथा का विकास हुआ है, इसे 'सड़की देखावा' कहते हैं। जिस समय मेरी सड़की की शादी हुई, उस समय यह नयी प्रथा थी। मेरी सड़की ने तथा उसके भाई पति ने एक दूसरे को देखा, किन्तु उन्हें विवाह ॥ पहले एक दूसरे से बात करने की अनुमति नहीं दी गयी। किन्तु अब मेरी पोती की शादी हुई तो सड़के तथा सड़की ने एक दूसरे से बातचीत की और उन्हें इस बात की भी स्वतन्त्रता थी यही कि वे विवाह से पहले एक साथ समझ के लिए जा सकें, यद्यपि इसकी व्यवस्था मा-बाप की ओर से की गयी थी।”^{१३} कई बार पुत्रों के आर्थिक दृष्टि से स्वावलम्बी हो जाने पर भी उनकी यह इच्छा बनी रहती है कि माता-पिता ही उनकी जीवनसंगिनी का चुनाव करें। यह

बादा दक्षिण भारत में आकर ताम्बई में बस जाने वाले एक प्रमुखक के विवरण से स्पष्ट हो जायगी। उसका यह कहना है कि "यद्यपि मैं दौ-एध, धी, प्राप्त करने के बाद शांति विवाह करना चाहता हूँ, किन्तु मैंने इस बात पर विचार नहीं किया कि मैं किस प्रकार की सक्ती से जारी करूँगा। मैं इस बात के लिए अपने पिता पर ज़रोता रखता हूँ कि वे मेरे लिए सबकी बुझ देंगे और मुझे इसके लिए कोई बिना मही करनी पड़ेगी। मेरे माता-पिता ने मुझे इस बात की अनुमति दी है कि इस मामले में अन्तिम चुनाव करने का कार्य वे मुझे सौंपें।" ताम्ब इसका यह कारण है कि वे इस बात अच्छी तरह से जानते हैं कि मैं इनकी इच्छा का विरोध नहीं करूँगा" (दास पृ० २५२)।

इस विषय में मुक्त माता-पिता की इच्छा का विरोध करना कोई कारणों से ठीक नहीं समझते हैं।^{१४} पहला कारण उनका यह विचार है कि उनके अनुभवी माता-पिता उनके हित के लिए बुर दृष्टि से सब बातों पर विचार करने उपयुक्त होंगे। का चुनाव करते हैं, मुक्त माता-पिता की अपेक्षा अधिकतर, अल्प एवं अपरिपक्व बुद्धि रखने वाले हैं, वे अनुभव-आयुता के कारण तथा कामाग्र होकर अपने चुनाव में ऐसी सर्वपर भूलें कर सकते हैं, जिनके लिए उन्हें जीवनपर्यन्त पश्चात्ताप करना पड़ सकता है। इस कारण वर प्रकाश जाते हुए चर्च (पृ० २६) की गवेषणा में एक मुक्त ने कहा था— "माता-पिता द्वारा कामाग्र बाह्ये हैं उनके परामर्श और सम्मति का बिना मुक्तों ने विवाह उपलब्ध कामवाला पर निम्नस्तर का कार्य करती है। अब प्रेमिका की सीधी का भावपूर्ण समाप्त हो जाता है तो दाम्पत्य की सीधे यहाँ के मुक्त की प्रत्याप्त होकर कथा का स्वयं चुनाव करने के सुपरिणामों को भीषते हैं। अतः ऐसी परिस्थितियों के निवारण के लिए माता-पिता का हस्तक्षेप बड़ा लाभदायक होता है।"

माता-पिता पर जीवनसौखी के चुनाव के लिए निर्भर रहने का दूसरा कारण यह है कि भारत में अभी तक अभिवाहित युवक-युवतियों द्वारा एक दूसरे के साथ सम्पर्क में आने, मिलने और परिचय प्राप्त करने के लेख नहीं हैं। अतः एक मुक्त ने माता-पिता द्वारा सब का निर्णय करने की पद्धति का समर्थन करते हुए लिखा था— "वर्तमान समय में हमारे समाज में पत्नी को प्रसन्न करने की एक मात्र यही पद्धति है। प्रत्य-विवाह (Love Marriages) की पद्धति हमारे समाज में असम्भव है, क्योंकि स्त्रियों को एक दूसरे से मिलने की तथा अपना जीवन साथी चुनने की कोई स्वतन्त्रता या अधिकार नहीं है।"^{१५} किन्तु अब अशांतिधर्मों, कालियों और स्वातंत्र्यवादी कक्षाओं में तथा को-काली में संलग्न छात्र-छात्राओं के सिधे तथा बड़े सहूरी के आध्यात्मिक संस्कारों में काम करने वाले युवक-युवतियों के लिए पारम्परिक सम्पर्क एवं परिचय पाने के अन्तर यह

^{१४} चर्च—पूर्वोक्त पुस्तक पृ० २६-२७

^{१५} चर्च—पूर्वोक्त पुस्तक, पृ० २४

रहे हैं। रात (पृ० २५६) में इनके सामान से होने वाले कुछ रोचक विवाहों के चित्रण दिये हैं।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि आधुनिक युवक-युवती अपनी जीवन संगी चुनने की स्वतन्त्रता प्राप्त करने की प्रबल अभिलाषा रखते भगें हैं, किन्तु अधिकतर विवाह अभी भी माता-पिता द्वारा तय किये जाते हैं, मायः माता-पिता लड़के के द्वारा पसन्द की गयी लड़की के लिए स्वीकृति दे देते हैं, और जब वे स्वयं लड़के के लिए लड़की चुनते हैं तो मायः लड़के से इससे लिए सहमति ले लेते हैं।^{१८}

(४) विवाह की आयु का ऊँचा उठना

आज से ४०-५० वर्ष पहले हिन्दू समाज में धार्मिकविवाह की प्रथा का प्रचलन था पहले (पृ० २३२-५) इसके विकास पर प्रकाश डालते हुए यह बताया जा चुका है कि वर्तमान समय में शिक्षा के प्रसार, आर्थिक परिस्थितियों एवं मधु भूँड़ने की परेशानियों के कारण बर-वयु के विवाह की आयु ऊँची उठ रही है। सर्वेक्ष द्वारा किये गये अनुसंधान में युवकों के मतानुसार विवाह की आयु लड़कों के लिए २२.६ वर्ष तथा लड़कियों के लिए १९.६ वर्ष और, युवतियों के मतानुसार लड़कों के लिए २५ वर्ष तथा लड़कियों के लिए १६.७ वर्ष होनी चाहिए।^{१९} हाटे डाध शिखे वषे अनुसंधान में सामान्य किशोरों के विवाह की औसत आयु २४ वर्ष तथा शिक्षित किशोरों के विवाह की उम्र २६ वर्ष थी।^{२०} इनका यह तात्पर्य है कि लहरे के सम्मेलन एवं शिक्षित वर्ग में बहुत देर में विवाह करने (Late Marriage) की प्रवृत्ति आरम्भ हो गयी है। इस प्रवृत्ति से सामान्य जीवन में अनेक नयी समस्याएँ उत्पन्न होने की संभावना है। यही अवस्था मैं गादी करने वाले स्त्री-पुरुषों के विचार और भावों, परिपक्व होती हैं, उनमें सुखसाय दाम्पत्य जीवन के लिए आवश्यक समझौते और अनुकूल्य की भावना कम होती है। विवाह से पूर्व स्वतन्त्रत्व से कबाई करने वाले पति-वती जब विवाह के बाद अपने वैयक्तिक सुख और मनोरंजन की दृष्टि में बाधा देखते हैं तो उनमें कलह का सूत्रपात हो जाता है, वैवाहिक जीवन की स्थिरता कम होती जाती है, विवाहविच्छेद बढ़ने लगते हैं।

न केवल विवाह की उम्र का ऊँचा उठना, अपितु विवाह के समय पति-पत्नी

^{१८} रात ने कुछ ऐसे भी उदाहरणों का उल्लेख किया है जिनमें युवक-युवतियों को अपनी इच्छा के विरुद्ध माता-पिता के आग्रह से विवाह करने के लिए जबरन होना पड़ा है (पृ० २५७)

^{१९} सर्वेक्ष—पूर्वोक्त पुस्तक पृ० २३६

^{२०} हाटे—पूर्वोक्त पुस्तक, पृ० ४१

की उम्र में अन्तर कम होना भी इनके सम्पन्न जीवन पर बहुत प्रभाव डालता है। हिन्दू परम्परा के अनुसार पतिव्रता स्त्री का यह धर्म है कि वह पति की आज्ञा का पालन करे, उसे देवता समान तथा उसकी पूजा करे। वह सभी संभव है जब पति-मल्ली की उम्र में काफी अन्तर हो, पति पत्नी से कई साल बड़ा हो। अब तक दोनों की साम्य में पर्याप्त अन्तर होता था। श्रीनिवास ने मैसूर की १८०१ की जनगणना रिपोर्ट के आधार पर यह बताया है कि पति-मल्ली की उम्र का अन्तर यहाँ छः महीने से २० वर्ष तक का था। तब स्त्रियों के लिए औसत अन्तर १० वर्ष का था।^{१०} उस के सम्मान में विवाहित स्त्री-गुप्तों में इस बात के लिए उल्लेख है कि पति-मल्ली की उम्र में अन्तर कम होता चाहिए।^{११} किन्तु इस सम्मान के यह विवाहित स्त्री-गुप्तों में यह अन्तर ८.६ वर्ष तथा विरविवाहितों में ७.६ वर्ष था। इससे यह स्पष्ट है कि यद्यपि युवक-युवतियाँ अपनी वैवाहिक माधु का अन्तर कम करने के लिए उत्सुक हैं, किन्तु अभी तक यह अन्तर वास्तव में कम नहीं हो पाया है। वस्तुतः विरविवाहितों में विरविवाहितों की अपेक्षा यह अन्तर रहने में कम होने के स्थान पर कुछ अधिक बढ़ गया है। इस सम्बन्ध में यह भी कहा गया है कि युक्तों की अपेक्षा स्त्रियों में यह भावना अधिक है कि पति-मल्ली की उम्र में अन्तर कम होना चाहिए और दोनों की उम्र समान समान होनी चाहिए। संभावनावादी दृष्टिकोण की प्रभावता के कारण यह सर्वथा स्वाभाविक है, क्योंकि स्त्रियों में यह भावना अधिक है। पति-मल्ली की उम्र में अन्तर कम होने का एक परिणाम यह होगा कि पत्नी पति से उम्र में अधिक न होने के कारण परम्परागत सादर और इतिवृत्त के भाव कम रहेगी, पति के साथ समान माधु के कारण मित्रता की भावना अधिक होगी। अभी तक यह धृष्टि की कठिनाई के कारण पति-मल्ली की उम्र में यह अन्तर रहने की अपेक्षा बहुत कम नहीं हुआ। निकट पश्चिम में इससे कम होने की संभावना अधिक नहीं है। हिन्दू समाज के पुनर् के लिए अपने से बड़ी लड़कियों की स्त्री से विवाह करना पाप समझा जाता है। सामान्य रूप से पत्नी के यह भावना रही जाती है कि वह पति का शरण स्वीकार करे, किन्तु यद्यपि यह पति से अधिक उम्र की है तो यह उसके पैर नीचे बैठ सकती है?

(५) प्रणय विवाह और रोमांटिक प्रेम (Love Marriage and Romantic Love)

प्राचीन भारत में कुलम्ब और अनुकूलता प्रणय विवाह का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है। शास्त्रमन्त्र के कामकाज से प्रेरित होता है कि इस समय मान्य विवाह बहुत लोक-

^{१०} श्री निवास—वीरिष पृष्ठ ६३।

^{११} दास—वही पृष्ठ २५०

शिव थे, किन्तु बालविवाहों का अधिक प्रचलन होने से हिन्दू समाज में प्रणय-विवाह की प्रथा सर्वथा सुप्त हो गयी। आजकल उपन्यासों तथा सिनेमा के चित्रों से प्रणय-विवाहों की प्रवृत्ति को प्रथम प्रस्तावित मिल रहा है। सिनेमा द्वारा के चरित्रों पर दिखाये जाने वाले सुधारमय चरित्रों ने मुख्य-द्वारा आधुनिक युवक-युवतियों प्रणय विवाह के समुद्र सपने में ले गये हैं और इस प्रकार के विवाहों को आधुनिक समाजने स्वीकृत है। अर्सेन्ड भी गे-पला में एक युवक ने यह घोषणा की थी कि "विवाह में जीवनसंगी प्रणय-विवाहों द्वारा चुने जाने चाहिए, अन्यथा विवाह सदैव बेव्यवस्था के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है, विवाह का वास्तविक आधार प्रणय और रोमांचक प्रेम ही होना चाहिए"।

किन्तु राज के अध्ययन से यह प्रतीत होता है^{२१} कि अभी तक हिन्दू समाज में माता-पिता द्वारा कार्यान्वित विवाहों (Arranged marriages) की व्यवस्था बलवत् है और रोमांचक प्रेम को विवाह के आधार के रूप में बहुत कम स्वीकार किया जाता है। प्रणय विवाहों की संख्या और प्रभाव नगण्य है। राज के अध्ययन में तीन बार विवाहित महिलाओं ने ही प्रणय विवाह किये थे, किन्तु वे विवाहित जीवन के इस पहलु के संबंध में कुछ साक्ष्यित करने के लिये तैयार नहीं थीं, इससे यह सूचित होता है कि वे उपर्युक्त युवक की भांति प्रणय-विवाह करने में कोई मज्जा या बड़ा काम करने का गर्व अपना मोरच अनुभव नहीं करती थीं और इसे विवाह का आधार स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं थीं।

इस अध्ययन के कुछ उदाहरणों में यह प्रकट होता है कि माता-पिता को जब कोई प्रस्तावना नहीं होती, जब उनकी सन्तान प्रणय-विवाह करती है। वे अपनी सन्तान के प्रणय-विवाह का मोर विरोध करते हैं और इस कारण ऐसा विवाह करने वालों को बड़ी परेशानी और कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। उदाहरणार्थ एक युवक को अपने छोटीन करती को कन्या के साथ प्रणय विवाह करने पर भी परेशानी उठानी पड़ी, उसका चिन्तन निम्नलिखित चरण में है—“जबने प्रणय-विवाह से मुझे बड़ी मुसीबत में फँसाया, क्योंकि कन्या के प्रति उत्कट प्रेम में उस माता-पिता के प्रति प्रणय प्रेम में मैं कोई सम्भव या समझौता नहीं कर सका था। मेरे माता-पिता हमारे संबंध को पसन्द नहीं करते थे, मैं उन्हें असह्य नहीं कर सकता था, दुधरी और मैं उस लड़की को भी नहीं छोड़ सकता था, जिसने मेरे लिए इतना अधिक कार्य किया था। मेरी शक्ति का तथा मेरे सम्बन्ध संबंध का धर्म उसी को है। इस समय मेरा संबंध बड़ा शिरदर्द यह समस्या नहीं हुई है।”^{२२}

राज द्वारा दण्डित कुछ परिवारों में माता-पिता ने अपने बड़ों-सड़कियों के प्रणय-विवाहों को मंग करने का पूरा प्रयास किया, वे उन्हें कोरा पारलपन प्रभावित थे। माता-पिता के विरोध के कारण कई बार लड़कियाँ अपने प्रणय-विवाह का विचार छोड़

२१ राज—पूर्वोक्त पुस्तक, पृ० २१६

२२ राज—पूर्वोक्त पुस्तक, पृ० २६३

देती है। किन्तु कई पुरुषियाँ जब अपने निश्चय पर अटल रहते हुए ऐसे विवाह कर लेती हैं जो उन्हें माता-पिता द्वारा अपने परिवार से अहिम्नित और निर्वासित कर देने वाले हैं जो परेशानियाँ उठाती पड़ती हैं, जहाँका वर्णन इस उदाहरण में किया गया है—
 “मेरी माता हमारे विवाह के लिए सहमत नहीं थी, क्योंकि मेरे पति की शिक्षा कम थी, सामाजिक स्थिति अच्छी नहीं थी। ताँ का यह भी विचार था कि मेरे पति की आयु अधिक थी। लड़के के पिता को इस विवाह पर यह आपत्ति थी कि इस एक जाति के नहीं थे।” अपने माता-पिता को अपने पति के वास्तविक गुणों का परिचय देने का बहुत प्रयत्न किया, किन्तु जब तक इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा। हमने माता-पिता को अपने विवाह का निमन्त्रण भेजा, किन्तु हमारे विवाह में कोई भी सम्मिलित नहीं हुआ। इसके बाद उन्होंने हमसे संबंध निश्चित कर लिये। मैं अपने माता-पिता को केवल सामंजस्य स्थापना और सम्बन्धों में ही विश्वास रखता हूँ, किन्तु वे मुझ के कोई बात नहीं करते हैं। हम भी अब उनसे कोई बलिष्ठ संबंध रखने के लिए उत्सुक नहीं हूँ।”^{२३} इससे यह स्पष्ट है कि प्रणय-विवाह कई बार स्त्रीयों का से माता-पिता और समाज के संबंध को बिच्छी कर देता है। यह कारण बहुत कम युवक-युवतियों उठाया चाहते हैं। इसके अतिरिक्त प्रणय-विवाहों की एक अन्य समस्या भी है। भारतीय एवं विदेशी मिश्रण-विवाहों के बारे में युवक-युवतियों में बहुत बड़ी जागरूकता उत्पन्न कर देते हैं, किन्तु यह जागरूकता पूरी नहीं होती, इस कारण रीढ़ होना जाया सम्बन्धों पर राज्य की हस्तक्षेप से बाधक है। अतः अभी तक हिन्दू समाज में प्रणय-विवाहों का प्रचलन बहुत कम हुआ है और भविष्य में भी इस प्रथा के प्रसार की अधिक संभावना होती नहीं जाती है।

(६) अन्तर्जातीय विवाह

वर्तमान युग में आधुनिक परिस्थितियाँ अन्तर्जातीय विवाहों के संबंध में किंचित प्रकार सहानुभूतिपूर्ण रही हैं, इसका विवेचन पहले (पृ० १४१) किया जा चुका है। रास के अभ्यास से यह ज्ञात होता है कि इस विषय में पुरुषों के विचार स्त्रियों की अपेक्षा अधिक उदार हैं।^{२४} वे न केवल अन्तर्जातीय (Intercaste) अपितु विभिन्न नस्लों वाले अन्तर्जातीय (Interracial), विभिन्न धार्मिक सम्प्रदाय वालों का अनुसरण करने वाले अन्तर्जातीय (Interreligious) विवाहों के समर्थक हैं। अभी तक अन्तः प्रजातीय तथा अन्तर्धर्म विवाह हिन्दू समाज में बहुत कम होते हैं, पहले प्रकार का सुप्रसिद्ध उदाहरण १९६८ में श्रीमती इन्दिरा गांधी के पुत्र राजीव गांधी का एक इटालियन कन्या सोनिया के साथ विवाह है। इन विवाहों के बहुत कम होने के कारण यहाँ केवल अन्तर्जातीय विवाहों

२३ रास—सूक्तिक पुस्तक १० १६८

२४ वही, पृ० १४०

५२ ही विचार किया जाएगा ।

अन्तर्जातीय विवाहों में सबसे बड़ी समस्या अपने परिवार और जाति के साथ सामंजस्य और सम्मान स्थापित करने की है । भाग्य-माता-पिता तथा जाति-विरासदी के साथ संबंधों ऐसे विवाह करने वालों का सामाजिक दायित्व बन देते हैं और तब हमारी अपने माता-पिता और जाति से जीवनव्ययन में प्राप्त हो सकने वाले बहुमूल्य सहयोग से वंचित हो जाते हैं । किन्तु यदि वे आर्थिक दृष्टि से समर्थ एवं स्वायत्त होती हैं और माता-पिता से कोई सहमता नहीं मांगते हैं तो कुछ समय बाद स्वाभाविक प्रेम और भयना की प्रकृति प्रकट हो जाती है और उनका मां-बाप तथा विरासदी से सम्बन्धित हो जाता है । अतः अन्तर्जातीय विवाहों के सम्बंध इनकी सफलता के लिए प्रति-पक्षी का आर्थिक दृष्टि से स्वायत्तता होना आवश्यक समझते हैं, क्योंकि उन्हें काफी समय तक अपने माता-पिता से सहमता की मांग नहीं रखनी चाहिए ।^{१४} मुद्रों में दो कारणों के आधार पर अन्तर्जातीय विवाहों का समर्थन किया था । पहला कारण तो यह था कि इसके हिन्दू समाज को धीरे-धीरे एक दृष्टि बनाने वाली एक कृपा का अन्त होना, उत्तम समाज का निर्माण होना, इसके अत्युत्पत्ता के कर्मक का अनुसमत्ता परतिमेद का निवारण होना । दूसरा कारण यह था कि प्रथम-शिक्षकों में आतिथ्या नाशक नहीं होनी चाहिए ।^{१५}

किन्तु स्थिति इस विवाहों की इसी दृष्टि समर्थन नहीं थी । इसमें २५ प्रतिशत में कम प्रजातीय तथा अन्तर्जातीय विवाहों का तथा ४३ प्रतिशत में अन्तर्जातीय विवाहों का समर्थन किया, क्योंकि मुद्रों में ७३ प्रतिशत अन्तर्जातीय विवाहों के समर्थन थे । स्थितियों द्वारा ऐसे विवाहों के विरोध का प्रधान कारण यह था कि ऐसे विवाह करने वाले प्रति-पक्षी अपनी जाति के रीति-रिवाजों और परम्पराओं के साथ सामंजस्य नहीं स्थापित कर सकते । एक मुद्रों के अनुसार ऐसे विवाह संभव नहीं हो सकते, क्योंकि हमारे धार्मिक एवं जाति विषयक नियम इतने अधिक सुदृढ़ रूप से प्रतिष्ठित हो चुके हैं कि हम विभिन्न जातियों और रीति-रिवाजों में पड़े हुए व्यक्तियों के साथ समन्वय नहीं कर सकते हैं, यदि विवाह असफल हुआ तो माता-पिता अपनी बहू-बकी को अपने परिवार में वापस नहीं ले सकते ।^{१६} इस प्रकार ऐसी संझौत अपने माता-पिता से प्राप्त होने वाले स्वाभाविक संरक्षण से वंचित हो जावनी और ऐसे विवाहों से उत्पन्न बच्चों को नकारना ही इसके दुष्परिणाम मानने पड़ेंगे । इसके विपरीत अन्तर्जातीय विवाहों का समर्थन स्थितियों में इस दृष्टि के बावजूद किया कि विवाह एक वैयक्तिक मामला है, प्रत्येक युवक-युवती को अपना जीवनसाथी चुनने की पूरी स्वतन्त्रता होनी चाहिए । एक महिला ने इस विषय

१४ रात—पूर्वोक्त पुस्तक पृ० २७१

१५ रात—पृ० पु०, पृ० २७०

१६ रात—पूर्वोक्त पुस्तक, पृ० २७१

में बड़ा उदार दृष्टिकोण अपनाते हुए कहा—“मैं अपने दो लड़कों को तब लड़कों की अपन सीवतसायी चुनने में खूबी छूट दूँगी, अन्तर्जातीय और प्रणय विवाह उभी सफल हो सकते हैं जब माता-पिता के विचार उदार हों।”^{२५}

किन्तु विचारों की इस उदारता को क्रियात्मक रूप देना बहुत कठिन है। इस प्रकार के विचार रखने वाले व्यक्ति स्वयंसेव अपनी सम्मान का अन्तर्जातीय विवाह करने हुए इसलिए संकोच करते हैं कि यह प्रथा अपने नाम में खूबी न होने पर भी प्रशंसित मान-मर के विरुद्ध है और इससे अनेक समस्याएँ उत्पन्न होती हैं। अतः अन्तर्जातीय विवाहों की इच्छा और प्रवृत्ति होते हुए भी अभी तक हिन्दू समाज में अन्तर्जातीय विवाहों का प्रचलन अधिक नहीं हुआ है। इस विषय में राय में यह परिणाम निष्पन्न है कि आधुनिक विचारों वाले अनेक व्यक्ति यह मानते हैं कि अन्तर्जातीय विवाहों की अनुमति दी जानी चाहिए, किन्तु वे यह भी समझते हैं कि इससे जातीय प्रथा में विवाह रखने वाले हिन्दू समाज में भौतिक परिवर्तन होने से अनेक समस्याएँ उत्पन्न होती हैं, जिन से अन्तर्जातीय विवाहों के लिए उभी हद तक जाति को तैयार है जिस हद तक जातिप्रथा भी व्यवस्था में विद्यमान न हो, अतः वे उप-वासियों का सम्मान तो देने में तृप्ति समझते हैं। किन्तु अन्तर्जातीय विवाह अभी तक केवल ऐसी अवस्थानों में ही किये जाते हैं, जब युवक-युवती के पारस्परिक प्रेम का कार्यण इसका प्रथम और प्रगाढ़ हो कि वे पारिवारिक परम्पराओं और रीति-रिवाजों के विरुद्ध विद्रोह करने को तैयार हों अथवा उन्हें अन्तर्जातीय विवाह का नियम थोड़ते हुए इससे उत्पन्न होने वाली परेशानियों की अपेक्षा सम्पत्ति एवं सामाजिक प्रतिष्ठा के ऐसे जोत लाभ प्राप्त हों जिनके कारण ऐसे विवाह से पैदा हुई समस्याओं और कठिनाइयों का समुचित समाधान हो सके।^{२६}

(७) विवाह संस्कार में परिवर्तन

हिन्दू समाज में विवाह संस्कार जीवन का सबसे महत्त्वपूर्ण संस्कार माना जाता है। वैदिक युग से इस संस्कार के लिए गृह्य सूत्रों द्वारा विस्तृत विधि-विधानों की व्यवस्था की गयी है और इसे अत्यधिक धूमधाम से मनाया जाता है। मैकडनल ने लिखा है कि वैवाहिक कर्मकाण्ड निम्नलिखित पुरोहितों द्वारा पूर्य क्य से शोचविचार कर इस उद्देश्य से बनाया गया है कि इससे हिन्दू जनता का मन आध्यात्मिकदृष्टि से उनके अधीन बना रहे।^{२७} ये वैवाहिक विधियाँ सत्ताधीन नीरस कृत्रिमज्ञान जीवन में आनन्द प्रदान करने का एक प्रयास श्रोत थी, बराबर बहुत बड़ी संख्या में वे जारी आती थीं, जारी की विधियाँ

२० राय—पृ० ३०, पृ० २७३

२१ राय—पृ० ३०, पृ० २७३

२२ मैकडनल—ए हिन्दू ऑफ संस्कृत सिटीसेवर, पृ० २६३

काफ़ी समूह समय तक चलती थी। किन्तु अब उद्योगीकरण (Industrialization), नगरीकरण (Urbanization) तथा पश्चिमीकरण (Westernization) की गर्भीत परिस्थितियों के प्रभाव से इसमें निम्नलिखित परिवर्तन हो रहे हैं।

(क) विवाह संस्कार के समय में कमी—सन् १९५१ की जनगणना रिपोर्ट के अनुसार साम-आजीवन बंध गढ़ने एक दिन में सम्पन्न होते वाले विवाह अल्प-बाध रूप में थे, ११ अधिकांश विवाह कई दिनों तक चलते चलते होते थे, विवाह संस्कार की विधि बहुत लम्बी होती थी। किन्तु शहरों में नौकरी करने वाले तथा लघु कमाण्डो वाले बाले और गरीब मामलों में स्वयंसेवक बूढ़े वाले आधुनिक घर-नगरी वैवाहिक विधियों के संक्षिप्त रूप को अधिक पसन्द करते हैं, वे रात भर में सम्पन्न होने वाली विधियों को एक दो घण्टों में सम्पन्न करना चाहते हैं। यद्यपि पुरुषोत्तमदास टण्डन जैसे सुधारक विवाह संस्कार का महत्त्व घर-बधू तथा भ्रम जनों को समझाने के लिए संस्कृत मंत्रों के स्थान पर हिन्दी के प्रयोग का समर्थन करते हैं।

(ख) पारिवारिक संभ्रमण के क्षेत्र में कम—पहले विवाह के सम्बन्धों पर दूर-दूर से छत्र संवेधी एकत्र होते थे और कई सप्ताह तक इकट्ठे रह कर रहे थे, गाँवों में शादी-स्वाहों के सम्बन्धों पर सब संबंधियों की उपस्थिति आवश्यक समझी जाती थी। किन्तु अब शहरों में स्थान की कमी, राजस्व की आवश्यकता, शांति सामग्री की कमी और सैद्धान्तिक में इस परिस्थिति में अन्तर आने लगा है। पहले माँ-बाप को बच्चों की पढ़ाई की तथा स्कूल में उपस्थिति की अधिक चिन्ता नहीं होती थी। अब बच्चों का स्कूल से अधिक दिन के लिए अनुपस्थित रहना उचित नहीं समझा जाता, अतः बच्चों के साथ कई दिन के लिए विवाहों में सम्मिलित होना अब संभव नहीं रहा है। नौकरी करने वाले व्यक्तियों को लम्बी छुट्टियाँ देने में परेशानी होती है, अतः विवाह में विभिन्न परिवारों द्वारा अपने परिवार के सभी काण्डों के साथ शादी-स्वाहों में भाग लेने की पुरानी परंपरा कम हो रही है। विभिन्न परिवार अथवा प्रतिनिधित्व करने के लिए एक-दो व्यक्तियों को भेज देते हैं, जाने आने में होने वाले भारी व्यय और छुट्टी करवि की अनुपस्थिति के कारण अभीजाईर द्वारा कन्ये सेजने की भी परंपरा कम पड़ी है। अब विवाह का पूर्व परिवार के विभिन्न व्यक्तियों के एकत्र होने की दृष्टि से अपना महत्त्व खोने लगा है।

(ग) विवाहों के व्यय में कमी—हिन्दू विवाहों में कन्या के माता-पिता समाज में अपनी प्रतिष्ठा बनाये रखने के लिए बहुत देने तथा बर पत्र को संतुष्ट करने के लिए अपनी दक्षिणत से बहुत अधिक व्यय करते हैं। श्रीनिवास के शब्दों में “विवाहों में किया जाने वाला व्यय बहुत अधिक होता है... इस व्यय को कम करने में प्रधान बाधा है—

समाप्ता बना हुआ है, ऐसा नहीं होना चाहिए। यदि ऐसा हुआ तो इसका धार्मिक-सारिक जीवन पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ेगा। (१) यह हिन्दू स्त्री के वर्तमान और भविष्य के विचार को विनियमित करने का प्रयत्न करेगा।

वर्तमान समय के विभिन्न हिन्दू मुद्दों—युवतियों के उर्वरता विचार एवं भूमिका करते हैं कि अभी तक कानून द्वारा व्यवस्था हो जाने पर भी सामान्य रूप से समाज के विद्वत् जाकी प्रवृत्ति साबित है। इसका उपरोक्त समाधान स्पष्ट विषय परिस्थितियों में ही उपयुक्त प्रमाण प्रमाण है।

(२) पत्नी के आचरण और स्थिति में परिवर्तन-अनुचरी के सहचरी बनना

पुराने हिन्दू परिवार में विवाह के बाद पत्नी का दायित्व धर्मिक पति की सेवा और संतती संभाल का गानन करना था, वह पति को देवता मानती थी और उसकी पूजा करती थी, उसका महत्त्व होता और साक्षिणी था।^{१६} पत्नी की स्थिति परिवार में बहुत हीन थी, किन्तु इसे वह स्वेच्छापूर्वक नहीं प्रत्यक्षता से प्रहृत किया हुआ थी, इसमें उसे परम मनीष और सुख का अनुभव होता था। एक विदेशी महिला वैकमान (Bachmann) ने इसका विश्लेषण करते हुए लिखा है^{१७}—“इमें (पारिवारिक संघर्षों को पत्नी का संतुष्टि विचार) अधमन्यजनक प्रतीत होता है कि मैं अपने घरों की दासी हूँ, किन्तु परवर्ती हिन्दू धर्म ने पत्नी के इस आचरण पर बहुत बुरा प्रभाव है कि उसे पूरी भक्ति और निस्वार्थ प्रेमना से अपने पति को स्वीकृति और देवता समझते हुए उसकी पूजा करनी चाहिए ... उसे (हिन्दू पत्नी को पति के) घरों को दासी बनने में कोई अपमान प्रतीत नहीं होता है” यह प्रथम धार्मिक उत्साह से अपने धर्म का प्रमाण करती है इस धर्म का मूल्य आज उसे धार्मिक कर्मकाण्ड, स्नात—कर्मकाण्ड धर्म के नहीं होता है अपितु इसका पालन वह एक मातृ की पति करने पति के धर्म पूर्व आचरणमर्चन से, उसकी माता के पालन से और उसकी सेवा से करती है। यह हिन्दू मनुष्य परम मान्य के अपने हाथों में बुरिया प्रकटती है, यद्यपि वे उसकी दासता का स्वीकृति हैं”। वैकमान ने महात्मा गांधी की पत्नी कस्तूरबा के उदाहरण से यह स्पष्ट किया है कि हिन्दू स्त्रियाँ वस्तुतः स्वेच्छा-पूर्वक पति को देवता समझते हुए उसकी सेवा करती थी, उसके सम्मुखों का को माननेवाला मनुष्य व्यक्ति वह विचार करने के लिए बाधित होता कि पति की विद्या पर लगी होने

^{१६} राव—पूर्वोक्त मुताबक पृ० १०६, १२५, इतिहास केवलकार—हिन्दू परिवार नीतिशास्त्र, पृ० १०८-१११।

^{१७} वैकमान इतिहास—आज की लोक मातृ की इतिहास पूर्वक एक रिपोर्टमें इन की सीक और मातृ कोकन २ मातृ, १९२८, पृ० २५, १२८, १२९।

बासी स्त्रियों का बलवत्प्रमाण कुछ व्यवसायों में पूर्वोक्त से स्वच्छापूर्वक होता था।^{१३८}

पत्नी की स्थिति को प्रभावित करने वाला एक अन्य तत्त्व पति-पत्नी की काम में अत्यधिक मज्जा का होना था। पहले पत्नी पति में न केवल बहुत छोटी होती थी, अपितु उसकी शिक्षा भी कम होती थी और घर की अन्तारदीवारी में रम्य रहने के कारण उसका अनुभव भी बहुत कम होता था। अतः आदु. विवाह तथा अनुभव में पत्नी से बड़ा-बड़ा होने के कारण पति उससे भ्रमानता का व्यवहार नहीं कर सकता था, परिवार में उसकी स्थिति स्वाभाविक रूप में पत्नी से ऊँची रहती थी।

हिन्दु उत्तरीकरण, नवरीकरण और परिवर्तनीकरण को नवीन परिस्थितियों पति को देवता बनाने वाले उन्मुख होने तत्त्वों पर बहुरा प्रभाव डालने लगी है। आधुनिक शिक्षा प्राप्त करने वाली तथा पश्चिम की समताधिकार की भावना से अनुप्राणित युवतियाँ पति की देवता मानने के आस्थेय भावनों को जोखमूँद कर प्राप्त करने के लिए तैयार नहीं हैं। वे पति की केविका और चरखों की बासी बनने के स्थान पर पति की सहा और मित्र (Companion and friend) बनना चाहती हैं। उस के अध्ययन में भार स्त्रियों ने अपने भावी पति की एक विशेषता उस का मित्र होना बताया।^{१३९} इसी प्रकार डेरह युवकों ने पत्नी के साथी और मित्र होने तथा साथ साथ युवकों ने इसके मित्र होने पर अवदिया। मान अविविवाहित युवकों ने कहा कि वे अपनी पत्नियों पर आसन नहीं करना चाहते हैं, इसी प्रकार चार अविविवाहित स्त्रियों ने वह इच्छा व्यक्त की कि वे अपने पतियों पर हावी नहीं होना चाहती। पुराने बादलों के परिवर्तन के सम्बन्ध में एक ने यह लिखा था—‘पहले लड़कियों को ब्रधन से छीटा की कहानियाँ सुनायी जाती थीं। उन्हें यह कहा जाता था कि जबमें आवई पत्नी के सभी गुण थे। उनके माता पिता, दादा, दादी उनको यह शिक्षा दिया करते थे कि उन्हें अपने पतियों का बगवर्ती रहना चाहिए’।^{१४०} किन्तु अब लड़कियाँ यह कहती हैं कि सीता देव-कूफ (Jealousy) की क्योंकि उन्हें वास्तविक धर्म का पालन किया था। लड़कियाँ यह सोचने लगी हैं कि विवाह में केवल उन्हें ही अपने को दूसरे पक्ष के अनुकूल नहीं बनाना है। इससे पहले यही दूसरे पक्ष के साथ दूरा मानकृत्य स्थापित करती थी।^{१४१}

इसे प्रभावित करने वाला दूसरा तत्त्व विवाह की दम्प का ऊँचा उठना है।

१३८ लोकमान—पूर्वोक्त पुस्तक, पृ० १२६

१३९ रात—की हिन्दू सेमिनरी, पृ० २१५

१४० रात—की हिन्दू सेमिनरी, पृ० २१६

ब्राम्हण विवाह के समय पत्नी की अवस्था, किता और अनुभव पहले की अपेक्षा अधिक होती है, अतः उसकी स्थिति परिवार में स्वतः महत्त्वपूर्ण हो जाती है। वह पति की श्रेष्ठिकता बढ़ कर उसकी साथी और सहोदयने लगती है, दोनों के संबंध स्वामी-सेवक के नहीं होते; अतएव इनके सम्बन्धता के स्तर पर माध्यामिक होने की दृष्टि प्रबल होने लगती है।

हिन्दू शास्त्र के मतानुसार अभी तक हिन्दू समाज में पति-पत्नी के संबंध के परम्परागत उपर्युक्त दृष्टिकोण के स्थान पर समानता के नवीन मादर्थ का मुद्रानिष्ठित होने में काफी समय लगेगा।^{४२} शास्त्र ने यह परिणाम भीमती जी० जी० देसाई द्वारा गुप्तपत्नी स्त्रियों के संबंध में भी गयी एक अवस्था के आधार पर निश्चित है। इसके अनुसार यद्यपि कुछ हिन्दू स्त्रियाँ अपने ऊपर पतिप्राय के पूर्ण प्रभुत्व का प्रयत्न विराम करती हैं, तथापि अधिकांश स्त्रियाँ परिवार में अपनी हीन स्थिति के पुराने विचार को स्वीकार करती हैं। शास्त्र के अध्ययन से भी यही अटक होता है कि स्त्रियाँ परिवार में अपनी हीन स्थिति को सर्वथा स्वाभाविक समझती हैं।

हिन्दू शास्त्र के अध्ययन में कुछ उदाहरण ऐसे भी थे, जो इसमें तभी-तभी होते जाते परिवर्तन को सूचित करते हैं।^{४३} इनसे यह प्रकट होता है कि कुछ स्त्रियाँ परिवार में पहले की अपेक्षा अधिक मात्रा में शासन का प्रयोग करने लगी हैं, उनकी स्थिति ऊँची उठने लगी है। एक पुरुषों ने इसे एक सुन्दर दृष्टान्त में स्पष्ट करते हुए लिखा था कि पहले सड़कों पर ब्राम्हण-पत्नी निकलते थे तो पति लम्बे बंध चरते हुए धाने-भागे बालों से और पतिप्राय अपने बच्चों और पेटों को धिपे हुए जलके पीछे-पीछे चरती थीं, किन्तु अब पति लम्बे बंध चरते लेकर चलता है और पत्नी उसके साथ चलती है।^{४४} एक प्रकार पत्नी अनुचरी से सहचरी बन रही है।

(१०) दास्यत्व अधिकारों में विषमता की समाप्ति

पुराने शास्त्रीय हिन्दू विवाहों का एक बहुत बड़ा दोष दास्यत्वादी के साम्यवाद अधिकारों में भेद विषमता थी। इसमें पुरुष को यह अधिकार प्राप्त था कि वह एक पत्नी के भीजित रखे हुए दूसरा विवाह (अधिवेदन) कर सकता था। किन्तु पत्नी को पुनर्विवाह का कोई अधिकार नहीं था। शास्त्रकारों ने पुरुष को पुनर्विवाह तथा अधिवेदन का अधिकार पुत्र प्राप्ति की तीव्र आकांक्षा तथा धर्म पालन की चिन्ता के कारण दिया था। मायस्तम्भ (२।४।१।१२) ने कहा था कि हमें तथा समाज का

४२ शास्त्र—बी हिन्दू संहिता, पृ० १०७

४३ शास्त्र—बी हिन्दू संहिता, पृ० १०८

४४ शास्त्र—बी, पृ० १०८

प्रयोजन पूर्ण होते पर पुरुष दूसरा विवाह न करे। किन्तु इस नियम का प्राचन हिन्दू समाज में बहुत कम हुआ, पुत्र प्राप्ति के कारण से दिये गये दूसरे विवाह के अधिकार का बड़ा दुरुपयोग हुआ। इससे पुरुषों को बहुविवाह (Polygamy) की पूरी छूट मिल गयी, किन्तु स्त्रियों के लिए प्रतिप्रसा और सतीत्व के धर्म का पालन आवश्यक समझा गया। दूसरी विधमता स्त्रियों के लिए सुश्रम विवाहों में परित्राण धर्म का कोई साधन न होना था। पुरुषों को दूसरा विवाह करने का तथा भार्या स्थापना का अधिकार था। किन्तु सारी के लिए विवाह अनिवार्य लगाना था, एक पुरुष में विवाह होने पर सारी उसे काफी नहीं छोड़ सकती थी। वही उसी आदम की बी, जो पति के दाँवों की परवाह न करती हुई जीवन भरन्त उसकी आराधना करे, उस समय मर-मारी के लिए सतीत्व का दोहरा वैतन आधर्य था।^{४४} स्त्रियों से आदर्श पालित्व की अपेक्षा रखी जाती थी, किन्तु पुरुषों के लिए एकपत्नीव्रत होता आवश्यक नहीं था। इसका यह परिणाम होता था कि पुरुष समुत्पन्न सारी न होने पर दूसरा विवाह कर सकता था। यह व्यवस्था पत्नी के लिए जीवन दुःख देने वाली थी। जीस के आ धार्य से न केवल पत्नी पत्नी का जीवन नारकीय बन जाता था, किन्तु हिन्दू विवाह उसके सिद्ध अनिवार्य होने के कारण यह इस नारकीय संस्था से भूत भी नहीं हो सकती थी। सामान्य रूप से दुःखप्रम विवाहों के परिणाम धर्म के सिद्ध हिन्दू स्त्रियों को पुनर्विवाह का अधिकार नहीं था। १९५२ के हिन्दू विवाह कानून द्वारा मर-मारी दोनों के लिए एकविवाह (Monogamy) का विधन शधान कल से आवश्यक तथा मर-मारी रहने (१=२६६-३=३) मर-मारी नहीं विधेय पञ्जाओं में तलाक का अधिकार देकर उपर्युक्त दोनों विधमताओं की समाप्ति कर दी गयी है।

उपसंहार—हिन्दू विवाह का भविष्य

उपर्युक्त विवरण से हमें यह ज्ञात होता है कि कभी-कभी हिन्दू समाज के अन्तर्गत एवं विभिन्न वर्गों में विवाह विधायक प्रादन्ताओं, प्रथाओं और रीति-रिवाजों में अनेक मौलिक परिवर्तन हो रहे हैं, ये हिन्दू विवाह के सारी स्मकन पर गहरा प्रभाव डालेंगे, अभी तक ये परिवर्तन सहुरों के विमित एवं तक सीमित हैं, किन्तु मर-मारीकरण (Urbanisation) की शक्ति बढ़ने से कभी-कभी की शक्ति इसका प्रभाव प्राणीन जीवन पर भी बढ़ेगा। इससे भविष्य में विवाह को केवल अनिवार्य एवं अनिवार्य समझने की आवश्यकता में निमित्तता या आधर्य, अनिवार्य रहने की तथा नदी समय में विवाह करने की प्रवृत्ति बढ़ेगी। सुदक-धुपती अपना जीवनसारी युग्म की स्वतन्त्रता की अधिकारिक माँग करने, प्रव-

विवाहों की प्रवृत्ति बढेगी। विवाह संस्कारों की कटिधता कम होगी, किन्तु इन पर होने वाले भारी व्यय में कमी होने की सम्भावना कम प्रतीय होनी है। परिचार में पति-पत्नी समान विभक्ति का उपयोग करने में, साम्प्रदायिक अस्मिताओं में विषमता घटायी हो जायेगी, पत्नी पति की आज्ञाकारी और अधीनशील बनेगी। विवाह द्वारा परिवार निर्माण एक आवश्यक कर्तव्य नहीं, किन्तु ऐच्छिक भावें होना और शांति प्रदान आधार साम्प्रदायिक होगा। संभवतः इस स्थिति में पति-पत्नी में अनुदार का दूराधिक होगा। कर्तव्य समय में पत्नी धार्मिक पराधन्यता के कारण पति से प्रीति न होने पर भी उसके साथ साम्प्रदायिक जीवन पिताने के लिए विवश है। भविष्य में यदि हिन्दू स्त्री आर्थिक दृष्टि से स्वायत्त होती चली तो वह असाधारण समाजों में दुःखमय विवाहों में सुक्ति या मकेवी, तमाकों की संख्या में कुछ बृद्धि होगी, किन्तु ये विवाहों के मूल शोचन में सहामक होंगे, दुःखमय विवाहों का अन्त पारने ऐसे दुःखमय विवाहों और परिवारों का निर्माण करेंगे जिसका एक भाग आधार रहेगा होता, जो साम्प्रदायिक धर्म की प्रगल्भता में बृद्धि करेगा और अवभृति द्वारा उत्तर दास्यस्थिति में प्रतिपादित वैवाहिक एवं साम्प्रदायिक धर्म के अन्त का कृत का प्रमाण करेगा "जो कुछ कुछ में एक धर्म अपरिचित (मई) रहता है, निर्धनता, लक्ष्मि आदि जीवन की जीवन में की निर्धनता का रहने वाला है, जो हृदय का विभागात्मक है, जिसका अन्तर्गत दुःखों से भी कम नहीं होता, जो बहुत दिनों तक साथ रहने तथा दुःखों के आधार पर हट जाने से परिवार को प्राप्त हुए प्रगल्भ धर्म पर अवलम्बित है।" ११४

प्रथम परिशिष्ट

अर्धशास्त्र सम्बन्धी प्रचाल ग्रन्थों तथा लेखकों का काल

- जीमि पुराण—८००-१०० ई० (ह्यमसाव नामकी)
 अर्धशास्त्र—ओडिसाकृत, चौबी ज० ई० पू०
 अर्धशास्त्र—संस्कार कोस्तुभ (१६५०-८०) का प्रयोग
 अर्धशास्त्र—आत्मबलम स्मृति का टीकाकार—११२५ ई०
 अर्धशास्त्र—आर्य स्मृति का पहला भाष्यकार ७००-७५० ई०
 आपस्तम्ब अर्धशास्त्र—६००-६०० ई० पू०
 अर्धशास्त्र भट्ट—विवाद शास्त्र (१६१०-४०) का लेखक
 अर्धशास्त्र स्मृति—४००-६०० ई०
 अर्धशास्त्र भट्ट—अनुस्मृति का एक टीकाकार ६२५० ई० लग०
 अर्धशास्त्र—अक्षरीकर विद्या (११००-११५०) द्वारा लिखित पहला
 विवरण ग्रन्थ
 ओडिसीय अर्धशास्त्र—चौबी ज० ई० पू०
 अर्धशास्त्र—अर्धशास्त्र देखिये ।
 ओडिसीय अर्धशास्त्र—अनुस्मृति का एक टीकाकार १०५०-११०० ई०
 अर्धशास्त्र—६००-४०० ई० पू०
 अर्धशास्त्र—विवाद शास्त्र (१२६०-१३७०) ई० का लेखक
 अर्धशास्त्र—पूर्व ओडिसीय अर्धशास्त्र का प्रयोग, ५००-६०० ई० पू० लग०
 अर्धशास्त्र—अर्धशास्त्र शास्त्र, १५६५-१६६० ई०
 अर्धशास्त्र—अर्धशास्त्र शास्त्र, ११००-११५० ई०
 अर्धशास्त्र—अर्धशास्त्र शास्त्र १५२०-१५७५ ई०
 अर्धशास्त्र—अर्धशास्त्र देखिये ।
 अर्धशास्त्र भट्ट—स्मृति अर्धशास्त्र का लेखक १२००-१२२५ ई०
 अर्धशास्त्र—अर्धशास्त्र, अर्धशास्त्र और अर्धशास्त्र के अर्धशास्त्रों तथा अर्धशास्त्रादि
 कुछ अर्धशास्त्रों का काल ६००-६०० ई० पू० है ।
 अर्धशास्त्र—६०० अर्धशास्त्र
 अर्धशास्त्र स्मृति—१००-४०० ई०
 अर्धशास्त्र—अर्धशास्त्रादि, ५००-५०० ई० पू०

निर्णयसिन्धु—कर्मकाण्डे ऋतु कृत १११-११४ ई०

मीलकण्ट—अथर्वसंहिता के विधि

परमरत्नाश्रयी—परमरत्न स्मृति पर राजवाधाय की टीका ११-१२० ई०

परमरत्न स्मृति—१ सी से २ सी स० ई०

धार्मिक—अष्टाध्यायी का प्रथमा ६००-३०० ई० पू०

पुराण—वायु, विष्णु, मार्कण्डेय, मत्स्य और स्कन्दपुराण ३००-१०० ई० के बीच में लिखे गये हैं। इनमें कुछ ब्रह्म बर्णिक प्राचीन हैं।

प्रतापरुद्रदेव—मध्यप्रदेश के निवासी १५००-१५२५ ई०

शालवीक—विश्वरूपकृत राजवाधाय स्मृति की सबसे पुरानी टीका, ४००-८५० ई०

शार्ङ्गद्वी—शार्ङ्गद्वी धर्मसूत्रों के राजवाधाय स्मृति की मिलाकर टीका की व्याख्या १७५०-१८२० ई०

सुहृत्स्मृति स्मृति—३००-४०० ई०

सुहृत्स्मृति—दे० ब्रह्मविहिर

कीर्तन धर्मसूत्र—५००-२०० ई० पू०

मोक्ष (आरेखर)—१०००-१०५३ ई०

मदनपारिवाह—मिश्रदेव ऋतु कृत, १३१०-६० (आली और कान्हे), ११७५ ई० (पटना हाईकोर्ट)।

मनुस्मृति—२००-१०० ई० पू०

महाभाष्य—पञ्चमिहिर, १३० ई० पू०

मिताक्षरा—मिश्रदेवकृत राजवाधाय स्मृति की टीका १०७०-११०० ई०

मिश्रमिश्र—मीरमिश्रदेव के विधि।

मिश्रमिश्र—मनुस्मृति का पहला टीकाकार ६०० ई०

राजवाधाय स्मृति—५००-२०० ई०

राजवाधाय—मिश्रदेव का लेखक ८००-४०० ई० पू०

राजवाधाय—राजवाधाय का लेखक १२२०-१५७५ ई०

राजवाधाय—मिश्रदेवकृत राजवाधाय का लेखक ११००-११५० ई०

राजवाधाय—अथर्वसंहिता निर्णय का लेखक १२००-१३०० ई०

राजवाधाय—सुहृत्स्मृति का लेखक ४०५-४८७ ई०

राजवाधाय—३००-१०० ई० पू०

राजवाधाय—दे० मिश्रदेव मिश्र

मिश्रदेव—राजवाधाय स्मृति पर मिताक्षरा नामक टीका का लेखक १०७०-११०० ई०

विद्याविभक्त्यादि—वाचस्पति मिश्र कृत, १५००-१५५० ई०

विद्यादाताम्ब—कामलाकर सट्ट कृत १६१०-४० ई०

विश्वरूप—पादवत्सल स्मृति की कालकीर्ति टीका का लेखक ८००-८२० ई०

विरसेवदर भट्ट—मरवाणारिक्त लेखिए

विष्णुस्मृति—इक्ष्वाकु पुराणा का ३००-१०० ई० पू० का ॥ और गवीन अंत
तीसरी सं सातवीं श० ई० का है ।

वीरविशोदय—भिक्षुमिश्र कृत, १६१५-४२ । यह ग्रन्थ संस्कारप्रकाश, व्यवहार-
प्रकाश आदि अनेक प्रकाशों में भटा है ।

वैद्यमयी—तत्त्वप्रकाश कृत विष्णुधर्मसूत्र की टीका, १५६२-१६३० ई०

वैद्यनाथ दीक्षित—स्मृतिमुक्ताफल का प्रणेता, १६०० ई०

वैदिक साहित्य—४०००-१००० ई० पू० ग्रंथितायो, ब्राह्मणग्रन्थों तथा प्राचीन उप-
निषदों का यह आनुमानिक काल है । इसके कुछ अंग ४००० ई० पू० से प्राचीन
तथा १००० ई० पू० से अर्थाधीन हो सकते हैं ।

व्यवहारनिर्णय—वरदराज कृत, १२००-१६०० ई०

व्यवहारगम्य—नीलकण्ठ भट्ट कृत, १६१५-४५ ई०, इसके अन्त ग्रन्थ मीरि सद्-
कावि हैं ।

व्यासस्मृति—द्रुपदी से गांधर्वी वाली ई० लग०

अथलिखित—३०० ई० पू० से १०० ई०

अमर—अभिधि के प्रवर्गीभारता दर्पण का भाष्यकार २००-४०० ई०

भूतपाणि—मातृभक्त्यग स्मृति पर दीपधर्मिका नामक टीका का लेखक, १६७५-
१४६० ई०

दीप्तभूत—आपस्तम्ब, आश्वलायन और बौधायन कीतुओं का तथा आपस्तम्ब
और आश्वलायनादि कुछ गृह्यसूत्रों का काल ८००-४०० ई० पू० है ।

सत्यवतीविज्ञान—अथर्वशास्त्र कृत, १२००-१५२५ ई०

स्मृतिचित्रिका—वेम्पलसट्ट कृत, १२००-१२२५ ई०

स्मृतिमुक्ताफल—वैद्यनाथ लेखिए

हजयत—गौतम तथा आपस्तम्ब धर्मसूत्रों का टीकाकार १५५०-१६०० ई०

हरिलास—स्मृतिछात्र का लेखक १३००-१६५० ई०

हारीत—धर्मसूत्रप्रणेता ४००-७०० ई०

हिरण्यकेशीधर्मसूत्र—३००-३०० ई० पू०

हेमाद्रि—चतुर्वर्तचिन्तामणि का लेखक, रचना काल १२६०-७० ई०

धर्मग्रन्थों का उपर्युक्त कालक्रम मुख्यतः से भारतदेश की प्राग्भूत चरण का
की प्रसिद्ध पुस्तक 'हिस्टरी ऑफ सर्वसाइज' के प्रथम खण्ड के आधार पर दिया गया है ।



सहायक ग्रन्थ सूची

१. साक्षर ग्रन्थ

- १ उत्तरायणावधिमा आषाढमासमाह-सप्त, १५ बम्बई, १३वा पुत्र १६४६
- २ इमादुलसामीउमा आषाढ शिर्काजस पुष्ट ईबिलस, १२ बम्बई, १६६४
- ३ इमादुलसामीउमा शिर्काजस, १६६५-७१ सम्पूर्ण
- ४ इमादुलसामीउमा शिर्काजस की ईबिल पुत्र, १६६५ ई० से
- ५ मकबलात ब कीय वैदिक इबिलस, २ बम्बई, जवन १६६२ ई०

२. मुस ग्रन्थ

(क) वैदिक ग्रन्थ

यहाँ ग्रन्थों के साथ उनके प्रकाशन संस्करणों का भी निर्देश दिया गया है जहाँ से छपे हुए ग्रन्थों का इस पुस्तक में प्रयोग किया गया है। प्रकाशन संस्करणों के संक्षिप्त संकेत इस प्रकार हैं—आम० पू० आसन्नाथन, दूका, मि० सा० शिर्काज सागर, बम्बई, स्वा० म० स्वाध्याय महल, पार्सी, वि० ६० विभिन्नार्थिका इदिका, न० भी० भा० सी० म० शब्दनिष्ठ शिर्काजस जहांगीरी सीरीज, सैफूर, या० भी० सी० गायकबाब मोरियसस सीरीज, भी० सा० गी० चौकभा सस्कृत सीरीज, जी० वि० जीयानन्द विद्यासागर, कलकत्ता, ब० स० भी० बम्बई सम्पूर्ण सीरीज, पा० डी० सी० पार्सी टैप्लेट सोसायटी, मद्रास, म० सा० महाबोधि सोसायटी, सारनाथ, बेक० मे० बेक-वेस्टर प्रेस, बम्बई, वि० स० सी० विवेकानन्द सस्कृत सीरीज, सदा० सदाचक, घ०, सस्कृत, वि० विजयी सदा, ई० ईश्वरी सदा।

आदेश स्वा० म० द्वितीय संस्क०

समुद्र स्वा० म०

सामवेद स्वा० म०

सामवेद स्वा० म०

काठक साहित्य स्वा० म०

संस्कृत साहित्य आम० पू०

कविचन्द्र साहित्य डा. रघुवीर झा साहू से प्रकाशित

संस्कृत साहित्य स्वा० म०

ऐतरेय ब्राह्मण : आन० पू०, १५६९ वि०
 जठपथ ब्राह्मण : अच्युत शम्भुनाथ, बनारस
 शोकायन ब्राह्मण : आन० पू०
 मैत्रिलीय ब्राह्मण : आन० पू०
 शान्ध्या (पंचविध) ब्राह्मण : एलिमाटिक सीमाइटी, बंगाल
 वैमिनीय ब्राह्मण : सं० बीकानेर, गुजरात, १६१६
 वैमिनीयोपनिषद् ब्राह्मण
 शोपथ ब्राह्मण : जी० वि०
 ऐतरेय, तैत्तिरीय और शांखा० आरण्यक : आन० पू०
 बुद्धधारभाक, छात्राय, कठ, द्वापिपथ : वि० गा०
 निगलत : आन० पू०
 एकादशोपनिषत्संग्रह : संपा० स्वामी सुरपालपद, भाहोर
 वि० लत : श्री चन्द्रमणि तपा श्री रामबाई इराण मयाविल संस्क०
 बुद्धीचता : वि० ई०

(क) गृह तथा धर्मग्रन्थ

माध्यमायन गृह्यसूत्र, गारायण टीका सहित : वि० गा० १५६९ ई०
 इली संस्करण में कुमारिणि श्री जगन्नाथदास गृह्यकारिका तथा भाष्य० गृह्यपरिनिष्ठ
 श्री छपा है।
 आपस्तम्ब गृह्यसूत्र, बृहज्जैनाचार्य टीका सहित : ग० जी० भा० पी० सी०
 भारद्वाज धर्मसूत्र, ब्रह्मण कृत टीका सहित : हावास्थानाथ काशी इराण संपा०,
 मुंबईमार्ग।
 शौभ्रायणधर्मसूत्र, मोरिडिठ स्वामी के विवरण सहित : ग० भी० भा० सी० पी०
 शौभ्रायण गृह्यसूत्र तथा गृह्यपरिभाषा सूत्र : संपा० भाषणाश्वी, ग० भी० भा० सी० पी०
 गोभिल गृह्यसूत्र संपा० चन्द्रकांत लक्ष्मणकार, वि० ई०
 नारदकर गृह्यसूत्र : कर्क, जगन्नाथ, हरिहर, गथाहर, विष्णुनाथ प्रणीत साध्यधर्मक सहित,
 गुजराती प्रेत १९१७
 हिरण्यकेशी गृह्यसूत्र : समुद्रल टीका सहित, संपा० किल्ले
 शनिष्ठ धर्मसूत्र : ब० ब० सी०, संपा० कुम्हार
 भागवत गृह्यसूत्र : जगन्नाथक टीका सहित, ग० भी० सी०
 विष्णु धर्मसूत्र : संपा० हा० जाली
 मौन्यासिपुत्रसूत्र : देवगज जी टीका सहित, काशीरक्ष संस्कृत पीपीज
 गीतक धर्मसूत्र : ब्रह्मण टीका सहित, आन० पू०

(ग) गीतिका वाङ्मय

अनुतर निर्याग : पा० टी० सो०

अनन्तर, टीका सहित : पा० टी० सो०

मेरीयाया : पा० टी० सो० तथा अन्तर्गत कृत अनुवाद

विनय पिटका : हिन्दी अनुवाद, म० बी० सो०

मज्झिम निर्याग : हिन्दी अनुवाद, म० बी० सो०

सीत्थमिक्कम : हिन्दी अनुवाद, म० बी० सो०

अनुतर निर्याग : पा० टी० सो०

प्रातः : कान्हेल द्वारा गाया, अश्वेयी अनुवाद ६ खण्ड, १० वीं के अन्तर्गत आत्मव कीर्तना-
यन का, हिन्दी अनुवाद : हिन्दी साहित्य सम्मेलन द्वारा प्रकाशित मूख्यार्थ : पद्य
साहित्यसमय, म० बी० सो० ।

(घ) रामायण तथा महाभारत

साहित्यिक रामायण : निर्याग अन्तर्गत, नि० सा० । रामायण के अनेक
कथासंस्करणों के कारण ग्रन्थों के नाम में भ्रमों का कारण बनती हैं। उनकी समझने के अनुसार विवे-
चने हैं । काव्यों की समझना इस प्रकार है—

१. आत्मकाव्य, २. अर्थव्याख्या, ३. अर्थव्याख्या, ४. निर्यागकाव्य,
५. अनुवादकाव्य, ६. अनुवाद, ७. अनुवादकाव्य ।

महाभारत : म० आ०, महाभा०, पूर्ण पुस्तक में आ० म० द्वारा प्रकाशित अंशों
के अनेक विवेचने हैं, जहाँ अनुवादों या भाषांतरों के अनेक अंशों द्वारा का संज्ञा-
पत्र अन्तर्गत अन्तर्गत में आया गया है, जहाँ कुछ और अंशों के अन्तर्गत विवेचने हैं ।
महाभारत के अनेक अंशों के नाम में नहीं, किन्तु उनकी समझने के अनुसार विवे-
चने हैं । यह समझना इस प्रकार है—

१. आत्मिकाव्य, २. आत्मिकाव्य, ३. आत्मिकाव्य, ४. निर्यागकाव्य, ५. अनुवादकाव्य, ६.
अर्थव्याख्या, ७. अनुवादकाव्य, ८. अनुवादकाव्य, ९. अनुवादकाव्य, १०. निर्यागकाव्य, ११. अनुवादकाव्य,
१२. अनुवादकाव्य, १३. अनुवादकाव्य, १४. अनुवादकाव्य, १५. अनुवादकाव्य, १६. अनुवादकाव्य,
१७. अनुवादकाव्य, १८. अनुवादकाव्य, १९. अनुवादकाव्य, २०. अनुवादकाव्य ।

अभिप्रेत : आ० म०

अभिप्रेत : आ० म०

अभिप्रेत : आ० म०

अभिप्रेत : आ० म०

अभिप्रेत : आ० म०

महामयपुराण : अंक० ३०

मार्कण्डेयपुराण : वि० ६०

मनुपुराण : आन० ५०

विष्णुपुराण : श्रीवाह नारायण कर्णवी, अम्बई

बोधपुराण : आन० ५०

स्कन्दपुराण : अंक० ३०

ब्रह्मपुराण : अंक० ३०

(४) स्मृतियाँ

यजुस्मृति : कुत्सकृष्ण की टीका सहित, वि० सा०

मनुटीकासंग्रह : अं० ३० आशी, वि० ६०

यजुस्मृति : मेधातिथि, श्रीधरदास, सर्वज्ञादायक, राजमानन्द, नन्दन द पंक अन्त
टीका सहित, संवादक विश्वनाथ भागविक

शाङ्ख्यस्मृति : विज्ञानेश्वर कृत भित्तिरक्षा टीका, वि० सा०

वाल्मीकीयस्मृति : अपराक टीका, आन० ५०

वाल्मीकीयस्मृति : विश्वनाथ कृत काशिकीका व्याख्या, वि० अ० ३०

नारदीय संहिता : अ० अ० ३०, नारद स्मृति : अं० ३० आशी, वि० ६०, इसमें

कमहाय की टीका भी है ।

पराशर स्मृति : अ० अ० ३०, ये महाभाष्य कृत व्याख्या सहित तथा श्रीवा० का संस्करण । ये स्मृतियों के लिए आन० ५० का २७ स्मृतियों का तथा जीवन्मृत का २६ स्मृतियों का संग्रह व्यापार में लाया गया है । जहाँ जहाँ में अन्तर है वहाँ वेदका संस्कार का निर्वाह कर दिया गया है । इनमें जिन स्मृतियों है—अतिथि, अति, आपस्तम्ब, राजमन, श्रीधर, दश, देवत, अज्ञापति, बृहस्पति, यम, यजुर्विष्णु, यजुर्वेद, यजु मातालय, यजु हारीत, यजु आश्वलायन, यजुर्वेद, यजु हारीत, वैदव्यास, श्रीधरिभक्ति, संक, वात्सल्य, श्रीधर, यजु गौतम, यजु व्यास, यजु अति, वात्सल्य-स्मृतिराश्रीकार—राष्ट्रकर्म नामक काये काय संग्रहीत, यजुस्मृति स्मृति—आ० अ० ३० । हारीत, संक, वेदीयति, श्रीधर आदि अनेक स्मृतिकर्तों के नाम उपलब्ध नहीं हैं, किन्तु मध्यकालीन विद्वान्महोदयों में इनके यथन उद्धृत हैं । इस प्रकार के यजुर्वेद का संकेत इस प्रकार है—हारीत, वात्सल्य द्वारा उद्धृत, यथवा हारीत (आ० ५०) ।

(क) स्मृतियों की टीकाएँ तथा निरूपण ग्रन्थ

दत्तकचरित्रिका—आन० ५० तथा यज्ञेश्वर भट्टाचार्य कलकत्ता के संस्करण

दत्तकपीमांश—नन्द पण्डित कृत आन० ५० तथा यज्ञेश्वर भट्टाचार्य कलकत्ता के संस्करण

- बागभाग—जीमूतवाहन कृत, वि० ६० तथा जीमानन्द के संस्करण
 बागलक्ष्म—रघुनन्दन कृत, जीमानन्द का संस्करण
 बीपकमिका—गुप्तवाणि कृत, याज्ञ० स्मृति की टीका
 बर्मकांत—श्वचतुर्वेद काण्ड, अ० १-३, भास्वराजान्न मण्डन, वार्ह
 धर्मसिन्धु—बाण्णीवाचकृत, वि० सा०
 बराहसरवाग्वीय—भाधवाचार्य कृत पराशरस्मृति की टीका, अ० सं० सी०
 बदनपारिजात—विषयेश्वर मट्ट कृत, वि० ६०
 बिताधर—दिव्यानेश्वर कृत याज्ञकल्पस स्मृति की टीका, वि० मा०
 बोधोतिमि ना अनुस्मृति पर भाष्य, मांडलिक के संस्करण ने
 विवाहचिन्तामणि—वाचस्पति मिश्र कृत, श्रेष्ठेश्वर प्रेस
 दिक्कल्प—मात्रभूतव्य स्मृति पर नामकीर्ति टीका का लेखक, वि० सं० सी०
 धीरमिवांस—याज्ञ० स्मृति की मिश्रमिश्रकृत टीका, अ० सं० सी०
 श्वबहादुरकांत—मिश्रमिश्र कृत, अ० सं० सी०
 श्वभट्टारमयूख—नीलकाण्ठ कृत, पाण्डुरंग चामन काणे का संस्करण
 जीमूल—गणपति साखी कृत कीटिलीय अर्थशास्त्र की टीका, वि० अ० सी०
 संस्कारप्रकाश—मिश्रमिश्र कृत, अ० सं० सी०
 सरस्वतीमितास—श्री प्रतापराजदेव, स्वा० मंडल पूना द्वारा प्रकाशित
 सामान्य भाष्य—श्यामेश्वर ना, वैदिक संशोधन मंडल पूना
 सुषोभिनी—विषयेश्वर मट्ट कृत अ० सं० की निवासरत टीका की टीका, बारपुरे द्वारा
 सम्पादित ।
 स्मृतिचन्द्रिका—देवणाथकृत, बारपुरे का संस्करण

{छ} संस्कृत के अन्य ग्रन्थ और काव्य

- कीटिलीय अर्थशास्त्र : संपा० मणपति साखी, वि० सं० सी०
 कुहलसंहिता : बराहमिहिर कृत, वि० ६०, उत्तम की टीका सहित, सुभाकर त्रिवेदी
 द्वारा स० संस्क०
 काला सप्तमती : हंस कृत, वि० सा०
 पूर्वमीमांसा : शत्रुघ्न-भाष्य सहित, आन० पू०, गोपाताय का कृत अंग्रेजी अनुवाद, मा०
 अ० सी०
 हृदयचरित : वि० सा०
 कादम्बरी : म०=म संस्क०, वि० सा०
 कामसूत्र : वात्स्यायन कृत, अ० सं० सी०
 माण्डवीयसूत्र : संपा० रामकृष्ण गोपास भाष्याकर, अ० सं० सी०

मुष्ककटिक : मि० का०

रघुवंश : मि० का०

मधिसाधनाकुन्तल : मि० का०

कुशासितानन्द : शंभुदेव भट्ट, मि० का०

कुमारहर्षण : मि० का०

राजतरंगिणी : शंभु० बट्टाचार्य

विष्णुवर्धन : शंभु० बट्टाचार्य

कुशासितानन्द : शंभु० बट्टाचार्य

मातृभार्या : कुशासितानन्द द्वारा रचित, श्रीमन्महादेव शंभु भट्टाचार्य

रत्नाकर : शंभु० बट्टाचार्य

ब्रह्मकुमारवर्णन : शंभु० बट्टाचार्य

मैत्रेयवर्णन : मि० का०

विष्णुवर्धन : मि० का०

विवाह विदयक ग्रन्थ

(क) हिन्दू विवाह विदयक ग्रन्थ

(अ) सामान्य एवं कानूनी ग्रन्थ

- मरहोत्तर, आत्म्य प्रदायिनी — श्री पीपीएम आफ बुर्मेस इन हिन्दू सिविलिजेशन,
बीबीभाय, दिल्ली, द्वितीय संस्करण १९५१
- महाविद्या, के० एम० — हिन्दू विवाहविद, १९४७
- कानूनीविद्या, के० एम० — सीरिज ऐन्ड पीपीसी इन इण्डिया, मारसफोर्ड यूनि-
वर्सिटी प्रेस, १९५५
- हारकानाथ मिश्र — पीपीएम आफ बुर्मेस इन हिन्दू ली
- विजयी, मन् हर्बर्ट — श्री पीएम आफ इण्डिया, सगर, १९१५
- मरहोत्तर, मुनिमलधर — तम लॉयड्स आफ मरिजिट ऑफर हिन्दू आफ
इण्डिया, १९२८
- दासरा, बी० — बुर्मेस एन्ड पीपीएम इन इण्डिया
- दासरा, एच०बी — ली (१९२८)
- रुपाय्याय, मंगलदासरा — बुर्मेस इन इण्डिया (१९४१)
- बी०, विन्नायकि विदयक — हिन्दू आफ बी सिविल इण्डिया
- एम० एटर्नल — एडुटीविलिटी स्टडीज इन एरोप्ट इण्डिया ली,
पीपीएम, दिल्ली, भाग १, १९५५, भाग २,
१९५७
- कानूनीकर — हिन्दू एरोप्टी १९२९
- कानूनी — हिन्दू ली एन्ड कस्टम, टीओर कानून व्याख्यामाला,
कलकत्ता विश्वविद्यालय
- मुन्नास बलबी — श्री हिन्दू ली आफ पीपीएम एन्ड लीमन,
टीओर व्याख्यामाला, कलकत्ता विश्वविद्यालय
१९११
- वायसराय, कानूनीविद्या — तम एन्ड वायसराय, टीओर व्याख्यामाला
कलकत्ता १९३०

- संक्षिप्त, ए० बी० — मैरिज, हिन्दू, इन्स्टिट्यूट इनसाइक्लोपीडिया ऑफ रिसेजन्स एण्ड इन्फिक्सा, बॉड ८, एडिजन्स, १९१५
- मैज, जे० बी० — ए ट्रीटाइज ऑफ हिन्दू ऑ एण्ड यूरोप, बंगम संस्करण, सन्ध्या० जे०जे० आर्वांगर, मद्रास, १९१५
- मेथुर, जे० जे० — सेवसुजमसाइक इन एंग्लो इन्डिया, २ खण्ड, लन्दन १९३०
- स्टीज, ए० — बी ऑ एण्ड कस्टम ऑफ हिन्दू कान्टन, लन्दन, १९१८
- वीकमान हेडविच — आग वी लोमज आइक, योम माफ वी इन्डियन यूनिन, ऐज रिप्लेमेन्ट इन वी ओकसोर आफ वी कोमन, २ खण्ड, १९४५
- बुटिरे, बी० एन० — गान्ट एण्ड बमाल इन इन्डिया, लन्दन, १९४०
- बास्त्री, भकुलानाराय — यूनिन इन वी तीसोड काज, लन्दन, १९४१
- बास्त्री, भकुलानाराय — यूनिन इन वी वीदिक एज, १९४२
- बीमिकाल, एम० एन० — मैरिज एण्ड फीमिली इन मेथुर, लन्दन, १९४२
- स्टीवन्सन, बीमली — वी राइड्स ऑफ वी टुमाइसकाली, लन्दन, १९२०
- सिम्लेसर — वी इन्डियन आइविजल बाफ मैरिज नामक लेख हर्मान केथरिंग द्वारा धर्म्यावित 'वी बुक ऑफ मैरिज' में, मूसाको, १९२०
- एस० एन० बसकाल — वी एज ऐड मैरिज, इलाहाबाद
- कान्, इरावली — किमसप आर्थेनिकेशन इन इन्डिया, पूना, १९४१
- सर हरिमिन्द गीक — वी हिन्दू कोड, ४ जे संस्करण, लारापुर, १९१०
- सरकार, वीमामकमबाली — हिन्दू ला, कलकत्ता १९४०
- मुन्स, सर वीमबालु थार- — मिमिपकम बाफ हिन्दू ला, १९२१ संस्करण
- पुनबी — वी मुन्सरमाल वी० वेसाई द्वारा संकोधित एम० एम० त्रिपाठी, लन्दन, १९१०
- काणे, वाष्पुदेव बामन — हिस्टरी ऑफ बर्मसाल, ब०, १, पूना, १९१०,
- काणे, वाष्पुदेव बामन — बर्मसाल का इतिहास, तथम भाग, हिन्दी समिति, लखनऊ
- कटर्जी, एन० — ए फिदिकल स्टडी ऑफ स्वयम्बर फार्म ऑफ मैरिज, कलकत्ता रिभू, खण्ड १४३, जून १९४७

धटणी, ए००	—ए स्टडी आफ दी ब्राजामसफार्म आफ मैरिज, इण्डियन हिस्टोरिकल क्वार्टरली, जून ३२, मार्च १९५५
भा, बी० सी०	—बुमैन इन इण्डिस्ट्रियल रीटर्नर, १९२७
बी० एस० कुलकर्णी	—बोमान मैरिज ऐक्ट १९४५, मूवा १९४५
सक्सेना, फकीरदास	—दी हिन्दू मैरिज ऐक्ट, १९४५, पक्षमल १९४८
ए०० ए०० बंगाल	—स्टेचूटरी ऑफ डन हिन्दू लॉ, अलाहाबाद १९५२
यू० सी० सरदार	—ईपस इन हिन्दू लीगल हिस्टरी, इंग्लिशलॉर १९५८

(भा) हिन्दू विवाह की आधुनिक प्रवृत्तियों का विश्लेषण करने वाले ग्रन्थ

के० टी० मर्चेंट	—बीमल अयुज आफ मैरिज एण्ड फीमिली (हिन्दू मुध) बी. जी. पाल, पटना, १९३५
सूटे, धीमती चन्द्रकला	—हिन्दू बुमैन एण्ड हर फमिलर, बम्बई
एलीन रास	—दी हिन्दू फीमिली इन इन्डिया अबैस सोडियल, ब्रिक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी प्रेस, १९५१
देसाई, श्रीमती जे० बी०	—बुमैन इन साठने गुजराती साहपा, १९४५, बम्बई विम्वविद्यालय से अप्रकाशित शोध प्रबन्ध
देसाई, श्रीमती ए०० ए००	—दी इम्पैक्ट आफ दी ब्रिटिश कन्व आन दी पोबीशन आफ इण्डियन बुमैन, बम्बई विम्वविद्यालय का अप्रकाशित शोध प्रबन्ध, १९५१
देसाई, मिस ए०० जे०	—दी सोडियोइकनामिक बोलीकन आफ बुमैन इन इण्डिया सिन्ध १८९८-१९२८, १९३० बम्बई विम्वविद्यालय का अप्रकाशित शोध प्रबन्ध

रिपोर्ट आफ दी एण्ड आफ

कान्सेलर कमिटी १९२८-९

सांगरेट कोरमैक —दी हिन्दू बुमैन, एशिया, बम्बई १९५१

मीरू देसाई —बुमैन इन साठने इण्डिया

नेहरू, प्रधानमन्त्री —आवर काज

रमानाई सरस्वती —दी हाई कास्ट हिन्दू बुमैन (१९०१)

चिन्तामणि, श्री० बाई० —इण्डियन सोशल रिफार्म (१९०१)

कान्सेलर, के० ए०० —अयुज एण्ड एटीट्यूड्स आफ यूनिवर्सिटी प्रेजुएन्स इन दी हिन्दू कम्युनिटी आन मैरिज एण्ड फीमिली रिजेनरिफर, सोशियोसोडियल बुसेटिज अ. १, ख० १, मार्च १९५४

- कायस्थिया, के० एम० :—बैलिंग पैटर्न आफ हिन्दू मैरिज एण्ड फौमसी, हांशिओकाविकल बुसेटिन ब्रान्ड ४, से० २ सितम्बर, १९५५
- कायस्थिया, के० एम० :—बैलिंग पैटर्न आफ हिन्दू मैरिज, लोक० बुसेटिन ब्र० ३, स० २, सितम्बर १९५४
- माल चेरियण :—ए रिचर्स इन मैरिटल एक्जस्टमेण्ड सिविन ए एग्नेक्टेड एण्ड आफ हिन्दूज, ब्राकलमंड आफ फौमसी मैमएक्जस्टमेण्ड सिव रेकरेमा टू हिन्दू सोसाइटी इन बाम्बे प्रेजिडेन्सी,—ये बोनो सर रोरुक्की टाटा ऐगुएट स्कूल आफ सोशल वर्क बम्बई के बोध ग्रन्थ हैं ।
- ऐयंगर, ए० :—कौटर्नल पोसिएण्ट्री इन मलाबार, मैम इन इण्डिया, ब्र० २, १९३५, मामर पोसिएण्ट्री मैम, ब्र० ३२, १९३२
- विश्वास, डा० पी० सी० :—पोसिएण्ट्री एमोव बी हिल हाइथ आफ जॉनसार बाबर, बम्बेयाधि ब्र० १, स० १, जनवरी १९५३
- बम्बर, एम० के० :—मामर पोसिएण्ट्री, मैम स० ३२, १९३२
- मजूमदार, डी० एम० :—हिमाचलम पोसिएण्ट्री, एण्डिया, बम्बई १९६९
- रामनारायण समुद्रना :—मैरिज एण्ड ग्राहवोर्स इन बीवसार बाबर, बम्बेयाधि, नवम्बर १९५३
- रामनारायण समुद्रना :—सीवाम इकानमी आफ ए पोसिएण्टर पीपल, बागरा मित्रविद्यालय, १९५०
- दरावती बम् :—हिन्दू सीसाइटी, ऐन इण्टरप्रेडेसन, पुना, १९६१
- नारा बली बेल :—बुमीन आफ इण्डिया, पब्लिकेशनल डिबीएन १९६८

(ख) विवाह विषयक सामान्य ग्रंथ

- एकदरी, (सर आन बम्बक भाई) :—मैरिज, टोटिमिज्म एण्ड रिडीजन, नवम्बर १९११
- क्याच :—बी सेक्सुअल साइफ जॉफ बाबर टाउन इन रिसे-
शन टू माडर्न सिविलिजेशन, नवम्बर, १९०४
- एजित, हैलफाफ :—मैन एण्ड बुमेन, ५म संस्करण, लन्दन, १९१८
- एजित, हैलफाफ :—स्टडीज इन साइकोलॉजी आफ सेक्स, ६ ब्रान्ड
- मैकमोनाग, जे० एफ० :—बी लेबीरेट एण्ड पोसिएण्ट्री, फोटोनाइटी रिस्कु
ब्रान्ड २१, नवम्बर १९७७

मैत्रितीयपक्षी	—सेकल एण्ड रिजिस्ट्रार इन मैट्रिज सीसागस्टी, लन्दन, १९२७
मैत्रितीयपक्षी	—डी कौन्सिल एण्ड दी आस्ट्रेलियन एबीरि- जिनीज, लण्डन १९११
मैत्रितीयपक्षी	—डी फायर उज प्रिन्सिपल सोसाइटीज, न्यूयार्क १९१७
मैत्रितीयपक्षी	—डी रीब्यूअल लाइफ 'मास' वी गैबेल इन गार्ड मेटरन सोसिटीजिमा, लण्डन १९२६
रिचर्स	—किंगडिम एण्ड सोशल आर्गेनिजेशन, लण्डन १९१४
रिचर्स	—मैट्रिजिज (आरम्भिक तथा अन्तिम आश्रितों की) इस्रा० ग्रीवीजस एण्ड इन्विसा, लंडन
स्वैच्छर	—डिप्लिमाटिक सीसागोकोबी ० लण्डन, लण्डन १९७६-७७
स्वैच्छर	—डी प्रिन्सिपल लाइफ सोसाइटीजिमा, ३ लण्डन, लण्डन १९०९-१९
डिस्ट्रिक्शन ई०	—डी डिस्टरी आफ़ म्यूजम मैट्रिज, ३ लण्डन, लण्डन १९२४
	—डी वार्ड डिस्टरी आफ़ मैट्रिज, लण्डन
	—डी म्यूचर आफ़ मैट्रिज इन मैट्रन सिविलिजेशन, लण्डन १९१६
	—डी ओरिजिनल एण्ड सेक्लपमेन्ट आफ़ मारन लाइविंगज, २ लण्डन, लण्डन १९१२-१७
	—मैट्रिज सेरीमनीज इन मोटरको, लण्डन १९१४
नपुंगी	—डी इन्वोल्यूशन आफ़ मैट्रिज एण्ड डी कौन्सिल, फ्ले ग्रन्स का अग्रेजी अनुवाद, लण्डन १९६१
नपुंगर, लायन	—इन्वोल्यूशन आफ़ मैट्रिज १९१०
गुडविल	—ए डिस्टरी आफ़ मारन एण्ड कौन्सिल, द्वितीय छ० न्यूयार्क १९३५
हास्य, जार्ज विलियम	—ए डिस्टरी आफ़ डी मैट्रीसोनिजेशन इन्वीड्यूअल, ३ लण्डन, सिक्कागो १९०४
एच० खीर० एच० प्रिंस मोटर आफ़ वीस एण्ड हेमार्क	—ए स्टडी आफ़ पोपिग्विनी, मोटर एण्ड कम्पनी, हेम १९६३

विफास्ट	—बी सपर्स, ३ खण्ड, १९२७
शावहाउस, लुडिग, विन्सबोर्ग	—डी मैटीरियल कस्बर एण्ड बी सोवस इन्स्टीट्यूट्स आफ़ बी सिम्पल पीपल
सिध्द	—डी स्टडी आफ़ मैन
सैकलीमान	—स्टडीज इन एंथ्रोप हिस्टरी, कलन १८९६
पोमरान	—मैरिज, पास्ट एण्ड प्रेसेन्ट, १९१०
विभिन्न जे० पीरियण	—स्टेज कस्टम्स आफ़ मोडेर्निज एण्ड वैरिज, गर्ग बुक, न्यूयार्क

(ग) विवाह सम्बन्धी हिन्दी पुस्तकें

- सिध्दीवीहू नैम—भारतवर्ष में प्रातिभेद, कलकत्ता, १९४०
 कादुर कैलमकुनार—बर्बान्दा सम्प्रदाय जीवन में स्त्रियों के अधिकार, चांद कार्यालय इलाहाबाद, १९३३
 डा० लक्ष्मणदास—दुस्वार्थ, छत्ता साहित्य मंचन, दिल्ली १९४०
 लोकाचार्य संग्रह—विद्यया विवाह नीतिशास्त्र, चांद कार्यालय इलाहाबाद, संस्करण इलाहाबाद १९३०
 शारदा, जीवनकारण—शारदा ऐक्ट सर्वर १९९२
 संस्तराम बी० ए०—अन्तर्जातीय विवाह
 अन्तर्वेद सिद्धान्तानुसार—आर्याय लोकाचार्य

(घ) प्राचीन भाषाएं

(क) गुजराती

- पटेल भरसिंह भाई ईश्वरचार्ड—सम्प्रदाय, प्रस्थान कार्यालय अहमदाबाद, सर्वर १९९३
 (विवाह के सम्प्रदाय में, लेखक की दृष्टि में स्त्रियों के सम पुत्रों से बड़े सम्भाव्य भिन्न है, इस पुस्तक में उनका ओजस्वी वर्णन है।)
 पटेल नर० ई०—सम्प्रदाय, उपर्युक्त पुस्तक का संक्षिप्त संस्करण

(क) मरती

केसकर व करे—हिन्दू धर्मशास्त्र, पृष्ठा १६३२

अंशो यो० प०—हिन्दू विवाह धर्मशास्त्र—अष्टादश दृष्टिकोण से यह पुस्तक बहुत उत्तम है।

आधे महमण केसर—सैवाहक जीवन २ भाग

विमकर प० भा०—हिन्दू धर्म-सम्भा

विवाह, सिद्धेश्वर काशी—विवाह संस्कार



अनुक्रमणिका

अंगिरस स्मृति, पृ० ३६, ३५८, ३५९,
३६१ ।

अंगुला विभाग, पृ० २४९, २७६, ३००,
३०१ ।

अनास, पृ० २९९, ३२५, ३६२, ३६४,
३६६ ।

अपस्तम्ब, पृ० ३०, ३१६ ।

अपरिणा (मिर्जापुर की जाति), पृ० ७३,
१०० ।

अग्निपरिणाम (कोरे), पृ० २४२ ।

अग्निपुराण, पृ० ११७, १८७, ३५८ ।

अग्निमित्र, पृ० ३२७, ३६३ ।

अग्निस्वायम्बीर होम, पृ० २६० ।

अन्नभाज, धृत्, एम., पृ० ६३१, ६३२ ।

अन्नभाज जाति का प्राचीन इतिहास (बल्य-
केतु), पृ० १३४ ।

अग्नेर्मित्र, पृ० १५५ ।

अन्न, पृ० १८३ ।

अजातशत्रु, पृ० ८३ ।

अजीर्ण, पृ० १९१ ।

अजीर्णसिद्ध (मारवाड़ का राजा) पृ०,
३६१ ।

अट्ट कवा, पृ० ९०३ ।

अक्षि, पृ० ३० ।

अक्षिसंहिता, पृ० १५० ।

अथर्ववेद, पृ० २६, ३४, ३५, ३८, ४२,
४३, ९१, १५६, १७९, १८९, २००,

२१५, २३६, २३७, २३८, २४३, २८६,
२८७, ३०६, ३०८, ३३६, ३६७, ३७८,
३७९, ३७७, ४०३ ।

अथारण्य द्वारा प्रसार कीकृत किये जाने के
कारण, पृ० २०० ।

अथर्वसमी, पृ० ११६, ११४ ।

अथर्वविज्ञा, पृ० ३८५ ।

अथर्ववेद, पृ० २९२, ४४१ ।

अथर्ववेदविज्ञा, पृ० ३८२ ।

अथर्ववेदविज्ञा अध्या, पृ० १६९ ।

अथर्ववेद, पृ० ६८ ।

अथर्व वेद, पृ० ६८ ।

अथर्ववेद, पृ० ८३, ८५, ३०७ ।

अथर्ववेद (कोटिहय), पृ० २९१ ।

अथर्ववेदविज्ञा, पृ० ६९, १०३ ।

अथर्ववेद, पृ० ३५३ ।

अथर्ववेद, पृ० १९८, २०५, ३१७, ४२७ ।

अथर्ववेद विज्ञा, पृ० १०२, १२३, १३८,
३७८; प्राचीन तत्त्वज्ञान, पृ० ११२ ।

सिद्धांतियों के उत्पत्ति, पृ० १२८ ।

अथर्ववेदविज्ञा (महाभारत), पृ० ११६,
३२०, ३६०, ३६१ ।

अथर्ववेद, पृ० ३१६, ३६४ ।

अथर्ववेदविज्ञा, पृ० ४६४ ।

अथर्ववेद, पृ० ६३ ।

अथर्ववेदविज्ञा, पृ० २२५ ।

अथर्ववेदविज्ञा, पृ० ४३४—प्राचीन

दुष्टिकोण, पृ० १४१; वर्तमान व्यावसायिक,
पृ० १३७; वैदिक कृत में, पृ० १०६।
अन्तर्जातीय विवाह (सन्तराष्ट्र कृत), पृ०
१३६।
अन्तर्जातीय विवाह के प्रति मनीषी दृष्टि-
कोण, पृ० १४९।
अन्तर्गम विवाह, पृ० ४३४।
बन्तविवाह, पृ० ७, १०८, १४३; इसका
महत्त्व, पृ० १०८; इसके विकास की
अवस्थाएँ, पृ० १०६।
आप्तविवाही निमग्न, पृ० ७।
अन्य आदिमों में राजस विवाह के संस्थाकरण,
पृ० १०५।
अन्यपूर्वा, पृ० २६३।
अन्यारोहण, पृ० १४३।
अपने आदि या सर्व में विवाह के कारण,
पृ० १२१।
अपराध, पृ० ६६, ८२, ८४, ८७, ६२,
३५३, ३५६, ३६१।
अपराध, पृ० ३०८।
अपराधका दण्ड, पृ० ३६६।
अभिनेता राजमाधारी, पृ० ३०६।
अभिलम्भ, पृ० ३२०, ३६८।
अभिलेखनस्य मूल, पृ० १६६।
अभिज्ञान साकुन्तल, पृ० १०, १४६,
२००, २०३, २०७, २६२, २७७,
३६४।
अभ्यागान शोध, पृ० २४०, २४१।
अज्ञातवस्तुवर्तुता ऐश्वर्ये मायुक्तस्य बहु-
वर्तुता।
अज्ञातवस्तुता कथा से विवाह का निषेध,
पृ० १५१।
अन्यकोण, पृ० २६।

अपराध, पृ० १८, ४२७।
अपराधवर्ग, पृ० १७४।
अपराध पृ० १२९।
अन्यदृष्टि, पृ० १२१, १२२, ३८०।
अपराध, पृ० १७३।
अपराधिका, पृ० १७३।
अपराधिका, पृ० १७३।
अपराध, पृ० ८४।
अपराध, पृ० २१७।
अपराधिका, पृ० ११३।
अपराधिका, पृ० २६१।
अपराधिका पृ० १११, २२५।
अपराध, पृ० २५, ८२, ६६, ६६, १४६,
१७२, १७३, १७६, १८३, १८४, १८६,
२१६, ३४०, ३४२, ३४८, ३८८, ४०४,
४०५, ४०७।
अपराधिका (कोटिम्ब), पृ० २८२, २६०,
३८२, ३६६।
अपराध, पृ० ३०७।
अपराध, पृ० ३०७।
अपराध सन्तान, पृ० ४१७।
अपराध, पृ० १६७, २७७, ३३७, ३५५,
३६६, ३६०, ३६८, ३७३, ३७५।
अपराधिका, पृ० ३२५, ३४१, ३६५।
अपराधिका, पृ० १२८।
अपराधिका हिन्दू विवाहों की अपराधिका
ईसाई विवाहों से अपराध सन्तान, पृ०
२६२।
अपराध, पृ० ३६२, ३६६।
अपराध का दोष, पृ० ३६३।
अपराधिका, पृ० २४२।
अपराधिका, पृ० २२२।
अपराधिका, पृ० २७४, ३७८।

अभ्यास, पृ. १४८ ।

ब्रह्मगोपता, पृ० २८ ।

मन्त्रालय विभाग के नियम के प्रादुर्भाव पर
पणिनीय विद्वानों ■ कल्पतार्थ, पृ० ५८-
१०—एवबरी, पृ० ५६, मैकलीन, पृ०
५६, स्पेन्सर पृ० ५६ ।

असपिण्डता, पृ० २८।

असवर्ण कन्याओं ने विवाह की विधि,
१० २५१ ।

अर्थ विभाज्य के प्रचलित होने के कारण,
पृ. १२६ ।

असकथं विवाहों के ऐतिहासिक दबावद्वारा,
५० १२० ।

असह्यम् (टीकाकार नाम्ने स्मृति), पृ०
३७३ ।

अज्ञातभाषा कण्ट, पृ. ३५६।

असाधारण वृत्तिविज्ञान, पृ. ३०५।

शिक्षण जातक, पृ. ३२०, ३२१ ।

अर्थान्निर्या, पृ० १६७ ।

नहस्तार्जुन्यं अपराध, ५५ ६५१ ।

मक्षतयोनि कन्या की आकांक्षा, पृ० ६५२ ।

असदयोनि मिथ्यात्वा विधानं, पृ० ३३६ ।

अकलम्योनि स्त्री, पृ० २१४ ।

महाराष्ट्र, पृ. ११३, ११४ ।

प्राप्तने अक्षवरी, पृ० ३२९, १

संगीतकार, पृ. ३४८।

माहिकी, १० ३१५ ।

राष्ट्र प्रसार के विधाओं का अधिक विकास,
पृ० १३८ ।

अथर्ववेद (संस्कृतभाषा) - पृ. ४२३ ।

साहित्य पत्रिका, पृ. १२३, ३५३ ।

ପାରିଷଦଙ୍କ ସଂଖ୍ୟା ୩୫ ।

पुस्तकालय एवं अध्ययन विभाग, पृ. १३३।

माधुनिक युग में धार्मिकता की हानियाँ,
पृ० ३२६।

आधुनिक युग में विद्यार्थी बिराह, पृ० ३४८।

आनन्द विमलह, पृ० २३२ ।

आवन्ताम्ब धर्मं सूक्त, पु० ६, २३, २४, २५,
२६, ४६, ४७, ४८, ५०, ५२, ५३, ५४,
५५, ६१, ६७, ६९, ७१, ७२, ७३, ७४,
७५, ७६, ७७, ७८, ७९, ८०, ८१, ८२, ८३,
८४, ८५, ८६, ८७, ८८, ८९, ९०, ९१, ९२,
९३, ९४, ९५, ९६, ९७, ९८, ९९, १००, १०१,
१०२, १०३, १०४, १०५, १०६, १०७, १०८,
१०९, ११०, १११, ११२, ११३, ११४, ११५,
११६, ११७, ११८, ११९, १२०, १२१, १२२,
१२३, १२४, १२५, १२६, १२७, १२८, १२९,
१३०, १३१, १३२, १३३, १३४, १३५, १३६,
१३७, १३८, १३९, १४०, १४१, १४२, १४३, १४४,

આપણા સંસ્કાર, પૃ. ૧૧૨ ।

आपसतः शीतल, पृ० ३३, ४६, ११२,
१४६ ।

आत्मोद्धार, पृ. २५, ६

आत्मसौख्यविक्रम सर्वे लोकवन्दने इच्छिता,
१० १२७ ।

आदर्शभारतचौपण, पृ० २५४ १

आर्य-अविद संसर्ग का परिणाम—आत्म-
विवाह, पृ० ३५५।

आर्षल पत्र, ५० २२२ ।

आर्थिक समीक्षा, पृ० १४०, १२६, ३५२,
३७५ ।

આર્થિક વિચારણા, પૃ. ૧૬૪, ૧૬૫, ૧૬૮, ૨૧૩, ૨૧૪ ।

आप्येष्ट, पृष्ठ ४५ ।

भारतवर्ष इ.स. १९५५ ।

भास्करनाथस्य नाम परिशिष्टे यः २४० ।

आवृत्तसाधन पृष्ठसूचक, पृ० ४६, ४७, ४८,
४९, ५०, ११९, १२२, १२३, १२४,
१२६, १७२, १७४, १७५, २३१, २३७,
२३८-२३९, २४१, २४२, २४३, २४४

- २४५, २४६, २४७, २४८, २४९, २५०, २५१, २५२ ।
 आभ्युत्थान शक्तिवृद्धि, पृ० ३३, ४६, २०, ५१, ५३, ५५ ।
 सामुर विवाह, पृ० ११४, ११५, ११६, ११७-११८, ११९; इत्यादि स्थान, पृ० १८७; इसकी किता, पृ० १६६; इसको कारण, पृ० १६६ ।
 ईश्वरीय, पृ० १४८ ।
 ईश्वरीय का मैट्रिमोनियल एक्ट (१६३६), पृ० २८७ ।
 ईश्वरीय का विवाह कानून (१६५०), पृ० ३०२ ।
 ईश्वरीय में बाल विवाह, पृ० ६२७ ।
 ईश्वरीय विवाह (मैट्रिमोनियल एक्ट), पृ० ३६३ ।
 ईश्वरीयपीडिया ऑफ रिजिस्ट्रेशन एक्ट ईश्वरीय, पृ० १, ३४, १०६, ११०, १११, ११२, ३२१ ।
 ईश्वरीयपीडिया विटानिका, पृ० ६, ११६, ११७, ११८, ११९, ३७६ ।
 इटली, पृ० ६१२, ६१३ ।
 इतरा, पृ० १११ ।
 इतिहास काशी, पृ० ४३४ ।
 इतिहास रमण, पृ० ११३ ।
 इन्धुमती, पृ० १८३, २१६ ।
 इन्द्र, पृ० १०७, ३६० ।
 इन्द्राय (अथर्ववेद) पृ० १७४ ।
 इन्द्र कर्तुता, पृ० ३६३ ।
 इन्द्रायन, पृ० १०६, १३१ ।
 इन्डीरियन कनेक्टिवर ऑफ इतिहास, पृ० १११ ।
 इरमन्त, पृ० १६ ।
 इराकली, पृ० ३६३ ।
 इराकली कर्त, इतिहास कर्त, इराकली ।
 इराकली, पृ० २८० ।
 ईश्वरीय विवाहावर, पृ० १५१, ३३०, ३४६, ३४७, ३४८, ३४९, ३५०, ३५१, ३५२, ३५३, ४०१, ४०२ ।
 जन्माक (इन्द्राय) पृ० ३७६ ।
 जन्माक, पृ० ३६० ।
 जन्माक जातक, पृ० २८८, ३४० ।
 जन्माक, पृ० २०४, २०६ ।
 जन्माक (रघुनाथन), पृ० ३, ५१, १५६ ।
 जन्माक (महाभारत), पृ० ११६, ४०८ ।
 जन्माककरण, पृ० ४३६ ।
 जन्माक, पृ० ३२० ।
 जन्माक कर्तव्य की कथा, पृ० ११ ।
 जन्माक भारत में कर्तव्यता, पृ० ४१६ ।
 जन्माक राजकीय (महाभारत), पृ० ३२६, ४०४ ।
 जन्माक, पृ० ३२० ।
 जन्माकण, पृ० ३६६ ।
 जन्माकविवाह, पृ० १०६, १३०, १३६, १३६ ।
 जन्माकविवाही कर्त, पृ० १३६ ।
 जन्माकविवाही कर्त, पृ० ७४ ।
 जन्मा, पृ० ३६१ ।
 जन्माक (भारत), पृ० ३६३ ।
 जन्माक, पृ० २०६, २६६, ३६६, ३६४ ।
 जन्माक, पृ० २६, ३६३ ।
 जन्माकमूर्ति, पृ० ५२६ ।
 जन्माक, पृ० १११ ।
 जन्माक, पृ० १६, २४, ३६२ ।
 जन्माक कर्तव्य, पृ० ६११ ।

उषा, पृ० ३८७ ।

उत्तिपाक (कृषि जालि), पृ० १७६ ।

आर्षेय, पृ० १२, १५, १८, २४, २६,
३४, ३५, ३७, ४१, ४३, ६१, ८०, ८१,
६२, १११, ११२, १३६, १७६, १८१,
१८६, १८८, १८९, २१५, २१७, २३६,
२३६, २४०, २४१, २४३, २४५, २४६,
२४८, २४९, २५०, २७१, २७४, २८२,
३०६, ३०७, ३६७, ३६८, ३७२, ३७३,
३७७, ४०३ ।

आर्षेय रिचम मूल, पृ० ८९ ।

आर्षेय, पृ० ११४, १२६, १६२, १६३ ।

आर्षेय के समर्थन कथा का विचार,
पृ० ३११ ।

आर्षेय, पृ० ३४० ।

आर्षेय कथा, पृ० ३१२ ।

आर्षेय, पृ० ११३, ११४ ।

आर्षेय, पृ० २२५, २२६, ३७६,
३८६, ४४३ ।

आर्षेय, पृ० २६६ ।

आर्षेय अष्टम, पृ० १२९ ।

आर्षेय, पृ० १२० ।

आर्षेय, पृ० ३५९ ।

आर्षेय, पृ० १११, ११०,
१६५ ।

आर्षेय, पृ० २१७ ।

आर्षेय, पृ० ७०, ७३, ७४, १११ ।

आर्षेय, पृ० ५९, १२७,
१२८, १७४, ३६०, ३६६ ।

आर्षेय वा अष्टम अष्टम, पृ० १६७ ।

आर्षेय, पृ० ३२१ ।

आर्षेय, पृ० ४१० ।

आर्षेय, पृ० ५६ ।

आर्षेय और पौर्णिमा (पौर्णिमा), पृ०
४०३ ।

आर्षेय, पृ० १४, १५, ६१, १११,
११२, २७५, ३७८, ४०३ ।

आर्षेय, पृ० ४०८, ४१४ ।

आर्षेय, पृ० २५४ ।

आर्षेय, पृ० ३२ ।

आर्षेय, गौरीनाथ, पृ० ३६६,
३६७ ।

आर्षेय और हरी (पौर्णिमा), पृ० ३५५,
३६४ ।

आर्षेय, पृ० ३५५, ३५६ ।

आर्षेय, पृ० १६० ।

आर्षेय अष्टम (अष्टम), पृ० १७१ ।

आर्षेय, पृ० १२७ ।

आर्षेय, पृ० १५६ ।

आर्षेय अष्टम (आष्टम), पृ० १०० ।

आर्षेय में अष्टम, पृ० ३५६ ।

आर्षेय, पृ० ११३ ।

आर्षेय अष्टम, पृ० २३३ ।

आर्षेय, पृ० २००, २०१, ३६४ ।

आर्षेय, पृ० २८६ ।

आर्षेय, पृ० १२८, ३१५, ३६० ।

आर्षेय, पृ० ३२५ ।

आर्षेय, पृ० २९० ।

आर्षेय, पृ० ३२२ ।

आर्षेय के अष्टम, पृ० १५६ ।

आर्षेय की अष्टम, पृ० १५४ ।

आर्षेय, पृ० ५६, १७७, २२० ।

आर्षेय, पृ० १८८, १८९, १६२ ।

आर्षेय अष्टम, पृ० १६७ ।

- कन्या सुक्त तथा आशुत विवाह की विन्या,
पृ० ३६२ ।
कपिञ्जल, पृ० ११४ ।
कसलावार धनु, पृ० ३४, ६७, १२६ ।
कन्मलग्ना आति, पृ० ४३ ।
कन्योक्तार, पृ० ३४, ४५, ४६, ७५ ।
कात्यायन कात्यायन, पृ० ६४, १०९ ।
कात्यायिकाह, पृ० २३१ ।
कर्ण, पृ० १७१, १८४, ३२०, ४०८ ।
कर्पूरमन्त्ररी, पृ० १२० ।
कर्ष, इयम्पती, पृ० २४, २६, ६८, १०१,
१०२, १०३, १०४, १०६, १०९, १३३,
१११, ३२६ ।
कसिनाम विवाह, पृ० १०६ ।
कलह, पृ० १२६, ३६०, ३६४; वैश्विदे
राजसंरिणी ।
कलह ऐम्प, पृ० १११, ११२ ।
कसिला कौमुदी (रामनरेश सिपायी), पृ०
१४८, ३२६ ।
कलप, पृ० २०, २५१, २६४, ३२२,
३४४ ।
कलमीर, पृ० ३६० ।
कलमीर से उदीयवा के बधाहरण, पृ०
३६० ।
कल्लु वा, पृ० ४४० ।
कलीवा, पृ० १११, ३०७ ।
कालिका (कल्लुमर्षा), पृ० ४१३ ।
कालिका गृह्यसूत्र, पृ० ५३, २६९, २३८ ।
काली, वामन धान्यरंभ, पृ० ३४, ५१, ६४,
१११, १३०, १३२, ३४८, ३७० ।
काली प्रवेश (ब्रह्मसिद्धि—जी लंका),
पृ० ४१८, ४२० ।
कात्यायन, पृ० ३३, ४७, ४८, ४९, ५१,
५२, १२४, १२५, १४७, १४८ ।
कात्यायन और सुक्त, पृ० ५१ ।
कात्यायन स्मृति, पृ० ११६ ।
कात्यायनी, पृ० ६७६ ।
कात्यायनी (दान), पृ० १८१, २००,
३५६, ३६८ ।
कालुष द्वारा विवाह के विवाह की आयु
बला के का प्रमाण, पृ० ३६८ ।
कागविवाह, पृ० ३२८, ३३२ ।
कामदार, पृ० १०, ३१७; इसकी बला,
पृ० २२ ।
कामन्दकी, पृ० २०६ ।
कामसूत्र (वात्स्यायन), पृ० २५, २४८,
३२८, ४३२; वैश्विदे वात्स्यायन काम-
सूत्र कामात्मा सूक्त (अथर्व), पृ०
१६६ ।
काम्या (कलम की सुक्ति), पृ० ११४ ।
कात्यायनी, पृ० ३६५ ।
कार्यसं इतिविष्णुसंस्कृतिकेय, पृ० ११७ ।
काल वन, पृ० १७६ ।
कालिदास, पृ० १०, १७, १२७, १४६,
१८३, २००, २०२, २०३, २०७, २०८,
२४६, २४२, २५६, २५४, ३२१, ३६८,
३६९ ।
कालिदास द्वारा वर्णित विवाह विधि,
पृ० २५२ ।
कालिभद्रमन, पृ० ५२ ।
काली, पृ० २७० ।
कल्लु (कालिका) पृ० ३७६, ३८७ ।
काली में स्वयंवर का वर्णन, पृ० १८३ ।
कालीनाथ (धर्मसिद्धि) पृ० ६८ ।
काली प्रसाद संकीर्तन, पृ० ३०० ।

किमिदं आभिनिवेशं ह्येव ईदृशं
 देहिमे कर्मे, द्वायवती ।
 कौश, ए. बी. पृ० ५१ ।
 कुलि शोभ. पृ० १८२ ।
 कुली, पृ० ८२, १८२, १८२, २२१,
 ३२०, ३६२, ३६२, ३७०, ३८६, ४०४,
 ४०४, ४०६, ४०७ ।
 कुवमार्त (समार्त), पृ० २५६ ।
 कुववी आति (सहागपट्) पृ० १०२ ।
 कुवाण, पृ० ३६३, ४०८ ।
 कुवाण वातक, पृ० १८२, ४०८ ।
 कुविमर्ग, पृ० १८, ४२६ ।
 कुवकामन, पृ० ८३ ।
 कुवेग्यागा, पृ० ६६५ ।
 कुवाणमन (कामिदाम), पृ० १०,
 २१६, २६६, २६६, २६६, ६५५ ।
 कुवाणिक भट्ट, पृ० ६२, २२५, ४०६ ।
 कुवाणी, पृ० ३०६ ।
 कुवम विवाह, पृ० २५५ ।
 कुववा आति, पृ० ७२ ।
 कुवाणिक भट्ट, पृ० ३६६ ।
 कुववाणिक, पृ० १११ ।
 कुलीन विवाह (कवाण), पृ० २१८,
 २१६, ३६७, ४०२; द्वायवती हानिवा,
 पृ० ४०० ।
 कुला, (वहुमर्तुता), पृ० ४१३ ।
 कुलसूक्त भट्ट, पृ० ६४, ११७, १६७, १७०,
 २६० ।
 कुलनाम, पृ० १८६ ।
 कुलस्य भक्ति, पृ० ६१ ।
 कुलन, पृ० १० ।
 कुली, पृ० ११४ ।
 कुलिम पुत्र, पृ० १७७ ।

कुलिम विवाह, पृ० २७१ ।
 कुलिम विवाह, पृ० २५७ ।
 कुल, पृ० ८२, ८२, १७२, २१६, ३४५,
 ३५७, ३८७, ४०८ ।
 कुल ईषाणन, पृ० ११३, ४०६ ।
 कुलमर्गो लुता, पृ० ३०१ ।
 कुलमर्गो सिद्धा, पृ० ११५ ।
 कुलिम, पृ० ३३६ ।
 कुलक, ए. बी. पृ० १११ ।
 कुल (वहुमर्तुता), पृ० ४०८, ४१२,
 ४१७, ४१८, ४२० ।
 कुलमोचन विधि, पृ० २४२ ।
 कुलकण्ठ श्रेण, पृ० २७० ।
 कुली, पृ० १६३, ३८५ ।
 कुलिम द्वितीय शोभ विवाह, पृ० २५ ।
 कुलिमोचन, पृ० १२०, १७५ ।
 कुलन, पृ० १३१ ।
 कुलिमिपत्त, पृ० ४१८ ।
 कुलिमिपत्त आति, पृ० १०० ।
 कुलिमिपत्त मर्गवाली, पृ० ३७, १८, ६१२;
 देहिमे मर्गवाली ।
 कुलिम, पृ० १६४, १८६, २८२, २६०,
 २६१, २६२, २६३, ३१२, ३३६, ३६६,
 ३७०, ३८२, ३८४, ३८५ ।
 कुलिम का कुलिमिपत्त सम्बन्धी विवाह,
 पृ० ८६ ।
 कुलिम, पृ० ३६८, ३८५ ।
 कुलिमिक, पृ० ३६, २६८ ।
 कुलिमिक वाह्य, पृ० ३६, १२१ ।
 कुलन, पृ० ३३३ ।
 कुल, पृ० ७०, ७१, ७४, ७५, १३४ ।
 कुल विवाह, पृ० २१२ ।
 कुली आति (वाह्य), पृ० २६७ ।

कुर्यात्, पृ० १२८ ।

कारिमा, पृ० ११० ।

गंगाधर की शिक्षा विवाह सहायक समा
पृ० ३५२ ।

गङ्गाधर (अहमदशाही), पृ० ४०८ ।

गङ्गाधर, पृ० २५५ ।

गङ्गाधर, पृ० ३७६ ।

गङ्गाधर, पृ० २५५ ।

गङ्गाधर, पृ० ३०६ ।

गङ्गाधर (गङ्गाधर), पृ० २६७ ।

गङ्गाधर, पृ० ११३, ३६१

गङ्गाधर, पृ० ३६०, ३६३

गङ्गाधर, पृ० ३६७ ।

गङ्गाधर, पृ० १२३, १६२ ।

गङ्गाधर विवाह, पृ० १६५, १६५, १६८,

१६८-१६९, ३२०, ४३२; इसका

अर्थ, पृ० २११ ।

गङ्गाधर, पृ० २८०, ३८६ ।

गङ्गाधर, महात्मा, पृ० ४५० ।

गङ्गाधर (आकाश), पृ० १०० ।

गङ्गाधर, पृ० ३१५ ।

गङ्गाधर, पृ० २६६ ।

गङ्गाधर, पृ० १६, २६, ३६२ ।

गङ्गाधर, पृ० २९६ ।

गङ्गाधर, पृ० २२८ ।

गङ्गाधर, पृ० १५८ ।

गङ्गाधर का निम्न, पृ० ३२१ ।

गङ्गाधर, पृ० १२८ ।

गङ्गाधर, पृ० २५, २६ ।

गङ्गाधर, पृ० २६२ ।

गङ्गाधर, पृ० ३०६, ३१५ ।

गङ्गाधर में विवाह सहायक की विधि

पृ० २३६ ।

गङ्गाधर, पृ० ३६, १०५, १०६, ११०, ३१८ ।

गङ्गाधर, पृ० ३७ ।

गङ्गाधर (गङ्गाधर), पृ० २६७ ।

गङ्गाधर, पृ० २२, ३३ ।

गङ्गाधर—इसका अर्थ पृ० २६, ३५, इसका

अर्थ पृ० ३६; इसका अर्थ पृ० ३६; इसका

अर्थ पृ० ३६; इसका अर्थ पृ० ३६; इसका

अर्थ पृ० ३६; इसका अर्थ पृ० ३६; इसका

अर्थ पृ० ३६; इसका अर्थ पृ० ३६; इसका

अर्थ पृ० ३६; इसका अर्थ पृ० ३६; इसका

अर्थ पृ० ३६; इसका अर्थ पृ० ३६; इसका

अर्थ पृ० ३६; इसका अर्थ पृ० ३६; इसका

अर्थ पृ० ३६; इसका अर्थ पृ० ३६; इसका

अर्थ पृ० ३६; इसका अर्थ पृ० ३६; इसका

अर्थ पृ० ३६; इसका अर्थ पृ० ३६; इसका

अर्थ पृ० ३६; इसका अर्थ पृ० ३६; इसका

अर्थ पृ० ३६; इसका अर्थ पृ० ३६; इसका

अर्थ पृ० ३६; इसका अर्थ पृ० ३६; इसका

अर्थ पृ० ३६; इसका अर्थ पृ० ३६; इसका

अर्थ पृ० ३६; इसका अर्थ पृ० ३६; इसका

अर्थ पृ० ३६; इसका अर्थ पृ० ३६; इसका

अर्थ पृ० ३६; इसका अर्थ पृ० ३६; इसका

अर्थ पृ० ३६; इसका अर्थ पृ० ३६; इसका

अर्थ पृ० ३६; इसका अर्थ पृ० ३६; इसका

अर्थ पृ० ३६; इसका अर्थ पृ० ३६; इसका

अर्थ पृ० ३६; इसका अर्थ पृ० ३६; इसका

अर्थ पृ० ३६; इसका अर्थ पृ० ३६; इसका

अर्थ पृ० ३६; इसका अर्थ पृ० ३६; इसका

अर्थ पृ० ३६; इसका अर्थ पृ० ३६; इसका

अर्थ पृ० ३६; इसका अर्थ पृ० ३६; इसका

अर्थ पृ० ३६; इसका अर्थ पृ० ३६; इसका

अर्थ पृ० ३६; इसका अर्थ पृ० ३६; इसका

अर्थ पृ० ३६; इसका अर्थ पृ० ३६; इसका

ऐतिहासिक संज्ञिता, पृ० १२, १४, १५,
२६, ४३, ४५, ४६, २१२, ३७८, ४०४।

स्थान नामि, पृ० १३४, १७६, १८६।

क्षिति, पृ० ३७७।

सिखास वसत मा विभक्तीपर संयम, पृ०
२४७।

सैलोनियर्ग, पृ० ५१।

केरीगाथा, पृ० २७५, २७७, २८८, ३२०।

घसटन, पृ० ७०, ७२, ७३, ७५, १३१।

वरा, एम० के०, पृ० १११।

बसवली, पृ० १८२, १८४, ३४०, ३७७,
३६५।

वसानन्द सरस्वती, पृ० ३३०, ३७५, ३५२,
३७७।

वरद जालि (वहमर्ग प्रवा), पृ० ४१२।

वर्ग इति, पृ० ४०।

वर्मा, पृ० १६१, २१६, ३७६, ३८५।

वर्ग निवेध कानून (१६६०), पृ० २२४।

वर्ग प्रवा, पृ० २५५-२२४, ३२८; इसके
उपयोगी कार्य, पृ० २२२; ग्राम कीर्त में,
पृ० २१८; मुख्यरिणाम, पृ० २२०-२२२;
प्रभावित होने के कारण, पृ० २१६; वन्य
करने के उपाय, पृ० २२३।

वस प्रवापति, पृ० १८८, ३८६।

वसवर्ग, पृ० २७८।

वसिष्ठ संमेरिका, पृ० १७५।

वसिष्ठ तथा उत्तर भारत की परिवार
पद्धति के संय, पृ० १०३।

वसिष्ठ भारत के विवाह, पृ० २२७।

वसिष्ठ भारत में वस्तुसर्जिता, पृ० ४१२।

वसिष्ठ भारत में सती प्रथा, पृ० ३६१।

वामोदर धर्माम्ब कोसम्बी, पृ० ३४,
६२, ६३।

वाम्बल अविचार, २६७; इसकी पुनः

प्राप्ति, पृ० २८२; इसमें विचरता की
समाप्ति, पृ० ४११।

वाम्बल कर्तव्य, पृ० २७६-८५।

वाम्बल सम्बन्ध की ध्वस्तता प्रवस्था,
पृ० ३२६, ३३०।

वाम्बल भाग, १६६; इसकी व्यवस्था, पृ०
३६७।

वारपरिग्रह, पृ० ७।

वसिष्ठ, पृ० ८४।

वसिष्ठ पृ० १५५।

विनीवास, पृ० २४, ३६२।

विनीवासदात, पृ० २६५।

विन्द नाभा, पृ० १२३।

वीथमामिनी, पृ० ८३।

वीथमामिनी, पृ० १२१।

वीथिका, पृ० १५६।

वीथिका, पृ० २२, १११, ११८, २७८,
२८८, ३४०।

वीथानी विवाह, पृ० ७८, २३५, २६६,
२७०; इसका स्वरूप, पृ० २७१।

वीथानी विवाह के कानून का इतिहास,
पृ० २७०।

वीथि हिन्दू फैमिली इन इन्डिया सर्विस वीथि
(उस), पृ० ३६३, रेविने रास,

एलीन।

हुमार्त बरखीसा, पृ० १६३।

हुमार्त, पृ० ११२, १७३, ३४१, ३८६।

हुमार्त, पृ० ३८७।

हुमार्त, पृ० २००, २०१, २०२, २०६,
२६६, २७०, ३६४, ४३२।

हुमार्तकच (भास), पृ० ३५८।

हुमार्तकच (भास), पृ० ३७४।

हेमन्त ऋतु, पृ० ६७, ८५, ८९, ९३, ९४,
३४४, ३४६ ।

हेमन्त ऋतु, पृ० १४० ।

हेमन्त ऋतु, पृ० ११४, ११६, २६६, ३९०,
३६५ ।

हेमन्त, पृ० ३७२ ।

हेमन्त, पृ० ३६, ९४८ ।

हेमन्त ऋतु, पृ० ३४४, ३६६ ।

हेमन्त, पृ० १२७ ।

हेमन्त, पृ० ३८७ ।

हेमन्त ऋतु (संक्षिप्त ऋतु), पृ० ३६८ ।

हेमन्त ऋतु, पृ० १४० ।

हेमन्त ऋतु, पृ० ३७० ।

हेमन्त ऋतु (संक्षिप्त), पृ० ३४ ।

हेमन्त ऋतु (संक्षिप्त) ऋतु, पृ० ३६७ ।

हेमन्त, पृ० ३४०, ४४१ ।

हेमन्त, पृ० १६४, २१३, २२४ ।

हेमन्त ऋतु (संक्षिप्त) ऋतु, पृ० २१७

हेमन्त, पृ० १४४, २१३, ३०८, ४०२,
४०६ ।

हेमन्त (संक्षिप्त ऋतु), पृ० १७३, २६२ ।

हेमन्त, पृ० १२२ ।

हेमन्त, पृ० ३४८ ।

हेमन्त, पृ० २३, १४६, १५०, १७२,

१७३, १७४, १८३, १८४, १८५,

२४१, ३१६, ३४२, ३८७, ३८८,

४०४, ४०५, ४०६, ४०८, ४१७ ।

हेमन्त की बहुमूर्तता के कारण, पृ० ४०६ ।

हेमन्त, पृ० ३२६ ।

हेमन्त सामाजिक संघर्ष, पृ० ३६ ।

हेमन्त, पृ० २४२ ।

हेमन्त, पृ० ८३, १८२, २०३, २७६,

३२१, ३७६ ।

हेमन्त की टीका, पृ० २१६ ।

हेमन्त, पृ० २१० ।

हेमन्त पर्व, पृ० ३००—विवाह की

संक्षिप्तता, पृ० २१४ ।

हेमन्त ऋतु में विवाह, पृ० २१० ।

हेमन्त ऋतु में बहुमूर्तता, पृ० ४०६ ।

हेमन्त (संक्षिप्त) पृ० १४, २४,

२६, ३७, २४४, २४५, ३६२ ।

हेमन्त में—विवाह, पृ० २१७; ऋतु

विवाह, पृ० २१०, विवाह विवाह, पृ०

३१६; ऋतु विवाह, पृ० ३२,

संक्षिप्तता का नियम, पृ० ४४ ।

हेमन्त, पृ० ३६७ ।

हेमन्त विवाह, पृ० २१६ ।

हेमन्त ऋतु सन्तान, पृ० ४१३ ।

हेमन्त, पृ० ११३, १२६, १८६, ३६० ।

हेमन्त, पृ० १४४, ४०६ ।

हेमन्त, पृ० १७४ ।

हेमन्त, पृ० ३४६, ३४७ ।

हेमन्त की संक्षिप्तता, पृ० २४६, ३७८ ।

हेमन्त, पृ० ३४६, ३६३ ।

हेमन्त, पृ० १२८ ।

हेमन्त की संक्षिप्तता, पृ० १२३ ।

हेमन्त की संक्षिप्तता, पृ० २६३; हेमन्त की संक्षिप्तता

के कारण, पृ० १२३ ।

हेमन्त, पृ० ३८८ ।

हेमन्त, पृ० ४३६ ।

हेमन्त, पृ० ३०६, ३११ ।

हेमन्त, पृ० ३४८ ।

हेमन्त (संक्षिप्तता की टीका) पृ० ११८,

३४१ ।

हेमन्त पर्व (टीका—संक्षिप्तता), पृ०

१८६ ।

- परावर महर्षि, पृ० १५, ११३ ।
 परावर स्मृति, पृ० ६३, ६२, ६५, ११६, १५७, २६३, ३६९, ३०१, ३२२, ३२३, ३२४, ३२५, ३४३, ३५८, ३६०, ३७४ ।
 परावर मातृवीर्य, पृ० ८८, ११७, १२३, ३५६; वेदिके मातृव ।
 परितृप्ति, पृ० १५० ।
 परितृप्ता, पृ० १७८ ।
 परितृप्ता, पृ० १५० ।
 परितृप्त, पृ० १५६; दत्तके कारण, पृ० १५१ ।
 परीक्षित, पृ० ३२० ।
 पशु-पक्षी वाचक जातमानक पक्षी के नाम, पृ० १६ ।
 पश्चिमीकरण, पृ० ४६६ ।
 पाद (पक्षीराज), पृ० २६८; दत्तके कारण, पृ० २६८ ।
 पादलिपुत्र, पृ० ३२१ ।
 पाणिग्रहण, पृ० २४१ ।
 पाणिमि, पृ० ६, ३३, ३६, ८६, २७४ ।
 पाण्डुरदेव (मङ्गल, तिनेस्त्री किली), पृ० ३२१ ।
 पाण्डु, पृ० ११३, १८२, १६२, ३४८, ३६६, ३७०, ३८६ ।
 पाणिग्रह का आदर्श तथा आह्वय, पृ० २८० ।
 पाण्डव, पृ० ११८, ११९ ।
 पारस्कर ब्राह्मण, पृ० ३३, ११६, १२३, २३६, २३७, २३६, २४०, २४६, २४४, २४५, २४८, २४९, २४४, ३०८, ३७८ ।
 पातंगली, पृ० ३७८ ।
 पितृपूजन समारम्भ, पृ० ६६ ।
 पितृपूजा, पृ० २४८, २४०, ३२० ।
 पीटर, पृ० ४०३, ४०८, ४१०, ४१२, ४१३, ४१४, ४१६, ४१७, ४१८, ४१९, ४२० ।
 पीटर मन्त्री, पृ० ३६८ ।
 पीढ़ी के स्त्रियाँ नाम, पृ० ३६३ ।
 पुण्डरीक, पृ० २०८ ।
 पुनर्भू, पृ० २६३, २६४ ।
 पुनर्निर्माण, पृ० २६२, २६३; दत्तका अधिकार, पृ० ३०१, ३६४ ।
 पुत्र, पृ० ३८२ ।
 पुकरा, पृ० २०६, २६६, ३६३ ।
 पुकरात्मवास, दत्तक, पृ० ४३० ।
 पुकरात्मक पतिव्रत, पृ० २६, ३१, ३१, ३७ ।
 पुत्रीवा, पृ० ६५ ।
 पुष्पमिश्र, पृ० २२५, २६१ ।
 पूर्वमध्यम के लक्ष्य विवाह, पृ० ३२५ ।
 पूर्ववर्त, पृ० १७ ।
 पूर्ववर्तक पीढ़ी, पृ० १७४, १५३, ३२३, ३६५ ।
 पूर्ववर्तक पत्नी, पृ० १७४, ३६५ ।
 केन्द, पृ० ३६३, ३६४ ।
 वेदिका, पृ० ३४६ ।
 वेदीमति, पृ० ६१, ६२, १०७, ३६१ ।
 वेदमन्त्रिका, पृ० ६५ ।
 वैशाख विवाह, पृ० १६४, १६५, १६६, १७६ ।
 वीरराय, पृ० २० ।
 वीरवर्ध पति, पृ० २२४ ।
 वीरवर्ध इष्टि, पृ० ४० ।
 वीरता, पृ० ४०६ ।

अनुमर्त्यता, पृ० २२६, ३७६, ४०३-४२०;

इस प्रथा के प्रकटित होने के कारण,

पृ० ४१४; आर्थिक कारण, पृ० ४१७;

ऐतिहासिक कारण, पृ० ४२७, अनसंख्या

सम्बन्धों कारण, पृ० ४१८, ४१६;

समाजशास्त्रीय कारण, पृ० ४१८, ४२०;

दक्षिण में, पृ० ४१२; धर्म आदर्शों में,

पृ० ४०६;

अनुपायता, पृ० २२६, ३७६-४०२;

४१७; कौटिल्य के व्यवसाय में, पृ०

३०१; धर्मसूत्रों में, पृ० ३८०; महा-

भारत में पृ० ३८६; सौवर्ण्य में,

पृ० ३६५; प्रमाण में, पृ० ३८६;

स्मृतियों में, पृ० ३८२।

अनुविवाह, पृ० ३७६, ४४३; इसके सकेत,

पृ० ३७७।

आश्रय (अश्रयित), पृ० १५५, १८८;

आश्रय, पृ० १२७, १४१, २०८, २१०,

२१६, २४६, २५३, ३२२, ३६६,

३६४।

आश्रयण, पृ० १३।

आश्रयणी टीका, पृ० ४६, ६१, २२६।

आश्रयिता, पृ० १३६, २१६, २१८,

२७४, ३०६, ३३५, ४२७; इसके

अर्थ का कारण, अनुसंधानों के द्वारा,

पृ० ३१७; अर्थ कारण, पृ० ३२३;

मुख्य कारण; स्त्रीविवाह का अभाव,

पृ० ३१३, बीड़ साहित्य में, पृ० ३२०;

महाभारत में, पृ० ३१६; सीमांश में,

पृ० ३२१, रामायण में, पृ० ३१८।

आश्रयिता विवेक का अनु (१६२६),

पृ० ३३०।

आश्रय (सती प्रथा), पृ० ३५५।

आश्रय, पृ० ३३६।

विश्वकार, पृ० ३७६।

विश्व, पृ० १८३।

आश्रय, पृ० ३६६।

श्री० राम० आश्रय, पृ० ३७६।

अनुक प्रथम, पृ० १२८।

अनुक, पृ० ३७६।

अनुकर्म, पृ० ३८०, ३८१।

अनुकर्म, पृ० २४८।

अनुकर्म (धृष्टी), पृ० ३११।

अनुकर्म, पृ० ११८।

अनुकर्म, पृ० १४७।

अनुकर्म, पृ० १६४, ३५८।

अनुकर्म, पृ० ३, ३६, ४४,

३७६।

अनुकर्म, पृ० ५५, १११, २२५, ३११।

अनुकर्म स्मृति, पृ० ६२, ११६, ३२२।

अनुकर्म स्मृति, पृ० १२६।

अनुकर्म स्मृति, पृ० ११६, २८, ६५, १२५,

१२६, ३२४, ३४४, ३५८, ३७४,

४०६।

अनुकर्म, विविध, पृ० ३४६।

अनुकर्म, पृ० १५७, १५८, ४४०।

अनुकर्म, पृ० २११।

अनुकर्म में अनुकर्मविवाह, पृ० ३७६।

अनुकर्म में अनुकर्म विवाह, पृ० २१६;

विवाहविवाह, पृ० ३४०।

अनुकर्म साहित्य में अनुकर्म विवाह, पृ० २३३-

२०४; अनुकर्म, पृ० ४०८; अनुकर्म

विवाह, पृ० ८३; अनुकर्म, पृ० २७५;

अनुकर्म, पृ० १८२।

अनुकर्म, पृ० १२, २४, २६, ३०,

३१, ३२, ३३, ४१, ४६, ४७, ४८,

- ४६, ५०, ५२, ५६, ६७, ८५, ८५,
 ११६, ११७, ११८, १२३, ११५, १३०,
 १७५, १८६, १८८, १८८, २१०, २११,
 २१३, २२४, २२७, २३८, २४०,
 २४६, २४८, २४७, २८२, २८६,
 २८८, ३६४, ३१०, ३१२, ३१६, ३७०,
 ३७४, ३८१ ।
 श्रीधामन जगन्मूक, पृ० २५६ ।
 कण, पृ० ३०, ३१, ३२, ३४, ३५, ४०,
 ४२, ४८, ४७, ४८, ४९, ६२, ६४ ।
 शास्त्रार्थ सुक्त (धर्मार्थ), पृ० ३०८ ।
 शङ्खधाम, पृ० २०३ ।
 शङ्खधुराण, पृ० १, १४, १६, १७, ६६,
 ८६, ८६, ११३, ११७, १८७, २६६,
 ३२२, ३२३, ३८७ ।
 शङ्खधामिनी, पृ० ३१४ ।
 शङ्खधामिनी, पृ० ३३०, ३२६ ।
 शङ्खी (शङ्खन विद्या), पृ० १७२ ।
 शास्त्रार्थ धर्मो में बहुवचनार्थ, पृ० ३७७ ।
 शास्त्रार्थधामिनी सुक्त, पृ० ३८० ।
 शास्त्रार्थों की स्थितियों का चाल, पृ० ३६० ।
 शास्त्रार्थों में स्थानीय शङ्खधामिनी का चाल,
 पृ० ६० ।
 शङ्खधामिनी, पृ० २१३, ३२२ ।
 शिकाट, रामट, पृ० ३६६ ।
 स्नेह, पृ० १११ ।
 श्वधाम् सीता, पृ० १६ ।
 श्वधामन धाम, पृ० ७८, १२३, १३६,
 १३७, १३८ ।
 श्वधाम, पृ० ३६० ।
 श्वधाम्, पृ० ६५०, पृ० १३० ।
 श्वी कापिलामनी, पृ० २५०, ३२० ।
 श्वधाम नादधामिनी, पृ० २३ ।
 श्वधामिनी, पृ० २०८, ३२१, ३४४ ।
 श्वधामिनी, पृ० ११७, ३०६, ३२२ ।
 श्वधामन धुराण, पृ० १८, ११३, ११५,
 २६१ ।
 श्वधामिनी, पृ० १२७ ।
 श्वधामन विद्या काव्य (१६५६)
 पृ० २६१ ।
 श्वधामन धामिनी (धाम), पृ० १११ ।
 श्वधामन धामिनी का विद्या काव्य के
 कारण, पृ० ३२७ ।
 श्वधामन धुराण, पृ० ६३०, १६२, १६४,
 ३०६, पृ० ३८६ ।
 श्वधाम, पृ० २०४, ३५८ ।
 श्वधामिनी, पृ० ११५, १४६, ३८८, ४०३ ।
 श्वधाम, पृ० ११५, १४२, १८६, १८७,
 १८२, १८३, १८६, ३२०, ३६०, ३६६,
 ३८६, ४०८ ।
 श्वधामिनी, पृ० २०८ ।
 श्वधामिनी का चाल, पृ० ३२६ ।
 श्वधाम, पृ० २१६ ।
 श्वधामिनी (श्वधामिनी), पृ० ४१३ ।
 श्वधामिनी, पृ० ४१२ ।
 श्वधामिनी विद्या के धर्म कारण, पृ०
 १०६ ।
 श्वधामिनी धामिनी, पृ० २२६ ।
 श्वधामिनी धामिनी, पृ० ११० ।
 श्वधामिनी धामिनी, पृ० ६६, ६७ ।
 श्वधामिनी, पृ० ६५०, पृ० ११५, ४१७,
 ४१६ ।
 श्वधामिनी धामिनी, पृ० ३८० ।
 श्वधामिनी (श्वधामिनी), पृ० ४१३ ।
 श्वधामिनी, पृ० ११५ ।
 श्वधामिनी, पृ० २४ ।

धूम्रकण्टिक, पृ० ३१८, ३१४ ।

मेगस्थनीज, पृ० २१४, ३२१, ३५६, ३६२ ।

मेगस्थनीज का भारतवर्षीय विवरण, पृ० ३६५ ।

मेधातिथि, पृ० २, २१, ६३-६५, ६६, ६७, ८६, ८७, ११७, १२८, १२९, १५१, २११, २६२, ३२३, ३४१, ३८३, ३८८, ३९६; मंत्र ज्ञान की व्याख्या, पृ० ३६; विवाह में मातृगोत्र परिवार का विचार, पृ० ३५ ।

मेन, सर हैमरी, पृ० २०, ७६, १२०, १७१, २१७, २७१, ४१० ।

मेयर, पृ० २४, २७ ।

मेसन, पृ० १५७, १५८ ।

मेसापक देखिये मेसन ।

मेकडालस, पृ० ८१, ४३६ ।

मेकडोनाम, पृ० ५८, १७७, ४१८ ।

मेसर्स मूजर, पृ० ३८, ४२; मीन सम्बन्धी कल्पना, पृ० ३८-६ ।

मेण्डेसो, पृ० ३६४ ।

मेन्नामनी बहिष्ता, पृ० ४३, ११२, १६१, ३७८ ।

मेसेयी, पृ० १७६ ।

मेरिज ऑफ़ क्रैमेटिक्स एण्ड, पृ० १४८ ।

मेरिज एण्ड पैमिली (वापकिया) पृ० ३३२ ।

मैसूर, पृ० ४३२, ४३७ ।

मीचलधन, पृ० १६० ।

मीमियर बिलियम्स, पृ० ३५५ ।

मीरबकी, पृ० १२५ ।

मीरपूरा में कन्याधेरा, पृ० १६५;—बाब-विवाह, पृ० १२१ ।

मीसी जी मजकी रो विवाह के विधेय के कारण, पृ० ६६ ।

म्यूरकैव, पृ० ४ ।

म्यूसर, पृ० १७८ ।

मजुबेद, पृ० १४, ३४, ४३, १७६ ।

मजुबेद, पृ० ८१ ।

ममस्मृति, पृ० ६७, १४५, १४७, १५३, २८०, ३१६ ।

मयाति, पृ० २६, ११४, ३८५-६, ३६२ ।

ममोगनी, पृ० १४१, ६५८, ३६७, ३६४ ।

ममोवर्मा, पृ० १२७ ।

महर्षिओं में विवाह की आवश्यक आयु, पृ० ३१३ ।

मम पृ० ६७ ।

माकूब, पृ० १५५, १८८ ।

मासी, पृ० २१ ।

मास्क, पृ० ६१, १५६, १६१ ।

मासबल्लव महर्षि, पृ० ३७६ ।

मासबल्लव स्मृति, पृ० ६-११, २८, ६४, ६३, ७६, ८७, ८८, ६३, ११८, ११९, १२४, १२६, १३०, १४५-७; १४६, १४७, १४८, १४९, १५०, १७०, १६५, २१२, २२६, २३८, २७८, २८१, २८४, २८५, २९२ । ३४२, ३४३, ३७०, ३८२-४ ।

मिचिस्ट पृ० ५१, ११५, १२४-६, १४६, १६३, ३२०, ३८७, ३८०, ४०४-७ । मुमुसु, पृ० ३८६ ।

मुनापल, पृ० ३५ ।

मुलकोद्दर, पृ० १२० ।

मुदक देखिये मेसन

मीन अनुकूलता, पृ० १४७ ।

मुमुसु, पृ० २५, १२६, १४६, २२८ ।

रघुनन्दन भट्टाचार्य, पृ० ३४५ ।

रघुवंश (भाषितार्थ), पृ० १२२, २१६,
२५२-४, ३६३ ।

रत्नचला कल्या, पृ० ३१२, २२२ ।

रत्नदर्शन से पूर्व कल्या का विवाह, पृ०
३२२, ३२३; इससे कारण, पृ० ३१२ ।

रत्नपाल भुक्त, पृ० ३२० ।

रत्नतीर्तसिंह, पृ० ३६७ ।

रत्नावली, पृ० ३६४ ।

रत्नपीति योग्य, पृ० १११ ।

रत्नारोहण, पृ० २४६ ।

रत्नावली सरस्वती, पृ० २७८ ।

रत्नपीति, पृ० १२७ ।

रत्नस, भट्टेश्वर, पृ० २६१ ।

रत्नस, पृ० ७०, ७३, ७५, ६९१ ।

राइट, पृ० २८३ ।

राधकानन्द, पृ० ११३, ११७ ।

राधमोपालाचार्य, पृ० १४० ।

राधमोहनी (कल्याण), पृ० १२६, ३६०,
३६४ ।

राधमोहनी, पृ० १५६ ।

राधमोहनी, पृ० १८३ ।

राधमोहनी, पृ० ३४५ ।

राधमोहनी, पृ० १२८ ।

राधमोहनी, पृ० ४१८ ।

राधमोहनी, पृ० ४१८ ।

राधमोहनी, पृ० ४३४ ।

राधमोहनी—राधमोहनी, पृ० ४३३ ।

राधमोहनी, पृ० १२७, २१६, २४६, २४३,
३२२, ३२५ ।

राध पृ० ३७ ।

राधमोहनी, पृ० ३६६ ।

राधमोहनी, पृ० २६३ ।

राधमोहनी, पृ० १०३, १०५, २३०-२१,
३१८ ।

राधमोहनी सीतल की विवाह से तमस की
आयु, पृ० ३१८ ।

राधमोहनी विवाही, पृ० ३४८, २१८,
२१६, ३२६ ।

राधमोहनी राध, पृ० ३८८ ।

राधा, पृ० ११६ ।

राधा आशि (मामनाश) पृ० १०० ।

राधामोहनी केविने वालसीकि राधामोहनी ।

राधामोहनी की वैवाहिक विधियाँ, पृ० २५१ ।

राधामोहनी में विवाह विवाह, पृ० ३३६ ।

राधमोहनी का दुष्कान्त, वैवाहिकी, पृ० ३५७ ।

राधमोहनी मैरिज (वैवाहिक), पृ० ३७७२),
पृ० १२६ ।

राधमोहनी, पृ० ३५३ ।

राधमोहनी, पृ० ३१८ ।

राधमोहनी, पृ० ३४० ।

राधमोहनी होम, पृ० २४०, २४१ ।

राध, एसीत, पृ० २१, ७४, १२१, १४३,
१६०, १६२-३, २२०-२, ३२७, ३३२-
४ ४२९, ४२९, ४२९-४, ४२९-४३३,
४३८-४२ ।

राधमोहनी विवाह, पृ० १३४, १६५, १६६ ।

राधमोहनी आशुनी विवाह, पृ० १७५, प्रथ-
कम विवाह, पृ० १७६, प्रथम विवा-
ह, पृ० १७२ ।

राधमोहनी, पृ० ६६-७५, ७५, १०६, ११०-१
१६८, २१६, २२६, ३१६, ३२६, ४०० ।

राधमोहनी, पृ० ५७, ६६ ।

राधमोहनी, पृ० १२१ ।

राधमोहनी, पृ० २११, ३८७ ।

राधमोहनी, पृ० १२७ ।

रिद्ध इंदियन, पृ० ११०, १२०।

रिद्धी जाति, पृ० ७२।

रिणु, पृ० ११४।

रिचस, पृ० १५५, १८८।

रीचमा, पृ० ८३।

रीज, पृ० ७० ११०।

रोमन कानून, पृ० १२६।

रोमोचक्र प्रेम, पृ० ४३२।

रोम हर्षण, पृ० ११४।

रीहिणी, पृ० ३२२, ३८८।

सत्य धर्मक, पृ० १७८।

समुद्रात्मलाभनसृष्टि, पृ० २५४, २६१,

३४५।

सहाय (सहस्रगुण), पृ० ४१२-४५,

४९३।

सपिता, पृ० ३८६।

सहितविस्तर, पृ० १३, २५।

सोहनारमक गोल, पृ० ७२।

सादृश्यात्मन श्रीतसुख, पृ० ४०, ११२।

साक्षात्प्रेम, पृ० २४२।

साक्षात्, पृ० १५५, १८८।

साक्षी, पृ० २५७।

साक्षी (सहस्रगुण) पृ० ४९१।

सी-मु-सी, पृ० ४९६।

सीह, पृ० ५५, १८८।

सुईलीनो इंदियन, पृ० १७५।

सेन, पृ० ५।

सैकास्ट, पृ० १११।

सैकी, पृ० २५।

सोकनाथ, पृ० १२८।

सोपन, पृ० ४११।

सोपामुखा, पृ० १११।

सीपाक्षी गृह्यसूत्र, पृ० ३३, ४२, ५०।

सम्पन्नक जातक पृ० १३।

सम्पन्नकोपनिषद्, पृ० ११३।

सुदकुल मीमांसा, पृ० १७६।

सुहासि, पृ० १८८, २३६, २५०।

सुहृ—इसकी अयोध्याता, पृ० १५५; गुण

पृ० १५२; सुनाम पृ० १५१; विनाई

पृ०, २४६; स्वमुद्रात्मन अमेर, पृ०

२४६।

सुह—इसकी अयोध्याता, पृ० १५५,

सुहृ; पृ० १५५; सुत्तव गरीया, पृ०

१५७; सुद्धि मीमांसा गुण, पृ० १५७;

सोपत्ता, पृ० १५५; सापेक्षिक तत्त्व,

पृ० १५७; सात गुण, पृ० १५५, स्वाध्या,

पृ० १५७।

सुरेण स्वाध्या, पृ० ४२७, ४२६।

सुर प्रेमण, पृ० २४८।

सुर बलु—अधीष्ट गुण, पृ० १५२; सुनाम

के विषय, पृ० १५७; सुनाम तथा सोप-

ता, पृ० १५५-१५६; सापेक्षिक

परीक्षा, पृ० १५७।

सुराध्या, पृ० १५६।

सुहृ गुण सूत्र, पृ० १५६।

सुरेण अयोध्याता, पृ० १५०।

सुरेणानकाल—साधन विवाह, पृ० २१२;

सुरेण पञ्चति की विनोयता, पृ० ७५-६;

सुरेण के विभिन्न रूप, पृ० ७०; तनाक,

पृ० २६७; सुहृ प्रमा के अर्थ के कारण,

पृ० २१६; सातविवाह कम होने के

कारण, पृ० ३३२-३; साधन विवाह,

पृ० ६८।

सुरेणानकालीन के लिए, पृ० १२२।

सुरेणानकालीन और सात विवाह,

पृ० ७८।

वर्तमान भारत में बहुसूत्रिता, पृ० ४११ ।

वसन्तरीना, पृ० ३६४ ।

वसुदेव, पृ० ८२, ३३७, ३८७ ।

वसुमती, पृ० ३६४ ।

वसिष्ठ ऋषि, पृ० ११३, १२५ ।

वसिष्ठ धर्मसूत्र, पृ० १२, १५, ५६, १२,

३१, ६५, ८५, ८९, ११०, ११५, ११६,

११३, १२५, १३०, १५०, १६५, १६८-

६, १७५, १८६, १८४, २१२, २५८,

२७५, २८४-५, २८७-८, २९२, २९४,

२३६, ३४५, ३७०, ३७१, ३८१ ।

वसुदेवान विधि, पृ० २३६ ।

वसुपु, पृ० २१५, २१७, २२३ ।

वायान, पृ० २५०, २५८; इसका समकालीन,

पृ० २५६; आकस्मिक्य देखिये वायान ।

वाचस्पत्य कीर्ति, पृ० २६४ ।

वाचस्पत्य, संहिता, पृ० ११२ ।

वाजिपथनी गार्ह, पृ० ४०१ ।

वाटर्न, पृ० १२७ ।

वात्स्यायन, पृ० १७६, २०४-८, २४०-

२४८, २६१, २६६, ३४३, ३५८, ४३२ ।

वात्स्यायन कामसूत्र, पृ० १६, १४२,

१५४, १७१, २०४, २०७, २११;

देखिये कामसूत्र ।

वात्स्यायन तथा गाम्भीर्य विवाह, पृ०

२०४-७ ।

वाग विवेक, पृ० २४८ ।

वाग वेत्ति, पृ० ६२ ।

वाग पाणि विवाह, पृ० १२५ ।

वानु पुराण, पृ० ३३, ११०, ३८७ ।

वायों, पृ० ४०६ ।

वास्तवीक दामाग्रण, पृ० ४, २-१०, १५०,

२२०-१, २७४, ३१६, ३२६, ३५७,

३७८, ३८७ ।

वायाना, पृ० ३७८ ।

वायव्यता, पृ० २०३, २०४, २०८,

२१० ।

वायुकि, पृ० २६८ ।

विक्रमांक वास्तुत्व, पृ० ३२५ ।

विक्रमांक हंस, पृ० १८३ ।

विक्रमांक देव चरित, पृ० १८३ ।

विक्रमोर्वशी, पृ० ३६३ ।

विग्राम, पृ० ४१०, ४११ ।

विश्ववीर्य, पृ० १७२, ३६६ ।

विश्ववाह, पृ० ४१८ ।

विजाभाता, पृ० १६१ ।

विद्वत् भाई पटेल, पृ० १३६, १३६ ।

विद्वत्पिद्वत्, पृ० ३७३ ।

विद्वत्, पृ० ११३, ३८७ ।

विद्यवाजी की लक्ष्मी, पृ० १४८ ।

विद्यवा के कर्त्तव्य, पृ० ३४७ ।

विद्यवा पुनर्विवाह कानून (१८५६),

पृ० १५७, ३५०; इसका संक्षेप, पृ०

३५०; कर्मिया, पृ० ३५१ ।

विद्यवा विवाह, पृ० ३६३-३५२; इसके

लिए ईश्वरचन्द्र विद्यासागर के प्रयत्न,

पृ० ३४६; अर्थात् वनप्रारम्भ भ्रातृ के

प्रयत्न, पृ० ३४६, इसके निषेध का

आरम्भ, पृ० ३४० तथा तीन क्रमिक

अनन्तर पृ० ३३६; इसमें तात्त्विक

वाधान, पृ० ३४४ ।

विद्यान पारिजात, पृ० ३७, ६८-६ ।

विश्वमय देखिये बट्टा सट्टा ।

विश्वमयप्रवास, पृ० २२२ ।

विश्व (अर्थ), पृ० ३०७ ।

विश्व, पृ० ३८७ ।

विधवा बेटी, पृ० १२८ ।

विधावाबती, पृ० ३८४ ।

विधवा, पृ० १३०-१, १३३, २९५ ।

विवाह रत्नाकर (काव्यामृत) पृ० १२४ ।

विवाह—अर्थ और अर्थाना, पृ० १; की

अनिवार्यता, १७-२२, ४२४; अति-

व्याप्यता के उदाहरण, पृ० १७, १७; गान्धारी

यज्ञ, पृ० ६; औपनिषदीय यज्ञ, पृ० ३;

धार्मिक यज्ञ, पृ० ४, ४२२; सामाजिक,

पृ० १६७; वैदिक यज्ञ, पृ० १२२; मूर्खता,

पृ० २५०; कार्यकाण्ड, पृ० १६०;

वैदिक यज्ञ, पृ० ३, ४२३, सामाजिक

यज्ञ, पृ० ५; ४२२; स्वयं पृ० ४२२-

४२४ ।

विवाह का धार्मिक धार्मिक यज्ञ, पृ० १८१ ।

विवाह की धातु का अर्थाना, पृ० ३३२,

४३१ ।

विवाह की आवश्यक विधि, पृ० २६०;

आध्यात्मिक गुणार्थ, पृ० २५५ ।

विवाह के आठ भेद, पृ० १६३ इनकी

व्यवस्था का आदर्श, पृ० १६९ ।

विवाह के धर्मोपदेश, पृ० ६-१७ ।

विवाह के आधीन तथा संबंधी कथ, पृ०

१६४-१६४ ।

विवाह के विभिन्न रूप : एक विवाह, पृ० ७,

अनुमति, पृ० ७, २०३, ३७९, ४०३,

४२०; अनुमति, पृ० ७, २२६, ३७९,

४०२, ४१७ ।

विवाह विधायक नियम, पृ० ३ ।

विवाह विधायक मनु का आदर्श, पृ० २७३ ।

विवाह विच्छेद, पृ० २८६-३०५; इसकी

अधुना, पृ० ४३०; देखिये समाक ।

विवाह विच्छेदकानुस (१८६७), पृ० ३०१ ।

विवाह विच्छेद की कानूनी व्यवस्था की

मांग, पृ० २८८ ।

विवाह संस्कार, पृ० २२२-२८२; इसका

उद्देश्य, पृ० २३५; इसमें परिष्कार,

पृ० ४३६-४६८ ।

विवाहा, पृ० २७६ ।

विवाहा अर्थ, पृ० २१६, २८६,

२३२ ।

विच्छेद (गान्धारी का टीपनांक),

पृ० ६५, ८०, ८६, ६९, १३६, १६७,

२२४, २८४ ।

विधायक, पृ० ३०, ३१६, ३६२ ।

विधायकानुस, पृ० १६६, १६३, ३३०,

१५०, १६४, १८५, ३५३ ।

विधायकानुस अर्थ, पृ० ३५२ ।

विधायकानुस, पृ० ३५७, ३८६ ।

विधायकानुस, पृ० १२, २०, ६५, ८८,

६३, १२४-१२६, १८६, २७४, २८३,

१२४ ।

विवाहानुस, पृ० ६, १३, ३६, ६५, ८८-

८९, ८८, १५०, २०९; देखिये विवा-

हाना । विवाहानुस द्वारा धर्मोपदेश की

व्यवस्था, पृ० ८२ ।

विवाहानुस, पृ० १७ ।

विवाहानुस, पृ० १६ ।

विवाहानुस, पृ० ६८, १४७, १६१,

१८१, २४४-६, ३०६, ३२२ ।

विवाहानुस, पृ० १८ ।

विवाहानुस, पृ० १८३ ।

विवाहानुस व्यवहार, पृ० १८५ ।

विवाहानुस (अर्थाना), पृ० १७९ ।

विवाहानुस (अर्थ), पृ० ३०७ ।

विवाहानुस, पृ० ३५७ ।

ଶେବାନନ୍ଦ, ମାର୍ଚ୍ଚ, ପୃ. ୩୭୫ ।

वेदविधि, पृ० १८२ ।

विज्ञानस्य सर्वमूल्यं, पृ० ६३, ४६, १

वैयक्तिक ईडेक्स, पृष्ठ २४, २५, ३३, ४५ ।

१०६; आसुर विभाग, पृ० १८६; एक

विद्यार्. पृ० १७६ ; गान्धर्व विद्यार्. पृ०
१६० ; गीत. पृ० १७-१९ ; वाग्म्य अग्नि-

कार, पु० २७४; बहुभार्याता, पु० ४०३;
 धर्मविवाह की परिकल्पना आत्मान, पु०

००६; विद्यया विवाह, पृ० ११६; विवाह,
नन्द्याद गी विधियां, पृ० २१६; सतीप्रथा

श्री अष्टाश्व, पृ० ३५४; सविष्णुता का
विचार, पृ० ८८; स्त्री का पुनर्निर्वाह पृ०

५८३ ।
 वैदिक महाकाव्य में आर्याभट्ट विवाह का वर्णन,

५७-४९।
 ईश, विष्णुमहि विभाषक, पृ. ६५-६६।

१०५, १०६, १०७-८, १०९ ।
 ११०, १११ ।

वैभाक्तिक भण्डारण तथा व्यवस्थापन, पृ० २५५
वैभाक्तिक शिक्षण, पृ० २८; इनकी कठोरता.

५० ३९४ ।
 मैथिली के लीज और प्रकर, ५० ५३ ।

बैस्ट (बम्बई हाईकोर्ट के जज), पृ० ११७।
बैलर माफी, पृ० २-३, ५, २१-३, ५८-

[illegible]

३३३, ३३२, ३३६, ४१४-६ ।
अभिचार, पृ० ३०० ।

व्यासभाट, पृ० ३६१।
व्यास श्रुति, पृ० ११५।

୨୫୯, ୨୬୩, ୨୬୫, ୨୬୦, ୨୯୫,
 ୩୨୪, ୩୫୯, ୩୮୪, ୪୦୫, ୪୧୭ ।

अपुनित्वावद, पृ० ३५० ।

संस्काराचार्य, पु. १६३, अ. ४६, पं. १०३।

ग्रंथ कृति, पृ० १४-५, ८५, १११,
३८१-३।

मनुस्मृत्या, पृ० १००-१०३, २०६-१०,
१५१, २६६, २४३, ३२१, ४३२।

अर्कों में लगी चपटा, पृ० ३६० ।

ਸਾਹਿਬ, ਪੰਨਾ ੧੫੪-੫੫

सप्तम्यात्, ५० इत्यादि

सत्यम साहस, १० ४, ११-४, ४०, ४२,
४३, ४४, ४५, ८१, ८६, ८९, ९३, ११०.

११२, ११५, २३४, -५, १५८

अथवाक्यस्य, पृ. १

जमिन्दार, पृ० ३८५

शिवसिंह, पृ. १३५

शास्त्र, पृ० १६२।
शास्त्राचार्य गुरु भूष, पृ० ११३, १५२,

2004, 2005, 2006, 2007, 2008, 2009, 2010, 2011, 2012, 2013, 2014, 2015, 2016, 2017, 2018, 2019, 2020, 2021, 2022, 2023, 2024, 2025, 2026, 2027, 2028, 2029, 2030, 2031, 2032, 2033, 2034, 2035, 2036, 2037, 2038, 2039, 2040, 2041, 2042, 2043, 2044, 2045, 2046, 2047, 2048, 2049, 2050, 2051, 2052, 2053, 2054, 2055, 2056, 2057, 2058, 2059, 2060, 2061, 2062, 2063, 2064, 2065, 2066, 2067, 2068, 2069, 2070, 2071, 2072, 2073, 2074, 2075, 2076, 2077, 2078, 2079, 2080, 2081, 2082, 2083, 2084, 2085, 2086, 2087, 2088, 2089, 2090, 2091, 2092, 2093, 2094, 2095, 2096, 2097, 2098, 2099, 2100, 2101, 2102, 2103, 2104, 2105, 2106, 2107, 2108, 2109, 2110, 2111, 2112, 2113, 2114, 2115, 2116, 2117, 2118, 2119, 2120, 2121, 2122, 2123, 2124, 2125, 2126, 2127, 2128, 2129, 2130, 2131, 2132, 2133, 2134, 2135, 2136, 2137, 2138, 2139, 2140, 2141, 2142, 2143, 2144, 2145, 2146, 2147, 2148, 2149, 2150, 2151, 2152, 2153, 2154, 2155, 2156, 2157, 2158, 2159, 2160, 2161, 2162, 2163, 2164, 2165, 2166, 2167, 2168, 2169, 2170, 2171, 2172, 2173, 2174, 2175, 2176, 2177, 2178, 2179, 2180, 2181, 2182, 2183, 2184, 2185, 2186, 2187, 2188, 2189, 2190, 2191, 2192, 2193, 2194, 2195, 2196, 2197, 2198, 2199, 2200, 2201, 2202, 2203, 2204, 2205, 2206, 2207, 2208, 2209, 2210, 2211, 2212, 2213, 2214, 2215, 2216, 2217, 2218, 2219, 2220, 2221, 2222, 2223, 2224, 2225, 2226, 2227, 2228, 2229, 2230, 2231, 2232, 2233, 2234, 2235, 2236, 2237, 2238, 2239, 2240, 2241, 2242, 2243, 2244, 2245, 2246, 2247, 2248, 2249, 2250, 2251, 2252, 2253, 2254, 2255, 2256, 2257, 2258, 2259, 2260, 2261, 2262, 2263, 2264, 2265, 2266, 2267, 2268, 2269, 2270, 2271, 2272, 2273, 2274, 2275, 2276, 2277, 2278, 2279, 2280, 2281, 2282, 2283, 2284, 2285, 2286, 2287, 2288, 2289, 2290, 2291, 2292, 2293, 2294, 2295, 2296, 2297, 2298, 2299, 2300, 2301, 2302, 2303, 2304, 2305, 2306, 2307, 2308, 2309, 2310, 2311, 2312, 2313, 2314, 2315, 2316, 2317, 2318, 2319, 2320, 2321, 2322, 2323, 2324, 2325, 2326, 2327, 2328, 2329, 2330, 2331, 2332, 2333, 2334, 2335, 2336, 2337, 2338, 2339, 2340, 2341, 2342, 2343, 2344, 2345, 2346, 2347, 2348, 2349, 2350, 2351, 2352, 2353, 2354, 2355, 2356, 2357, 2358, 2359, 2360, 2361, 2362, 2363, 2364, 2365, 2366, 2367, 2368, 2369, 2370, 2371, 2372, 2373, 2374, 2375, 2376, 2377, 2378, 2379, 2380, 2381, 2382, 2383, 2384, 2385, 2386, 2387, 2388, 2389, 2390, 2391, 2392, 2393, 2394, 2395, 2396, 2397, 2398, 2399, 2400, 2401, 2402, 2403, 2404, 2405, 2406, 2407, 2408, 2409, 2410, 2411, 2412, 2413, 2414, 2415, 2416, 2417, 2418, 2419, 2420, 2421, 2422, 2423, 2424, 2425, 2426, 2427, 2428, 2429, 2430, 2431, 2432, 2433, 2434, 2435, 2436, 2437, 2438, 2439, 2440, 2441, 2442, 2443, 2444, 2445, 2446, 2447, 2448, 2449, 2450, 2451, 2452, 2453, 2454, 2455, 2456, 2457, 2458, 2459, 2460, 2461, 2462, 2463, 2464, 2465, 2466, 2467, 2468, 2469, 2470, 2471, 2472, 2473, 2474, 2475, 2476, 2477, 2478, 2479, 2480, 2481, 2482, 2483, 2484, 2485, 2486, 2487, 2488, 2489, 2490, 2491, 2492, 2493, 2494, 2495, 2496, 2497, 2498, 2499, 2500, 2501, 2502, 2503, 2504, 2505, 2506, 2507, 2508, 2509, 2510, 2511, 2512, 2513, 2514, 2515, 2516, 2517, 2518, 2519, 2520, 2521, 2522, 2523, 2524, 2525, 2526, 2527, 2528, 2529, 2530, 2531, 2532, 2533, 2534, 2535, 2536, 2537, 2538, 2539, 2540, 2541, 2542, 2543, 2544, 2545, 2546, 2547, 2548, 2549, 2550, 2551, 2552, 2553, 2554, 2555, 2556, 2557, 2558, 2559, 2560, 2561, 2562, 2563, 2564, 2565, 2566, 2567, 2568, 2569, 2570, 2571, 2572, 2573, 2574, 2575, 2576, 2577, 2578, 2579, 2580, 2581, 2582, 2583, 2584, 2585, 2586, 2587, 2588, 2589, 2590, 2591, 2592, 2593, 2594, 2595, 2596, 2597, 2598, 2599, 2600, 2601, 2602, 2603, 2604, 2605, 2606, 2607, 2608, 2609, 2610, 2611, 2612, 2613, 2614, 2615, 2616, 2617, 2618, 2619, 2620, 2621, 2622, 2623, 2624, 2625, 2626, 2627, 2628, 2629, 2630, 2631, 2632, 2633, 2634, 2635, 2636, 2637, 2638, 2639, 2640, 2641, 2642, 2643, 2644, 2645, 2646, 2647, 2648, 2649, 2650, 2651, 2652, 2653, 2654, 2655, 2656, 2657, 2658, 2659, 2660, 2661, 2662, 2663, 2664, 2665, 2666, 2667, 2668, 2669, 2670, 2671, 2672, 2673, 2674, 2675, 2676, 2677, 2678, 2679, 2680, 2681, 2682, 2683, 2684, 2685, 26

ਸਾਹਿਬਾਬਦਾਸ ਬਾਗੀਚਾ, ਪੰ. ੧੧੨, ਪੰ.

पञ्चमहीषी शास्त्रज्ञ, पृ० ७४—

कादंबरीकार, पं० र. क.

आम्हाई, न० ११५१

शास्त्रिगृहीत विद्याह, पृ० २१२ ।
शास्त्रि एवं (महाभारत), पृ० ५७५-

4,320 |

भाष्य कान्त, पृ० ३२५, ३३०, ३३१

ਸ਼ਾਲਿਕਪਾਤ੍ਰ, ੧੦ ੧੭੨

श्रीश्यामभारत, पृ० १८३।

सिद्धान्तः, पृ० ३॥

जिह्वा, प० ३६२ ।

विश्वपाथश्रवण (गाथ), पृ० ३६४-५ ।

मुक्तदेव, पृ० ११३ ।

मुक्तान्ध, पृ० ११४, १२६ ।

मुक्तिदास, पृ० १६२ ।

मुक्तोपन, पृ० ३०६ ।

मुक्तान्ध, पृ० ३६, १६१ ।

मुक्त, पृ० ३५८ ।

मुक्त स्त्रियों के गाथ विवाह का विशेष,
पृ० ११५ ।

मुक्तों में तलाक की प्रथा का विधान पृ० २६४ ।

मुक्त आन आन (मुक्तों में अतिथि)
पृ० ५ ।

मौरिया, पृ० १११ ।

मौर्य, पृ० १०६, ११४, ११५ ।

मौर्य विवाह, पृ० ११६, ११८, ११९ ।

मौर्या, पृ० १०६ ।

मौर्या, पृ० १११, १२५ ।

मौर्या, पृ० ११६ ।

मौर्य, पृ० ११५ ।

मौर्या, पृ० १०६, ११३, १२०, १२१,
१३२ ।

मौर्या (मुक्तान्ध प्रथा), पृ० ४१६ ।

मौर्या, पृ० ११५ ।

मौर्य, पृ० ३६५ ।

मौर्या, पृ० १०१ ।

मौर्य, पृ० १२१ ।

मौर्य की स्त्रियों, पृ० ५१, ६८, ६९, १२६,
१३६, १५५-६ ।

मौर्य प्रथा, पृ० ३३, ५१, ६१, ६८,
६९-७०, १२४ ।

मौर्य प्रथा, पृ० ३६, ५१, ५५, ५८,
६५-६६ ।

मौर्य प्रथा का विधान, पृ० ३४१ ।

मौर्य प्रथा में मौर्य विवाह, पृ०
२०३;—मौर्य प्रथा, पृ० ३६३ ।

मौर्य प्रथा, पृ० १२८, ३६६ ।

मौर्य प्रथा, पृ० २५० ।

मौर्य प्रथा की प्रथा, पृ० १२८ ।

मौर्य प्रथा, पृ० १२३ ।

मौर्य प्रथा, पृ० ११० ।

मौर्य प्रथा, पृ० ६२-३, ३०६, ३२२ ।

मौर्य प्रथा, पृ० १३६ ।

मौर्य, पृ० ३६०-१ ।

मौर्य, पृ० २५६ ।

मौर्य विवाह, पृ० ६२ ।

मौर्य विवाह, पृ० १५५, २१३, २१८;

मौर्य प्रथा, पृ० १३६; मौर्य प्रथा

का प्रथा, पृ० ३२८; मौर्य प्रथा की प्रथा-

प्रथा, पृ० ३४४ ।

मौर्य प्रथा, पृ० २६४ ।

मौर्य प्रथा, पृ० १५६ ।

मौर्य प्रथा, पृ० २६६, ३२८, ३६३-

३६८—मौर्य प्रथा का विधान की प्रथा

का प्रथा, पृ० ३६३; मौर्य प्रथा, पृ० ३६८;

मौर्य प्रथा, पृ० ३६६; मौर्य प्रथा, पृ०

३६८; मौर्य प्रथा, पृ० ३६८; मौर्य प्रथा, पृ०

३६८; मौर्य प्रथा, पृ० ३६८; मौर्य प्रथा, पृ०

३६८; मौर्य प्रथा, पृ० ३६८; मौर्य प्रथा, पृ०

३६८; मौर्य प्रथा, पृ० ३६८; मौर्य प्रथा, पृ०

३६८; मौर्य प्रथा, पृ० ३६८ ।

मौर्य प्रथा का विधान, पृ० १३४ ।

मौर्य प्रथा, पृ० ३६८, ३८७ ।

मौर्य प्रथा, पृ० १६२, ३४०, ३६३ ।

मौर्य प्रथा, पृ० १८५-६ ।

मौर्य प्रथा का विधान—मौर्य प्रथा का विधान,

पृ० १११ ।

सन्ध्यासं प्रकाश, पृ० ३७५ ।

सत्यापाठ, पृ० ३३, ६८; द्विचये हिरण्य-
कौश ।

सत्त्वगम, पृ० १३६ ।

सविष्मता, पृ० ८०-१०४, २०१; इराका
शामान्य अर्थ, पृ० ८० ।

सत्त्वपथी, पृ० २८६ ।

सभापत्र (महाभाष्य), पृ० ३८६ ।

शिवसुगत, पृ० २२५ ।

शमोपपत्ति (कृष्ण), पृ० १७६ ।

शम्भुल्लेखी, पृ० १६० ।

शम्भुल्लेख विवाह (महाभाष्य) पृ० २,
२२५-८, २६५, २६६; इत्येते शम्भुल्लेख
श्रीते काव्य, पृ० २२६ ।

शम्भुल्लेखनम्, विवाह, पृ० २३५ ।

शम्भुल्लेखनी (मातङ्ग) पृ० ८२ ।

शम्भुल्लेख का मुख काव्य, पृ० १२० ।

शम्भुल्लेख, पृ० ३८८ ।

शम्भुल्लेख, पृ० ६५३; इत्येते शम्भुल्लेख, पृ०
३६२ ।

शम्भुल्लेख, पृ० ३६२ ।

शम्भुल्लेखी शम्भुल्लेख, पृ० ८०, ५५ ।

शम्भुल्लेख विवाह, पृ० ३१७ ।

शम्भुल्लेख विवाह, पृ० २७१ ।

शम्भुल्लेख, पृ० ३८८ ।

शम्भुल्लेख, पृ० ८२, १०६, २३७, ३७७
३७८ ।

शम्भुल्लेख शम्भुल्लेख पृ० १०२ ।

शम्भुल्लेख, पृ० १८५-६-२८० ।

शम्भुल्लेख, पृ० ३१६, ३५७ ।

शम्भुल्लेख शम्भुल्लेख, पृ० १३४ ।

शम्भुल्लेख, पृ० १२६ ।

शम्भुल्लेख शम्भुल्लेख, पृ० ३६६ ।

शिवसुगत (महाभाष्य) पृ० ४१२ ।

शिवसुगत शिवसुगत, पृ० ४१० ।

शिवसुगत, पृ० १८३, १८५, २७५, ३१८
३५६, ४४०, ४४१ ।

शिवसुगती, पृ० २६५ ।

शिवसुगत कोशिका, पृ० ३६७ ।

शिवसुगत या शिव राजाओं से सतीश्वर,
पृ० ३५५ ।

शिवसुगत शिवसुगत, पृ० २५५ ।

शिवसुगत, पृ० १११, ३०१ ।

शिवसुगत, पृ० २५ ।

शिवसुगत, पृ० २३६ ।

शिवसुगत, पृ० ३७६ ।

शिवसुगत, पृ० १२२ ।

शिवसुगत, पृ० १२२ ।

शिवसुगत, पृ० ३८६ ।

शिवसुगत शिवसुगत, पृ० ७७ ।

शिवसुगत, पृ० १४८ ।

शिवसुगत, पृ० २०८, २१० ।

शिवसुगत, पृ० ८२, ६६, १७२-३, १६७,
२१६, ३२०, ३८८, १६० ।

शिवसुगत, पृ० ६३ ।

शिवसुगत, पृ० ३८६ ।

शिवसुगत शिवसुगत, पृ० ३५२ ।

शिवसुगत पृ० ८५ ।

शिवसुगत शिवसुगत, पृ० ८३ ।

शिवसुगत शिवसुगत शिवसुगत, पृ० ३६२ ।

शिवसुगत शिवसुगत, पृ० २११ ।

शिवसुगत, पृ० ३६० ।

शिवसुगत शिवसुगत, पृ० २५५ ।

शिवसुगत, पृ० ८०, २४८, ३०७ ।

शिवसुगत शिवसुगत, पृ० ३५ ।

शिवसुगत, पृ० १०६, १११ ।

सोमनाथ, पृ० १२७ ।
 सोमपुरा ब्राह्मणों में तलाक़ मया, पृ० २६७ ।
 स्मृत्युगुप्ता, पृ० १८३ ।
 स्कन्द पुराण, पृ० ३३, ५५, १३३, २००,
 ३६०, ३६० ।
 स्त्रीवेदेषिषण्य जातिधर्मों में सती प्रथा, पृ०
 १५५ ।
 स्टर्नबैक, पृ० १४५, १६४, १६८, १७६,
 १७७, १८१, २११, २१५, ३०६,
 ३२३ ।
 स्टील, पृ० १३१, १४६, २६२ ।
 स्ट्रैबो, पृ० २१४, ३५६ ।
 सियों को पुनर्विवाह का अधिकार, पृ०
 ३६२ ।
 स्त्री की पराधीनता, पृ० २७६ ।
 स्त्री के कर्तव्य, पृ० २७६ ।
 स्त्री के लिए निर्दिष्ट कार्य, पृ० २८१ ।
 स्त्रीजिला का अन्वय, पृ० २७६ ।
 स्वामीय आशिया या पारिवारिक जीवन,
 पृ० ७४ ।
 स्वामीय बहिर्निवाह, पृ० ६१ ।
 स्वादर, पृ० २१७ ।
 स्वीटी (बहुमूल्य प्रथा) पृ० ४१३ ।
 स्वेन्सग, हर्बर्ट, पृ० ५६, ४१८ ।
 स्वेसिफिक रिस्की एक्ट, पृ० २५६ ।
 स्वरसूक्त (अथर्व), पृ० १६६ ।
 स्मृति कौस्तुभ पृ० ३१६ ।
 स्मृति भट्टिका (देवणगढ़), पृ० ५३, ५५,
 ६६, ६२-३, १२६, २६१, २६४,
 ३४४, ३५६; देखिये देवणगढ़ ।
 स्मृति मुक्तामल (जैतनाथ) पृ० ६३ ।
 स्मृतिधर्म—असंगोक्तता का नियम, पृ०
 ६३; वास्तविवाह की प्रोत्साहन, पृ०

३२२; अविष्कृता, पृ० ८३ ।
 समुत्पन्नसाह, पृ० ३०, ३३, ५०, ६३, १५१ ।
 स्नातक जातिधर्मों में सती प्रथा, पृ० ३५५ ।
 स्नोमैत, पृ० ३६५-६ ।
 स्वयंवर विवाह, पृ० १६६, १७७, १८०,
 ३२०; हाफे नील सेन, पृ० १८१ ।
 स्वेच्छापूर्वक सती संवि के उदाहरण,
 पृ० ३६५ ।
 तर्किकी प्रस्ता, पृ० २६६ ।
 त्रमपदी, पृ० ३६६ ।
 त्रकारण महम्मद, पृ० ५ ।
 तद्वन, पृ० १११ ।
 तर्किकी प्रस्ता, पृ० ३४५ ।
 हरदत्त (आपठ धर्मसूत्र का टीका) पृ०
 २३, ८५, ११७, १२०, २२६, २६३,
 ३२५ (हरनिवास भाष्य), पृ० ३१० ।
 हरिदत्त मेधाङ्गकार, पृ० ३, १५, १६, २३,
 २५, १५६, १६६, २२१, २६२, २७६,
 ४, २७८, ३१४, ३४६, ३६३, ३७२,
 ४११ ।
 हरिवंश पुराण, पृ० ८३, ११४ ।
 हरिश्चन्द्र, पृ० १२७, १६१, ३७८ ।
 हरिसिंह गिर, पृ० १०७ ।
 हर्षभ, पृ० २४, ३६२ ।
 हर्ष, पृ० ३६४ ।
 हर्षकवित्त, पृ० १६, १२७, १४६, २१६,
 २४६, २६३, ३४८, ३५८, ३६७ ।
 हस्तकर्म्य अपराध, पृ० ३११ ।
 हाटे, पृ० ४२१, ४२७, ४३१ ।
 हलहास, पृ० ११० ।
 हारीत का कालविधायन, पृ० ३१५ ।
 हारीत धर्मसूत्र, पृ० ११७, १६६, ३१४,
 ३१५, ३४७, ३५६ ।

सामंती, पृ० ३११।

हिंदुत्व, पृ० १२०, ३१२।

हिंसा, पृ० २४।

हिन्दू विधवाश्रम, पृ० १३३, १५२।

हिन्दू कानून, पृ० १०७।

हिन्दू परिवार नीतिशास्त्र, देखिये हिन्दू परिवार कानून।

हिन्दू धर्मशास्त्र की दृष्टि में धर्म, देखिये धर्म।

हिन्दू विवाह अधिनियम विचारण कानून (१९५६), पृ० २८, ७६।

हिन्दू विवाह का आधुनिक रूप, पृ० २२।

हिन्दू विवाह कानून (१९५५), पृ० २८, ७६, १०६, २६६, २६५, २८८, २८९, ६६३।

हिन्दू विवाह कानून और धर्मशास्त्र, पृ० १०६।

हिन्दू विवाह कानून की तत्वावली सम्बन्धी अधिनियम, पृ० २६६।

हिन्दू विवाह का सम्बन्ध, पृ० ४४३।

हिन्दू विवाह का स्वयं, प्रयोग और उद्देश्य, पृ० १-२७।

हिन्दू विवाह विधायक नवीन प्रवृत्तियों, पृ० ४२१-४४४-संस्थापनात्मक विवाह, पृ० ४३४; सामान्य अधिकारों की धर्मशास्त्र की समीक्षा, पृ० ४४१, पत्नी के अधिकारों और स्थिति में परिवर्तन, पृ० ४४०; प्रथम विवाह और दोस्रो विवाह—पृ० ४३२, धर्म स्वातंत्र्य, पृ० ४२७; विवाह की अनिवार्यता, पृ० ४२४; विवाह का स्वयं, पृ० ४२२; विवाह की वध का उद्देश्य, पृ० ४३१; विवाह संस्कार में परिवर्तन, पृ० ४३६।

हिन्दू विवाह वैधता कानून (१९५६), पृ० २८, ११७, १४०।

हिन्दू विवाह सम्बन्धी धर्म नियम (सामान्य) पृ० ८।

हिन्दू विवाहों के आधुनिक रूप, पृ० २२६।

हिन्दू समाज में सगोत्र विवाह विधेय के उद्देश्य, पृ० १०-१२।

हिन्दू विवाहों की विधायिका पत्रिका, पृ० २७३; इससे कारण, पृ० २७३-८।

विवाहसंगोत्रसंगोत्र, पृ० ५६, ११२, २६३, २०८-९, ३७८।

विवाहसंगोत्र अधिनियम, पृ० ३३१।

विवाहसंगोत्र (धुमाती वैधता) पृ० ६२१।

विवाहसंगोत्र, पृ० २५५, ३६०।

विवाह की नीति, पृ० २८३।

धुमाती, पृ० ३३१।

धुमाती के विधि, पृ० २६५।

धुमाती, पृ० १७, ६३, १२६; देखिये धुमाती विधानमण्डल।

धुमाती, पृ० २२६।

धुमाती, पृ० ६६२।

धुमाती, पृ० १२७।

धुमाती विधानमण्डल के विवाह का विधेय पृ० ३४६

धुमाती के विधि, पृ० २१।

धुमाती का अधिनियम, पृ० २४७।

धुमाती विधानमण्डल सेन, पृ० ७१, १११, ११३, ११५, १७६।

धुमाती, पृ० २६६।

धुमाती, पृ० ८६, ३७०।

धुमाती के विधि, पृ० ३७१।

धुमाती, पृ० ३९६।

CATALOGUED.



CATALAN

Central Archaeological Library,

NEW DELHI. 49766

Call No 392.509.54 / Har

Author

Title - (1st) Title of the book
2nd

A book that is new to our collection

CENTRAL ARCHAEOLOGICAL LIBRARY
GOVT. OF INDIA
Department of Archaeology
NEW DELHI

Please help us to keep the books
clean and moving.